SRI PRATAP COLLEGE

LIBRARY.

Class No. 891.276

Book No. K45A. V2.

Accession No. 4316

ERRATA.

From page 488 onwards to end of Fasciculus VI, "Avadana Kalpalata," Vol. II—

For	page	809	*read*	489
,,	,,	810	,,	490
,,	,,	811	,,	491
,,	,,	812	,,	492
,,	,,	813	,,	493
,,	,,	814	,,	494
,,	,,	815	,,	495
,,	,,	816	,,	496
,,	,,	817	,,	497
,,	,,	818	,,	498
,,	,,	819	,,	499
,,	,,	820	,,	500
,,	,,	821	,,	501
,,	,,	822	,,	502
,,	,,	823	,,	503
,,	,,	824	,,	504
,,	,,	825	,,	505
,,	,,	826	,,	506
,,	,,	827	,,	507
,,	,,	828	,,	508
,,	,,	829	,,	509
,,	,,	830	,,	510
,,	,,	831	,,	511
,,	,,	832	,,	512
,,	,,	833	,,	513
,,	,,	834	,,	514
,,	,,	835	,,	515
,,	,,	836	,,	516
,,	,,	837	,,	517
,,	,,	838	,,	518
,,	,,	839	,,	519
,,	,,	840	,,	520
,,	,,	841	,,	521
,,	,,	842	,,	522
,,	,,	843	,,	523
,,	,,	844	,,	524
,,	,,	845	,,	525
,,	,,	846	,,	526
,,	,,	847	,,	527
,,	,,	848	,,	528
,,	,,	849	,,	529
,,	,,	850	,,	530
,,	,,	851	,,	531
,,	,,	852	,,	532
For	page	853	*read*	533
,,	,,	854	,,	534
,,	,,	855	,,	535
,,	,,	856	,,	536
,,	,,	857	,,	537
,,	,,	858	,,	538
,,	,,	859	,,	539
,,	,,	860	,,	540
,,	,,	861	,,	541
,,	,,	862	,,	542
,,	,,	863	,,	543
,,	,,	864	,,	544
,,	,,	865	,,	545
,,	,,	866	,,	546
,,	,,	867	,,	547
,,	,,	868	,,	548
,,	,,	869	,,	549
,,	,,	870	,,	550
,,	,,	871	,,	551
,,	,,	872	,,	552
,,	,,	873	,,	553
,,	,,	874	,,	554
,,	,,	875	,,	555
,,	,,	876	,,	556
,,	,,	877	,,	557
,,	,,	878	,,	558
,,	,,	879	,,	559
,,	,,	880	,,	560
,,	,,	881	,,	561
,,	,,	882	,,	562
,,	,,	883	,,	563
,,	,,	884	,,	564
,,	,,	885	,,	565
,,	,,	886	,,	566
,,	,,	887	,,	567
,,	,,	888	,,	568
,,	,,	889	,,	569
,,	,,	890	,,	570
,,	,,	891	,,	571
,,	,,	892	,,	572
,,	,,	893	,,	573
,,	,,	894	,,	574
,,	,,	895	,,	575
,,	,,	896	,,	576

བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་བརྗོད།

CHAPTER I.

ལས་བཅུ་སྤྱོད་པའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

གང་ཞིག་བདེ་ཆྲག་ཏུ་བསྐྱུར་མཐུ་ཡི་དབའ་ཆྲབས་མེད་དུ་བྱུང་བའི་འཕྲིང་བ་སྐྱེ།
སྙིང་སྟོབས་སྤྲོ་བའི་ས་དང་རང་བཞིན་དྲི་མེད་ཡེ་ཤེས་གསལ་བའི་བསམ་པ་ཅན།
དེ་དག་གིས་ཀུང་སྐྱབ་བྱེར་གྱལ་པོའི་བཀའ་ཡི་སྙིང་ཡིག་ལས་ཀྱི་འཕྲིང་ཆགས་པ།
བཀྲ་བ་དག་ནི་འགྲོད་པར་མི་འགྱུར་དོགས་འགྲུས་ཀྱི་རྒྱ་ཆེ་བོའི་གཏེར་གྱིས་བཞིན། 1

དེ་བཞིན་མཚན་ཡོད་དུ་ནི་འབྱུར་རྣམས་ཀྱིས།
བསྐྱལ་བར་གྱུར་པའི་མུ་སྟེགས་བྱད་མེད་དག།
སྟོན་པའི་གྲགས་པ་གཞོན་པར་བརྩོན་གྱུར་པ།
ལུས་དང་བཅས་པ་དབྱུལ་པར་ལྟུང་བར་གྱུར། 2

དེ་ནས་དགེ་བྱེད་ཀླུང་གི་ཚོགས། ཡོངས་སུ་འཕེན་བྱེད་དྲི་མེད་ཆུ།
འཛིང་བུ་གདུང་མེད་ཅེས་བྱ་བ། རིན་ཅེན་ཚོགས་ཀྱི་ཐེམ་སྐས་ཅན། 3

གསེར་གྱི་པད་ཚོགས་གེ་སར་གྱིས། ཀང་དྲུག་སེར་པོར་བྱེད་པ་ཡིས།
པདྨའི་ཁྲིར་གནས་བཅོམ་ལྡན་འདས། དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་ཡོངས་བསྐོར་བ། 4

बोधिसत्त्वावदानकल्पलता।

दशकर्म्मसुत्यवदानम्।

नमोरत्नत्रयाय[१]।

ये हेलोच्छलितप्रभावलहरीजाताद्भुतश्रेणयः
सत्त्वोत्साहभुवः स्वभावविमलज्ञानप्रकाशाशयाः।
आज्ञालेख्यलिपिं विधातृन्टपतेः संसक्तकर्म्मावलीम्
चित्रं तेऽपि न लङ्घयन्ति कुटिलां वेलामिवाम्भोधयः॥ १॥

श्रावस्त्यां प्रेरितास्तद्दुर्दैत्तैस्तीर्थिकाङ्गनाः।
कीर्त्तिभङ्गोद्यताः शास्तुः सदेहा नरकेऽपतन्॥ २॥

ततः पुण्यनदीसंघपरिक्षिप्तामलाम्भसि।
सरस्यनवतप्ताख्ये रत्नसोपानसञ्चये॥ ३॥

हेमाब्जपुञ्जकिञ्जल्कपिञ्जरीकृतषट्पदे।
पद्मासनस्थो भगवान् भिक्षुभिः परिवारितः॥ ४॥

---

१ Orig. omits the invocation. has नमोबुद्धाय।

ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པ་ལས་ཀྱི་ཀྱུད། འགོས་བྲ་མིན་པར་སྟོན་མཛད་ཅིང་།
རང་ལས་སྤྱོད་པ་ཉམས་པར་བཀྲ། གསུང་བར་ཡང་དག་བརྩོན་པར་གྱུར། 5

ལས་ནི་འཆད་པའི་གནས་སྐབས་དེར། བཅོམ་ལྡན་གསུམ་ལ་མཉེས་ག་ཤིན་པས།
ཤཱ་རིའི་བུ་ནི་འབོད་པ་དག། མཽ་གལ་བུ་ལ་རབ་ཏུ་བསྐོས། 6

བྱ་རྒོད་ཕུང་པོའི་རི་གནས་ལ། ཁབ་དང་སྐུད་པས་སྦྲར་མ་ནི།
བཀྲ་ཤིས་རྫོགས་པར་བྱེད་པ་ཡིན། ཤཱ་རིའི་བུ་ཅན་དེ་ཡིས་ཕྱིན། 7

སོར་མོ་རངས་བྱས་འདྲུབ་པ་ཡིས། ལས་ཀྱི་མཐུ་ཉིད་མ་ཡིན་པ།
བུ་བ་འཁོར་བས་འཇིགས་པ་ཡིས། རྒྱུར་དང་བཅས་པ་དེ་ལ་སྨྲས། 8

ཚུར་ཤོག་ཚུར་ཤོག་མགྱོགས་པར་རོ། བཅོམ་ལྡན་ཀུན་མཁྱེན་རྫིང་བུ་ནི།
གདུང་བ་མེད་པར་དགེ་སློང་ལ། ལས་ནི་ཉེ་བར་སྟོན་པར་བརྩོན། 9

ལས་ལ་ཆགས་ནས་རྒྱུར་མིན་ཞིང་། གྲོགས་པར་གལ་ཏེ་ཁྱོད་བསྒྲུབས་ན།
རྫུ་འཕྲུལ་ཆེན་པོས་ཁྱོད་སླང་བྱ། བདག་གིས་སྟོབས་ཡང་བལྟ་བར་བྱོས། 10

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཤཱ་རིའི་བུ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས།
རེ་ཞིག་བདག་གི་ཐུ་བ་ལོང་། དེ་ནས་ཁྱོད་སྟོབས་བདག་གིས་ཤེས། 11

ཞེས་སྨྲས་བྱ་རྒོད་ཕུང་པོ་ཡི། རི་ཡི་རྩེ་ལ་དེ་ཡིས་བདགས།
མོ་གལ་བུ་ཡིས་སླངས་པ་ཡི། ཚོ་ན་རི་ནི་འགུལ་བར་གྱུར། 12

सर्व्वज्ञः कर्म्मतन्त्रस्य दर्शयन्नविलङ्घ्यताम्।
स्वकर्म्मस्तुतिवैचित्र्यं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ५ ॥

कर्म्माख्यानक्षणे तस्मिन् भगवान् भक्तवत्सलः।
शारिपुत्रसमाह्वाने मौद्गल्यायनमादिशत् ॥ ६ ॥

स्यूच्या सूत्रेण संघाटीकुर्व्वाणं रचनाचिताम्[१]।
स शारिपुत्रमासाद्य गृध्रकूटाचलाश्रमे ॥ ७ ॥

अङ्गुलीपञ्चकेनैव सूचीकर्म्म प्रभाववान्।
विलम्बभीत्या कृत्वास्य तमभाषत सत्वरः ॥ ८ ॥

एह्येहि तूर्णं भगवान् सरस्यनवतप्तके।
कर्म्मोपदेशं भिक्षूणां सर्व्वज्ञः कर्त्तुमुद्यतः ॥ ९ ॥

कर्म्मव्यग्रतयाक्षिप्रं विलम्बं विदधासि चेत्।
तन्महर्द्धा नयामि त्वां विपुलं पश्य मे बलम् ॥ १० ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा शारिपुत्रस्तमब्रवीत्।
अचलं नय मे तावत्ततो जानामि ते बलम् ॥ ११ ॥

इत्युक्त्वा गृध्रकूटाद्रिशिखरे स बबन्ध तत्[२]।
मौद्गल्यायनकृष्टे च तस्मिन् गिरिरकम्पत ॥ १२ ॥

---

१ H रचनोचितां।
२ $\frac{W}{2}$ suggests शरीरं as the antecedent of तत्।

ཤཱ་རིའི་བུ་ཡིས་རྡུན་པོ་ལ། རི་ནི་ལྷུང་བར་འཇིགས་ནས་བཏགས།
དེ་ནས་དེ་ཡིས་གླངས་པའི་ཚེ། ལྷ་ཡི་གནས་ཀྱང་ནམ་པར་གཡོས། 13

དེ་ནས་སྟོན་པའི་གདན་གསེར་གྱི། པད་ཙ་ནོར་བུའི་རང་བཞིན་ལ།
ཤཱ་རིའི་བུ་ཡིས་དེ་བཞིན་བཏགས། པ་རོལ་ནས་མེད་ཉིད་དུ་གྱུར། 14

རྫུ་འཕྲུལ་རིམ་པས་མོ་གལ་བུ། ཤཱ་རིའི་བུ་ཡིས་པམ་བྱས་པ།
ཤིན་ཏུ་སྤྲ་བར་དེས་བྱིན་ཚེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དྲུང་དུ་སོང་། 15

དེ་དག་རྫུ་འཕྲུལ་ཆེས་བསྐྱོད་པས། ཀླུ་ནི་དགའ་བོ་ཉེ་དགའ་དག།
ས་འོག་ནས་ནི་རབ་འཕྲོན་ཏེ། འཇིགས་ནས་བཅོམ་ལྡན་ལ་ཕྱག་བཙལ། 16

ཤཱ་རིའི་བུ་ནི་གྲོལ་བའི་མཐུ། དེ་ནས་དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་དྲིས།
ཡེ་ཤེས་སྤྱན་ལྡན་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། སྔོན་བྱུང་དག་ནི་རབ་གསུངས་པ། 17

ཤཱ་ནཱ་ཀ་སེར་སྔོན་བྱུང་བ། དྲང་སྲོང་དུང་དང་བྲིས་པའོ།
དེ་དག་ཆར་དང་ཆར་མེད་ནི། འགལ་བརྗོད་པན་ཚུན་འགྲན་པར་གྱུར། 18

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་དུང་ཁྲོས་པའི། ཀང་པས་རལ་པ་ལ་རེག་པ།
དྲིས་པས་དེར་སླས་ཉི་ཤར་ཚེ། ཁྱོད་ཀྱི་མགོ་བོ་བྲེ་གྱུར་ཅིག། 19

དུང་གིས་སླས་པ་བདག་ཅིག་གིས། ཉིན་བྱེད་འཆར་བར་མ་གྱུར་ཅིག།
དེས་འདི་བརྗོད་ཚེ་མཛེས་པ་ཡི། འགྲོ་བ་མུན་པ་དང་བཅས་གྱུར། 20

गिरिपातभयान्मेरो[१] शारिपुत्रो बबन्ध तत् ।
तेन कृष्टे ततोऽप्यस्मिन् विचचाल सुरालयः ॥ १३ ॥

शास्तुरासनहेमाब्जनाले मणिमये ततः ।
शारिपुत्रेण बद्धं तत् परस्याशक्यतां ययौ ॥ १४ ॥

ऋद्धिक्रमेण मौद्गल्यः शारिपुत्रेण निर्ज्जितः ।
तस्मिन् पूर्व्वतरं प्राप्ते ययौ भगवतोऽन्तिकम् ॥ १५ ॥

तयोर्महर्द्धिविक्षोभान्नागौ नन्दोपनन्दकौ ।
पातालादुत्थितौ भीत्या भगवन्तं प्रणेमतुः ॥ १६ ॥

जयिनः शारिपुत्रस्य प्रभावमथ भिक्षुभिः ।
पृष्टो बभाषे भगवान् प्राग्वृत्तं ज्ञानलोचनः ॥ १७ ॥

अभूतां शङ्खलिखितौ वाराणस्यामृषी पुरा ।
वर्षावर्षविवादेन संघर्षोऽभूत्तयोर्मिथः ॥ १८ ॥

कदाचिदथ शङ्खेन पद्भ्यां स्पृष्टजटः क्रुधा ॥
लिखितः प्राह तं मूर्द्धभेदः सूर्योदयेऽस्तु ते ॥ १९ ॥

शङ्खोऽवदन्मद्वचसा नोदेष्यति दिवाकरः ।
इत्युक्ते तेन सुचिरं सान्धकारमभूज्जगत् ॥ २० ॥

१ Orig. मेरो ।

ཁྲིམས་པས་དེ་ལ་བརྩེ་བ་ཡིས། ས་ཡི་རང་བཞིན་མགོ་བོ་བྲུས།
ཉི་མ་ཤར་ཚེ་འཕྲུལ་ལ་ནི། ནོར་འཛིན་དུམ་བུ་བསྒྱུར་གྱུར་ཏོ། 21

སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་དུང་དེ་རིང་། མཽ་གལ་གྱི་བུ་ཉིད་གྱུར།
ཁྲིམས་པ་ཤཱ་རིའི་བུ་འདི་སྟེ། དེ་ལས་དེའི་ཚེའང་གྲོལ་བར་གྱུར། 22

དེ་དག་གིས་ནི་སྔོན་བྱུང་མཐའ། འདི་ནི་ཀུན་མཁྱེན་གྱིས་གསུངས་སོ།
ལས་ཀྱི་རྒྱུད་ནི་བཀྲ་བ་དེ། སྔར་ཡང་ཐུབ་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཁྲིམས། 23

བཅོམ་ལྡན་ལས་ནི་གང་དག་གིས། འབྲས་བུ་མེད་བྱུང་འབྱུང་བ་འདི།
ཡེ་ཤེས་རང་བཞིན་ཁྱོད་ཀྱི་ཡང་། ལུས་ལ་གང་གིས་རེག་པར་གྱུར། 24

རྡོ་བའི་ཟེར་མས་ཁྱོད་ཞབས་ཀྱི། མཐེ་བོང་སྐྱད་པ་ཅི་ཡིས་སྐྱད།
སེང་ལྡེང་ཐུར་མས་ཞབས་ཕུག་ནས། མི་དང་བཅས་པ་འདི་ནི་ཅི། 25

བསོད་སྙོམས་མ་ཐོབ་ལྷུང་བཟེད་ནི། སྟོང་པར་དེང་ཁྱོད་ལ་སྐྱད་ཅི།
མཛེས་མ་རབ་བྱུང་དེ་ཡིས་ནི། རྫུན་གྱིས་ཁྱོད་ལ་སྐྱད་པ་ཅི། 26

མི་བདེན་སྐྱད་དང་བཅས་གྱུར་པས། ཁྱོད་ལ་སྨྲ་བར་བྱེད་པ་ཅི།
ཐི་རན་དུ་ཛ་ཁྱོད་ཀྱིས་སྤོན། ཀོ་ཊ་ར་ཡི་ནས་གསོལ་ཅི། 27

कल्पितं लिखितेनास्य कृपया मृण्मयं शिरः ।
सूर्य्योदयेऽथ सहसा शतधा वसुधां ययौ ॥ २१ ॥

जन्मान्तरे स शङ्खोऽद्य मौद्गल्यायनतां गतः ।
लिखितः शारिपुत्रोऽपि[१] तद्विजेता तदाप्यभूत्[२] ॥ २२ ॥

सर्व्वज्ञेनेति कथिते वृत्तान्ते प्राक्तने तयोः ।
तत्कर्म्मतन्त्रवैचित्र्यं पप्रच्छुर्मुनयः पुनः ॥ २३ ॥

भगवन् कर्म्मणां केषामद्भुतोऽयं स्फुटोद्गमः ।
तव ज्ञानमयस्यापि येन संस्पृश्यते वपुः ॥ २४ ॥

पादाङ्गुष्ठः क्षतः कस्मात्तव पाषाणधारया ।
विद्धः खदिरसूच्यायं सव्रणश्चरणश्च किम् ॥ २५ ॥

शून्यपात्रः किमप्राप्य भिक्षामद्यागतो भवान् ।
मिथ्याक्षिप्तोऽसि सुन्दर्य्या किं प्रव्राजिकया तया ॥ २६ ॥

वध्वा मानविका[३] किन्ते सापवादाभवन्मृषा ।
भुक्ताः किं कोद्रवयवा[४] वैरन्तेषु त्वया पुरा ॥ २७ ॥

१ W_1 and W_2 °पुत्रोऽयम् ।
२ Orig. तदास्यभूत् ।
३ मानविकाशब्दस्तु शकारयुत एव ।
४ Orig. कोटर° । W_2 कोढर° or कोद्रुर° ।

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ལོ་དྲུག་ནི། དཀའ་བ་སྤྱད་པར་གྱུར་པ་ཅི །
ཁྱོད་ཀྱི་ལུས་ལ་རབ་གནོན་གྱིས། ནད་གྱིས་ཅི་ཡི་སླད་དུ་རེག། 28

ཤ་ཀྱའི་རིགས་ནི་འཇིག་པའི་ཚེ། ཁྱོད་ཀྱི་དབུ་ནི་བསྐུང་གྱུར་ཅི།
ཅི་སླད་ཁྱོད་ཀྱི་ལུས་མཆོག་ལ། ཀླུང་གིས་སྐྲ་གྲིབ་བསྐུང་བར་གྱུར། 29

དེ་དག་རྣམས་ཀྱིས་འདི་དྲིས་ཚེ། བཅོམ་ལྡན་འཇོམས་བཅས་དེར་གསུངས་བ།
ཉོན་ཅིག་ཀུན་ཆད་མེད་པར་ནི། རྣམ་པར་བཀྲབ་ལས་ཀྱི་རྒྱུན། 30

ལུས་ཅན་ལས་ཀྱི་འཆིང་བ་ནི། ཚས་ཞགས་གཡོག་པོ་དམ་པ་བཞིན།
འགྲོ་ན་ཕྱི་ནས་འགྲོ་བར་བྱེད། སྡོད་ན་སྡོད་དུ་སྡོད་པར་བྱེད། 31

ནགས་རྣམས་དག་ཏུ་འཇུག་ཅིང་ཕྱོགས་སུ་རྣམ་པར་ཀྱི་ལ་རྒྱ་གཏེར་འགོང་པར་བྱེད།
ཉི་ཡི་དབང་ཕྱུག་ལ་འཇོག་བཀྱི་བྱིན་གནས་ནི་ཀུན་དུ་མཐར་ནས་མངོན་པར་འཇུག། 32

ས་འོག་སྣང་བ་མེད་པའི་ཡུལ་དུ་རབ་འཇུག་ལས་རྣམས་དུས་ཀྱི་རྦ་རླབས་བཞིན།
འདི་དག་རྟག་ཏུ་སྐྱེ་བོའི་རྗེས་སུ་འཇུག་པའི་ལམ་ནི་གང་ནའང་འགོག་པ་མེད།
ལས་ཀྱི་འཁྲི་ཤིང་རིང་པོ་གསར་པ་ཉིད་ལ་རྟག་ཏུ་འབྲས་བུ་སྨིན་པས་ཁྱབ།
ངོ་མཚར་དང་བཅས་ལུས་ཅན་ལྷན་ཅིག་སྐྱོད་ཅིང་དེ་ལའང་ངེས་པར་གཡོ་བ་མེད།
གང་ཞིག་དགེ་བ་རྣམས་ཀྱིས་བཀུག་དང་ཡོངས་སུ་དཀྲིས་དང་རྣམ་པར་གསལ་བ་དང་།
རབ་བཅད་གཞུམས་དང་ངེས་པར་བཏེར་དང་ཕྲ་མར་བྱས་ཀྱང་ཟད་པ་ཉིད་མི་འགྱུར། 33

वर्षाणि षट् भगवतः किमभूद्[1] दुष्करक्रिया ।
प्रस्कन्दिव्याधिना[2] स्पृष्टं कस्माच्च भवतो वपुः ॥ २८ ॥

शिरोऽत्तिरभवत् किं ते तस्मिन् शाक्यकुलक्षये ।
वायुना स्पृष्टः खेदोऽभूत् कस्माद्दिव्यतनोस्तव ॥ २९ ॥

इति तैर्भगवान् पृष्टस्तानभाषत सस्मितः ।
श्रूयतामनवच्छिन्नं वैचित्र्यं कर्म्मसन्ततेः ॥ ३० ॥

गच्छन्ति गच्छतः पश्चात् पुरस्तिष्ठन्ति तिष्ठतः ।
सदृश्टत्या इव सम्बद्धा कर्म्मबन्धाः शरीरिणाम् ॥ ३१ ॥

गाहन्ते गहनानि दिक्षु विचरन्त्युल्लङ्घयन्त्यम्बुधिम्
आरोहन्ति गिरीश्वरानभिसरन्त्याक्रम्य शक्रालयम् ।
पातालं प्रविशन्त्यसोकविषयं कर्म्माणि कालोर्म्मिवत्
नास्त्येषामनिशं जनानुसरणे मार्गावरोधः क्वचित् ॥ ३२ ॥

दीर्घा कर्म्मलता नवेव सततं व्याप्ता पुराणैः फलैः
साश्चर्य्या सहचारिणी तनुभृतां तथाप्यलं निश्चला ।
याक्लृप्ता परिवेष्टिता विघटिता प्रोत्पाटिता मोटिता
निर्घृष्टा कणशः क्षतापि कुशलैर्नैव प्रयाति क्षयम् ॥ ३३ ॥

---

१ W किमेतद् दुष्करक्रिया ।

२ W प्रस्कन्धी ।

གང་ཞིག་ཟླ་བ་མཛེས་པའི་ལུས་ལ་སྐྱོན་གྱི་ཐིག་ལེ་ནག་པོ་དང་།
གང་ཞིག་མ་རུངས་ཉམས་པའི་སྦྲུལ་ནག་ནོར་བུ་འོད་ཟེར་རལ་ཅན་འཛིན།
སྣ་ཚོགས་གཟུགས་ཀྱིས་བརྒྱ་བའི་སྒྱོད་པ་ལུས་ཅན་རྣམས་ལ་སྟོན་བྱེད་པ།
འདི་ནི་བརྒྱ་བའི་རིམ་པས་ཡོངས་སྨིན་ལས་ཀྱི་སྦྲུལ་པའི་རི་མོ་ཡིན། 34

གཞལ་དུ་མེད་པའི་ནོར་སྐྱེད་ཅིང་། བུ་མང་ཚུང་མ་དང་ལྡན་པའི།
ཁྱིམ་བདག་ཁར་བ་ཊ་ཞེས་པ། ཀར་པ་ཊ་ནི་སྔོན་བྱུང་གྱུར། 35

དེ་ཡིས་མཛའ་བས་བསྐྱངས་པ་ཡི། ཁྱིམ་པ་སུག་དྷ་ཞེས་བྱ་བ།
ནོར་མ་བགོས་པའི་སྤུན་ཟླ་ནི། མ་མི་གཅིག་པ་དེ་ཁྱིམ་གནས། 36

ནས་ཞིག་ཁྱིམ་བདག་དེ་ལ་ནི། ཁྱིམ་བསམ་གཏམ་གྱི་བར་སྐབས་སུ།
ཚུང་མ་ནག་མོ་ཞེས་བྱ་བ། གུ་གུ་ཅན་གྱིས་དལ་བུས་སྨྲས། 37

ཧྲི་ཡི་སྲས་པོ་སྐྱོངས་པ་ལས། བག་མེད་དྲང་པོར་ཁྱོད་ཀྱི་ནི།
ཁྱིམ་དུ་མ་མི་གཅིག་པས་སྤུན། དུག་གི་ལྗོན་པ་ཉམས་པར་བསྐྱེད། 38

འགོད་ཐལ་གཅིག་པུ་འདི་ཡིས་ཀྱང་། འགོད་ལྡན་བུ་མང་ཁྱོད་ཀྱི་ནི།
བགོས་བ་མིན་པའི་ནོར་དག་ལས། ཕྱེད་ནི་ཚུལ་གྱིས་ལེན་པར་འགྱུར། 39

ནད་བཞིན་འཕེལ་བ་འདི་ལ་ནི། གསད་པ་ཁོ་ན་སྨན་གྱི་མཆོག
གཉེན་ནི་གཅོད་པ་དག་ལས་ཀྱང་། མི་རྣམས་ནོར་གཅོད་བཟོད་པར་དཀའ། 40

कान्तः काये वहति मलिनं दोषबिन्दुं यदिन्दुः
क्रूराकारः किरणजटिलं यन्मणिं कृष्णसर्पः ।
नानारूपैः शबलचरितं देहिनां दर्शयन्ती
सेयं चित्रक्रमपरिणता कर्म्मनिर्म्माणलेखा ॥ ३४ ॥

अभूद्गृहपतिः पूर्व्वं कर्पटे खर्व्वटाभिधः ।
अप्रमेयधनोत्पत्तिर्बहुपुत्रकलत्रवान् ॥ ३५ ॥

अविभक्तधनस्तस्य भ्राता वैमातृकः शिशुः ।
मुग्धनामा गृहे तस्थौ वात्सल्यात्तेन पालितः ॥ ३६ ॥

कदाचित्तं गृहपतिं कालिका नाम वल्लभा ।
उवाच कुटिला स्वैरं गृहचिन्ताकथान्तरे ॥ ३७ ॥

आर्य्यपुत्र त्वया गेहे सरलेन[1] प्रमादिना ।
मोहादसोदरो भ्राता विषवृक्षो विवर्द्धितः ॥ ३८ ॥

एकोऽपि बहुपुत्रस्य व्ययिनस्तव निर्व्ययः ।
अविभक्तधनादर्द्धं न्यायेनैष हरिष्यति ॥ ३९ ॥

अस्य व्याधेरिवैतस्य वधएवाद्यमौषधम् ।
बन्धुच्छेदादपि नृणां धनच्छेदो हि दुःसहः ॥ ४० ॥

---

१ W_3 चाप्रमादीना ।

ཟབ་མོའི་འདུ་འགོད་རྩོམ་པ་ཡིས། འཁོར་བར་སྐྱེ་བའོས་གྱུར་པ།
ཆེན་པོ་གོད་པ་ལྟུང་གྱུར་ན། གཉིས་འཁྲུང་དབང་པོ་འགྲེལ་བ་བཞིན། 41

ཞེས་པ་དེ་ཡི་གདུག་པའི་ཚིག། བློས་ནས་བསམ་པ་རབ་འདར་ཞིང་།
མཛད་པའི་ཞགས་པས་དབང་བྱས་ཏེ། དེ་ལ་གཙུགས་པས་རབ་སྨྲས་པ། 42

རེ་ཞིག་ཁྱོད་ཀྱིས་ཐན་པ་བརྗོད། འོན་ཀྱང་འདི་ནི་ཤིན་ཏུ་སྡིག།
ཕྱི་རོལ་ཡན་ལག་ནོར་སྤོབ་སྨྲད། ལྷན་སྐྱེས་ཡན་ལག་སྲུ་ཞིག་གཙོད། 43

ནོར་ལ་ཆགས་ནམས་ནོར་དོན་དུ། སྡིག་པ་བསམ་པ་རིགས་མ་ཡིན།
ནོར་ནམས་བསྲུང་བར་གྱུར་མོད་ཀྱང་། སྐད་ཅིག་གིས་ནི་བརླག་པར་འགྱུར། 44

ཡང་ཡང་ལས་བརླབས་རྩོམ་པ་ཡིས། རབ་སྐྱེད་འཁྲུགས་པའི་ནམ་འཕྲུལ་ཅན།
དཔལ་ནམས་རི་གཟར་རྒྱུ་བོ་བཞིན། བསྒྲོད་པ་དག་ནི་སྲུ་ཡིས་བཀློག། 45

དེ་སྐད་སྨྲིན་ལེགས་བདག་གི་ཡིད། སྤྲུན་བླ་གསོད་ལ་ཡོངས་མི་འཇུག།
ནོར་ཉམས་བདག་ནི་འཚོ་བ་ཡང་། སྤྱོད་ཚུལ་ཉམས་ན་འགྲོ་བ་གང་། 46

ཞེས་སྨྲས་བདག་པོ་དེ་ཡིས་ཡིད། སྣ་ཚོགས་རིགས་པ་ཉེར་བསྟན་ནས།
དལ་གྱིས་སྡིག་པ་དག་ལ་ནི། དེ་ཡིད་མངོན་པར་ཕྱོགས་པར་བྱས། 47

མཛད་སྐུམ་མང་པོས་བསྐྱེད་བ་ཡིས། ལྷན་སྐྱེས་སྤྱི་བོར་སྐྱེས་པ་བཞིན།
བྲུང་མེད་སྤྲུ་གྲིའི་སོ་སོན་གྱིས། འཕྲལ་ལ་བཅད་ནས་འདོར་བར་བྱུད། 48

गम्भीराधव्ययारम्भसंसारोचितजन्मनाम् ।
विपन्निपातो महतां द्विपेन्द्रपतनोपमः ॥ ४१ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा क्रूरमुत्कम्पिताशयः ।
स तामुवाच प्रणयात् स्नेहपाशवशीकृतः ॥ ४२ ॥

हितमुक्तं त्वया तावत् किन्त्वेतदतिपातकम् ।
सहजं कश्चिन्नत्यक्तं वहिरङ्गधनाप्तये ॥ ४३ ॥

न युक्तमर्थशक्तानामर्थार्थं पापचिन्तनम् ।
क्षणेनायान्ति वित्तानि रक्षितान्यपि संक्षयम् ॥ ४४ ॥

मुहुःकर्म्मोर्म्मिसंरम्भसम्भवक्षोभविभ्रमाः ।
गच्छन्त्यः केन वार्य्यन्ते शैलकुल्या इव श्रियः ॥ ४५ ॥

तस्मान्न मे मनः सुभ्रु भ्रातृद्रोहे प्रवर्त्तते ।
वित्तभ्रंशेऽस्ति मे वृत्तिर्वृत्तभ्रंशे तु का गतिः ॥ ४६ ॥

इति तस्य ब्रुवाणस्य नानायुक्तिनिदर्शनैः ।
शनैः सा विदधे पत्युः पातकाभिमुखं मनः ॥ ४७ ॥

वर्द्धितान् बहुभिः स्नेहैः सहजान् मूर्द्धजानिव ।
छित्वा हरन्ति सहसा क्षुरधाराः खराः स्त्रियः ॥ ४८ ॥

རྔོངས་བས་བཅོམ་པའི་སྒྲོ་དང་བུད་མེད་ནི།
འཁྲིག་ཅིང་གཞན་ལ་རབ་གདུག་བྱ་མིན་ལ།
འཇུག་པའི་སྐད་དུ་བདེན་པ་སྨོན་སྦྱོར་ཞིང་།
སྡིག་བ་ངེས་པར་ལྷུང་བར་བྱེད་པ་ཉིད། 49

གཉེན་དང་གྲོགས་ལ་ཆགས་བྲལ་ཞིང་། སེམས་ནི་རང་བདེས་སྨོས་གྱུར་པ།
དཔལ་ལྡན་ནོམས་ལ་དུད་པ་བཞིན། བུད་མེད་གྱུལ་ལ་བློ་གྲོས་གང་། 50

དེ་ནས་དེ་ཡིས་སྤྲུན་ཟླ་ནི། མེ་དོག་བདུ་སྨད་ལ་དྲངས་ནས།
མི་མེད་ནགས་སུ་ཧྭ་བ་ཡིས། ཚེ་ངེ་གྲོས་པ་མེད་པར་བསད། 51

དེ་ཉིད་ངང་ཡིན་སྡིག་པ་དེ། སྐྱེ་བ་སྟུ་མ་ཉམས་སྤྱད་ནས།
མགྲི་བོང་སྐད་པའི་མཚན་ཉིད་ཅན། ད་ལྟའང་ལྷག་མའི་ཆ་ཤས་འཛིན། 52

དེར་དཔོན་དོན་བྱིན་ཞེས་བྱ་བ། གཟིངས་ནི་གང་བར་གྱུར་པ་སྨོན།
རྗེས་སུ་མཐུན་པའི་རླུང་དག་གིས། རིན་ཆེན་གླིང་ནས་ཡང་དག་འོངས། 53

དེ་ནས་དེར་དཔོན་གཉིས་པ་ནི། དོན་ཉམས་དེ་ལ་བརྟེན་གྱུར་པ།
སྟོང་བས་གཟིངས་ལ་སྐྱས་བ་ཡི། སྡུག་པ་བྱ་བར་རབ་ཏུ་བཙོམས། 54

ཅི་སྟེ་དོན་བྱིན་གྱིས་མཐོང་ནས། ཡང་དང་ཡང་དུ་ཟློག་གྱུར་ཀྱང་།
སྟོང་བས་ལོང་དེ་སྡིག་པ་ཡི། འབད་ལས་སྐད་ཅིག་ལོག་མ་གྱུར། 55

वक्रा परं क्रूरतरक्रियासु
प्रवर्त्तनायैव दृढाभियोगा ।
पापा निपाताय भवत्यवश्यं
मोहाहतानां युवतिर्मतिश्च ॥ ४९ ॥

बन्धुमित्रविरक्तानां स्वसुखस्त्रीवचेतसाम् ।
श्रीयुतानामिव नतिः स्त्रीजितानां मतिः कुतः॥ ५०॥

अथ भ्रातरमाहूय नीत्वा पुष्पोच्चयाय सः ।
न्यवधीदश्रुताक्रन्दमश्मना विजने वने ॥ ५१ ॥

अहमेव स तत्पापं भुक्त्वा पूर्व्वेषु जन्मसु ।
वहाम्यद्यापि शेषांशमङ्गुष्ठक्षतलक्षणम् ॥ ५२ ॥

सार्थवाहोऽर्थदत्ताख्यः पूर्णप्रवहणः पुरा ।
पवनस्यानुकूल्येन रत्नद्वीपात् समाययौ ॥ ५३ ॥

द्वितीयः सार्थवाहोऽथ नष्टार्थस्तं समाश्रितः ।
द्वेषात् प्रवहणे छिद्रं प्रच्छन्नं कर्त्तुमुद्ययौ ॥ ५४ ॥

अथ दृष्टोऽर्थदत्तेन वार्य्यमाणः पुनः पुनः ।
पापप्रयत्नो द्वेषान्धः क्षणं न विरराम सः ॥ ५५ ॥

དེ་ནས་དོན་མཐུན་བདག་ཁྲིམས་ནས། ཁྲི་ལྡན་ནོབ་པར་སོངས་པ་དེ།
མི་བཟང་ཤཱཀྱི་རབ་བསྟུར་ནས། སྒོག་དང་བྲལ་བ་ཉིད་དུ་བྱས། 56

དེ་ཉིད་ང་ཡིན་དེ་བཤད་ལས། སྡིག་འབྲས་སྐྱེ་བ་གཞན་སྨྲད་ནས།
ལྷག་མའི་ཆ་ཤས་ད་ལྟ་ཡང་། ཀང་པར་སེང་ལྡིང་ས་འཛིན་ནོ། 57

ཡག་ན་ལྷུང་བཟེད་བརྩེ་བ་ཡིས། བརྟན་པའི་སྒྲོ་ལྡན་རང་སངས་རྒྱས།
ཨུ་པ་རི་ས་ཞེས་པ་སྟོན། ཀ་ཤིའི་གྲོང་དུ་བསྐྱད་སྨང་ཞུགས། 58

དེ་ཡི་ལྷུང་བཟེད་ཡོངས་ཁེངས་པ། མཐོང་ནས་སྤྲང་བས་སྨུན་ཕྱུང་བ།
འབྲས་མེད་གསོལ་ལྡན་ཞེས་པ་ཡིས། ལག་པ་ཡིས་ནི་ས་ལ་ཕོ། 59

དེང་ཟས་བཅད་ལས་འཁྲུངས་པའི། སྡིག་དེ་སྐྱེ་བ་མང་པོར་ནི།
སྤྱད་ཀྱང་འབྲས་བུ་ལྷག་མ་ཡིས། ལྷུང་བཟེད་སྟོང་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 60

བ་ཤི་ཥྛ་ཞེས་བྱ་བར་སྟོན། དགྲ་བཅོམ་ཉིད་ཐོབ་སེམས་རབ་དང་།
རབ་ཞིའི་དགའ་ཚལ་གྲོང་པ་ཡིས། བྱས་པའི་གཙུག་ལག་ཁང་ན་གནས། 61

དེ་ཡི་སྤྱན་སྔ་རབ་བྱུང་ནི། བྷ་ར་དྭ་ཛ་སྐྱེ་བོ་ཡི།
བཀུར་སྟི་དག་གིས་དེ་མཐོང་ནས། ལྡང་བའི་མེ་ཡིས་གདུངས་པར་གྱུར། 62

ཡོན་དན་ཅན་རྣམས་བཀུར་མཐོང་ནས། དེ་ཉམས་སྨད་དུ་སྐྱེ་བོ་རྣམས།
རབ་ཏུ་འབད་བྱེད་བདག་ཉིད་ནི། ཡོན་དན་གཟུང་ཕྱིར་བརྩོན་མ་ཡིན། 63

ततः सार्थपतिः कोपात् तं मात्सर्य्यविमोहितम्।
तीव्रशक्तिप्रहारेण चकार गतजीवितम्॥ ५६॥

अहं स तद्वधात् पापफलं भुक्त्वान्यजन्मसु।
वहाम्यद्यापि शेषांशं चरणे खदिरव्रणम्॥ ५७॥

प्रत्येकबुद्धः पिण्डाय पात्रपाणिर्दयार्द्रधीः।
विवेश काशनगरीमुपारिष्टाभिधः पुरा॥ ५८॥

सम्पूर्णपात्रमालोक्य तस्य विद्वेषदूषितः।
युवा चपलको नाम पाणिनापातयद्भुवि॥ ५९॥

अहं स पापं तद्धस्तच्छेदोत्थं बहुजन्मसु।
भुक्त्वापि फलशेषेण प्रयातः शून्यपात्रताम्॥ ६०॥

वशिष्ठाख्यः पुराहंस्त्वं प्राप्तश्चित्तप्रसादवान्।
उवास प्रशमारामे विहारे पौरकल्पिते॥ ६१॥

भ्राता प्रव्रजितस्तस्य भरद्वाजः सदोदितम्।
विलोक्य जनसत्कारं ययौ द्वेषाग्नितप्तताम्॥ ६२॥

गुणिनां मानमालोक्य प्रयत्नं तद्विनाशने।
खलः करोति नत्वात्मगुणाधानसमुद्यमे॥ ६३॥

ཆེན་པོ་ལ་འོས་གོས་ཟུང་ཞིག། སྐྱེ་བོ་གུས་པས་ཕུལ་བ་ནི།
དྲང་པོའི་སེམས་ལྡན་བ་ཤི་ཥྛ། མཛད་བས་སྤྱན་སྔ་དེ་ལ་ཕྱིན། 64

དེ་སླངས་ཡོན་ཏན་ལ་སྤྱང་དེ། ཡིད་རང་ཁྲལ་བ་ཉིད་མ་གྱུར།
ཐན་པ་ཉམས་དང་མཛད་བས་ཀྱང་། ངན་པ་རང་གི་མི་འགྱུར་ཏོ། 65

དེ་ཡིས་གཙུག་ལག་ཁང་སྐྱོང་ངམ། དབེན་སར་ཡང་དག་བོས་ནས་ནི།
གོས་ནི་ཟུང་དག་དེ་ལ་ཕྱིན། བཀུར་སྟི་གུས་ནས་རབ་སྨྲས་པ། 66

གོས་ཟུང་འདི་ནི་སྐྱིད་བཟང་མ། སྲིད་ཀྱིས་གནོད་ལ་སྐྱེ་བོ་རྣག།
འདྲི་ན་བ་ཤི་ཥྛ་ཡིས་ནི། ཁྱིན་ཞེས་དམ་གྱིས་སྨྲ་བར་བྱ། 67

དེ་སྐད་རེས་བརྗོད་དེ་ཡིས་ཀྱང་། ཁྱེས་སླང་དེ་ཡིས་བསྟན་པ་ཕྲུས།
གང་གིས་བ་ཤི་ཥྛ་ལ་ནི། སྐྱེ་བོ་སྐྱོང་བར་དགོས་པར་གྱུར། 68

ཚུལ་ཁྲིམས་མ་ཚང་བརྗོད་པས་དེས། དེ་ནས་གྲོང་པས་མ་མཆོད་དེ།
རིང་དུ་སོང་གྱུར་ཆེན་པོ་རྣམས། བཀུར་སྟི་ཉམས་པས་འཛེགས་པ་ཉིད། 69

བྲ་ར་ཎ་ཛ་དེ་བདག་སྟེ། འཕགས་ལ་སྨད་བས་སྐྱེ་གཞན་ལ།
བསོད་ནམས་མིན་སྤྱད་དེས་ལྷག་ལས། མཛེས་མས་དེང་ཡང་རྟོན་གྱིས་སྨད། 70

བདག་སྒྲོན་བྲམ་ཟེའི་ཕྲག་དོག་གིས། བར་དུ་མིར་ལྡུག་པ་ཡི།
ཧླ་ལྡན་མངོན་ཤེས་ལྔ་པ་ཡིས། གྲགས་པ་ཕྲག་དོག་དྲག་གིས་བཅོམ། 71

महार्हवस्त्रयुगलं भ्राचे भक्तजनार्पितम् ।
तस्मै वशिष्ठः प्रददौ प्रीत्या सरलमानसः ॥ ६४ ॥

तदादाय गुणद्वेषी न वैरादिरराम सः ।
नोपकारैर्नवा प्रीत्या निजतां याति दुर्ज्जनः ॥ ६५ ॥

एकान्ते स समाहूय विहारपरिचारिकाम् ।
दत्वास्यै वस्त्रयुगलं जगाद कृतसत्कृतिः ॥ ६६ ॥

इदं त्वया वस्त्रयुगं परिधाय सुमध्यमे ।
वशिष्ठेनार्पितमिति प्रश्ने वाच्यः शनैर्जनः ॥ ६७ ॥

इति स्वीकृत्य तेनोक्ता तदादिष्टं चकार सा ।
येनाभवद्वशिष्ठस्य जनो विप्लवशङ्कितः ॥ ६८ ॥

शीलवैकल्यवादेन सोऽथ पौरैरपूजितः ।
दूरं ययौ महान्तो हि सत्कारभ्रंशभीरवः ॥ ६९ ॥

सोऽहमार्य्यापवादेन भरद्वाजोऽन्यजन्मसु ।
भुक्त्वाप्यपुण्यं तच्छेषात् सुन्दर्य्याद्य मृषार्हितः ॥ ७० ॥

ब्राह्मणेनेर्ष्यया पूर्व्वं वाराणस्यां मया मुनेः ।
दर्पादेन हृता कीर्त्तिः पञ्चाभिज्ञस्य धीमतः ॥ ७१ ॥

མི་རྡོག་བཞུ་ཙན་གྲགས་པ་ཡི། བ་དན་ལྟར་མཛེས་སྨད་འཚོང་མ།
བཟང་མོ་ཞེས་བྱ་བུད་མེད་མཆོག། བ་ར་ཎཱ་སིར་སྔོན་བྱུང་གྱུར། 72

གཡོ་ལྡན་གྱ་གྱུའི་བསམ་པ་ཅན། པད་ཙ་ཞེས་པས་ནམ་ཞིག་དེ།
མཐོང་ནས་མཚན་མོ་སྨྲད་པའི་སྐད། གོས་དང་རྒྱན་དག་དེ་ལ་བྱིན། 73

དེ་ནས་གཡོ་བའི་ཚགས་པ་ཅན། མཆམས་ལ་འགྲོགས་པར་མངོན་ཕྱོགས་པའི།
ཉིན་མོར་བྱེད་པ་ནམ་མཁའ་ཡི། ཁྲིམས་ཀྱི་མཐར་ནི་བབས་པའི་ཚེ། 74

བཟང་མོ་རང་གི་ཁྱིམ་སོང་ནས། མི་རྡོག་གོས་དང་རྒྱན་རྣམས་ཀྱིས།
མཛེས་བ་ཉིད་ཀྱི་རྒྱན་ལ་ནི། སྨར་ཡང་ཀློས་པའི་རྒྱན་དག་བྱས། 75

སྨུག་རྩི་ཀང་པའི་མཁྲིལ་ལ་རབ་ཆགས་ཤིང་།
དོ་ཤལ་མཆོག་ནི་མགྲིན་པར་དཔྱངས་ནས་ཀྱང་།
བྱ་བ་དོན་གཉེར་མེ་ལོང་ལ་ཕྱོགས་དེ།
སྨད་འཚོང་སྤྱོད་པའི་དོན་བཞིན་དེ་ཡིས་བྱས། 76

མགྲིན་པ་ལ་གཞན་བཞིན་གཞན་མཚུ་ལ་གཞན།
དེ་བཞིན་གཟུགས་ཅན་མ་རེས་སྙིང་ལ་གཞན།
ཚེམ་བགྲ་རང་གི་བྱ་བ་གཟུགས་བརྟན་བཞིན།
སྐྱེས་བུ་ཆགས་བྱེད་ཉིད་ཀྱིས་རྒྱན་རྣམས་བཟུང་། 77

वाराणस्यामभूत्पूर्व्वं भद्रा नाम वरानना ।
वेश्या यशःपताकेव कान्ता कुसुमधन्वनः ॥ ७२ ॥

तां कदाचिन्मृणालाख्यो विटः कुटिलचेष्टितः ।
दृष्ट्वा तस्यै ददौ रात्रिभोगायांशुकभूषणम् ॥ ७३ ॥

ततस्तरलरागायाः सन्ध्यायाः सङ्गमोन्मुखे ।
गगनाङ्गनपर्य्यन्ते[1] लम्बमाने दिवाकरे ॥ ७४ ॥

गत्वा स्वभवनं भद्रा पुष्यांशुकविभूषणैः ।
लावण्याभरणा चक्रे पुनरुक्तं प्रसाधनम् ॥ ७५ ॥

अलक्तके पादतलावसक्ते
कण्ठावलम्बिन्यपि तारहारे ।
कार्य्यार्थिनी दर्पणसम्मुखी सा
चकार वेश्याचरितं यथार्थम् ॥ ७६ ॥

कण्ठेऽन्यदन्यत् वदनेऽन्यदोष्ठे
बभार तन्वी हृदये तथान्यत् ।
सा भूषणं शोभनमेव पुंसाम्
मूर्त्तं स्वकर्त्तव्यमिवातिचित्रम् ॥ ७७ ॥

---

१ W/1 पर्य्यान्ते ।

ཡིད་སྨིན་གྲོལ་བའི་གྲགས་པ་ཟླ་བའི་གཟུགས་ནི་དང་པོ་བཞིན།
ལན་བུ་ཕྲིག་ལེའི་རི་མོས་འཛེ་སྒྲིག་ལྡན་པར་རབ་སྤྲས་ཤིང་།
རབ་འགྲོ་བདུག་པའི་དུ་བས་རབ་རིབ་ཕྲུན་མཚམས་བཞིན་བཀྲ་བ།
ཆགས་པ་དར་བྲུས་ཡན་ལག་དང་བཅས་ཆགས་བ་དེ་རབ་མཛེས། 78

དེ་ནས་གསོག་མོ་ཆུ་སྐྱིན་མ། ཞེས་པ་སྨྲ་བར་རབ་ཞུགས་ཏེ།
དེར་སྤྲས་སྐད་ཅིག་འགྲོགས་འདོད་པའི། གཞོན་ནུ་གསར་པ་ཕྱི་ན་སྡོད། 79

ཀཎྜ་པ་ནི་བགྲི་ཕྲག་ལྔ། ཙྭ་བཞིན་དུ་ནི་སྨེར་བར་བྱེད།
འདི་ནི་ཁྱོད་ཀྱི་གཏེར་ཞིང་འོངས། ནང་ཞུགས་ཉིད་ནི་ཕྱི་རོལ་སྤོང་། 80

རབ་མང་ནོར་ལྡན་གཏོང་ཕོད་ཅན། བྲལ་བས་ཡུན་རིང་མི་སྡོད་པ།
འདོད་བསྒྲིབས་འདོད་ལྡན་བཟོད་པ་ཅན། སྐལ་བ་བཟང་མོ་ག་ལ་ཐོབ། 81

ཅེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཡོན་དང་ཆགས་པའི་བར་དུ་ནི།
སྐད་ཅིག་འཕྱུང་མོ་ཡུག་པ་བཞིན། བཟང་མས་འཇུམ་བཅས་རབ་སྨྲས་པ། 82

གཞན་ལས་གླ་ནི་བླང་པ་དག། ལམ་སྣང་དག་གི་བུད་མེད་བཞིན།
དེ་དུས་ནོར་གཅེར་གཞན་ལ་ནི། ལག་བརྡེད་ཉིད་དུ་ཇི་ལྟར་འགྱུར། 83

སྐྱེ་གོ་ནོམས་བཞིན་ཐམས་ཅད་ཀྱི། དབང་དུ་གྱུར་ཀྱང་སྐད་ཅིག་ནི།
གང་གིས་སྦྱོན་ཉིད་འཕྲམས་པ་དེ། སྨད་འཚོང་བུད་མེད་ནོམས་ཀྱིས་བདག། 84

कलिततरुणरागा साङ्गरागा बभौ सा
तिमिरशबलसन्ध्येवोल्लसद्धूपधूमैः ।
मनसिजजयकीर्त्तिं मूर्त्तिमाद्यामिवेन्दो-
रलकतिलकलेखां लीलया सूचयन्ती ॥ ७८ ॥

ततः प्रविश्य त्वरिता दासी मकरिकाभिधा ।
तामूचे क्षणसंगार्थी बहिरास्ते युवा नवः ॥ ७९ ॥

कार्षापणानां तृणवद् वितीर्य्य शतपञ्चकम् ।
प्रविश्येव विनिर्याति सोऽयं ते निधिरागतः ॥ ८० ॥

प्रभूतद्रविणत्यागी व्यग्रत्वादचिरस्थितिः ।
छन्नकामः क्षमी कामी सुभगे लभ्यते कुतः ॥ ८१ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा भद्रा प्रोवाच सस्मिता ।
क्षणं दोलायमानेव मध्ये दाक्षिण्यलोभयोः ॥ ८२ ॥

कथं रथ्याङ्गनेवाहमन्यस्मादात्तवेतना ।
गच्छामि प्रार्थितान्यस्य तत्क्षणोत्तानपाणिताम् ॥ ८३ ॥

प्रपाणामिव सर्व्वस्य स्वाधीनानामपि क्षणम् ।
पूर्व्वसेवा कृता येन स स्वामी वेश्ययोषिताम् ॥ ८४ ॥

མཚན་མོ་གཅིག་པུ་འདི་ཉིད་ནི། པད་ཅན་ཉིས་ལ་ཅི་ཞིག་བརྗོད།
གཞན་གྱིས་སྔོ་དྲི་འོང་དུ་ཆུག། བདག་ཅག་དོག་དུ་གསར་པ་སྡོམ། 85

བཟང་མོས་འདི་བརྗོད་ཆུང་ངུ་དེས། མཆོག་ཏུ་སྨྲང་རྩེ་ལ་ཆགས་བཞིན།
གསར་པ་གསར་པའི་རོར་ཆགས་ཤིང་། གྲོས་པས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ། 86

གལ་ཏེ་འོང་བ་བདང་གྱུར་ན། སོང་བ་ཤང་པར་འོང་མི་འགྱུར།
སྨད་འཚོང་ཉམས་དང་ཚོང་པ་ལ། སྐལ་བས་ཉེ་བ་མང་བར་འགྱུར། 87

འདི་ནས་ཆུང་ཟད་འདི་ནས་དང་། ཆུང་ཟད་ཉིད་མཚན་དུ་གསོག་པ།
སྨད་འཚོང་ཉམས་ཀྱི་སྐྱེས་བུ་ཡིས། རྐེད་པའི་མི་དོག་འབྲུ་བ་བཞིན། 88

སྨད་འཚོང་མ་ལ་དོག་ཏུ་མཛའ། སློང་བ་ཉམས་ཀྱི་རིག་པ་བཞིན།
ཆོས་ཀྱི་སྨད་མིན་འདོད་སྨད་མིན། ནོར་ཉིད་སྨད་དུ་གྱུས་པར་བྱེད། 86

མང་དང་འགྲོགས་པས་སྨད་འཚོང་མ། མི་གཙང་བ་ཉིད་མི་འགྱུར་ཞིང་།
འདི་ཡི་བདུལ་ཞུགས་མི་ཉམས་དེ། སྨར་ལ་དོན་དུ་གཉེར་བྱར་འགྱུར། 90

གཞན་དག་ཕྱིར་འཕོན་གཞན་ན་འཇུག། གཞན་དག་ཕྱི་ནས་རབ་ལྟ་བའི།
སྨད་འཚོང་གང་དེ་མཛེས་པ་སྟེ། ས་ཡི་བདག་པོའི་མདུན་ས་བཞིན། 91

ཚོང་པ་དབུལ་པོའི་སྲང་བཞིན་དུ། སྟོང་པར་ཁྲིམ་ན་གང་འདུག་པ།
སྨད་འཚོང་ཉམས་ལ་འདི་ལས་ནི། ལྷག་པ་སྐལ་ངན་གཞན་པ་ཅི། 92

एकैवेयं मृणालेन क्रीता रात्रिः किमुच्यते।
परः प्रातः समायातु नवारम्भाः सदा वयम् ॥ ८५ ॥

इत्युक्ता भद्रया क्षुद्रा मधुलुब्धेव सा परम्।
सक्ता नवनवास्वादे कुपिता तामभाषत ॥ ८६ ॥

न गतः प्रातरागन्ता प्राप्तः संत्यज्यते यदि।
भाग्यैर्भवति वेश्यानां वणिजाञ्च बहुक्रयः ॥ ८७ ॥

इतः किञ्चिदितः किञ्चिच्चिन्वन्तीनां दिवानिशम्।
वेश्यानां पौरुषो लोभः कुसुमावचयोपमः ॥ ८८ ॥

न धर्म्माय न कामाय धनायैव प्रसाध्यते।
वेश्या याचकविद्येव बहुप्रणयिनी सदा ॥ ८९ ॥

नायात्यशुचितां वेश्या व्रतमस्या न लुप्यते।
भजते बहुसङ्गेन प्रत्युताभ्यर्थनीयताम् ॥ ९० ॥

निर्यान्त्यन्ये विशन्त्यन्ये प्रतीक्षन्ते बहिः परे।
यस्याः सा शोभते वेश्या सभा भूमिपतेरिव ॥ ९१ ॥

दौर्भाग्यं पण्यकामिन्याः किमन्यन्नास्त्यतोऽधिकम्।
तुलेव क्षीणा वणिजः शून्याः सीदन्ति यद्गृहे ॥ ९२ ॥

སྐལ་ངན་གྱིས་ནི་འཛིན་བྱེད་མེད། འཕྲོན་མ་སྟོང་པར་ཉལ་བ་ནི།
སྤུ་དྲོ་འདོད་ལྡན་ནོམས་ཀྱི་སྐྲ། རྫོན་གྱི་འཁྲུག་པར་གྲུབ་བར་བྱེད། 93

འཕྲུལ་ལ་ཉེ་བ་ཡོངས་བཏང་ནས། རིང་ན་གནས་ལ་བསྐྲུགས་པ་ན།
རྫོང་འཁྲིམས་ས་ཧུ་སྐད་འཚོང་མ། འཕྲེང་བ་བཞིན་དུ་སྒྱུར་དུ་བསླམ། 94

འདི་ནི་དགེ་མཚན་ཅམ་དོན་གཉེར། བྱ་བས་བྲེལ་ཞིང་མང་དུ་སྨྲེར།
ནང་ཞུགས་ཉིད་ན་ཕྱི་རོལ་འགྲོ། ཅི་ཉམས་ནོར་ནི་བླང་བར་མཛོད། 95

ཕན་པ་འདི་ཕྲོས་བཟང་མོ་དེས། དེ་བཞིན་ཞེས་དེ་ཁ་ཡིས་བླང་།
སྐད་འཚོང་རང་བཞིན་ཆགས་པ་སྟེ། རིག་པ་སྐྱེ་བོ་ཆགས་བྱེད་ཉིད། 96

སྐད་ཅིག་ཉིད་ནི་རེར་བཟོད་མཛོད། བདག་གིས་ཆས་དང་གྱོན་ས་ཚར།
ཞེས་པའི་འཕྲིན་ནི་སྐྱེལ་བ་ལ། པད་ཅོ་ལ་ནི་གཡོག་མོ་བཏང་། 97

འདོད་ལྡན་མཛེས་པ་ཞེས་བྱ་བ། མང་པོ་སྨྲིན་པས་སྐད་ཅིག་ནི།
གླང་པོས་པདྨ་ཅན་བཞིན་དེ། སྨྲད་པས་འཁྲུགས་པ་ཉིད་གྱུར་ཏོ། 98

དེ་ནས་དེ་ནི་སོང་བ་དང་། མཚོ་ནི་སོས་བཅད་ལྷག་མ་དང་།
དེ་ཡིས་བརྩེ་མེད་འབྱུང་པ་ཡིས། སྐད་ཅིག་གིས་ནི་སྙིང་ཉིད་ཐོབ། 99

སྤུར་ཡང་གྱེན་ནི་རབ་བརྫུང་ན། པདྨའི་ཅོ་ལ་སྨྲུར་བར་ནི།
བྱོན་ཞེས་སྨྲང་བ་སྨྲས་པ་ཡིས། གྲོགས་མོ་དེ་ནི་ཉམས་པར་སྨྲངས། 100

अभाग्यैर्ग्राहकाभावे गणिका शून्यशायिनी ।
मिथ्या वर्णयति प्रातः कामुकैर्द्वारभञ्जनम् ॥ ९३ ॥

सद्यःक्रयपरित्यागा दूरवर्त्तिप्रतीक्षया ।
माला इवाशु शुष्यन्ति वेश्याः पण्यप्रसारके[१] ॥ ९४ ॥

एष कौतुकमाचार्यो कार्य्यव्यग्रो बहुप्रदः ।
प्रविश्यैव विनिर्याति का क्षतिर्गृह्यतां धनम् ॥ ९५ ॥

श्रुत्वैतत् स्वहितं भद्रा तथेति प्रत्यपद्यत ।
लोभः स्वभावो वेश्यानामौचित्यं जनरञ्जनम् ॥ ९६ ॥

क्षम्यतां क्षणमद्यैव नाहं सज्जप्रसाधना ।
[विससर्ज मृणालाय दासीं सन्देशवादिनीम् ॥ ९७ ॥

क्षणं सुन्दरकाख्येन बहुदानेन कामिना ।
सा पद्मिनी गजेनेव भुक्ता व्यालोलतां ययौ ॥ ९८ ॥

ततस्तस्मिन् गते दन्तच्छेदोच्छिष्टरदच्छदा ।
निर्दयालिङ्गनैस्तेन नीता निर्म्माल्यतां क्षणात्[२]] ॥ ९९ ॥

विससर्ज्ज मृणालाय पुनरात्तप्रसाधना ।
सा सखीं गूढविद्वेषां तूर्णमागम्यतामिति ॥ १०० ॥

---

१ $\frac{W}{1}$ वेश्यापण्यः प्रसारके ।
२ $\frac{W}{1}$ and $\frac{W}{2}$ omit the portion bracketted.

དེ་ཡིས་སྨྲས་བའི་ཕྲ་མ་ལས། དེ་ཡི་སྤྱོད་ཚུལ་པད་ཅན་ཞེས།
འདི་ཉིད་དུ་ནི་བཟང་མོ་དག། ཤོག་ཅེས་ཁྲོ་བ་སྤྲས་པས་སྨྲས། 101

དེ་ནས་འཕྲིན་གྲོས་དྲི་བཟང་གིས། ཀང་དྲུག་པ་ནི་འགྲུགས་མ་དེས།
པད་ཅན་བསྟེན་པའི་སྐྱིད་མོས་ཚལ། ཀང་འཕྲུང་མི་དོག་གྱིས་པར་སོང་། 102

དེ་ནི་འོང་བ་མགྲོང་གྱུར་ནས། ཆགས་སྡང་དུག་ནི་མི་བཟད་པ།
འཁོར་བ་ཉམ་པ་དང་བཅས་བཞིན། དེ་ནི་ཉམ་འགྱུར་ལྡན་པར་གྱུར། 103

དེ་ཡི་བསམ་པ་གཡོ་བ་ཡིས། བདག་དོན་གཉེར་བར་བདགས་པ་ཡི།
ཀྱུན་ཉམས་ཆགས་ལས་བཞིན་དང་ནི། ཉེ་བར་སྤྱོད་པས་ཉམས་པར་བྱས། 104

སྐྱེ་མ་རང་སྤྱོད་ཀྱ་གྲུའི་ཚོགས་པ་བཞིན་དུ་ནུ་མའི་ངོས་དག་ལ།
སེན་མོ་འཁྲུག་པོར་རབ་བདབ་ཉམས་ཀྱིས་རི་མོ་གསར་པ་འཛིན་བྱེད་ཅིང་།
མཆུ་འདབ་མཛེས་པ་གཡོན་ཅན་ལྷག་མས་ཉམས་ཞིང་བཞིན་ན་ཟད་གྱུར་པ།
ལག་འགྲོ་མ་འདིས་བདག་གི་ཡན་ལག་ཀུན་ལ་མི་བཟད་དུག་ཉམས་སྦྲོ། 105

སྐད་ཅིག་དེ་བསམས་ཚེ་བར་རབ་ཁྲོས་པའི།
མི་ཡིས་རབ་བསྐྱེད་དུ་བའི་ཉམ་འཕྲུལ་ནི།
སྨིན་མའི་ཉམ་འགྱུར་དུས་ཀྱི་བཞིན་ལྡན་དེས།
སྐྱག་བཀྱིས་པ་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ། 106

ज्ञात्वा मृणालस्तद्वृत्तं पैशुन्यात् कथितं तया ।
इहैवायातु भद्रेति गूढ़कोपः समभ्यधात् ॥ १०१ ॥

ततः सा प्राप्तसन्देशा सौरभाकृष्टषट्पदा ।
मृणालजुष्टमुद्यानं प्रययौ फुल्लपादपम् ॥ १०२ ॥

तां दृष्ट्वैव समायातां रागद्वेषविषोत्कटः ।
संसार इव साकारः सविकारो बभूव सः ॥ १०३ ॥

सोऽचिन्तयच्चपलया मदर्थमुपकल्पितम् ।
कृतमन्योपभोगेन लोभलुप्तं प्रसाधनम् ॥ १०४ ॥

नखोल्लेखैर्वक्रैः कुटिलचरितं हन्त लिखितम्
वहन्ती प्रत्यग्रं निजमिव समग्रं स्तनतटे ।
विटोच्छिष्टक्लिष्टाधरदलरुचिः क्षामवदना
भुजङ्गी सर्व्वाङ्गं विषमविषमेषा दिशति[1] मे ॥ १०५ ॥

क्षणं विचिन्त्येति पृथुप्रकोपः
कृशानुधूमोद्गमविभ्रमेण ।
भ्रुवोर्विकारेण स कालवक्त्रः
प्रोवाच तां साध्वससन्निरुद्धाम् ॥ १०६ ॥

---

१ H दशति । $\frac{W}{8}$ gives two readings दशति and दिशति ।

མང་དང་སྐད་ཅིག་ལ་འགྲོགས་སྐད་འཚོང་གང་།
དེ་ནི་དང་པོ་གཞན་ནོར་ཅི་ཡ་འཛིན།
བདག་དོན་ཉིད་དུ་བྱས་པའི་ཆས་འདི་དག།
ཁྱོད་ཀྱིས་རྩོལ་གྱི་ཐིགས་པའི་ལྷག་མར་བྱས། 107

ཞེས་སྨྲས་གཟུགས་བཟང་མོ་ཡི་འོག་པག་ནི།
གཡོ་ཞིང་བསྐྱོད་པའི་གསལ་བའི་སྒྲ་དག་གིས།
དྲིན་མཛོད་བྱ་མོ་གཞོན་ནུ་གསང་པའི་འོས།
སྤུངས་ཞེས་དམན་པས་སྨྱོང་བར་བྱེད་པ་བཞིན། 108

བྱུང་བའི་འཕྲེང་བ་སྒྲ་སྒྲོག་གཏིབས་པ་ཡི།
འཁྲི་ཤིང་ཚོམས་ཀྱང་བཞིན་ནི་རབ་བདུད་པས།
ལྷག་པའི་ཡལ་འདབ་ཀུན་དུ་གཡོབ་བྱེད་ཅིད།
བརྩེ་བས་རིང་ནས་ཀློག་པར་བྱེད་པ་བཞིན། 109

འཛིགས་རྩང་བསྟུན་པའི་སྤྱག་བཞིན་བརྩེ་མེད་དེས།
ཡན་ལག་འཁྲི་ཤིང་སྨྲག་ཉམས་རི་དགས་ནི།
གཡོ་ཡང་མིག་ཅན་བསད་ནས་མགྲོགས་པ་ཡིས།
གདུམ་པོ་མཆོད་ཆ་ཁྲག་སྨྲགས་རབ་དུ་སོང་། 110

क्षणेन वेश्या बहुसङ्गता या[1]
गृह्णाति सा किं परवित्तमादौ।
मदर्थमेवाहित एष वेशः
कृतस्त्वया स्वेदकणावशेषः ॥ १०७ ॥

इति ब्रुवाणः सुतनोः प्रकम्प-
विलोलकाञ्च्यास्तरलस्वनेन।
प्रसीद बालामबलामवध्यां
रक्षेति दैन्यादिव याच्यमानः ॥ १०८ ॥

लताभिरप्याकुलभृङ्गमाला-
विराविणीभिर्दययेव दूरात्।
निवार्यमाणः प्रणताननाभिः
समन्ततः पल्लवपाणिकम्पैः ॥ १०९ ॥

घोराकृतिर्व्याघ्र इवाघृणोऽसौ
पाशावसन्नाङ्गलतां कुरङ्गीम्।
हत्वा नृशंसस्तरलायताक्षीं
रक्ताक्तशस्त्रः प्रययौ जवेन ॥ ११० ॥

---

१ H, W_1 and W_2 read क्षणेन यस्या बहुसङ्गतायाः।

གང་ཞིག་ཁྲོ་བའི་ལོང་བས་མིག་བཀག་པ།
དེ་དག་ཉམས་ལ་བྱ་མིན་ཅི་ཞིག་ཡོད།
རྟག་ཏུ་ཡིད་ནི་བརྩེ་བས་དབུལ་བ་ཡིས།
སྤྱོད་ཚུལ་བརྩེ་མེད་འཇིགས་རུང་ཉམས་ལ་ཡང་། 111

དབེན་པར་བཟང་མོ་སྡིག་ཅན་གྱིས་བསད་ཅེས།
དེ་ནས་རིང་ནི་འབངས་མོས་སྨྲ་བསྒྲགས་ཤིང་།
སྐྱེ་བོ་འདུས་ཚེ་ཉི་ཚེ་སངས་རྒྱས་ཀྱི།
ནགས་མཐར་དེ་ནི་རང་དགའ་དག་ཏུ་ཞུགས། 112

དེ་མདུན་ཁྲག་གིས་སྦགས་པའི་མཚོན་བཞག་ནས།
སྐྱེ་བོའི་ཚོགས་ཀྱི་ནང་དུ་དེ་སྒྲོས་ཚེ།
རྟག་འཛིན་གྲོང་པས་སྡིག་པ་མེད་མོད་ཀྱང་།
རང་སངས་རྒྱས་ནི་འཕྲལ་ལ་གཟུང་བར་འགྱུར། 113

མ་རུངས་གནོད་བྱེད་ལ་འོས་གསོད་པའི་སར།
དེ་ནས་རྒྱལ་པོའི་བཀའ་ཡིས་དེ་ཁྲིར་ཚེ།
པདྨའི་ཙ་ལག་འཕྲལ་ལ་འགྲོད་པ་སྐྱེས།
སྡིག་པ་འདི་ནི་བདག་གིས་བྱས་ཞེས་སྨྲས། 114

तेषामकार्यं किमिवास्ति येषां
क्रोधान्धरुद्धानि[1] विलोचनानि।
दयादरिद्राणि मनांसि नित्यं
नैर्घृण्यघोराणि च चेष्टितानि ॥ १११ ॥

पापेन भद्रा विजने हतेति
कोलाहले तत्र कृतेऽथ दास्या।
जनाभिसारे सुरुचेर्विवेश
प्रत्येकबुद्धस्य स काननान्तम् ॥ ११२ ॥

धृत्वा तदग्रे रुधिरार्द्रशस्त्रं
तस्मिन् प्रविष्टे जनतान्तरालम्।
पौरैरपापोऽपि गृहीतचिह्नैः
प्रत्येकबुद्धः सहसा गृहीतः ॥ ११३ ॥

नीतेऽथ तस्मिन् नृपशासनेन
क्रूरापराधोचितवध्यभूमिम्।
जातानुतापः प्रसभं शृगालः
पापं मयैतत् कृतमित्युवाच ॥ ११४ ॥

---

१ W I क्रुधान्धरूढानि।

དེ་ནས་དེ་ཡི་ཚོག་གིས་རང་མངས་གྱིས།
དཔྱོད་ནས་རྒྱལ་པོས་ཕྱུག་འཚལ་བདང་བའི་ཚེ།
ངན་བྲེད་ལ་རོས་བཟོད་པ་དཀའ་བའི་བཀའ།
ཉམས་སྨོང་འདི་ནི་པདྨའི་ཚ་བས་ཐོབ། 115

དེ་ང་དྲག་པོའི་སྡིག་དེས་སྐྱེ་བ་མང་།
འབུམ་གྱིས་དམྱལ་བའི་ནང་དུ་ཡོངས་སྤྱད་ནས།
དེ་ཡི་ལས་འབྲས་ལྷག་མ་ད་ལྟ་ཡང་།
མུ་སྟེགས་བུ་མོའི་ཧྲོན་གྱིས་མངོན་པར་སྤྱར། 116

གྲོང་ཁྱེར་གཉེན་ལྡན་དག་ན་སྡོད། བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་ནོས་པར་གཟིགས།
གྲོང་པའི་ཡོངས་སྤྱོད་ཀྱིས་མཆོད་ཅིང་། དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་བསྐོར་ཏེ་གནས། 117

བྲམ་ཟེ་མ་ཟུར་ཞེས་པ། མཆོད་དང་ལྡན་པ་དེ་མཐོང་ནས།
གྲོང་པ་ལ་སྨྲས་དགེ་སློང་ནི། མགོ་རེག་ཡོངས་སྤྱོད་འོས་པ་མིན། 118

ཀོ་ཊ་ར་ཡི་ནས་རྒྱལ་གྱིས། འདི་དག་གི་ནི་ཁ་ཟས་བསྐྱབས།
མགོ་རེག་སྐྱུར་བག་ལྡན་པའི་ཁ། མཆོག་གི་ཁ་ཟས་འོས་པ་མིན། 119

བྲམ་ཟེ་དེ་དག་ཚོགས་དེ་ལས། སྐྱེ་བ་མང་པོར་དེ་ཡི་སྡིག
སྤྱད་ཅིང་ད་ལྟ་ལས་ལྷག་གིས། ཀོ་ཊ་ར་ཡི་ནས་ཀྱི་ཟས། 120

मुक्तो ततस्तद्वचसा विचार्य्य
प्रत्येकबुद्धे प्रणिपत्य राज्ञा।
रसज्ञतां दुःसहशासनस्य
नीतो मृणालः कृतकोचितस्य ॥ ११५ ॥

अहं स पापं बहुजन्मलक्षै-
र्भुक्त्वा तदुग्रं नरकान्तरेषु।
अद्यापि तत्कर्म्मफलावशेषात्
मिथ्यैव[१] तीर्थाङ्गनयाभियुक्तः ॥ ११६ ॥

बन्धुमत्यां पुरि पुरा विपश्यी[२] भगवान् जिनः।
भोगैरभ्यर्चितः पौरैस्तस्थौ भिक्षुगणैर्वृतः ॥ ११७ ॥

पूज्यमानं तमालोक्य ब्राह्मणो मठराभिधः।
उवाच पौरान् विशिखा भोगयोग्या न भिक्षवः ॥ ११८ ॥

पुराणैः कोद्रवयवै[३]र्भोज्यमेषां विधीयताम्।
न मुण्डकानां विकटं दिव्याहारार्हमाननम् ॥ ११९ ॥

इति वाक्यात् स विप्रोऽहं तत्पापं बहुजन्मसु।
भुक्त्वाद्य कोद्रवयवाहारः शेषेण[४] कर्म्मणः ॥ १२० ॥

---

१ $\frac{W}{1}$ and $\frac{W}{2}$ मिथ्येव। २ $\frac{W}{1}$ विपस्री।
३ $\frac{W}{2}$ read कोटरयवैः and notes at the margin—कोद्रवयवैः।
४ $\frac{W}{1}$ कोद्रवयवाहारेण कर्म्मणः।

གང་ཚེ་བདག་སྔོན་བྲམ་ཟེ་ཡི། ཁྲིའུ་ཨུད་ད་ར་ཞེས་གྱུར།
དེའི་ཚེ་བདག་གི་རིགས་མཆོག་ལ། སྨད་པ་ཡིས་ནི་མི་དགེ་ཐོབ། 121

ལས་དེ་ད་ལྟ་ལོ་དྲུག་ཏུ། དཀའ་བ་སྤྱད་པ་བདག་གིས་བསྒྲུབས།
དེ་ལས་ལྷག་པ་བྱང་ཆུབ་ཀྱིས། བསྒྲུངས་པ་ཡིས་ནི་ཐོབ་མ་གྱུར། 122

ཁྱིམ་བདག་ནོར་ལྡན་ཞེས་བྱ་བ། ཀར་པ་ཊར་ནི་སྔོན་བྱུང་སྟེ།
དཔལ་ལྡན་ཞེས་བྱ་དེ་ཡི་བུ། ལུས་ནི་ནོལ་གནས་མིན་པར་གྱུར། 123

དེ་ནི་སྨན་པ་ཁ་བའི་བཞིན། ཞེས་པ་ནོར་མང་རེ་བ་ཡིས།
ནོལ་གནས་བྱས་ཀྱང་དེ་ཡི་ཕས། དེ་ལ་ཅི་ཡང་བྱིན་མ་གྱུར། 124

དུས་ཀྱིས་གཟིར་བ་ཉིད་གྱུར་དེ། ཡང་ཡང་དེ་ཡིས་བོས་པར་བྱས།
དེ་ཡིས་པ་ལས་ཙུང་ཟད་ཀྱང་། ཁས་བླངས་སྨྲས་པ་ཐོབ་མ་གྱུར། 125

སྨན་པ་ཁྲོ་བའི་རིམས་ཀྱིས་གདུངས། སྲིད་པས་གཡོ་བའི་ཤུགས་རིངས་ཅན།
ནད་པ་ཡིས་ཀྱང་འགོངས་པ་དེས། སྡུག་བསྔལ་ལས་ནི་རབ་བསམས་པ། 126

ཀྱི་མ་བསམས་པ་དྲང་པོ་དག། གཡོ་དང་ལྡན་པ་བདག་གིས་བསླུས།
བདག་གི་ལག་ནས་ནད་པ་ཡིས། གཏེར་འདས་ད་ནི་ཅི་ཞིག་བྱ། 127

ཚ་བའི་སྨན་བཞིན་སྨན་པ་ནི། ནད་པ་ཚམས་ཀྱིས་སྟོན་དུ་བཀུར།
གདུང་བ་བསོས་པར་གྱུར་པའི་ཕྱིར། དྲན་ཡང་ཁ་ནི་སྨྲུགས་འབྱིན་བྱེད། 128

यदाहमभवं पूर्व्वमुत्तरो नाम मानवः।
पुङ्गलस्यापवादेन मयात्तमशुभं तदा ॥ १२१ ॥

षड्वर्षाण्यधुना तेन कर्म्मणा दुष्करक्रिया[1]।
चरितं न क्षणाद्बोधेर्न प्राप्तं त्वधिकं ततः ॥ १२२ ॥

पुराभवद्गृहपतिर्धनवान्नाम कर्वटे[2]।
श्रीमान्नाम सुतस्तस्य बभूवास्वस्थविग्रहः ॥ १२३ ॥

वैद्यस्तिक्तमुखो[3] नाम तं बहुद्रविणाशया।
स्वास्थ्यं निनाय तत्पिचा दत्तं चास्मै न किञ्चन ॥ १२४ ॥

कालेनातुरतां यातः स्वास्थ्यं तेन पुनः पुनः।
स नीतस्तत्पितुः किञ्चित् प्राप्तं न त्वार्त्तिभाषितम्[4] ॥ १२५ ॥

अमर्षज्वरसन्तप्तस्तृष्णातरलितः श्वसन्।
सोऽचिन्तयद्विषद्दुःखादातुरेणापि लङ्घितः ॥ १२६ ॥

अहोवताहं धूर्त्तेन वाञ्छितः शरणाश्रयः।
किं करोम्यधुना हस्ताक्रान्तो मे निधिरातुरः ॥ १२७ ॥

कटुकौषधवद्वैद्यः पूर्व्वमार्त्तस्य सम्मतः।
चिकित्सितातुरः पश्चात् स्मृतोऽपि मुखकूणनम् ॥ १२८ ॥

---

१ H मया। २ W1 कर्पटे। ३ W1 विमस्तिक्तमुखः।
४ Orig मद्यार्त्तिभाषितम्। H मतक्ति भाषिता।

ཧོར་གྲུབ་ལ་ནི་ནོར་ལྡན་དང་། སྒྲོལ་བྱེད་དག་ལ་གྲུ་པ་བཞིན།
མ་ལུས་ནད་ལས་གྲོལ་གྱུར་པ། སུ་ལ་སྨན་པ་ཉེ་བར་མགོ། 129

མཆོད་དང་ཞབས་ལ་གཏུགས་བྱས་ནས། ནད་པས་སྨན་པ་རབ་བསྟེན་ཏེ།
ཕྱི་ནས་མིང་ནི་བསྒྲགས་པ་ན། བསོས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཕུད་ཀྱིས་འདེབས། 130

རྫོན་པ་གྲོལ་པོ་སྨན་པ་ཡིས། འཆིང་ལས་རི་དགས་ཆོས་ཀུན་དང་།
ནད་བསོས་སོང་བ་བསོད་ནམས་ཀྱིས། ཕྱི་ནས་སྦྱོར་ཡུལ་དག་ཏུ་ལྷུང་། 131

དེ་ལྟར་རབ་ཏུ་སེམས་བྱེད་ཅིང་། དེ་ནི་དྲག་ཏུ་ཡོངས་སུ་གདུངས།
སྨན་པ་བཞིན་དུ་ཁྲི་ལྡན་ན། སླར་ཡང་དེ་ཡིས་ཐོབ་པར་གྱུར། 132

དེ་ནས་ཁྲི་བ་བསྒྲིབས་པ་ཡི། སྨན་པས་འགལ་བའི་སྦྱོར་བ་ལས།
རྒྱུ་མ་འཆད་པར་བྱེད་བའི་སྨན། འཕྲལ་ལ་ཉམས་བྱེད་དེ་ལ་བྱིན། 133

དེས་བྱིན་གཏོད་པ་འཐུངས་པ་ལས། དེ་ཡི་རྒྱུ་མ་དུམ་བུ་གྱུར།
སྡིག་པའི་གཡང་ལ་ལྷུང་བ་ཡི། ཆགས་པས་ལོང་ཉམས་ཅི་མི་བྱེད། 134

སྨན་པ་ང་ཉིད་དེ་ཡི་སྡིག ། སྐྱེ་བ་ཁྲི་ཕྲག་བགྱུར་སྤྱོད་ནས།
ལས་ཀྱི་ལྷག་མས་ད་ལྟ་ཡང་། རབ་གཞོན་ནད་ཀྱི་ཆ་ཤས་བསྟེན། 135

ཉ་ཡིས་འཚོ་བ་རྣམས་ཀྱིས་སྡོན། ཉ་ནི་ལུས་ཆེན་གཉིས་དག་བཟུང་།
ལུས་ནི་གཅོད་པ་མཐོང་གྱུར་ནས། ཉ་པའི་བུ་ཡིས་དགའ་བར་བྱས། 136

सिद्धार्थस्येव धनवान् उत्तीर्णस्येव नाविकः।
निःशेषव्याधिमुक्तस्य वैद्यः कस्योपयुज्यते ॥ १२९ ॥

सपादपतनैर्मानैरार्त्तैराराध्यते[1] परम्।
पश्चात्स कीर्त्तिते नाम्नि स्वस्थैः फुत्क्रियते भिषक् ॥ १३० ॥

बन्धाल्लुब्धस्य हरिणश्चौरो राज्ञश्च निर्गतः।
पुण्यैः स्वस्थश्च वैद्यस्य पुनः पतति गोचरे ॥ १३१ ॥

इति चिन्तयतस्तस्य सततं परिशुष्यतः।
स वैद्यमिव साकोपं पुनर्व्याधिमवाप्तवान् ॥ १३२ ॥

प्रच्छन्नमन्युस्तस्याथ वैद्यः सद्यो विनाशनम्।
ददौ विरुद्धसंयोगादन्त्रशातनमौषधम् ॥ १३३ ॥

तस्यान्त्राणि व्यशीर्य्यन्त तद्वृत्तापथ्यपायिनः[2]।
किं न कुर्व्वन्ति लोभान्धाः पातकश्वभ्रपातिनः ॥ १३४ ॥

वैद्योऽहमेव तत्पापं भुक्त्वा जन्मशतायुतैः।
अद्यापि कर्म्मशेषेण प्रस्कन्दिव्याधिलेशवान् ॥ १३५ ॥

पुरा मत्स्यौ महाकायावाकृष्टौ मत्स्यजीविभिः।
जहर्ष छिद्यमानाङ्गौ दृष्ट्वा कैवर्त्तदारकः ॥ १३६ ॥

१ W 1 आतुरैराराध्यते। २ W 1 तवृत्ताापथ्यपायिनः।

དེ་བདག་དེ་ལ་ཡོངས་ཚིམ་ཐོབ། སྡིག་པ་སྐྱེ་བ་གཞན་སྤྱད་ནས།
ཤཱ་ཀྱ་ཉམས་པ་དེ་ཡིས་ཚེ། སྐད་ཅིག་མགོ་ལ་ནད་ཀྱིས་རེག། 137

སྟོན་ཚེ་ལྟོངས་ཀྱི་གྲང་གྱུར་ཏེ། མཛའ་པོ་སྟོབས་ཞེས་བྱ་བའི་གྲང་།
གཡུལ་གྱི་ཐོལ་གྲིས་ག་ཤགས་བྱས་ཏེ། དེ་ཡི་གྲིབ་ནི་རྣམ་གཉིས་བྱས། 108

དེ་ང་དེ་ཡི་སྡིག་ཆེན་ནི། སྐྱེ་བ་མང་པོར་སྤྱད་བྱས་ནས།
རླུང་གི་ནད་ཀྱིས་ད་ལྟ་ཡང་། གྲིབ་ཏུ་སྐད་ཅིག་གནས་པར་བྱས། 149

དེ་ལྟར་བྱང་ཆུབ་རྫོགས་སངས་རྒྱས། ངེས་བསྟན་བདག་གི་ལུས་ལ་ཡང་།
ཉོན་མོངས་ཐིགས་པ་ལས་འདས་ཀྱི། ལྷག་མའི་ཆ་ཤས་ངེས་པར་སྣང་། 140

སྐྱེ་བར་སྤྲོ་དང་འཆི་བའི་ཚེ་ཡང་སྐྱེས་བུ་ལུས་རྣམས་ལ།
བཀྲ་འདི་ལས་ཀྱི་ལམ་ནི་འབྲེང་བ་བཞིན་དུ་རྣམ་བདགས་པ།
རབ་ཏུ་ཆགས་པ་འདི་ནི་བདེ་དང་སྡུག་བསྔལ་མཚམས་དག་ལ།
སྤྱད་ཅིང་བདང་བར་གྱུར་ཀྱང་ལྷག་མའི་ལྷག་མ་རྣམ་པར་འཛིན། 141

དེ་སྐད་བཅོམ་ལྡན་གྱིས་བཤད་པ། དགེ་སློང་ཀུན་གྱིས་ཐོས་གྱུར་ནས།
ལས་ཀྱི་འཆིང་བ་རྣམས་དག་ནི། འདའ་བར་བྱ་མིན་ཉིད་དུ་ངེས། 142

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ལས་བཅུ་སྐྱུར་པའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་པའོ།།

सोऽहं तत्परितोषार्त्तं पापं भुक्त्वान्यजन्मसु ।
तस्मिन्विनाशे शाक्यानां स्मृत्वा स्पृष्टः शिरोरुजा ॥ १३७ ॥

पुरा जानपदो मल्लः प्रीतिमल्लं बलाभिधम् ।
निपात्य युद्धे व्याजेन पृष्ठमस्य द्विधाकरोत् ॥ १३८ ॥

सोऽहं तत्पातकं भुक्त्वा विपुलं बहुजन्मसु ।
अद्यापि वातशूलेन पृष्ठे क्षतपदः क्षणम्[1] ॥ १३९ ॥

इति संबुद्धबोधेर्मे निर्दोषस्यापि[2] विग्रहे ।
कर्म्मपङ्कावशेषाङ्का निपेतुः क्लेशविप्रुषः[3] ॥ १४० ॥

जन्मोत्सवेषु निधनेषु च संनिबद्धा
मालेव कर्म्मशरणिः शवला शरीरे ।
पुंसामियं प्रणयिनी सुखदुःखसीम्नि
भुक्तोज्झितापि विदधात्यधिवासशेषम्[4] ॥ १४१ ॥

इति श्रुत्वा भगवता कथितं सर्व्वभिक्षवः ।
मेनिरे कर्म्मवृत्तानामनतिक्रमणीयताम् ॥ १४२ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां दशकर्म्मप्लुत्यवदानम् नाम पञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

---

१ H पृष्ठे क्षतपदच्युतम् । Orig. पृष्ठक्षतपदच्युताम् ।
२ $\overset{W}{1}$ अनिन्दितस्यापि । ३ Orig. क्लेशविप्रुषः ।
४ Orig. विधात्यवस्थानशेषम् ।

CHAPTER LI.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་གཅིག་པ།

གསེར་ལྡན་མའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

གདུང་སྐྱོབས་སྒྲོ་ཡི་བརྩེ་བས་མཉེས་ག་ཞིན་ནོམས་ཀྱི་སྒྲོག་ནི་འགྲོ་བར་སྒྲོ་བའི་ཚོ།
སྤྱི་ལོང་གྲུན་གྱིས་རོལ་པ་བསྒྲེན་ཅིང་ཞིན་དུ་རྣོ་བའི་མཚོན་གྱིས་བཅད་པ་ནི།
གང་གི་ལུས་ལ་གཡོ་བའི་མིག་ཅན་ནོ་བའི་ཨུད་པལ་གྱིས་བསྣུན་མཚུངས་པ་ཐོབ།
དེ་དག་སྤྱོད་པ་རྒྱ་ཆེ་བརྗོད་བྱར་འོས་པའི་ཚོགས་ནི་གང་གིས་བརྗོད་པར་བྱ། 1

སྔོན་ནི་གསང་བའི་ཀི་བར་དུ། དར་ད་བདུལ་བཙོམ་ལྡན་འདས།
ཡུལ་དེ་ནས་ནི་མི་སྣང་བར། དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་གཞན་དུ་གཤེགས། 2

དེ་ཡི་གཡོག་ལ་འོངས་པའི་ལྷ། བདེ་སོགས་བདག་པོ་དག་གིས་དེར།
བཞིན་ལ་འཛུམ་པའི་ཟླ་བ་དག། ཤར་བ་མཐོང་ནས་ཀྱུ་མཚན་དྲིས། 3

དེ་ཡིས་མཛའ་དང་དགེ་མཚན་སྨྲད། འཛུམ་པའི་རྒྱུ་མཚན་ཡང་དག་དྲིས།*
དེ་ལ་བཀའ་སྩལ་ནགས་ཀྱི་མཐའ། འདིར་ནི་བདག་གི་སྔོན་བྱུང་དྲན། 4

* Neither the text nor the translation of the first line of the fourth *S'loka* exists in the xylograph. I have made the metrical translation.

एकपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

रुक्मवत्यवदानम् ।

आर्त्तत्राणधियां दयाप्रणयिनां प्राणप्रवाहोत्सवे
शस्त्रैस्तीक्ष्णतरैः क्षतानि पुलकालङ्कारलीलाजुषाम् ।
लोलाक्षीश्रवणोत्पलाहतितुलां येषां लभन्ते तनौ
तेषां कैर्वचनैरुदारचरितं वाल्योचितैरुच्यते ॥ १ ॥

गुह्यकैवर्त्तदरदौ[1] विनीय भगवान् पुरा ।
देशादन्तर्हितस्तस्माज्जगामान्यत्तपोवनम् ॥ २ ॥

तत्र सेवासमायातस्तस्य देवः शचीपतिः ।
स्मितचन्द्रोदयं वक्त्रे दृष्ट्वा पप्रच्छ कारणम् ॥ ३ ॥

कौतुकप्रणयात्तेन संपृष्टः स्मितकारणम्[2] ।
तमुवाच वनान्तेऽस्मिन् पूर्व्ववृत्तं स्मृतं मया ॥ ४ ॥

---

१ W/I गुह्यकौ वर्त्तंदरदौ ।
२ Orig. omits this line. H यत्पृष्टं स्मितकारणम् ।
W/I य एष स्मितकारणम् ।

དྲན་པ་ཉམས་སུ་སྐྱོང་བ་ལས། །བདག་འཇུམ་འདི་ནི་གྱུ་མེད་མིན།
ཞེས་པ་བརྗོད་ནས་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། །སྔོན་བྱུང་གསུང་བར་རྩོམ་པ་མཛད། 5

གྲོད་ཁྱེར་ཨུ་དྲྱ་ལ་ལྡན་པར་ནི། །གྲོང་ཁྱེར་གཙོ་བོའི་བུད་མེད་དག
སྦྱིན་དང་ཚུལ་ཁྲིམས་བརྩེ་བ་ཅན། །གསེར་ལྡན་མ་ཞེས་གྲགས་པ་བྱུང་། 6

ནམ་ཞིག་དེ་ཡི་དབུལ་པོ་ཡིས། །བུད་མེད་བཙས་ཤིང་ལྟོགས་པས་གཟིར།
སྲིན་མོ་བཞིན་དུ་བུ་ཚ་དག །ཟ་བར་འདོད་པ་མཐོང་བར་གྱུར། 7

དེ་མཐོང་སྙིང་རྗེ་སྐྱེས་གྱུར་པ། །དེ་ཡིས་སྐད་ཅིག་ཡང་དག་བསམས།
ཀྱི་མ་རང་ལུས་ལ་ཆགས་པས། །སྐྱེ་ནི་སྡིག་ལ་རབ་ཏུ་འཇུག 8

འདི་ཡི་ཟས་ནི་ཤེན་དུ་བདག །གལ་ཏེ་རང་གིས་ཁྱིམ་སོང་ན།
བཀྲེས་པས་ཡོངས་སུ་ཉེན་པ་འདིས། །བུ་ནི་ངེས་པར་ཟ་བར་འགྱུར། 9

ཡང་ན་བདག་གིས་བུ་ཁྱེར་ནས། །གལ་ཏེ་ཁྱིམ་དུ་ཕྱིན་པ་ན།
འདི་ནི་བཀྲེས་པ་ཉིད་གྱུར་ཏེ། །འཕྲལ་ལ་འཚོ་བ་གཏོང་བར་འགྱུར། 10

དེ་ལྟར་གཉིས་ཀ་ཡི་ཆོས་དང་། །ལྡན་པ་དེ་ལ་བརྩེ་བས་བསམས།
འགྲོ་བ་བསྐྱལ་བའི་སྐད་ཉིད་དུ། །དེ་ཡིས་སྨོན་ལམ་བཏབ་བྱས་ཏེ། 11

དེ་ཡིས་གཏང་བའི་མཚོན་རྣོན་གྱིས། །གཡོ་བ་མེད་པར་བཅད་ནས་ནི།
དེ་ལ་རང་གི་ནུ་མ་ཟུང་། །འཚོ་བ་ཡིས་ནི་ཟུང་ལ་བྱིན། 12

स्मरणानुभवादेतत् स्मितं मे नत्वकारणम् ।
इत्युक्त्वा भगवान् पूर्व्ववृत्तं वक्तुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥

नगर्य्यामुत्पलावत्यां दानशीलदयान्विता ।
ख्याता रुक्मवती नाम पौरमुख्याङ्गनाभवत् ॥ ६ ॥

सा कदाचित् क्षुधाक्रान्तां प्रसूतां दुर्गताङ्गनाम् ।
यातुधानीमिवापश्यत् बालकं भोक्तुमुत्सुकाम् ॥ ७ ॥

तां दृष्ट्वा करुणाक्रान्ता सा क्षणं समचिन्तयत् ।
अहो स्वदेहस्नेहेन मतिः पापे प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥

अस्या भोजनमाहर्त्तुं व्रजामि स्वगृहं यदि ।
तदियं क्षुत्परिक्षामा भक्षयत्येव दारकम् ॥ ९ ॥

अथवा शिशुमादाय यदि गच्छामि मन्दिरम् ।
तदेषा कृशतां याता सद्यस्त्यजति जीवितम् ॥ १० ॥

इति सञ्चित्य दयया तस्मिन्नुभयसंशये ।
जगत्सन्तारणायैव प्रणिधानं विधाय सा ॥ ११ ॥

छित्वा तयोपनीतेन शितशस्त्रेण निश्चला ।
निजं स्तनयुगं तस्यै ददौ जीवितधारणम् ॥ १२ ॥

དེ་ནས་དེ་གྲགས་ངོ་མཚར་ཅན། །འཇིག་རྟེན་གསུམ་རིག་གྲགས་པའི་ཚེ།
བརྒྱ་བྱིན་བྲམ་ཟེའི་གཟུགས་ཀྱིས་ནི། །མངོན་དུ་ཕྱོགས་ཏེ་དེ་ལ་དྲིས། 13

ཁྱོད་ནི་ནུ་མ་བྱིན་པ་ཡིས། །ཡིད་ལ་ནོམ་འགྱུར་མ་བྱུང་ངམ།
ཞེས་དྲིས་དེ་ལ་དག་པ་དང་། །བདེན་སྨྲས་ལྡན་པ་དེས་སྨྲས་པ། 14

ནུ་མ་བྱིན་ལ་ནོམ་འགྱུར་ཆ། །གལ་ཏེ་བདག་ལ་འགའ་མ་གྱུར།
བདེན་པ་དེ་ཡིས་རེ་ཞིག་འཕྲུལ། །བུད་མེད་ཉིད་ནི་ལྡོག་གྱུར་ཅིག། 15

དེ་བརྗོད་ཙམ་ལ་བདེ་ལྡན་མ། །དེ་ཡི་བུད་མེད་གཟུགས་བཏང་ནས།
མཚན་ཉིད་ཐམས་ཅད་ཕུན་ཚོགས་པའི། །སྐྱེས་བ་ཉིད་དུ་ཡང་དག་གྱུར། 16

གྲོང་ཁྱེར་ཨུཏྤལ་ལྡན་པར་ནི། །མི་བདག་ཨུཏྤལ་ཞེས་བྱ་བ།
གནས་སྐབས་དེར་ནི་ཚེ་རྫོགས་ཤིང་། །ནད་ཀྱི་སྦྱོར་བས་ལྷུང་བར་གྱུར། 17

དེ་ནས་རབ་མཆོག་ཤིན་དང་ལྡན། །མཚན་ཉིད་ཤེས་རྣམས་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ།
འཕྲུལ་ལ་སྐྱེས་བུ་ཉིད་ཐོབ་པ། །གསེར་ལྡན་དེ་ནི་མངོན་དབང་བསྐུར། 18

ཆོས་ལྡན་མཛེས་པའི་དཔལ་དེ་ཡིས། །རྒྱལ་སྲིད་དག་ནི་ཡུན་རིང་བྱས།
དུས་ཀྱི་ལུས་ནི་བཏང་གྱུར་ཏེ། །ལུས་ཅན་དག་ནི་བརྟན་པ་མེད། 19

དེ་ཉིད་དུ་ཚེ་ཚོང་དཔོན་བུ། །སྙིང་སྟོབས་མཆོག་ཅེས་བྱ་བར་གྱུར།
རྫོལ་མེད་བསླུབ་པའི་སྦྱིན་པ་ནི། །སྐྱེ་བ་གོམས་ལ་གུས་བཅས་པའོ། 20

त्रैलोक्यस्पृशि साश्चर्य्ये तस्या यशसि विश्रुते।
विप्ररूपेण शक्रेण ततः स्पृष्टा समेत्य सा॥ १३॥

अपि ते स्तनदानेन मनोविकृतिमाययौ।
इति पृष्टा सती सत्यवादिनी तं जगाद सा॥ १४॥

यदि मे नाभवत् कश्चिद्विकारांशः स्तनार्पणे।
तेन सत्येन सहसा स्त्रीत्वं तावन्निवर्त्तताम्॥ १५॥

इत्युक्तमात्रे स्त्रीरूपं सा त्यक्त्वा सत्यशालिनी।
सर्व्वलक्षणसम्पन्नं पुरुषत्वं समाययौ॥ १६॥

नगर्य्यामुत्पलावत्यामस्मिन्नवसरे नृपः।
उत्पलाक्षः समासायुर्व्याधियोगाद्व्यपद्यत॥ १७॥

लक्षणज्ञैरथाभ्येत्य प्रवरैर्वृद्धमन्त्रिभिः।
सद्यःसम्प्राप्तपुंस्त्वोऽसौ रुक्मवानभ्यषिच्यत॥ १८॥

स राज्यं राजमानश्रीः कृत्वा धर्म्मधनश्चिरम्।
तनुं तत्याज कालेन स्थायिनो न हि देहिनः॥ १९॥

तत्रैव श्रेष्ठिनः सूनुः सोऽभूत् सत्त्ववराभिधः[१]।
निर्व्याजोऽर्ज्जितदानेषु जन्माभ्यस्तेषु सादरः॥ २०॥

---

 १ H सत्यवराभिधः।

འབྱུང་པོ་ཀུན་གཟིར་བསམ་པ་ལ།
རྟག་ཏུ་དེ་ཡིས་ཡིད་བཀོད་དེ།
བཟོད་དཀའ་འདབ་ཆགས་ཉམས་ཉིད་ཀྱིས།
བཀྲིས་པའི་སྡུག་བསྔལ་ཡང་དག་བསམས། 21

དེ་ནས་དུར་ཁྲོད་ནགས་སུ་དེ། སོང་ནས་སྤྲ་གྲིས་ལུས་བཀས་ཏེ།
གན་ཀྱལ་ཉལ་ནས་ཤ་ཟ་བའི། འདབ་ཆགས་ཉམས་ལ་རབ་ཏུ་བྱིན། 22

ཟིམ་གྲིས་དེ་ཡིས་མིག་གཡས་ནི། མཐོན་པོར་འགྲོ་བའི་མཁར་བགྲོད་ཀྱིས།
མཆུ་ཡིས་ཕྱུང་ཞིང་རབ་ཕྱུང་ནས། ཡང་དང་ཡང་དུ་རབ་ཏུ་བཏང་། 23

བརྟན་ཞིང་ཡན་ལག་ཀུན་མི་གཡོ། དེ་ཡིས་ཡ་མཚན་བྱ་མཐོང་ནས།
སྨྲས་པ་རྟོགས་མེད་ཉིད་དུ་ཟེ། ང་ཡིས་ཁྱོད་ནི་ཡོངས་མི་འཛིན། 24

ཐ་བྲལ་སྙིང་པོ་མེད་པའི་ལུས། གནོད་བཅས་སྐད་ཅིག་འཇིག་པ་འདི།
གཞན་ལ་ཕན་པའི་ཆ་ཤས་ཀྱིས། འཁོར་བའི་སྙིང་པོ་ཉིད་དུ་གྱུར། 25

མི་ཉམས་ལུས་ནི་མི་གཙང་ཟག་ཅིང་སོ་སོའི་གནས་སུ་སྐྱད་གྱུར་དྲི་མ་ཅན།
གནོད་པའི་གནས་སུ་གྱུར་ཅིང་དབུགས་དུས་གཡོ་ལ་ལོག་པར་ཆགས་པ་འདི་ནི་ཅི
གང་ཞིག་བསོད་ནམས་ཉམས་ཀྱི་འགའ་ཞིག་དག་ཏུ་འགའ་ལ་འགའ་ཚེ་འགའ་
མཐོང་ནས།
གདུང་བ་ཞི་བྱེད་སྐྱབས་ལ་ཞུགས་གྱུར་འདི་ཉིད་གཅིག་བུ་འདི་ཡི་དགའ་བ་ཉིད། 26

सर्व्वभूतार्त्तिचिन्तासु स सदा न्यस्तमानसः।
दुःसहं पक्षिणामेव सुदुःखं समचिन्तयत् ॥ २१ ॥

स श्मशानवनं गत्वा क्षुरेणोल्लिख्य विग्रहम्।
उत्तानशायी प्रददौ तनुं क्रव्यादपक्षिणाम् ॥ २२ ॥

उच्चैर्गति[1]विहङ्गोऽस्य दक्षिणं नयनं शनैः।
उत्पाट्योत्पाट्य[2] तुण्डेन प्रोत्ससर्ज पुनः पुनः ॥ २३ ॥

धैर्य्यनिश्चलसर्व्वाङ्गः स दृष्ट्वा विस्मितं खगम्।
उवाच भुंक्ष्व निःशङ्कं नैव त्वां वारयाम्यहम् ॥ २४ ॥

निःसारविरसः कायः सापायोऽयं क्षणक्षयी।
परोपकारलेशेन याति संसारसारताम् ॥ २५ ॥

क्लेदस्यन्दिनि निन्दिते प्रतिपदं श्वासक्षणस्यन्दिनि
स्नेहः कोऽयमपायधाम्नि मलिने मिथ्याशरीरे नृणाम्।
एकैव स्पृहणीयतास्य यदिदं पुण्यैः क्वचित् कस्यचित्
किञ्चिद्वीक्ष्य कदाचिदार्त्तिसमये[3] त्राणाय सन्नह्यति ॥ २६ ॥

---

१ Or ऊर्द्धगति॰। २ W उत्पाव्योत्पाव्य।
३ Orig. कदाचिदार्त्तिशमनम्।

ཚེས་པ་སྐྱ་བ་དེ་ཡི་ལུས། བཀྲེས་པས་ཉེན་པའི་བྱ་རྣམས་ཀྱིས།
ཟ་ཞིང་འཕངས་པའི་སྐད་ཅིག་ལ། ཧུས་བའི་ལྷག་མ་ཉིད་དུ་གྱུར། 27

དུས་ཀྱིས་དེ་ནི་བྲམ་ཟེ་དག། ས་ལ་ཆེན་པོའི་བུར་སྐྱེས་ཏེ།
བདེན་པའི་བདུལ་ཞུགས་ཞེས་བྱ་བ། སྐྱེ་བོ་དག་གིས་བཀུར་བར་གྱུར། 28

རིག་པ་མ་ལུས་ཐོབ་གྱུར་ཅིང་། སྙིང་རྗེ་དག་ལ་ཆགས་པའི་སེམས།
ཞི་བར་དགའ་བ་དེ་ཡི་ཡིད། ཁྲིམས་ཐབས་ལས་ནི་ཕྱིར་ཕྱོགས་གྱུར། 29

རིགས་སུ་སྐྱེས་ཤིང་ཡོན་ཏན་ཐོབ། བློ་གྲོས་དབེན་པས་རབ་བསྒྲུན་ཅིང་།
འབྱུང་པོ་ཀུན་ལ་བརྩེ་ཞིང་བྱམས། བསོད་ནམས་ལས་ཀྱི་མཚན་ཉིད་ཡིན། 30

གཞོན་ནུ་དེ་ཉིད་ཆགས་བྲལ་གྱིས། དགའ་ཞིང་དཀའ་ཐུབ་ནགས་སོང་སྟེ།
དྲང་སོང་གཉིས་ཀྱིས་བདུལ་ཞུགས་བྱིན། བསྒོ་གནས་སུ་ནི་དཔལ་གསོ་བསྙེན། 31

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་ཡི་ཤེས་སྲུན། དྲི་མེད་ཤིན་དུ་རྣོ་བ་ཡིས།
སྡུག་མོ་བཙའ་ལ་ཉེ་བ་དག། མཐོང་ནས་དེ་ཡིས་ཡང་དག་བསམས། 32

བཀྲེས་པ་ཡིས་ནི་གཟིར་བ་འདི། ཞག་བདུན་དག་ན་བཙའ་བར་འགྱུར།
རང་གི་བུ་ནི་ཟ་བ་ལ། སྙོམ་པ་དྲག་པོའི་འབྱུང་བར་འགྱུར། 33

ཞེས་བསམས་དེ་ཡིས་སྡུག་བསྔལ་ནི། ཐབ་པ་དག་ལ་བཤད་ནས་དེས།
སྙིང་རྗེ་དེ་ནི་ཕྱིར་བཅོས་པའི། ཡིད་ལ་རེ་བ་བྱས་པར་གྱུར། 34

इति तस्य ब्रुवाणस्य क्षुत्क्षामैः पक्षिभिः क्षणात्।
भक्ष्यमाणस्य विक्षिप्य नीतः कायोऽस्थिशेषताम्॥ २७॥

महाशालकुलस्याथ ब्राह्मणस्य स पुत्रताम्।
यातः सत्यव्रतो नाम बभूव जनसम्मतः॥ २८॥

अवाप्ताखिलविद्यस्य करुणासक्तचेतसः।
तस्य शान्तिरतस्याभूद्विवाहविमुखं मनः॥ २९॥

कुले जन्म गुणावाप्तिर्विवेकालङ्कृता मतिः।
सर्व्वभूतदया मैत्री लक्षणं पुण्यकर्म्मणाम्॥ ३०॥

वैराग्याभिरतिर्गत्वा स युवैव तपोवनम्।
दत्तव्रतो महर्षिभ्यां भेजे विश्रान्तिमाश्रमे॥ ३१॥

ततः कालेन सम्प्राप्तविमलज्ञानलोचनः।
आसन्नप्रसवां व्याघ्रीं स दृष्ट्वा समचिन्तयत्॥ ३२॥

प्रसवोऽस्याः क्षुधार्त्तायाः सप्ताहेन भविष्यति।
स्पृहा चोत्पत्स्यते तीव्रा निजपोतकभक्षणे॥ ३३॥

इति सञ्चिन्त्य तद्दुःखं मुनिभ्यां विनिवेद्य सः।
चकार तत्प्रतीकारे कारुण्येन मनोरथम्॥ ३४॥

དེ་ནས་ཞག་བདུན་འདས་པའི་ཚེ། སྟག་མོ་མངལ་གྱི་ཁུར་གྱིས་དུབ།
ཟས་ཆག་མང་པོས་གདུང་གྱུར་པ། དཀའ་ལས་ཆེན་པོས་བུ་ཚ་བཙས། 35

རང་གི་ཁྲག་གི་དྲི་ཡི་ནི། སྲིད་པ་དྲག་པོ་རབ་སྐྱེས་པ།
དེ་མཐོང་བདེན་པའི་བདུལ་ཞུགས་ནི། སྙིང་རྗེས་བརླན་པས་ཡང་དག་བསམས། 36

སྡུག་མ་འདི་ནི་བཀྲེས་བ་ཡིས། སྡུག་བསྔལ་དགྲ་ལས་བུ་ཟར་བརྩོན།
ཀྱེ་མ་འདི་ནི་རང་དོན་གྱིས། བུལ་ཆགས་པའང་བརྗེད་པར་གྱུར། 37

རང་སྡུག་བསྔལ་བས་ཐམས་ཅད་གདུང་། བཞིན་གྱི་ཡོངས་སུ་གདུང་བས་བསིལ།
སྐྱེ་བོ་འགའ་ཞིག་གཞན་གདུང་ལ། ཁྱད་པར་དུ་ནི་གདུང་བ་སྐྱེ། 38

བུ་དང་བཅས་པའི་སྟག་མོ་འདི། ལུས་བྱིན་ནས་ནི་བདག་གིས་བསྐྱངས།
སྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཡོངས་རྫོགས་པ། འདི་དག་སྡུག་བསྔལ་ཡོངས་མི་བཟོད། 39

གཞན་སྲོག་སྐྱོབ་ལ་ལུས་ནི་རྩྭ་བཞིན་བརྟགས་པ་གཏོང་བ་ཉམས་དག་གི།
སྐྱེ་ཆེ་བསོད་ནམས་གྲུབ་པའི་རང་བཞིན་གྲགས་པའི་ལུས་ནི་བརྟན་པར་འགྱུར།
གནོད་བ་རབ་ཆགས་སྲོག་གི་ཐིགས་པ་འདི་ནི་རབ་གཡོ་རླུང་དག་གིས།
གཡོ་བའི་པད་ལྷན་འདབ་མའི་ཁོང་གནས་གཡོ་བའི་ཆུ་ཐིགས་དག་གི་གྲོགས། 40

འདི་བསམས་སྙིང་རྗེའི་གཏེར་དེ་ཡིས། འབྱིད་པའི་ཕྲར་མས་མགྲིན་པ་ལ།
ཁྲག་ཟགས་མ་ནི་བཏོང་བྱས་ནས། སྟག་མོའི་མདུན་དུ་འགྱེལ་བར་གྱུར། 41

ततः प्रयाते सप्ताहे व्याघ्री गर्भभरालसा।
बहूपवाससन्तप्ता कृच्छ्रेणाहृत पोतकान्॥ ३५॥

निजशोणितगन्धेन जाततीव्रतरस्पृहाम्।
सत्यव्रतस्तामालोक्य दयार्द्रः समचिन्तयत्॥ ३६॥

इयं वराकी क्षुद्दुःखादुद्यता पोतभक्षणे।
अहो बतास्याः स्वार्थेन पुत्रस्नेहोऽपि विस्मृतः॥ ३७॥

सर्व्वः स्वदुःखसन्तप्तः परसन्तापशीतलः।
विशेषार्त्तः परस्यार्त्तौ विरलो जायते जनः॥ ३८॥

दत्त्वा शरीरं रक्षामि व्याघ्रीमेतां सशावकाम्।
न सहे दुःखमेतेषां पर्य्याप्तं प्राणसंशये॥ ३९॥

परप्राणत्राणे तृणकलनया त्यक्तवपुषां
यशःकायः स्थायी भवति पृथुपुण्योदयमयः।
प्रसक्तापायोऽयं प्रसरदनिलालोलनलिनी-
दलोत्सङ्गत्वङ्गज्जललवसुहृज्जीवितकणः॥ ४०॥

ध्यात्वेति न्यपतत् व्याघ्र्याः स पुरः करुणानिधिः।
गलद्रक्तं गले कृत्वा क्षतं वेणुशलाकया॥ ४१॥

ངེས་བར་བདག་ཉིད་ཆེ་རྣམས་ཀྱིས། ཡིད་ནི་སྙིང་རྗེས་མཉམ་པ་དག།
ཉེ་བར་བསྒྲུབས་ལ་ཚིགས་བཅས་པས། གཞན་གྱི་ཡོངས་གདུང་བཟོད་མ་ཡིན། 42

དེ་ནས་གཡོ་མེད་དེ་ཡིས་སྙིང་ག་རབ་དུ་གྲུས་པ་ལ།
སྡུག་མོ་ཕག་ལ་མངོན་བར་འདོད་པ་རྣོན་པོས་རབ་དུ་མཆོངས།
དགའ་དང་འཇུམ་སྐྱེས་སེན་མོའི་འོད་ཟེར་དག་གིས་འགྲོ་བ་ལ།
འཕགས་པའི་སྤྱོད་པའི་ངོ་མཚར་རབ་དུ་འབྲི་བར་བྱེད་བ་བཞིན། 43

བྱམས་པས་འཁྲུལ་བཞིན་བཟོད་པས ཉེས་བྱས་བཞིན་དང་ཤེས་རབ་ཀྱིས་ནི་
བསམ་ཚོགས་བཞིན།
སྡུག་བསྔལ་བཟོད་དཀའི་བསྙད་པ་བརྟན་པས་བཞིན་དང་ཉོན་མོངས་དཀའ་
ཐུབ་དཔལ་གྱིས་བཞིན།
བརྩེ་བས་དེ་ཡི་ལུས་ནི་སྙིང་སྟོབས་ས་གཞི་གཡོ་བ་མེད་པ་དེ་ཉིད་ཀྱིས།
སྡུག་གི་ཆུང་མས་བདབ་ཅིང་མི་བཟད་དྲག་པོ་མངོན་འཛོམས་གསལ་བའི་
ཁྲར་དག་བཟོད། 44

སྡུག་མོའི་སྤྲེར་མོ་འཕྲེང་བའི་རོལ་པས་རྣམ་པར་བཅོམ་གྱུར་པ།
དེ་ཡི་སྙིང་གའི་གཞི་ནི་རྣམ་པར་ཉམས་པ་སྐད་ཅིག་མཚོན།
ལུས་ནི་སྤྱུ་ལོང་གིས་བྱུགས་བསིལ་ཟེར་ཅན་ལྟར་དཀར་བ་ཡིས།
སྙིང་སྟོབས་རབ་གསལ་འོད་ཟེར་སྐྱུ་གུས་ཁེངས་པར་གྱུར་པ་བཞིན། 45

आपन्नत्राणसरसं नहि नाम महात्मनाम्।
सहते परसन्तापं करुणाकोमलं मनः॥ ४२॥

रक्ताभिलाषनिशिता निपपात तस्य
व्याघ्री ततः प्रततवक्षसि निश्चलस्य।
आश्चर्य्यमार्य्यचरितस्य जगत्सु जात-
हर्षस्मितैरिव नखांशुभिरुल्लिखन्ती॥ ४३

मैत्रीव स्खलितं क्षमेव कुकृतं प्रज्ञेव चिन्ताचयम्
दुःखं दुःसहविप्लवं धृतिरिव क्लेशं तपश्रीरिव।
तस्य व्याघ्रवधूनिपातविषमक्रूराभिघातोल्वणम्
सेहे मूर्त्तिरचञ्चलैव दयया सा सत्त्वभूमिर्भरम्॥ ४४॥

व्याघ्रीनखावलिविलासविलुप्यमाना
वक्षःस्थली क्षणमलक्षत विक्षतास्य।
रोमाञ्चचर्च्चिततनोस्तुहिनांशुशुभ्र-
सत्त्वप्रकाशकिरणाङ्कुरपूरितेव॥ ४५॥

ཤ་དག་ཟ་ཞིང་ཁྲག་འཐུང་སྲོས་པར་གྱུར་པའི་སྟག་མོ་ནི།
དགའ་དང་བཅས་པ་མཐོང་ནས་འགྲོ་བ་དེ་ཡི་རང་གི་སྲོག།
འཚོ་བ་དག་ནི་རིང་དུ་འགྲོ་བའི་དུས་སུ་བྲལ་གྱུར་པ།
ཡུད་ཙམ་ཞིག་ན་མགྲིན་པ་ཉིད་ལ་བརྡེན་ཏེ་བརྡུན་པར་བྱས། 46

*སྤྲེད་པའི་རྗེས་མཐུན་རྩེ་དགའི་འོང་དང་འགྲོ་བ་དག་གིས་ནི།
ངོ་ཚའི་དབང་ལས་བཞིན་ནི་མཆོག་ཏུ་ནོམ་པར་དུད་པ་བཞིན།
ཁྲིམ་ཐབས་ལས་ནི་ཕྱིར་ཕྱོགས་གྱུར་ཀྱང་དེ་ཡི་ལག་པ་དང་།
དེ་ཡིས་བཟུང་ནས་མཛའ་ཞིང་གཙུགས་ལྟར་སྙིང་ནི་དགའ་བར་བྱས། 47

བྱམས་པས་དག་ཅིང་ནམ་འགྱུར་མེད་པ་ཀྱི་ཚའི་སྙིང་སྟོབས་དང་།
ལུགས་བཟང་བསོད་ནམས་ཆུ་བོ་འཇིག་རྟེན་ནམས་སུ་གྲགས་པ་དང་།
འབྱུང་པོར་ཕན་པའི་རང་བཞིན་དམན་ལ་སྙིང་རྗེས་བསྐྱེད་པའི་སེམས།
རང་དབང་ཉིད་དུ་གྱུར་བ་ལེགས་ལྡན་བདག་ཉིད་ནམས་ཀྱི་ཡིན། 48

སྟག་མོའི་སྙེར་མོའི་རྩེ་མོས་བཤིག་པ་དེ་ཡི་སྙིང་སྟོབས་དག།
མཚུངས་པ་མེད་པ་དེ་མཐོང་འཕྲལ་ལ་ནོར་འཛིན་བུ་མོ་ནི།
བོ་རླབས་རོལ་བ་དང་ལྡན་ཆུ་གཏེར་བཞི་ཡི་སྐྲ་རགས་ཅན།
སྲོག་ནི་ཞིག་པའི་དུས་ན་འཇིགས་པ་བཞིན་དུ་རིང་ཞིག་འདར། 49

* **ཕྲད་པའི་རྗེ་མཐུན་ ([illegible]) of the xylograph is evidently an incorrect reading.**

तस्यामिषाहरणशोणितपानमत्ताम्
व्याघ्रीं सहर्षमवलोकयतश्चकार ।
दीर्घप्रवाससमयाकुलिता मुहूर्त्तम्
कण्ठावलम्बनधृतिं निजजीववृत्तिः ॥ ४६ ॥

तृप्ता प्रदक्षिणविलासगतागतेन
लज्जावशादिव भृशं विनताननैव ।
तस्याकरोदपि विवाहपराङ्मुखस्य
पाणिग्रहप्रणयिनी हृदयोत्सवं सा ॥ ४७ ॥

मैत्रीपवित्रमविकारमुदारसत्त्वम्
सौजन्यपुण्यतटिनी भुवनेषु कीर्त्तिः ।
भव्यात्मनां भवति भूतहितस्वभावम्
स्वाधीनदीनकरुणाभरणञ्च चेतः ॥ ४८ ॥

तत्तस्य सत्त्वमतुलं चतुरम्बुराशि-
वेलाविलासरसना वसुधापुरन्ध्री ।
व्याघ्रीनखाग्रदलितस्य विलोक्य सद्यः
प्राणक्षयक्षणभियेव चिरञ्चकम्पे ॥ ४९ ॥

བདེན་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་སྙིང་རྗེ་རབ་དགའ་དེ་ནི་ང་ཉིད་དོ།
ད་ལྟ་འདིར་ནི་རང་གི་སྤྱོད་ཚུལ་དྲན་ནས་བཞད་གད་སྤྲོས།
རྒྱལ་བས་གསུངས་པའི་སྔོན་གྱི་སྤྱོད་པ་འདི་ནི་ཐོས་གྱུར་ནས།
ཡ་མཚན་ཡིད་ལྡན་བགྱི་བྱིན་དེ་ནི་བཞིན་རས་གཡོ་མེད་གྱུར།

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་གསེར་ལྡན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་གཅིག་པའོ།།

सत्यव्रतः स करुणानिरतोऽहमेव
स्मृत्वा स्ववृत्तमिह सम्प्रति जातहासः ।
श्रुत्वेति पूर्व्वचरितं कथितं जिनेन
शक्रः सविस्मयमनास्तिमितानानोऽभूत ॥ ५० ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां एकमत्यवदानं नाम एकपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

Chapter LII.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་གཉིས་པ།

བསོད་ནམས་མི་དམན་པའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

༄༅། །གང་ཞིག་ནགས་སོང་ཤིན་ཤུན་ལྡན་གྱུར་ཀྱང་།*
སྨོང་ནམས་རྒྱུན་དུ་དོན་བྲས་ཉིད་དུ་བྱེད།
སྤྱོད་ཚུལ་མཛེས་ལྡན་དེ་དང་ཅན་དན་གྱིས།
ངོ་མཚར་དག་ནི་སྲུ་ཡི་བསམ་མི་བྱ། 1

དེ་ནི་དཀའ་ཐུབ་ནགས་གཞན་ན། བཅོམ་ལྡན་བཞུགས་ཤིང་འཛུམ་ལྡན་ལ།
བགྲོ་བྲིན་ཡ་མཚན་ལྡན་པ་ཡིས། འཛུམ་པ་ཉིད་ཀྱིས་རྒྱུ་མཚན་དྲིས། 2

དེ་ཡི་གུས་པས་དྲིས་པའི་ཚེ། དེ་ལ་ཀུན་མཁྱེན་གྱིས་གསུངས་པ།
མིག་སྟོང་ལྡན་པ་གནས་འདིར་ནི། སྔོན་བྱུང་བ་དག་བདག་གིས་དྲན། 3

མ་ཏྲུ་དཀ་ཞེས་པ་ཡི། གྲོང་ཁྱེར་ལྷ་གྲོང་ལྟ་བུར་སྔོན།
བསོད་ནམས་མི་དམན་ཞེས་བྱ་བའི། ས་བདག་ས་ཡི་རྒྱན་དུ་གྱུར། 4

སྙིང་རྗེ་དགའ་དང་བཏང་སྙོམས་དང་། བྱམས་པ་སེམས་ལ་ཡང་དག་ཆགས།
ཕྲག་དོག་ཅན་བཞིན་གང་གི་དཔལ། སྨོང་བའི་སྐྱེ་བོ་ཁྲིང་པར་གནས། 5

---

* ཤིང་ཤུན།

द्विपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

अदीनपुण्यावदानम् ।

अर्थिनां वनगतोऽपि वल्कली[1]
यः करोत्यविरतं कृतार्थताम् ।
कैर्न चारुचरितस्य रुच्यते[2]
तस्य चन्दनतरोश्च सत्कृतिः ॥ १ ॥

विहरन्तमथान्यस्मिन् भगवन्तं तपोवने ।
पप्रच्छ सस्मितं शक्रो विस्मितः स्मितकारणम् ॥ २ ॥

पृष्टः प्रणयिना तेन सर्व्वज्ञस्तमभाषत ।
अस्मिन् देशे सहस्राक्ष पूर्व्ववृत्तं स्मृतं मया ॥ ३ ॥

मधूदकाख्ये नगरे पुरा सुरपुरोपमे ।
अदीनपुण्यनामाभूत् भूपतिर्भूषणं भुवः ॥ ४ ॥

करुणामुदितोपेक्षामैत्रीसंसक्तचेतसः ।
उवासेर्ष्यावतीव श्रीर्यस्यार्थिजनवेश्मसु ॥ ५ ॥

---

१ W 1 वल्कयाचः ।   २ Orig. चर्च्यते ।

ནམ་ཞིག་དེ་ཡི་སྤྱོད་པ་ནི། འགྲོ་ལ་གྲགས་པ་ཐོས་གྱུར་ནས།
ས་ཡི་བདག་པོ་ཚངས་པས་བྱིན། རྒྱལ་བར་འདོད་བ་དེ་ཅན་འོངས། 6

དེ་ནས་གླང་པོའི་ཚོགས་གདམས་པས། ཕྱོགས་མཚམས་དག་ནི་སྤུན་པར་བྱས།
དེ་ནི་རྗེས་སུ་བཅིང་བའི་སྐད། དེ་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་བཅིངས་པར་བྱས། 7

སྙིང་སྟོབས་བརྩེ་ལྡན་མི་ཡི་བདག། དགྲ་ནི་བརླག་པར་མི་བཞེད་དོ།
ཞེས་བསམས་དེ་ཡི་བློན་པོ་ནི། མ་བརྗོད་གཡུལ་ལ་ཕྱི་རོལ་འཐོན། 8

གླང་པོ་རྟ་དང་ཤིང་རྟ་རྣམས། རྟག་བྱེད་གསུམ་ནི་གྲུས་པ་དེར།
བསོད་ནམས་མི་དམན་སྙིང་རྗེ་ཡིས། སྡུག་བསྔལ་གྱུར་པས་ཡང་དག་བསམས། 9

མི་ཟད་རྒྱལ་རིགས་ཆོས་འདི་ནི། ཆོས་མིན་བརྒྱ་ཕྲག་དག་དང་ལྡན།
མ་རུངས་སྲོག་ཆགས་གསོད་པ་ནི། གང་དུ་ཆོས་ཞེས་མ་ནོར་བརྗོད། 10

ཁྲག་གིས་བགོས་ཤིང་དྲི་མ་ཅན། རྒྱལ་རིགས་རྣམས་ཀྱི་ཆོས་འདི་སྐད།
གང་གི་ཆེད་དུ་རབ་འབད་པའི། འཚོ་བ་དེ་ཡང་དག་པ་མིན། 11

བདེ་ཉུང་བློ་ཡིས་བཟོད་བྱ་འདི་ནི་སྐྱེས་བུ་རྣམས་ཀྱི་ཉོན་མོངས་སྐྱེན།
གནོད་པ་དང་བཅས་གདུང་བའི་ལམ་དུ་རྟག་ཏུ་ཉེས་པ་ཉིད་གྱུར་ཅིང་།
ཕྱི་ནས་དྲན་པས་སྡུག་བསྔལ་ཤུགས་རིངས་དག་གིས་བརྟན་པ་འཇོམས་བྱེད་པ།
ཡོངས་སྤྱོད་དོན་དུ་ཀྱི་ཧུད་ཀྱི་ཧུད་གཞན་སྲོག་འཚོ་ལ་རབ་ཏུ་འབད། 12

कदाचित् चरितं तस्य श्रुत्वा जगति विश्रुतम्।
तमाययौ ब्रह्मदत्तः क्ष्मापतिर्विजिगीषया ॥ ६ ॥

ततः करिघटाबन्धैरन्धीकृतदिगन्तरः।
चकार नगराबन्धमनुबन्धाय तस्य सः ॥ ७ ॥

सत्त्वानुकम्पी नृपतिर्न शत्रुक्षयमिच्छति।
ध्यात्वेति निर्ययुर्योद्धुमनुक्त्वैवास्य मन्त्रिणः ॥ ८ ॥

वर्त्तमाने रणे तस्मिन् गजवाजिरथक्षये।
अदीनपुण्यःकारुण्यविविग्नः समचिन्तयत् ॥ ९ ॥

विषमः क्षत्रधर्म्मोऽयमधर्म्मशतसम्मितः।
यस्मिन् प्राणिवधक्रौर्य्यं धर्म्म इत्यभिधीयते ॥ १० ॥

धिग्धर्म्मं रुधिरादिग्धं क्षत्रियाणां मलीमसम्।
कृते यस्य प्रयत्नोऽयं तज्जीवितमशाश्वतम्[१] ॥ ११ ॥

सापायस्य व्यसनसरणौ शीर्यमाणस्य नित्यम्
दुःखोच्छ्वासैः प्रतिहतधृतेः स्मर्य्यमाणस्य पश्चात्।
सोऽयं सद्यः सुखलवधिया क्लेशपाकस्य[२] पुंसाम्
भोगस्यार्थे वत वत परप्राणहिंसाप्रयत्नः ॥ १२ ॥

---

9 A १ H and $^{W}_{1}$ तज्जीवितुमशाश्वतम्।
२ 8 H and $^{W}_{1}$ क्लेशपाकस्य।

དེ་སྐད་འཚོ་དང་སྡིག་པའི་གནས། ཆོས་མིན་མང་བའི་གྲོལ་སྲིད་འདི*།
ཡོངས་སུ་བཏང་ལ་བདག་ཉིད་ནི། དཀའ་ཐུབ་ནགས་སུ་འགྲོ་བར་བྱ། 13

གྲོལ་པོ་མི་ཤེས་སྨོངས་རྣམས་ཀྱིས། གསོད་དང་འཆིངས་པ་བཀྱིས་བསྒྲུབས་པའི།
སྡིག་པ་སི་བཟད་དཔལ་འབྱོར་ནི། དུས་ཀྱིས་ཁམས་སུ་བྱེད་པ་ཉིད། 14

འཁོར་བར་དུས་མིན་དག་ཏུ་བསམ་ཡས་དུས་ནི་སྟོབས་དང་ལྡན་པ་འདིས།
སྐྱེས་བུ་སོ་སོ་དག་ལ་བསྐལ་པའི་མཐའ་ནི་སོ་སོར་ཕྱེར་བྱེད་ཅིང་།
ཤིན་ཏུ་ཆེ་བའི་སྨོངས་པས་བློ་བཙོམ་རེ་བའི་འཆིང་བ་བརྟན་པོ་ཡིས།
ཡུལ་གྱི་བདེ་བའི་ཚོགས་ལ་སེམས་བྱེད་སྐྱེས་བུ་རྣམས་ཀྱི་རྩེ་དགའ་འཇོམས། 15

ཞེས་པ་བསམས་ནས་མི་བདག་ནི། འཚོ་བའི་ཉོན་མོང་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས།
དབྲུག་པ་ཤིང་ཤུན་བཟུང་ནས་ནི། མཚན་མོ་དཀའ་ཐུབ་ནགས་སུ་སོང་། 16

དེ་ནས་བློན་པོ་གསུམ་ཞུགས་པས། དེ་ནི་སོང་བ་ཐོས་གྱུར་ནས།
འཇིག་རྟེན་ལ་བསྐྲིབས་དགྲ་བོ་ནི། སྒྲ་སྒྲོགས་གྲུགས་བས་འཆར་ལ་སླས། 17

ནགས་སུ་གླང་ཆེན་སྨྱོས་བ་དག། དྲག་པོའི་སྒྲ་ནི་མ་སྒྲོགས་ཤིག།
འདིར་ནི་སེང་གེ་སྤྲིན་གྱི་སྒྲ། བཟོད་པ་མིན་པ་ནམ་པར་གནས། 18

* "ཆོས་མེན་མང་པའི་རྒྱལ་སྲིད་" ཞེས་ལོགས་ཚིག་རྣང་གཞིལ་ཕྱི་སྐད་དོད་ཆད་པ་
འདར་ལོས་བཅུག་པ་སྤར་ཞུ་དཔེ་ཉིད་ན་ཡུ་དག་ཏེད།
The text of this line was lost. *H*Dar Lochava sought to supply its place by the following :—

अधर्म्मं बज्रराज्येयं तपखिस्याम गम्यन ।

तस्मादिदं परित्यज्य हिंसापाप[1]निकेतनम्।
अधर्म्मबहुलं राज्यं गच्छाम्येष तपोवनम्॥ १३॥

राज्ञामज्ञानमूढानां वधबन्धशतार्ज्जितम्।
कालः कवलयत्येव लक्ष्मीमक्षीणकिल्बिषाम्॥ १४॥

अचिन्त्यः संसारे बहुलतरमोहाहतधियाम्
स्थिरैराशाबन्धैर्विषयसुखजालं कलयताम्।
अकाले कल्पान्तं प्रतिपुरुषमेष प्रतिदिशन्
बली कालः पुंसां किल विलसितं सङ्कलयति॥ १५॥

इति सञ्चिन्त्य नृपतिर्हिंसापापपराङ्मुखः।
दण्डवल्कलमादाय ययौ निशि तपोवनम्॥ १६॥

ततस्तद्गमनं श्रुत्वा लोके प्रच्छाद्य मन्त्रिणः।
युध्यमानाः शरोदग्रं रिपुं गर्ज्जन्तमूचिरे॥ १७॥

गहने[2] मत्तमातङ्ग मा कृथा गलगर्ज्जितम्।
घनशब्दकृताक्षान्तिर्निविशत्यत्र केशरी॥ १८॥

---

१ W/1 हिंसापात॰ H हिंसापाय॰।
२ H and W/2 गहनम्।

ཞེས་སྨྲ་བརྟེན་པ་དེ་དག་གིས། ཇེ་ལ་བྱ་དགའ་ཕྱུག་པོ་དང་།
གོ་ཆས་ལུས་ནི་རབ་གཡོགས་ཏེ། གཡུལ་དུ་གཡུལ་ནི་རབ་ཏུ་བསྟད། 19

སྐབས་དེར་ཀོ་ས་ལ་དག་ཏུ། བྲམ་ཟེ་སེར་སྐྱ་ཞེས་བྱ་བ།
རྒྱལ་པོ་དབྱིག་གི་གོ་ཆ་ཡིས། ནོར་གྱི་ཚད་པས་གཟིར་བར་གྱུར། 20

མ་ལུས་ནོར་བྱིན་དབུལ་བ་ལས། མང་པོ་བྱིན་པར་མི་བཟོད་པ།
བྲ་དང་གཉེན་ནོམས་མཐའ་དག་ནི། བཙོན་ཁང་ནང་དུ་ནོམ་པར་བཀོད། 21

གཉེན་ཚན་བཅིངས་པས་སྡུག་བསྔལ་བས། བཙོས་པའི་ཐབས་ནི་རབ་བསམས་ཏེ།
གྲོགས་པོ་རྒྱལ་ཟིན་པ་ཡིས། རི་དགས་བཞིན་དུ་གཡོ་བ་མེད། 22

བདག་གི་པ་མ་སྲིང་མོ་དང་། སྤུན་ཟླ་བུ་མོ་བུ་དག་ཀྱང་།
བཙོན་ར་དག་ཏུ་བཅིངས་གྱུར་པ། ནོར་མེད་ན་ནི་གྲོལ་མི་འགྱུར། 23

ས་བདག་ཆོས་ལ་སྡང་བ་ཡིས། གང་ལ་ཆགས་པ་རབ་ཏུ་འཛུག།
ཉོན་མོངས་དག་གིས་བརླན་པ་ཡི། ཡུལ་དེ་རབ་ཏུ་བདང་བས་འཚོ། 24

ཡང་ན་གཉེན་གྱིས་འཆིང་ཐག་གིས། སྐྱེ་བོ་དག་ཏུ་བཅིངས་ནོམས་ཀྱིས།
སྡུག་པར་གྱུར་ཀྱང་ཡུལ་དག་ནི། རབ་ཏུ་གདུང་བར་ཇི་ལྟར་ནུས། 25

དེ་སྐད་ཉོན་མོངས་ནད་འདི་ལ། ནོར་ནི་ཉེ་བར་བསྒྲུབས་པ་པན།
ནོར་གྱིས་ཐར་མིན་གདུང་བ་གང་། དེ་ནི་འཇིག་རྟེན་དག་ན་མེད། 26

इति ब्रुवाणाः समरे धीरा युयुधिरे परम् ।
ते घनस्वामिसम्मानसन्नाहच्छन्नविग्रहाः ॥ १९ ॥

अत्रान्तरे कोशलेषु ब्राह्मणः कपिलाभिधः ।
हिरण्यवर्म्मणा राज्ञा धनदण्डेन पीड़ितः ॥ २० ॥

बन्धनागारविन्यस्तसमस्तसुतबान्धवः ।
दत्ताशेषधनो भूरि दारिद्र्याद्दातुमक्षमः ॥ २१ ॥

अचिन्तयत् प्रतीकारं बन्धुबन्धनदुःखितः ।
संसक्तपाशसचिवः शारङ्ग इव निश्चलः ॥ २२ ॥

पिता माता स्वसा भ्राता दुहिता तनयश्च मे ।
रुद्धाः कारागृहे मुक्तिं नायान्ति द्रविणं विना ॥ २३ ॥

लोभः प्रवर्त्तते यत्र धर्म्मद्वेषेण भूपतेः ।
तस्माद्भ्रंशदेशस्य परित्यागेन जीव्यते[1] ॥ २४ ॥

अथवा कथमुत्स्रष्टुं देशः कष्टेऽपि शक्यते[2] ।
जन्तुभिः सततावद्धैर्बन्धुबन्धनरज्जुभिः ॥ २५ ॥

द्रविणोपार्ज्जनं तस्मादस्मिन् क्लेशमये हितम् ।
नास्ति तद्व्यसनं लोके तीर्यते न धनेन यत् ॥ २६ ॥

१ W/r जीवितम् । २ H and W/r त्यज्यते ।

ནོར་གྱི་ཕུན་ཚོགས་ཀ་ཀུ་ནི། སྨད་འཚོང་མ་བཞིན་ནོམ་འགྱུར་ཅན།
དོན་དུ་གཉེར་ན་བསྒྲོད་པར་བྱེད། དོན་དུ་མ་གཉེར་རང་ཉིད་འོངས། 27

རོ་བྲལ་འཁྲི་ཤིང་རྟིང་པ་བཞིན། རིང་བཀོམ་རྗེས་སུ་འཆིང་ལྡན་པའི།
འགར་ནི་འགའ་ཚེ་ཚོགས་ཅན་གྱིས། གཡོག་ལ་འབྲས་བུ་མེད་པ་ཉིད། 28

སྨོང་བ་དམ་པའི་སྐྱེ་བོས་སྤངས། ངོ་ཚའི་དོལ་གྱིས་ཡོངས་སུ་གྲིས།
སྨན་པ་གྱི་ཡི་ལྷག་མ་ནི། འབྲས་བུར་བཅས་ཀྱང་འབྲས་མེད་ཉིད། 29

དང་པོ་དུས་སུ་ཉེ་བར་འོངས་པའི་རོ་ལས་སྔོན་དུ་བསྙེན་བཀུར་བྱ།
དེ་ནས་ནོར་གྱི་ཆ་བསྐྱངས་ཡོངས་སུ་འདྲིས་ལས་བཀུར་བ་ཉམས་པར་ཉམས།
སྲིད་པས་བློ་གྲོས་གཡོ་ལྡན་སྨོང་བའི་ཚོགས་ནམས་ནང་དུ་ནོམ་བསམས་ཤིང་།
སྐད་ཅིག་ལ་ནི་རེ་བའི་འཆིང་བ་ཡངས་པར་བྱེད་ཅི་བདོག་པར་བྱེད། 30

ཆགས་པའི་རང་བཞིན་འཇིག་རྟེན་འདིར། ནོར་གྱི་ཡོན་དན་སུ་ཞིག་འཛིན།
དེ་སྙད་ཐབས་ཀུན་དཔན་གྱུར་པ། བདག་ནི་འགྲོ་བ་མེད་པ་ཉིད། 31

ཅི་ཞིག་བྱ་ཞིང་གང་དུ་འགྲོ། གྲིབ་མ་དོན་གཉེར་ལས་བཟང་བཞིན།
རྟེན་མེད་ཡིད་ལ་རེ་བ་ཡིས། ངལ་གསོ་ཐོབ་པར་མ་གྱུར་ཏོ། 32

སྐྱེ་བོའི་ནགས་ཚལ་མཆོག་ཏུ་ཤིན་དུ་སྡུག་བོར་གྱུར་པ་འདིར།
གང་ཞིག་ཀུན་དུ་སྐྱེ་བོ་སྨོང་ལ་འབྲས་བུ་ཀུན་སྨིན་ཡང་།
ནམ་ཡང་འདར་བར་མི་འགྱུར་དད་པ་ཉིད་ཀྱང་མི་གཏོང་བ།
ཀུད་པ་དམ་པའི་ལྗོན་ཤིང་དེ་ནི་གང་ཡང་རྙེད་མ་གྱུར། 33

प्रार्थ्यमानाः पलायन्ते स्वयमायान्त्यनर्थिताः।
वेश्या इव विकारिण्यः कुटिला धनसम्पदः॥ २७॥

विरसा जीर्णवल्लीव दीर्घशोषानुबन्धिनी।
क्वचित् कदाचित् क्लेशेन सेवा फलति नैव वा॥ २८॥

लज्जारजःपरिचिता याच्ञा सज्जनवर्ज्जिता।
अवमानशतोच्छिष्टा सफलाप्यफलायते॥ २९॥

पुरः सत्कारांशः प्रथमसमयोपागमरसात्
ततो मानम्लानिर्द्रविणकणयाच्ञापरिचयात्।
विमृश्यान्तस्तस्मात्तरलितमतिर्मार्गणगणः
क्षणादाशाबन्धं विपुलयति सङ्कोचयति च॥ ३०॥

लोभस्वभावे[1] लोकेऽस्मिन् को गृह्णाति धनैर्गुणान्
सर्व्वोपायविहीनस्य तस्मान्नास्त्येव मे गतिः॥ ३१॥

किं करोमि क्व गच्छामि छायार्थीव मरोः पथि।
नासादयति विश्रान्तिं निरालम्बो मनोरथः॥ ३२॥

अत्यन्तसङ्कुलतरे जनकाननेऽस्मिन्
न प्राप्यते विपदि कोऽपि स साधुवृक्षः।
यः सन्ततार्थिजनसर्व्वफलार्पणेऽपि
नो कम्पते न च जहाति नतिं कदाचित्॥ ३३॥

---

१ W 1 लोभस्वभावः।

བསོད་ནམས་མི་དམན་ས་ཡི་དབང་། སྐྱོང་བ་ཀུན་གྱི་དཔག་བསམ་ཤིང་།
འཕོངས་པའི་གདུང་བ་མཆོག་ཏུ་འཕྲོག། སྙིང་སྟོབས་འོ་མའི་རྒྱ་མཚོ་གྲོས། 34

དེ་ལྟར་ཡང་དག་བསམས་ནས་ནི། རེ་བ་བཅས་པ་བསྟན་པ་ཡིས།
ལམ་ནས་དགའ་བས་སྣ་དྲངས་ཏེ། མི་བདག་བལྟ་བར་འདོད་པས་ཆས། 35

དེ་ནས་དེ་ཡིས་དཔལ་བུ་ཡིས། གྲོང་མཐའ་དགའ་ཐུབ་ནགས་སུ་ཕྱིན།
མི་བདག་ཞིང་ལོས་ཡོངས་དཀྲིས་པ། ལམ་གྱིས་ཡོངས་སུ་དུབ་པས་མཐོང་། 36

བཀྲིས་བསྐོམ་ངལ་བས་གཟིར་བ་དེ། མི་བདག་གིས་ཀྱང་མཐོང་གྱུར་ནས།
སྙིང་རྗེའི་རྒྱ་མཚོས་རིང་པོ་ནས། འོང་བ་ཡི་ནི་རྒྱུ་མཚན་དྲིས། 37

དེ་ལ་དེ་ཡིས་རང་གི་སྤྱོད། ཤུགས་རིངས་ཚ་བས་གསལ་བྱས་པ།
བ་ཤད་ནས་གཉེན་ནོམས་བཅིངས་པ་ཡི། སྡུག་བསྔལ་གྱིས་གཟིར་སྐད་ཡང་བ་ཤད། 38

གཉེན་ནི་བཅིངས་པ་དགྲོལ་བའི་སྐད། མི་བདག་སྐྱོང་བ་ལྷ་ཡི་ཤིང་།
བསོད་ནམས་མི་དམན་བལྟ་བ་ལ། གསེར་དོན་གཉེར་བ་བདག་འོངས་སོ། 39

ཐུགས་ནི་སྙིང་རྗེ་རྫོགས་གྱུར་པ། དཔལ་ལྡན་འཇིག་རྟེན་མགོན་པོ་དེ།
མཐོང་བ་ཉིད་ཀྱི་འཕྲལ་ལ་ནི། བདག་གི་བསོག་བ་རྫོགས་པར་གྱུར། 40

ཉོན་མོངས་གདུང་བས་ཉམས་མི་བྱེད། སྐད་བ་ཡིས་ནི་སྲུན་མི་འབྱིན།
དུས་ནི་རྙིང་པ་མ་ཡིན་པར། སྤྱི་བོ་ཆེན་པོ་འབྲས་དུ་བསྐྱེད། 41

अदीनपुण्यः सर्व्वार्थिकल्पवृक्षः क्षितीश्वरः।
श्रूयते सत्त्वदुग्धाब्धिरापन्नार्त्तिहरः परम्॥ ३४॥

इति सञ्चिन्त्य स नृपं प्रतस्थे द्रष्टुमुत्सुकः।
आशाबन्धोपदिष्टेन पथा हर्षपुरःसरः॥ ३५॥

ततः स शनकैः प्राप्य पुरोपान्ततपोवनम्।
ददर्शाध्वपरिश्रान्तः सम्वीतं वल्कलैर्न्नृपम्[१]॥ ३६॥

नरनाथोऽपि तं दृष्ट्वा क्षुत्पिपासाश्रमातुरम्।
पप्रच्छ करुणासिन्धुर्दूरागमनकारणम्॥ ३७॥

स तस्मै निजवृत्तान्तमुष्णनिश्वाससूचितम्।
निवेद्य बन्धुसंरोधदुःखार्त्तः पुनरब्रवीत्॥ ३८॥

आयातोऽहं हिरण्यार्थी बन्धुबन्धनमुक्तये।
अदीनपुण्यं नृपतिं द्रष्टुमर्थिसुरद्रुमम्॥ ३९॥

लोकनाथः स मे श्रीमान् करुणापूर्णमानसः।
सद्यः सन्दर्शनेनैव सङ्कल्पं पूरयिष्यति॥ ४०॥

अम्लानं क्लेशसन्तापैरवमानैरदूषितम्।
अपर्युषितकालञ्च फलं सूते महाजनः॥ ४१॥

१ W/I Omits verses 35 and 36.

སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱི་དབུལ་བའི་རབ་རིབ་མི་བཟད་འཕྲོག་བྱེད་ཅིང་།
གྲགས་པ་རབ་ཏུ་གསལ་བའི་འབྱོར་པས་ཕྱོགས་རྣམས་ཡོངས་སུ་འགེངས།
དྲི་མེད་ཡིད་ནི་མངོན་པར་རེངས་བྱེད་དགའ་བ་དག་གི་གཉེན།
ས་ཡི་བདུད་རྩིའི་ཟེར་དེས་བདག་གི་གདུང་བ་འཕྲོག་པར་འགྱུར། 42

ཞེས་པ་དེ་ཡིས་ར་ཤུད་ཐོས་ནས། ས་ཡི་བདག་པོ་གཟིར་བར་གྱུར།
བཅོས་ཐབས་མེད་པའི་གདུང་བ་དག ། འཕོས་པ་ཡིས་ནི་ཡང་དག་བསམས། 43

ཀྱེ་མ་བདག་གིས་རྒྱལ་སྲིད་པདང་། དུས་མིན་འདིར་ནི་གཉིས་སྐྱེས་ཀྱིས།
བསམས་དེ་བཀྲིས་པས་ཉེན་པ་ལས། ལམ་གྱི་ཤིང་ནི་སྐམ་པོ་བཞིན། 44

སྡོང་བ་རྣམས་ལ་ལམ་རིང་གིས། ངལ་བ་འབྲས་མེད་གདུང་བ་སྟེར།
རི་དགས་སྲིད་སྐྱེད་རྩ་ལྟ་བུ། སྨོངས་པ་སྐྱེད་བྱེད་བདག་སྨད་དོ། 45

ཁ་ལ་རྗེ་བསྟུན་མཚུངས་པ་ཡིས། བསྒྱུལ་བར་གྱུར་བཞིན་དོན་གཉེར་རྣམས།
རེ་བ་ཉམས་པས་ལམ་དུ་ནི། ཡོངས་ངལ་ལྕི་བ་ཉིད་དུ་གྱུར། 46

རྒྱལ་པོ་དེ་ནི་བདག་ཡིན་ཏེ། རྒྱལ་སྲིད་བཏང་ནས་ནགས་ཚལ་བསྟེན།
ཞེས་པ་ཐོས་ནས་བྲམ་ཟེ་འདི། འཕྲལ་ལ་སྲོག་ནི་གཏོང་བར་འགྱུར། 47

* * * *

* The 48th Sloka and its Tibetan version do not occur in the xylograph.

दारिद्र्यतीव्रतिमिरापहरः[1] प्रजानाम्
कीर्त्तिप्रकाशविभवैः परिपूरिताशः।
अभ्युल्लसद्विमलमानसहर्षबन्धु-
स्तापं हरिष्यति स मे वसुधासुधांशुः ॥ ४२ ॥

श्रुत्वेति तेन कथितं व्यथितः पृथिवीपतिः।
संक्रान्तनिष्प्रतीकारसन्तापः समचिन्तयत् ॥ ४३ ॥

अहो नु त्यक्तराज्योऽहमकालेऽस्मिन् द्विजन्मना।
चिन्तितः स्मृत्यरीतेन शुष्कवृक्ष इवाध्वनि ॥ ४४ ॥

दूराध्वश्रमवैफल्यसन्तापप्रदमर्थिनाम्।
सम्मोहजननं धिङ्मां मृगतृष्णाजलोपमम् ॥ ४५ ॥

मुखाश्रुपाततुल्येन मूर्च्छितानामिवार्थिनाम्।
आशाभङ्गेन गुरुतां प्रयात्यध्वपरिश्रमम् ॥ ४६ ॥

अहं स राजा सन्त्यक्तराज्यः काननमाश्रितः।
इति श्रुत्वैव विप्रोऽयं सद्यस्त्यजति जीवितम् ॥ ४७ ॥

जातैव चिन्तामतुलां प्रसूते
निद्रापहारं तरुणी करोति।
कन्येव वृद्धा विदधाति शोकं
नष्टा दहत्याशु शरीरमाशा[2] ॥ ४८ ॥

---

१ H ॰दुरितापहरः।   २ Orig. omits this verse.

འདི་ནས་རྒྱལ་པོའི་གནས་ཕྱིན་ཏེ། བསམ་པ་བདག་ནི་མ་ཐོབ་ན།
ཡིད་ལ་རེ་བ་ཉམས་པ་འདི། གདུང་བས་ཅི་ཞིག་བྱེད་པར་འགྱུར། 49

སློང་ནོམས་ཕྱིར་གློག་བཞིན་ལེགས་ཚ་བའི་ཤུགས་རིངས་དག་གིས་གདུང་བྱེད་
ཅིང་།
ཀུན་ཏུ་རྒྱུག་པས་ལུས་དམན་ཆུང་ངུར་གྱུར་ཞིང་གང་ལས་མི་འགྲོ་བ།
ཉོན་མོངས་དུས་སུ་མི་ནོམས་སེམས་ལ་འཕྲལ་ལ་རབ་ཏུ་གསལ་བ་གང་།
དགེ་ལྡན་ཡོངས་སུ་སྐྱོབ་གཉེན་བསྟུགས་ངོས་གཅིག་བུ་དེ་ཉིད་འཚོ་བ་ཡིན། 50

རང་ཉིད་རབ་བསྡུངས་གདུང་བའི་ཉམས་སྐྱོང་ཤེས་ཤིང་རི་བྱིའི་ལྟོ་བའི་ཕུག་ཏུ་
ཞུགས་བྱས་ཏེ།
སྨིན་བྱེད་མེ་ཡིས་རབ་ཏུ་གདུང་བའི་བྱེད་པས་ཁྲབ་ཅིང་འཚེད་པའི་བྲ་བ་ཡོངས་
སུ་འདྲིས་གྱུར་ཀྱང་།
སློང་བའི་ཚོགས་ཀྱི་སྲིད་པ་དྲག་པོས་བསྐྱེད་པའི་མེ་བཟད་གདུང་བ་འཕྲོག་པ་
མིན་པ་གང་།
སྐྱེ་བོ་འགྲོན་པོའི་ཤུགས་རིངས་ཚེ་པ་བསྐོལ་ཞིང་གཞེལ་བ་འགྱུར་བྱེད་ཀྱི་
མཚོའི་སྐྱེ་བསྐྱེད། 51

དེ་ལྟར་སྐད་ཅིག་བསམསམས་བྱས་ནས། ཆུ་དང་འབྲས་བུ་མགྲོན་བྱས་ཏེ།
མི་སྙན་སྨྲ་བས་འཇིགས་འཇིགས་བཞིན། མི་ཡི་བདག་པོས་དེ་ལ་སྨྲས། 52

བསོད་ནམས་མི་དམན་རྒྱལ་པོ་དང་། བྲམ་ཟེ་དགྲ་གསོད་སྦྱོར་བའི་ཚེ།
འཚོ་ལས་ཆགས་བྲལ་རྒྱལ་སྲིད་ནི། ཡོངས་སུ་བཏང་ནས་དབེན་པ་བསྟེན། 53

राजधानीमितो गत्वा मामप्राप्य विचिन्तितम् ।
किं करिष्यति सन्तापादयं भग्नमनोरथः ॥ ४९ ॥

जीवत्येकः किल स कुशली क्लेशकाले नराणां
श्लाघ्यश्चित्ते स्फुरति सहसा यः परित्राणबन्धुः ।
प्रत्याख्यानान्मलिनवदनस्तप्तनिश्वासशुष्यत्-
सङ्कल्पाल्पीकृतनततनुर्याति यस्मान्न चार्थी ॥ ५० ॥

धिग्जन्म क्षारसिन्धोः पथिकजनपृथूच्छासनिर्दग्धहृद्भ-
स्तापं योऽर्थिप्रजानां हरति न विषमं तीव्रतृष्णासमुत्थम् ।
जाता[1] स्वादोऽप्यगस्त्योदरकुहरलुठज्जाठराग्निप्रताप-
व्यापारव्याप्यमानक्वथनपरिचितः स्वप्रमाथव्यथानाम् ॥५१॥

इति सञ्चिन्त्य नृपतिः कृतातिथ्यः फलाम्बुना ।
समुवाचाप्रियाख्यानभीतिभीत इव क्षणम् ॥ ५२ ॥

ब्रह्मन्नदीनपुण्योऽहं राजा शत्रुवधोद्यमे ।
हिंसाविरक्तः सन्त्यज्य राज्यं विजनमाश्रितः ॥ ५३ ॥

---

[1] W_1 याता ।

ས་སྐྱོང་ལོངས་སྤྱོད་འཚོ་བའི་འབྲས། སྨིན་འཁྱུག་ལྟ་བུར་མི་བརྟན་པ།
གསར་པའི་ཁྲག་གིས་སྦགས་པ་ནི། སྨིན་པོ་བཞིན་དུ་ལོངས་སྤྱོད་བྱེད། 54

གནས་མིན་འདུག་རེས་ཅི་ཞིག་བྱ། ཁྱོད་ནི་དུས་མིན་ཉི་བར་འོངས།
ཆུང་ཟད་བདག་གིས་ནུས་པ་གང་། དེ་ནི་བསྔམས་པ་མེད་པར་བརྗོད། 55

ཅེས་བསྒྲུལ་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས། རྡོ་རྗེས་ཡང་དག་བཅོམ་པ་བཞིན།
གཉིས་ཐར་རི་བ་བྲལ་བ་ལས། ད་ནི་ས་ལ་འགྲེལ་བར་གྱུར། 56

བསྒྲུལ་ཞིང་ས་ལ་འགྲེལ་བ་དེ། མཐོང་ནས་མིག་ནི་མཆི་མར་བཅས།
སྙན་པའི་ཚིག་གིས་དབུགས་ཕྱུང་ནས། རྒྱལ་པོས་སླར་ཡང་རབ་བསམས་པ། 57

ཀྱི་མ་བདག་ནི་བསོད་ནམས་དམན། མྱ་ངན་ལམ་དང་མཚུངས་པ་འདིར།
སྨོན་པའི་རི་བའི་འཁྲི་ཤིང་གི། མྱུ་གུ་འཕྲལ་ལ་བསྐམས་པར་གྱུར། 58

ནོར་དོན་གཉེར་བ་བླུན་པོའི་འདོད་པས་དང་པོ་གནས་མིན་སྨོན་པ་འབྲས་
བཅས་བསམས།

རི་བའི་མྱུ་གུས་འདོད་པའི་བདེ་བ་མ་ལུས་ཡལ་ག་སྟོང་གི་མངོན་པར་བྲིས།
དེ་ནས་ཨ་སྲ་ཐོབ་པར་མ་གྱུར་སེང་ལྡིང་སྐམ་པོས་བཞིན་དུ་སྐད་ཅིག་ལ།
ཤིན་ཏུ་ཆེ་བའི་རྩོམ་པ་ཉམས་ཤིང་རི་ཐག་ཅད་བས་འཕྲལ་ལ་བསྒྲུལ་བར་གྱུར། 59

བསྐྱངས་ནས་སྐྱེད་པ་ཆུང་དུ་ཞིག། གལ་ཏེ་འདི་ལ་བདག་གིས་བྱིན།
བསོད་སྙོམས་བསྐྱངས་ཀྱང་ལྟོགས་གྱུར་བ། དེ་ལ་རེས་ཀྱང་ཅི་ཞིག་བྱེད། 60

हिंसाफलं महीपाला भोगं भ्रूभङ्गभङ्गुरम्।
प्रत्यग्ररुधिरादिग्धं क्रव्याद इव भुञ्जते ॥ ५४ ॥

किं करोम्यपदस्थोऽहमकाले त्वमुपागतः[१]।
यत्तु शक्यं मया किञ्चित्तदयन्त्रितमुच्यताम् ॥ ५५ ॥

इति राजवचः श्रुत्वा वज्रेणेव समाहतः।
बन्धुमोक्षणनैराश्यात् स पपात महीतले ॥ ५६ ॥

मूर्च्छितं पतितं भूमौ तं दृष्ट्वा साश्रुलोचनः।
प्रियाभिर्वाग्भिराश्वास्य राजा पुनरचिन्तयत् ॥ ५७ ॥

अहो नु मन्दपुण्योऽहं यस्मिन्नाशालताङ्कुरः।
मरुमार्गोपमे जातः सहसा शोषमर्थिनः ॥ ५८ ॥

अर्थार्थी प्रथमं विचिन्त्य सफलामस्थानयाच्ञां क्षणात्
आशातूलिकयाभिलिख्य निखिलं शाखासहस्रैः सुखम्।
अप्राप्याम्रमिवाथ शुष्कखदिरान्मूढेच्छया वाञ्छितं
सद्यश्छिन्नमनोरथः पृथुतरारम्भक्षयान्मूर्च्छति ॥ ५९ ॥

अस्मै यदि प्रयच्छामि याचितावाप्तमल्पकम्।
तत् किं तेन करोत्येष भिक्षित्वापि बुभुक्षितः ॥ ६० ॥

---

१ H त्वमिहागतः।

གལ་ཏེ་ཙ་ཚག་རྙིང་པ་དག་གིས་གྲོག་ཕུབ་ཁྲིམ་ནི་དེ་ཉིད་དུ་གནས་ཤིང་།
གང་ཡང་ནུབ་མེད་ཁྱི་ལའི་ཕྲུག་གུ་ཐབ་ཏུ་ཉལ་ལ་རྩེ་ལྡན་དེ་དག་གིས།
གལ་ཏེ་ཀུང་བ་ཉིད་ཀྱིས་འགྲོ་ཞིང་སླར་ཡང་དེ་ནི་བསྟེན་བྱ་དེ་ལྟ་ན།
དེ་ནི་ངེས་པར་ས་བདག་སྐད་ཅིག་མཐོང་དང་མགུ་བ་ལ་ཡང་ཡོན་ཏན་ཅི། 61

བློ་གྲོས་བརྩེ་བའི་ནོར་འཛིན་གྱིས། དེ་ལྟར་བསམས་ནས་ས་འཛིན་དབང་།
དེ་འདོད་བསྒྲུབ་པར་ཆས་གྱུར་པས། རབ་སད་བྱས་ཏེ་དེ་ལ་སྨྲས། 62

ལོངས་ཤིག་བྲམ་ཟེ་ཁྱོད་ཀྱི་ནི། འདོད་པ་བསྒྲུབ་སླད་མི་ཐོགས་པར།
འབྲས་བུ་ཐོབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་མཆོག། བདག་གིས་ཡང་དག་རྙེད་པར་གྱུར། 63

རེ་ཞིག་བདག་གི་མགོ་བཅད་ནས། སོང་སྟེ་ས་བདག་ཚངས་བྱིན་ལ།
བྱིན་ན་དེ་ནི་དགའ་བ་ཡིས། ཁྱོད་ལ་ནོར་དག་སྟེར་བར་འགྱུར། 64

སློང་བའི་ཙན་དན་སྦྲོན་པ་དེའི། ཚིག་དེ་ཐོས་ནས་གཉིས་སྐྱེས་ནི།
ནུ་བར་རབ་ཞུགས་གདུང་བ་ཡིས། ཁབ་ཀྱི་ཕྲུག་བཞིན་རབ་སྨྲས་པ། 65

སྲིད་གསུམ་སྙིང་པོ་སྐྱེ་བ་ནི། འགྲོ་བའི་བསོད་ནམས་ཀྱིས་ཐོབ་པ།
ཁྱོད་ཀྱི་མགྲིན་པ་འདི་ལ་མཆོན། བརླང་པོ་སྡིག་ཅན་སུ་ཞིག་བསྣུན། 66

ཆགས་པས་བློ་གྲོས་ཉམས་པ་སུ། ཁྱོད་ལ་མི་ཕན་སེམས་པར་བྱེད།
ས་ཏ་ཀཱ་ར་སོལ་བ་ཡི། སྒྱུ་རུ་མ་རུངས་སུ་ཞིག་བྱེད། 67

तस्मिन्नेव गृहे जरत्तृणकटच्छन्ने यदि स्थीयते
चुल्लीसुप्तविडालबालसदृशास्ता एव यद्यङ्गनाः ।
पादाभ्यामवगम्यते यदि पुनस्तेनैव सेवाधुना
तत् को नाम गुणः क्षणं क्षितिभुजा दृष्टेन पुष्टेन[१] वा॥६१॥

इति ध्यात्वा धराधीशः कृपावसुधया धिया ।
तद्वाञ्छा[२]सिद्धिसन्नद्धः प्रतिबोध्य तमभ्यधात् ॥ ६२ ॥

उत्तिष्ठ वत्स सम्प्राप्तस्त्वत्समीहितसिद्धये ।
अविलम्बिफलावाप्तिरुपायः परमो मया ॥ ६३ ॥

छित्त्वा मम शिरस्तावत् ब्रह्मदत्ताय भूभुजे ।
गत्वा प्रयच्छ तत्प्रीत्या स ते वित्तं प्रदास्यति ॥ ६४ ॥

तस्यार्थिचन्दनतरोः श्रुत्वैतत् वचनं द्विजः ।
उवाच तप्तसूच्येव विद्धः कर्णप्रविष्टया ॥ ६५ ॥

तव त्रैलोक्यसारस्य जगत्पुण्याप्तजन्मनः ।
शस्त्रं कण्ठे शठेनास्मिन् केन पापेन पात्यते ॥ ६६ ॥

लोभलुब्धमतिः को नु चिन्तयेदहितं तव ।
अङ्गारकारणं कौर्यं सहकारे करोति कः[३] ॥ ६७ ॥

११ W_2 and H तुष्टेन वा । २ H and W_1 तद्वाञ्छा ।
३ W_2 and H सः ।

ཅེས་སྨྲ་བྲམ་ཟེ་དེ་ལ་ནི། མི་ཡི་བདག་པོས་ལན་སྨྲས་པ།
འཚོ་ཡང་བདག་ནི་བཅིངས་པ་ཡིས། དགྲ་པོ་དེ་ཡི་དྲུང་དུ་ཁྲིར། 68

རྒྱལ་པོས་འབད་པས་དོན་གཉེར་བས། ས་བདག་དགྲ་ཡི་དོགས་པ་ཅན།
ཚངས་བྱིན་དག་གི་དྲུང་དུ་ནི། དེ་ཡིས་དེ་ནི་བཅིངས་ནས་ཁྲིད། 69

དེ་ཡིས་ཁྲིར་ནས་འོངས་པ་ཡི། ས་དབང་དེ་གླངས་ཚངས་པས་བྱིན།
ནོར་དབང་མཚུངས་པས་དེ་ལ་ནོར། འདོད་པ་བས་ཀྱང་མངོན་ལྷག་བྱིན། 70

བསོད་ནམས་མི་དམན་མི་བདག་གི་ནི་སྙིང་སྟོབས་ངོ་མཚར་བྲམ་ཟེས་བ་ཤད་
ཐོས་ནས།
ཁོན་གྱི་ནོས་འགྱུར་ཞེན་དུ་བཟོད་དཀའ་མ་རུངས་ཉིད་དུ་མངོན་བརྗོད་དུག་བདང་སྟེ།
རང་གནས་ཞེན་དུ་མགོ་བར་དེ་ནི་མགོ་བཞིན་བཞག་ནས་ཚངས་བྱིན་རང་ཉིད་ཀྱིས།
དེ་ཡི་ཞབས་ཀྱི་རྩ་སྐྲེས་དག་ལ་གཙུག་ནོར་འབྲི་ང་བས་སྐད་ཅིག་མཛའ་བར་བྱས། 71

དེ་ནི་དུལ་བ་རབ་གྲོབ་རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་སོང་བའི་ཚེ།
ཡོངས་བདང་རྒྱལ་སྲིད་ཡང་དག་ཐོབ་ནས་བསོད་ནམས་མི་དམན་པས།
གྲགས་པ་ལྟར་དཀར་དེ་བུ་བའི་འཕྲིང་བ་གཡོ་ལྷན་རྩ་གཏེར་གྱིས།
དུ་གལ་ཡི་ནོམ་མཛེས་ས་གཞི་ཆོས་ཀྱིས་བསྐྱངས་པར་གྱུར། 72

ཁྱབ་བདག་བསོད་ནམས་མི་དམན་དུ་གྱུར་གང་དེ་ང་ཉིད་དེ།
གང་དུ་དུས་ཀྱི་དགེ་འདུན་མང་པོའི་ཞབས་ཀྱིས་མངོན་དག་འས།
མི་ནམས་དག་གིས་སྲིད་པ་གྲོལ་བའི་རྒྱུ་ནི་འབྱུང་འགྱུར་བ།
འདིར་དེང་དེ་ཡི་སྤྱོད་ཚུལ་སྲིད་པའི་སྙིང་པོས་བདག་གིས་དྲན། 78

इति ब्रुवाणं नृपतिर्ब्राह्मणं प्रत्युवाच तम् ।
जीवन्तं नय बद्ध्वा वा तस्य मामन्तिकं रिपोः ॥ ६८ ॥

यत्नेनाभ्यर्थितो राज्ञा स तं बद्ध्वा महीपतेः ।
निनाय ब्रह्मदत्तस्य समीपं प्रभुशङ्किनः ॥ ६९ ॥

तेनानीतं तमादाय ब्रह्मदत्तः क्षितीश्वरम्[1] ।
धनं धनेशतुल्योऽस्मै वाञ्छिताभ्यधिकं ददौ ॥ ७० ॥

सत्त्वाश्चर्य्यमदीनपुण्यनृपतेराकर्ण्य विप्रोदितं
त्यक्त्वा वैरविकारदुःसहतरं क्रौर्य्याभिधानं विषम् ।
धृत्वा मौलिमिवोन्नते निजपदे तं ब्रह्मदत्तः स्वयं
चक्रे तच्चरणाम्बुजप्रणयिणीमुष्णीषमालां क्षणात् ॥ ७१ ॥

तस्मिन् गते निजपुरं विनयप्रपन्ने
संप्राप्य राज्यमरिहीनमदीनपुण्यः ।
धर्म्मेण कीर्त्तिधवलाम्बुधिफेनमाला-
वेलादुकूलललितां पृथिवीं शशास ॥ ७२ ॥

योऽभूद्विभुर्भुवनसारमदीनपुण्यः
सोऽहं स्मृतं चरितमत्र मयाद्य तस्य ।
कालेन यत्र बहुसद्मपदाभिरामा
भूमिर्भविष्यति नृणां भवमुक्तिहेतुः ॥ ७३ ॥

---

१ W क्षितीश्वरः ।

སྔོན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་གསུང་མཛད་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ནི།
སྐྱོད་ཚུལ་སེམས་དཔའ་རབ་འབར་ཐོས་ནས་ཡ་མཚན་གྱུར་པ་ཡིས།
དགའ་བས་རིག་པར་གྱུར་པ་མཐོ་རིས་བདག་པོའི་ལུས་ལ་ནི།
སྲུ་ལོང་འདབ་མ་མཛེས་པས་སྤྲིས་པ་ཅི་ཡང་བྱུང་བར་གྱུར། 74

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྲིས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་བསོད་ནམས་མི་དམན་པའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་གཉིས་པའོ།།

सत्त्वोज्ज्वलं भगवतश्चरितं निशम्य
पूर्व्वावदानकथितोदितविस्मयेन।
हर्षस्पृशः किमपि नाकपतेर्बभूव
रोमाञ्चपञ्चरचनारुचिरं शरीरम्॥ ७४॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां अदीनपुण्यावदानं नाम द्विपञ्चाशत्तमः पल्लवः॥

Chapter LIII.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་གསུམ་པ།

ལེགས་བཤད་འཚོལ་བའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ལེགས་བཤད་མཁྱེན་པར་ནུས་གནས་བླ་མ་ལ་འདུད་མགོ་དང་ནོ་བར་ཕྲོས་པ་དང་།
ཞལ་ནི་རྟག་ཏུ་སྒྲོན་མེད་བདེན་པ་དང་ལྡན་མཁས་པ་རྣམས་ནི་དགའ་བའི་རྒྱུན།
རིན་ཆེན་ཡིད་འོང་རབ་གསལ་ངོ་ཤལ་བཀོད་པ་བགྲ་བའི་ཁྱད་པར་དང་བཅས་པ།
ཆས་ལྡན་བྱུང་མེད་ཆས་ཀྱིས་སྐྱེ་བོ་ལྷག་མ་རྣམས་ནི་མཆོག་ཏུ་ཆོས་པ་སྐྱེད། 1

གཞན་དུ་བཙོམ་ལྡན་འཇོམ་ལྡན་པ། བགྱི་བྲིན་བསམ་པ་ཤེས་པ་ཡིས།
འཇོམ་པའི་རྒྱུ་ནི་དྲིས་པ་ན། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་ཡང་གསུངས་པ། 2

བ་ར་ཎ་སིར་མི་ཡི་བདག ལེགས་བཤད་འཚོལ་བ་ཞེས་པ་བྱུང་།
གང་གི་གྲགས་པ་དྲི་མེད་རིགས། དཔལ་གྱི་འཕྲེང་བ་བཞིན་དུ་མཛེས། 3

ཡོན་ཏན་སྐྱུང་ལྡན་ལེགས་སྤྱོད་ལྡུམ། དབེན་ལྡན་རྣམས་ཀྱི་སྙིང་ལ་ཆགས།
སྒྱུ་རིག་མ་ཡིན་ལེགས་བཤད་ཀྱི། གྲུན་ཉིད་གང་ཞིག་དོན་གཉེར་གྱུར། 4

གང་གི་མཛོད་དཔལ་སྒྲོང་རྣམས་ལ། རྟག་ཏུ་བཏང་ཡང་གཡོ་བ་མེད།
གྲགས་པ་ཡོན་ཏན་ལ་བདགས་ཀྱང་། རིང་ལས་ཤིན་ཏུ་རིང་བར་འགྲོ། 5

त्रिपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

सुभाषितगवेष्यवदानम् ।

सूक्तिः कण्ठविवर्त्तिनी गुरुनतिर्मौलौ श्रुतं श्रोत्रयोः
सत्यं नित्यमनामयञ्च वदने विद्वत्प्रियं भूषणम् ।
रत्नोदारसुतारहाररचनाचित्रेण धत्तेतरां
सन्तोषं सविशेषवेषवनितावेशेन शेषो जनः ॥ १ ॥

शक्रेणान्यत्र भगवान् सस्मितः स्मितकारणम् ।
पृष्टस्तदाशयज्ञेन सर्व्वज्ञः पुनरब्रवीत् ॥ २ ॥

सुभाषितगवेषीति वाराणस्यामभून्नृपः ।
यस्य जात्युज्ज्वलाकीर्त्तिर्मालेव विबभौ श्रियः ॥ ३ ॥

सुवृत्ते गुणसंयुक्ते हृदिसक्ते विवेकिनाम् ।
अभूद्भूषण एवार्थी यः सूक्ते न तु मौक्तिके ॥ ४ ॥

नित्यमर्थिषु मुक्तापि कोषश्रीर्यस्य निश्चला ।
कीर्त्तिर्गुणनिबद्धापि दूराद्दूरतरं गता ॥ ५ ॥

རྒྱལ་པོའི་ངང་པའི་སྐད་ངག་མཁན། ཉམས་ལྡན་མཆོག་གི་དྲག་བསྒོར་དེ།
མཁས་པའི་མདུན་ས་པད་ལྡན་ལ། ལོངས་སྤྱོད་སྐལ་བཟང་ལྡན་པ་གྱུར། 6

ཉི་བར་བསྟན་ལ་རབ་ཞུགས་པ། དེ་ཡི་ལེགས་བཤད་ཡོན་ཏན་ཅན།
མར་མེའི་རྩེ་མོ་ལྟ་བུ་ཡིས། སྐྱེ་བོ་རྨོངས་པའི་རབ་རིབ་ཕྲོགས། 7

ནམ་ཞིག་མདུན་སར་བློ་བཟང་དེ། འདུག་ནས་ལེགས་བཤད་གཏམ་གྱི་ནི།
མཇུག་ཏུ་བློ་བཟང་ཞེས་པ་ཡི། བློན་པོའི་གཙོ་ལ་རབ་སྨྲས་པ། 8

ལེགས་པའི་སྨྲ་དང་ཚིག་ལ་མཁས། ཡོན་ཏན་ཀུན་དང་ཡང་དག་ལྡན།
ཁྱེད་རྣམས་དག་གི་ལེགས་བཤད་ཀྱིས། མདུན་ས་འདི་ནི་ངག་བཞིན་མཛེས། 9

ལེགས་པར་སྨིན་ཞིང་རོ་དང་ལྡན། ལེགས་པར་བཤད་པ་གསར་པ་ནི།
མེ་ཏོག་ལྟ་བུ་འགའ་ཞིག་ནི། ཁྱོད་ཀྱིས་སྐྱེད་པར་གྱུར་དམ་ཅི། 10

ལེགས་བཤད་རྣམས་དང་མཐུན་རྣམས་དང་། རྟོག་པ་རྣམས་ཀྱང་གྱུར་པ་ནི།
གསར་པ་ཁོན་ཡིད་འཕྲོག་སྟེ། བུད་མེད་རྣམས་ཀྱི་ལང་ཚོ་བཞིན། 11

རོ་དང་ལྡན་ཡང་ཉམས་པར་ཡངས་པའི་མེ་ཏོག་ཏོན་མཐུན་ཡོངས་བཏང་ནས།
ཡོངས་འདྲིས་ཡོངས་སུ་འདོར་ཞིང་རིང་ནས་རིང་དུ་རྗེས་སུ་གྱི་བྱེད་པ།
གསར་པ་གསར་པའི་སྦྲང་རྩི་ལ་ཆགས་ཀུན་དྲུག་པ་ནི་ནགས་རྣམས་སུ།
དག་ཏུ་ཉམས་སུ་སྤྱོད་གྱུར་རིན་ཅན་མཚར་ལས་འཁྱམ་པར་བྱེད། 12

स राजहंसः सरसैर्वृतः कविवरैः सदा।
विद्वत्सभाकमलिनीभोगसौभाग्यवानभूत् ॥ ६ ॥

उपदेशप्रवृत्तस्य सगुणास्तस्य सूक्तयः।
जनस्य मोहतिमिरं जहुर्दीपशिखा इव ॥ ७ ॥

स कदाचित् सभासीनः सुभाषितकथान्तरे।
सुमतिः सुमतिं नाम प्रधानामात्यमब्रवीत् ॥ ८ ॥

साधुशब्दपदारूढैर्गुणालङ्कारशालिभिः।
सभा भवद्भिर्भात्येषा भारतीव सुभाषितैः ॥९ ॥

अप्यन्विष्टानि सत्याकरसवन्ति नवानि च।
सुभाषितानि भवतां कुसुमानीव कानिचित् ॥ १० ॥

सूक्तीनां प्रतिभानाञ्च मञ्जरीणाञ्च जृम्भितम्।
नवमेव मनोहारि नारीणामिव यौवनम् ॥ ११ ॥

सरसमपि विहाय व्यायतं पुष्पसार्थं
परिचितपरिहारी दूरदूरानुसारी।
भ्रमति सततसक्तास्वादमन्दादरत्वात्[1]
नवनवमधुलुब्धः षट्पदः काननेषु ॥ १२ ॥

१ Orig. मन्दाररत्वात्।

མདུན་ས་འདིར་ནི་ཅུང་ཟད་གང་། ལེགས་བཤད་རིན་ཅན་ནོམ་དཔྱོད་དེ།
ཡོངས་སུ་བརྟག་པས་ཐར་པ་དེ། ཀུན་དུ་རིན་ཐང་མེད་པར་འགྱུར། 13

མཁས་པ་ཉིད་ནི་མེད་ན་བློ་གྲོས་ནོམ་ཉམས་མི་ནོམས་འཚོ་བ་དོན་ཡོད་མིན།
མཚུངས་མེད་གྲུས་པའི་སྐད་ངག་མེད་ན་མཁས་པ་ཉིད་ནི་ནོ་ཙའི་ཀློག་དང་
མཚུངས།
སྙིང་ལྡན་ནོམས་ཀྱིས་ནང་གི་དེ་ཉིད་དཔྱོད་པ་མེད་ན་རབ་མཛེས་སྐད་ངག་ནི།
སྟོང་པ་ཉིད་དེ་དབེན་སའི་ཁྲོན་པའི་སར་མི་བཞིན་དུ་བསྟེན་པར་འགྱུར། 14

དེ་ཡི་སླད་དུ་གནས་སྐབས་འདིར། ཁ་བྱུག་སྨྲ་ཡིས་ཏྲེ་ཏླ་བཞིན།
ལེགས་བཤད་གོ་སྐབས་གྲོགས་པོ་ཡིས། གསར་པ་ཅུང་ཟད་བརྗོད་པར་མཛོད། 15

གལ་ཏེ་སྐད་ཅིག་རེ་ཉིད་ཤེས་པས་མཆོག་ཏུ་ཡིད་དོན་སྒྲུབ་བྱེད་ན།
ཚིག་ནོམས་ཀྱིས་ནི་ཛ་ཏིའི་ཏྲི་བཟང་ངོ་མཚར་བ་དག་སྐྱེད་པར་བྱེད།
ཛཱ་སྲིད་སྐྱེ་བོ་ལེགས་བཤད་བརྗོད་ལ་གོ་སྐབས་མེད་པས་ཐོབ་མིན།
དེ་ལྟ་ན་ཡང་མཆོག་གི་ཚོགས་ལ་ལྷག་པར་བསྟར་བྱས་འདི་འབྲས་བྲལ། 16

དེ་སྐད་མི་མགོན་གྱིས་བརྗོད་པ། བློ་ལྡན་སྙིང་ལ་རེག་པའི་ཚིག
ཐོས་ནས་བློན་པོ་ཆེན་པོ་ཡིས། ས་ཡི་བདག་ལ་ལན་གསོལ་པ། 17

རྒྱལ་པོ་ཁྱོད་ཀྱི་ཚོགས་བཅད་ཉིད། མངོན་པར་གསར་པ་སྲིད་གསུམ་ན།
སྒྲོགས་ན་མཁས་པའི་དབང་ཕྱུག་དག། ལེགས་བཤད་གྲུས་པ་གཞན་གྱིས་ཅི། 18

अस्मिन् सदसि यत्किञ्चित् सूक्तरत्नं विचार्य्यते।
तत्परीक्षासमुत्तीर्णं सर्व्वथायात्यनर्घ्यताम्॥ १३॥

पाण्डित्येन विना विनाशितधियां व्यर्थं नृणां जीवितं
पाण्डित्यं शुकपाठषण्ढमसमोल्लासं कवित्वं विना।
काव्यं चारुतरं विना सहृदयैस्तत्त्वान्तरालोचना-
शून्यं निर्जनकूपदीपकलनामन्तःसमालम्बते॥ १४॥

तस्मादस्मिन्नवसरे नूतनं किञ्चिदुच्यताम्।
चैत्रः पिकरुतस्येव सूक्तस्यावसरः सुहृत्॥ १५॥

चमत्कारो वाचां जयति जितजातीपरिमलः
क्षणं चेत् तत्त्वज्ञाः प्रगुणमवधानं विदधति।
उदग्रा सामग्री तदपि विफलैषा स्फुरितकृत्
न यावत् पाठेन स्वजन इव लब्धो ह्यवसरः॥ १६॥

इत्युक्तं नरनाथेन हृदयस्पर्शि धीमताम्।
वचः श्रुत्वा महामात्यः प्रत्यभाषत भूपतिम्॥ १७॥

राजन्नभिनवश्लोकस्तवैव भुवनत्रये।
गीयते विबुधाधीश किमन्यैः सूक्तविस्तरैः॥ १८॥

---

१ $\frac{W}{3}$ ०संभ्रम०।

གུས་ལྡན་གདོང་པོད་མཆོག་གྱུར་ཁྱོད། རིག་པ་དག་ལ་དགོས་པ་འདིར།
ས་ཡི་མཐིལ་འདི་ཐམས་ཅད་ནི། རིག་པ་འཛིན་པའི་གྲོང་ཁྱེར་གྱུར། 19

ཁྱོད་ནི་ཡོན་དན་ལྡན་པའི་གྲོགས། སྐྲ་ཅོལ་པནྡྷ་ལྡན་པས་མཛེས།
ཤར་ཆེ་སྐྱེ་བོ་མཐའ་དག་ནི། སྣང་བཅས་ལེགས་པའི་ལམ་ནས་འགྲོ། 20

གང་དང་གང་ལ་གྲོལ་པོ་རྗེས་སུ་ཆགས་པར་སྐད་ཅིག་ནི།
གུས་པའི་ཚ་ཤས་བྱས་པའི་སྐྲ་ཅོལ་དག་ནི་དེ་དེ་དང་།
རྩེ་དགའི་ཚས་ཀྱི་བྱེ་བྲག་དེ་དེ་ཡོན་དན་དེ་དེ་དང་།
སྐྱེ་བོ་སྤྱོད་ཚུལ་དེ་དེ་འཇིག་རྟེན་དགའ་བ་ཉིད་དུ་འགྱུར། 21

ས་སྐྱོང་མཁས་ན་རིག་པའི་རྩེ་དགའི་སྤྲོ་ལ་མཆོག་ཏུ་རེག་པར་གྱུར།
དཔའ་ན་གཡུལ་གྱི་རོལ་པ་དང་འགྲོགས་བརྟུལ་ཞུགས་བརྟུལ་ཞུགས་འཛིན་པར་
འགྱུར།
བློན་ན་སྔོངས་ཤིང་གསོ་ན་ནོམ་པར་གཡོ་ལ་གདུག་ན་མ་རུངས་སྤྱོད།
གང་གང་ས་བདག་བྱེད་པ་དེ་དེ་མཐའ་དག་སྐྱེ་བོ་བྱེད་པར་འགྱུར། 22

མི་རྟོག་འབྱུང་གནས་ལེགས་པ་ཡི། མི་རྟོག་གྲུས་བྱེད་ཉམས་དང་ལྡན།
ས་བདག་རང་ཉིད་མཁས་པ་ནི། སྐྱེ་གུའི་བསོད་ནམས་ཉིད་ཀྱིས་འབྱུང་། 23

སྐྱེ་བོ་ལེགས་བྱེད་བློ་ལྡན་བློན་པོ་དང་།
མི་བདག་མཁས་ཤིང་བདེན་པར་སྨྲ་བྱེད་པ།
འདི་དག་ཉམས་ནི་དགེ་བ་དར་བའི་དུས།
མངོན་སུམ་དུ་མཆོན་མཚན་ཉིད་བཟང་པོ་ཡིན། 24

त्वयि विद्याविनोदेऽस्मिन् वदान्यवर सादरे ।
विद्याधरपुरं सर्व्वं जातमेतन्महीतलम् ॥ १९ ॥

कलाकमलिनीकान्ते मित्रे गुणवतां त्वयि ।
उदिते याति सालोकः सन्मार्गेणाखिलोजनः ॥ २० ॥

सा सा कला स स विलासविशेषलेश-
स्ते ते गुणाः स स जनश्चरितञ्च तत्तत् ।
लोके प्रियत्वमधिरोहति यच्च यच्च
राजा करोति सरसः क्षणमादरांशम् ॥ २१ ॥

भूपाले विदुषि स्पृशत्यतिशयं विद्याविलासोत्सवं
शूरे सङ्गररङ्गसङ्गमरुचिर्ग्लाति वीरव्रतम् ।
मूढ़े मुह्यति चञ्चले विचलति क्रूरे नृशंसायते
यत् यत् भूमिपतिः करोति कुरुते तत्तत् समस्तो जनः ॥२२॥

सरसः साधुपुष्पाणां वसन्तः कुसुमाकरः[1] ।
प्रजापुण्यैर्भवत्येव स्वयं विद्वान्महीपतिः ॥ २३ ॥

जनः सुवृत्तिर्मतिमानमात्यः
सत्याभिलाषी नृपतिर्मनीषी ।
एतानि कालस्य शुभोदयस्य
प्रत्यक्षलक्ष्याणि सुलक्षणानि ॥ २४ ॥

---

१ W_1 and W_2 विकाशकुसुमाकरः ।

གང་གིས་གནས་དང་གནས་སུ་དགོས་དོན་ཉིད་ལ་བློ་ལྡན་བློ་ནི་གང་བྱེད་ཅིང་།
གང་ཞིག་འབྱོར་ཚེ་ལེགས་ལྡན་བདག་ཉིད་ཉམས་ཀྱིས་ལེགས་བཤད་ནོ་བའི་
ཀྱིན་དུ་གྱུར།
གང་འདི་མི་བདག་བདག་ཉིད་ཆེ་གྲུས་ཀྱི་ཡིས་དབུལ་བའི་དབྱངས་ཅན་དག་གི་
གཏེར།
འདི་ནི་རང་ཉིད་དམ་པའི་ཚིག་དག་ལ་རིག་པའི་ཁྲིམ་ཐབ་སྟོ་དགའ་ཡིན། 25

རྒྱལ་པོའི་བཀུར་བ་ཆེན་པོ་ཡིས། དམ་པའི་ཡོན་དན་མཛེས་པ་ནི།
ཉགས་སུ་ཏོན་པ་ནམས་ཀྱང་ནི། ཉུས་པ་ཉམས་པར་བཀྲལ་ལ་ཆགས། 26

ཏོན་པ་གདུག་པ་ཅན་ཞེས་པ། ཉགས་ཀྱི་མཐའ་འཁོབ་དགེ་ན་གནས།
དེ་ལས་དག་དུ་ལེགས་བཤད་ཀྱི། རིན་ཆེན་གསར་པ་གསར་པ་ཐོབ། 27

བྲིགས་ལྡན་གཉིས་འཕྲང་དགྲ་གཏེར་ནི། བསྟུན་བྲལ་གླང་པོའི་སྣ་དགག་གིས།
སྐད་ངག་མཁན་གྱི་དོན་མཐུན་ལས། རྟག་ཏུ་དེ་ཡིས་ལེགས་བཤད་བླངས། 28

ཞེས་པ་སློན་པོའི་ཚིག་ཐོས་ས་བདག་གིས།
མདུན་ས་པ་བཀྲི་མདུན་ས་རབ་བཏང་ནས།
སྨས་པའི་གཟུགས་ཀྱིས་པོ་བྲང་འཁོར་སོང་དེ།
ཐུན་མོང་སྐྱེ་བོའི་རྗེས་སུ་མཐུན་པར་བྱས། 29

यन्नृत्यन्ति पदे पदे मतिमतां काव्यार्थतत्त्वे धियो
यत् कर्णाभरणीभवन्ति विभवे भव्यात्मनां सूक्तयः।
यत् सारस्वत एष कीर्णमहिमा मुद्रादरिद्रोनिधि-
र्विद्यानां नृपतिः स्वयम्बरविधौ सोऽयं विवाहोत्सवः ॥२५॥

राजमानेन महता राजमाने गुणे सताम्।
लुब्धकाः सूक्तिवैचित्र्ये लुब्धकाः काननेष्वपि ॥ २६ ॥

लुब्धकः क्रूरको नाम प्रत्यन्तेऽस्ति वनेचरः।
सदा नवनवं[1] तस्मात् सूक्तरत्नमवाप्यते ॥ २७ ॥

हर्म्यद्विपारिनखराघातभिन्नेभमौक्तिकैः।
सततं कविसार्थेभ्यः स गृह्णाति सुभाषितम् ॥ २८ ॥

✓ श्रुत्वेत्यमात्यस्य वचः क्षितीशः
सभां समुत्सृज्य विसृज्य सभ्यान्।
अन्तःपुरं गुप्तमुपेत्य रूपं
चकार सामान्यजनानुरूपम् ॥ २९ ॥

---

१ W/I नवरतम्।

སྐར་ཚོགས་གྱིས་པ་ལྷ་བུར་མཛེས་དགའ་ཞིང་།
པན་ཚུན་འོད་ཟེར་རབ་ཏུ་གསལ་བྱེད་པའི།
དོ་ཤལ་བཟུང་ནས་ལེགས་ར་ཤད་དོན་གཅེར་ཏེ།
གྲིབ་མ་གཉིས་པ་དང་བཅས་ནགས་མཐར་སོང་། 30

དེ་ནི་ངེས་པར་དུད་པའི་ཤིང་རྣམས་ཀྱིས།
མི་དོག་རླུང་གཞོན་གྱིས་བཀྲམ་མགྲོན་བྱས་བཞིན།
དེ་ཡིས་འབད་པས་བཙལ་བས་རྫོན་པ་ནི།
རྫོན་ལ་རབ་ཆགས་རི་ཡི་ངོས་སུ་རྙེད། 31

གླང་པོ་རྣམས་ཀྱིས་བདེ་བའི་མི་མཐུན་ཕྱོགས།
རི་དྭགས་རྣམས་ལ་ཡུག་ཟས་འདེབས་བྱེད་མཁས།
འཕྲོག་པོའི་རིམ་པ་བཞིན་དུ་མ་རུངས་གཞུ།
རང་སེམས་ལྷ་བུ་ལག་པ་གཡོན་པས་འཛིན། 32

རྟག་ཏུ་ནགས་ན་གནས་པའི་མི་མཐུན་ཕྱོགས།
གསོད་པ་གཅིག་པུ་ལ་མཁས་ལག་གཡས་ཀྱིས།
ལག་ལྡན་སྡེ་རྣམས་མཐའ་དག་བུང་གྲོལ་ལ།
རྣམ་པར་འགྲོད་པའི་མདའ་ནི་རབ་ཏུ་འཛིན། 33

परस्परांशुप्रतिबद्धतारं[1]
विस्फारताराानिकराभिरामम् ।
हारं समादाय सुभाषितार्थी
छायाद्वितीयः स ययौ वनान्तम् ॥ ३० ॥

स तत्र वातानिलकीर्णपुष्पैः
वृक्षैः कृतातिथ्य इवावनम्रैः ।
अन्विष्य यत्नान्मृगयाप्रसक्तं
गिरेस्तटे लुब्धकमाससाद ॥ ३१ ॥

वामेन वामं करिणीसुखानां
वैधव्यदीक्षारसिकं मृगीणाम् ।
चक्राक्रमं[2] क्रूरतरं करेण
चापं स्वचित्तोपममुद्वहन्तम् ॥ ३२ ॥

वधैकदक्षेण च दक्षिणेन
वनौकसां नित्यमदक्षिणेन ।
हस्तेन विन्यस्त-समस्त-हस्ति-
वर्गापवर्गं[3] विशिखं दधानम् ॥ ३३ ॥

१ ०H भारम् । २ H वक्राक्रमम् । W/2 वक्रानमम् ।
३ H वर्गोपसर्गम् ।

རྩེ་མོ་རླུང་གིས་དལ་གྱིས་བསྐྱོད་པ་ཡི།
ས་བྱའི་སྒྲ་ཡི་སྙོད་གཡོགས་བསྒྲུབས་གྱུར་པ།
སྐྲག་པ་གསོ་བ་རི་དྭགས་ཉམས་ཀྱི་ཞིག།
བདག་པོ་འཚོ་བ་བསྲུང་བར་གསོལ་འདེབས་བཞིན། 34

དེས་དེ་ཚོགས་གིས་མངོན་མཆོད་མཆོད་བྱ་བཞིན།
སྐྱེ་གུའི་བླ་མས་ཕྱག་འཚལ་བླ་མ་བཞིན།
མཆུ་མཛེས་དམར་བས་ཕྲེ་བ་སོ་ཡི་འོད།
ཡལ་འདབ་ལྷ་བུ་འཛིན་ཅིང་རབ་སྨྲས་པ། 35

ཁྱོད་ནི་དོག་ཏུ་ལེགས་པའི་ལེགས་བཤད་ཉམས།
བསྐྱུ་ལ་རབ་ཏུ་འབད་པ་བདག་གིས་ཐོས།
སྐྱེ་བོའི་ལམ་བསྟན་སྐད་དུ་ལེགས་བཤད་ཀྱི།
རིན་ཅན་སྒྲོན་མེ་གསར་པ་ཙུང་ཟད་སྩོལ། 36

རང་གཟུགས་རོལ་པས་ཟླ་བའི་སྡིགས་འཇོམས་ཤིང་།
དཔལ་གྱི་འཇོ་སྒེག་འཇུམ་པའི་རྩེ་དགའ་བསྐྱེད།
ཐུན་པའི་ཚོགས་ཉམས་འཇོམས་པའི་རོ་ཤལ་འདི།
ཁྱོད་ཀྱི་དེ་ཡི་འདོད་པའི་རང་བཞིན་ཡིན། 37

मायूरपक्षैरनिलावहेला-
तरङ्गिताग्रैर्विहितोत्तरीयम्।
नेत्रैर्मृगीणां पतिजीवरक्षां
सन्त्रासलोलैरिव याच्यमानम्॥ ३४॥

स तं गिरा पूज्यमिवाभिपूज्य
गुरुः प्रजानां गुरुवत् प्रणम्य।
उवाच शोणाधरकान्तिभिन्नां
दन्तद्युतिं पल्लवितां दधानः॥ ३५॥

मया श्रुतः साधु सुभाषितानां
तवानिशं संग्रहणे प्रयत्नः।
मार्गोपदेशाय जनस्य दीप्तं
प्रयच्छ किञ्चिन्नवसूक्तरत्नम्[१]॥ ३६॥

अयञ्च ते तत्प्रतिपण्यरूपो
लावण्यलीलादलितेन्दुदर्पः।
हारः प्रहारस्तिमिरोत्कराणां
लक्ष्मीविलासे स्मितकेलिकारः॥ ३७॥

---

१ H नवरसूक्तम्।

ཞེས་བརྗོད་དོ་ཤལ་འོད་ཀྱིས་ཕྱོགས་ཁེངས་པ།
ས་ཡི་འཁྲིར་འཇིག་དག་གིས་དེ་ལ་བརྟེན།
ཀླི་ལམ་རི་བ་ཙམས་ལ་ཀྲེད་དཀའ་དེ།
ཇོན་པས་མཐོང་ནས་དཔལ་གྱིས་རབ་བསམས་པ། 38

ཀློག་ཅིང་བདག་ལ་སྦྲིན་བྲ་བྱིན་ནས་ཀྱང་།
ཕྱི་ནས་འདི་ནི་ངེས་པར་གཏུང་བར་འགྱུར།
འདི་ནི་འཇིག་རྟེན་ཕ་རོལ་སར་འདས་ནས།
ནོ་ཤལ་ཇི་ལྟར་བདག་རང་ཉིད་དུ་འགྱུར། 39

སྐད་ཅིག་འདི་བསམས་དེ་ལ་དེས་སྨྲས་པ།
དགེ་བ་དམ་ཚིག་གིས་ནི་ལེགས་བཤད་སྦྱིན།
གལ་ཏེ་རི་འདིའི་རྩེ་ལ་རང་གི་ལུས།
ལེགས་བཤད་ཐོབ་པའི་འཕྲལ་ལ་མཆོང་ནའོ། 40

གདུག་པའི་སེམས་ལྡན་ཇོན་པའི་ཚིག་དེ་དག།
ཐོས་ནས་ས་ཡི་བདག་པོས་རབ་བསམས་པ།
ཀྱེ་མ་ངེས་པར་འདུ་བྱེད་ལྡན་པ་འདི།
དགག་པའི་བྱ་སྤྱོད་དག་ལ་མངོན་པར་སྦྱོར། 41

उक्तेति हारं करपूरिताश्रु-
मदर्शयद्भूमिपुरन्दरोऽस्मै ।
तं लुब्धकः स्वप्नमनोरथेषु
दुष्प्रापमालोक्य शनैः प्रदध्यौ ॥ ३८ ॥

दत्त्वाप्यधीमानिममप्रदेयं
पश्चादयं तापमुपैति नूनम् ।
अस्मिन्नतीते परलोकभूमिं
हारः कथं मे निजतामुपैति ॥ ३९ ॥

क्षणं विचिन्त्येति स तं बभाषे
ददामि साधो समयेन स्रक्तम् ।
शृङ्गाद्गिरेरस्य यदि स्वदेहं
सम्प्राप्तस्रक्तः क्षिपसि प्रसह्य ॥ ४० ॥

क्रौर्य्योचितं लुब्धकवाक्यमेतत्
अचिन्तयद्भूमिपतिर्निशम्य ।
अहो नु संस्कारवतोऽस्य कामं
निषिद्ध-कार्य्याचरणाभियोगः ॥ ४१ ॥

རིང་དུ་ཡོན་དན་བསྒྲུབ་པར་གྲགས་གྱུར་ཅིང་།
མངོན་དུ་ངན་པའི་སྤྱོད་པ་མཆོན་གྱུར་པ།
བསམ་པ་གྲུ་གྲུ་ཚོམས་ཀྱི་གྲགས་པ་གཞན།
དེ་བཞིན་སྤྱོད་ཚུལ་གཞན་དེ་མཚུངས་མ་ཡིན། 42

ངན་པ་འདི་ཅི་ནགས་མཐར་གནས་པ་ཅི།
སེམས་ཅན་འཚེ་ཅི་ཡོན་དན་མངོན་སྦྱོར་ཅི།
ལེགས་བཤད་བརྗོད་ཅི་བརྩི་བ་མེད་ཉིད་ཅི།
ཀྱི་མ་འདི་ཡིས་སྤྱོད་ཚུལ་སྨོངས་པས་བཅོམ། 43

ཀྲུན་དུ་མདུན་ནས་སྙན་པའི་གླུ་ལེན་ཅིང་།
ནགས་ཀྱི་བདུལ་ཞུགས་ཚོམས་ཀྱི་ཞི་བཞིན་མཛེས།
སྲིད་ལྷན་ཇོན་པའི་ཡོན་དན་བསྔུ་བ་ནི།
སྒྲོག་ནི་འཕྲོག་བྱེད་ཅི་ཞིག་བརྗོད་པའམ། 44

རིག་པའི་ཁྱད་པར་དགའ་ལ་འབབ་ཐམས་ཀྱང་།
མི་བསྒྲུན་ངེས་པར་བརྣང་པའི་རང་བཞིན་ཉིད།
གདེངས་ཀའི་རིན་ཅེན་མཛེས་འཛིན་སྦྲུལ་ཚོམས་ནི།
གདུག་པའི་སྨན་པ་ཁྲི་བའི་རང་བཞིན་འཛིན། 45

दूरे गुणारोपण-विस्मृतानां
प्रत्यक्षसंलक्षितदुष्कृतानाम् ।
भवत्यतुल्यः कुटिलाशयाना-
मन्यः प्रवादश्चरितं तथान्यत् ॥ ४२ ॥

क्व क्षुद्रतैषा क्व वनान्तवासः
क्व सत्त्वहिंसा क्व गुणाभियोगः ।
क्व हृतचर्चा क्व च निष्कृपत्व-
महो विमोहाद्दृतमस्य वृत्तम् ॥ ४३ ॥

गायत्यसक्तं मधुरं पुरस्तात्
वन्यव्रतैः शान्त इवावभाति ।
लुब्धस्य लुब्धस्य किमुच्यते वा
प्राणापहारी गुणसंग्रहैर्यः ॥ ४४ ॥

विद्याविशेषेऽपि कृतप्रयत्नः
खलो भवत्येव खरस्वभावः ।
व्यालाः फणारत्नरुचिन्दधानाः
क्रूरं तमः क्रोधमयं वहन्ति ॥ ४५ ॥

བསྟན་བཅོས་མན་ངག་ཉམས་ཀྱིས་དག་བྱས་ཀྱང་།
ངེས་པར་བློ་ངན་རབ་དང་ཉིད་མི་འགྱུར།
ག་བུར་ཚོགས་ཀྱིས་ཡོངས་སུ་བགོས་གྱུར་ཀྱང་།
མི་བཟད་སྒོག་པ་རང་གི་དྲི་མི་གཏོང་། 46

ཡུན་རིང་འདི་སྤྱད་ཡོན་དན་དོན་གཉེར་དེས།
གསར་པའི་ཉེར་བསྟན་ཉན་པར་མངོན་འདོད་ལས།
ལེགས་བཤད་སྤྱོལ་ཅིག་ས་འཛིན་ངོས་རྩེ་ལས།
ཕྱི་ནས་ལུས་འདི་འོར་བར་བྱ་ཞེས་སྨྲས། 47

བདེན་པའི་ནོར་ལྡན་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས།
དོ་ཤལ་འོད་ཀྱིས་གཙུག་ལག་ཁང་ཀླུངས་ཏེ།
གཟུང་བར་མཛོད་ཅེས་བརྗོད་ནས་ཕྲ་མོར་ནི།
རིགས་པ་མིན་ལ་ཆགས་པས་བརྗོད་པར་བཙམས། 48

རང་བདེ་འམ་ལས་ཀྱི་དེག་ཏུ་གཏུང་བྱེད་སྡིག་དང་ཉོན་མོངས་རིག་མི་བྱ།
ཚུལ་ཁྲིམས་ཀྱིས་ཀྱང་དགེ་བའི་གནས་ཀྱི་བསོད་ནམས་ཚོགས་ལ་མཆོག་ཏུ་བསྟེན།
གཡོ་བའི་ཡུལ་གྱི་ཉམས་སྟོང་དགྲ་ལ་ལྷག་པར་ཆགས་པའི་སེམས་འདི་ནི།
ཆགས་དང་བྲལ་ཞིང་མངོན་འདོད་མཐའ་ཡས་ཚིག་ཤེས་དག་གིས་ཆོམ་པར་བྱ། 49

शास्त्रोपदेशैः परिमृज्यमानः
प्रसन्नतां याति न नाम जाल्मः ।
कर्पूरपूरैः परिपूरितोऽपि
नोद्दात्यसह्यं लशुनः स्वगन्धम् ॥ ४६ ॥

चिरं विचार्य्येति स सद्गुणार्थी
नवोपदेशश्रवणाभिलाषात् ।
प्रयच्छ सूक्तं क्षितिभृत्तटाग्रात्
त्यक्ष्यामि पश्चात्तनुमित्युवाच ॥ ४७ ॥

श्रुत्वा वचः सत्यधनस्य तस्य
हारं समादाय रुचां विहारम् ।
प्रगृह्यतामित्यभिधाय सूक्तं
प्रचक्रमे वक्तमयुक्तसक्तः ॥ ४८ ॥

पापं शापं[१] स्वसुखशरणे न स्पृशेत्तीव्रतापं
शीलोत्तालं कुशलसदनं पुण्यपद्मं भजेत ।
चित्तं चैतच्चपलविषयास्वादसंवादलुब्धं
कुर्य्याद्वीतस्पृहमभिमतानन्तसन्तोषतृप्तम् ॥ ४९ ॥

१ W॰ तापम् ।

འདི་ནི་བདེ་ག་ཤེགས་བསྟན་པ་དག་དང་རབ་ཞི་རྒྱལ་སྲིད་སེང་གེའི་ཁྲི།
མི་ནོར་སམས་དག་གི་གདུང་བ་སྐྱོང་བྱེད་དགེ་བའི་ཆོས་ནི་ཐུབ་མོང་ཉིད།
ཡིད་བྱུང་ནོམ་པར་སེལ་བར་བྱེད་པའི་ནོམ་འགྱུར་དག་ནི་ཀུན་དུ་འཇོམས།
ཡིད་ཀྱི་མེ་ལོང་དག་བྱེད་ལེགས་བྱས་ཚོགས་ནི་ཉི་བར་སྒྲུབས་པ་ཡིན། 50

ལེགས་བཤད་འདི་ནི་མི་བདག་དེ་ཉིད་རྗེས་སུ་འབྲང་བས་རི་དྭགས་དགྲ་ལས་རྙེད།
ལེགས་རོན་དྲི་མེད་བདག་ཉིད་དག་བྱེད་དེ་ཡང་སྙིང་ལ་ནོམ་བཀོད་ནས།
ཤིན་དུ་མགྲོ་བའི་རི་ཡི་རྩེ་མོར་འཛེགས་ནས་ལུས་ནི་རབ་དུ་བདང་བར་གྱུར།
བསོད་ནམས་ཡིད་ལྡན་ནོམས་ནི་ཤིན་དུ་བདེན་པ་འདོད་ཀྱི་གསོ་བའི་ལུས་
འདི་མིན། 51

འགྲོ་ནོམས་ཡང་དག་བསྒྲལ་སླད་སྨོན་ལམ་དག་ནི་ནང་ཉིད་དུ།
བཟུང་ནས་དེ་ནི་རི་ཡི་རྩེ་ལས་ཇི་སྲིད་ལྷུང་གྱུར་པ།
དེ་སྲིད་རི་ཡི་གནས་བསྟེན་ནོམ་པར་རྒྱལ་བ་ཞེས་བྱ་བའི།
གནོད་སྦྱིན་གྱིས་བསྲུངས་ལུས་ནི་ས་ལ་རབ་དུ་ཕྱིན་པར་གྱུར། 52

དེ་ཡིས་བཙོན་འགྲུས་ཡ་མཚན་དབང་གིས་བཞིན་དུ་འཇིག་རྟེན་གསུམ།
འདར་བར་གྱུར་ཅིང་བར་སྣང་ལས་ཀྱང་མེ་ཏོག་ཆར་བབས་ཆོ།
གནས་སྐབས་གསུམ་པའི་ཚོགས་ཀྱིས་སྤྱོད་ཚུལ་ཡང་དག་མཆོད་གྱུར་པའི།
རྒྱལ་པོ་དཔལ་གྱིས་རང་གི་རྒྱལ་པོའི་ཕོ་བྲང་དག་དུ་སོང་། 53

इदं सुगतशासनं प्रशमराज्यसिंहासनं
नृणां व्यसनवारणं कुशलधामसाधारणम्।
मनोभवविसर्जनं भवविकारसन्तर्जनं
मनोमुकुरमार्जनं सुकृतसञ्चयोपार्जनम्॥ ५० ॥

संप्राप्येति सुभाषितं मृगरिपोस्तत्त्वानुसारी नृपः
सूक्तार्थं हृदये निधाय विमलं तं चात्मसंशोधनम्।
आरुह्याद्रिशिरः समुन्नततरं देहं समुत्सृष्टवा-
निष्टं सत्यमतीव पुण्यमनसां नेदं वपुश्चञ्चलम्॥ ५१ ॥

सन्तारणाय जगतां प्रणिधानमन्त-
र्धृत्वा स शैलशिखरान्निपपात यावत्।
तावत् गिरिस्थितिजुषा विजयाभिधेन
यक्षेण रक्षिततनुः क्षितिमाससाद॥ ५२ ॥

तद्वीर्यविस्मयवशादिव घूर्णमाने
लोकत्रये कुसुमवर्षिणि चान्तरीक्षे।
संपूज्यमानचरितस्त्रिदशव्रजेन
राजा जगाम शनकैर्निजराजधानीम्॥ ५३ ॥

དེ་ནས་དེ་ནི་ཕན་པར་རབ་ཞུགས་ས་ཡི་དབང་པོ་ཡིས།
ཉེ་བར་བསྟན་པའི་ཡུལ་ཅན་ལེགས་པར་བཤད་པ་དེ་ཡིས་ནི།
ཏོག་དུ་སྐྱེ་བ་ན་ལུས་སྲིད་པ་ཟིལ་གྱིས་གནོན་བྱེད་པ།
ཆོས་ཀྱི་བདེ་བ་ཏག་ཏུ་དམ་པའི་ལས་ལ་འགོད་པ་བསྒྲུབས། 54

གནས་སྐབས་འདིར་ནི་ཚོང་འདུས་དག་གི་ལམ་དུ་ཇོན་པ་འདི།
དོ་ཤལ་བཙོང་བའི་བློ་ཡིས་ཡོངས་སུ་ཀུ་བར་བྱེད་པ་ན།
འདི་ནི་ཆོས་ཀུན་པ་ཞེས་མཚུངས་མེད་བབ་ཅོལ་འདར་ལྡན་པ།
ས་བདག་མདུན་སར་གྲོང་ཁྱེར་སྐྱོང་བའི་སྐྱེ་བོས་ཁྱེར་པར་གྱུར། 55

རིང་པོ་ཉིད་ནས་དོ་ཤལ་འོད་ཟེར་རབ་གསལ་ནོས་འཕྲོ་ཆགས་གྱུར་པ།
སློག་ནི་འཛོམས་པའི་དམ་ཚིག་བསྒྲུབས་པ་དེ་ནི་གྱུལ་པོས་ཤེས་གྱུར་ནས།
འདི་ནི་བདག་གི་སློབ་དཔོན་ཞི་བའི་ཡོ་དན་གསལ་བའི་ལེགས་བཤད་སྟོན།
མཆོད་འོས་འདི་ཞེས་བཏུད་བྱས་མཆོད་པ་བྱས་ནས་དེ་ནི་བཏང་བར་གྱུར། 56

དེ་ལྟར་མི་བདག་ལེགས་བཤད་ཅེས་བྱ་བཞིན་པའི་བདུལ་ཞུགས་སྐྱིང་སྟོབས་
ལྡན་པར་གྱུར།
དེ་ཉིད་དུས་ཀྱི་སྐབས་ཡང་རྟོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་གཏེར་གྲོབ་བདག་ཉིད་ང་ཡིན་ནོ།
རང་གི་སྤྱོད་ཚུལ་བཙོམ་ལྡན་གྱིས་བཤད་དེ་དག་ཐོས་ནས་ལྷ་ཉམས་བདག་པོ་ནི།
དགའ་བས་སྤྱན་གྱི་ནགས་ཚལ་ཉམས་པར་གྱིས་པ་པདྨའི་འབྱུང་གནས་དཔལ་
བསྟེན་གྱུར། 57

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ལེགས་བཤད་འཚོལ་བའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་གསུམ་པའོ།།

तत्रोपदेशविषयेण सुभाषितेन
तेनानिशं जनमशेषमथ क्षितीशः।
चक्रे भवाभिभवशर्म्मणि धर्म्मनित्ये
सत्कर्म्मणि प्रणिहितं हितसम्प्रवृत्तः ॥ ५४ ॥

अत्रान्तरे विपणिवर्त्मनि लुब्धकोऽसौ
हारस्य विक्रयधिया परिवर्त्तमानः।
चौरोऽयमित्यसमसाहसकम्प्यमानः
क्ष्माभृत्सभां नगररक्षिजनेन नीतः ॥ ५५ ॥

दूरादेव स्फुटतरकरासक्तविस्फारहारं
प्राणापातैर्विहितसमयं तं परिज्ञाय राजा।
आचार्य्योऽयं मम शमगुणव्यक्तसूक्तोपदेष्टा
पूजार्होऽसाविति कृतनतिः मानयित्वात्यजत्तम् ॥ ५६ ॥

इत्यासीत्स सुभाषिताख्यन्टपतिः सत्यव्रतः सत्यवान्
सम्यग्बोधिनिधानलब्धमहिमा कालेन सोऽहं पुनः।
श्रुत्वैतत्कथितं निजं भगवता वृत्तं सुराणां पति-
र्भेजे हर्षविबुद्धलोचनवनः पद्माकरस्य श्रियम् ॥ ५७ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां सुभाषितगवेष्यवदानं नाम त्रिपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

Chapter LIV.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བཞི་པ།

སེམས་ཅན་སྨན་ཞེས་པའི་རྟོགས་བརྗོད།

༄༅། །ཀྱི་ཆེར་གྲགས་པ་བསྟེན་པའི་བསྔགས་འོས་རི་བོང་ཅན་ལྟར་མཛེས།
གཙུག་གི་ནོར་བུ་གཞན་གྱི་དོན་ལ་སྐྱོ་བ་མེད་པའི་དང་།
གང་གི་སློག་ནི་སོང་བར་གྱུར་ཀྱང་ལེགས་པའི་སྐྲ་ཡིས་གནས།
བཀྲ་ཤིས་གཏེར་གྱིས་འཇིག་རྟེན་དག་གི་དགེ་བ་གྲུས་པར་བྱེད། 1

མི་དོག་ཅན་མ་ཞེས་པ་ཡི། མཚན་གྱི་བརྟུལ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས།
རི་དྭགས་འགྲོག་བྱེད་བརྟུལ་ཞུགས་ནི*། དོགས་མེད་ལྡན་པའི་ཚལ་ན་བཞུགས། 2

དེར་ནི་རྗེས་སོང་བགྲོ་བྱིན་གྱིས། སྐར་ཡང་འཇོམ་ལྡན་དགའ་ལ་དྲིས།
དེ་ཡི་མངོན་སྤྱོད་དྲན་གྱུར་ནས། འཇོམ་པའི་རྒྱུ་ནི་རབ་ཏུ་གསུངས། 3

ལོ་ནི་སྟོང་ཕྲག་བདུན་ཅུ་གཉིས། སྐྱེ་བོ་ཆེ་རིང་གྱུར་ཚེ་སྔོན།
གྲོང་ཁྱེར་དབང་ཆེན་ལྡན་ཞེས་པ། མགོ་རིས་དགའ་བ་ཕུལ་པར་གྱུར། 4

དེར་ནི་ནོར་གྱི་བློ་གྲོས་བདག། དབང་ཆེན་པོ་ཞེས་བྱ་བ་བྱུང་།
གང་གི་གྲགས་པ་གཡུར་གྱི། སྟོང་བུས་ཕྱོགས་ནི་སྒྲུན་བྲལ་བྱས། 5

---

* Here the translator has evidently mistaken the word ব্রত (བརྟུལ་ཞུགས་) for ব্রাত (ཚོགས་རྣམས་) which means multitude or number.

चतुःपञ्चाशत्तमः पल्लवः।

सर्व्वौषधावदानम्।

श्लाघ्यः शशाङ्करुचिरः पृथुकीर्त्तिभाजां
शङ्कः शिखामणिरखिन्नपरोपकारः।
यः साधुशब्दवसतिर्गतजीवितोऽपि
लोकस्य मङ्गलनिधिः कुशलं तनोति ॥ १ ॥

भगवान् पुष्पिलां नाम विनीय क्षणदाचरीम्।
विजहार हरिव्रातनिःशङ्कहरिणे वने ॥ २ ॥

तत्रानुयायिना पृष्टः पुनः शक्रेण सस्मितः।
स पूर्व्वचरितं स्मृत्वा स्मितकारणमभ्यधात् ॥ ३ ॥

द्वासप्ततिसहस्राब्ददीर्घायुषि जने पुरा।
अभून्महेन्द्रवत्याख्या जितस्वर्गोत्सवा पुरी ॥ ४ ॥

महेन्द्रसेन इत्यासीत्तस्यां वसुमतीपतिः।
यश्चक्रे कीर्त्तिकर्पूरवर्त्त्या वितिमिरा दिशः ॥ ५ ॥

གང་ཞིག་སྨན་པ་དམ་པ་བཞིན། དགྲ་ཡི་གྲགས་པའི་རིམ་བཅོམ་ཞིང་།
སྐབས་ངན་བསྟེན་པའི་ནད་སྤྲོགས་ཏེ། སྐྱེ་གུ་སྲིད་བྲལ་རྣལ་གནས་བསྐྱབས། 6

བསོད་ནམས་ཚོགས་ནི་རྣམ་བཅས་ཉིད། གྲུར་པ་བཞིན་དུ་དེ་ཡི་བུ།
སེམས་ཅན་ཀུན་ལ་ཕན་བརྩོན་པ། སེམས་ཅན་སྨན་ཞེས་བྱ་བར་གྱུར། 7

དེ་ནི་བསྐལ་པ་བཟང་པོ་པའི། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔས་བསྐྱོད།
སྙིང་རྗེ་དགའ་དང་བཏང་སྙོམས་དང་། བྱམས་པ་རྣམས་ཀྱི་གྲོགས་སུ་གྱུར། 8

གྲོང་དང་གྲོང་ཁྱེར་ནགས་མཐའ་དང་། ཕྱོགས་དང་གླིང་རྣམས་ཐམས་ཅད་ནས།
ནད་པ་འོངས་རྣམས་རྟག་ཏུ་ནི། དེ་ཡིས་རིག་པས་བསོས་པར་གྱུར། 9

སྐྱེ་བོའི་ནགས་འདིར་དམ་པ་དེ། ཙན་དན་བཞིན་དུ་ཅི་ཡང་སྤྱོད།
གང་གི་ལུས་ཀྱི་གཞན་ཕན་འདི། མི་ཆུང་རབ་ཏུ་གྲུས་པར་བྱེད། 10

ཆེན་པོའི་ནད་ཀྱིས་གདུངས་པ་རྣམས། དེ་ཡིས་འཕྲུལ་ལ་བདེ་བར་བསྐྱབས།
ངན་པའི་ཉོན་མོངས་གདུང་བ་རྣམས། དམ་པ་དག་དང་འགྲོགས་པས་བཞིན། 11

དོན་གཉེར་རྣམས་ཀྱི་ལུས་ཀྱི་ནད། རིག་པ་དང་ནི་སེམས་ཀྱི་ཡང་།
ནོར་གྱི་སྒྲོགས་པས་ཕྱོགས་རྣམས་སུ། ནད་པ་མེད་ཅིང་སྨོང་མེད་གྱུར། 12

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་རྒྱ་དགའ་ནི། ངོ་མཚར་ཐམས་ཅད་འཕྲོག་བྱེད་པས།
སྐྱེ་བོའི་བསོད་ནམས་ཡོངས་ཟད་ལས། དཔལ་ལྡན་དེ་ནི་མཐོ་རིས་སོང་། 13

रिपुदर्पज्वरहरः क्लृप्तहृद्दुर्दशाजुषाम्।
व्यधात्तृष्णापहः स्वस्था यः सद्वैद्य इव प्रजाः ॥ ६ ॥

तस्याभूत् पुण्यसम्भार इव साकारतां गतः।
पुत्रः सत्त्वौषधो नाम सर्व्वसत्त्वहितोद्यतः ॥ ७ ॥

स भाद्रकल्पिको बोधिसत्त्वः सत्त्वविभूषितः।
करुणामुदितोपेक्षामैत्रीणां वल्लभोऽभवत् ॥ ८ ॥

पुरग्रामवनान्तेभ्यो दिग्द्वीपेभ्यश्च सर्व्वशः।
रोगिणोऽभ्येत्य सततं तत्स्पर्शात् स्वास्थ्यमाययुः ॥ ९ ॥

स कोऽप्यस्मिन् जनवने सुजनश्चन्दनायते।
परोपकारमतनुं तनुर्यस्य तनोत्यलम् ॥ १० ॥

स दीर्घव्याधिदग्धानां विदधे सहसा सुखम्।
दुर्जनायासतप्तानामिव साधुसमागमः ॥ ११ ॥

रोगे स्पर्शेन शारीरे मानसे द्रविणेन च।
हृते तेनार्थिनां दिक्षु नार्त्तोऽभून्न च याचकः ॥ १२ ॥

ततः कालविलासेन सर्व्वाश्चर्य्यापहारिणा।
स ययौ निधनं श्रीमान् जनपुण्यपरिक्षयात् ॥ १३ ॥

བདུད་རྩིའི་ཟེར་ནི་ཉིན་འགའ་མིག་རྣམས་དག་གི་ཕྱུང་བའི་བདག་ཉིད་འགྱུར།
ཡོན་དངར་ནི་བཟང་སྤྲོ་བའི་མེ་ཏོག་རྣམས་ནི་སྐད་ཅིག་གནས་པའི་ཚོགས།
དུས་མིན་དུས་ནི་འདོད་པས་མཆོག་ཏུ་དགའ་བ་ཤིན་ཏུ་གཅོད་ལ་མཁས།
ཅི་ཡང་འདི་ནི་སུ་ཡི་ཡིད་ལ་ཟུག་རྔུ་ལྟ་བུར་བསྒྲུབ་མ་ཡིན། 14

གང་ཞིག་ཡིད་འོང་བསོད་ནམས་ཡངས་པའི་གྲོང་གིས་རྟེན་གྱུར་པ།
གདུང་བ་ཀུན་གྱི་སྨན་དང་འབད་མེད་བདེ་བ་སྐད་ཅིག་གིས།
ངེས་པར་དུས་ཀྱི་ཆ་ཡིས་འཇོམས་པ་དེ་ནི་མཐོང་གྱུར་ནས།
བློན་པོ་རྣམས་ནི་དབེན་པའི་ཆ་ལ་རྣམ་ཡང་མི་རིག་གོ། 15

དེ་ནས་དེ་གྲགས་ལྷག་མའི་ཚོ། དང་པོ་དེ་བྲལ་ལས་སྐྱེས་པའི།
སྡུག་བསྔལ་བཏང་ནས་ནད་རང་བཞིན། སྐྱེ་བོ་རང་གི་སྡུག་བསྔལ་བསྟེན། 16

དེ་ནས་གཞོན་ནུ་དག་གི་ལུས། མཚན་ཉིད་ཤེས་པའི་བློན་པོ་ཡིས།
ནགས་ཀྱི་མཐའ་རུ་རབ་བསྲུངས་ཏེ། སྐྱེ་བོ་རྣམས་ལ་ཕན་སླད་བཀོད། 17

མེ་ཏོག་འཁྲི་ཤིང་གིས་བྲིས་པ། ཁྱིང་བྲུ་དགའ་བའི་གནས་དེར་ནི།
བསོད་ནམས་བཞིན་དུ་དེ་ཡི་ལུས། སྙིང་པ་མེད་པ་ཉིད་དུ་གནས། 18

རི་བས་ཕྱོགས་མཐའ་ལས་འོང་བ། ནད་པའི་ཚོགས་ཀུན་སླར་ཡང་ནི།
དེ་ཡིས་ཡང་དག་རིག་ཙམ་གྱིས། འཕྲལ་ལ་བསོས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 19

सुधांशुर्नेत्राणां कतिपयदिनास्वाद्यमहिमा
क्षणस्थायी वर्गः सुरभिगुणसर्गः सुमनसाम्।
अकाले कालेच्छा[1] प्रियतरसमुच्छेदचतुरा
विधत्ते कस्यैषा किमपि न मनःशल्यकलनाम्॥ १४॥

यत्पेशलं विपुलपुण्यपरैर[2]वाप्तं
सर्व्वार्त्तिभेषजमयत्नसुखं क्षणेन।
तत्तद्विलोक्य किल कालवलावलीढं
मूढाः स्पृशन्ति न विवेकलवं कदाचित्॥ १५॥

अथ तस्मिन् यशःशेषे त्यक्ता तद्विरहोद्भवम्।
दुःखं स्वदुःखमेवादौ भेजे रोगभयाज्जनः॥ १६॥

लक्षणज्ञैः कुमारस्य शरीरं मन्त्रिभिस्ततः।
न्यस्तं हिताय लोकानां वनोपान्ते सुरक्षितम्॥ १७॥

तस्मिन् पुष्करिणीरम्ये देशे फुल्ललताकुले।
अपर्युषितमेवासीत्तस्य पुण्योपमं वपुः॥ १८॥

आशागता दिगन्तेभ्यः सर्व्वरोगिगणाः पुनः।
तस्य संस्पर्शमात्रेण सहसा स्वस्थतां[3] ययुः॥ १९॥

---

१ H कृतान्तेच्छा। २ H ०पुण्यपरै०। ३ H स्वस्थताम्।

དེ་ཡིས་རིག་པའི་རླུང་གི་ནོར་བསྐྱོད་པདྨའི་ཚོགས་རྣམས་དང་།
རྒྱུ་ལ་གྲུ་བས་བགྱིན་པས་མཚོ་སྐྱེས་ཅན་གྱི་རྒྱུ་ལ་ནི།
ཁྲུས་བྱས་མཐའ་དག་ནད་ལས་རྣམ་གྲོལ་སྐྱོན་དང་བྲལ་གྱུར་ཅིང་།
འཕྲལ་ལ་ཉིད་དུ་མི་རྣམས་བདུད་རྩི་འཐུངས་བཞིན་རབ་ཏུ་མཛེས། 20

གང་གི་མིང་ནི་བསྒྲགས་ཉིད་ཀྱིས། ནད་རྣམས་ཟད་པ་ཉིད་འགྱུར་བ།
གང་ཞིག་གཞོན་ནུ་སེམས་ཅན་སྨན། དེར་ནི་ང་ཉིད་དེ་ཚེ་གྱུར། 21

དྲན་པའི་བདུད་རྩི་དག་གི་གཏམ། འདི་དག་སུ་ཞིག་དྲན་ན་ཡང་།
དེ་ཡི་ནད་གདུང་རང་བཞིན་གྱི། སྡུག་བསྔལ་ཉེ་བར་ཞི་བར་འགྱུར། 22

དུས་ཀྱི་ཡུལ་འདིར་མི་ཡི་བདག། གང་ཞིག་འཇིག་རྟེན་ལ་ཕན་སླད།
མཆོད་རྟེན་རབ་གནས་བྱེད་འགྱུར་བའི། སྒྲ་ངན་མེད་ཅེས་བྱ་བ་འབྱུང་། 23

འཆི་མེད་རྒྱལ་པོའི་བློ་གཅིག་གིས།
བདེ་གཤེགས་ཀྱིས་བཤད་འདི་ཐོས་ནས།
དགའ་བའི་རོལ་པ་རྣམ་རྒྱས་པའི།
བཞིན་གྱི་འོད་ཀྱིས་རྣམ་པར་མཛེས། 24

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་སེམས་ཅན་སྨན་ཞེས་བྱ་བའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བཞི་པའོ།།

तत्स्पृष्टमारुतविघट्टितपद्मखण्ड-
हिण्डीरमण्डनजलासु सरोजिनीषु ।
स्नाता विमुक्तसकलामयनिर्व्यपायाः
पीतामृता इव बभुः सहसैव मर्त्याः ॥ २० ॥

सत्त्वौषधकुमारो यः सोऽहमेव तदाभवम्[१] ।
यस्य सङ्कीर्त्तनेनैव यास्यन्ति व्याधयः क्षयम् ॥ २१ ॥

स्मरिष्यति स्मृतिसुधां ममैतां यः कथामपि ।
आधिव्याधिमयं दुःखं तस्य शान्तिमुपेष्यति ॥ २२ ॥

अशोको नाम देशेऽस्मिन् कालेनोत्पत्स्यते नृपः ।
चैत्यं हिताय लोकस्य यः प्रतिष्ठापयिष्यति ॥ २३ ॥

इति सुगतोदितमेकधिया
श्रुत्वैवामरराजः ।
हर्षविलासविकाशितया
वदनरुचा विरराज ॥ २४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां सत्त्वौषधावदानं नाम चतुःपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

---

१ W_1 °भवत् ।

Chapter LV.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་ལྔ་པ།

ཐམས་ཅད་སྟེར་བའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

༄༅། ཡིད་བཞིན་ནོར་བུ་ངེས་པར་ནམ་བསམས་དངོས་པོ་སྟེར་བྱེད་ཅིང་།
དཔག་བསམ་ཤིང་ཡང་ལོངས་སུ་བརྟགས་པ་ལོ་ན་སྐྱེད་པར་བྱེད།
ལུས་ནི་རབ་སྦྱིན་དམ་ཚིག་དག་ལ་རང་ཉིད་བརྩོན་པ་གང་།
དེ་དག་བསྟོད་ལ་ཡང་དག་འོས་པའི་ཚིག་ནི་གང་ཞིག་ཡིན། 1

ཀྲྀ་ཊ་ཡ་བ་ཀྲྀ་ཊ་ཀ། སྨྱོ་བྱེད་གསང་པ་པ་བརྟུལ་ནས།
སྨྲ་ཅན་ནགས་ལས་མ་སྣང་བར། སྟོན་པ་ནགས་ཚལ་གཞན་དུ་གཤེགས། 2

དེར་ནི་སྔོན་བྱུང་དྲན་གྱུར་ནས། བཞིན་འཛུམ་མཛད་ལ་འཛུམ་པའི་རྒྱུ།
བརྒྱ་བྱིན་གྱིས་ནི་གུས་པས་དྲིས། དེ་ཡིས་སླར་ཡང་རབ་གསུངས་པ། 3

གྲོང་ཁྱེར་ཐམས་ཅད་ལྡན་པ་ཞེས། ནོར་བུའི་བ་གམ་ནམ་མཁའ་ལ།
རིག་པའི་འོད་ཟེར་འགྲོད་པ་ཅན། ཕུན་ཚོགས་ཀུན་གྱི་གནས་སུ་གྱུར། 4

དེར་ནི་རྒྱལ་པོའི་ཟླ་བ་དག། དྲི་མེད་འོད་ལྡན་ཀུན་སྟེར་བྱུང་།
གང་གི་གྲགས་པ་ཟླ་འོད་ཀྱིས། སྲིད་གསུམ་ཉིན་དང་མཚན་མོར་མཛེས། 5

पञ्चपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

सर्व्वन्ददावदानम् ।

चिन्तामणिः किल विचिन्तितवस्तुदाता
कल्पद्रुमश्च परिकल्पितमेव सूते ।
तस्य स्तुतौ समुचितानि पदानि कानि
देहप्रदानसमये स्वयमुद्यतो यः ॥ १ ॥

घाटोपघाटकौ शास्ता विनीयोन्मदगुह्यकौ ।
केशिनीकाननादन्यद्वनमन्तर्हितो ययौ ॥ २ ॥

प्राग्वृत्तस्मरणस्मेरवदनः स्मितकारणम् ।
स तत्र पृष्टः शक्रेण प्रणयात् पुनरब्रवीत् ॥ ३ ॥

अभूत् सर्व्वावती नाम वसतिः सर्व्वसम्पदाम् ।
नगरी गगनालम्बमणिहर्म्यांशुहासिनी ॥ ४ ॥

आसीत्सर्व्वन्ददस्तस्यां राजेन्दुरमलद्युतिः ।
यस्य त्रिभुवनज्योत्स्ना बभौ कीर्त्तिर्दिवानिशम् ॥ ५ ॥

མཛེས་ལྡན་ལེགས་བྱས་སྙིང་པོའི་གནས་སྐབས་དག་གི་ཁྱབ་པར་གྱིས།
འདུལ་བའི་ལམ་དུ་གནས་པ་ཐོབ་ཅིང་གཟུགས་བཟང་ལྡན་གྱུར་པ།
གང་གི་ལེགས་སྨྲ་དུལ་བའི་ཀུན་ལྡན་སྒྲོག་པའི་བདེ་ཉིད་དུ།
སྨྲིན་པ་གྱུར་ཏེ་གླང་པོའི་བདག་པོ་དག་གི་བཞིན་དུ་འོ། 6

ནམ་ཞིག་ས་ཡི་བརྒྱ་བྱིན་དེ། སྐྱེ་གུའི་བྱ་བ་ལྟ་བྱེད་ཅིང་།
རྫིས་སུ་གཟུང་ལ་མངོན་ཕྱོགས་པས། ཕྱི་རོལ་ཁྲིམས་གནས་ས་གཞི་བསྟེན། 7

དེར་ནི་མཐའ་ལས་རྒྱལ་ཕྲན་གྱི། མགོ་བོའི་རིན་ཆེན་ལ་སྣང་དེས།
ལུས་ནི་གྲགས་མེད་དག་གི་བཞིན། ས་ཡི་བྱ་བ་ཐོས་པར་གྱུར། 8

དེ་ཡི་ཀོང་སྟེགས་ཟླ་ཞལ་གྱིས། རང་བཞིན་ལ་ནི་འབོས་གྱུར་ཅིང་།
མདུན་དུ་རབ་བདུད་སློང་བ་ཉོམས། སླར་ཡང་བསམ་པའི་གདུང་བ་བཏང་། 9

སྐབས་ཅར་ཕྱུག་རོན་རབ་སྐྲག་ཅིང་། འདབ་གཤོག་ཟད་པ་བཞིན་དུ་ནི།
འགྲོ་བ་མེད་པས་ས་བདག་གི། བྲིན་པའི་ཚ་བ་རབ་དུ་བསྟེན། 10

རབ་སྐྲག་མིག་ནི་འཁྲུལ་བྱེད་ཅིང་། ཡན་ལག་ཀུན་དུ་འཁྲམས་པ་དེ།
མཐོང་ནས་ས་ཡི་བདག་པོ་ནི། འཕྲལ་ལ་བརྩེ་བའི་དབང་དུ་གྱུར། 11

འདི་ཡི་འཇིགས་པ་གང་ལས་ཞེས། རབ་གྱིས་པད་མའི་འཕྲེང་ལྡན་གྱིས།
པདྨོ་ཅན་ལྟར་འོད་གསལ་བའི། སྤྱན་གྱིས་སྒྱུར་དུ་ཕྱོགས་ཚམས་བལྟས། 12

शोभाजुषः सुकृतसारदशाविशेषै-
र्लब्धस्थितेर्विनयवर्त्मनि भद्रमूर्त्तेः।
यस्यायथै विजयमण्डनडिण्डिमत्वं
दानेन कुञ्जरपतेरिव साधुवादः ॥ ६ ॥

स कदाचित् प्रजाकार्य्यदर्शनानुग्रहोन्मुखः।
भेजे बाह्याङ्गनस्थानभुवं भूमिशतक्रतुः ॥ ७ ॥

स तत्रानन्तसामन्तमौलिरत्नेषु बिम्बितः।
शुश्राव पृथिवीकार्य्यमसङ्ख्यैरिव विग्रहैः ॥ ८ ॥

चन्द्रकान्तमये तस्य संक्रान्ताः प्रणताः पुरः।
पादपीठे पुनश्चिन्तातापं तत्यजुरर्थिनः ॥ ९ ॥

अत्रान्तरे परिभ्रष्टः श्रुष्टपक्ष इवागतिः।
पारावतः क्षितिपतेरूरुमूलमशिश्रियत् ॥ १० ॥

तं कातरतरोद्भ्रान्तनेत्रं सङ्कोचिताङ्गकम्।
दृष्ट्वा दयाविधेयोऽभूत् सहसा पृथिवीपतिः ॥ ११ ॥

स समुत्फुल्लकमलालीलाकमलिनीत्विषा।
कुतोऽस्य भयमित्याशा दृशा क्षिप्रं व्यलोकयत् ॥ १२ ॥

སྐབས་དེར་སྨིན་པ་གསོད་བྱེད་ནི། སྙིང་སྟོབས་བརྟག་པར་འདོད་པ་ཡི།
སྒྱུ་མས་ཛྙོན་པའི་ཉམ་པར་ནི། འོངས་ནས་མི་བདག་ལ་སྨྲས་པ། 13

ལྷ་གཅིག་ཡུན་རིང་ན་རྟེན་པའི། བདག་གི་བཟའ་བ་བྲ་དེ་ཐོང་།
འདི་ནི་ས་བསྲུངས་མི་ཐློག་པའི། བདག་ཅག་ལྷན་སྐྱེས་འཚོ་བ་ཡིན། 14

འགྲོ་བའི་བདག་པོ་བདག་གི་ཟས། རང་བཞིན་གྱིས་ནི་གྲུབ་པ་འདི།
མེད་ན་འཚོ་བ་གཏོང་བར་གྱུར། གང་ཕྱིར་ཟས་ནི་སྲོག་གི་གཟུངས། 15

དུས་འདིར་ཟས་ནི་ཆད་པ་ལས། བདག་གི་འཚོ་བ་བཏང་གྱུར་ན།
བདག་གི་ཁྱིམ་ཐབ་བུ་དང་བཅས། རི་བ་ཆད་པས་ཉམ་ཉམས་འགྱུར། 16

ཆོས་ལྡན་གང་གིས་གཅིག་ཉིད་ནི། བསྲུངས་པས་གང་དུ་མང་པོ་དག།
ཆོས་ལས་ཉམས་པར་གྱུར་ན་བྱེ། དེ་ལ་ཆོས་ནི་ཅི་ཞིག་འདྲ། 17

ཕྱུག་རོན་ལ་ནི་བྲམས་པ་ཡིས། བདག་ལ་ཞེ་སྡང་བྱ་མི་འོས།
གང་ཕྱིར་ཁྱོད་ཉིད་ལྷ་བུ་ནི། སྐྱུ་ལྡན་ཆགས་པས་འཇུག་པ་མིན། 18

ཇི་ལྟར་འདི་ཉིད་དེ་བཞིན་བདག། ཁྱེད་ལ་དེད་གཉིས་བྱེ་བྲག་ཅི།
དམ་པ་འབྱུང་པོ་ཀུན་ལ་སྙོམས། གཅིག་ལ་བརྩེ་བ་བྱེད་པ་མིན། 19

དེས་འདི་སྨྲས་ཚེ་མི་བདག་གི། ལག་པ་གདུབ་བུའི་སྒྲ་ལྡན་པས།
འཇིགས་པར་མི་བྱ་ཞེས་སྨྲ་བཞིན། བྱ་ནི་ཕྱུག་གིས་རབ་བསྐྱབས་དེ། 20

तस्मिन्नवसरे सत्त्वं जिज्ञासुः पाकशासनः ।
मायया लुब्धकाकारः समभ्येत्याब्रवीन्नृपम् ॥ १३ ॥

देव मुञ्च चिरावाप्तं भक्ष्यं मम विहङ्गमम् ।
इयं नः सहजा वृत्तिरनिवृत्तिरयाचिता ॥ १४ ॥

निसर्गसिद्धमेतन्मे भोजनं जगतीपते ।
त्यजतो जीवितं नास्ति प्राणा ह्यशनधारणाः ॥ १५ ॥

क्षणेऽस्मिन्नशनच्छेदान्मयि संत्यक्तजीविते ।
विनंक्ष्यति विलुप्ताशा सपुत्रा मे कुटुम्बिनी ॥ १६ ॥

एकसंरक्षणेनैव यः करोति बहुक्षयम् ।
स धर्म्मो यत्र धर्म्मात्मन्नधर्म्मस्तत्र कीदृशः ॥ १७ ॥

मयि पारावतप्रीत्या न द्वेषं कर्त्तुमर्हसि ।
न हि कारणरागेण प्रवर्त्तन्ते भवद्विधाः ॥ १८ ॥

यथैवायं तथैवाहं कोविशेषस्तवावयोः ।
सर्व्वभूतसमाः सन्तः कृपां नैकत्र कुर्व्वते ॥ १९ ॥

इत्युक्ते तेन नृपतिर्लीनं कङ्कणराविणा ।
न भेतव्यमितीवाह खगं प्रच्छाद्य पाणिना ॥ २० ॥

དེ་ནས་སེམས་ཅན་གཟིར་བ་ཀུན། ཡོངས་བསྐྱབ་དུས་ནི་བྲུས་པ་ཡི།
ཆར་སྤྲིན་འཇམ་པའི་སྒྲ་དབྱངས་ལྟར། ཟབ་པའི་ཚིག་གིས་རབ་སྨྲས་པ། 21

སྐད་ཅིག་ཚོམ་པ་དོན་གཉེར་བས། མི་བཟད་སྡིག་ཆགས་གསོད་པ་བྱེད།
ལུས་ཅན་སྡིག་ལ་ཆགས་པ་ཡི། གདུང་བའི་ནོར་འགྱུར་མཚུངས་པ་ཉིད། 22

གཞན་གྱི་སྡིག་ནི་སྤོགས་པ་ཡིས། གང་ཞིག་ཡོངས་སུ་འཚོ་བྱེད་པ།
དེ་ཡི་དགེ་ལེགས་ལྟོག་འགྱུར་དེ། གང་ཕྱིར་སྡིག་པའི་གདུང་བ་སྟེར། 23

དེ་ལྟ་ཉིད་དུ་ས་ཆད་པར། རང་འདོད་ཡང་དག་བཞེད་ཅིང་གསུས།
བདག་གི་དོན་དུ་ཟས་གང་གང་། ཉེ་བར་བསྒྲུབས་པ་བླང་བར་མཛོད། 24

ཅེས་པ་རྒྱལ་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཡོངས་སུ་བཞིན་ལོག་ཤུགས་རིངས་ཅན།
ལོངས་སྤྱོད་མཆོག་ལ་ཡིད་བྱུང་བའི། ཇོན་པས་ལན་ནི་རབ་སྨྲས་པ། 25

བདག་ཅག་ནགས་ན་གནས་ཉམས་ཀྱིས། རྒྱལ་པོའི་ལོངས་སྤྱོད་རོ་མི་ཤེས།
འབྲུ་ཟས་ཉམས་སུ་མ་མྱོང་བའི། རི་དགས་ལ་དུས་དགའ་མ་ཡིན། 26

ཚེར་མའི་འཁྲི་ཤིང་འདབ་མེད་སྦྲ་ངན་དག་ལ་ཡོངས་འཁྲིས་མ་ཐོབ་ནས།
ནགས་ཚལ་ལྟུང་ཞིང་སྨུས་པར་ངོ་མོ་སྦྲ་ངན་དག་གིས་ཅི་ཡང་སྐམས།
ཙུ་ད་རབ་སྨིན་དུག་བཞིན་བྱ་རོག་གིས་ནི་ཟ་བར་མི་བྱེད་དེ།
རང་བཞིན་དག་གི་དབྱེ་བས་འོས་པ་འདིར་ནི་ཀུན་ལ་བདེ་བ་སྟེར། 27

स ततः स्निग्धजीमूतघोषगम्भीरया[1] गिरा।
उवाच सर्व्वसत्त्वार्त्तिपरित्राणकृतक्षणः॥ २१॥

मा कृथाः क्षणतृप्त्यर्थी विषमं प्राणिवैशसम्।
तुल्यव्यथाविकारोऽयं प्राणस्नेहः शरीरिणाम्॥ २२॥

परप्राणापहारेण या तृप्तिः परिकल्प्यते।
निवृत्तिः श्रेयसां सा हि पापतापं प्रयच्छति॥ २३॥

अधुनैवापरिच्छिन्ननिजेच्छासम्मतादरम्।
गृह्यतामशनं यद्‌यस्मदर्थमुपकल्पितम्॥ २४॥

श्रुत्वेति राजवचनं परिम्लानाननः श्वसन्।
वरोपभोगविमनाः प्रत्यभाषत लुब्धकः॥ २५॥

न वयं राजभोगानां रसज्ञा वनवासिनः।
न हि शष्पाशनाभ्यासा मोदन्ते मोदकैर्मृगाः॥ २६॥

अलब्ध्वा निम्बपत्रं मरुपरिचितां कण्टकलतां
वने स्निग्धश्यामे किमपि करभः शुष्यति शुचा।
न काकः सत्पाकं कवलयति चूतं विषमिव
स्वभावानां भेदादुचितमिह सर्व्वस्य सुखदम्॥ २७॥

---

[1] W1 स्निग्धगम्भीरजीमूतघोषया।

རྒྱལ་པོ་འདོས་ཟམ་རིང་ཟློས་ནས། ནང་པར་སྐྱར་ཡང་ཡང་བདག་ཅིང་།
གང་ཞིག་ཉིན་གཞན་རྙེད་དཀའ་མིན། དེ་དག་ཟློས་ན་བདེ་བ་སྐྱེད། 28

གྱི་ཆེ་རོ་ལྡན་ཁ་ཟམ་ཡོངས་འདྲིས་རོ་དང་བྲལ་བ་ཟད་མི་བྱེད།
འཁོར་གྱི་རྩོམ་པ་མང་པོར་ལྷུང་རྣམས་གཅིག་བུ་ཉིད་དུ་གནས་མི་བྱེད།
ཞིང་ད་ཞོན་པ་ཀིང་པས་འགྲོ་བའི་དུས་ན་ཞིན་དུ་སྦྱ་ངན་བྱེད།
དོན་ཐོབ་ཉམས་ན་མི་བཟད་ཉོན་མོངས་ཚུབ་མོར་ཞིན་དུ་གདུང་བར་བྱེད། 29

ལྷ་གཅིག་རྒྱལ་པོ་ལ་འདོས་ཟམ། ཁྱོད་ཀྱི་སྤྱན་གྱིས་གཟིགས་རྣམས་ལ།
རྟག་ཏུ་རྙེད་དཀའ་མིན་མོད་ཀྱང་། སྐྱེ་བར་སྟོན་མེད་བདག་མི་དགའ། 30

ཇོན་པས་མངོན་པར་བསད་པའི་ཤ། བདག་ཅག་རྣམས་ཀྱི་སྲོག་ལྟར་སྐྱོད།
དེས་ན་རང་ལུས་རབ་ཆོད་ལ། བྱ་ཡི་ཉིས་འགྱུར་སྦྱིན་པར་མཛོད། 31

མི་བདག་བསམ་པ་འཁྲུགས་པ་ཡིས། ཚིག་དེ་ཐོས་ནས་འཕྲལ་ལ་ནི།
དགའ་བས་སྤྱན་གྱི་ཆུ་སྐྱེས་དག། རབ་ཏུ་གྱུས་པས་དེ་ལ་སྐྱུས། 32

བྱ་དང་ཁྱོད་ཀྱི་སྲོག་དག་ནི། བསྲུང་སྐྱད་མཚུངས་པའི་ཐེ་ཚོམ་ལ།
བློ་བཟང་ཁྱོད་ཀྱི་ཐབས་འདི་ནི། གསལ་བར་བདག་ལ་ཉེ་བར་བསྟན། 33

གཉིས་ཀའི་སྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་གྱིས། ཁྱོགས་ལ་ཞོན་པས་འཁྲུགས་གྱུར་པ།
བདག་གི་ཡིད་ནི་གློགས་ཀྱིས་བཞིན། ཁྱོད་ཉིད་ཀྱིས་ནི་བརྟན་པར་བྱས། 34

राजार्हभोगं भुक्त्वाद्य प्रातर्भोक्तास्मि किं पुनः।
तद्भुक्तं सुखमाधत्ते यदन्येद्युर्न दुर्लभम् ॥ २८ ॥

रसोदाराहारैर्न हि परिचितोऽश्नाति विरसं
न तिष्ठत्येकाकी बहुपरिजनारम्भपतितः।
रथारूढः पद्भ्यां गमनसमये शोचतितरा
मवाप्तार्थभ्रंशः कषति[1] विषमक्लेशपरुषः ॥ २९ ॥

देव त्वद्दृष्टिदृष्टानां सततं नैव दुर्लभम्।
राजार्हभोजनं किन्तु जन्मापूर्व्वं न मे प्रियम् ॥ ३० ॥

मृगयाभिहृतं मांसमस्माकं जीवितायते।
तत् स्वदेहसमुत्कृत्तं खगद्विगुणमर्प्यताम् ॥ ३१ ॥

चिन्ताविषण्णः श्रुत्वैतत् वचनं सहसा नृपः।
प्रहर्षोत्फुल्लनयनाम्भोरुहस्तमभाषत ॥ ३२ ॥

खगस्य तव च प्राणरक्षायै तुल्यसंशये।
ममोपदिष्टः स्पष्टोऽयमुपायः सुधिया त्वया ॥ ३३ ॥

उभयप्राणसन्देहदोलारोहणविह्वलम्।
त्वयैव धृतिमानीतं वयस्येनेव मे मनः ॥ ३४ ॥

---

१ W कश्यति।

ཁྱོད་ཀྱི་མིག་ཞགས་ཀྱིས་བཅིངས་པའི། བུ་འདི་རབ་ཏུ་གདང་བར་མཛོད།
ད་ལྟ་ཉིད་དུ་བདག་གིས་ཤིས། རེ་ཞིག་སྲོག་གི་གཟུངས་ཐག་མཛོད། 35

རྒྱལ་པོ་དམ་བཅས་བདེན་པ་ཡིས། སྙིང་རྗེ་ལས་ནི་འདི་བརྗོད་ཅོ།
དུག་ལྡན་མདའ་ཡིས་ཟུག་པ་བཞིན། བློན་པོ་རྣམས་ནི་སྐྱོངས་པར་གྱུར། 36

སྦྱིན་པའི་སྐབས་སུ་ཕན་མི་ཕན། གྲོགས་ཀྱིས་བདག་ལ་བརྗོད་མི་བྱ།
ཞེས་པ་དེ་ཡི་དམ་ཚིག་གིས། ལུས་ནི་གཏོང་བར་ངེས་པར་གྱུར། 37

དེ་ནས་མི་བདག་གིས་སྨྲས་པ། གང་ཞིག་བདག་གི་ལུས་ལ་ཤ།
བཅད་ནས་སྤུང་ལ་འདེབས་བྱེད་པ། དེ་ལ་ནོར་ནི་རབ་ཏུ་སྦྱིན། 38

དེ་ནས་རྒྱལ་པོ་གསེར་གྱི་ཆར། འབེབས་པས་བོས་པའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས།
ངན་པའི་ལས་ཀྱི་བློ་སྨྱོས་ཕྱིན། ཉ་བ་བསྐྱིབས་ཤིང་སོང་བར་གྱུར། 39

གདུག་པའི་བློ་ཞེས་བྱ་བ་གཅིག སེར་སྣའི་མིག་ནི་སེར་པོ་ཡིས།
གསེར་དག་བླངས་ནས་གདུག་པ་ཡི། ལས་ལ་ཆས་སུ་ཞུགས་པར་གྱུར། 40

གདུག་པ་ལས་ནི་སོག་ལེ་བཞིན། དྲང་པོ་གཅོད་ལ་མཁས་གྱུར་ཅིང་།
རང་བཞིན་གྱིས་ནི་འཁྲོག་པ་ཡི། གདུག་པའི་བདག་ཉིད་ཅི་མི་བྱེད། 41

त्वद्दृष्टिपाशबद्धोऽयं विहगः प्रविमुच्यताम् ।
मन्मांसैः क्रियतां तावत् सम्प्रति प्राणधारणम् ॥ ३५ ॥

राज्ञा सत्यप्रतिज्ञेन कारुण्यादित्युदीरिते ।
अमात्या मुमुहुर्विद्धा विषदिग्धैः शरैरिव ॥ ३६ ॥

न दानावसरे वाच्यं सचिवैर्मे हिताहितम् ।
इत्यभूत् समयस्तस्य शरीरत्यागनिश्चयः ॥ ३७ ॥

अथाब्रवीन्नरपतिस्तस्मै वित्तं प्रयच्छत ।
तुला[1]मारोपयति मे मांसमुत्कृत्य यस्तनोः ॥ ३८ ॥

हिरण्यवर्षिणा राज्ञा समाहूतास्ततो जनाः[2] ।
कुकर्म्मकुण्ठितधियः पिधाय श्रवणौ ययुः ॥ ३९ ॥

एकस्तु दारुणमतिः नाम्ना कपिलपिङ्गलः ।
अभूत्कणकमादाय सन्नद्धः क्रूरकर्म्मणि ॥ ४० ॥

सरलच्छेददक्षाणां क्रकाणाञ्च[3] निसर्गतः ।
क्रकचानामिव क्रौर्य्यात् किमकृत्यं दुरात्मनाम् ॥ ४१ ॥

17 A   १ All the MSS. तुल्यम् ।   २ $\frac{W}{1}$ हिजाः ।
३ All the MSS. चक्रणाच ।

གང་གི་མཆོད་ཀྱིས་སི་ནུས་དེ་དག་ཀུལ་ཀའི་ཚོག་གིས་འཛོམས་པར་བྱེད།
གང་ཞིག་བརྗོད་པར་སི་ནུས་ཅི་ཡང་དེ་དག་འཕྲུལ་ལ་སྒྲུབ་པར་བྱེད།
གང་ཞིག་བྱ་བར་སི་ནུས་དེ་དག་ཀུང་ནི་ཡིད་ཀྱིས་སེམས་པར་བྱེད།
ས་བརྡུམས་སྲང་པོ་དག་གིས་སྤྱོད་པས་ཅོ་མཚར་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་པར་བྱེད། 42

དེ་ནས་དེ་ཡིས་ཕྱུག་རྫོན་ནི། སྲང་ལ་གཞལ་ནས་ས་བདག་གིས།
བྱིན་པ་གཡས་པའི་ཤ་དག་ནི། རབ་བཅད་དེ་དང་མཚུངས་པར་བཀོད། 43

དེ་ནས་ས་ཡི་བདག་པོ་ཡི། ཁྲག་ཐིགས་དང་པོ་རིག་པ་ཡི།
འཁྲུགས་པ་བཞིན་དུ་ས་གཞི་ནི། ཡུན་རིང་ནམ་པར་གཡོས་པར་གྱུར། 44

དེ་ནས་ཕྱུག་རྫོན་ལྡི་བ་དང་། ཤ་ནི་ཡང་བ་ཉིད་གྱུར་ཚོ།
ཤ་ནི་གཞན་དག་རབ་ཆོད་ལ། བྱིན་ཞེས་ས་ཡི་བདག་པོས་སྨྲས། 45

བརྒྱ་དང་དཔུང་པའི་ཤ་བཅད་ཀུང་། བྱ་དང་མཚུངས་པ་ཉིད་མ་གྱུར།
འཇིག་རྟེན་གྱི་ནི་ཐེ་ཚོམ་དང་། མཚུངས་པའི་སྲང་དེར་མི་བདག་བཞུགས། 46

མི་བདག་ཆུ་ཀྱིས་ལྷག་མའི་ལུས། རང་ཉིད་སྲང་ལ་འཇོག་པའི་ཚོ།
དེ་ཡི་གཏོང་བ་བཟུང་དཀའ་བས། ཡིད་བྱུང་གྲགས་པ་ཕྱོགས་མཚམས་སོང་། 47

དེ་ཡི་དུས་ནས་ཡི་བདག་པོ་དག་གི་བདེན་པ་འདི།
ཉམས་པ་མེད་པས་ཡ་མཚན་གྱུར་པའི་ལྷ་ཡི་བུ་མོ་ནམས།
གཙུག་ཕུད་འཕྲེང་བར་འོས་པའི་པདྨོས་ཡོངས་གང་ལག་པ་ཡིས།
དེ་ཡི་སྤྱོད་ཚུལ་དག་ལ་མཆོད་པའི་གུས་པ་ཅི་ཡང་བྱུང་། 48

न शस्त्रैः शक्यं यद्विदलयति तत् केलिवचसा
न शक्यं यद्वक्तुं किमपि कुरुते तच्च सहसा।
न शक्यं कर्त्तुं यत्तदपि कलयत्येव मनसा
खलः सर्व्वाश्चर्य्यं किरति चरितैरप्रतिहतः॥ ४२॥

स पारावतमारोप्य तुलामथ महीपतेः।
दक्षिणोरुसमुत्कृत्तं मांसं तत्तुल्यमादधे॥ ४३॥

प्रथमैरथ भूभर्त्तुः स्पृष्टा रुधिरविन्दुभिः।
विघूर्णमाना सुचिरं विह्वलेवाभवन्मही॥ ४४॥

पारावतेऽथ गुरुतां मांसे च लघुतां गते।
दीयतामन्यदुत्कृत्य मांसमित्याह भूपतिः॥ ४५॥

हस्तोरुभुजमांसेऽपि न प्राप्ते खगतुल्यताम्।
त्रैलोक्यसंशयतुलामारुरोह तुलां नृपः॥ ४६॥

नृपतौ स्वयमारूढे स्नायुशेषतनौ तुलाम्।
तत्त्यागदुग्धहोदिग्धा ययौ कीर्त्तिर्दिगन्तरम्॥ ४७॥

तस्मिन् क्षणे क्षितिपतेरपरिक्षतेन
धैर्य्येण विस्मयमयस्त्रिदशाङ्गनानाम्।
धम्मिल्लमाल्यपरिपूरितपाणिपद्मः
पूजादरः किमपि तच्चरिते बभूव॥ ४८॥

ནོས་འགྱུར་མེད་པར་ས་ཡི་བདག། སྣང་ལ་འཇིགས་པ་མགོན་གྱུར་ནས།
སྐྱེས་བུ་གདུག་པ་བྱེད་པ་པོ། སྡིག་བཅས་དེ་ཡིས་དེ་ལ་བྲིས། 49

ལུས་ཀྱི་སྦྱིན་པ་འདི་ཡིས་ནི། ཁྱོད་ནི་ཅི་བཞེད་ཡོངས་མི་ཤེས།
གང་ཕྱིར་ལུས་ཅན་རྙེད་པ་ཀུན། ཡང་དག་རྫོགས་པ་ལུས་ཀྱི་དོན། 50

གལ་ཏེ་ལུས་ནི་གདང་ལ་སེམས། ཉམས་པ་མེད་དམ་བདེན་པར་སྨྲོས།
ཞེས་སྨྲས་དེ་ལ་རྒྱལ་པོ་ནི། བཞིན་འཛུམ་ལྡན་པས་རབ་སྨྲས་པ། 51

འཇིག་རྟེན་འདི་ན་ཐོབ་བྱ་ནི། བདག་ལ་ཅི་ཡང་མེད་མོད་ཀྱི།
འགྲོ་བ་ཀུན་ལ་ཕན་པའི་སླད། བླ་མེད་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་འདོད། 52

གལ་ཏེ་བདག་གི་སེམས་འདི་ནི། ཉམས་པ་མེད་ན་བདེན་པ་དེས།
ལུས་ནི་ཡོངས་སུ་མ་ཉམས་ཤིང་། རང་བཞིན་རྫོགས་པ་ཉིད་གྱུར་ཅིག། 53

ཅེས་པ་བརྗོད་པ་ཙམ་ཉིད་ཀྱིས། ས་བདག་བདེན་པའི་ངང་ཚུལ་གྱིས།
ལུས་ཀྱི་མི་ནི་རབ་གསོས་ཏེ། མ་ཉམས་ཟླ་བ་ལྟར་མཛེས་གྱུར། 54

དེ་ནས་ཕྱུག་རོན་ཧོན་པ་དག། སོང་ཞིང་ས་སྐྱོང་འོད་ལྡན་ནི།
ཤར་ཚེ་སྤྲོ་བ་ཆེན་པོ་དང་། རབ་གསལ་འཕྲོར་པ་ལྡན་པར་གྱུར། 55

निर्विकारं समालोक्य तुलारूढं महीपतिम्।
क्रूरकारी स पप्रच्छ पुरुषस्तं ससाध्वसः॥ ४९ ॥

अनेन देहदानेन न जाने किं तवेप्सितम्।
सर्व्वलाभसमारम्भाः शरीरार्था हि देहिनाम्॥ ५० ॥

सत्यं ब्रूहि तनुत्यागे चित्तं यदि न खण्डितम्।
इति ब्रुवाणं तं राजा बभाषे सस्मितानन:॥ ५१ ॥

न प्राप्यमस्ति मे किञ्चिल्लोकेऽस्मिन् किन्त्वनुत्तराम्।
हिताय सर्व्वजगतां सम्यक्संबोधिमर्थये॥ ५२ ॥

अखण्डितमिदं चित्तं यदि सत्येन तेन मे।
अस्तु प्रकृतिमापन्नं शरीरमपरिक्षतम्॥ ५३ ॥

इत्युदीरितमात्रेण सत्यशीलस्य भूपतेः।
अक्लीवचन्द्ररुचिरं रूढव्रणमभूद्वपुः॥ ५४ ॥

ततः पारावते याते लुब्धके च महोत्सवः।
भूपालो भास्वदुदये प्रकाशविभवोऽभवत्॥ ५५ ॥

གང་ཞིག་ངེས་པར་ས་ཡི་བདག་པོ་ཐམས་ཅད་སྡིར་གྱུར་པ།
དེ་ཉིད་ང་ཡིན་སྐྱེས་བུ་སེར་སྐྱ་དེ་ཡང་ལྷས་བྱིན་ནོ།
དེ་ཡི་སྤྱོད་བྱུང་ཡང་དག་དྲན་ནས་བདག་གིས་འཛུམ་པ་སྨྲས།
ཞེས་པ་སྨོད་པ་ལས་ཐོས་འཆི་མེད་བདག་པོ་དགའ་བར་གྱུར། 56

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཐམས་ཅད་སྐྱེར་བའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་ལྔ་པའོ།།

सर्व्वन्ददः क्षितिपतिः किल यो बभूव
सोऽहं पिशङ्गपुरुषः स च देवदत्तः ।
तद्वृत्तसंस्मरणतः प्रसृतस्मितोऽहं
श्रुत्वेति शास्तुरमराधिपतिर्ननन्द ॥ ५६ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां सर्व्वन्ददावदानं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

Chapter LVI.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་དྲུག་པ།

ཀླུ་བ་གླང་སྐྱོང་བདུལ་བའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

གང་དག་མཐོང་བས་ཞི་སྡང་དུག་གི་ནི། ཚ་བ་རབ་ཏུ་ཞི་བ་ཉིད་གྱུར་ཅིང་།
བདུད་རྩིའི་རོ་བསིལ་སྐྱེ་བོ་རྣམ་པ་ཡི། ཀླབ་དེ་དག་སུ་ཡི་ཕྱུག་འོས་མིན། 1

གནོད་སྦྱིན་ཁ་ཏོན་དག་གི་གནས། དེ་ལས་སྣང་བ་མིན་གྱུར་དེ།
གྲོང་ཁྱེར་ཞིང་གུ་མར་ད་ནར། སྐད་ཅིག་གིས་ནི་བཅོམ་ལྡན་བྱོན། 2

དེར་ནི་ས་བདག་ཚངས་བྱིན་གྱིས། དུལ་བ་ཡི་ནི་མཆོད་པ་བྱས།
དེ་ཡིས་ཡང་དག་རྗེས་མཐུན་པར། སྐལ་ལྡན་རྣམས་ལ་རྗེས་བསྟན་མཛད། 3

དེར་ནི་གྲོང་པ་རྣམས་འོངས་དེ། གནོད་པ་ཀུན་ཏུ་ལུས་ཅན་རྣམས།
ཉེས་པར་ལྷུང་ལ་སྐྱོབ་མཛད་པའི། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་རབ་གསོལ་པ། 4

གྲོང་ཁྱེར་མཐའ་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས། རྫོ་བ་ཡི་ནི་རི་ཞིག་ཡོད།
དེ་ན་ཀླུ་ནི་བ་གླང་སྐྱོང་། དྲག་པོ་བཟོད་པར་དཀའ་བ་གནས། 5.

དེ་ནི་ཕྱུགས་དང་སྐྱེ་བོ་དང་། འབྲུ་རྣམས་ཀུན་གྱི་རྡོ་རྗེ་ཆེ།
ཕུན་སུམ་ཚོགས་རྣམས་དངོས་མེད་སླད། ཅི་ཡིས་རྣམ་སྨྲུལ་རིག་མ་གྱུར། 6

षट्पञ्चाशत्तमः पल्लवः।

गोपालनागदमनावदानम्।

सन्दर्शनेन येषां द्वेषविषोष्मा प्रशान्तिमुपयाति।
अमृतरसशीतलास्ते कस्य न सुजनेन्दवो वन्द्याः॥ १॥

धारामुखस्य यक्षस्य स्थानादन्तर्हितस्ततः।
क्षणादवाप भगवान्नगरं हिङ्गुमर्द्दनम्॥ २॥

विनयात् पूजितस्तत्र ब्रह्मदत्तेन भूभुजा।
तत्संसदि क्षणं चक्रे धन्यानामनुशासनम्॥ ३॥

तत्र पौराः समभ्येत्य भगवन्तं व्यजिज्ञपुः।
सर्व्वापद्विनिपातेषु त्रातारं सर्व्वदेहिनाम्॥ ४॥

भगवन्नस्ति नगरस्यान्ते पाषाणपर्व्वतः।
तत्र गोपालको नागः क्रूरो वसति दुःसहः॥ ५॥

स पशूनां जनानाञ्च शस्यानाञ्च महाशनिः।
सम्पन्नानामभावाय न विद्मः केन निर्म्मितः॥ ६॥

མ་དུལ་འདུལ་མཛད་མ་ཞི་བ། ཞི་མཛད་ཁྱོད་ཀྱི་བརྩེ་བ་ནི།
ཉེ་བར་འཚེ་བ་འདི་དག་ལ། བདག་ཅག་སྐྱབས་འཚོལ་རྣམས་ཀྱི་སྐྱབས། 7

ཞེས་བརྗོད་དེ་དག་སོང་བའི་ཚེ། བཅོམ་ལྡན་སྙིང་རྗེའི་གཏེར་དག་ནི།
འདུས་པའི་དབུས་ལས་མི་སྣང་བར། རྡོ་བའི་ས་འཛིན་དག་ཏུ་གཤེགས། 8

དེ་ངོས་ཤིན་ཏུ་སྟུག་པོ་ན། འཇིགས་རུང་གདོངས་ཅན་ཁང་པ་ནི།
དུག་གི་དབུགས་རྣམས་དག་གིས་ཀླུ། སྔོན་པོར་གྱུར་བཞིན་དེ་ཡིས་མཐོང་། 9

རལ་གྲི་ཤུབས་མེད་གཡོ་བ་ཡི། མི་བཟད་བོ་རླབས་ཀྱིས་འཁྲུགས་ནགས།
དེ་ཡི་འགྲམ་དུ་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། སྐྱིལ་ཀྲུང་བཅས་དེ་ཉེ་བར་བཞུགས། 10

མཉེས་ག་ཤིན་སྤྲུན་ནི་བདུད་རྩིའི་གཉེན། དང་བས་རབ་ཏུ་གཟིགས་པ་ཡིས།
དེ་ཡིས་སྒྱུར་བར་དུག་བཞིན་དུ། དུག་དང་བཅས་པ་དུག་མེད་ཐོབ། 11

སྐུ་ལུས་གསེར་འོད་མཐིང་ཁ་ཡི། ཆུ་ལ་སྣང་བས་དེ་རབ་མཛེས།
མ་ར་ཀ་ཏ་ལྟར་མཛེས་པའི། མཐའ་ལ་ཉི་མ་འགྲོ་བ་བཞིན། 12

དེ་ཡི་སྣང་བས་རྣམ་བཅོམ་པས། ཀླུ་ཡི་ཁང་པར་རབ་རིབ་རྣམས།
འགྲོས་པར་བྱེད་པ་གཡོ་བ་ཡི། སྦྲུལ་གྱི་ཚོགས་དང་མཚུངས་པར་གྱུར། 13

ཀླུ་ཡི་གྱིལ་པོས་དེ་མཐོང་ནས། མིག་ནི་ཁྲག་ལྟར་དམར་བ་ཡིས།
འཕྲུལ་ལ་ནམ་མཁར་རབ་ཞུགས་དེ། གྲོང་ཁྱེར་སྤྲིན་གྱི་རང་བཞིན་བྱས། 14

अदान्तदमनस्यास्मिन्नशान्तशमनस्य ते।
उपसर्गे कृपास्माकं शरणं शरणैषिणाम्॥ ७॥

इत्युक्त्वा तेषु यातेषु भगवान् करुणानिधिः।
अन्तर्हितः सभामध्याद्ययौ पाषाणभूधरम्॥ ८॥

तटे विसङ्कटे तस्य भवनं भीमभोगिनः।
स ददर्श विषश्वासैरिव श्यामीकृतोदकम्॥ ९॥

वलन्निष्कोशनिस्त्रिंशविषमोर्मिवनाकुले।
तत्तीरे भगवान् बुद्धः पर्य्यङ्कं समुपाविशत्॥ १०॥

प्रसन्नालोकनसुधाबन्धुना स्निग्धचक्षुषा।
स निनायाशु सविषं विषं निर्विषतामिव॥ ११॥

नीलाम्बुबिम्बिततनुः स बभौ कनकद्युतिः।
रविर्मरकतच्छायं गाहमान इवाम्बरम्॥ १२॥

तिमिरं नागभवने तत्प्रकाशविलुञ्चितम्।
पलायमानव्यालोलव्यालजालतुलां ययौ॥ १३॥

नागराजस्तमालोक्य रुधिरारुणलोचनः।
सहसाकाशमाविश्य चक्रे मेघमयं जगत्॥ १४॥

དེ་ཡི་ཁྲོ་བའི་མེ་ཡིས་ནི། དུ་བའི་ཚོགས་བཞིན་སྨུག་པོ་ལས།
རབ་འཕྲོད་གློག་གི་ལྕེ་རྣམས་ཀྱིས། ཕྱོགས་རྣམས་སྣག་པ་བཞིན་དུ་འདར། 15

སྨྲེས་པའི་སྤྲིན་རྣམས་དག་གི་སྒྲ། འཇིགས་པ་རྩོམ་པར་སྒྲོགས་བྱེད་པས།
ས་འཛིན་རྣམས་ཀྱི་སྙིང་བཞིན་དུ། ཕྱུག་དང་ཁང་པ་ཞོམ་པར་གྱུར། 16

དེ་ནས་རྡོ་ཆེན་ཚོགས་དཀྲིགས་ཆར། རི་འཕྲེང་མཐའ་དག་ཉོན་མོངས་ཤིང་།
བརྟན་པ་ལྷུང་བྱེད་བརྟོན་ཤིང་ནི། ཕྱི་མར་བྱེད་པ་བབ་པར་གྱུར། 17

ལག་འགྲོ་གདུག་པས་རབ་སྤྲོས་པའི། ཆར་དེ་སྤྲོབ་པས་གཟིགས་ཉིད་ན།
རླུང་བཞོན་གཡོ་བས་བསྐྱེད་པ་ཡིས། མེ་ཏོག་ཆར་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 18

དེར་ནི་རབ་གསལ་དྲི་མེད་ནགས་ཚལ་ཉེ་བར་བསྐྱོད་པ་མེད།
ཕྲུང་བ་གླུ་དབྱངས་ལེན་པའི་མི་དོག་དང་ལྷན་མགྲིན་གྱུར་ནས།
དགའ་བའི་འཇུམ་དཀྲིགས་དོ་ཤལ་ཁྲུར་ལས་ངེས་པར་གྲོལ་གྱུར་པའི།
ནགས་ཀྱི་ལྷ་ཡི་གདུག་པའི་གདེངས་ཅན་དབང་པོ་དེ་ལ་སྨྲས། 19

ཀྱེ་ལགས་དུས་ཀྱི་སྤྲིན་དག་ནམ་འགྱུར་དག་ནི་ཡོངས་སུ་ཐོབ།
ཁྱོད་ལྟ་བུ་རྣམས་འཇིགས་པའི་རླུང་གིས་བཙོས་པར་གྱུར་བ་ན།
གང་གི་ཀེད་སྐབས་ཕྱུག་གི་རོལ་པས་སྐྱབས་སུ་འགྲོ་བྱེད་པ་ར།
གསེར་གྱི་རི་བོ་འདི་ལ་ཅི་ཡང་གཡོ་བ་མེད་པ་ཉིད། 20

क्रोधाग्निधूमनिवहैरिव तस्य घनोद्गमैः।
विद्युज्जिह्वैरकम्पन्त दिशः सन्त्रासिता इव ॥ १५ ॥

गर्जितैर्मत्तमेघानां प्रलयारम्भशंसिभिः।
गुहागेहान्यभज्यन्त हृदयानीव भूभृताम् ॥ १६ ॥

ततः पिष्टद्रुमा वृष्टिः क्लिष्टाद्रिशकलावली।
पपात पातितक्षितिः स्थूलोपलकुलाकुला ॥ १७ ॥

सा दुष्टभुजगोत्सृष्टा वृष्टिर्हस्त्यैव तायिनः।
ययौ बालानिलोल्लासलसत्कुसुमवर्षताम् ॥ १८ ॥

दृष्ट्वा प्रकाशविशदान्यनुपप्लवानि
भृङ्गोपगीतकुसुमानि वनानि तत्र।
हर्षस्मितप्रसरनिर्जिततारहाराः
क्रूरं फणीन्द्रमवदन् वनदेवतास्तम् ॥ १९ ॥

भोः कालमेघ विकृतिं परिमुञ्च किञ्च
निष्कम्प एव कनकाचल एष यस्य।
युष्मद्विधाः प्रलयमारुतभज्यमाणा
सीमान्तितम्बकुहरं शरणं प्रयान्ति ॥ २० ॥

དེ་ནས་འཕྲུལ་ལ་གྱུགས་པས་ནི། ཡོངས་སུ་ཟད་ཅིང་ཉམས་འགྱུར་བདང་།
ཐལ་མོ་སྦྱར་ནས་མངོན་ཕྱོགས་དེ། ཀླུ་ཡིས་སྟོན་པ་ལ་ཕྱག་འཚལ། 21

བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་སྙིང་རྗེའི་གཏེར། བསླབ་པའི་གནས་དག་རབ་ཕྱིན་པས།
སྐྱབས་སུ་སོང་བར་གྱུར་བ་དེ། དགེ་བ་མཆོག་ལ་རྗེས་བཟུང་མཛད། 22

ཞབས་ལ་མགོ་ཡིས་གཏུགས་པ་དེ། གུས་པ་ཡིས་ནི་གསོལ་བཏབ་པ།
བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བས་དེག་ཏུ་ནི། དེ་ལ་ཡང་དག་ཉི་བར་མཛད། 23

གནས་སྐབས་དེར་ནི་དེ་ཉིད་དུ། གནོད་སྦྱིན་ལག་ན་རྡོ་རྗེ་དག།
ཞར་ལ་འོངས་པ་ཞི་བའི་སྐད། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རྗེས་བཟུང་མཛད། 24

དེ་ནས་འཇིག་རྟེན་གདུང་བ་མི་བཟད་ནམ་ཀློག་སྟོན་པ་ནི།
ནམ་གྱིས་བསྟོད་པའི་ཚིག་གིས་སྐབས་གསུམ་པ་ཡིས་མཆོད་གྱུར་པ།
སྟོན་གྱིས་སངས་རྒྱས་ནམས་ཀྱི་ཞབས་པད་དག་དང་མཛའ་བ་ལས།
དག་པའི་རྡོ་བའི་གཞི་ལྡན་ནགས་ཚལ་གྱི་ཞིང་བསྐྱེད་པར་མཛད། 25

དེར་དེ་འཇུམ་དང་ལྡན་པ་ལས། ལྷ་ཡི་རྒྱལ་པོ་ལྷར་འོངས་པས།
འཇུམ་པའི་རྒྱུ་དྲིས་དེ་ལ་ནི། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་བཀའ་སྩལ་པ། 26

དག་བྱེད་དྲི་མ་མེད་པའི་ཆུ་ཡི་རྒྱུན་དང་ལྡན་གྱུར་ཅིང་།
ཁྲོན་མེད་སེམས་ཅན་སྐལ་བཟང་འཁོད་པ་དཀའ་ཐུབ་དག་གི་ནགས།
ཆོས་ནི་ལྷག་གནས་སྡོམ་བརྩོན་ནམས་ཀྱི་ཡིད་ནི་དག་བྱེད་པ།
ཞི་བའི་གནས་འདི་དག་ཏུ་ང་ཉིད་ཁོ་ནས་རོལ་བྱས་མིན། 27

ततः सद्यःपरिक्षीणमदः संत्यक्तविक्रियः ।
नागः शास्तारमभ्येत्य प्रणनाम कृताञ्जलिः ॥ २१ ॥

तस्य यातस्य शरणं भगवान् करुणानिधिः ।
शिक्षापदप्रदश्चक्रे कुशलाग्रमनुग्रहम् ॥ २२ ॥

प्रणयादर्थितस्तेन चरणालीनमौलिना ।
सततं तस्य भवने सन्निधिं विदधे जिनः ॥ २३ ॥

तस्मिन्नवसरे तत्र प्रसङ्गात्तस्य शान्तये ।
यक्षस्य चक्रे भगवान् वज्रपाणेरनुग्रहम् ॥ २४ ॥

लोकोपतापमसमं विनिवार्य्य शास्ता
विस्तारितस्तुतिपदत्रिदशार्च्चमानः ।
भेजे वनानि विहरन्नथ पूर्व्वबुद्ध-
पादाम्बुजप्रणयपूतशिलातलानि ॥ २५ ॥

तत्र सन्दर्शनात्तेन सुरराजेन सस्मितः ।
स्मितस्य कारणं पृष्टः सर्व्वज्ञस्तमभाषत ॥ २६ ॥

एतेषु पुण्यसलिलामलनिर्झरेषु
निर्व्वैरसत्त्वसुभगेषु तपोवनेषु ।
धर्म्माधिवासमुनिमानसमार्जनेषु
शान्तेः पदेषु नु मयैव कृतोविहारः ॥ २७ ॥

१ All the MSS. न ।

སེང་གེའི་ཉུ་འོག་རི་དགས་ཕྲུག་གུ་གྲུ་བ་དབེན་བའི་ནགས་ཚལ་འདིར།
བགྱི་བྱིན་དཔལ་ལྡན་འཁོར་བ་འཇིག་དང་བདེ་གཤེགས་གསེར་ཐུབ་དེ་དང་ནི།
ཡང་དག་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྲི་སེད་ཀློ་ལྡན་ཐུབ་པ་འོད་སྲུངས་ཏེ།
མཐའ་དག་འཇིག་རྟེན་གདུང་བའི་སྐར་པ་ཉམས་ཀྱིས་འདི་ཉིད་དུ་གནས་མཛད། 28

དེ་ནས་དེ་སྐད་སྨྲས་དེས་གཟིགས་ཉིད་ཀྱི།
བསོད་ནམས་སྨིན་ལ་ཉེ་བར་འོངས་པ་ཡི།
ཇོན་པ་དག་ནི་སྐྱབས་སུ་སོང་བ་ལ།
བསླབ་པའི་གནས་འོས་ཉི་བ་བསྟན་པ་མཛད། 29

སྐལ་ལྡན་དགེ་ལ་ཡིད་ཆགས་ཇོན་པ་ནི།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རྗེས་སུ་བཟུང་བ་ལས།
དེར་ནི་མཆོད་རྟེན་རི་དགས་བདག་པོ་དག།
དེས་གནས་དབུ་སྣ་སེན་མོས་མཚན་པ་བྱས། 30

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་སྐྱ་བ་ཡང་སྐྱོང་བདུལ་བའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་དྲུག་པའོ།།

क्रकुच्छन्दः श्रीमान् कनकमुनिरचैव सुगतः
स सम्यक्संबुद्धः शमविमलधीः काश्यपमुनिः ।
विविक्तेऽस्मिन् सिंहीस्तनतलवलद्बालहरिणे
वने चक्रुः शक्राः स्थितिमखिललोकार्त्तिभिषजः ॥ २८ ॥

इति ब्रुवाणः समुपागतस्य
स पुण्यपाकादथ लुब्धकस्य ।
सन्दर्शनैरेव शमं दिदेश
शिक्षापदार्हं शरणं गतस्य ॥ २९ ॥

भाग्यवान् भगवतोऽप्यनुग्रहा-
ल्लुब्धकः कुशललुब्धमानसः ।
तत्प्रदिष्टनखकेशलाञ्छनं
तत्र चैत्यमकरोन्मृगाधिपम् ॥ ३० ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां गोपालनागदमनं नाम षट्पञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

Chapter LVII.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བདུན།

མཆོད་རྟེན་གྱི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ཕྱོགས་ཀྱི་མཛེས་པའི་ནོ་རྒྱན་དང་། མཚུངས་པར་ཡོན་ཏན་དམ་པ་བཀོད།
གང་ཞིག་གྲགས་པའི་མཆོད་རྟེན་གྱིས། འགྲོ་མཛེས་དེ་དག་རྒྱལ་གྱུར་ཅིག། 1

དེ་ནས་དེར་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས། བརྒྱ་བྱིན་གུས་པས་གསོལ་བཏབ་པས།
སངས་རྒྱས་སྐུ་མའི་མཆོད་རྟེན་མཛད། རང་གི་མཆོད་རྟེན་བྱེད་དུ་བཅུག། 2

ལྷ་ནམས་ཀྱིས་དེར་རིན་ཅན་གྱིས། རང་བཞིན་ཉི་འོད་བཀྲ་ལྡན་བྱས།
འགྲོ་བའི་སྐྱོངས་པ་ཆེན་པོ་དང་། མཚུངས་པའི་སྲུན་པ་ག་ཤེད་སོང་། 3

དེར་ནི་བྲི་ཛ་མི་འམ་ཅི། མི་དང་ཀླུ་དང་ལྷ་ནམས་ལ།
འདུལ་བའི་ཆོས་ཀྱི་མན་ངག་ནི། ཡང་དག་བསྟན་ནས་རྒྱལ་བ་གཤེགས། 4

རྗོ་བའི་རི་ལ་ལྷ་ནམས་ཀྱིས། མཆོད་རྟེན་བཞི་ནི་བཀོད་པ་ལ།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ལྷུ་པ་ཡི། མཆོད་རྟེན་མཆོད་རྟེན་ལྷུ་དག་བཀོད། 5

དེ་ནས་ནཱ་ལོ་ཀཱ་ཞེས་པའི། ཡུལ་དུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་བྱོན།
ལུས་ངན་གྱིས་བཞིན་ཚོང་དཔོན་ནི། ལེགས་པར་རབ་སད་ཅེས་པས་མཆོད། 6

सप्तपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

स्तूपावदानम् ।

दिक्कान्ताश्रवणोत्तंसतुलारोपितसद्गुणाः ।
ते जयन्ति जगद्येषां यशःस्तूपैर्विराजते[१] ॥ १ ॥

भगवानथ शक्रेण तत्र प्राणावनार्थितः ।
पूर्व्वबुद्धकृतस्तूपे निजस्तूपमकारयत् ॥ २ ॥

कृते रत्नमये तस्मिन् देवैः सूर्य्यशतत्विषि ।
जगाम जगतां क्वापि महामोहोपमं तमः ॥ ३ ॥

तत्र किन्नरगन्धर्व्वनरनागदिवौकसाम् ।
धर्म्मोपदेशविनयं समादिश्य ययौ जिनः ॥ ४ ॥

पाषाणपर्व्वते देवैर्न्यस्ते स्तूपचतुष्टये ।
भगवान् पञ्चमं स्तूपं पञ्चस्तूपैर्न्यवेशयत् ॥ ५ ॥

अथ वालोक्षनामानं देशं प्राप्तस्तथागतः ।
श्रेष्ठिना सुप्रबुद्धेन कुवेरेणेव पूजितः ॥ ६ ॥

---

१ $^{W}_{1}$ जगत्स्येषां यशःस्तूपो विराजते । H and $^{W}_{2}$ जगत्येषाम् ।

གང་ཞིག་དེ་ནི་རྗེས་འབྲང་བཅས། འདུལ་བའི་ཆོས་ནི་དེ་ལ་བསྟན།
སྤྲོངས་པའི་གཉིད་སད་ལེགས་པར་ནི། རབ་སད་རབ་སད་ཉིད་ཐོབ་གྱུར། 7

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་བཀའ་ལས་དེས། རང་གི་བསོད་ནམས་བཞིན་མཐོ་བ།
ནྲྀ་ལོ་ཀྲྀ་ཡ་ཞེས་པ་ཡིས། མཆོད་རྟེན་རིན་ཅན་འབར་བ་བྱས། 8

དེ་ནས་དཔལ་གྱི་དེ་བཞིན་གཤེགས། ཀམ་པ་ར་ཡི་གྲོང་དུ་བྱོན།
གནོད་སྦྱིན་ཀམ་བ་ར་ཞེས་པ། བསླབ་གནས་རབ་ཏུ་ཕྱིན་པས་བཏུལ། 9

གདུམ་པོའི་གྲོང་དུ་མངོན་ཕྱོགས་དེ། གདུམ་མ་མ་ལི་ཀ་ཞེས་པ།
བུ་བདུན་དག་དང་ལྷན་ཅིག་ཉིད། འདུལ་བ་ཡི་ནི་མཐོ་བར་མཛད། 10

ལས་ཀྱི་ལྷག་མས་གདུམ་པོའི་རིགས། ཐོབ་པས་སྲུན་ཕྱུང་དེ་དག་ཚོམས།
ཀྱིལ་བ་མཐོང་ལས་པདྨ་ཡི། འབྱུང་གནས་བཞིན་དུ་དྲི་མེད་གྱུར། 11

ཐ་ཤལ་སྐྱོན་གྱིས་སྲུན་ཕྱུང་སྐྱན་པ་དགག་ཏུ་འོས་གྱུར་ཅིང་།
སྡིག་པའི་ཉེ་བར་གདུང་བ་ཆེན་པོས་གདུངས་ཤིང་ཉིན་ཚོམས་ལ།
ཚོམ་ཏོག་ངན་པ་དང་བྲལ་སྙིང་རྗེས་རབ་ཞུགས་དམ་པ་ཚོམས།
དམན་ལ་དམིགས་པའི་རྗེས་སུ་ཆགས་པས་ལྷག་པར་གྱུར་པ་ཡིན། 12

དེ་ནས་བདེ་གཤེགས་རྗེས་འབྲང་བཅས། པྲ་ཏ་ལ་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་བྱོན།
དཔལ་ལྡན་ཁྱིམ་བདག་གྲུ་འཛིན་ཞེས། བྱ་ལ་ལེགས་པའི་གདམས་ངག་མཛད། 13

दिदेश धर्म्मविनयं तस्मै येन स सानुगः ।
मोहनिद्राक्षये प्राप सुप्रबुद्धः प्रबुद्धताम् ॥ ७ ॥

स शासनाद्भगवतः पुण्यं निजमिवोन्नतम् ।
वाक्कोक्षीयाभिधं स्तूपं रत्नदीप्तं न्यवेशयत् ॥ ८ ॥

डम्बरग्राममासाद्य शनैरथ तथागतः ।
विनीय डम्बरं नाम यक्षं शिक्षापदप्रदः[1] ॥ ९ ॥

चण्डालग्राममभ्येत्य चण्डालीं मल्लिकाभिधाम् ।
सहितां सप्तभिः पुत्रैर्विनयोपनतां व्यधात् ॥ १० ॥

ते कर्म्मशेषसम्प्राप्तमातङ्गकुलदूषिताः ।
पद्माकर इव प्रापुर्वैमल्यं जिनदर्शनात्[2] ॥ ११ ॥

अन्येषु दूषिततरेषु जुगुप्सितेषु
पापोपतापविपुलव्यसनातुरेषु ।
सन्तः प्रवृत्तकरुणाः कुविकल्पहीना
दीनावलम्बनवशादधिकं[3] भवन्ति ॥ १२ ॥

अवाप्य पाटलग्रामं सानुगः सुगतस्ततः ।
धर्म्यां गृहपतेश्चक्रे पोतलाख्यस्य सत्कथाम् ॥ १३ ॥

---

१ All the MSS. यक्षशिक्षापदप्रदः ।
२ All the MSS. वैमल्यजिनदर्शनात् ।
३ W 1 दीनावलम्बनवशात् ।

བདེ་བར་གཤེགས་པས་རྗེས་བཟུང་ནས། བསྐལ་པའི་གནས་གྲོལ་དྲི་མེད་དེས།
དེ་ཡི་དབུ་སྐྲ་སེན་ཆ་ཡིས། མཚན་པའི་རིན་ཆེན་མཆོད་རྟེན་བྱས། 14

དེ་ནི་བཞུར་འོངས་དབང་པོ་ལ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རབ་གསུངས་པ།
རྒྱལ་པོ་མི་ཡིན་དྲ་ཞེས་པས། ཡུལ་འདི་མཆོད་རྟེན་བྱེད་པར་འགྱུར། 15

དེ་ལྟར་གནས་དང་གནས་སུ་བཅོམ་ལྡན་བརྟི་ནས་བརྟན་པས་གཟིགས་པ་ཡིས།
མཐའ་དག་འཇིག་རྟེན་རྣམས་ཀྱི་སྡུ་ངན་སྨོངས་དང་འཇིགས་པ་བདང་བར་གྱུར།
མཆོད་རྟེན་མངོན་པར་གསར་བྱས་སྐྱིབས་ན་ནོར་བུའི་དྲི་ལ་རླུང་སྒྲ་སྒྲོགས།
དར་དིར་ཚོགས་ཀྱི་རྩེད་འཛི་དགག་གིས་ས་གཞི་རབ་སྤྲེད་ལྡན་པར་གྱུར། 16

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་ཞུས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་མཆོད་རྟེན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བདུན་པའོ།།

शिक्षापदाप्तवैमल्यः सुगतानुग्रहेण सः ।
तत्केशनखलेशाङ्कं रत्नस्तूपमकारयत् ॥ १४ ॥

तत्र सन्दर्शनायातं भगवानिन्द्रमब्रवीत् ।
मिलिन्द्रो नाम राजास्मिन् देशे स्तूपं करिष्यति ॥ १५ ॥

इति भगवतः स्थाने स्थाने दयार्द्रविलोकना-
दभवदखिलो लोकः शोकप्रमोहभयोज्झितः ।
अभिनवकृतस्तूपोत्सङ्गक्वणन्मणिकिङ्किणी-
कुलकलकलक्रीडालोला बभूव च मेदिनी ॥ १६ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां स्तूपावदानं नाम सप्तपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

Chapter LVIII.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བརྒྱད་པ།

བསོད་ནམས་སྟོབས་ཀྱི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

གཏོད་པའི་གདུང་བ་ཞི་བྱེད་གཟིགས་པ་རབ་ཏུ་དང་བའི་རོ་དག་གིས།
སྐྱེས་བུ་ཚོམས་ནི་ནད་དང་བྲལ་མཛོད་སྲིད་པས་ཟིལ་མནན་འཁྲུགས་པའི་སྨན་པ་
གང་།
ངེས་པར་དགེ་བ་མཐའ་དག་བསྐྱེད་པའི་ནོར་འཛིན་གྲུབ་པའི་བདུད་རྩི་ནི།
རྟོགས་པའི་སྙིང་རྗེ་ནང་དུ་འཛིན་པ་དེ་དག་མི་སྨད་ཕྱག་བྱར་འོས། 1

གྲོང་ཁྱེར་པདྨོ་ལྡན་པ་ན། བཅོམ་ལྡན་འཧུམ་དང་བཅས་པ་ལ།
ལྷ་ཡི་རྒྱལ་པོས་འཛུམ་པའི་སྒྲུ། དྲིས་ནས་སྐུར་ཡང་རབ་གསུངས་པ། 2

དཔལ་ལྡན་བསོད་ནམས་སྟོབས་ཞེས་པའི། ས་ཡི་བདག་པོ་སྔོན་བྱུང་སྟེ།
གང་ཞིག་གྲོང་ཁྱེར་སྟོང་ཕྲག་ནི། བརྒྱད་ཅུ་ཡོངས་སུ་འཛིན་པར་གྱུར། 3

དེ་ཡི་རྒྱལ་པོའི་ཕོ་བྲང་ནི། བསོད་ནམས་ལྡན་ཞེས་བྱ་བ་སྟེ།
ཤེལ་གྱི་ནམ་པར་ཡིད་འོང་ཞིང་། མཚན་མོའི་བདག་པོའི་འོད་བཞིན་མཛེས། 4

སྐྱིད་ཚལ་གསར་པར་འགྲོ་བའི་སྐད། ནམ་ཞིག་ཤིང་རྟ་ཞོན་པ་དེས།
ལམ་དུ་ཕན་པའི་ཟས་བྲལ་བས། ནད་ཀྱིས་གཟིར་ཞིང་འདུག་པ་མཐོང་། 5

अष्टपञ्चाशत्तमः पल्लवः ।

पुण्यबलावदानम् ।

अनिन्द्या वन्द्यास्ते सकलकुशलोत्पत्तिवसुधां
सुधां सिक्तामन्तर्दधति किल ये पूर्णकरुणाः ।
प्रसन्नैरापन्नव्यसनशमनालोकनरसैः
कृतारोग्याःपुंसां भवपरिभवक्षोभभिषजः ॥ १ ॥

नगर्यां पुष्कलावत्यां सस्मितः स्मितकारणम् ।
सुरराजेन भगवान् पृष्टः पुनरभाषत ॥ २ ॥

श्रीमान् पुण्यबलो नाम पुराभूत् पृथिवीपतिः ।
यस्याशीतिसहस्राणि नगरीणां परिग्रहाः ॥ ३ ॥

तस्य पुण्यवती नाम राजधानी व्यराजत ।
स्फटिकागाररुचिरा ज्योत्स्नेव रजनीपतेः ॥ ४ ॥

स कदाचिन्नवोद्यानयात्रायां रथमास्थितः ।
ददर्श पथ्यविरहात् पथि सीदन्तमातुरम् ॥ ५ ॥

རིང་པོའི་ནད་ཀྱིས་མནར་བ་ཡིས། ཡོངས་སུ་ཉམས་པ་དེ་མཐོང་ནས།
ཕྱོགས་མཚམས་མ་ལུས་གནོན་པ་དེ། སྨིང་རྡེས་ཟིལ་མནན་གདུང་བར་གྱུར། 6

གཞན་གྱི་ཡོངས་གདུངས་མཐོང་གྱུར་ན། འཕྲོ་ལ་འཕོས་དེ་དམ་པ་ཡི།
མི་ལོང་རྣམས་ནི་གདུང་འགྱུར་དེ། ཉི་མ་མེ་ཤེལ་རང་བཞིན་བཞིན། 7

དེ་ཡིས་གྲོང་ཁྱེར་ཐམས་ཅད་དང་། སྒོ་དང་སྒང་རྣམས་མཐའ་དག་ཏུ།
ནད་པ་རྣམས་ལ་ཟས་དང་སྨན། གནས་དང་མལ་སྟན་ལ་སོགས་བྱས། 8

དེ་ནས་དེ་དག་རྣམས་ཀྱི་སྨད། རིམ་གྲོ་པ་ནི་མཁས་པ་བསྐོས།
གང་ཕྱིར་དམ་པའི་རིམ་གྲོ་པ། ནད་གསོའི་ཡན་ལག་དང་པོ་ཡིན། 9

བཟོད་ལྡན་སྨིང་རྡེས་བརྟན་ཞིང་བཟོད། གསོ་བྱེད་འདོད་པ་དག་ལ་གནས།
མཛའ་ལས་ཐ་ཚོས་མི་བྱེད་པའི། རིམ་གྲོ་པ་ནི་རྙེད་པ་དཀའ། 10

དེ་ནས་རྒྱལ་པོས་རིམ་གྲོ་པ། དཔལ་བ་རྣམས་ནི་ལེགས་པོས་ནས།
སྨྲས་པ་ཉིད་དང་མཚན་མོར་ནི། ནད་པ་རྣམས་ཀྱི་རིམ་གྲོ་མཛོད། 11

རྒྱལ་པོ་ལ་འོས་གནས་རྣམས་སུ། མལ་སྟན་མཆོག་སོགས་ཕུན་ཚོགས་བྱས།
རིན་ཅན་སྣམས་ལྡན་པདྨོ་ཅན། དྲི་མེད་ཆུ་ལྡན་ནང་པའི་ཕྱིར། 12

སྨན་པ་དང་ནི་སྨན་དག་ཀྱང་། ཕུན་ཚོགས་ཤིན་ཏུ་ཆེ་བ་བསྒྲུབས།
ང་ནི་དེ་དག་བསོས་གྱུར་པ། ཁྱོད་ཀྱི་གཉེར་ཞེས་བདག་གི་བློ། 13

स तं दृष्ट्वा परिम्लानं दीर्घरोगेण दुर्गतम् ।
विव्यथे करुणाक्रान्तः क्रान्ताखिलदिगन्तरः ॥ ६ ॥

सन्तप्तं परमालोक्य सद्यःसंक्रान्तिदर्पणाः[1] ।
सन्तः सन्तापमायान्ति सूर्यकान्तमया इव ॥ ७ ॥

समस्तद्वाररथ्यासु सर्व्वेषु नगरेषु सः ।
रोगिणां भक्तभैषज्यशालाशय्याद्यकारयत् ॥ ८ ॥

आदिदेश ततस्तेभ्यः कुशलान् परिचारकान् ।
प्रथमं हि चिकित्साङ्गं व्याधेः सत्परिचारकः ॥ ९ ॥

करुणार्द्रः क्षमः क्षान्तश्चिकित्सकमते स्थितः ।
स्नेहादविचिकित्सश्च[2] दुर्लभः परिचारकः ॥ १० ॥

राजा ततः समाहूय नियतान् परिचारकान् ।
अवदत् क्रियतां रोगिपरिचर्य्या दिवानिशम् ॥ ११ ॥

राजार्हशालासु कृता वरशय्यादिकल्पना ।
रोगिणां रत्नसोपानाः पद्मिन्यश्चामलोदकाः ॥ १२ ॥

भिषग्भैषज्यसम्पत्तिर्विहिता च महीयसी ।
अधुना युष्मदायत्तं तत्स्वास्थ्यमिति मे मतिः ॥ १३ ॥

---

१ H सन्तप्तदर्पताः । २ H स्नेहादवमकमूलेषु ।

འཇིག་རྟེན་འདིར་ནི་རིམ་གྲོ་པ་དང་བདེན་པའི་སྨན་པ་ཆོས་ཀྱི་གཞན་དུ་མི་
ནོར་བས་ཀྱི།
ཡོངས་སུ་གདུང་བ་ཞིན་དུ་བསིལ་བ་ཡིས་ཀྱང་གང་བ་དག་ནི་བདེ་བའི་རྡོ་བ་ཡིས།
སྲིད་པ་བསིལ་བའི་རྒྱུ་ཡིས་དང་ནི་ངལ་བ་ཡང་ཡང་ཆུང་ངུ་ཕན་ཟས་ཉེར་
བསྟུནས་པས།
ཁྱོད་གསོས་འགྱུར་ཞེས་བསྟན་པའི་ཚིག་སྨན་ཀུ་རིའི་རིམ་པས་མི་དགའ་བ་
དག་ཞི་བར་བྱེད། 14

དེ་ཡི་སྐད་དུ་ཁྱེད་རྣམས་ཀྱིས། ནད་ཀྱིས་གདུངས་ཤིང་འགྲོལ་རྣམས་ལ།
ཡང་དང་ཡང་དུ་ཚིག་དག་གིས། དབུགས་དབྱུང་འདི་ནི་དྲན་པར་བྱས། 15

སྨན་པ་སྐྱོན་མེད་བདེ་གཤེགས་བཀའ་དྲིན་དང་།
ཆོས་ཀྱི་མནངག་དམ་པའི་སྨན་དག་ཀྱང་།
འཁོར་བ་རིང་པོའི་རིམས་ཀྱིས་བསྐམས་རྣམས་ཀྱི།
དབུགས་གཉེན་ཞི་བའི་བཅུད་ལེན་དེ་དག་ཡིན། 16

མི་བདག་ནོར་གྱི་ཆར་འབེབས་དེས། དེ་དག་རྣམས་ལ་དེ་སྐད་བསྟན།
ནད་པ་མ་ལུས་གསོས་བྱའི་སྐད། སོང་ནས་ཇི་སྐད་བརྗོད་བཞིན་བྱས། 17

དེ་ནས་ནང་གྲོལ་དེ་དག་རྣམས། དགེ་བ་འདོད་པས་དེ་ལ་ཡིད།
སོང་བ་རྣམས་ལ་བཟླ་བའི་སྐད། མི་བདག་རང་ཉིད་ཕྱི་རོལ་བྱུང་། 18

सन्तापं शमयत्यतीव शिशिरैः शीतं सुखेनोष्मणा
तृष्णां शीतजलैर्मुहुर्मितहिताहारोपचारैः क्रमम्।
स्वस्थोऽसीत्यधृतिं प्रियेण वचसा केलिक्रमेणारतिं
लोकेऽस्मिन् परिचारकः स्थिरभिषग्धर्म्मः परस्मिन्नृणाम्॥१४॥

तस्मात् भवद्भिस्तप्तानां रोगयोगेन सीदताम्।
कार्य्या मुहुर्मुहुर्वाक्यैरियमाश्वासनस्मृतिः ॥ १५ ॥

वैद्योऽनवद्यः सुगतः प्रसादी
धर्म्मोपदेशः परमौषधञ्च।
संसारदीर्घज्वरशोषितानां
परायणं शान्तिरसायनं तत् ॥ १६ ॥

इत्यादिष्टा नृपतिना ते तेन वसुवर्षिणा।
गत्वा यथोचितं चक्रुः स्वास्थ्याय किल रोगिणाम् ॥ १७ ॥

ततः कुशलवादेन तेन तद्गतमानसान्।
व्याधिमुक्तान्नरपतिः स्वयं द्रष्टुं विनिर्ययौ ॥ १८ ॥

བསྒོ་བྱིན་གྱིས་ཀྱང་དེ་ལ་ནི། གཉིས་འཐུང་དཀར་པོ་མཆེ་བ་ནི།
དྲུག་ལྡན་གྱིས་བྲངས་ཤིང་ཏེ་དག། བསོད་ནམས་རབ་འབར་རྣམ་པར་སྤྲུལ། 19

རིན་ཆེན་གསེར་གྱི་མཚོ་སྐྱེས་རྣམས། རིག་ན་བདེ་བའི་རླུང་གིས་གཡོས།
བྱུང་བའི་ན་རྩང་བླ་ལེན་པའི། ལམ་དུ་མཆོག་གི་པད་ལྡན་ཡང་། 20

རིན་ཆེན་མཚོ་སྐྱེས་དེ་དག་ལ། གནས་སོགས་བདུད་རྩིའི་ཆ་ཚོགས་པའི།
ལྷ་མོ་རྣམས་ཀྱི་རིང་པོ་ནས། མི་བདག་ཁྱིན་པ་བསྟན་པར་གྱུར། 21

སྙིང་སྟོབས་བདུད་རྩིའི་རྒྱ་མཚོ་དེའི། སྙིང་སྟོབས་ཞེས་འདོད་ལྷ་ཡི་བདག།
བདག་ཉིད་ལོང་བའི་གཟུགས་བྱས་ནས། དེ་ལ་མངོན་དུ་ཕྱོགས་ཏེ་གནས། 22

རྒྱལ་པོ་མིག་གིས་དམན་པ་བདག། སྐྱེ་བར་སྣང་བ་རྣམ་པར་སྤངས།
སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཡོངས་སྐྱོབ་པར། ཞུགས་པ་ཁྱོད་ཅན་ཉེ་བར་འོངས། 23

ཁྱོད་ཀྱི་མཐུ་ཡིས་ནད་པ་ནི། འདི་དག་ལེགས་པར་གསོས་གྱུར་ནས།
འོད་ལྡན་མཛེས་པས་ཁྱོད་ཀྱི་ནི། གྲགས་པ་སྨྲ་ཅེར་སྒྲོག་ཅིང་གྱུ། 24

སྡུག་བསྔལ་བཀྲེན་དང་ལོང་བའི་གཉེར། ལྷ་ཡི་བདག་ནི་བསྐྱབ་པར་འོས།
བདག་ལ་མིག་ནི་གཡས་པ་དག། གལ་ཏེ་ཡོད་ན་གནང་བར་མཛོད། 25

དེས་འདི་བརྗོད་ཚེ་མི་བདག་ནི། རབ་དང་བཞིན་རས་མཛེས་པ་ཡི།
འགྲོ་རྣམས་ཡང་དག་བསྒྲལ་བའི་སླད། རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་བསྒྲུབ་པའི་ཕྱིར། 26

शक्रस्त्वपरशक्रस्य तस्य पुण्यसमुज्ज्वलम् ।
रथं विनिर्म्ममे युक्तं षड्दन्तैः पाण्डुरैर्द्विपैः ॥ १९ ॥

सुखस्पर्शानिलालोलहेमरत्नसरोरुहाः ।
भृङ्गाङ्गनोपगीताश्च दिव्याः कमलिनीः पथि ॥ २० ॥

तेषु रत्नसरोजेषु स्थिता नृत्यकलाकुलाः ।
दूरान्नृपतिमायान्तं सुरनार्य्यः सिषेविरे ॥ २१ ॥

तस्य सत्त्वसुधासिन्धोः सत्त्वं ज्ञातुं मरुत्पतिः ।
कृत्वान्धरूपमात्मानमभ्येत्य तमभाषत ॥ २२ ॥

राजन्नयनहीनोऽहं जन्मालोकविवर्जितः ।
सर्व्वसत्त्वपरित्राणसन्नद्धं त्वामुपागतः ॥ २३ ॥

एते तव प्रभावेण रोगिणः स्वास्थ्यमागताः ।
त्वत्कीर्त्तिवादमुखराश्चरन्ति रुचिरत्विषः ॥ २४ ॥

त्रातुमर्हसि मां देव दुःखदीनान्धबान्धव ।
दक्षिणं नयनं मह्यं दीयतां यदि शक्यते ॥ २५ ॥

इत्युक्तस्तेन नृपतिः प्रसन्नवदनद्युतिः ।
सन्तारणाय जगतां सम्यक्सम्बोधिसिद्धये ॥ २६ ॥

སྨོན་ལམ་རབ་ཏུ་བཏབ་བྱས་ཏེ། མིག་ནི་མཚོན་གྱིས་རབ་ཕྱུངས་ནས།
བདེན་པའི་གཏེར་གྱིས་དེ་ལ་བྱིན། ལྷ་རྣམས་ཀྱིས་ནི་མེ་ཏོག་གཏོར། 27

དེ་ཡི་མོད་བྱུང་སྦྱིན་པ་ཡིས། ཡ་མཚན་ནས་བཞིན་ས་གཞི་ནི།
རྒྱ་གཏེར་གཡོ་བའི་སྐྱེ་རགས་ཅན། རི་དང་བཅས་པ་མ་ལུས་འདར། 28

མིག་གཅིག་གིས་ནི་སྣང་བ་དག། སྐྱེས་པ་དེ་མཐོང་ས་ཡི་བདག།
སྦྱིན་པའི་རོ་ལ་རབ་དགྱེས་པས། གཉིས་པ་སྦྱིན་པར་བརྩོན་པར་གྱུར། 29

དེ་ནས་ལྷ་ཡི་བདག་པོ་ནི། རང་གི་ལུས་སུ་ཡང་དག་གནས།
དེ་ཡི་མིག་ནི་བསོས་བྱས་ཏེ། སྙིང་སྟོབས་མཆོག་ཉིད་རབ་ཏུ་བསྔགས། 30

གང་ཞིག་སྦྱིན་ཚེ་རང་གི་ཡན་ལག་ལ་འང་།
ནམ་ཡང་ཆགས་པ་ཆུང་ངུ་སྐྱེ་མིན་པ།
ངེས་པར་སྙིང་སྟོབས་རྒྱ་མཚོ་གྱིས་དེ་ལ།
ནོར་ཞེས་བརྗོད་པའི་དུལ་ལ་རང་བློ་ཅི། 31

དེ་ཚེ་མི་བདག་བསོད་ནམས་སྟོབས་གྱུར་ཏེ།
དེ་ཉིད་སྦྱིན་པའི་རོ་ཡིས་བྱང་ཆུབ་ཐོབ།
དེ་ཡི་ངོ་མཚར་སྤྱོད་ཚུལ་དྲན་པས་ན།
དེ་ཡི་རང་བཞིན་ཉིད་ཐོབ་འཇུམ་པ་མཛད། 32

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་བསོད་ནམས་སྟོབས་ཀྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་བརྒྱད་པའོ།།

प्रणिधानं समाधाय शस्त्रेणोत्पाट्य लोचनम् ।
ददौ धैर्य्यनिधिस्तस्मै पुष्पैरापूरितः सुरैः ॥ २७ ॥

तस्यात्यद्भुतदानेन विस्मयादिव साचला ।
विचचालाखिला पृथ्वी विलोलार्णवमेखला ॥ २८ ॥

जातालोकं तमालोक्य नेत्रेणैकेन भूपतिः ।
अतिदानरसप्रीत्या द्वितीयं दातुमुद्ययौ ॥ २९ ॥

ततः सुरपतिस्तस्य समास्थाय निजं वपुः ।
स्वस्थं विधाय नयनं प्रशशंसातिसत्त्वताम् ॥ ३० ॥

दानक्षणे स्वावयवेऽपि यस्य
न जायते स्नेहलवः कदाचित् ।
का नाम तस्योर्जितसत्त्वसिन्धो-
र्धनाभिधाने रजसि स्वबुद्धिः ॥ ३१ ॥

स भूपतिः पुण्यबलोऽहमेव
तदाभवन्दानरसात्तबोधिः ।
आश्चर्य्यवृत्तस्मरणेन तस्य
जातस्मितस्तन्मयतामवाप्तः ॥ ३२ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
पुण्यबलावदानं नामाष्टपञ्चाशत्तमः पल्लवः ॥

Chapter LIX.

ཡལ་འདབ་ལྔ་བཅུ་ཙོ་དགུ་པ།

ཀུ་ཎ་ལའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ཞིན་དུ་རབ་གསལ་གྲགས་པའི་ཚོན་རིས་ཡོན་དན་རིན་ཅན་གྱིན།
མ་ཉམས་ཕྱིན་པའི་མི་རྟོག་དང་ལྡན་བདེན་པའི་ཕྲུག་པ་ཕྲུས།
གང་གི་དཔལ་ནི་ཚུལ་ཁྲིམས་གཙང་མའི་དུ་གུ་ལས་མཛེས་པ།
དེ་ཉིད་གཅིག་པུ་ལེགས་བྱས་ལ་འོས་འཁོར་ལོ་སྒྱུར་བ་ཡིན། 1

གྲོང་མཆོག་ཕཱ་ཊ་ལི་ཨི་ཕྲུ་ཞེས་པ།
ན་རྩང་ས་གཞི་ཐིག་ལེ་ལྟར་གྱུར་པར།
ཉི་མའི་རིགས་ཀྱི་སྒྲོན་གྱུར་གྲགས་པའི་གཏེར།
དཔལ་ལྡན་ས་བདག་མྱ་ངན་མེད་པ་བྱུང་། 2

དང་པོར་འདོད་ལྡན་དེ་འདོད་ཉེ་ཚིག་དང་།
དེ་ནས་རྟོན་པོ་གཏུམ་པོའི་ཉེར་སྤྱོད་དང་།
ཕྱི་ནས་ཆོས་ནི་ཉེ་བར་འཛིན་པ་ཡིས།
དབེན་པ་སྨིན་པའི་ནུ་ཚོད་རབ་གྲགས་གྱུར། 3

ऊनषष्टितमः पल्लवः ।

कुणालावदानम् ।

एकः स एव सुकृतोचितचक्रवर्त्ती
सुव्यक्तकीर्त्तितिलका गुणरत्नभूषा ।
अम्लानदानकुसुमा कृतसत्यचर्चा
यस्यावभाति शुचिशीलदुकूलिनी श्रीः ॥ १ ॥

पुरोत्तमे पाटलिपुत्रनाम्नि
महीयुवत्यास्तिलकायमाने ।
यशोनिधिः मौर्य्यकुलावतंशः
श्रीमानशोकः क्षितिपो बभूव ॥ २ ॥

पूर्व्वं स कामोपपदेन कामी
चण्डोपचारेण ततश्च तीक्ष्णः ।
धर्म्मप्रदानेन[२] जगाम पश्चा-
द्विवेकपाके वयसि प्रसिद्धिम् ॥ ३ ॥

---

१ H has an additional verse after the first S'loka :—
अशोकपुत्रो द्विजराजनेत्रः कुणालनामाजमदर्च्चिपातम् ।
चैत्यस्य नेत्रोत्पतनस्य कर्म्मात् भूयोऽजमन्नेत्रपटोकनेन ॥

२ H धर्म्मोपदानेन ।

མྱ་ངན་མེད་དེ་རབ་དང་བསོད་ནམས་ཀྱིས།
ཉེ་བའི་ནགས་ཚལ་ས་གཞི་མཛེས་པས་བརྒྱན།
ཕྲིས་པར་གྱུར་ཚེ་དགེ་བའི་སྨྱུ་གུ་ཡིས།
འཇིག་རྟེན་མྱ་ངན་མེད་ཉིད་ངེས་པར་འཛིན། 4

དེ་ཡི་བདེ་སྐྱིད་ལྷ་མོ་པདྨ་ལྡན།
ཕོ་བྲང་འཁོར་གྱི་མཛེས་མའི་གཙུག་གནས་པས།
ཀུན་སྐྱོ་བུ་ནི་བསོད་ནམས་དག་གིས་བསྐྱེད།
གདོང་བ་ཛེས་འབྲང་དཔལ་གྱི་ལེགས་བརྗོད་བཞིན། 5

གསེར་ལྟར་དག་པ་མི་ཡི་དབང་པོའི་བུ།
པད་ཛིང་དཔལ་གྱི་པདྨའི་འདབ་འདྲའི་སྤྱན།
གསེར་རིའི་ངང་པ་ཀུ་ཎ་ལ་ཞེས་པའི།
མིག་མཚུངས་དེ་ནི་ཀུ་ཎ་ལ་ཞེས་གྱུར། 6

རིག་པ་བུ་མོའི་བདག་མཐོང་ཟླ་མ་མེད།
སྒྱུ་རྩལ་འཁྲི་ཤིང་རྣམས་ཀྱི་དགའ་བའི་དཔྱིད།
གྲགས་པ་ཀུ་མུད་ལྡན་པའི་ཟླ་གྱིས་པ།
དེ་ནི་འཇིག་རྟེན་ཀུན་གྱི་མངོན་འདོད་གྱུར། 7

प्रसन्नपुण्योपवनस्थलीना-
मुद्भिन्नशोभाभरणायमाने ।
तस्मिन्नशोके कुशलप्ररोहै-
रशोकतामेव बभार लोकः ॥ ४ ॥

मूर्ध्नि स्थितान्तःपुरसुन्दरीणां
पद्मावती तस्य सुखाय देवी ।
सत्त्वोत्सवं पुत्त्रमसूत पुण्ये-
स्त्यागानुगा श्रीरिव साधुवादम् ॥ ५ ॥

नरेन्द्रसूनुः कनकावदातः
श्रीपद्मिनीपद्मपलाशनेत्रः ।
हिमाद्रिहंसस्य कुणालनाम्न-
स्तुल्येक्षणोऽभूत्स कुणालनामा ॥ ६ ॥

विद्यावधूनां विमलात्मदर्शं
श्चैत्रोत्सवः सर्वकलालतानाम् ।
स सर्व्वलोकाभिमतो बभूव
चन्द्रोदयः कीर्त्तिकुमुद्वतीनाम ॥ ७ ॥

རྒྱུ་སྐར་བདག་པོའི་ནང་གི་རི་དྭགས་བཞིན།
དེ་ཡི་མིག་ཡངས་མཚོ་སྐྱེས་ཟུང་དག་ནི།
གཡོ་ལྡན་སྨིན་མའི་བྲུང་ནས་མདོངས་དགའ་བ།
བལྟ་བས་མི་དབང་རབ་ཏུ་ངོམས་མ་གྱུར། 8

སྨྲ་ཚོགས་ཡོན་ཏན་ཀུན་ལྡན་དེ་ལ་ནི།
མཐའ་དག་ཕྱོགས་དང་གླིང་གི་ས་ཡི་བདག།
སྐལ་བཟང་ཁྱིངས་པས་རང་གི་བུ་མོ་དག།
འདོད་པའི་སྨུ་རིག་འཁྲི་ཤིང་ལྟ་བུ་བྱིན། 9

སྐྱེ་བོ་རྗེས་ཆགས་སྐྱིད་པ་མཆོག་གི་གཟུགས།
དེ་ཡི་དགའ་མར་མིག་ཡངས་ཟླ་ཞལ་མ།
འདོད་པའི་དགའ་མ་སྐྱེ་བ་གཞན་གྲོབ་བཞིན།
གསེར་གྱི་འཕྲིང་ལྡན་མ་ཞེས་བྱ་བར་གྱུར། 10

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ཕ་ཡི་དྲུང་གནས་པའི།
གཞོན་ནུ་དེ་མཐོང་དགེ་འདུན་གནས་བརྟན་གྱིས།
རྒྱལ་པོའི་འདོད་པས་རང་གི་གྲགས་པ་ཡི།
དབེན་གནས་གཙུག་ལག་ཁང་དུ་དལ་གྱིས་ཁྲིད། 11

तारधिपोत्सङ्गमगोपमस्य
तस्यायतं नेत्रसरोजयुग्मम् ।
सविभ्रमं भ्रूभ्रमराभिरामं
पश्यन्नरेन्द्रः प्रययौ न तृप्तिम् ॥ ८ ॥

नानागुणालङ्करणाय तस्मै
कन्दर्पमुक्तालतिकायमानाः ।
समस्तदिग्द्वीपधराधिनाथा
धन्याभिमानेन ददुः स्वकन्याः ॥ ९ ॥

तस्यायताक्षी दयिता बभूव
चन्द्रानना काञ्चनमालिकाख्या ।
जनानुरागोद्भवभव्यमूर्त्ते
र्जन्मान्तरस्येव रतिः स्मरस्य ॥ १० ॥

ततः कदाचित् पितुरन्तिकस्थं
तं वीक्ष्य संघस्थविरः कुमारम् ।
स तेन राज्ञः सुयशोविहारे
विविक्तदेशं शनकैर्निनाय ॥ ११ ॥

གཞོན་པོ་མཁན་པོ་མངོན་ཤེས་དྲུག་ལྡན་མཆོག།
སྙིང་རྗེའི་འབྱོར་ལྡན་ནོར་འབྱོར་ལྡན་པ་དེས།
དུས་ཀྱི་དེ་ཡི་མིག་དག་ཉམས་ཤེས་ནས།
མ་འོངས་སྡུག་བསྔལ་གདོན་སྐྱད་དེ་ལ་སྨྲས། 12

ཁྱོད་ཀྱི་སེམས་ནི་འཁོར་པས་ཟིལ་མནན་ནས།
ཡང་ཚོ་མི་དགོག་མཚོན་དང་ལྡན་པའི་ཚོགས།
རོལ་པས་ཟླ་བའི་དྲིགས་འཛོམས་ལུས་ལ་ནི།
མཚན་མ་བྱུང་བར་གྱུར་འདི་བདག་གིས་མཐོང་། 13

མིག་ནི་རང་བཞིན་གྱིས་གཡོ་གཞན་པ་ཅི།
འདི་ལ་བདེ་བ་ཉེར་བསྐྱེད་གནས་པ་མེད།
འདི་ཡིས་དྭངས་པས་རང་གནས་རབ་ཉམས་དེ།
འདོད་པ་ཞེས་བརྗོད་ཁུང་བུར་ལྷུང་བ་ཉིད། 14

ངེས་པར་མི་ནོམས་མིག་བཟང་ཨངས་པ་ནི།
ཕུད་པས་སྟོན་པོའི་འདབ་མ་ལྟ་བུ་འདི།
ཆགས་པ་ལྷོས་འགྲོའི་བྲུག་པའི་མཚོ་ཉིད་དེ།
གང་གིས་སྲུར་དུ་དབང་པོ་ཡོངས་ངལ་བྱེད། 15

स तस्य कालेन विनाशमक्ष्णो-
र्ज्ञात्वा मनीषी षड्‌भिज्ञचर्य्यैः।
आगामिदुःखोद्धरणाय योगी
कारुण्ययोगी तमुवाच वृद्धः॥ १२ ॥

इदं तवापातनिमित्तभूतं
पश्यामि चित्तं विभवाभिभूतम्।
वयःसहायं कुसुमायुधस्य
वपुश्च लीलादलितेन्दुदर्पम्॥ १३ ॥

जात्यैव चक्षुश्चपलं किमन्य-
दस्मिन्ननास्थैव सुखोपपत्तिः।
एतेन दृष्टा स्वपथप्रनष्टाः
स्पृहाभिधाने कुहरे पतन्ति॥ १४ ॥

इदं हि नीलोत्पलपल्लवाभं
विलोचनं नाम नृणां विशालम्।
रागोरगच्छिद्रसमुद्गमेव
येनेन्द्रियाण्याशु परिस्रवन्ति॥ १५ ॥

ཚུལ་ཁྲིམས་མཐུ་ལས་གང་དག་ཉམས་ཀྱི་མིག།
མཛེས་པའི་བདང་བས་ཁྲུད་པར་དུ་ངོམས་ཤིང་།
ཉེས་པར་གསོ་བ་མིན་པ་དེ་དག་ཉིད།
སྐྱིང་ཕྱོབས་བདེན་པ་དང་ལྡན་སྐལ་བ་བཟང་། 16

ཞེས་སོགས་དེ་ཡི་ཚིག་ནི་རབ་ཞི་བ།
ཉེ་བར་རྫོགས་པ་མི་བདག་ཐུས་གྲོས་ནས།
དེ་བཞིན་ཞེས་དེ་རབ་དང་ཡིད་ལ་བྱས།
ཕྱག་འཚལ་ནས་ནི་རང་གི་གནས་སུ་སོང་། 17

དེ་ནས་བྱུང་བའི་ཚོགས་ནི་གླུ་ལེན་ཅིང་།
ཀིཾ་ཤུ་ཀ་དཔལ་ལི་ཁྲིམས་གྱུས་པ་འདྲ།
ཁྲིངས་ལྡན་མ་ཡི་ཁྲིངས་བ་འཛོམས་ཆས་པས།
*སྟོན་གྱི་དྲིས་སྤྱོས་གླང་པོ་ཅིག་འོངས་གྱུར། 18

སྐྲིད་ཚལ་འཁྲི་ཤིང་གསར་པའི་ཡལ་འདབ་དང་།
འབྲལ་བའི་གདུང་བ་གསོད་པའི་ཚ་ཤས་དག།
གསར་དུ་ཆགས་པས་རབ་བསྐྱེད་བཟོད་དཀའ་ཉིད།
འཕྲུལ་ལ་ལྷན་ཅིག་ཉིད་དུ་གོས་པར་གྱུར། 19

* The translator has wrongly rendered the meaning of the word शरत् which signifies सप्तपर्ण flower.

धन्यास्त एवासमसत्त्वधीराः
शीलप्रभावान्न भवन्ति येषाम्।
लावण्यपानेन विशेषतृष्णा-
विघूर्णमानानि विलोचनानि ॥ १६ ॥

इत्यादि तस्य प्रशमोपपन्न-
माकर्ण्य वाक्यं नरनाथसूनुः।
तथेति कृत्वा मनसि प्रपन्ने
कृतप्रणामः स्वपदं जगाम ॥ १७ ॥

अथाययौ भृङ्गगणोपगीतः
सिन्दूरपूरायितकिंशुकश्रीः।
मनस्विनीमानवधानुबन्धी
मधुः शरत्सौरभमत्तनागः ॥ १८ ॥

उद्यानवल्लीनवपल्लवानां
वियोगिनीतापविपल्लवानाम्।
बभूव वृद्धिः सहसा सदैव
प्रत्यग्ररागोद्गमदुःसहैव ॥ १९ ॥

ཙམ་པ་ཀ་འདབ་རླུང་གིས་བསྐྱོད་པ་ཡིས།
སྤྲིང་ཡིག་གིས་ནི་ཉམས་པ་སྐྱེད་བྱེད་ཅིང་།
འདོད་དང་ལྡན་ཅིག་དབྱིད་ཀྱི་དང་པོ་ཡི།
མངོན་འགྱུར་རྒྱལ་བྱེད་བདག་འཇོམས་ཕྱོགས་སུ་གྲགས། 20

མི་དོག་རབ་གྲུས་དེ་དང་དེ་དག་ལས།
དབྱིད་ཀྱི་གཉེན་ལ་མཆོག་ཏུ་ཕན་པ་ནི།
གྲགས་པའི་ཉམ་པ་བྱུང་བའི་སྨྲ་སྒྲོགས་པའི།
ས་ཧ་ཀཱ་ར་ཉིད་ཀྱིས་ཐུས་པར་གྱུར། 21

དབྱིད་ཀྱི་སྤྲོ་བའི་ཉམས་འཕྲུལ་དེ་ལ་ཡང་།
མི་ཡི་དབང་པོའི་བུ་དེ་དབེན་པར་ནི།
གནས་བཅིན་གྱིས་ནི་མན་ངག་སེམས་པ་དག།
ས་སྐྱོང་བཙུན་མོ་སྐར་རྒྱལ་བསྒྲུང་བས་མགྲོང་། 22

མ་ཉམས་བླ་བའི་འོད་ལྡན་ཡངས་པའི་མིག།
ཕྲག་མཐོ་བྲུས་མོར་ལག་པས་སློབ་དེ་ལ།
མཛེའ་བས་བརྒྱན་པའི་གློ་ཡི་མངོན་ཕྱོགས་དེ།
མ་ཡི་རྒྱན་མ་དེ་ཡིས་རབ་སླུས་པ། 23

वातेरितैश्चम्पकपत्रलेखैः
मैत्रीं समाह्वयतः स्मरेण।
स प्रथे दिक्षु धृतिप्रमाथी
चैत्रस्य जैत्रः प्रथमाभियोगः ॥ २० ॥

लसत्सु पुष्पेष्वपि तेषु तेषु
बभूव भूम्ना मधुबान्धवस्य।
भृङ्गस्वनैर्गीतयशःप्रकारः
कृतोपकारः सहकार एव ॥ २१ ॥

तस्मिन् वसन्तोत्सवविभ्रमेऽपि
विचिन्तयन्तं स्थविरोपदेशम्।
नरेन्द्रसूनुः विजने ददर्श
तं तिष्यरक्षा क्षितिपालपत्नी ॥ २२ ॥

अक्षीवचन्द्रद्युतिमायताक्षं
पीनांसमाजानुविलम्बबाहुम्।
अभ्येत्य तं स्नेहरसार्द्रचित्ता-
यवीयसी सा जननी जगाद ॥ २३ ॥

གཞོན་ནུ་མི་རྟོག་མདའ་ཅན་གསར་འཛུག་པ།
འཁོར་བའི་སྙིང་པོ་ཁྲོད་ཀྱི་མིག་གི་དཔལ།
ཁྱད་པར་མཛེས་པའི་ཚས་དང་ལྡན་པ་འདི།
འཇིག་རྟེན་དུ་ནི་སུ་ཡི་བརྟེན་མི་འགྲོག། 24

ཅེས་བརྗོད་དེ་ཡིས་འཕྲུལ་ལ་ལག་གཉིས་ཀྱིས།
ངོ་ཚ་བདང་ནས་བརྟེན་པ་དེ་ལ་འཁྱུད།
རང་གྱི་གྱུན་གྱི་ཁྲལ་ཁྲོལ་སྒྲ་ཅོར་གྱིས།
འདར་ཞིང་གྱུན་དུ་ཀློག་པར་བྱེད་པ་བཞིན། 25

གཞན་འདི་འང་རང་གི་མ་བཞིན་བདག་ལ་ནི།
རྟག་ཏུ་མཆིས་གཞིན་ཉིད་དག་སྐྱེད་པར་བྱེད།
ཅེས་བསམས་རྟོགས་མེད་བློ་ལྡན་དེ་ཡིས་དེའི།
ཀྱང་པར་ཕྲུག་བཙལ་ཟུར་ཕྱུད་དུད་པར་གྱུར། 26

སྤུག་པོར་སྨོངས་དུས་གྱུགས་པས་འཕྲུར་གྱུར་ཅིང་།
ཚུ་སྨིན་མཚན་མ་ལྷུང་བས་རབ་བསྐྱོད་པའི།
བོ་ཏླབས་ཅན་བཞིན་བྱུད་མེད་ཉམས་ལ་ནི།
རང་བཞིན་འགྲུས་ལ་འགོག་པ་ཙུང་ཟད་མེད། 27

कुमार पुष्पेषु नवावतारा
संसारसारः तव लोचनश्रीः।
धृतिं हरत्येव न कस्य लोके
विशेषतः पेशल एष वेशः ॥ २४ ॥

उक्तेति तं सा सहसा भुजाभ्या-
मुत्सृज्य लज्जां दृढमालिलिङ्ग।
प्रकम्पसिञ्जामुखरै[१] रसक्तं
निवार्य्यमाणाभरणैरिव स्वैः ॥ २५ ॥

पराप्यसौ मे जननी निजेव
वात्सल्यमाविष्कुरुते सदैव।
ध्यात्वेति निःशङ्कमतिः स तस्याः
पादप्रणामानतशेखरोऽभूत् ॥ २६ ॥

मदोद्धतानां घनमोहकाले
प्रक्षोभितानां मकराङ्कपातैः।
तरङ्गिणीनामिव नाङ्गनानां
श्वभ्रावपातेऽस्ति[२] मनाग्निरोधः ॥ २७ ॥

---

१ H and W_2 सिञ्जा। २ W_2 स्वभ्रावपाते।

བབ་ཅོལ་ཅོལ་བ་ཉམ་པར་མ་བསྟམས་པས།
སྡིག་པར་ལྷུང་ཚེ་དྲི་མས་འཇིགས་པ་བཞིན།
ཚུལ་ཁྲིམས་གཙང་མས་ཉམ་པར་བདང་གྱུར་ཅིང་།
འདོད་པས་ཟིལ་མནན་དེ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས། 28

བདག་གི་མཛའི་གཞོན་ནུ་ཡང་ཚེ་མཚུངས།
ཁྱོད་ཀྱི་མ་ཡི་ཆུན་མ་བདག་མ་ཡིན།
ཁྱོད་ཀྱི་འཁྱུད་པས་འགྲོགས་འོས་བདག་གི་ལུས།
སྐལ་བཟང་ཡོངས་སྤྱོད་འོས་འདི་ཕྱིན་པར་མཛོད། 29

དོན་དུ་གཉེར་བྱ་བྱུད་མེད་རང་ཉིད་ཀྱིས།
དོན་གཉེར་གང་དེ་ངོ་ཚ་མེད་ཉིད་དེ།
ཅི་བགྱིད་བཀའ་དྲིན་མཛོད་ཅིག་ཁྱོད་ལུས་དང་།
འགྲོགས་པ་ཡུན་རིང་བདག་གི་སྙིང་ལ་གཅགས། 30

ནུ་ངོས་དོ་ཤལ་འཕྲི་ཤིང་མདོན་དཀར་ཞིང་།
ཀྱིད་སྐབས་དཀྱིལ་འཁོར་དྲིལ་ཆུང་ལྡན་པ་ཡི།
བུད་མེད་སེན་མོ་འདེབས་པས་དབྱུལ་བ་ནི།
རབ་མཛེས་སྐལ་བཟང་མ་ནོར་ཁྱིམས་མི་འགྱུར། 31

सा तं बभाषे मदनाभिभूता
प्रगल्भसंरम्भविशृङ्खलेन ।
पापावपाते शुचिना कलङ्क-
भीत्येव शीलेन विमुच्यमाना ॥ २८ ॥

प्रियोऽसि मे तुल्यवयाः कुमार
मातुः सपत्नी तव नास्मि माता ।
इयं त्वदालिङ्गनसङ्गयोग्या
सौभाग्यभोग्यं भजतां तनुर्मे ॥ २९ ॥

निर्लज्जतैषा परमर्थनीया
यदर्थयन्ते स्वयमेव नार्यः ।
प्रसीद किं वा क्रियते त्वदङ्ग-
सङ्गश्चिरं मे हृदयेऽवसन्नः ॥ ३० ॥

स्तनस्थलं हारलताभिरामं
नितम्बबिम्बं रसनासनाथम् ।
स्त्रीणां नखोल्लेखदरिद्रमेति
नोन्निद्रशोभासुभगाभिमानम् ॥ ३१ ॥

འཇིག་རྟེན་དག་ན་བུད་མེད་རང་བཞིན་གྱིས།
སེམས་ནི་ནོམ་གཡེངས་དགེ་མཚན་ལྡན་པ་དང་།
གསར་པ་འདོད་ལ་ཤིན་ཏུ་མངོན་ཕྱོགས་ཤིང་།
མིག་ཀྱང་མཛེས་པ་དག་ལ་སྲིད་ལྡན་མིན། 32

ཞེས་སྨྲས་རླུང་ལྷར་འདར་བའི་ལུས་ཅན་དེས།
མཚུ་འདབ་དཔལ་ནི་དབྱུགས་ཀྱིས་ཟིལ་མནན་ཅིང་།
རྡུལ་ཚུའི་མཚོན་རིས་ཉམས་བྱས་ནོམ་འགྱུར་ནི།
འདོད་པས་ཉེར་བསྟུན་རབ་ཚོགས་ལ་བར་བཟུང་། 33

ནོ་བ་ཉམས་བྱེད་གདུང་བའི་ཁབ་བཞིན་དེས།
དེ་ཡི་ཚིག་ནི་འགལ་བ་དེ་དག་གྲོས།
སྡིག་དེ་མིག་ལ་ཆགས་པ་འདོར་བ་བཞིན།
ས་ལ་བལྟ་ཞིང་གདོང་ནི་དུད་པར་གྱུར། 34

རི་དགས་རིགས་ཅན་ལྷ་བུ་དེ་ཡི་བཞིན།
སྡིག་པའི་དྲི་མ་རབ་གྱིས་དེ་ནི་བལྟར།
གཞོན་ནུས་མ་བཟོད་འཕྲུལ་ལ་ཡིད་འབྱུང་དང་།
ངོ་ཚས་བཞིན་གྱི་པདྨ་ཟུམ་པར་གྱུར། 35

नवाभिलाषातिशयोन्मुखानि
चित्तानि वातूलकुतूहलानि ।
स्त्रीणां स्वभावेन भवन्ति लोके
लावण्यलुब्धानि च लोचनानि ॥ ३२ ॥

उक्तेति सा कम्पतरङ्गिताङ्गी
श्वासाभिभूताधरपल्लवश्रीः ।
स्वेदाम्बुनश्यत्तिलकाधिकारं
स्मरोपदिष्टं प्रकटं बभार ॥ ३३ ॥

वाणीं विरुद्धां स निशम्य तस्या
स्तां तप्तसूचीमिव दीर्णकर्णाम् ।
निरीक्षमाणः क्षितिमक्षिलग्नं
मुमोच तत् पापमिवावनम्रः ॥ ३४ ॥

तस्याः शशाङ्कोपममाननं तत्
समुन्मिषत्पापमलं कुमारः ।
द्रष्टुं न सेहे सहसा विषाद-
लज्जानिमीलद्वदनारविन्दः ॥ ३५ ॥

དག་པར་བགྱི་སླད་དེ་ཡི་ནོ་བ་ཟུང་།
མི་ཚུང་ཕྱིག་གྲོས་འདར་བས་བསྐྱོད་བ་ལས།
རིན་ཅན་རབ་འབར་ནོ་གྲིན་ལས་འཁྲུངས་པའི།
མཐུ་ལྡན་མི་ཉི་སྐད་ཅིག་ཞུགས་པ་བཞིན། 36

དེ་ཡི་ལག་པས་ནོ་བ་ཟུང་བསྒྲིབས་ནས།
སྐད་ཅིག་འཕྲུད་པའི་སྐྱོན་ནི་ཞི་བའི་སླད།
ཡན་ལག་ཡན་ལག་འཁྲུད་པའི་གང་གཱ་བཞིན།
སོ་ཡི་འོད་ཟེར་དཀར་ལྡན་ཅིག་སྤྲོས་པ། 37

ས་མ་ཁྲོད་ཀྱིས་འདི་དག་སྨྲ་མི་འོས།
དམ་པའི་ལམ་ནས་སོང་ལ་ཚིག་དག་སྨོམས།
འཕྲུལ་ལ་ཡོངས་བདང་སྐབས་ཀྱི་ཚུལ་ཁྲིམས་ནི།
ཉམས་ཞིང་ནོམ་བར་གཡོ་བ་དབུགས་དབྱུང་མཛོད། 38

ཐྲིགས་དང་དག་མེད་གཞན་ནོར་འདོད་པ་དང་།
ཕྱིག་པ་རྗེས་འབྲེལ་ཡུལ་ལམ་མདོན་སྤྲེད་པ།
འདི་དག་སྤྲོག་ཆགས་ནོམ་པར་ལྷུང་དུས་སུ།
བསྡམས་པ་མེད་པའི་གནོད་པའི་སྐོ་དག་ཡིན། 39

अनल्पपापश्रवणप्रकम्पा-
द्विलोलरत्नोज्ज्वलकुण्डलोत्थम्।
तस्य क्षणं कर्णयुगं विशुद्धै
प्रभावनं वह्निमिवाविवेश॥ ३६॥

स पाणिना श्रोत्रयुगं पिधाय
ससर्ज्ज वाचं दशनांशुशुभ्राम्।
प्रक्षालयंस्तां क्षणमङ्गसङ्गां
गङ्गामिवालिङ्गनदोषशान्त्यै॥ ३७॥

मातर्न युक्तं तव वक्तुमेतत्
सद्वर्त्मना गच्छ नियच्छ वाचम्।
सद्यः परित्यागदशाविलोलं
शीलं समाश्वासय शीर्य्यमाणम्॥ ३८॥

दर्पः प्रमादः परवित्तवाञ्छा
पापानुबन्धी विषयाभिलाषः।
एतानि जन्तोर्विनिपातकाले
द्वाराण्यपायस्य निरर्गलानि॥ ३९॥

སྨིན་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས་ཉམས་ལ་ནོར་གྱིས་ཅི།
སྤང་བས་དབང་བྱས་ཉམས་ལ་གྲོས་པས་ཅི།
ཡོན་དན་མཆོག་སྤྲངས་ཉམས་ལ་གཟུགས་ཀྱིས་ཅི།
ཚུལ་ཁྲིམས་བདང་བ་ཉམས་ལ་རིགས་ཀྱིས་ཅི། 40

མ་མ་གཡོ་བ་ཉིད་དག་གྲོང་ལམ་ཉམས་གྲགས་པའི་ཟླ་བ་མཛེས་པར་སྤྱངས།
ཚུལ་ཁྲིམས་དྲི་མེད་རིགས་ཀྱི་རྒྱུ་དག་སྐྱོངས་ཤིག་སྡིག་ལ་བློ་གྲོས་ཡོངས་མ་བྱེད།
རབ་འབར་དམྱལ་བའི་མེ་ཡིས་འཚོད་ཅིང་འཁྲུགས་དེ་ཡི་དགས་རབ་ཏུ་གདུ
བས་ཉེན།
སྡིག་ཅན་འཇིག་རྟེན་པ་རོལ་ལམ་ནི་ངེས་པར་ཉོན་མོངས་དག་གིས་འཁྲུགས་
པའི་ས། 41

ཞེས་པ་ས་བདག་སྨྲས་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས།
མི་བཟད་ཆགས་པའི་གདོན་ནི་ངེས་མ་བདང་།
སྨོངས་པའི་མུན་ཅན་ཁྲིན་པའི་རྒྱ་ནང་དུ།
ཆོས་ཀྱི་ཉེར་བསྟན་ཉི་མའི་འོད་མི་འཇུག། 42

རབ་དུ་འཇོམས་བྱེད་ཡིད་སྨྲབས་ས་བདག་གིས།
ཚོམ་ཀུན་མ་བཞིན་འཕྲལ་ལ་གཟིར་གྱུར་དེ།
ཞུགས་རིངས་དལ་ཞིང་འཁྲུལ་པར་རྫོད་བྱེད་པས།
འབྲེལ་མེད་དོན་གྱི་ཚེ་ང་དེ་དེ་སྐད། 43

धनेन किं दानपराङ्मुखाणां
श्रुतेन किं द्वेषवशीकृतानाम्।
रूपेण किं सद्गुणवर्जितानां
कुलेन किं शीलविनाशकानाम्॥ ४०॥

मातश्चञ्चलतां विमुञ्च रुचिरं रक्षाक्षयेन्दुं यशः
शीलं पालय पश्य वंशममलं पापे मतिं मा कृथाः।
स्फूर्ज्जन्नारकवह्निपाकविकलप्रेतप्रलापोत्कटाः
पापानां परलोकवर्त्मनि किल क्लेशाकुला भूमयः॥ ४१॥

श्रुत्वेति वाक्यं क्षितिपात्मजस्य
रागग्रहं सा न मुमोच तीव्रम्।
मोहान्धकूपस्य जनस्य नान्त-
र्धर्म्मोपदेशार्ककरा विशन्ति॥ ४२॥

चौरीव सा मन्मथपार्थिवेन
प्रमाथिना प्रव्यथिता प्रसह्य।
श्वासप्रयासस्खलिताभिधान-
मसङ्गतार्थं प्रललाप तत्तत्॥ ४३॥

སྦྱིན་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས་ཉམས་ལ་ནོར་གྱིས་ཏི།
སྡང་བས་དབང་བྱས་ཉམས་ལ་ཐོས་པས་ཏི།
ཡོན་དན་མཆོག་སྤྱངས་ཉམས་ལ་གཟུགས་ཀྱིས་ཏི།
ཚུལ་ཁྲིམས་བཏང་བ་ཉམས་ལ་རིགས་ཀྱིས་ཏི། 40

མ་མ་གཡོ་བ་ཉིད་དག་ཐོང་ལ་མ་ཉམས་གྲགས་པའི་ཟླ་བ་མཛེས་པར་སྤྱངས།
ཚུལ་ཁྲིམས་དྲི་མེད་རིགས་ཀྱི་རྒྱུ་དག་སྐྱོངས་ཤིག་སྡིག་ལ་བློ་གྲོས་ཡོངས་མ་བྱེད།
རབ་འབར་དམྱལ་བའི་མེ་ཡིས་འཚོད་ཅིང་འཁྲུགས་དེ་ཡི་དགས་རབ་ཏུ་གདུང་བས་ཉེན།
སྡིག་ཅན་འཇིག་རྟེན་ཕ་རོལ་ལས་ནི་ངེས་པར་ཉོན་མོངས་དག་གིས་འཁྲུགས་པའི་ས། 41

ཞེས་པ་ས་བདག་སྨྲས་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས།
མི་བཟད་ཆགས་པའི་གདོན་ནི་ངེས་མ་བཏང་།
སྨོངས་པའི་མུན་ཅན་ཁྲོན་པའི་རྒྱ་ནང་དུ།
ཆོས་ཀྱི་ཉེར་བསྟན་ཉི་མའི་འོད་མི་འཇུག། 42

རབ་ཏུ་འཇོམས་བྱེད་ཡིད་སྤྲུབས་ས་བདག་གིས།
ཆོས་ཀུན་མ་བཞིན་འཕྲུལ་ལ་གཟིར་གྱུར་ཏེ།
ཞུགས་རིངས་དལ་ཞིང་འཁྲུལ་པར་རྫོད་བྱེད་པས།
འབྲེལ་མེད་དོན་གྱི་ཚེ་ང་དེ་ནི་སྨྲས། 43

स्वस्थोपदेशः क्रियते त्वयायं
स्मरार्दिताहं न शृणोमि किञ्चित् ।
नायाति वाग्भिः प्रशमं विशाल-
ज्वालाकलापः प्रबलः स्मराग्निः ॥ ४४ ॥

देशे स्खलन्निर्झरशीतलेऽपि
भवन्ति तप्तानि मरुस्थलानि ।
रागातुराणामुदयेऽपि भानो-
र्घोरान्धकाराणि दिगन्तराणि ॥ ४५ ॥

नास्त्येव तप्तामबलां दयालोः
संरक्षतस्ते यदि कोऽपि धर्म्मः ।
तत्साधुभिर्दर्शितगौरवस्य
तस्याप्यभावे कथमस्त्यधर्म्मः ॥ ४६ ॥

ये शीतलाः स्वस्थधियः सुखाय
तेषां प्रमाणं स्थिर एष धर्म्मः ।
सन्तापितानां व्यसनातुराणां
निषिद्धकार्य्येष्वपि को विचारः ॥ ४७ ॥

དེ་ཉིད་ཀྱིས་ནི་ཕྱིག་པ་དང་པོར་བླངས།
བདག་ཡོངས་བསྒྲུངས་པས་ཁྱོད་ལ་ཆོས་སུ་འགྱུར།
རིག་པ་རི་བོང་ཅན་ལྟར་བསིལ་པ་ཡིས།
ཀྱུན་དུ་གདུང་བས་ཉེན་བདག་བདེ་བར་མཛོད། 48

གདུང་བ་འཕྲོག་བྱེད་ཟླ་བ་དང་ནི་མི་བཟད་མུན་པ་ཉམས་བྱེད་ཉི་མ་དང་།
ཉིན་དང་མཚན་མོར་གྲུང་བའི་ཉོན་མོངས་ཞི་བྱེད་མི་ལ་ཕྱིག་པའི་འབྲས་བུ་ཅི།
གདུང་བས་གཟིར་བ་བསྲུང་བ་དང་མཉམ་ལས་བཟང་ཆོས་ནི་གང་དུ་ཅི་ཞིག་མཐོང་།
བསྟན་བཅོས་མཐའ་དག་ཤེས་པ་ཁྱོད་ཀྱིས་གང་འདི་བདེན་པར་གསལ་བ་ཉིད་དུ་
སྨྲོས། 49

ཡུལ་འདི་སྐྱེ་བོས་སྤངས་ཤིང་ལེགས་པར་བསྐྱིབས།
དབེན་པ་འབྱེད་པ་སུ་ཡང་མེད་པ་འདིར།
རང་འདོད་དུ་འཇུག་མཛའ་བས་དད་པ་ཡི།
བུད་མེད་དར་མ་སྐལ་ལྡན་ཉིད་ལ་འགྱུར། 50

བུད་མེད་དགའ་མགུས་ཡོངས་སུ་ཚིམས་རྣམས་ཀྱིས།
བཞིན་གྱི་པདྨ་འགྲམ་པའི་འདབ་དམན་བཞིན།
མཚོ་ཉམས་ལན་བུ་འཁྲུགས་ཤིང་ཙུལ་གྱི་ནི།
ཕྱིགས་བས་བརླན་ཆགས་སྐལ་ལྡན་རྣམས་ཀྱིས་མཐོང་། 51

मयैव पापं प्रथमं गृहीतं
धर्म्मोऽस्ति ते मत्परिरक्षणेन ।
स्पर्शेन निर्वापय सन्ततां मे
सन्तापजार्त्तिं शशिशीतलेन ॥ ४८ ॥

सन्तापं हरतो विधोः क्षपयतस्तीव्रं तमो भास्वतः
शीतक्लेशमहर्निशं शमयतः पापं किमग्नेः फलम् ।
ब्रूहि ज्ञातसमस्तशास्त्र यदिवा सत्यं त्वमेव स्फुटं
दृष्टः किं व्यसनार्त्तरक्षणसमः सत्कर्म्मधर्म्मः क्वचित् ॥ ४९ ॥

रहस्यभेदोऽत्र न कश्चिदस्ति
जनोज्झितः संवृत एष देशः ।
स्वेच्छाप्रवृत्तप्रणयोपनम्राः
प्रौढाङ्गना भाग्यवतां भवन्ति ॥ ५० ॥

क्लिष्टाधरं क्लान्तकपोलपत्रं
स्रस्तालकं स्वेदलवार्द्ररागम् ।
नितम्बिनीनां रतितोषितानां
पश्यन्ति धन्या वदनारविन्दम् ॥ ५१ ॥

བྲུད་མེད་ཆེད་དུ་རྒྱ་སྤྲིན་ཁྲོས་པའི་ཚོགས།
འཇིགས་རུང་རྒྱ་སྤྲིན་འབྲུག་གནས་འཇིངས་སུ་འགག།
རལ་གྲིའི་འཁྲི་ཤིང་གཡོ་བའི་ལྕེ་ལྡན་པ།
གཡུལ་ངོ་དུས་ཀྱི་འཁོར་ནི་གཞན་དག་འཇུག། 52

ཡུན་རིང་ཉོན་མོངས་ཁྲུད་པར་ཆེ་གདུང་བས།
ནོར་ནམས་ལ་ནི་སྐྱེས་བུ་མཆོག་དུ་འབད།
ནོར་ནི་ཡོངས་འཛིན་ཆོས་ཀྱི་དོན་ཉིད་དེ།
ཆོས་ཀྱི་འབྲས་བུ་མཆོག་ནི་འདོད་པར་བརྗོད། 53

ཉིས་པ་མང་པོས་དེ་སྐད་སྨྲ་བྱེད་ཅིང་།
འཁྲུགས་པ་དེ་ལ་གཞོན་ནུས་རབ་སྨྲས་པ།
མ་མ་ཚོགས་གསུམ་གཙོ་བོའི་འབྲས་བུ་ནི།
དགེ་བའི་ལྷི་བ་ཙ་བ་དང་བཅས་ཆོས། 54

སྐྱེ་བོ་མེད་པར་སྡིག་པ་སྤྲས་མི་འགྱུར།
འདིར་ནི་དཔང་པོ་སྐྱང་མིན་མཐོ་རིས་ཚོགས།
གྲོགས་ཀྱི་དངོས་པོར་གྱུར་པའི་གྲིབ་མས་ཀྱང་།
རྒྱང་མས་བཞིན་དུ་སྐྱོ་བའི་ཐམས་ཅད་རིག། 55

विशन्ति केचित् करवालवल्ली-
विलोलजिह्वं रणकालवक्त्रम्।
येऽपि त्वहो क्रोधननक्रचक्र-
करालमन्ये मकराकरौघम्[1] ॥ ५२ ॥

तीव्रैश्चिरक्लेशविशेषशोषै-
रर्थेषु पुंसां परमः प्रयत्नः।
धर्मार्थ एवार्थपरिग्रहोऽयं
धर्मस्य कामं फलमग्र्यमाहुः ॥ ५३ ॥

इति ब्रुवाणां बहुभिः प्रकारै-
स्तामब्रवीदाकुलितां कुमारः।
मातस्त्रिवर्गस्य फलं समूलं
धर्मः प्रधानं कुशलस्य नाभिः ॥ ५४ ॥

न निर्जने पापमुपैति गुप्ति-
मन्तर्हितः स्वर्गिगणोऽत्र साक्षी।
छाया प्रयाता हि सहायभावं
जायेव जानाति जनस्य सर्व्वम् ॥ ५५ ॥

१ W/1 मकरालयोऽयम्।

དབེན་པར་བྲུས་པའི་ལས་འབྲས་ངེས་པར་སྨིན།
ལས་རྣམས་འབྲས་བུ་རབ་ཉམས་ཡོད་མ་ཡིན།
སྐུན་ནག་དབེན་པར་དུག་ནི་འཕྲངས་བ་ན།
སྤྲོག་རྣམས་མི་བཟད་འཕྲོག་པ་མིན་ནམ་ཅི། 56

རིགས་ཀྱི་བུད་མེད་སྡིག་པའི་མཚན་མར་གྱུར།
དེ་ལའང་འཇིགས་ཟུང་གཞན་གྱི་བུད་མེད་འགྲོགས།
འཕབ་མོ་ལ་སྨོངས་མ་ཞེས་མངོན་སྦྱར་བའི།
རང་གི་ཚུང་མར་སྐྱེ་གཞན་ཡང་མི་རིག། 57

དེ་ལྟར་དོན་གཉེར་ཉམས་པས་ཕྱིར་ཕྱོགས་ཤིང་།
དེ་ཡི་སྨད་པས་ཤིན་ཏུ་གདུངས་གྱུར་ཏེ།
ཁྲོད་ཀྱི་མིག་བྲིགས་ངེས་པར་བདག་གིས་འཕྲོག།
ཅེས་སྨྲས་སྡིག་ཅན་མ་དེ་རང་གནས་སོང་། 58

དེ་ནས་གྲོང་ཁྱེར་རྫོ་འཇོག་ཅེས་པར་ནི།
ས་བདག་སློང་པོའི་ནོ་བ་ཞེས་བྱ་བ།
འདུལ་དུ་གཞོན་ནུ་དཔུང་གི་རྡུལ་རྩུབ་ཚོགས།
ཉི་མ་འཐམ་བྱེད་ལྡན་པར་གྱུལ་པོས་བདང་། 59

रहःकृतं कर्म्म फलत्यवश्यं
न कर्म्मणामस्ति फलप्रणाशः ।
विषं निपीतं विजनान्धकारे
प्राणेषु किं न प्रहरत्यसह्यम् ॥ ५६ ॥

जात्या स्त्रियः पापनिमित्तभूता-
स्तत्रापि घोरः परदारसङ्गः ।
मातेति मोहात्कलहेऽभियुक्तां
नान्त्योऽपि जन्तुः स्पृशति स्वकान्ताम् ॥ ५७ ॥

इत्यर्थनाभङ्गपराङ्मुखी सा
तिरस्कृता तेन नितान्ततप्ता ।
हरामयवश्यं तव नेत्रदर्प-
मुक्तेति पापा स्वपदं जगाम ॥ ५८ ॥

ततः पुरं तक्षशिलाभिधानां
महीपतेः कुञ्जरकर्णनाम्नः ।
सेनारजःपुञ्जविनिर्जितार्कं
नेतुं कुमारं विससर्ज्ज राजा ॥ ५९ ॥

གྲོང་དེར་དེས་ཕྱིན་གླང་པོའི་སྲུན་པ་ཡིས།
མ་ལུས་ཕྱོགས་བཟུང་ཡོངས་སུ་བསྐོར་ཏེ་གནས།
གླང་པོ་དཔའ་སྦྲ་ཚུ་གཉེར་བསྐྱོད་པ་ལྟར།
ཟབ་པས་སྲིད་པ་ནམ་གཉིས་བྱེད་པ་བཞིན། 60

དེ་ནས་ཧོ་འཛོག་རྒྱལ་པོས་རྒྱལ་སྲས་ལ།
སྐྱི་བོས་ཕྱག་འཚལ་རབ་ཏུ་དང་བར་བྱས།
གླང་པོ་རྟ་དང་རིན་ཆེན་དག་གིས་མཆོད།
ཀླི་ལྷན་རང་གིས་རང་གི་རྒྱལ་སར་བོས། 61

དེར་ནི་དེ་ཡིས་དགའ་བའི་རིམ་གྲོ་ཡིས།
གུས་པས་ཉེ་བར་བསྙེན་ཅིང་རྒྱལ་སྲས་དེ།
སྤྲིན་ཚོགས་གཞོན་ནུ་གསལ་བ་རབ་གྱིས་བས།
དྲི་མར་བཅས་པའི་ཉིན་ནམས་རབ་ཏུ་གནས། 62

སྐབས་དེར་བྱ་ཡི་བཞིན་རས་པད་མོ་དག།
བལྟ་བར་ཡིད་ལ་རབ་ཏུ་འདོད་པ་ཡི།
ས་བདག་ལྷོ་བར་ཙ་བ་བཅིངས་པའི་ནང་།
བྱུང་བར་གྱུར་ཏེ་བསམས་པས་བཅིངས་པས་བཞིན། 63

स तां पुरीं प्राप्य गजान्धकार-
ग्रस्ताखिलाशः परिवार्य्य तस्थौ ।
क्षुब्धाब्धिधीरैर्भटकुञ्जराणां
द्विधेव कुर्व्वन् भुवनं निनादैः ॥ ६० ॥

ततः प्रसाद्य प्रणिपत्य मूर्द्ध्ना
नृपात्मजं तक्षशिलाधिनाथः ।
गजाश्वरत्नैरभिपूज्य धीमान्
स्वराजधानीं स्वयमानिनाय ॥ ६१ ॥

प्रियोपचारैरभिपूज्यमान[१]-
स्तेनादरात्तत्र स राजपुत्रः ।
दिनेषु तस्थौ घनयौवनार्द्र-
समुल्लसन्मेघमलीमसेषु ॥ ६२ ॥

अत्रान्तरे पुत्रमुखारविन्द-
सन्दर्शनोत्कण्ठितमानसस्य ।
चिन्तानुबन्धादिव भूमिभर्त्तु-
र्व्याधिर्बभूवोदरबद्धमूलः ॥ ६३ ॥

---

१ W_1 and W_2 ०ऽवसेव्यमानः ।

སྣ་ཚོགས་སྣང་བསམ་བསམ་གཏན་སྒྲུབ་བྱེད་ཅིང་།
ནང་གསོལ་མེད་པར་རྟོགས་པའི་ནམ་འབྱོར་དང་།
ཐེ་ཚོམ་གྱིས་ནི་བཞིན་ཡོག་མགོང་གྱུར་པའི།
སྐྱར་པས་པོ་བྲང་ཁང་པར་རབ་དུ་བསྐོར། 64

སྲུ་ངན་འཇིགས་པས་བཞིན་དུ་དྲིལ་ཚུང་སྟེ།
སྐྱ་བཅད་དུ་གནས་བཙུན་མོའི་ཚོགས་ནམས་ནི།
རི་མོ་བྲིས་པའི་ནམ་པ་དང་མཚུངས་ལ།
བརྟེན་པའི་གཡོ་མེད་མིག་གིས་ལྟ་བར་བྱེད། 65

དལ་བྲུ་དལ་བྲུར་ངི་ཡབ་འདབ་མ་ནི།
ཉེར་འཁོད་མཛེས་པའི་ལག་པས་ནམ་བསྐྱོད་པ།
སྲུ་ངན་གྱིས་འཁྲུགས་ཤུགས་རིངས་བསྙེན་པ་ཡིས།
ཡོངས་སུ་དཀར་བ་ལྟ་བུས་གཡོབ་པ་དེ། 66

ཚུ་གྲུང་ལྡན་པའི་བུམ་པར་མིག་གཏད་ཅིང་།
བསླ་བའི་བདུང་བ་དག་ལ་ཞེན་ཡོག་བསྐྱེད།
གཉིད་ནི་དགག་པའི་ཁྲི་བ་རབ་རྟོགས་ཤིང་།
ཕན་པའི་ཉེར་བསྟན་དག་ལ་ཆགས་བྲལ་ཞུགས། 67

वैद्यैर्वृतोऽन्तःपुरधाम्नि नाना-
भैषज्यचिन्ताविहितावधानैः।
असाध्यरोगावगमाभियोग-
सन्देहसन्दर्शितखेदवक्त्रैः ॥ ६४ ॥

उद्वेगभीत्येव निषद्यमान-
काञ्चीकलापेन वधूगणेन।
चित्रार्पिताकारतुलाश्रितेन
निष्पन्दनेत्रेण विलोक्यमानः ॥ ६५ ॥

आसन्नकान्ताकरमन्दमन्द-
विस्पन्दिना चामरपल्लवेन।
उच्छ्वासभाजा परिपाण्डुरेण
शोकाकुलेनेव स वीज्यमानः ॥ ६६ ॥

शीताम्बुभृङ्गारनिविष्टदृष्टिः
कषायपाने विहितावमानः।
निद्रानिषेध-प्रतिपन्नकोपः
पथ्योपदेश-प्रविशद्विषादः ॥ ६७ ॥

ཞི་སྡང་བཅས་པའི་སྐབས་ཐོབ་ལུས་ལ་ཡང་།
སྐྱིད་འོས་རང་བཞིན་ཆགས་བྲལ་གྱིས་སྤྱོད་ཅིང་།
བཙུན་མོའི་ནུ་མའི་བར་དུ་མགོ་བཞག་པའི།
སྐད་གདངས་ཞན་པ་ས་བདག་གིས་སྨྲས་པ། 68

རིག་བྱ་རྫོགས་པའི་སྨན་པས་དེང་ཡང་ཅི།
གདུང་བ་སྐྱིད་བྱེད་བདེན་མེད་དཔྱད་ཀྱིས་ཅི།
བདེ་མེད་ལས་ཀྱིས་ཡོངས་སུ་གཟིར་བ་རྣམས།
གསོ་བྱེད་ཆོས་ཀྱི་ཉེར་བསྟན་ལ་ཆགས་ཡིན། 69

ལུས་འདི་གནོད་པའི་སར་སོང་དཔྱད་མི་འོས།
ཡོངས་སྤྱོད་ཚོགས་ཀྱང་ཟླག་ཙུ་ལྟ་བུར་སྤྱོད།
ཡོང་བའི་ཀྱུང་ས་མཛེས་སྡུག་ལྡན་པ་བཞིན།
སྤྱོད་སྤངས་དཔལ་ནི་སྨོད་པ་སྡུག་པོ་ཉིད། 70

མི་དག་ཤིན་དུ་དམན་ཡང་རྒྱུན་དུ་ནི།
རབ་འབར་སྤུ་ངན་མེ་ཡིས་སྲེག་བྱེད་ཅིང་།
གདུང་བ་གྲུས་ཀྱང་རངས་དང་མི་འབྲལ་བའི།
རིང་པོའི་ནད་ལྷན་མ་ཡིན་སྲོག་སོང་བདེ། 71

निन्द्यामयोद्वेगजुगुप्समानः
कायेऽपि स द्वेषदृशामवाप्तः।
पत्नीस्तनोत्सङ्ग निषणमूर्द्धा
क्षामस्वरः क्ष्मापतिराचचक्षे ॥ ६८ ॥

वैद्यैः किमद्यापि निवृत्तविद्यै-
र्व्यथानिमित्तैः किमतथ्यपथ्यैः।
अशर्मकर्म्मोपनिपीड़ितानां
धर्म्मोपदेशः प्रणयश्चिकित्सा ॥ ६९ ॥

कायः प्रयातोऽयमपायभूमिं
शल्यायते भोगगणोऽप्यभोग्यः।
अन्धस्य लावण्यवतीव कान्ता
भोगोज्झिता श्रीर्धन एव शापः ॥ ७० ॥

अत्यन्तमन्दाग्निरपि प्रसक्त-
प्रदीप्तशोकानलदह्यमानः[१]।
प्रवृद्धतृष्णोऽप्यनपेत-जाड्यः
सुखी गतासुर्नतु दीर्घरोगी ॥ ७१ ॥

१ $^{W}_{1}$ शोकाग्निप्रदह्यमानः।

སྡིག་པ་རབ་བསྒྲིབས་ནང་དུ་ཡོངས་གནས་དང་།
དམན་པ་བརྟས་ཤིང་རྩོད་པ་རྗེས་འབྲལ་དང་།
ནད་ཀྱི་བདེན་པར་ཟིལ་མནན་སླད་པ་དང་།
རབ་འབར་མེ་ཡི་གདུང་བ་ཞི་བར་འགྱུར། 72

ལས་ངན་རྩེ་དགའ་ཉོན་མོངས་རང་བཞིན་འདི།
ཉམས་པར་བགྲ་བའི་གཟུགས་ནི་ཀློག་པ་སྟེ།
ནད་མེད་བསྟེན་གང་དབུལ་བས་ལྷག་བསྔམ་ཞིང་།
ཕྱུན་ཚོགས་ལྡན་གང་དེག་ཏུ་ནད་ཅན་ནོ། 73

ཉེ་བ་དཔྱོད་གྲུས་པའི་བློ་དང་བྲལ་བའི་ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་སྐྱེ་བ་འབྲས་མེད་དེ།
གང་གིས་བློ་གྲོས་ཐོས་པས་རྒྱན་གྱི་སྒྲུབ་བྱེད་རབ་འབར་བྲུས་པ་མིན་བ་སླད།
གང་གི་དཔལ་གྱིས་དབུལ་བ་ཉིད་མིན་ཀྱང་ཐོས་པ་གྱི་ཆེ་དེ་ཡིས་ཅི།
ཞིན་ཏུ་ནད་མེད་ཉིད་ཀྱིས་གང་ཞིག་སྤྱོད་མེད་དཔལ་གྱི་ཉམས་འཕྲུལ་གྲུས་པས་ཅི། 74

བདག་གི་གཉེན་ནུ་སྐྱེ་གུ་དགའ་བ་ནི།
རྡོ་འཇོག་ཏུ་བསྐོས་སྒྱུར་དུ་དགུས་པར་བགྱི།
མི་ལོང་ལ་བཞིན་དྲི་མེད་ལེགས་སྦྱོང་བྱས།
དེ་ལ་རང་གི་གྲུལ་སྲིད་འཐོབ་པ་ལྟའི། 75

प्रच्छन्नमन्तःपरिवर्त्तिपापं
नीचावमानः कलहानुबन्धी।
व्याधिः स्थिरारम्भजुगुप्सितश्च
दीप्ताग्नितापेन शमं प्रयाति ॥ ७२ ॥

कुकर्म्मणामेष विचित्ररूप-
विपर्य्ययायासमयो विलासः।
दारिद्र्यकष्टं यदरोगभाजां
लक्ष्मीवतां यच्च सदैव रोगः ॥ ७३ ॥

वन्ध्यं जन्म शरीरिणां विरहितं बुद्ध्या विचारेच्छया
धिग्बुद्धिर्न[1] कृतः प्रसाधनविधिर्यस्याः श्रुतेनोज्ज्वलः।
किं तेन श्रुतविस्तरेण न गतो निर्दैन्यतां यः श्रिया
किं श्रीविभ्रमजृम्भितेन नितरामारोग्यभोग्यं न यत् ॥७४॥

आनीयतां मे त्वरया कुमारः
प्रजाप्रियस्तक्षशिलानियुक्तः।
पश्यामि तस्मिन् विमले सुवृत्ते
संक्रान्तमद्यैव कृतं स्वराज्यं ॥ ७५ ॥

१ धिग्बुद्धिं appears to be in $\frac{W}{2}$.

དེ་ཉིད་གུས་པས་དབུ་གྲུན་བཅིངས་བྱས་ཤིང་།
གདུགས་དཀར་མཆོག་ནི་ཡང་དག་གདང་པ་དེ།
གྲོང་པས་ང་ཉིད་བསོད་ནམས་བཅུད་ལེན་གྱིས།
གཞོན་ནུ་ཉིད་ཐོབ་བཞིན་དུ་ལྷ་གྱུར་ཅིག། 76

ཅེས་པ་མི་ཡི་དབང་པོས་སྨྲས་པ་དེ།
མཚུངས་པར་རབ་ཞུགས་འཇིགས་དང་སྐྱ་ངན་དང་།
དམན་དང་ཕྲག་དོག་སྨོངས་པས་ཡོངས་ཁེངས་པའི།
བཙུན་མོ་སྐར་གྱིལ་སྐྱུང་བས་ཐོས་ནས་སྨྲས། 77

ས་སྐྱོང་ཁྱོད་ནི་ནད་མེད་བདག་གིས་བགྱི།
བདག་གི་རིག་པའི་ཁྱད་པར་བལྟ་བར་མཛོད།
རང་གི་བསླབ་དོན་ནོར་ཉམས་སྐྱེ་བོ་ནམས།
བརྟག་སྨྲད་ཆེ་བསྟེན་སྨན་པ་ངན་པ་སོང་། 78

ཏོག་ཏུ་བརྟག་བརྟེན་སྨན་པ་རིག་བྱེད་བྲལ།
ཕན་ཚུན་ཆགས་བྲལ་ཐོས་བྲིགས་བསྐེམས་པ་དང་།
དེ་ཉིད་ཤེས་སྨོད་མི་མཁས་ཧྲིས་སྨྲ་བས།
ཉིན་ཞག་དང་ནི་ནད་པ་འཕེན་པར་བྱེད། 79

समर्पितोदग्रसितातपत्रं
निबद्धमौलिं प्रणयान्मयैव ।
पश्यन्तु तं पुण्यरसायनेन
मामेव पौरास्तरुणत्वमाप्तम् ॥ ७६ ॥

इत्युक्तमाकर्ण्य नरेश्वरेण
तं तिष्यरक्षा निजगाद जाया ।
तुल्यप्रवृत्तैर्भयशोकदैन्य-
मात्सर्य्यमोहैः परिपूर्य्यमाणा ॥ ७७ ॥

अहं महीपाल निरामयं त्वां
करोमि ते पश्य विशेषयुक्तिम् ।
यान्तु स्वशिक्षार्थकदर्थितार्त्ता
जनक्षयावद्यजुषः कुवैद्याः ॥ ७८ ॥

मिथोविवादैः श्रुतगर्व्ववादै-
स्तज्ज्ञापवादैरबुधानुवादैः ।
निर्विद्यवैद्याः क्षपयन्ति नित्यं
क्षयोद्यता वासरमातुरञ्च ॥ ७९ ॥

རང་གི་བུ་ལའང་རྒྱལ་སྲིད་མི་གདང་སྟེ།
རྒྱལ་པོ་གཞན་ལ་ཡོད་ཀུན་དགའ་སྐྱེད་བྱེད།
ཕྱུར་སྲས་ཚོགས་པ་བདང་ན་སྐད་ཅིག་གིས།
གཏིད་པ་སྤོང་ཕྲག་སེ་ཡིས་གདུང་བར་བྱེད། 80

འཕྲལ་ལ་བུ་ལ་ཟུར་ཕུད་བཀོད་གྱུར་ཅིང་།
དེ་དུས་རྗེ་བོའི་གུས་པ་ཉམས་གྱུར་པའི།
རྒྱལ་པོའི་བཀའ་ནི་དུད་པ་མེད་ནམས་ཀྱིས།
ཆ་ཡི་གཙོད་ཅིང་ཙོ་དང་མཚུངས་པར་འགྱུར། 81

ཞེས་པས་ས་དབང་བདེན་པ་བསྒྲུབས་ནས་ནི།
ཁང་ནང་དེ་ལས་དེ་ནི་ཕྱི་རོལ་སོང་།
བ་རྡེ་དེ་མཚོངས་ནད་ཀྱིས་གཟིར་བ་ཅིག།
བཙལ་ནས་དབེན་པའི་གནས་སུ་བོས་བྱས་ཏེ། 82

གདུག་པའི་བསམ་པས་འབང་མོ་གདུག་པའི་བློས།
དེ་བསད་ལྟེ་བའི་མཛོད་ནི་རབ་ཕྲེ་སྟེ།
བརྟེ་བས་སྨན་དེས་དེ་ཡི་གྲུ་མར་ནི།
ནོམ་འགྱུར་ཏུབ་མོའི་སྲིན་བུ་ཆགས་པ་མཐོང་། 83

त्याज्यं न राज्यं स्वसुतेऽपि राजन्
स्पृहां परस्थं विदधाति सर्व्वम् ।
त्यक्ता च लक्ष्मीः कुरुते क्षणेन
विपत्सहस्रज्वलनानुतापम् ॥ ८० ॥

सद्यः सुतारोपितशेखराणां
तत्कालमीलत्प्रभुगौरवाणाम् ।
राज्ञामनर्घैरवधीरितानि
तृणीभवन्त्येव हि शासनानि ॥ ८१ ॥

इति क्षितीशस्य धृतिं विधाय
निर्गत्य तस्माद्भवनान्तरात् सा ।
अन्विष्य तत्तुल्यगदाभिभूत-
माभीरमेकान्तमथानिनाय ॥ ८२ ॥

क्रूराशया क्रूरधियैव दास्या
हत्वा तमुत्पाटितनाभिकोषम् ।
तस्यान्तलग्नं परुषं ददर्श
घृणाविहीना विकृतं कृमिं सा ॥ ८३ ॥

གྲེན་དུ་རབ་གྲོ་མགྲོགས་པར་ཐུར་དུ་ཡང་།
གཅིབ་སྒྲོ་བྱེད་དེ་མཐོང་གསད་ཕྱིར་དེས།
བྱེ་དང་གསྲུར་ཤིང་ཀུན་པི་པི་ལིང་།
པོ་བ་རིལ་སོགས་སྦེ་ཚན་དེ་ལ་བླུགས། 84

མི་བཟད་འགྱུར་བྱེད་དུག་ལྡན་གང་དག་སྦེ།
དེ་དེས་སྨིན་བུ་དེ་ནི་སྐྱོག་ན་གཏང་།
སྐྱོག་སྐྱུའི་ཙ་བ་དག་ནི་གཏུབས་པ་ཡིས།
རིག་པ་ཙམ་ལས་རབ་ཏུ་ཞིག་པར་གྱུར། 85

ཐབས་མཆོག་རྙེད་ནས་རབ་ཏུ་དགའ་བ་དེ།
དེ་ནས་མི་ཡི་བདག་པོའི་དྲུང་སོང་སྟེ།
སྐྱོག་སྐྱུ་ལེགས་པར་བཅད་པ་བྱིན་པ་ཡིས།
སྐད་ཅིག་གིས་ནི་དེ་ལུས་བསོས་པར་བྱས། 86

གང་ལ་དུག་གི་ནུས་པས་ཅང་ཡོད་མིན།
གང་ལ་མཚོན་གྱིས་ཀྱང་ནི་སྨུར་མི་ཕུགས།
གང་ལ་མེ་ནི་སྤྲོ་ཉམས་ལེ་ལོ་ཅན།
དེ་ལ་ཡང་ནི་བྱུད་མེད་བརྟེན་ཉམས་མིན། 87

ऊर्द्ध्वं प्रचारेण जवादधश्च
सकृत् सृजन्तं तमवेक्ष्य हन्त।
सा पिप्पलीहिङ्गुविडङ्गयुक्तं
चिक्षेप तस्मै परिवादिवर्गम् ॥ ८४ ॥

तैस्तैः स कीटः सविषैश्च कैश्चित्
क्षारैरसह्यैर्न मुमोच जीवम्।
पलाण्डुना खण्डितकाण्डलेन[1]
संस्पृष्टमात्रः प्रलयं जगाम ॥ ८५ ॥

उपायमासाद्य परप्रहृष्टा
गता ततः सा नृपतेः समीपम्।
पलाण्डुना चूर्णतरार्पितेन
क्षणेन तं स्वस्थतनुं चकार ॥ ८६ ॥

विषस्य यत्रास्ति न जातु शक्ति-
र्यत्राशु[2] शस्त्राण्यपि कुण्ठितानि।
यत्रालसोत्साहहतो हुताश-
स्तत्राप्यभग्नप्रणया युवत्यः ॥ ८७ ॥

---

१ W_2 पठ। २ W_2 शुः।

དེ་ནས་ས་བདག་ཁྲུས་ཤེས་མཛའ་བ་ཡིས།
འཆིང་བས་བློ་གྲོས་བཅིངས་པས་དེ་ལ་ནི།
• འཚོ་བ་ཐོབ་པའི་དགའ་བས་མཆོག་དག་བྱིན།
དེ་ཡིས་ཉིན་ཞག་བདུན་དུ་རྒྱལ་སྲིད་བསྐྱང། 88

རྒྱལ་སྲིད་ཐོབ་ནས་ས་སྐྱོང་བྱ་བ་ནི།
ཐམས་ཅད་རང་དབང་ཉིད་ཀྱིས་བྱེད་པར་ཞུགས།
རྡོ་འཛོག་དབང་པོ་ལ་ནི་སྤྲིང་ཡིག་དག།
རྒྱ་ལྷན་རིན་ཆེན་མཛེས་པ་དང་བཅས་སྤྲིངས། 89

ད་ནས་མི་བདག་བཀས་མཚན་སྤྲིང་ཡིག་དེ།
དུལ་ཞིང་རབ་དུ་དུད་པས་མཆོད་དེ་བླངས།
རྡོ་འཛོག་བདག་པོ་རང་གིས་གསལ་བ་ཡིས།
ཡི་གེས་མཚོན་པའི་དོན་ནི་རབ་དུ་གནས། 90

སུཥྚི་གྲོང་ཁྱེར་སྣ་ཀ་ལ་ཡི་སྤྲུ་དུ་ལས་མཚུངས་པ་མེད་པའི་གཡུལ་ལ་དཔའ་བས་ཡང་དག་པར་ཐོབ་པ། རྒྱ་མཚོ་མཐའ་དག་གི་མཚམས་སུ་རབ་དུ་འཕྲོ་ཞིང་མི་ཞན་ལ་དྲི་མ་དང་བྲལ་བའི་གྲགས་པའི་ཚོགས་ལས་བསྒྲུབས་པའི་དུ་ཀུ་ལའི་རས་དཀར་པོས་ནོར་འཛིན་གྱི་བུ་མོ་ལ་ལོངས་སྤྱོད་པར་བྱ་བ་སྐལ་བ་བཟང་པོ་ཉིད་ཀྱིས་བསྐྱེམས་པ་བྱིན་པ། དགྲ་བོའི་གཞི་བྱིན་ཉམས་པར་བྱེད་ཅིང་མི་དགའ་བ་

ततः कृतज्ञः क्षितिवल्लभोऽस्मै
प्रेमानुबन्धप्रतिबद्धबुद्धिः ।
वरं ददौ जीवितलाभहर्षात्
तयार्थितं सप्तदिनानि राज्यम् ॥ ८८ ॥

सम्प्राप्तराज्या स्ववशैव सर्व्वं
कर्त्तुं प्रवृत्ता क्षितिपालकार्य्यम् ।
सा प्राहिणोत्तक्षशिलेश्वराय
लेखं समुद्रं सह चारुरत्नैः ॥ ८९ ॥

लेखं ततस्तं नृपशासनाङ्क-
मादाय मान्यं विनयावनम्रः ।
स्वयं विभक्ताक्षरलक्षितार्थ-
मवाचयत्तक्षशिलाधिनाथः ॥ ९० ॥

स्वस्ति श्रीपाटलिपुत्रादसमसमरसाहससमासादितस-मस्तसिन्धुसीमासमुच्छलदविरलविमलयशःकलापकलित-धवलदुकूलवसुधावधूदत्तभोगसौभाग्यगर्व्वखर्व्वीकृतविपुल-रिपुप्रतापः शापद्ववारातिरमणीविलासानां प्रणतिप्रति-बिम्बितानन्तसामन्तवक्त्रशतपत्रैकपात्रीकृतविमलमणिपाद-

ཉམས་ཀྱི་དགའ་མའི་རྩེ་དགའི་དམོད་པ་བཞིན་དུ་གྱུར་པ། བྲི་མ་མེད་པའི་ནོར་བུའི་ཀོང་སྟེགས། ནགྲའ་ཡས་པའི་གྲོལ་ཕྲན་གྱིས་རབ་དུ་བརྡུང་པའི་བཞིན་གྱི་པདྨའི་གཟུགས་ཅན་སྣང་གཅིག་དུ་གྲུས་པ། ལེགས་གྲུས་དགེ་བའི་པདྨ་ཉམ་པར་གྲོས་པར་བྱེད་པའི་ཉིན་མོའི་དབང་ཕྱུག་དུལ་པོད་དང་བརྩོན་འགྲུས་དང་སྤྲོ་བ་ཆེན་པོ་རབ་དུ་གྲོས་པའི་ནགས་ཚལ་གྱི་གདོང་ལྷ་པ་དཔལ་ལྷ་སྤུ་ངན་མེད་པ་ཡིས། རྗེ་འཇོག་གི་དབང་པོ་དཔལ་སྨྲང་པོའི་ནི་བ་ལ་ཡང་དག་པར་རྟོགས་པར་བྱེད་པ་འདི་ལྟ་སྟེ། བདག་གི་བུའི་བཞིན་དང་ལྡན་པའི་དགྲ། ཁྲེལ་མེད་ཅིང་ངན་པའི་སྤྱོད་པ་ལ་བྲམས་ལ་ཡོངས་སུ་སྨག་པའི་སྤྱོད་པ་ཅན། མི་གཙང་ཞིང་བསྟན་བཙོས་ལ་སྣང་བ་མིག་གི་འདབ་བགྲ་ཕའི་ཚུང་མ་ལ་མངོན་པར་སྲེད་པའི་དུག་གི་སྨོད་དུ་བྱེད་པ་སྡིག་པའི་རྗེས་སུ་མཐུན་པའི་གཟུགས་དང་ལང་ཚོ་དང་སྤྲོ་བ་དང་དུལ་པོད་དང་ལྡན་པ། སྐྱེ་བོ་མིའི་ལག་འགྲོ་འདི་མིག་གི་ནོར་བུ་རབ་དུ་ཕྱུང་སྟེ་གོས་དང་བྲལ་བར་བསྐྲད་པར་མཛོད་ཅིག།

ཅེས་པ་བདག་གི་འབད་པས་དོན་དུ་གཉེར་བའོ།
སྤྲིང་ཡིག་དོན་ནི་རབ་བརྟགས་ཉམ་དཔྱད་ནས།
བརྩེ་ལྡན་བརྩེ་བས་ཉམ་པར་འགེམས་བྱེད་ཅིང་།
གཞོན་ནུ་ལ་མཛའ་མི་བདག་ལ་འཛིགས་པས། 91

མི་བདག་ཡིད་ནི་ཁྲོགས་ལ་བདེག་པར་གྱུར།
མཆི་མས་འཁྲུགས་ཤིང་ས་ལ་བལྟ་བ་དེ།
གཞོན་ནུ་དེ་ན་གནས་པས་མཐོང་གྱུར་ནས།
འདི་དག་ཅི་ཞེས་ཐེ་ཚོམ་གྱིས་གཟིར་གྱུར། 92

पीठः सुहृत्कुलकमलविकाशवासरेश्वरः स्फीतसौर्य्यमौर्य्य-महावंशवनपञ्चाननः श्रीमदशोकदेवस्तक्षशिलाधिपं श्रीकुञ्जरकर्णं सम्बोधयति। यथा—

एष मे निरपत्रपः कुचरितमैत्री परित्यक्तचारित्रः पुत्रमुखशत्रुरपवित्रः शास्त्रविद्वेषी पितृकलत्राभिलाषविषपात्रीकृतनेत्रशतपत्रः पापानुरूपरूपयौवनोत्साहसाहसः समुत्पाटितलोचनमणिर्निर्वसनो निर्वास्यतां जननीजनभुजङ्ग इत्यस्मदभ्यर्थनाप्रणयः॥

लेखार्थमित्युग्रतरं विचार्य्य
निवार्य्यमाणः कृपया कृपालुः।
प्रीत्या कुमारस्य नृपस्य भीत्या
दोलायमानो नृपतिर्बभूव॥ ९१॥

तत्र स्थितस्तं क्षितिमीक्षमाणं
निरीक्ष्य वाष्पाकुलितं कुमारः।
किमेतदित्यागतसंशयार्त्तिः
स्वयं समादाय ददर्श लेखम्॥ ९२॥

བདེན་པའི་སྤྱོད་ཚུལ་གཡོ་མེད་དེ་ཡིས་བསམས།
རེ་ཞིག་པ་ཡི་བཞེད་འདི་འགོང་མི་བྱ།
དེ་ཁྲིས་འཇིགས་ལས་མི་བདག་འདི་ཡང་བསྲུངས།
རྒྱལ་པོ་རྫོན་གྱི་གནོད་པས་ཁྲིས་སོད་ཀྱང་། 93

དག་པ་བརྗོད་པས་རབ་དུ་དང་མི་འགྱུར།
མིག་ནི་ཡོངས་བདང་བདེ་སྐྱིད་ཡབ་ཀྱི་ནི།
ཁྲི་བའི་མེ་གདུང་རབ་ཞི་བདག་གིས་བྱ།
ས་བདག་འདི་ཡང་དེ་ཡི་བཀའ་བཅག་ལས། 94

སྐྱེས་བའི་གདུང་བ་གྲུས་པར་མི་འགྱུར་རོ།
མི་བདེན་མི་གཙང་རང་བཞིན་ལུས་དག་ལ།
མིག་ནི་ཆུ་ཡི་ཐིགས་པའི་ཉམ་འགྱུར་གཟུགས།
ཚོ་སྔོན་གཟུགས་བརྙན་སྣང་ཅིག་རབ་གསལ་བ། 95

དེ་ལ་ངེས་པར་ཡོན་དན་ཅི་ཞིག་གནས།
གང་ཞིག་བལྟ་སྦོབ་ལ་ཆགས་འཇིག་རྟེན་ར།
ཤིན་དུ་རབ་འབད་མིག་ནི་ཡང་དག་བསྲུངས།
དེ་དག་གཟུགས་དེ་རབ་གཡོ་མིག་འཕྲུལ་དང་། 96

आज्ञां गुरोर्दुःसहदुर्ग्रहां तां
निश्चित्य मिथ्योत्थिततीव्रमन्योः ।
तस्मिन्नसह्यव्यसनोदयेऽपि
सोऽचिन्तयन्निश्चलधैर्य्यवृत्तिः ॥ ९३ ॥

इच्छा पितुस्तावदियं न लङ्घ्या
रक्ष्यश्च तत्कोपभयान्नृपोऽयम् ।
मिथ्यापराधात् कुपिते ऽपि राजा
प्रसादमायाति न शुद्धवादैः ॥ ९४ ॥

नेत्रे परित्यज्य पितुः करोमि
कोपाग्नितापप्रशमं सुखाय ।
अस्यापि तच्छासनभङ्गजन्मा
महीपतेर्मा व्यसनोदयोऽभूत्[१] ॥ ९५ ॥

विनश्वरे क्लेदमये शरीरे
चक्षुर्जलस्तोकविकाररूपम् ।
का नाम तस्मिन् क्षणिकप्रकाशे
तृणप्रदीपप्रतिमे गुणास्था ॥ ९६ ॥

१ W/3 °दयोऽस्तु ।

སྐྱི་ལམ་འཕྲེང་གྲོགས་རྟེན་མེད་རི་མོའི།
ཡུན་རིང་འདི་སྤྱོད་མི་དབང་སྨས་བོ་ཡིས།
གྱུལ་པོ་དེ་ནི་བཞིན་མིན་ཕྱིན་ཕྱོགས་ཞིང་།
སྐྱེ་བོ་མཆི་མར་བཅས་པས་བཀློག་གྱུར་ཀྱང་། 97

དེར་ནི་མིག་དག་ཉམས་པར་བྱེད་དུ་བཙུག།
གདུག་པའི་སྐྱེས་བུ་ནོར་ལ་བཀོས་པ་ཡིས།
གསེར་སྦྱིན་མིག་ནི་རབ་ཏུ་ཕྱུང་བ་དེས།
མི་ཀློག་གླང་པོས་ཆུ་སྐྱེས་ཚོགས་བཅོམ་པའི། 98

པདྨའི་འབྱུང་གནས་ནམ་པར་མཚོངས་པ་ཐོབ།
དེ་ཡིས་མཛའ་བོས་གསེར་གྱི་འཕྲེང་ལྡན་མ།
ཀྱུལ་བར་སྦྱོར་ཚེ་ལྡན་ཅིག་དེར་འོངས་པས།
གནས་དེར་མདོན་ཕྱོགས་མིག་ནི་ནམ་ཉམས་དེ། 99

མཐོང་བ་ཉིད་ན་སྨོངས་པས་བཅོམ་ནས་འགྱེལ།
འདུ་ཤེས་ཐོབ་ཅིང་གྱི་ཆེར་རབ་གདུང་བ།
མིག་མཛེས་རྩེ་དགའ་ལ་ཆགས་དེ་ལ་ནི།
མི་རྟག་ཉིད་བསམས་བདེན་བ་མཐོང་གྱུར་ཅིང་། 100

लोके यदालोकन-लाभ-लोभात्
संरक्ष्यते चक्षुरिति प्रयत्नात् ।
रूपं तदेतत्तरलेन्द्रजाल-
स्वप्नावलीमिचमभित्तिचित्रम् ॥ ९७ ॥

चिरं विचार्य्येति नरेन्द्रसूनु-
स्तस्मिन्ननिच्छाविमुखेऽपि राज्ञि ।
निवार्य्यमाणोऽपि जनैः सवाष्पै-
रकारयत्तच विघातमक्ष्णोः ॥ ९८ ॥

हेमप्रदः क्रूरतरेण पुंसा
स वित्तलुब्धेन समुद्धृताक्षः ।
दुर्वारमातङ्गहताब्जपुञ्ज-
पद्माकराकारतुलामवाप ॥ ९९ ॥

जयोद्यमे तत्र सहोपयाता
प्रेमोचिता काञ्चनमालिकास्य ।
तं देशमभ्येत्य विनष्टनेत्रं
दृष्ट्वैव तं मोहहता पपात ॥ १०० ॥

རྒྱུན་ཞུགས་འབྲས་ཐོབ་བདེན་པ་དེས་སྨྲས་པ།
མཛེས་མ་འཁྲུགས་པ་ཉིད་ལས་བདེན་པ་བསྟེན།
རྨོངས་དང་དམན་གྱིས་སྐྲག་པར་མ་བྱེད་ཅིག།
སྲོག་ཆགས་རྣམ་ཀྱིས་རང་ལས་འབྲས་བུ་ནི། 101

འཇིགས་པ་ངེས་པར་སྐྱུད་པར་བྱ་བ་ཡིན།
ད་ནི་དབེན་པར་ལོང་བ་ང་ཉིད་འགྲོ།
ཁྲོད་ཀྱི་ཉོན་མོངས་མི་བཟོད་གཉེན་ཁབ་སྟེན།
སྐལ་བཟང་ལོངས་སྤྱོད་འབྲལ་བའི་སྙིང་པོ་ནི། 102

འཁོར་བའི་རང་བཞིན་སྒྱུ་ངན་ཡོངས་མི་བྱ།
ཞེས་སྨྲ་དེ་ལ་འབྲལ་བའི་འཇིགས་པ་ཡིས།
ཡོངས་འདར་ལུས་ཅན་བཙུན་མོས་རབ་སྨྲས་པ།
རང་སེམས་སྡུག་བསྔལ་ལ་བཙོངས་ནུ་མ་ལ། 103

མིག་སྨན་གྱིས་སྤོ་མཆི་མས་འབྲི་བ་བཞིན།
བདག་ནི་ཧྲི་ཡི་སྐུས་ཁྲོད་ཡོངས་མི་གཏོང་།
གང་ཞིག་གསོད་ཚེ་རང་བདག་གཟུགས་གཞན་ཀྱང་།
རྒྱན་དང་ཚུལ་ཁྲིམས་བཞིན་དུ་གཏོང་བ་འདི། 104

अवाप्तसञ्ज्ञां विपुलप्रलापां
तां नेत्रलावण्यविलासलुब्धां ।
अनित्यताचिन्तनदृष्टसत्यः
स्रोतःफलाख्या स जगाद धीरः ॥ १०१ ॥

मुग्धे धृतिं संश्रय विक्लवत्वा-
न्मामोहदैन्योदयकातरा भूः ।
अवश्यभोग्यानि भवन्ति भीरु
स्वकर्म्मणामेव फलानि जन्तोः ॥ १०२ ॥

अन्धोऽधुनाहं विजनं व्रजामि
क्लेशासहा त्वं श्रय बन्धुगेहम् ।
कार्यो न शोकः सुभगोपभोग-
वियोगसारो हि भवस्वभावः ॥ १०३ ॥

इति ब्रुवाणं तमुवाच जाया
वियोगभीता परिकम्पिताङ्गी ।
स्रोनाञ्जनास्रैः कुचयोर्लिखन्ती-
दुःखस्य विक्रीतमिव स्वचित्तम् ॥ १०४ ॥

བྱང་མེད་ནོམས་ཀྱི་རིགས་འདོས་བདེལ་ཞུགས་མིན།
དགའ་བའི་བདེལ་ཞུགས་མཛའ་སྣད་ནོར་ལྷན་ལ།
སྣད་འཚོང་ནོམས་ཀྱང་འབད་ནས་སྟེན་པར་བྱེད།
བདག་པོ་གོད་གྱུར་དགའ་ནོམས་ལྷག་པར་མཛའ། 105

སྐྱེ་བོ་ཆེ་ནོམས་སྐྱོང་བ་དགའ་བཞིན།
མིག་ནི་ལོང་བའི་རབ་མཆོག་འབར་བ་སྟེ།
གོད་པའི་གདུང་ནས་ངལ་ལ་གྲིབ་བསིལ་བཞིན།
གནས་ཉམས་སྐྱེས་བུ་ནོམས་ཀྱི་མི་བཟད་ལ། 106

གྲོགས་ནི་ཆུང་མ་དང་མཆུངས་ཡོད་མ་ཡིན།
དེ་ལྟར་འབད་པས་དོན་གཉེར་གྲོལ་པོའི་བུ།
སྟོད་གཡོགས་རྒྱལ་པོ་ཙམ་ལྷག་བདེན་པ་དང་།
ཞབས་ཟུང་ལ་གདུགས་ཆུང་མ་དེ་དང་ཡང་། 107

ལྷན་ཅིག་ཉིད་དུ་དལ་གྲིས་སོང་བར་གྱུར།
གྱོད་མང་སྒྲོང་མཁས་གླུ་སྙན་ལེན་མཁས་དེས།
དང་པོར་དེ་ཆོ་ལམ་དུ་འཆོ་བ་ཐོབ།
གོད་ན་བསོད་ནམས་འགྱོར་ན་རྩེ་འཇེ་ཡིས། 108

त्यजामि न त्वामहमार्य्यपुत्र
नैतत् कुलार्हं व्रतमङ्गनानाम् ।
यदापदि स्वं पतिमन्यरूपं
विभूषणं शीलमिव त्यजन्ति ॥ १०५ ॥

सतीव्रतं वित्तवतां प्रियाय
यत्नेन वेश्या अपि दर्शयन्ति ।
पतिः सतीनामधिकं प्रियस्तु
विपन्नतोऽर्थीव महाजनानाम् ॥ १०६ ॥

यष्टिः प्रनष्टा नयनान्धकारे
छाया विपत्तापपरिश्रमेषु ।
पदच्युतानां विषमेषु पुंसां
नास्त्येव जायासदृशः सहायः ॥ १०७ ॥

इत्यर्थितः पादयुगे निपत्य
पत्न्या प्रयत्नादथ राजपुत्रः ।
सहैव जीर्णांशुकमात्रशेष-
स्तया च धृत्या च शनैर्जगाम ॥ १०८ ॥

ཀྱི་ཅོལ་མཚོངས་པའི་ནོར་ནི་མི་ལ་མེད།
བྱུང་བའི་འཕྲེང་བ་མོས་པའི་སྒྲ་ལྟ་བུ།
གྱུར་མང་སྒྲ་བརྙན་ནི་བའི་བདུད་རྩི་ཡིས།
བྲན་བཞིན་བསོད་སྙོམས་སློང་དེ་ཙང་མ་དང་། 109

*   *   *   *

*   *   *   *

*   *   *   *

ལྷན་ཅིག་ཁྲིམ་ནམས་སུ་ཞུགས་གླུ་བླངས་པ། 110

སྐྱེ་བོ་བླ་མ་ཁྲིམས་པས་རབ་བསྐྱུན་སྒྲ་གཅན་གྱི་ནི་མཐུ་ཡིས་ཉི་མ་ནུས་པར་ཉམས་བྱས་ཤིང་། བདེན་མེད་ཡོངས་སུ་སྨྲ་བའི་ནམ་པར་བསྒྲད་པ་ནག་ཕྱོགས་ཉིན་གྱིས་སྤྱོད་བས་ཟླ་བ་ཟད་པར་བྱས། ཡོན་དན་ལྡན་པའི་ཚོགས་ལ་སྲུན་འབྲིན་ལྷུང་བས་ཡོན་དན་མཚོག་གི་རིན་ཆེན་འོད་ཀྱིས་དབུལ་བར་འགྱུར། རབ་མང་ཉེས་བྱས་ཡོངས་སུ་སྨིན་པའི་ཀླུང་གིས་བསྡུན་པས་མིག་གི་སྒྲོན་མ་དག་དང་བྲལ་གྱུར་པ། སྨྲིད་པའི་རྒྱ་འཛིན་ཆེ་ལ་གློག་བཞིན་ཤིན་དུ་གཡོ་བའི་དཔལ་གྱི་ཉམ་པ་དག་དང་བྲལ་ནམས་ལ། བསོད་ནམས་དག་གིས་སླར་ཡང་དམ་ཆོས་ངན་པར་གྱུར་པའི་སྣང་བ་གསར་པ་རབ་ཏུ་སྤྲོ་བར་བྱེད། 113

वीणाप्रवीणः स सुगीतगीतः
पूर्व्वं तदा वर्त्मसु वृत्तिमाप।
विपत्सु पथ्यं विभवे विलासः
कलासमं नास्ति धनं नराणाम्॥ १०९ ॥

मत्तालिमालाक्वणितोपमेन
वीणास्वनेन श्रवणामृतेन।
सिक्तः स भिक्षाप्रणयी प्रविश्य
गेहेष्वगायद्दयितासहायः॥ ११० ॥

गुरुजनकोपसमुद्गमराहुनिगीर्णप्रभावसूर्य्याणाम्।
वितथपरिवादविक्लवकृष्णादिनक्षपितचरितचन्द्राणाम्॥ १११ ॥
गुणिगणदूषणनिपतितगुणवररत्नप्रभादरिद्राणाम्।
बहुतरदुष्कृतपरिणतिपवनाहतिविगलितनेत्रदीपानाम्॥११२॥
भवविपुलजलदविद्युत्तरलतरश्रीप्रकाशरहितानाम्।
पुण्यैः प्रसरति पुनरपि धर्म्मस्मरणनवालोकः॥ ११३ ॥

སྒྲ་ཅོལ་དང་ལྷན་མིག་གིས་དབེན་པ་དེ།
སླུ་ལེན་སློང་ཞིང་འཚོ་བས་དུས་འདས་ནས།
ཡབ་ཀྱི་གྲོང་ཁྱེར་པཱ་ཊ་ལི་པུ་ཏ་ར།
འཁར་བ་ལ་བཞིན་རྐུང་མར་བརྟེན་དེ་སོང་། 114

རིང་པོའི་སྡུག་བསྔལ་ལམ་གྱིས་ལུས་དམན་ཞིང་།
བཞིན་པར་དག་གིས་གྱང་དང་ཚ་བ་འཕྲུངས།
གཞོན་ནུ་མཛེས་མ་དང་འགྲོགས་དེ་མཐོང་ནས།
སྐྱོ་བོས་ཡིད་བསྒྱུབས་དམོད་པས་ཉམས་པར་ཤེས། 115

དལ་གྱིས་གྱོལ་པོའི་ནགས་ཚལ་འཕྲེང་ཉེ་བར།
ཕྱིན་ཅིང་སྐད་ཅིག་ངལ་གསོ་དོན་གཉེར་དེ།
རྩེབ་མོར་སྨྲ་བྱེད་སྐྱེད་ཚལ་སྐྱོང་རྣམས་ཀྱིས།
བཀྲ་མི་ཤིས་ཕྱིར་རབ་ཏུ་བཀག་གྱུར་པ། 116

གནས་མེད་གནས་ནི་འཚོལ་བར་བྱེད་པ་དེས།
མི་ཡི་བདག་གི་གླང་པོའི་གནས་སུ་ཞུགས།
གྱོད་མང་རྩོད་མོ་ལ་གསུས་དགེ་མཚན་གྱིས།
གླང་པོ་སྐྱོང་བ་དག་གི་གོ་སྐབས་ཕྱིན། 117

कालं कलावानतिवाह्य गायन्
पैण्डिन्यवृत्तिः स विवेकचक्षुः ।
ययौ प्रियां यष्टिमिवावलम्ब्य
पितुः पुरं पाटलिपुत्रमेव ॥ ११४ ॥

तं दीर्घदुःखाध्वदरिद्रदेहं
शीतातपापीतमुखाब्जवर्णम् ।
कान्तासखं वीक्ष्य जनः कुमारं
शापक्षतं मन्मथमेव मेने ॥ ११५ ॥

शनैः स राजोपवनावलीनां
समीपमाप्तः क्षणविश्रमार्थी ।
उद्यानपालैः परुषप्रलापै-
रमङ्गलत्वात् प्रतिषिध्यमानः ॥ ११६ ॥

निःसंश्रयः संश्रयमीहमानः
स हस्तिशालां नृपतेर्विवेश ।
वीणाविनोदादरकौतुकेन
दत्तावकाशः परिपालकेन ॥ ११७ ॥

དེར་ནི་ཡོང་བ་དེ་མཐོང་ཞེས་གྱུར་པའི།
སྐྱང་བོའི་དབང་པོས་གདོང་ནི་ཡོངས་བསྐོར་ཅིང་།
དེ་ལ་ལེགས་འོངས་འདྲི་བཞིན་སྒྲ་ཆེན་བསྒྲགས།
གཙུག་ལྷན་རྩེ་བའི་ཚོགས་ཀྱི་གར་དག་ཕྱུལ། 118

དེ་ནི་སྐྱང་པོའི་སྒྲ་ཡི་མི་གསོ་ཞིང་།
འཁྲུལ་པ་མེད་མཐོང་ལག་ལྷན་བདག་པོ་ཡིས།
ཀྱི་མ་སྙིང་སྟོབས་གྱི་མཚོ་རབ་མི་འདར།
ཀྱིལ་རིགས་བཟང་པོ་འདི་ནི་སུས་ཞེས་སྨྲས། 119

སྐྱང་པོར་མངོན་ཕྱོགས་གསེར་གྱི་ཕྲེང་ལྷན་ཨ།
དཔལ་འབྱོར་མངོན་པར་ཁེངས་པ་དྲན་གྱུར་ཏེ།
འཕྲུལ་ལ་མཚི་མ་འཛག་ཅིང་ཤུགས་རིངས་འབྲིན།
ཁྲོ་ཡི་ཞབས་དག་ཉིད་ཅིང་རབ་སྨྲས་པ། 120

སྐྱང་པོའི་སྒྲ་ཡིས་ལག་ལྷན་བདག་པོ་ཁྱོད་ཀྱི་མདུན་ན་གང་།
སྤྲིན་གྱི་བསམ་པས་གསོ་ལྷན་གཙུག་ཕུད་ཅན་ནི་གར་རབ་བྱེད།
མི་བྱ་འདི་དག་གཞོན་ནུའི་མི་བྱའི་རིགས་ལས་འཁྲུངས་པ་སྟེ།
ཚོགས་ཀྱི་བདག་པོས་སྒྲ་བསྒྲགས་ཚེ་ཡང་ཉམ་པར་འགྱུར་བ་མེད། 121

तत्रान्धमालोक्य निबद्धसंज्ञ-
स्तं कुञ्जरेन्द्रः परिवृत्तवक्त्रः ।
तत् स्वागतायेव घनं जगर्ज्ज
क्रीडाशिखण्डिव्रजदत्तनृत्यः ॥ ११८ ॥

तं निश्चलं कुञ्जरगर्जितेन
निःसम्भ्रमं हस्तिपका विलोक्य ।
अहो नु सत्त्वोदधिरप्रकम्प्यः
सुदक्षिणः कोऽप्ययमित्यवोचन् ॥ ११९ ॥

गजोन्मुखी काञ्चनमालिकापि
निश्वस्य दीर्घं सहसोदिताश्रा ।
ऊचे स्मृतश्रीविभवाभिमाना
संवाहयन्ती चरणौ प्रियस्य ॥ १२० ॥

नृत्यन्ति ये तव पुरः शिखिनो घनाशा-
लोलाः परं करिपतिव्रजगर्जितेन ।
कौमारबर्हिकुलसम्भव एष बर्ही
गर्जत्क्षणे गणपतेरपि निर्विकारः ॥ १२१ ॥

དེ་ནས་ཚགས་ལྡན་གཡོ་བའི་ཐུན་མཚམས་ནི།
སྐྱོན་ལ་མངོན་ཕྱོགས་ཞེ་སྡང་ལྡན་བཞིན་འོངས།
མིག་ལྡན་འཚོ་བར་གྱུར་པའི་ཉི་མ་བཅོམ།
སྐྱེ་བོ་མུན་པ་ནོམ་པར་ཀྱིས་པར་བསྐྱབས། 122

པདྨའི་འབྱུང་གནས་རྒྱ་སྐྱེས་བཞིན་རྒྱས་པ།
ཕུན་ཚོགས་བྲལ་ཞིང་དམན་པ་མཐོང་གྱུར་ནས།
བུང་བའི་འཕྲེང་བ་སྦྲུ་ངན་ཀྱིས་ཟིལ་མནན།
ངེས་པར་སྦྱོང་བྱའི་རང་བཞིན་སླུ་ལེན་བཞིན། 123

ཀུན་གསལ་ནོར་བུའི་སྒྲོན་མ་གཅིག་བུ་ཉིད།
ཉི་མ་འདས་ཚེ་མར་མེ་སྡོང་འབུམ་གྱིས།
ཉིན་མོའི་སྣང་བ་ཆ་ལ་མཚུངས་མ་གྱུར།
གང་ཕྱིར་ཆེན་པོའི་གཟི་བྱིན་ཀུན་ལས་ལྷག། 124

ཀྱུལ་ཁང་ནོར་བུ་གསེར་གྱི་བ་གམ་ཅན།
རབ་གསལ་དེ་ནི་མུན་ལ་རབ་མཛེས་དེ།
བདག་པོ་གྱུད་ཚེ་གུས་བས་ཕན་པ་ཉིད།
སྐྱུབ་བྱེད་རྩལ་ཁྲིམས་ཀྱིན་ལྡན་དགའ་པ་བཞིན། 125

ततः सरागा चपलाभिपत्य
दोषोन्मुखी द्वेषवतीव सन्ध्या ।
हत्वा रविं लोचनजीवभूतं
विवर्द्धमान्ध्यं विदधे जनस्य ॥ १२२ ॥

लक्ष्मीवियोगग्लपितं विलोक्य
पद्माकरं सङ्कुचिताननाब्जम् ।
शोकाभिभूता भवितव्यताया
जगौ स्वभावं भ्रमरावलीव ॥ १२३ ॥

विश्वप्रकाशैकमणिप्रदीपे
याते रवौ दीपसहस्रलक्षैः ।
नाभूद्दिनालोकलवानुकारः
सर्व्वातिरिक्तं महतां हि तेजः ॥ १२४ ॥

सा राजधानी मणिहेमहर्म्यैः
प्रकाशमाना तिमिरे रराज ।
भक्त्येव भर्त्तुर्विहितोपकारा
कष्टे च शीलाभरणा सतीव ॥ १२५ ॥

རབ་རིབ་རབ་གྲུས་གཙོ་བོ་ཉིད་གྲོབ་དེས།
མ་ལུས་འཇིག་རྟེན་སྣང་བ་མེད་བྱུས་ནས།
སླ་བ་འཆར་རྩོམ་འཇིགས་བས་ཟིལ་མནན་དེ།
དལ་བུ་ཡིས་ནི་ཡིབ་པ་བཞིན་དུ་གྱུར། 126

དེ་ནས་ནག་པོའི་མཚན་མའི་རི་མོ་ནི།
འཕྲིན་གྱི་དང་ཚུལ་ཡིག་འཕྲེང་རིབ་བཀོད་པ།
ཀུ་མུད་ཅན་དགའི་ལེགས་བྱུས་བསིལ་ཟེར་ཅན།
པདྨོའི་འབྱུང་གནས་དཔལ་འཕྲོག་སྤྲིང་ཡིག་བྱུང་། 127

བདུད་རྩིའི་ཟེར་དཀར་ཡིད་འོང་པད་ཙ་ཡི།
འཁྲི་ཤིང་ཀུ་མུ་ག་གསར་དབྱིབས་འོད་རིས་ཀྱི།
འོ་མའི་འོད་ལྡན་མཛེས་པའི་གོས་དཀར་གྱིས།
གྲགས་པས་བཞིན་དུ་ཐམས་ཅད་ཁྱབ་པར་བྱེད། 128

དེ་ནས་མཚན་མོའི་ལང་ཚོ་ཉམས་གྱུར་ཅིང་།
སླ་བ་མཁའ་ལ་དལ་གྱིས་བབས་པའི་ཚེ།
སྐྱུ་ངེས་ཉམས་པས་ཉམ་པར་གཉིད་སད་པའི།
གཞོན་ནུ་ལ་ནི་སྨྲང་པོ་འཛིན་པས་སླས། 129

लब्धाधिकारा तिमिरोन्नतिः सा
कृत्वा निरालोकमशेषलोकम्।
इन्दूदयारम्भभयाभिभूता
निलीयमानेव शनैर्बभूव[1] ॥ १२६ ॥

अथाययौ श्यामललक्ष्मलेखा-
सन्देश[2]लीलालिपिसन्निवेशः।
कुमुद्वतीहर्षसुहृत्सितांशुः
पद्माकरश्रीपरिहारलेखः ॥ १२७ ॥

अपूरयत्कान्तिसितांशुकेन
शुचिः सुधांशुर्यशसेव विश्वम्।
दुग्धत्विषा मुग्धमृणालवल्ली-
नवाङ्कुराकारमयूखलेखः ॥ १२८ ॥

ततः क्षपायां क्षययौवनायां
शनैः शशाङ्के दिवि लम्बमाने।
लीव्यक्षयाज्जागमृतो विनिद्रा
निद्रायमाणं जगदुः कुमारम् ॥ १२९ ॥

---

१ W₁ omits this verse.   २ H has सन्देह॰।

དྲི་ཟ་ཅན་ལོངས་སི་འཁམ་ཅི་ནོམས་ཀྱི།
མཛེས་མ་བཞིན་ནི་ཡང་དུ་རབ་བཀོད་ནས།
སེན་མོ་བདབ་བསྐྱོད་ཡིད་འོང་སྙན་སྒྲོག་ཤིང་།
གླུ་དང་རྒྱུད་མང་འགའ་ཞིག་མི་ལེན་ནམ། 130

ཞེས་སྨྲ་གྲོགས་ཤིང་འཕུར་བ་དེ་དག་གིས།
རྗེས་བསྐུལ་དཔལ་ཞིང་གཉིད་ཀྱིས་གཟིར་གྱུར་པ།
དམན་པའི་ཚིག་གིས་རབ་གདུངས་ཡིད་བྱུང་བས།
རྒྱུད་མང་གླངས་ནས་ཡུད་ཙམ་རབ་བསམས་པ། 131

ཀྱི་མ་སྡུག་གི་ཚོགས་ནི་བརྩེ་མེད་དག།
ཁྲག་ལ་སྨོམ་ཞིང་ཉི་བར་ལྷགས་པ་དང་།
རྒྱལ་པོའི་འབང་ནི་སྨྱོས་པའི་ཚོགས་བཅས་དེ།
སྨོད་ཕྱོབ་བརྗོད་པས་བཟུང་བ་འཚོམ་ཡིན། 132

ང་རྒྱལ་ཉམས་སྐྱོང་ངོ་ཚ་སྐྲུབ་པར་བྱེད།
བདེ་བ་འཇོམས་བྱེད་གདུང་བ་སྐྱེས་པར་བྱེད།
མི་བཟོད་སྡུག་བསྔལ་གནོད་པ་སྐྱེད་བྱེད་པ།
དམན་པའི་བསྟན་པ་དང་མཚུངས་སུ་ངན་མེད། 133

उत्तिष्ठ गान्धर्विक किन्न वीणा-
मङ्कं समारोप्य कलं क्वणन्तीम् ।
कान्तामिवैतां नखघातलोलां
गीतिं नवीनां वितनोषि काञ्चित् ॥ १३० ॥

इति प्रलापैः श्रमनिद्रयार्त्तः
स तैर्मदोद्धैरनुबध्यमानः ।
आदाय वीणां विमलां मुहूर्त्त-
मचिन्तयन्नीचवचःप्रतप्तः ॥ १३१ ॥

जीवत्यहो व्याघ्रगणैर्निषक्तै-
राघ्रातरक्तैरघृणैर्गृहीतः ।
क्लीवैरधिक्षेपकटुप्रलापै-[1]
रावद्धपेटैर्न तु राजचेटैः ॥ १३२ ॥

निहन्ति मानं विदधाति लज्जां
छिनत्ति शर्म्माणि तनोति तापम् ।
असह्यनिर्व्वेदविपद्विधायी
न नीचसेवासदृशोऽस्ति शोकः ॥ १३३ ॥

१ H and W_4 °क्षेपकदुःप्रलापैः ।

དམན་པའི་ཚིག་དེ་ཡང་ཡང་དེས་བསམས་ནས།
སྨད་པའི་གདུང་བ་ཚ་བའི་མེས་རེག་པས།
ཤུགས་ཕྱུང་དུས་ནི་འཕང་བར་མངོན་འདོད་པས།
དཔལ་གྱི་གྲོང་མང་དག་ནི་སྤྲིན་ཞིང་བླངས། 134

ཁྲིངས་པ་རབ་འཛེམས་དྲེགས་དང་ནོར་ཉམས་བདེ་བླག་ཏུ་ནི་ཉེ་བར་གོད།
ཚུལ་ལུགས་མིན་དང་ཅུ་བའི་སྤྱོད་དང་འཕྲེད་པར་བྱེད་དང་སྐྱོན་ཅན་དང་།
གཉད་དུ་རེག་པའི་གདུང་བ་མི་བཟོད་ཉོན་མོངས་ཟུག་རྔུ་ལྟར་སྤྱོད་པས།
ཀུ་མ་འཁོར་བ་དག་ནི་མི་བསྲུན་ཚུལ་གྱིས་སྲུར་བའི་རྩེ་དགའ་བྱེད། 135

སྙིང་གིས་རབ་བསྐྱོད་འཁྲི་ཤིང་རབ་ཏུ་གཡོ་བའི་འདབ་རྩེ་ལྟར་མི་བརྟེན།
སྲིད་པ་འཁོར་བས་ཀུ་མ་སྐྱེས་བུ་རྣམས་ལ་སྨོངས་པ་རབ་བརྟེན་བྱེད།
ཇུས་གང་སྐྱེ་བའི་སྲིན་ཚོགས་ཡང་དག་འདུས་པས་རབ་བཅོམས་གློག་གི་ནི།
རྩེ་དགའི་ཉམས་ལྡན་དཔལ་འབྱོར་འདི་དག་དེ་ལ་ཡང་ནི་ལྷག་པར་གཡོ། 136

སྐྱེས་བུ་རྣམས་ཀྱི་གྲོང་པ་མཐའ་དག་བསྐྱུང་བའི་རིན་ཅན་ཚུལ་ཁྲིམས་ནི།
རབ་གསལ་བདུད་རྩིའི་རང་བཞིན་དྲི་མེད་གལ་ཏེ་ཆ་ཡང་མ་ཉམས་ན།
འཁོར་བ་དང་བྲལ་ཉོན་མོངས་ཀྱིས་ཉེས་འདྲེན་བྱེད་མ་ཚངས་འཕྱི་བོ་དང་།
བླག་པར་བདེ་བའི་མཇུག་ཏུ་ཡང་ས་ཆེན་པོར་ལྷུང་ཡང་རྣམ་པར་མཛེས། 137

मुहुर्विचिन्त्येति स नीचवाक्यं
लीनावमानव्यसनाग्नितप्तः ।
निश्वस्य कालक्षपणाभिकाङ्क्षी
शनैरगायत् कलयन् विपञ्चीम् ॥ १३४ ॥

मानोन्माथैः प्रथितविभवभ्रंशहेलोपहासै-
र्निर्मर्य्यादैरुचितचरितोत्पाटनैः सापवादैः ।
मर्म्मस्पर्शव्यसनविषयक्लेशशल्यायमानै-
र्हा संसारः खलकलनया नर्मलीलाः करोति ॥ १३५ ॥

विचलदनिलोद्वेल्लद्वल्लीदलाम्बुलवच्चलः
स्थिरतरमहामोहं पुंसां करोति भवभ्रमः ।
अधिकतरलास्तत्राप्येता जलाविलसम्मिल-
ज्जनघनवनप्रोद्यद्विद्युद्विलासरसाः श्रियः ॥ १३६ ॥

विभवविरहक्लेशक्लान्तः सुखान्तमशावटे
नयनविकलः पङ्गुर्मूकश्च्युतोऽपि विराजते ।
सकलविपदां रक्षारत्नं प्रकाशसुधामयं
यदि न विमलं शीलं पुंसां मनागपि खण्डितम् ॥ १३७ ॥

རྩྭ་དང་ཐང་ཡང་དབྱུག་པས་རིག་ཅིང་མཐའ་དག་རིག་པའམ་དྲི་དག་གྱིས་རྟོགས་ལ།
བློ་གྲོས་ཀྱིས་ནི་བགྲོད་དགའི་ལམ་ཀུན་རིག་ཅིང་གྲོས་ནས་གཞན་དུ་བདག་འགྲོ་སྟེ།
སྤྱོངས་པས་ལོང་ཞིང་ཆོག་པའི་སྐྱེ་བོ་འདི་དག་ཡིད་བརྟན་དབུས་སུ་ཆགས་གྱུར་པའི།
འཇིགས་རུང་དཔྱལ་བའི་ཉོན་མོངས་མི་ཤེས་སོ་ཞེས་ལོང་བས་རབ་མང་ཅི་འདྲི་བཞིན། 138

དེ་ལྟར་བདག་ཉིད་སྤྱོད་པའི་རྗེས་མཐུན་འཇུག།
ཡིད་འོང་ཉམས་ལྡན་དེ་ཡི་གླུ་བླངས་ཚེ།
མཚན་མོའི་མ་རྟག་དུ་ས་བདག་ཁང་བཟང་ན།
གཟིམས་བ་འཕྲའ་ལམད་ནས་རབ་དུ་བསམསམས། 149

རྟག་དུ་སྐྱི་ལམ་ངན་པ་མཐོང་ཉིད་ཀྱིས།
དོགས་བའི་ཚུ་བོས་བདག་ནི་རབ་དུ་འཁྲུགས།
གཉེན་ཉུ་རྡོ་འཇོག་ས་གནས་ད་ལྟ་ཡང་།
བདག་ལ་སྙིང་ཡིག་ཅི་ཕྱིར་ཡོངས་མི་སྤྲིང་། 140

རྟག་དུ་མི་བརྗེད་ཉེ་བའི་བཞིན་རས་ལ།
མངོན་ཕྱོགས་དེ་ནི་ང་ཉིད་བརྗེད་དམ་ཅི།
ངས་པར་ཡུན་རིང་བྲལ་བས་སྐྱེ་བོ་ནི།
མཛའ་བའི་རྗེས་སུ་འཆི་རབ་ལྡོད་བར་འགྱུར། 141

यद्ध्या वेद्मि जलं स्थलं सशकलं स्पर्शेन गन्धेन वा
बुद्ध्या सर्व्वमवैमि दुर्गमपथं श्रुत्वा व्रजाम्यन्यतः।
निश्वासान्तरसक्तघोरनरकक्लेशं न जानात्यसा-
वन्धेनेति विडम्ब्यते वहुतरं मोहान्धमुग्धो जनः॥ १३८॥

इत्यात्मवृत्तानुकृतिप्रवृत्तं
गायत्युदारं सरसेन तस्मिन्।
हर्म्म्यप्रसुप्तः सहसा प्रबुद्धः
क्षपावसाने क्षितिपः प्रदध्यौ॥ १३९॥

सदैव दुःस्वप्ननिरीक्षणेन
शङ्काकलङ्कैर्भृशमाकुलोऽहम्।
अद्यापि मे तक्षशिलानिवासी
न किं कुमारः प्रहिणोति लेखम्॥ १४०॥

किं विस्मृतो नित्यमविस्मृतस्य
तस्याहमासन्नसुखोन्मुखस्य।
चिरप्रवासेन जनस्य नूनं
स्नेहानुबन्धाः शिथिलीभवन्ति॥ १४१॥

གཟ་པས་བཅིངས་གླུ་ཡི་སྒྲ་འདི་ཡང་།
རྒྱུད་མང་དབྱངས་སྙན་གྱིས་མཚན་རབ་གསལ་བ།
དེ་ཡི་ཉིད་མཚུངས་སྙན་པའི་རྗེས་མཐུན་པ།
དྲི་ཟའི་འཇིག་རྟེན་ལས་བཞིན་བདག་གིས་པས། 142

རེ་ཞིག་གླུ་སྐད་འདི་ནི་དེ་ཉིད་ཀྱི།
ཅི་སླད་དེ་ཡིབ་འདི་ཅི་ཡོངས་མི་ཤེས།
སྐད་ཅིག་ཉིད་ལྷུར་ནོམ་བསམས་གྱུལ་པོ་ཡི།
ཉུག་རུམ་བ་བདང་བུ་ནི་དེ་ནས་བོས། 143

རིང་ནས་མིག་བྲལ་དེ་ནི་འོང་བ་དག།
མཚོ་སྐྱེས་དཔལ་དང་བྲལ་བ་བཞིན་མཐོང་ནས།
རྩུང་མར་བཅས་པའི་བུ་ནི་ཡོངས་ཤེས་ཏེ།
ས་ཡི་བདག་པོ་སྐྱོངས་པས་བཙོམ་ནས་འཁྱིལ། 144

ཁ་བའི་ཟེར་མའི་ཐིགས་འདྲ་རྩུས་རེག་པས།
དཔལ་གྱི་འདུ་ཤེས་ཐོབ་པའི་མི་བདག་དེ།
གཞོན་ནུ་ཉ་བར་འོངས་བ་ཡོད་པར་ནི།
ཡང་དག་བཀོད་ནས་ཕྱུན་རིང་སྐྱུ་ངེ་ཁྲུས། 145

शृणोमि चेमं गमकानुबन्धं
मूर्च्छद्विपञ्च्या मधुरस्वराङ्कम्।
तत्तुल्यमेव श्रवणानुकूलं
गन्धर्वलोकादिव गीतशब्दम्॥ १४२॥

तस्यैव तावन्मृदुगीतमेत-
न्मूढः स कस्मात् किमिदं न जाने।
क्षणं विचिन्त्येति विसृज्य राजा
महत्तरं पुत्रमथानिनाय॥ १४३॥

दूरात्तमायान्तमुदस्तनेत्र-
सरोरुहं श्रीरहितं विलोक्य।
पुत्रं परिज्ञाय वधूसहायं
महीपतिर्मोहहतः पपात॥ १४४॥

स लब्धसंज्ञः शनकैर्जलेन
हिमच्छटाशीकरदन्तुरेण।
समीपमाप्तं नृपतिः कुमार-
मुत्सङ्गमारोप्य चिरं शुशोच॥ १४५॥

འཚོ་བའི་འཇིག་རྟེན་མིག་སྒྲོ་ཀྱི་ཉུང་ཟུ།
སྡུག་བསྔལ་སྐབས་འདི་ཁྱོད་ཀྱིས་ཅི་སྐད་བསྟེན།
ལྷ་ཡི་མཛེས་མ་སྨོངས་བྱེད་ཁྱོད་ཀྱི་ནི།
མིག་གི་ཆུ་སྐྱེས་ཟུང་དེ་གང་དུ་སོང་། 146

ཟབ་མོའི་ས་གཞི་ཡོན་ དན་རིན་ཅེན་མཛོད།
སྙིང་སྟོབས་ཕུང་པོ་དབྱངས་ཅན་གྲོགས་ཁྱོད་ལས།
ཁབས་བཅོམ་པའི་ཆུ་སྐྱེས་ཚལ་ལས་བཞིན།
ཉམས་འཕྲུལ་ས་གཞི་དཔལ་དེ་གང་དུ་སོང་། 147

གང་དུ་གཟུགས་དེ་མི་བཟོད་ཡོང་འདི་གར།
འཁྱེར་དེ་གང་དུ་གང་དུ་སྐབས་ངན་འདི།
བདག་སྙིང་མི་འགས་འདི་ལ་སུ་ཞིག་གིས།
རྡོ་རྗེའི་མདུང་ག་ཁྱིན་པ་ཡོངས་མི་ཤེས། 148

ཁྱོད་འཁྱེར་རྗེས་འབྲང་སྐྱེ་བོ་དེ་གང་དུ།
ཁྱོད་ཀྱི་ཚུང་མ་གཡོ་མེད་གཅིག་བུ་འདི།
སྡུག་ཀྱང་དམ་པའི་བདེན་པའི་སྤྱོད་ཚུལ་བཞིན།
རིགས་ཀྱི་རྗེས་མཐུན་འཁོར་གྱི་ལྷག་མར་གྱུར། 149

हा पुत्र नेत्रोत्सव जीवलोके
कस्मादिमां दुःखदशां श्रितोऽसि ।
विलोभनं तत् सुरसुन्दरीणां
क्व लोचनाम्भोजयुगं गतं ते ॥ १४६ ॥

गाम्भीर्य्यभूमे गुणरत्नकोष
सरस्वतीवल्लभ सत्वराशे ।
त्वत्तः क्व सा विभ्रमभूः प्रयाता
हिमाहताम्भोजवनादिव श्रीः ॥ १४७ ॥

रूपं क्व तत् क्वेदमसह्यमान्ध्यं
क्व सा विभूतिः क्व च दुर्दशेयम् ।
न दीर्य्यते मे हृदयं न जाने
केनास्य दत्तः कुलिशोपदेशः ॥ १४८ ॥

कासौ मनस्त्वद्विभवानुसारी
कुलानुरूपा तव निश्चलेयम् ।
एकैव पत्नी परिवारशेषः
कृच्छ्रेऽपि साधोरिव धैर्य्यवृत्तिः ॥ १४९ ॥

ཞེས་པ་མཆི་མའི་རྒྱུན་གྱི་ཡི་གེ་ཉམས།
ཚེ་ང་སླ་བ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས།
དེ་ཡི་ཕང་ལས་མྱུར་དུ་སར་བབས་ཏེ།
གཞོན་ནུ་བརྟན་པས་དེ་ལ་བཏུད་ནས་སྨྲས། 150

ས་ཡི་བགྲོ་ཕྲིན་སྒྲ་ངན་ཉམ་པར་ཐོང་།
སྒྲ་ངན་དག་གིས་ཟིལ་མནན་བརྟན་པ་མིན།
མཐོ་དང་དམའ་ནོངས་བརླག་སྐྱད་ངེས་པར་ནི།
སྐྱོང་བྱའི་རང་བཞིན་འདི་ནི་མེལ་ཚེ་བྱེད། 151

མི་ཉམས་དབང་ཕྱུག་ངོ་མཚར་བདེ་བ་ཡི།
ནོ་གྲིན་ཅན་དང་དཔལ་མཛེས་ཐིག་ལེ་ཅན།
ལུས་ཀྱང་མཐར་བྱེད་རྩེ་བའི་ལས་རླབས་ཀྱིས།
སྲུལ་པས་ཕྲོགས་པ་སྐད་ཅིག་ཉིད་ཀྱིས་འགྲོ། 152

གལ་ཏེ་དངོས་མེད་ཉམས་སྐྱོང་སྲིད་པ་འདིར།
དངོས་ཚོགས་རང་བཞིན་བདེན་པར་གྱུར་པ་ན།
ཐུབ་པ་འདི་དག་ལོངས་སྤྱོད་ཡོངས་བཏང་ནས།
ངེས་པར་དབེན་པ་དག་ཏུ་གནས་མི་བྱེད། 153

इत्यश्रुसंवेगविशीर्णवर्णं
प्रलापिनस्तस्य वचो निशम्य।
नत्वा कुमारस्तमुवाच धीर-
स्तूर्णं तदङ्कादवतीर्य्य भूमिम्॥ १५०॥

विमुञ्च पृथ्वीपुरुहूत शोकं
शुचाभिभूता न भवन्ति धीराः।
क्षयाय जागर्त्ति नतोन्नताना-
मेष स्वभावो भवितव्यतायाः॥ १५१॥

ऐश्वर्य्यमाश्चर्य्यसुखावतंसं
लावण्यलक्ष्मीतिलकं वपुश्च।
क्षणेन यात्येव कृतान्तनर्म्म
कर्म्मोर्म्मिनिर्म्माणहृतं नराणाम्॥ १५२॥

भवेदभावानुभवे भवेऽस्मिन्
सत्यस्वभावो यदि भाववर्गः।
ध्रुवं न कुर्य्युर्मुनयस्तदैते
संत्यक्तभोगा विजने निवासम्॥ १५३॥

ཅེས་སྨྲས་དེ་ལ་རྒྱུད་པའི་རྒྱུ་མཚན་ནི།
རྒྱལ་པོ་སྒྲ་ངན་ལྡན་བསམ་ཡང་ཡང་དྲིས།
དེ་ལ་དལ་གྱིས་སྙིང་ཡིག་དང་འབྲེལ་བའི།
རང་གི་མིག་ནི་ཉམ་པར་ཉམས་རྩལ་བཤད། 154

སྤྱོད་ངན་སྤྱོད་པ་ཉམས་ལའང་མ་སྤྱད་པའི།
གདུས་པའི་སྤྱོད་རྩོལ་མི་བཟང་དེ་ཐོས་ནས།
སྨུ་རེ་རྟོན་པོས་ཙ་བ་ཡོངས་བཅད་པའི།
ཡལ་འདབ་ཅན་བཞིན་འཛོན་བྱེད་ཨུ་བ་འགྲེལ། 155

འདུ་ཤེས་ཐོབ་དེས་སྐར་རྒྱལ་སྒྲུང་བ་ཡིས།
བཀོད་པའི་སྦྱོར་བ་རྒྱ་རྒྱུ་དེ་བསམས་ནས།
དེ་ཡི་ཆད་པ་བྲུད་མེད་གསོད་པ་ཡི།
སྡིག་ལའང་ཆོས་ལ་གུས་པ་བཞིན་བསྟོན་གྱུར། 156

གདུག་པའི་ཉམ་པ་གནོད་པ་རྒྱ་ཆེ་བ།
དེ་ལ་ལེན་སྦྱོར་རབ་ཏུ་བསྟོན་པ་དེ།
རང་ལས་སྨིན་པས་བཟོད་དཀའི་སྡུག་བསྔལ་དང་།
ལྡན་པར་སྨྲ་བའི་གཞོན་ནུས་རབ་ཏུ་བཟློག། 157

इति ब्रुवाणः स विपन्निमित्तं
पृष्टः पुनः शोकमयेन राज्ञा ।
न्यवेदयल्लेखनिबद्धमस्मै
निजं शनैर्नैचविनाशवृत्तम् ॥ १५४ ॥

श्रुत्वैव तत्तीव्रनृशंसवृत्तं
निवृत्तवृत्तेष्वपि न प्रवृत्तम् ।
कुठारधारापरिभूतमूलः
पपात शाखीव धरावमूलः ॥ १५५ ॥

स लब्धसंज्ञः कुटिलं विचिन्त्य
तं तिष्यरक्षाचरितप्रयोगम् ।
समुद्ययौ स्त्रीवधपातकेऽपि
धर्मादरेणैव विनिग्रहेऽस्याः ॥ १५६ ॥

क्रौर्य्यप्रकारे विपुलापकारे
तस्मिन् प्रतीकारसमुद्यतं तम् ।
अवारयद्दुःसहदुःखयोगं
स्वकर्म्मपाकेन वदन् कुमारः ॥ १५७ ॥

ས་བདག་གདུང་བས་གཟིར་ཅིང་ཤུ་ངན་དང་།
ཁྲོ་བས་ཚིག་བས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།
གདུག་པ་ལ་ཆགས་འཕགས་མིན་གདུམ་མོ་འདི།
ཁྱོད་ནི་སྲོང་པས་ཡོངས་སུ་སྤྱང་ངམ་ཅི། 158

སྤྱང་བར་སྦྱོར་དང་མཛེའ་བས་བཅིངས་པ་ལ།
མཚུངས་པའི་ཡིད་ཅན་གང་དེ་མི་འམ་ཅི།
གང་ལ་གནོད་ལ་ཁྲོ་བའི་ཆ་མེད་པ།
དེ་ལ་ཕན་ལ་དྲིན་ཡང་ཇི་ལྟར་ཡོད། 159

ཅེས་པ་རབ་སྨྲ་ཤུགས་འབྲིན་གཟིར་བ་ཡི།
ཡབ་ལ་གཞོན་ནུ་བརྟན་བས་རབ་སྨྲས་པ།
རྒྱལ་པོ་བདག་ལ་སྡུག་བསྔལ་ཆ་འགའ་མེད།
མི་བཟད་གནོད་ལའང་ཁྲོ་བའི་གདུང་བ་མེད། 160

མི་བདག་རང་གི་ལག་གིས་ཕྱུང་བ་བཞིན།
གལ་ཏེ་མ་ལ་བདག་ཡིད་རབ་དང་ན།
བདེན་བ་དེ་ཡིས་རེ་ཞིག་མིག་གཉིས་ནི།
སྔོན་བཞིན་འཕྲུལ་ལ་ཡང་དག་འབྱུང་བར་ཤོག། 161

तमब्रवीद्भूमिपतिर्व्यथार्त्तः
शोकेन कोपेन च दह्यमानः ।
मोहात् किमेतां निश्चितामनार्यां
क्रौर्य्यप्रसक्तां परिरक्षसि त्वम् ॥ १५८ ॥

द्वेषोद्यते स्नेहनिबन्धने वा
तुल्यं मनो यस्य स किंमनुष्यः ।
यस्यापकारेऽस्ति न रोषक्लेशः
तस्योपकारेऽपि कथं प्रसादः ॥ १५९ ॥

इति श्वसन्तं प्रलपन्तमार्त्तं
धीरः कुमारः पितरं जगाद ।
राजन् न मे दुःखलवोऽस्ति कश्चित्
तीव्रापकारेऽपि न मन्युतापः ॥ १६० ॥

मनः प्रसन्नं यदि मे जनन्यां
येनोद्धृते च स्वकरेण नेत्रे ।
तत्तेन सत्येन ममास्तु ताव-
न्नेत्रद्वयं प्राक्तनमेव सद्यः ॥ १६१ ॥

ཅེས་བརྗོད་ཙམ་ལ་དེ་ཡི་དུས་ཉིད་ན།
མི་བདག་བྲ་ཡི་སྤྲུར་གྱི་མཚོ་སྐྱེས་ལྷུང་།
འཇིག་རྟེན་བདན་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ཡིད་ཆེས་བྱེད།
དཔལ་མོ་རྣམ་པར་ཆགས་བྱེད་རབ་ཏུ་བྱུང་། 162

འདྲེན་བྱེད་རླུང་གིས་རྣམ་པར་མཛེས་གྱུར་ཅིང་།
སྐྱེ་གུ་རྣམས་ནི་བདེ་དང་སྐྱོ་བྱེད་པའི།
སྤྲ་དེ་གྲོལ་ཚབ་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས་ཤེས་ནས།
མི་བདག་དེ་ཡིས་སྤུན་ཚོགས་རྣམས་ལ་བསྒོས། 163

དེ་ནས་ས་བདག་གིས་ནི་བཙུན་མོ་ལ།
དྲག་པོའི་གནོད་ལ་མཚུངས་པའི་ལན་བསྐྱབས་བཞིན།
རྡོ་འཇོག་དབང་པོ་ལ་ཡང་ཁྲོ་བའི་མི།
བཟོད་དཀའ་དེ་ཡིས་བཟོད་པས་རབ་ཏུ་བཏང་། 164

དགེ་མཚན་དེ་ལས་དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་དྲིས།
དགེ་འདུན་གནས་བརྟེན་མཁས་པ་དེས་སྨྲས་པ།
ས་སྐྱོང་བྲ་འདི་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་ནི།
ཀ་ཤིའི་གྲོང་ཁྱེར་དག་ཏུ་རྗོན་པར་གྱུར། 165

इत्युक्तमात्रे नृपनन्दनस्य
प्रादुर्बभूवाक्षिसरोजयुग्मम्।
सत्यव्रतप्रत्ययकारि लोके
विलोभनं तत्क्षणमेव लक्ष्म्याः॥ १६२ ॥

नृपः सुखोत्साहकरं प्रजानां
विराजमानं नयनद्वयेन।
तं यौवराज्ये विमुखं विदित्वा
तमात्मजं तत्प्रतिमं न्ययुङ्क्त॥ १६३ ॥

घोरापचारे सदृशं विधाय
पत्न्याः प्रतीकारमथ क्षितीशः।
क्रोधानलं तक्षशिलाधिपेऽपि
तन्मर्षणाद्दुःसहमुत्ससर्ज॥ १६४ ॥

तत् कौतुकाक्लिष्टगणेन पृष्टः
प्रोवाच सद्बुस्थविरः स विद्वान्।
जन्मान्तरे लुब्धक एष काशी-
पुरे बभूव क्षितिपालपुत्रः॥ १६५ ॥

དེ་ཡིས་གངས་ལྡན་ངོས་ཀྱི་ཕུག་ཞུགས་པའི།
རི་དགས་ལྔ་བརྒྱ་དག་ནི་ཕོབ་གྱུར་ནས།
མིག་དག་ཕྱུང་ནས་ཡོང་བར་རབ་བསྒྲུབས་ཏེ།
ཇི་ལྟར་ཉེ་བར་འཁོར་བ་རིམ་གྱིས་བསད། 166

དེ་ནས་སྐྱེ་གཞན་ལ་ཡང་ཚོང་དཔོན་བུ།
སྨུག་ཅྪ་ཞེས་ནི་གྲིས་པ་རབ་སྔོངས་ལས།
མཆོད་རྟེན་གྱིས་ནི་གྲུལ་བའི་སྐུ་གཟུགས་ཀྱི།
བཞིན་རས་པདྨ་མཚོན་གྱིས་མིག་མེད་བྱས། 167

འདུ་ཤེས་བསྐྱུང་ངེས་དེ་ཡི་སྤྱན་ཟུང་དག།
ཨིནྡྲ་ནཱི་ལའི་རང་བཞིན་གསེར་དུ་བསྒྱུར་བས།
དེ་ནས་སྐྱེ་གཞན་ལ་ཡང་མཆོད་རྟེན་ནི།
ཞིག་པ་གསོ་དང་མཆོད་པ་དག་ཀྱང་བྱས། 168

ནགས་སུ་རི་དགས་རྣམས་ཀྱི་མིག་ཕྲོགས་ཤིང་།
བྲིས་པས་མཆོད་རྟེན་སྐུ་གཟུགས་སྤྱན་ཕྱིས་པས།
གྲུལ་བོའི་བུ་འདས་སྐྱེ་བ་གཞན་རྣམས་དང་།
ད་ལྟ་མིག་དག་རྣམ་པར་ཉམས་པ་ཐོབ། 169

गुहाप्रविष्टं हिमवत्तटान्ते
लब्ध्वा मृगाणां शतपञ्चकं सः ।
अन्धं विधायाक्षिविपाटनेन
यथोपयुक्तं न्यवधीत् क्रमेण ॥ १६६ ॥

अथान्यजन्मन्यपि बालकोऽसौ
मुग्धाभिधः श्रेष्ठिसुतः प्रमोहात् ।
चकार चैत्यप्रतिमा-जिनस्य
शस्त्रेण निर्लोचनमाननाब्जम् ॥ १६७ ॥

संजातसंभ्रश्च नवेन्द्रनील-
मयं व्यधादक्षियुगं स तस्य ।
ततोऽन्यजन्मन्यपि शीर्णचैत्य-
संस्कारपूजां स पुनश्चकार ॥ १६८ ॥

नेत्रापहारेण वने मृगाणां
बाल्ये च चैत्यप्रतिमाक्षिलोपात्
अवाप्तवानेष विनाशमक्ष्णो-
र्जन्मान्तरेष्वद्य च राजपुत्रः ॥ १६९ ॥

རིན་ཅེན་མིག་ལྡན་སྐུ་གཟུགས་བྱས་པ་ཡིས།
ནོར་པར་ཉམས་པའི་མིག་ནི་སླར་ཡང་ཐོབ།
མཆོད་རྟེན་ཞིག་པ་རབ་དུ་སྐྱུས་བྱས་པས།
རབ་ཏུ་དད་ལྡན་མཛེས་པའི་རང་བཞིན་གྱུར། 170

རྒྱུན་ཞུགས་འབྲས་བུར་རབ་འཇུག་ཏྲི་མ་དང་བྲལ་སྣང་བའི་རིམ་བ་འདི་ཡིས་ནི།
ཆགས་བྲལ་རབ་འབར་བདེན་པ་མཐོང་བའི་སྐྲུན་བྱེད་དག་ལ་གནས་པའི་དབང་གྱུར་ཐོབ།
དུས་ཀྱི་ཡང་དག་བསོད་ནམས་དབང་ལས་དལ་གྱི་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཉིད་དུ་འགྱུར།
ཞེས་པ་གནས་བརྟན་གྱིས་གསུང་དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་ཐོས་ནས་ཡ་མཚན་ལྡན་པར་གྱུར། 171

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཀུ་ཎ་ལའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་ལྔ་བཅུ་ཙ་དགུ་པའོ།།

स रत्नचैत्यां प्रतिमाञ्च कृत्वा
दृष्टिं विनष्टां पुनराससाद।
विशीर्णचैत्यप्रतिपूरणेन
प्रासादिकः कान्तिमयश्च जातः ॥ १७० ॥

श्रोतःप्राप्तिफलप्रवृत्तविमलालोकक्रमेणामुना
वैराग्योज्ज्वलसत्यदर्शनविधौ लब्धाधिकारस्थितिः।
सम्यक् पुण्यवशादुपैष्यति शनैः कालेन संबुद्धता-
मित्युक्तः स्थविरेण भिक्षुनिवहः श्रुत्वाभवद्विस्मितः ॥ १७१ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां कुणालावदानं नाम एकोनषष्टितमः पल्लवः ॥

Chapter LX.

ཀླུ་གཞོན་ནུའི་རྟོག་བརྗོད་ནི།

ཡལ་འདབ་དྲུག་ཅུ་པའོ།

འདི་ནི་མི་རྣམས་ལུས་དག་ཉོན་མོངས་ཕྱུང་པོས་རབ་ཏུ་གདུངས།
འཇིག་རྟེན་ཕ་རོལ་ཏུ་ཡང་མི་བཟད་དམྱལ་བའི་མེ་ཡིས་བསྲེགས།
སྐྱབས་འགྲོའི་བསོད་ནམས་དང་ནི་བསླབ་པའི་གནས་དག་ཐོབ་རྣམས་ཀྱི།
ལུས་ལ་ནམ་ཡང་སྡུག་བསྔལ་དག་གིས་སྲེག་པའི་མཐུ་ཡོད་མིན། 1

གྱི་མཚོའི་མཐར་ནི་ནོར་ཞེས་པའི། ཀླུ་ནི་གཉེན་མང་ལྡན་པ་བྱུང་།
གདེངས་ཀའི་རིན་ཆེན་རབ་འབར་གྱིས། སྣང་བས་སྔོན་མེད་ཉིན་མོར་བྱས། 2

དེ་ཡི་ཁང་པར་ཉིན་མཚན་དུ། བྱེ་ཚན་དག་ནི་བབས་གྱུར་ཏེ།
གང་གིས་ལག་འགྲོ་རྣམས་ཀྱི་ལུས། གདུང་བ་དྲག་པོས་ཉེན་པར་གྱུར། 3

ནོར་བཟང་ཞེས་བྱ་གཅེས་པའི་བུ། རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱིས་རབ་གཞོན་པ།
བྱེ་མས་ཡོངས་སུ་གཟིར་གྱུར་པས། ནམ་ཞིག་དེ་ལ་རབ་ཏུ་དྲིས། 4

ལྷ་ཅིག་བྱེ་མ་ཚ་བ་འདིས། བདག་ཅག་ཅི་སླད་གདུང་བར་བྱེད།
སྡིགས་དང་ཙ་བའི་སྦྱོར་བ་དག། ཅི་ཡི་ཉེ་བར་ཞི་བར་འགྱུར། 5

षष्टितमः पल्लवः ।

नागकुमारावदानम् ।

इह कषति शरीरं क्लेशराशिर्नराणां
दहति च परलोके नारकः क्रूरवह्निः ।
शरणगमनपुण्यप्राप्तशिक्षापदानां
प्रभवति ननु देहे दुःखदाहः कदाचित् ॥ १ ॥

धननामा समुद्रान्ते नागोऽभूद्बहुबान्धवः ।
फणारत्नोज्ज्वलालोककलितापूर्व्ववासरः ॥ २ ॥

पपाताहर्निशं तस्य भवने तप्तवालुका ।
ययाङ्गेषु भुजङ्गानां तीव्रतापव्यथाभवत् ॥ ३ ॥

कदाचित् सुधनो नाम पुत्रः पप्रच्छ तं प्रियः ।
सुकुमारः प्रकृत्यैव वालुकापरिपीड़ितः ॥ ४ ॥

कस्मादस्मानियं तात बाधते तप्तवालुका ।
मन्त्रमूलप्रयोगेन केनेयमुपशाम्यति ॥ ५ ॥

འགའ་ཞིག་བདག་ལས་ལྷག་པ་དང་། གཞན་ནི་བདག་ལས་དམན་པ་ཡི།
སྐྱུ་ནི་རྒྱ་མཚོ་འདི་ན་གནས། ཡུ་ཉིད་སྡུག་བསྔལ་གྱིས་གཟིར་ཏེ། 6

ཞེས་པ་བུ་ཡིས་དྲིས་དེ་ལ། བློ་གྲོས་ཆེན་པོ་དེས་སྨྲས་བ།
ཇི་ལྟར་གདོངས་ཅན་གཞན་གྱི་ཆོས། ཤེས་པ་དེ་ལྟར་ཡུ་ཅག་མིན། 7

ཆོས་ཀྱི་ཉེར་བསྟན་གྱིས་དག་པ། ཞི་ཞིང་བདེན་པར་སྨྲ་ནོམས་ལ།
ངེས་པར་ཉེ་བར་གདུང་གྱུར་པ། ལུས་ལ་མ་ཡིན་ཡིད་ལའང་མིན། 8

སངས་རྒྱས་ཆོས་དང་ཚོགས་ཞེས་པ། སྐྱབས་འོས་བསོད་ནམས་དཀོན་ཅིག་ནི།
གསུམ་ལ་སྐྱབས་སོང་མཁས་པ་གང་། དེ་ལ་ཡོངས་གདུང་རེག་མི་བྱེད། 9

གང་གིས་ཉོན་མོངས་རབ་ཞི་པའི། བསླབ་པའི་གནས་རྣམས་ཐོབ་གྱུར་ཅིང་།
བདུད་རྩིས་བྲན་པ་དེ་དག་ལ། སྡིག་དང་འཇིགས་པ་གང་ལ་སྤྱོད། 10

ཤཱཀྱ་ཐུབ་པ་འཇིག་རྟེན་གྱི། ཉོན་མོངས་ཐམས་ཅད་རབ་ཞིའི་གཉེན།
རྒྱལ་བ་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་གནས་པ། མཉན་ཡོད་ན་ནི་བཅོམ་ལྡན་ཡོད། 11

སྙིང་རྗེ་ཟླ་བའི་འོད་བསྐྱེད་དེ། སེམས་དཔའ་ལྟར་དཀར་མན་ངག་གིས།
འོད་ཟེར་ཚོགས་ཀྱི་འགྲོ་གསུམ་དུ། བདུད་རྩིའི་ཆར་པ་མངོན་པར་འབེབས། 12

གང་ཞིག་ཉམས་པར་མ་ཐུལ་བས། བསླབ་པའི་གནས་ཐོབ་མི་སྲུང་ན།
དེ་དག་དམྱལ་བ་མི་བཟད་པས། གདུང་བ་དྲག་པོས་བརླག་པར་འགྱུར། 13

अस्मदभ्यधिकाः केचिदस्मत्प्रत्यवराः परे।
नागाः सन्ति समुद्रेऽस्मिन् दुःखार्त्ता वयमेव किम् ॥ ६ ॥

इति पृष्टः स पुत्रेण तमुवाच महामतिः।
यथान्ये फणिनः पुत्र धर्म्मज्ञा न तथा वयम् ॥ ७ ॥

धर्म्मोपदेशशुद्धानां शान्तानां सत्यवादिनाम्।
उपतापो भवत्येव न शारीरो न मानसः ॥ ८ ॥

न तान् स्पृशति सन्तापः पुण्यं रत्नत्रयं बुधाः।
ये बुद्धधर्म्मसंघाख्यं शरण्यं शरणं गताः ॥ ९ ॥

शिक्षापदान्यवाप्तानि क्लेशप्रशमनानि यैः।
तेषाममृतसिक्तानां पापतापभयं कुतः ॥ १० ॥

श्रावस्त्यामस्ति भगवान् जिनो जेतवनाश्रयः।
लोके शाक्यमुनिः सर्व्वक्लेशप्रशमबान्धवः ॥ ११ ॥

उपदेशांशुनिवहैः सत्वशुभ्रैर्जगत्त्रये।
करुणाकौमुदीखूतिरमृतं सोऽभिवर्षति ॥ १२ ॥

दुर्विनीता न रक्षन्ति प्राप्य शिक्षापदानि ये।
तीव्रतापमयस्तेषां नरकेष्वक्षयः क्षयः ॥ १३ ॥

ཞིས་པ་ཕ་དང་མ་ཡི་ཡང་། ཚིག་དག་ཐོས་ནས་ལག་འགྲོ་ནི།
མི་རྟོག་མཆོག་དག་ཡོངས་བཟུང་ནས། དགའ་བའི་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་དུ་སོང་། 14

ཚིག་ཤེས་སྨྲོར་ནི་མངོན་ཕྱོགས་རེས། བདེ་བར་གཤེགས་པའི་གནས་ཕྱིན་ཏེ།
དེར་ནི་ཆོས་དག་ཉན་པ་ལ། ཚོགས་པའི་འཁོར་དག་མཐོང་བར་གྱུར། 15

བཞིན་རས་མཛེས་ཤིང་སྤྱན་ཡངས་པ། ཟླ་བ་ཉ་དང་པད་ཚལ་དག།
འགྲོགས་པ་བཞིན་དུ་བདེ་སྟེར་བའི། རྒྱལ་བ་དེར་ནི་མཐོང་བར་གྱུར། 16

ཉི་བར་སྟོན་བྱེད་མཆུ་ཡིས་ནི། ཆགས་ལྡན་རྣམས་ཀྱི་དམར་བ་ཉིད།
རབ་གྱིས་དམན་པ་ཉིད་བྱས་ཤིང་། གསལ་བར་ཟིལ་གྱིས་གནོན་པ་བཞིན། 17

རྒྱན་དང་བྲལ་བའི་མཛེས་སྡུག་གིས། ཉེ་བའི་ཞགས་པ་རབ་བཀྱིན་ཅིང་།
སྒྲིབ་པ་དང་བྲལ་སྟོང་པ་ཉིད། རབ་ཏུ་རྒྱས་པ་སྟོན་པ་བཞིན། 18

དཔྱང་བ་ཆོས་ཀྱི་གཉིས་འཕྱང་ལག། ཕྱིན་པས་མཛེས་པ་རྣམ་པར་འཛིན།
ནུས་མཐུའི་ཁང་པ་དག་གི་ནི། ཀ་བ་གསེར་གྱི་རང་བཞིན་བཞིན། 19

ཆོས་གོས་རྒྱན་གང་ལྡན་པ་ཡིས། ཞབས་ཀྱི་གྲིབ་མ་སྐྱོ་བྱེད་པ།
ས་གཞི་རྟོགས་པ་ཐོབ་པ་ལ། པདྨའི་གྲོགས་རྣམས་ཀྱིས་བསྐྱབས་བཞིན། 20

ལུས་ཀྱི་མཛེས་པ་རྒྱས་པ་ནི། སྤྱན་གྱི་བདུད་རྩིའི་ཆར་འབེབས་པས།
དམ་པ་རྣམས་ཀྱི་འཁོར་བ་ཡིས། མྱ་ངན་ཡོངས་གདུང་བཟློག་པ་བཞིན། 21

इति श्रुत्वा पितुर्वाक्यं जनन्याश्च भुजङ्गमः ।
आदाय दिव्यपुष्पाणि पुण्यं जेतवनं ययौ ॥ १४ ॥

सुगताश्रममासाद्य धर्म्मश्रवणसङ्गताम् ।
ददर्श पर्षदं तत्र स सन्तोषसुखोन्मुखीम् ॥ १५ ॥

तत्रापश्यज्जिनं कान्तवदनं दीर्घलोचनम् ।
पूर्णेन्दुपद्मवनयोरिव मैत्रीसुखप्रदम् ॥ १६ ॥

उपदेशकृता व्यक्तमधरेणाधरीकृताम् ।
तर्ज्जयन्तमिवोत्सिक्तां[1] रागिवर्गस्य रक्तताम् ॥ १७ ॥

निराभरणलावण्यकर्णपाशविभूषितम् ।
दर्शयन्तमिवासक्तां निरावरणशून्यताम्[2] ॥ १८ ॥

धर्म्मोद्यिपकरौ बाहू बिभ्राणं दानशोभितौ ।
प्रभावभवनस्तम्भौ शातकुम्भमयाविव ॥ १९ ॥

दिशन्तं चरणच्छायां चीरैरावरणं भुवः ।
लब्धप्रबोधैर्विहितामिव राजीवजीवितैः ॥ २० ॥

देहकान्तिवितानेन नयनामृतवर्षिणा ।
संसारमरुसन्तापं वारयन्तं सतामिव ॥ २१ ॥

---

१ H °मिवोत्क्षिप्तां ।   २ means निष्कलङ्कवैराग्यम् ।

དེ་མཐོང་ཉིད་ན་ཀླུ་ཡི་བུ། ཡོངས་སུ་གདུང་བ་བཏང་བར་གྱུར།
བདག་ཉིད་ཆེ་ནམས་མཐོང་བ་ཉིད། གདུང་བའི་སྐྱོན་ཀུན་ཞི་བར་བྱེད། 22

སྙིམ་པ་མི་དོག་གིས་གང་བ། དེ་ལ་གཏོར་ནས་དེས་ཕྱག་གསལ།
དེ་ཡི་ཞབས་པད་རེག་པ་ཡིས། འཕྲལ་ལ་བསིལ་བ་ཉིད་དུ་གྱུར། 23

དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ནི། བསླབ་པའི་གནས་ཐོབ་མཁས་པ་དེས།
ཐལ་མོ་སྦྱར་ནས་དེ་ལ་ནི། ཇི་སྲིད་འཚོ་བར་ལྷག་གནས་བྱས། 24

དེ་ལ་བཅོམ་ལྡན་གྱིས་གསུངས་པ། ཐམས་ཅད་རྗེས་སུ་གཟུང་བྱ་ལ།
གཅིག་ཉིད་ཁོ་ནའི་ལྷག་གནས་ནི། ཇི་སྲིད་འཚོ་བ་ཇི་ལྟར་འོས། 25

གུས་ལ་དགྱེས་པས་དེ་བརྗོད་ནས། དེ་ལ་བརྩོན་པས་བཅོམ་ལྡན་དེ།
གདེངས་ཅན་ནམ་པར་བདག་པ་ནི། ཡོངས་རྫོགས་མཛད་ཅིང་དལ་གྱིས་ཆས། 26

དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་སྣ་དྲངས་ནས། རིམ་གྱིས་བྱོན་པ་དེ་ལ་ནི།
ཀླུ་ཡི་མཐུ་ལས་གནས་དང་གནས། མཐོ་རིས་ལྟ་བུར་མཛེས་པ་བསྒྲུབས། 27

རིན་ཆེན་གསེར་འོད་བཀྲ་བ་ཡི། མཆོག་གི་སྐྱེད་ཚལ་མཛེས་པ་དང་།
ལོངས་སྤྱོད་འཛིན་པས་བྲེལ་བ་ཡིས། འབང་དང་འབང་མོའི་ཚོགས་ཀྱིས་དང་། 28

ག་ཕུར་ཅན་དན་གྱི་ཆེ་ཡི། ཏོ་ཤལ་འཕྱང་བས་བརྒྱན་པ་ཡིས།
གནས་དང་གནས་སུ་གཙུག་ལག་ཁང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་དེ་ཡིས་བྱས། 29

नं विलोक्यैव तत्याज सन्तापं नागनन्दनः ।
सर्व्वार्त्तिदोषशमनं दर्शनं हि महात्मनाम् ॥ २२ ॥

प्रणनाम स तं कीर्णसम्पूर्णकुसुमाञ्जलिः ।
तत्पादपद्मस्पर्शेन सद्यः शीतलतां गतः ॥ २३ ॥

कृती भगवतः प्राप्य ततः शिक्षापदानि सः ।
चक्रे कृताञ्जलिस्तस्य यावज्जीवाधिवासनाम् ॥ २४ ॥

तमावभाषे भगवानेकस्यैवाधिवासना ।
अनुग्राह्येषु सर्व्वेषु यावज्जीवं न युज्यते ॥ २५ ॥

इत्युक्त्वा प्रणयिप्रीत्यै भगवान् सततोद्यतः ।
शनैः प्रतस्थे सङ्कल्पं भोगिनः परिपूरयन् ॥ २६ ॥

क्रमेणागच्छतस्तस्य भिक्षुसंघाग्रयायिनः ।
प्रभावाद्विदधे नागः स्वर्गशोभां पदे पदे ॥ २७ ॥

हेमरत्नांशुशबलान् दिव्योद्यानमनोहरान् ।
भोगोपसंग्रहव्यग्रदासदासीगणाहृतान् ॥ २८ ॥

कर्पूरचन्दनोदारहारप्रालम्बभूषितान् ।
स्थाने स्थाने भगवतः स विहारानकारयत् ॥ २९ ॥

དེ་ནས་ཀ་ལན་ད་ཀའི་གནས། ཞེས་པ་འོད་མའི་ཚལ་དུ་ཕྱིན།
དེ་ཡི་ལོངས་སྤྱོད་ཚོགས་ཀུན་གྱིས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་མཆོད་པ་བྱས། 30

དེར་ནི་དེ་ཡིས་ཟླ་གསུམ་དུ། དགེ་འདུན་དང་བཅས་བདེ་གཤེགས་མཆོད།
དོ་ཤལ་རིན་ཆེན་འོད་ཀྱིས་བསྐོར། ཡ་མཚན་ཀུན་དགའ་ལྡན་ལ་གསུངས། 31

གདེངས་ཅན་འདི་ནི་བསྐལ་པ་བགྲོར་མི་གཡོ།
བདེ་བའི་ལོངས་སྤྱོད་ཀུན་གྱི་སྣོད་དུ་གྱུར།
འོད་ཀྱང་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་བྱང་ཆུབ་ཀྱང་།
རབ་ཏུ་འབད་པས་གསལ་བར་བྱེད་པར་འགྱུར། 32

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཀླུ་གཞོན་ནུའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་པའོ།།

करन्दकनिवासाख्यं प्राप्य वेणुवनं ततः।
स सर्व्वभोगसम्भारैर्भगवन्तमपूजयत् ॥ ३० ॥

तेन मासत्रयीं तत्र ससंघः सुगतोऽर्चितः।
ऊचे विस्मितमानन्दं हाररत्नांशुकैर्वृतः ॥ ३१ ॥

एष कल्पशतमच्युतः फणी
सर्व्वभोगसुखभाग्भविष्यति।
बोधिमप्यपरजन्मनि स्फुटां
किञ्च सुप्रणिहितः करिष्यति ॥ ३२ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां नागकुमारावदानं नाम षष्टितमः पल्लवः ॥

Chapter LXI.

ཞིང་པའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

སྤྲིན་པོའི་རབ་ཏུ་གཉེར་དག་ལྷུང་ཡང་རབ་ཏུ་འགྲོ་བར་འགྱུར།
རྣམ་དག་བློ་ལྡན་ཁྱིམ་དུ་དཔལ་ནི་རང་ཉིད་འོད་བར་འགྱུར།
སྐྱེས་བུ་དམ་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཡིད་ནི་རབ་ཏུ་དང་བ་དག།
དབུལ་བའི་རབ་རིབ་མི་བཟད་འཁྲོག་པའི་སྒྲོན་གྱི་ནོར་བུ་ཡིན། 1

མཉན་ཡོད་དུ་སྔོན་བྲམ་ཟེ་ནི། ནོར་མེད་བཀྲ་ཤིས་ཞེས་བྱ་བ།
འཚོ་བ་བྲལ་བས་འཚོ་བའི་ཐབས། འབྲས་བུ་ཆུང་བའི་ཞིང་ལས་བརྟེན། 2

ཞིང་ལས་ལ་ཆགས་གྲང་བ་དང་། རླུང་དང་ཚ་བས་ཉེན་པ་དེས།
སྡོང་པ་དང་ནི་ཏོག་རྩེའི་ཁར། ཁྱིར་ཞིང་འོང་དང་འགྲོ་བ་བྱས། 3

ནམ་ཞིག་ཆུང་མ་དང་བཅས་དེའི། ལམ་དུ་འགྲུལ་བ་ཉན་ཐོས་དང་།
ལྷན་ཅིག་སྟོན་པ་མཐོང་གྱུར་ནས། འཕྲལ་ལ་རབ་ཏུ་དང་བར་གྱུར། 4

སྦྱིན་པའི་བསོད་ནམས་ཡོངས་ཟད་ལས། དབུལ་བའི་སྡུག་བསྔལ་མི་བཟད་པ།
སེམས་ཤིང་དེ་ཡིས་ཆུང་མ་ནི། རབ་དང་བཞིན་ལྡན་ལ་སྨྲས་པ། 5

एकषष्टितमः पल्लवः ।

कर्षकावदानम् ।

मूढस्य हस्तपतितोऽपि निधिः प्रयाति
लक्ष्मीः स्वयं भवनमेति विशुद्धबुद्धेः ।
दारिद्र्यतीव्रतिमिरापहरः प्रकामं
पुंसां विभूषणमणिर्मनसः प्रसादः ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां स्वस्तिको नाम ब्राह्मणो निर्धनः पुरा ।
अभिश्रियत् क्लेशफलामगत्या कृषिजीविकाम् ॥ २ ॥

स क्षेत्रकर्म्मनिरतः शीतवातातपक्षतः ।
चकार हलकुद्दालभारवाहो गतागतम् ॥ ३ ॥

स कदाचित् समायान्तं श्रावकैः सहितं पथि ।
जिनं जायासखो दृष्ट्वा प्रसादं सहसा ययौ ॥ ४ ॥

प्रसन्नवदनां पत्नीं स जगाद विचिन्तयन् ।
दारिद्र्यदुःखमसमं दानपुण्यपरिक्षयात् ॥ ५ ॥

བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་ཡུ་ཅག་གིས། ཏོག་གཅིག་གིས་ཀྱང་མ་མཆོད་ལས།
བསོད་ནམས་ཟླང་གིས་ཐོབ་པའི་ནོར། ཕུན་ཚོགས་ཡུ་ལ་ག་ལ་འོང་། 6

ཤི་བ་གསོན་ཉིད་འཇིག་རྟེན་ན། གྲགས་པ་ཉམས་པ་ཤི་བ་ཉིད།
ནོར་མེད་སྐྱེ་བོ་མཛེས་པ་ནི། གསོན་ལ་མ་ཡིན་གཤིན་ལ་མིན། 7

ནོར་རིགས་ནོར་ནི་རིག་པ་སྟེ། ནོར་ཆོས་ནོར་ནི་གྲགས་པ་ཡིན།
ནོར་གྱིས་དམན་ཞིང་བསླངས་པ་ཡིས། འཚོ་བའི་ཡོན་ཏན་ཉམས་ཀྱིས་ཅི། 8

གཞན་གྱི་ཉེ་འཁོར་གྱུར་པ་ཡིས། དབུལ་པོའི་ཡོན་ཏན་དམ་པས་ཅི།
ཁུར་དུབ་པ་ལ་ནོར་བུ་ཡིས། གསེར་ཕྲེན་ངལ་དུབ་དོན་གྱིས་བཞིན། 9

དབུལ་པོ་སྦྱིན་པ་དག་དང་བྲལ་བས་སླར་ཡང་དབུལ་པོར་རབ་ཏུ་འཇུག།
དབུལ་པོ་ནོར་ལ་ཆགས་པས་གཞན་དབང་སྡིག་པའི་བདག་ཉིད་དག་ཏུ་འགྱུར།
དབུལ་པོ་དབུགས་དང་བཅས་ཀྱང་ཤི་ཞེས་འདི་ལ་ཁྱད་པར་གློ་གྲོས་མེད།
དབུལ་པོ་ཕྱོགས་བཅུ་འདི་དག་རང་གི་སྐྱེ་བོ་དག་གིས་དམན་པ་བཞིན། 10

དེ་སྐད་དམན་ལ་མཉེས་གཤིན་པའི། བདེ་བར་གཤེགས་པ་མཆོད་པར་བྱ།
སངས་རྒྱས་མཉེས་པར་མ་བྱས་པའི། སྐྱོངས་ལ་དགེ་བ་ག་ལ་ཡོད། 11

པདྨའི་འདབ་མ་ལྟ་བུའི་སྤྱན། ལོངས་བའི་གཉེན་འདྲིས་གང་གང་དུ།
སྤྱན་ནི་འཕངས་པ་དེ་དང་དེར། དཔལ་ནི་གནས་པ་དག་གིས་ཤེས། 12

आवाभ्यामेष भगवान् पिण्डकेनापि नार्चितः ।
कुतः पुण्यपणप्राप्या धनसम्पत्तिरावयोः ॥ ६ ॥

जीवत्यवमतो लोके नष्टकीर्त्तिर्विपद्यते ।
न स जीवो न निर्जीवः शोभते निर्धनो जनः ॥ ७ ॥

धनं जातिर्धनं विद्या धनं धर्म्मो धनं यशः ।
किं धनेन विहीनानां याच्ञानिर्जीवितैर्गुणैः ॥ ८ ॥

परोपकरणीभूतैः किं दरिद्रस्य सद्गुणैः ।
क्लेशार्थैर्भारिकस्येव मणिकाञ्चनभूषणैः ॥ ९ ॥

दरिद्रो दारिद्र्यं प्रविशति पुनर्दानविरहा-
द्दरिद्रः पापात्मा भवति धनलिप्सापरवशः ।
दरिद्रः सोच्छ्वासो मृत इति न वाचास्ति विमति-
र्दरिद्रस्यैवैता निजजनविहीना दश दिशः ॥ १० ॥

अभ्यर्चयावः सुगतं तस्मात् कृपणवत्सलम् ।
अनाराधितबुद्धानां मुग्धानां कुशलं कुतः ॥ ११ ॥

एष पद्मपलाशाक्षः क्षिपत्यापन्नबान्धवः ।
यत्र यत्र दृशं जाने तत्र तत्राश्रयः श्रियः ॥ १२ ॥

དེ་སྐད་བདག་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཁྱིམ་དུ་གུས་བྱས་བྲམ་ཟེ་མོས།
ཟས་ནི་གཙང་མར་སྦྱར་བ་དག། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་སྐྱད་དུ་བསྐྱུབས། 13

བཅོམ་ལྡན་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་ཀྱང་། དེ་དག་བསམ་པ་ཡོངས་མཁྱེན་ནས།
གུས་པས་གསོལ་བ་འདེབས་པ་དེའི། མཆོད་པ་དག་ནི་བླང་བར་མཛད། 14

དབུལ་བའི་སྡུག་བསྔལ་རབ་བསལ་བ། བདག་ལ་འབྱོར་པ་འབྱུང་གྱུར་ཅིག།
ཅེས་པའི་སྨོན་ལམ་གཉིས་སྐྱེས་ཀྱིས། རྒྱལ་བ་མཆོད་པའི་མཇུག་དུ་བྱས། 15

དེ་ནས་བྲམ་ཟེ་རང་ཞིང་དུ། སོང་བས་འབྲུ་ནས་སྤུ་གུ་ནི།
ཐམས་ཅད་གསེར་དུ་མཐོང་གྱུར་ནས། འཕྲལ་ལ་ཉིད་དུ་དབུལ་བ་བཀང་། 16

ས་ཡི་བདག་པོ་གསལ་རྒྱལ་གྱིས། དེ་ཡི་བསོད་ནམས་ལས་འབྱུངས་པའི།
གསེར་དག་མཐོང་ནས་ཡ་མཚན་དེ། དགའ་བས་རྒྱལ་པོའི་ཆ་ཤས་བཏང་། 17

ཕྱིན་དུ་མང་པོའི་གསེར་དེ་ཡིས། དབང་ཕྱུག་གཏེར་ཐོབ་གཉིས་སྐྱེས་ཀྱིས།
རྫོགས་སངས་རྒྱས་སོགས་དགེ་འདུན་ནི། ཡོངས་སྤྱོད་ཀུན་གྱིས་རབ་དུ་མཆོད། 18

སྟོན་པས་ཆོས་ནི་བསྟན་པ་ཡིས། རྒྱུན་དུ་ཞུགས་པའི་འབྲས་ཐོབ་ནས།
བདེན་མཐོང་དེ་ཡིས་དུས་ཀྱིས་ནི། རབ་དུ་བྱུང་བ་ཡང་དག་བླངས། 19

ཉོན་མོངས་ཐམས་ཅད་རབ་བཅོམ་སྟེ། དེ་ཡིས་དགྲ་བཅོམ་ཉིད་ཐོབ་ཚེ།
ལས་དེ་དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་དྲིས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་མངོན་པར་གསུངས། 20

इति पत्युर्वचः श्रुत्वा ब्राह्मणी सादरा गृहे ।
शुचिप्रणीतं विदधे भोज्यं भगवतः कृते ॥ १३ ॥

भगवानपि सर्व्वज्ञस्तयोर्ज्ञात्वा समीहितम् ।
प्रणयार्थनया चक्रे तस्य पूजाप्रतिग्रहम् ॥ १४ ॥

व्यक्तदारिद्र्यदुःखस्य भूयान्मे विभवोद्भवः ।
चकार जिनपूजान्ते प्रणिधानमिति द्विजः ॥ १५ ॥

अथ गत्वा निजं क्षेत्रं विप्रः शस्ययवाङ्कुरान् ।
सर्व्वानपश्यत् सौवर्णान् सहसा त्यक्तदुर्गतिः ॥ १६ ॥

तस्य पुण्यसमुद्भूतं दृष्ट्वा हेम महीपतिः ।
तत्याज विस्मितः प्रीत्या राजभागं प्रसेनजित् ॥ १७ ॥

तेन हेम्ना सुमहता लब्धैश्वर्य्यनिधिर्द्विजः ।
स बुद्धप्रमुखं सङ्घं सर्व्वभोगैरपूजयत् ॥ १८ ॥

धर्म्मदेशनया शास्तुः श्रोतःप्राप्तिफलोदयात् ।
दृष्टसत्यः स कालेन प्रव्रज्यां समुपाददे ॥ १९ ॥

सर्व्वक्लेशप्रहाणेन तस्मिन्नर्हत्त्वमागते ।
तत्कर्म्म भिक्षुभिः पृष्टो भगवानभ्यभाषत ॥ २० ॥

སྨྲེ་བ་གཞན་ལ་བྲམ་ཟེ་འདྲིས། བདག་ཉིད་ཆེན་པོ་བཅོམ་ལྡན་འདས།
འོད་སྲུངས་ཀྱིས་ནི་བསྟན་པ་ལ། ཚངས་པར་སྤྱོད་པ་སྟོན་ཆོ་སྤྱད། 21

ཉེ་དབང་དབང་བཅས་ལྷས་མཆོད་པ། ཤིན་ཏུ་ཆེ་བའི་གྲུབ་པ་འདི།
བདག་གི་སྟོན་དུ་སྐྱེ་བ་འདིར། འདི་ལ་དེ་ཡིས་ཡང་དག་བསྟན། 22

དེ་སྐད་དེ་ཡི་ཞིགས་བྱས་གྲོལ་བས་གསུངས་པ་ཐོས་གྱུར་ནས།
དེ་ཡི་ཡོན་ཏན་རང་བཞིན་ནང་དུ་འཕོས་བཞིན་དགེ་སློང་ནི།
དེ་དག་ཐམས་ཅད་ལ་མཚན་བློ་ལྡན་དགའ་བས་འཁྲུགས་གྱུར་ཅིང་།
དགེ་ལ་གུས་པས་བཟང་པོའི་སྤྱོད་པ་རབ་ཏུ་བསྔགས་པ་མཛད། 23

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཞིང་པའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་ཙ་གཅིག་པའོ།།

अन्यजन्मनि विप्रोऽयं काश्यपस्य महात्मनः।
ब्रह्मचर्य्यं भगवतः शासनेन पुराचरत् ॥ २१ ॥

समादिष्टास्य तेनैव जन्मन्यस्मिन्महीयसी।
मत्सकाशादियं सिद्धिः सेन्द्रोपेन्द्रसुरार्चिता ॥ २२ ॥

श्रुत्वेति तस्य सुकृतं कथितं जिनेन
सर्व्वे सविस्मयधियः कुशलादरेण।
हर्षाकुलाः सुचरितं प्रशशंसुरन्तः-
संक्रान्ततद्गुणमया इव भिक्षवस्ते ॥ २३ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां कर्षकावदानं नाम एकषष्टितमः पल्लवः ॥

Chapter LXII.

ཡལ་འདབ་དྲུག་ཅུ་ཙ་གཉིས་པ།

གླགས་བྱིན་གྱི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ལུག་གིས་གང་བར་གྱུར་པའི་སྐྱེ་བོའི་ནགས་ཚལ་གནས་དག་ཏུ།
ལང་ཚོས་ལོང་ཞིང་བདེ་བ་ལ་འདོས་མཛེས་པའི་ཚས་ལྡན་ཚོ།
དབེན་པས་ཆགས་བྲལ་ཞི་ཞིང་དག་པ་གང་ལ་རབ་བྱིན་པ།
སྐྱེས་བུ་དེ་ཉིད་གཅིག་པུ་ཡ་མཚན་རང་བཞིན་རབ་ཏུ་སྐྱེས། 1

ཀྱུལ་བ་སྔོན་ཆེ་ཏུ་གྲོ་ཊྛའི། ཀུན་དགའ་ར་བ་མཛེས་པར་བཞུགས།
བ་ནྲ་ཧ་སེར་ཁྱིམ་བདག་ནི། ཡིགས་པར་རབ་སད་ཅེས་པ་བྱུང་། 2

ནོར་ནི་གྱིས་པ་གཏོང་བ་དང་། ལོངས་སྤྱོད་ཚོགས་ཀྱིས་ནམ་པར་བསྒྱུར།
གང་གི་དབང་ཕྱུག་ལུས་ངན་བུ། མཛོད་ན་གནས་པའང་ཟུམ་པར་བྱེད། 3

བདེ་བ་ཐམས་ཅད་ཕུན་ཚོགས་དེ། བུ་མེད་བུ་ཡི་བསམ་པ་ཡིས།
མཆོག་ཏུ་ཡང་དག་གདུང་བ་ཐོབ། ཕུན་ཚོགས་སུ་ཡི་ཟུག་རྔུ་མིན། 4

དེ་ཡི་བསམ་པ་འཕོས་པ་ཡིས། ཡུན་རིང་ཡིད་འཕྲུགས་གཉེན་རྣམས་ཀྱིས།
གཉེན་ལ་གཉེན་ནི་ལྟ་ངན་གྱི། མེ་ཡིས་རབ་གདུངས་དེ་ལ་སྨྲས། 5

द्विषष्टितमः पल्लवः ।

यशोदावदानम् ।

ऊर्णायुपूर्णजनकाननसन्निवेशे
जातश्चमत्कृतिमयः पुरुषः स एकः ।
यस्यार्थयौवनसुखोचितचारुवेशे
वैराग्यमादिशति शान्तिसितं विवेकः ॥ १ ॥

न्यग्रोधरुचिरारामविहारिणि जिने पुरा ।
वाराणस्यां गृहपतिः सुप्रबुद्धाभिधोऽभवत् ॥ २ ॥

त्यागोपभोगसम्भारविभूषितधनोदयः ।
ऐश्वर्य्यं यः कुवेरस्य कोशलीनं न्यवेदयत् ॥ ३ ॥

स सर्व्वसुखसम्पत्तौ निष्प्रुचः पुत्रचिन्तया ।
परं सन्तापमापेदे निःशल्याः कस्य सम्पदः ॥ ४ ॥

तं शोकशिखिसन्तप्तं बान्धवा बन्धुवत्सलम् ।
ऊचिरे चिरसंक्रान्तचिन्ताक्रान्तमानसाः ॥ ५ ॥

ཁྲིས་བདག་མ་ཉིད་ལ་འོས་པའི། བསམ་པ་བྱ་བར་མི་རིགས་སོ།
བརྟེན་ལྡན་སྙིང་སྟོབས་ཆེ་ཉམས་ལ། འཇིག་རྟེན་ན་ནི་རྙེད་དཀའ་མེད། 6

གང་འདི་ཕྱོགས་སུ་གླགས་གྱུར་ཅིང་། ཡུལ་འདིར་གྲོང་ཁྲིར་པས་མཆོད་པ།
ནྱ་གྲོ་དྷ་ཡི་ཤིང་དེ་ལ། མཆོད་པས་ཐམས་ཅད་ཐོབ་བར་འགྱུར། 7

དེ་ལ་ཞུས་པས་འགའ་ཞིག་ནི། བུ་མེད་བུ་དང་ལྡན་པ་དང་།
གཞན་ནི་ནོར་མེད་ནོར་དང་ལྡན། གཞན་ཡང་ནད་ཅན་ནད་མེད་མཐོང་། 8

ནྱ་གྲོ་དྷ་ཡི་ཤིང་འཕུང་ནི། མཆོད་རྟེན་སྒྲོང་བ་བདེན་ཞེས་བྱ།
འོས་པར་མཆོད་ན་ཁྱོད་ལ་ནི། བུ་ཞེས་བརྗོད་པའི་འབྲས་སྟེར་འགྱུར། 9

ཞེས་པ་དེ་དག་ཚིག་ཐོས་ནས། འཇུམ་བཅས་དེ་དག་ལ་སྨྲས་པ།
ཀྱེ་མ་སྐྱོངས་པའི་མཛའ་བ་ལས། ཁྱེད་ཉམས་སྐྱོངས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 10

རང་ལས་གཞན་དབང་འཇིག་རྟེན་འདི། ངེས་པར་གཡོ་བ་མེད་པ་ལ།
སྐྱུ་ཡིང་སྐྱུ་ཡི་བདེན་པ་དང་། རྒྱས་དང་འཕྲོག་དང་འཇོམས་པར་བྱེད། 11

རང་ལས་ཉེ་བ་ཉིད་ཐོབ་ནས། བློ་གྲོས་སྣུན་པོ་གཞན་ལ་ཆོས།
རང་གི་ཁ་རྒྱུའི་ཆ་ཤུང་ནས། ཁྲི་ནི་པགས་པ་སྐམ་ལ་བཞིན། 12

ཤིང་གི་བུ་ནོར་སྐྱེས་བུ་ལ། སྟེར་ཞེས་འདི་ནི་སྐྱོངས་པའི་གདམས།
འདབ་མ་ཅམ་ཡང་དུས་མིན་དུ། དེ་ཉིད་རང་ལ་སྨིན་ནུས་མེད། 13

क्लीबोचितां गृहपते न चिन्तां कर्त्तुमर्हसि।
धीराणां पृथुसत्वानां नास्ति लोकेषु दुर्लभम्॥ ६ ॥

य एष विश्रुतो दिक्षु देशेऽस्मिन् पौरपूजितः।
न्यग्रोधपादपस्तस्य पूजया सर्व्वमाप्यते ॥ ७ ॥

अपुत्राः पुत्रिणः केचित् निर्द्धना धनिनः परे।
रोगिणोऽप्यरुजश्चान्ये दृष्टास्तदुपयाचितैः ॥ ८ ॥

सत्ययाचनचैत्याख्यः सोऽयं न्यग्रोधपादपः।
फलं पुत्राभिधं तुभ्यं दास्यत्युचितमर्थितः ॥ ९ ॥

इति तेषां वचः श्रुत्वा तानुवाच स सस्मितः।
अहोनु मोहात् स्नेहाद्वा यूयं मूर्खत्वमागताः ॥ १० ॥

स्वकर्म्मपरतन्त्रेऽस्मिन् लोके नियतिनिश्चले।
स्थितिं करोति पुष्णाति हरते हन्ति कस्य कः ॥ ११ ॥

स्वकर्म्मोपनतं प्राप्य तुष्यत्यन्यस्य मुग्धधीः।
स्वलालालवमास्वाद्य श्वेव शुष्कस्य चर्म्मणः ॥ १२ ॥

वृक्षः पुत्रार्थदः पुंसामित्येतन्मूर्खभाषितम्।
दातुं शक्तः स नाकाले पत्रमात्रमपि स्वयम् ॥ १३ ॥

གལ་ཏེ་དེ་ནི་ཕྱིར་རྙོབ་ལྡས། མཆོད་པ་ལ་ཆགས་བྱེད་པ་ན།
བདག་ཉིད་རང་གིས་མཆོད་པ་ནི། ཡོ་བྱད་རྫོགས་པ་ཅེས་མི་སྨྲ། 14

སྙིན་བུའི་རྗེས་ནི་ཡི་གེ་བཞིན། གང་ཡང་ཐོབ་བྱ་ཐོབ་པ་ན།
བྱ་རོག་དཔལ་ལྟར་བརྗོད་པས། སྐྱེ་བོ་དེ་ཡིས་བྱིན་པར་སེམས། 15

གང་ཞིག་ཐོབ་བྱ་དེ་ནི་ལས་ནམས་འབྲས་བུ་ཡོངས་སུ་གྱུར་ཆེ་ཐོབ།
སྣ་ཚོགས་འབད་ཅིང་གུས་པས་བསྒྲུབས་ཀྱང་ཐོབ་བྱ་མིན་པ་འཐོབ་མ་ཡིན།
གང་ཞིག་གང་གིས་རང་ཉིད་ཀྱིས་བསགས་ལོངས་སྤྱོད་སྐལ་ལྡན་དེ་ལ་ནི།
འདི་དག་འདི་ཡིས་བྱས་ཤེས་སྨོངས་པའི་བློ་ཅན་འབྲས་མེད་དེ་དག་སེམས། 16

ཞེས་པ་སླུ་དེ་མཛའ་གཙུགས་དང་། ལྡན་པའི་གཉེར་གྲིས་རབ་འབད་དེ།
བསྐུལ་ནས་གཅིག་པུ་གསང་བ་ཡིས། ཀོང་འཕྲུང་གི་ནི་རྡུང་དུ་སོང་། 17

སྟ་རེ་བཟུང་ནས་དེ་ཡིས་ནི། ཀུ་བྲོ་ཊ་ཡི་ཤིང་ལ་སླས།
མཆོད་པའམ་ཙ་བ་གཅོད་པ་ལ། ངས་ནི་ཆས་ནས་ཁྱོད་ཅན་འོངས། 18

བུ་དག་སྐྱིན་ན་ཁྱོད་ལ་བདག། གཞན་གྱིས་མ་བུས་མཆོད་པ་བྱེད།
རྣམ་པ་གཞན་དུ་ཁྱོད་བདག་གིས། བཅད་བསྡིགས་བདགས་ལ་རྒྱ་བོར་འཕངས། 19

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། ལྷ་ནི་ཤིང་ལ་གནས་པ་དག།
འཕྲུལ་ལ་འཇིགས་པས་འཁྲུགས་གྱུར་ཏེ། འདར་བར་བྱེད་ཅིང་རབ་བསམས་བ། 20

तदधिष्ठातृदेवश्चेत् पूजालुब्धः करोति तत्।
पूर्णोपहारपूजां किं स्वयं सृजति नात्मनः॥ १४॥

प्राप्तव्यं प्राप्य यदि वा घुणाक्षरपदोपमम्।
काकतालीयसंवादात्तद्दत्तं मन्यते जनः॥ १५॥

प्राप्तव्यं यत् फलपरिणतौ कर्म्मणां प्राप्यते तत्
नानायत्नप्रणयपतनैर्लभ्यते न त्वलभ्यम्।
यद्येनैव स्वयमुपचितं भोगभागी स तस्मिन्
एतेनैतत् कृतमिति मुधा मन्यते मुग्धबुद्धिः॥ १६॥

इति ब्रुवाणः सस्नेहैरनुबन्धेन बान्धवैः।
प्रेरितः स ययौ मूढ एकाकी पादपान्तिकम्॥ १७॥

स कुठारं समादाय न्यग्रोधतरुमभ्यधात्।
पूजायां मूलघाते वा सज्जोऽहं त्वामुपागतः॥ १८॥

पुत्रप्रदातुः पूजां ते करिष्याम्यकृतां परैः।
नयां त्वामन्यथा च्छित्वा दग्ध्वा पिष्ट्वा क्षिपाम्यहम्॥ १९॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा देवता वृक्षवासिनी।
सहसैव भयोद्विग्ना कम्पमाना व्यचिन्तयत्॥ २०॥

འདོད་པའི་བུ་འམ་ནོར་དག་ནི། བདག་གིས་སུ་ལའང་སྦྱིན་པ་མེད།
རང་གི་ལས་ཀྱིས་ཐོབ་པ་ལ། སྐྱེ་བོ་བདག་གིས་སྦྱིན་པར་སེམས། 21

གང་འདི་སྦྱོར་བས་ཀྱིས་བུ་སློང་ཞིང་། ལས་ཀྱི་སྦྱོར་བས་མ་ཐོབ་ན།
ལྷ་ཉིད་གཙོད་དུ་འོངས་གྱུར་པ། འདི་ནི་སྨོན་ཚད་མེད་པ་འོངས། 22

འབྲས་དོན་གཉེར་བས་མཆོད་བྱ་ནི། མཆོད་པ་གང་འདི་ཕྱུགས་ཙམ་སྟེ།
ལས་ཀྱི་བཅིངས་པའི་འབྲས་ཐོབ་པ། སུ་ཡིས་བྱིན་ཅིང་གང་དུ་ལྟ། 23

སྐྱེས་བུ་རང་གི་ལས་ཀྱིས་ནད། བསོས་བ་གྲུབ་པ་མིན་པ་ལ།
རྩིས་མཁན་འཛིན་པ་ཉིད་མ་ཡིན། སྨན་པ་མ་ཡིན་སྔགས་པའང་མིན། 24

བྲ་མིན་བྱེད་པ་འདི་ལ་ནི། ཤིང་ནི་བཅད་པར་ཉམ་བརྟགས་ཡོད།
ཚུལ་མིན་དག་ལ་མངོན་ཞེན་པའི། བག་མེད་ཉམས་པ་བྱ་མིན་ཏེ། 25

ཤིང་ནི་བཅད་ན་གཞན་དུ་བདག། གནས་པར་མི་ནུས་བདེ་བ་མེད།
འགྲོགས་པས་གོམས་ས་ཅན་དགའ་བ་ནི། ཐུབ་པ་ཉམས་ལའང་སྡུག་བསྔལ་སྐྱེད། 26

དེ་དག་བསམས་ནས་བགྱི་བྱིན་གྱི། ཁང་པར་གྱུར་བར་དེ་སོང་ནས།
དོན་ནི་དེ་ལ་བརྗོད་ནས་ནི། ཡོངས་སུ་སྨག་བས་སྨྲར་སྨྲས་བ། 27

རྟག་ཏུ་བདག་ནི་ལྡོན་པ་དེར། སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱི་མཆོད་གྱུར་ཀྱང་།
སྣ་ཚོགས་དོན་གཉེར་ཉེར་གནས་པས། བདག་ནི་ཤིན་ཏུ་གཟིར་བར་གྱུར། 28

न मया कस्यचित् ह्यनुवित्तं वा दत्तमिच्छया ।
जनः स्वकर्म्मसम्प्राप्तं मद्दत्तमिति मन्यते ॥ २१ ॥

इदन्त्वपूर्व्वमायातं पुत्रार्थी यद्यं बलात् ।
कर्म्मयोगादसम्प्राप्तौ दैवतं छेत्तुमागतः ॥ २२ ॥

स्थितिमात्रमिदं पूज्यः पूज्यते यत् फलार्थिभिः ।
कर्म्मबद्धफलालाभे क देवः केन दापितः ॥ २३ ॥

चिकित्सायामसिद्धायां व्याधौ पुंसः स्वकर्म्मणा ।
पच्यन्ते नैव गणका न वैद्या न च मन्त्रिणः ॥ २४ ॥

वृक्षच्छेदविकल्पोऽस्ति नचास्याकार्य्यकारिणः ।
अन्यायाभिनिविष्टानां किमकार्य्यं प्रमादिनाम् ॥ २५ ॥

वृक्षच्छेदे न शक्नोमि स्थातुमन्यत्र निःसुखा ।
सङ्गादाभ्यासिकी प्रीतिर्मुनीनामपि दुस्त्यजा ॥ २६ ॥

इति सञ्चित्य तूर्णं सा गत्वा शक्रस्य मन्दिरम् ।
तमर्थं विनिवेद्यास्मै परित्रस्तावदत् पुरः ॥ २७ ॥

जनेन पूज्यमानापि वृक्षे तस्मिन्नहं सदा ।
नानार्थार्थिभिरत्यर्थं सोपवासैः कदर्थिता ॥ २८ ॥

འགའ་ཡིས་ལེགས་བྱས་བདག་ལ་ཐོབ། འགའ་ཞིག་ཁ་ནི་འོག་ཕྱོགས་གྱུར།
གཡོ་རྨོངས་མི་བསྲུན་བརྡུལ་ཞུགས་ཀྱིས། གཞན་ནི་དེ་ཉིད་ན་རབ་ཆགས། 29

སོང་བའི་རྗེས་སུ་འགྲོ་ཉིད་ཀྱིས། སྐྱེ་བོ་གྲགས་པ་ལ་སྟོན་ཉམས།
གདུང་བ་ཐམས་ཅད་གཞོམ་པའི་སླད། རྨོངས་པ་བདག་ཅག་ཉིད་དུ་རྒྱུག། 30

སྐྱེ་བོ་བློ་གྲོས་མི་གཙོ་བས། མི་བཟད་གཅེས་པར་གྱུར་ཀྱང་བདག།
བསམ་བ་དེ་ཡི་ཡོན་དན་ལ། ཆགས་པས་ཤིང་ནི་གཏོང་མི་ནུས། 31

དྲི་ལ་ཆགས་པའི་བུང་བ་འདམ་གྱིས་འཆིང་བའི་ཉོན་མོངས་ལྡན་པར་འཇུག།
པད་ཅའི་རོ་མྱང་ངང་པ་ཉིད་ནི་འདམ་ཀྱི་འཛེགས་པ་རྩ་མི་བྱེད།
གླང་བས་གཟིར་བའི་སྐྱེ་བོ་དུ་བས་འཁྲུགས་པའི་མེ་ནི་ཡོངས་མི་འདོད།
གང་ལ་གང་ཞིག་ཉེར་མཁོ་དེ་ལ་དེ་ཡི་སྐྱོན་ནི་ངེས་པར་བཟོད། 32

དེ་སྐད་ཤིང་ཐལ་གདུང་བ་ལས། ཁྱབ་བདག་བདག་ནི་བསྐྱབ་པར་འོས།
གང་ཕྱིར་ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་གནས། གདོང་བ་ལུས་ནི་གདོང་དང་མཚུངས། 33

ཞེས་པ་དེ་ཡི་འབད་པ་ཡིས། གསོལ་གདབ་པོ་ལོ་སྣ་དགའ་བས།
ཁྲིམ་བདག་གིས་ནི་བུ་ཐོབ་བའི། ལས་ཀྱི་དབང་ནི་ཡང་དག་བསམས། 34

སྐབས་དེར་ལྷ་མིན་དགྲ་བོ་ཡིས། སྐབས་གསུམ་པ་ཡི་ལྷ་ཡི་བུ།
གླི་བཟང་ཞེས་པ་ལྷུང་བ་ཡི། དུས་ལ་བབ་པ་མཐོང་གྱུར་ཏེ། 35

लभन्ते सुकृतात् केचित् केचित् गच्छन्त्यधोमुखाः।
तत्रैवान्ये प्रलीयन्ते हठमूर्खाः खलव्रतैः॥ २९॥

गतानुगतिकत्वेन प्रसिद्धिशरणो जनः।
सर्व्वार्त्तिपरिहाराय मौर्ख्यान्मामेव धावति॥ ३०॥

उद्वेजिताप्यहं तीव्रं जनेनाकृतबुद्धिना।
तदहं त्यक्तुं न शक्नोमि तद्गुणावर्ज्जिताशया॥ ३१॥

बन्धक्लेशं विशति[१] मधुपः पङ्कजं गन्धलुब्धः
पङ्कातङ्कं गणयति बिशास्वादने नैव हंसः।
शीतार्त्तश्च त्यजति न जनः पावकं धूमधूम्र
तस्मिन् दोषं स किल सहते यस्य येनोपयोगः॥ ३२॥

तस्माद्दुःखवियोगार्त्तां त्रातुमर्हसि मां विभो।
शरीरत्यागसदृशः स्थानत्यागो हि देहिनाम्॥ ३३॥

अर्थितः प्रणयेनेति पौलोमीरमणस्तया।
पुत्रलाभं गृहपतेः कर्म्मायत्तमचिन्तयत्॥ ३४॥

अथान्तरे हयशिरदेवपुत्रं त्रिपिष्टपे।
सुमतिं नाम सम्प्राप्तच्युतिकालं व्यलोकयत्[२]॥ ३५॥

---
१ H व्रजति। २ H व्यचिन्तयत्।

མི་བསྐྱུན་ལ་བདུད་གྲགས་པ་ཉམས་པ་བཞིན་དུ་འཕྲེང་བ་དྲིམ་ཅན་གྱུར་ཅིང་།
དམན་གྱུར་སྐྱོང་བ་བཞིན་དུ་མཛེས་པ་སྨུན་པ་དག་དང་ཡོངས་འདྲིས་བྱུང་བར་གྱུར།
བསོད་ནམས་ཡོངས་སུ་ཟད་ལས་གནོད་པས་བཞིན་དུ་རྡུལ་གྱིས་ཀྱང་ནི་གནས་དག་བྱས།
ཞེ་སྡང་སྐྱོན་བཅས་བློ་བཞིན་དེ་ནི་ལྷུང་བ་གསལ་བྱེད་དགའ་བ་མིན་པར་གྱུར། 36

ལེགས་པ་རབ་སད་ཡོན་དན་ཅན། ས་ལ་དཔལ་ལྡན་གྲགས་པ་ཡིས།
བློ་བཟང་བུ་ཉིད་དུ་སོང་ཞེས། དེ་ལ་ལྷ་ཡི་བདག་པོས་སྨྲས། 37

དེས་སྨྲས་སྟོན་པ་ཤཱཀྱ་ཐུབ། བླ་མེད་གྱི་ཆེ་ཆོས་ཀྱི་ནི།
འཁོར་ལོ་རབ་ཏུ་བསྐོར་མཛད་པའི། མདུན་དུ་དུས་རེར་གལ་ཏེ་བདག། 38

རབ་ཏུ་བྱུང་བ་འཛིན་པ་ལ། ཁྱོད་ཀྱིས་ཡང་དག་རྟོགས་བྱེད་ན།
ས་ལ་ལེགས་པར་རབ་སད་ཀྱི། བུ་ཉིད་དུ་ནི་བདག་གིས་འགྲོ། 39

ལྷ་ཡི་བུ་ཡིས་འདི་བརྗོད་པས། བརྒྱ་བྱིན་དེ་བཞིན་ཞེས་སྨྲས་ཚེ།
རྗེས་གནང་དེ་ནི་དེ་ནས་འགྲོས། དེ་ཡི་ཆུང་མའི་དཀྲུ་རུ་ཞུགས། 40

ལྷ་ནི་རང་གི་གནས་སོང་སྟེ། ལེགས་པར་རབ་སད་དེ་ལ་སྨྲས།
རབ་ཏུ་འབྱུང་ལ་མངོན་དགའི་བུ། དགེ་བ་ཁྱོད་ལ་འབྱུང་བར་འགྱུར། 41

ཞེས་པ་ཐོས་ནས་ཁྱིམ་བདག་ནི། རབ་ཏུ་མགུ་ནས་ཁྱིམ་སོང་སྟེ།
བུ་ནི་རབ་ཏུ་འབྱུང་བ་དག། བདག་གིས་བཟློག་པར་བྱ་ཞེས་བསམས། 42

माला म्लानिमुपाययौ खलनतिक्लिष्टेव कीर्त्तिस्तदा
छाया प्रादुरभूत्तमःपरिचिता याच्ञेव दैन्योदये ।
खेदः पुण्यपरिक्षये नव इवापायश्चकारास्पदं
तस्याभूदरतिर्निपातपिशुना सद्वेषदोषेव धीः ॥ ३६ ॥

गुणिनः सुप्रबुद्धस्य पृथिव्यां प्रथितश्रियः ।
सुमते पुत्रतामेहि तमित्याह सुरेश्वरः ॥ ३७ ॥

सोऽब्रवीत्तच मां काले शास्तुः शाक्यमुनेः पुरः ।
शक्रस्यानुत्तरोदार[१]धर्म्मचक्रप्रवर्त्तने ॥ ३८ ॥

प्रव्रज्यासादनाय त्वं यदि संबोधयिष्यसि ।
तदहं सुप्रबुद्धस्य व्रजामि भुवि पुत्रताम् ॥ ३९ ॥

इत्युक्ते देवपुत्रेण शक्रेणोक्ते तथेति च ।
च्युतः स तस्माद्राजन्तत्पत्न्याः कुक्षिमाविशत् ॥ ४० ॥

देवता स्वपदं गत्वा सुप्रबुद्धमभाषत ।
प्रव्रज्याभिरतः साधो भविष्यति सुतस्तव ॥ ४१ ॥

इति श्रुत्वा गृहपतिः प्रहृष्टः प्रययौ गृहम् ।
प्रव्रज्यां वारयिष्यामि पुत्रस्येति विचिन्तयन्[२] ॥ ४२ ॥

---

१ H and W2 read ०दाम० । २ All the MSS. read विचिन्तयत् ।

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་དེ་ཡིས་ནི། ཚུང་མ་རོལ་བ་མ་ཞེས་ལ།
ཡན་ལག་ཐམས་ཅད་མཚན་ཉིད་ལྡན། བྱིས་པ་གསེར་འོད་ཅན་དེ་བཙས། 43

དེ་སྐྱེས་ཉིད་ན་རིན་ཆེན་ནི། ཀུན་གྱི་རང་བཞིན་གདུགས་འཁྲུངས་དེ།
ལེགས་བྱས་དཔལ་ནི་ཟླ་མེད་དང་། ངོ་མཚར་གཟུགས་དང་ལྡན་པ་བཞིན། 44

མཆོག་དུ་ཕ་ཡིས་གྲགས་འཕེལ་བས། རིག་པ་སྒྲུ་ཙོལ་འབྱོར་པ་རྣམས།
ཚོགས་པའི་ཁང་པ་ལྟ་བུ་སྟེ། གྲགས་སྦྱིན་ཞེས་ནི་བྱ་བར་གྱུར། 45

ལྷ་ཡི་ཚོགས་ནི་དྲན་གྱུར་ནས། དེ་ནི་རབ་དུ་བྱུང་དགོས་དེ།
གྲོང་དང་ཁང་པ་གྲོང་ཁྱེར་གྱི། སྐྱོ་ནམས་ཕ་ཡིས་བསྲུང་བར་བྱས། 46

དེ་ནས་བརྒྱ་བྱིན་མངོན་ཕྱོགས་དེ། སྟོན་གྱི་བགྲོ་བ་བརྟན་པར་བྱས།
ཞི་བས་དྲན་པ་རབ་བྱུང་ལ། མངོན་པར་ཕྱོགས་ཤིང་གུས་པར་གྱུར། 47

ནམ་ཞིག་རང་གི་སྐྱིད་ཚལ་དུ། དལ་གྱིས་ཤིང་རྟ་ཞོན་འགྲོ་དེས།
བཅོམ་ལྡན་གྱིལ་བ་ཇི་ཞིག་ལྟར། བྱོན་པ་དག་ནི་མཐོང་བར་གྱུར། 48

སྙིང་ལ་བདེ་བས་ཡང་དག་རིག། རབ་ཞི་བདུད་རྩིའི་ཆར་འབབས་པ།
དེ་མཐོང་ཉིད་ནི་ན་འཕྲུལ་ནི། ཤིང་རྟ་དག་ལས་དེ་ཡིས་བབས། 49

དེ་ལ་བསྐོར་བ་གསུམ་བྱས་དེ། དེ་ཡིས་ཞབས་པད་རྡུང་དག་ལ།
དང་བས་བསྟན་པ་དེ་ཡིས་ནི། སྤྱན་གྱིས་གཟིགས་པ་རེས་ཕྱག་བཙལ། 50

ततः कालेन तत्पत्नी ललिता नाम बालकम्।
सर्व्वाङ्गलक्षणोपेतमसूत कनकद्युतिम्॥ ४३॥

सर्व्वं रत्नमयं तस्य जातस्येव व्यजायत।
छत्रं मूर्त्तमिवाश्चर्य्यमुत्तंसं सुकृतश्रियः॥ ४४॥

स यशोदाभिधानोऽभूत् यशोवृद्ध्या पितुः परम्।
विद्याकलाविभूतीनां समागमगृहोपमः॥ ४५॥

देवतावचनं स्मृत्वा प्रव्रज्याशङ्कितः पिता।
तस्य चक्रे गृहपुरद्वारगोपुररक्षणम्॥ ४६॥

अथाभ्येत्य स शक्रेण स्मारितः पूर्व्वसंविदा।
बभूव शमसंसिक्तः प्रव्रज्याभिमुखादरः॥ ४७॥

स कदाचिन्निजोद्याने रथारूढः शनैर्व्रजन्।
ददर्श जिनमायान्तं भगवन्तं यदृच्छया॥ ४८॥

हृदये सुखसंस्पर्शं वर्षन्तं प्रशमामृतम्।
तं विलोक्यैव सहसा रथादवततार सः॥ ४९॥

तं त्रिः प्रदक्षिणीकृत्य तत्पादनलिनद्वयम्।
स ववन्दे प्रसादार्द्रदृशा तेनावलोकितः॥ ५०॥

དེ་ནས་རབ་དང་བཅོས་ལྡན་ལ། རབ་བདུད་དེ་ཡི་རྗེས་གནང་གིས།
དེ་ཉིད་ནམ་པར་སེམས་ཤིང་དེ། རང་གི་སྐྱིད་མོས་ཚལ་དུ་སོང་། 51

དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་འཛུམ་ལྡན་པས། དགེ་སློང་དེ་ཐུལ་ལ་གསུངས་པ།
བདག་གི་སྣང་དུ་གཞོན་ནུ་འདི། མཚན་མོ་རབ་ཏུ་འབྱུང་བར་འགྱུར། 52

ཞེས་གསུངས་བདེ་གཤེགས་རང་གནས་སུ། དགེ་སློང་ནམས་དང་ལྡན་ཅིག་གཤེགས།
བགྲོ་ཕྲིན་གྱིས་སྤྲུལ་བུད་མེད་ལུས། གཞོན་ནུ་ཡིས་ནི་མཐོང་གྱུར་དེ། 53

བརྟོགས་ཤིང་རྡུལ་ལ་མི་གཙང་བ། སྲིན་བུའི་ཚོགས་ཀྱིས་འཁྲུགས་ཤིང་གནས།
སྐྱིད་མོས་ཚལ་གྱི་རི་མཐོང་ནས། ཆགས་བྲལ་ལྡན་པ་དེས་བསམ་པ། 54

དར་བབ་གཟུགས་ནི་མཛེས་པ་དང་། སྡུག་པ་ནམ་པར་འགྱུར་བ་ཉིད།
བགས་པ་ཤ་ཚོགས་མི་ནམས་ཀྱིས། རང་བཞིན་དེ་ནི་འདི་ཉིད་དོ། 55

མིག་དག་གཡོ་ཞིང་ནུམ་ཐུང་ནི་རབ་གསུམ་རི་བོང་ཅན་གྱི་འོད་གྱི་མཛེད།
ལུས་ད་ལང་ཚོགསར་པ་དར་བབ་མཛེས་སྡུག་འགྲོ་བར་བགྲང་བ་འདི་དག་ནི།
རྟུལ་བའི་བརྙན་གྱིས་ངེས་བྲན་འཁྲུགས་ཤིང་དམན་པའི་སྲིན་བུ་ནམས་ཀྱིས་དཀྲིགས།
ངན་ཞིང་རབ་མང་བ་ཤང་བས་བསྐོས་ཤིང་མཐའ་དག་གྱི་མཆིན་འཁྲུལ་འཁོར་མེད་ཉིད་གྱུར། 56

ཡན་ལག་ཐམས་ཅད་འགྲོགས་པར་སྤྲོ་བ་འདི་ལ་ཆགས་ཤིང་རྨོངས་པས་མིག་ཕྲོགས་ཤིང་།
ནུ་མའི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་ཆགས་བློ་གྲོས་ཉམས་པས་མཆོག་ཏུ་བདེ་བ་ཐོབ་གྱུར་པ།
གང་ལས་ལྦ་སྐྱེས་འདི་ནི་ཆགས་བྲལ་བཟའ་བ་དག་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས་བཞིན་འཇོག་ཅིང་།
མི་གཙང་དྲི་ང་དག་གིས་ཡིད་ཕྱུང་བློ་གྲོས་སྨུས་ཕྱིན་རིང་དུ་འགྲོ་བར་འགྱུར། 57

भगवन्तं प्रणम्याथ प्रसन्नं तदनुज्ञया।
जगाम निजमुद्यानं स तमेव विचिन्तयन्॥ ५१॥

भिक्षुमश्वजितं प्राह भगवानथ सस्मितः।
एषोऽन्तिकेऽद्य मे रात्रौ कुमारः प्रव्रजिष्यति॥ ५२॥

इत्युक्त्वा स्वपदं याते सुगते सह भिक्षुभिः।
शक्रनिर्म्मितमद्राक्षीत् कुमारः स्त्रीकलेवरम्॥ ५३॥

पूयपर्य्युषितक्लेदसीदत्कृमिकुलाकुलम्।
स दृष्ट्वा शवमुद्याने सोद्वेगः समचिन्तयत्॥ ५४॥

विकारा एव तारुण्यरूपलावण्यकान्तयः।
चर्म्ममांससमूहानामियं सा प्रकृतिर्न्नृणाम्॥ ५५॥

लोलल्लोचनमुन्मिषत्कुचयुगं कोपं शशाङ्कत्विषा
मेतत्तन्नवयौवनोद्यल्लसल्लावण्यगण्यं वपुः।
यातं पूतिवसावसेकविकलं ताम्यत्कृमिव्याकुलं
क्लिन्नक्लोमयकृत्विकीर्णसकलप्लीहान्त्रनिर्यन्त्रताम्॥ ५६॥

अस्मिन् रागविमोहहारितदृशः सर्व्वाङ्गसङ्गोत्सवे
संलीनाः स्तनमण्डले हतधियः प्रापुः परां निर्वृतिम्।
यस्मादेष गतस्पृहः कवलने वैमुख्यवक्रानननः
क्लेदोत्सादविषादकुणितमतिर्दूरङ्गतो जम्बुकः॥ ५७॥

ཞེས་བསམསམས་ཆགས་བྲལ་བག་ཆགས་ནི། སྨྲས་པ་ཡང་དག་གྲིས་གྱུར་ཏེ།
དེ་ནི་སྐྱིད་ཚལ་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས། རང་གི་ཁང་པར་དལ་གྱིས་སོང་། 58

སྐབས་དེར་ཉིན་བྱེད་འཇིག་རྟེན་གྱི། སྤྱོད་ཚུལ་རོ་བྲལ་མཐོང་བས་བཞིན།
སྐྱོ་ཞིང་རབ་ཞིར་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། ཉིན་བར་དག་ནི་ཉམས་པར་གྱུར། 59

ངལ་དུབ་མ་ལུས་ཡོངས་གཏོང་བར། འོས་པ་རབ་ཞིར་འགྲོ་འདོད་ཅིང་།
ཐུན་མཚམས་མཁའ་ཡི་གོས་དམར་བསྟེན། ཉིན་མོ་རབ་ཏུ་བྱུང་བཞིན་གྱུར། 60

ཉི་མ་སྲིད་པའི་མིག་དག་ནི། འཇིག་རྟེན་ཕ་རོལ་གནས་སོང་ཚེ།
འཇིག་རྟེན་ཡོངས་བདང་ཉིན་མོ་ཡང་། དེ་ཡི་རྗེས་འབྲང་ཉིད་དུ་གྱུར། 61

དེ་ནས་འགྲོ་བསྟེན་གསར་བ་ཡི། རབ་རིབ་མུ་ངན་སྤྱོར་བ་དག།
སྔོན་མའི་དཀྱིལ་འཁོར་སྣང་བ་ཡིས། བརྩེ་བས་བཞིན་དུ་རབ་ཏུ་བཀློག། 62

སྐབས་དེར་སྟོན་པ་རང་ཉིད་ནི། གྲགས་སྦྱིན་དག་ལ་བརྩེ་བ་ཡིས།
གྲོང་ཁྱེར་སྐྱང་འགྲམས་ཕ་རོལ་དུ། དེ་འཐོབ་སླད་དུ་ཡང་དག་གཤེགས། 63

གྲགས་སྦྱིན་གྱིས་ཀྱང་ཉིན་པར་གྱིས། ཉོན་མོངས་མཚུངས་པ་ཡང་ཡང་དུ།
འཁོར་བ་སྙིང་པོ་མེད་པ་ཉིད། སེམས་ཤིང་ཉམ་པའི་ཁང་པར་ཞུགས། 64

གླིང་བུ་རྒྱུད་མང་ཛ་ཛེ་སོགས། རྩེ་དགའ་ལ་ཞིང་གཅིང་ལོག་པ།
མིག་རྫས་རྒྱུགས་པས་འཁྲུགས་པ་ཡི། བུ་མེད་ནམས་དེར་དེ་ཡིས་མཐོང་། 65

इति सञ्चिन्त्य सञ्जातगाढवैराग्यवासनः ।
जगामोद्यानविमुखः स शनैर्निजमन्दिरम् ॥ ५८ ॥

अत्रान्तरे दिनग्लानिखिन्नोऽभूत् प्रशमोन्मुखः ।
विरसं लोकवृत्तान्तं विलोक्येव दिवाकरः ॥ ५९ ॥

अशेषाशापरित्यागयोग्यं प्रशममीयुषः ।
सन्ध्यारक्ताम्बरजुषः प्रव्रज्येव रवेरभूत् ॥ ६० ॥

लोकोत्तरपदं याते भानौ भुवनचक्षुषि ।
वासरोऽपि परित्यज्य लोकं तदनुगोऽभवत् ॥ ६१ ॥

ततः प्रत्यग्रतिमिरोद्वेगयोगं जगज्जुषाम् ।
प्रदीपमण्डलालोकः कृपयेव न्यवारयत् ॥ ६२ ॥

अस्मिन्नवसरे शास्ता यशोदद्यया स्वयम् ।
पुरनद्याः परं पारं तत्प्राप्त्यै समुपाययौ ॥ ६३ ॥

यशोदोऽपि दिनापायतुल्यया कलयन्मुहुः ।
संसारासारतामेव शय्याभवनमाविशत् ॥ ६४ ॥

वेणुवीणामृदङ्गादिविनोदैर्मदनिर्भराः ।
तत्रापश्यत् स्वललनाः श्रमनिद्रानिमीलिताः ॥ ६५ ॥

ཁ་ནི་རྒྱུད་མང་ལ་བཀོད་ཅིང་། ལག་པའི་འཁྲི་ཤིང་ཛྷ་ཌོར་གཏང་།
བདེ་བ་སྐད་ཅིག་པ་ཉིད་ཀྱིས། སྡུག་བསྔལ་བསམ་གཏན་ལ་ཞུགས་བཞིན། 66

གོས་རལ་ཤི་བ་བཞིན་དུ་ནི། གཡོ་མེད་དེ་དག་མཐོང་གྱུར་ནས།
ལྷག་པར་ཆགས་བྲལ་ཡང་དག་སྐྱེས། ཡུན་རིང་དེ་ཡིས་ཡང་དག་བསམས། 67

ཀྱེ་མ་ཡུལ་ནི་འདི་དག་རྣམས། མཐུག་ཏུ་མཆོག་ཏུ་རོ་དང་བྲལ།
བུད་མེད་ཅེས་པ་འདི་ལྟ་ལ། སྨོངས་པ་རྣམས་ནི་མཆོག་ཏུ་གུས། 68

མཆོག་མིན་བདེ་བའི་སྤྲིན་གྱུར་ལ། གློག་གི་རྩེ་དགའ་འདི་དག་རྣམས།
གཉིད་ལོག་ཤི་བ་དག་ལ་ཡང་། རྣམ་འཕྲུལ་གང་ན་འཛུམ་གང་ན། 69

འགའ་ཞིག་འོག་ཏུ་ཁ་བསྒྱུས་ཉལ་ཞིང་དེ་ཡི་གྲིབ་ནི་གཞན་དུ་བཟློག་ཕྱེ་ལྟུང་།
གཞན་ཡང་གན་རྐྱལ་ཡན་ལག་ཀུན་བརྐྱངས་ཁ་ཡི་བུ་ག་རྣམ་པར་བྱེ་བར་གྱུར།
གཞན་དག་སྐྲ་ནི་གྲོལ་ཞིང་དྲ་བས་ཕྲག་པ་ལ་ཆགས་བྱ་རོག་བབས་པ་བཞིན།
བདག་གི་ཁྱིམ་ནི་མིག་ཟུམ་བུད་མེད་ཚོགས་རྣམས་རྣམ་འཇོན་དུར་ཁྲོད་ལྟ་བུར་སྣང་། 70

དེང་ཉིད་རབ་བྱུང་དོན་གཉེར་བདག། གྲོང་ཁྱེར་ནང་ལས་ཕྱིར་འཐོན་ཏེ།
སྨོངས་པ་བཟློག་སྐད་བཅོམ་ལྡན་འདས། ངེས་པར་བལྟ་རུ་འགྲོ་བར་བྱ། 71

ཞེས་བསམས་རིན་ཐང་ཆེ་བ་ཡི། རིན་ཆེན་མཆིལ་ལྷམ་ཟུང་ནས་དེ།
གྲོང་སྲུང་རྣམས་ཀྱིས་མ་ཤེས་པར། བཀྲུ་ཀྱིན་གྱི་ནི་མཐུ་ཡིས་སོང་། 72

वीणाविन्यस्तवदना मृदङ्गार्पितदोर्लताः।
क्षणिकत्वात् सुखस्येव दुःखध्यानमुपागताः॥ ६६॥

विलोक्य स्रस्तवसनास्ता मृता इव निश्चलाः।
सञ्जाताधिकवैराग्यः स चिरं समचिन्तयत्॥ ६७॥

अहो बतास्मिन् विषये पर्य्यन्तविरसे परम्।
एवम्विधे बधूनाम्नि मुग्धानां म्रुशमादरः॥ ६८॥

विद्युद्विलसितान्यासामसत्सुखघनोदये।
सुप्तानाञ्च मृतानाञ्च क्व स्मितं क्व च विभ्रमाः॥ ६९॥

शेते काचिदधोमुखी विवलिता पृष्ठे च्युतास्यापरा
यातान्यापि विकाशितास्यविवरा सर्व्वाङ्गमुत्तानताम्।
अंशासक्तविभक्तमुक्तकवरीकाकैर्हतेवापरा
चित्रं मे भवनं विलीननयनस्त्रैणं श्मशानायते॥ ७०॥

अहमद्यैव निष्क्रम्य प्रव्रज्यार्थी पुरान्तरात्।
भगवन्तं व्रजाम्येव द्रष्टुं मोहनिवृत्तये॥ ७१॥

विचिन्त्येति समादाय महार्हे रत्नपादुके।
शक्रप्रभावात् स यथावज्ञातः पुररक्षिभिः॥ ७२॥

གྲོང་ཁྱེར་སྐྲོ་ལས་མངོན་པར་ནི། ཕྱུང་སྟེ་ཆུ་ཀླུང་མཆོག་ཕྱིན་ནས།
འཁོར་བའི་སྦྱ་དར་འཕོས་པ་ཡིས། གདུང་བ་གདོང་བར་བརྩོན་པ་བཞིན། 73

བཅོམ་ལྡན་འབྱུང་པོ་དགོངས་པ་ཡིས། དེ་ནི་འོང་བ་གཟིགས་གྱུར་ནས།
དགྱེས་པས་དེ་ནི་བསྐལ་བ་ལ། བཞེད་དང་ལྡན་པ་བཞིན་དུ་གྱུར། 74

དེ་ཡིས་རྗེས་མཐུན་གསེར་གྱི་མདོག ཕྲུག་ནི་གཡས་པ་བཀྱིངས་མཛད་ནས།
སླུ་ཡི་གཟི་བརྗིད་སྣང་བ་ཡས། ཕྱོགས་ཀྱི་མུན་པ་ཡོངས་སློགས་ཤིང་། 75

ཚུར་ཤོག་ཚུར་ཤོག་གནོད་མེད་ལ། ནད་མེད་གནས་ནི་ཁྱོད་ཀྱིས་ཐོབ།
ཅེས་པ་འབྲུག་དབྱངས་ལྟར་སྤྱུག་སྐྱུས། རིང་པོ་ནས་ནི་དེ་ལ་གསུངས། 76

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་གསུང་ཐོས་ནས། བདུད་རྩི་ཡིས་ནི་གང་བ་བཞིན།
ཡོངས་གདུང་བདང་ནས་གླགས་སྦྲིན་ནི། འཕྲུལ་ལ་བསིལ་བ་ཉིད་དུ་གྱུར། 77

རིན་ཅེན་རིན་ཅེན་མཆིལ་ལྷམ་ནི། ཀླུང་གི་ངོགས་སུ་དེ་ཡིས་དོར།
བགོལ་ཕྱིན་དེ་ཡིས་ཕ་རོལ་གྱི། བགྲམ་དུ་ཐར་པ་ཉིད་ཐོབ་གྱུར། 78

བཅོམ་ལྡན་དྲུང་དུ་ངེས་ཕྱིན་ཏེ། གདུང་བ་ཅན་གྱི་ཙན་དན་ཤིང་།
དང་བས་བརྙན་ལ་ཐུར་ཕྱུད་ནི། ཞབས་ལ་གདུགས་པས་རབ་ཏུ་བཏུད། 79

དེ་ནས་དེ་ལ་སྟོན་པ་ཡིས། གང་གིས་འདི་ནི་ཆགས་བྲལ་ཉིད།
འཐོབ་བ་མཚུངས་མེད་མཆོག་གྱུར་པ། ཞིགས་པའི་ཆོས་ནི་བསྟན་པར་མཛད། 80

अभिनिष्क्रम्य नगरात् वारां प्राप्य सरिद्वराम् ।
संसारमरुसंक्रान्तं तापं त्यक्तुमिवोद्यतः ॥ ७३ ॥

तमायान्तं विलोक्यैव भगवान् भूतभावनः ।
प्रीत्या सन्तरणे तस्य ययौ सोत्कण्ठतामिव ॥ ७४ ॥

स हेमवर्णमुद्यम्य दक्षिणं दक्षिणं भुजम् ।
देहप्रभाप्रकाशेन तमः परिहरन् दिशाम् ॥ ७५ ॥

एह्येहि प्राप्नुहि पदं निरपायमनामयम् ।
अभ्यधादिति तं दूरान्मेघघोषघनस्वनः ॥ ७६ ॥

श्रुत्वा भगवतः शब्दममृतेनेव पूरितः ।
यशोदस्त्यक्तसन्तापः सद्यः शीतलतां ययौ ॥ ७७ ॥

त्यक्त्वा स सरितस्तीरे महार्हे रत्नपादुके ।
दत्त्वावगाहमुत्तीर्य्य तां परं पारमाप्तवान् ॥ ७८ ॥

भगवन्तं स सम्प्राप्य तापचन्दनपादपम् ।
प्रणनाम प्रसादार्हं चरणालीनशेखरः ॥ ७९ ॥

ततस्तस्यासमोत्कर्षशालिनीं धर्म्मदेशनाम् ।
चकार शास्ता लेभेऽसौ यया विगतरागताम् ॥ ८० ॥

བདུལ་ཞུགས་བཟང་དེ་བཅོམ་ལྡན་དྲུང་། ལེགས་པར་གསུངས་པའི་ཆོས་འདུལ་ལ།
ཚངས་པར་སྤྱོད་སྤྲོད་རབ་ཏུ་བཀོད། འདོད་པ་རྫོགས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 81

དེ་ནས་བུ་ནི་སོང་བ་དག། ལེགས་པར་རབ་སད་སང་པས་ཐོས།
དེ་བྲལ་མེ་ཡིས་གདུངས་པ་ཡིས། དེ་ནི་འཚོལ་དུ་ཕྱི་རོལ་སོང་། 82

མཛའ་དང་སྨྲོངས་པ་ཆེན་པོ་ཡིས། གཟིར་ཅིང་མྱ་ངན་ལྡན་པ་དེས།
རྒྱ་བོའི་ངོགས་ཀྱི་འགྲམ་དུ་ཕྱིན། རིན་ཆེན་མཆིལ་ལྷམ་དག་ཀྱང་མཐོང་། 83

དེ་ཡིས་རྒྱ་བོ་ཡང་དག་བགོས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་མཐོང་གྱུར་དེ།
དེ་ཡི་མཐུ་ཡིས་རབ་བསྐྱོབས་པས། མདུན་ན་གནས་པའི་བུ་མ་མཐོང་། 84

དེ་ནས་སླར་ཡང་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། རབ་ཏུ་བདུད་བྱས་དེ་ཡིས་ཡང་།
སྨྲོངས་པ་ཆོས་གདམས་རིགས་པ་ཡིས། འོད་ཀྱི་སྨུན་པ་བཞིན་དུ་ཕྲོགས། 85

དེ་ནས་སྨྲོངས་བྲལ་དེ་ཡིས་བུ། དྲི་མེད་འོད་ལྡན་མཐོང་གྱུར་ནས།
རྗེས་སུ་འདོད་ཅིང་གུས་པ་ཡིས། སྟོན་པ་ལྷག་པར་གནས་པ་བྱས། 86

དེ་ཡི་ཁྲིམས་དུ་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། མཆོད་པ་རབ་དུ་བླངས་མཛད་ནས།
དེ་ནི་ཆུང་མར་བཅས་བ་ལ། དག་པའི་བསླབ་གནས་རབ་འབར་མཛད། 87

དེ་ནས་གྲགས་སྒྲིན་གཉགས་པོ་ནི། དཔལ་དང་ལྡན་པ་ཉམས་ཀྱི་མཆོག
དྲི་མེད་གང་པོ་ལག་བཟང་དང་། བ་གླང་བདག་ཅེས་བྱ་བ་བཞིས། 88

स्वाख्याते धर्मविनये ब्रह्मचर्य्याय सुव्रतः ।
स नियुक्तो भगवता प्रययौ पूर्णकामताम् ॥ ८१ ॥

सुप्रबुद्धः प्रबुद्धोऽथ श्रुत्वा निष्क्रान्तमात्मजम् ।
तद्वियोगाग्निसन्तप्तस्तमन्वेष्टुं विनिर्ययौ ॥ ८२ ॥

स शोकसहितस्नेहमोहेन महतार्दितः ।
व्रजन् ददर्श धारायास्तटान्ते रत्नपादुके ॥ ८३ ॥

स समुत्तीर्य्य सरितं भगवन्तं व्यलोकयत् ।
तत्प्रभावप्रतिच्छन्नं न तु पुत्रं पुरःस्थितम् ॥ ८४ ॥

ततः कृतप्रणामस्य तस्यापि भगवान् पुरः ।
धर्म्यया कथया मोहं त्विषा तमइवाहरत् ॥ ८५ ॥

वीतमोहस्ततः पुत्रं स दृष्ट्वा विमलद्युतिम् ।
शास्तुश्चकारानुमतः प्रणयादधिवासनाम् ॥ ८६ ॥

भगवानथ तद्गेहे कृत्वा पूजाप्रतिग्रहम् ।
तं पत्नीसहितं चक्रे शुद्धशिक्षापदोज्ज्वलम् ॥ ८७ ॥

ततो यशोदसचिवाश्चत्वारः श्रीमतां वराः ।
विमलाख्यः सुबाहुश्च पूर्णकोऽथ गवां पतिः ॥ ८८ ॥

བཅོམ་ལྡན་མདུན་ན་གྲགས་སྦྱིན་ནི། ཚངས་སྤྱོད་བདུལ་ཞུགས་ལ་ཆགས་པའི།
གྲགས་པ་ཕྱོགས་སུ་རབ་གསལ་བ། ཐོས་ནས་གནས་དེར་འོངས་པར་གྱུར། 89

དགེ་བ་སྨིན་པས་ཐོབ་གྱུར་པ། དེ་དག་ཉོམས་ལ་བཅོམ་ལྡན་འདས།
དགའ་བའི་བཀའ་ཡི་སླར་ཡང་ནི། འདུལ་བའི་ཆོས་ལ་བསྟན་པ་བསྒྲུབས། 90

བཞི་པོ་དེ་དག་གྲགས་སྦྱིན་དང་། དགེ་སློང་གཞན་པ་ལྔ་དག་སྟེ།
བཅུ་ཡིས་བཅོམ་ལྡན་དྲུང་དུ་ན། དགྲ་བཅོམ་གནས་དག་ཐོབ་པར་གྱུར། 91

གྲགས་སྦྱིན་སྤྱོད་ཚུལ་ཐོས་གྱུར་ནས། དེ་ཡི་གྲོགས་པོ་སྐལ་ལྡན་གཞན།
ལྔ་བཅུས་སྟོན་པའི་དྲུང་དུ་ནི། ཕྱིན་ནས་དེ་མཚུངས་ཉིད་དག་ཐོབ། 92

ཚུལ་དེས་གུས་པ་སྐྱེས་གྱུར་པ། གཞན་ནི་བརྒྱ་ཕྲག་ལྔ་ཡིས་ཀྱང་།
དེ་དང་མཚུངས་པར་འདུལ་བའི་ཆོས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་དྲུང་དུ་ཐོབ། 98

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་དགེ་མཚན་ལས། དགེ་སློང་ཀུན་གྱིས་བཅོམ་ལྡན་ལ།
གྲགས་སྦྱིན་གྱིས་ནི་བསོད་ནམས་དྲིས། དེ་ལ་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་གསུངས། 94

སྔོན་ཚེ་ཡང་དག་རྫོགས་པ་ཡི། སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་གཙུག་ཏོར་ཅན།
གྲོང་ཁྱེར་ལས་ནི་བསོད་སྙོམས་ཐོབ། པ་རོལ་ངོགས་འགྲམ་སྐད་ཅིག་བཞུགས། 95

ས་ཡི་བདག་པོ་ཚངས་པས་བྱིན། ལམ་དེ་ནས་ནི་འགྲོ་བ་ཡི།
རྗེས་འབྲང་འོད་བཟང་ཞེས་པ་ཡིས། དེ་ནི་བཞུགས་པ་མཐོང་བར་གྱུར། 96

यशःप्रकाशितदिशं यशोदं भगवत्पुरः।
ब्रह्मचर्य्यव्रतासक्तं श्रुत्वा तं देशमाययुः॥ ८९ ॥

तेषां कुशलपाकेन प्राप्तानां भगवान् पुनः।
विदधे धर्म्मविनये शासनं शुद्धशासनः॥ ९० ॥

यशोदस्ते च चत्वारो भिक्षवः पञ्च चापरे।
अर्हत्पदन्दश प्रापुस्तदा भगवतोऽन्तिके॥ ९१ ॥

श्रुत्वा यशोदवृत्तान्तं धन्यास्तत्सचिवाः परे।
पञ्चाशदन्तिकं शास्तुर्गत्वा तत्तुल्यतां ययुः॥ ९२ ॥

शतपञ्चकमन्यच्च तद्वृत्तान्तोदितादरम्।
तत्तुल्यं धर्म्मविनयं लेभे भगवतोऽन्तिके॥ ९३ ॥

ततः कदाचिद्भगवान् कौतुकात् सर्व्वभिक्षुभिः।
पृष्टः पुण्यं यशोदस्य सर्व्वज्ञस्तानभाषत॥ ९४ ॥

पुरा प्रत्येकसम्बुद्धः पुरात् सम्प्राप्तपिण्डकः।
वारातटान्ते भगवान् शिखी क्षणमुपाविशत्॥ ९५ ॥

वर्त्मना व्रजतस्तेन ब्रह्मदत्तस्य भूपतेः।
अनुगः सुप्रभो नाम विश्रान्तं तं व्यलोकयत्॥ ९६ ॥

ཉི་མའི་འོད་ཟེར་དྲག་པོ་ཡི། གདུང་བས་རྩོལ་དང་བཅས་གྱུར་པ།
དེ་མཐོང་ནས་ནི་དེ་ལ་དེས། གདུགས་དག་བཟུང་ནས་གྲིབ་བསིལ་བྱས། 97

དེ་ཡི་དྲུང་དུ་ཚངས་སྤྱོད་ལ། དེ་ཡིས་བསྟན་པ་བཟུང་ནས་ནི།
སེམས་ནི་དྲི་མ་མེད་ཉིད་ལས། དག་པ་མཆོག་ལྡན་ཐོབ་པར་གྱུར། 98

དེ་ནས་རབ་དང་བློ་ལྡན་པ། རྫོགས་སངས་རྒྱས་ཀྱིས་དེ་ལ་གསུངས།
འབྱུང་འགྱུར་ཤཱ་ཀྱ་ཐུབ་པའི། དྲུང་དུ་ཁྱོད་ནི་བྱང་ཆུབ་འགྱུར། 99

དེ་ཡིས་ངེས་པར་དེ་གཏུངས་ཏེ། དུས་ཀྱིས་ལུས་ནི་བཏང་བྱས་ནས།
བློ་བཟང་ཞེས་པ་ལྷ་ཡི་བུར། མཐོ་རིས་སུ་ནི་ཡུན་རིང་འགྱུར། 100

བསོད་ནམས་ལྡན་པ་དེ་ཉིད་དང་། གླགས་སྦྱིན་དགེ་ལེགས་གཏེར་འདི་སྟེ།
གླགས་པ་ཡིས་ནི་གྲོགས་རྣམས་ཀྱང་། དགེ་བའི་ཟམ་སྟེགས་ཉིད་དག་ཐོབ། 101

ས་བདག་ཀྲི་ཀི་ཞེས་བྱ་བ། རྒྱ་ཆེན་བློ་ཡིས་སྟོན་པ་ནི།
འོད་སྲུངས་སྐུ་དག་མྱང་འདས་ལ། རིན་ཆེན་མཆོད་རྟེན་སྟོན་ཚེ་བྱས། 102

ས་ཡི་བདག་པོ་དེ་ཡི་སྲས། གསུམ་པ་གླགས་ལྡན་དགའ་བ་ཡིས།
ནོར་བུའི་མཆོད་རྟེན་དེ་ལ་ནི། གུས་པས་རིན་ཆེན་གདུགས་དག་བཀོད། 103

དེ་དང་བསོད་ནམས་སྟ་མ་ཡིས། སྐྱེ་བ་འདི་ལ་གླགས་སྦྱིན་ནི།
གླགས་ཆེན་རིན་ཆེན་འབར་བ་ཡིས། གདུགས་ཀྱིས་བསྒྲིན་པ་དག་ཏུ་སྐྱེས། 104

सस्वेदं तीव्रतापेन प्रचण्डकिरणे रवौ।
तं दृष्ट्वा छत्रमादाय छायां तस्य चकार सः॥ ९७॥

तस्यान्तिके ब्रह्मचर्य्यं समादाय सशासनम्।
बभूव चित्तवैमल्यात् कुशलप्रणिधानवान्॥ ९८॥

ततः प्रत्येकसम्बुद्धस्तमुवाच प्रसन्नधीः।
भविष्यतः शाक्यमुनेरन्तिके बोधिमाप्स्यसि॥ ९९॥

इत्युक्तस्तेन नियतं कालेन त्यक्तविग्रहः।
सोऽभवत् सुमतिर्नाम देवपुत्रश्चिरं दिवि॥ १००॥

स एष पुण्यवानद्य यशोदः श्रेयसां निधिः।
सुहृदामपि सम्प्राप्तः कीर्त्या कुशलसेतुताम्॥ १०१॥

कृकिर्नाम क्षितिपतिः काश्यपस्याकरोत् पुरा।
शास्तुः शरीरे निर्व्वाणे रत्नस्तूपमुदारधीः॥ १०२॥

यशस्वी नाम तनयस्तृतीयस्तस्य भूपतेः।
भक्त्या तस्मिन्मणिस्तूपे रत्नछत्रं न्यवेशयत्॥ १०३॥

तेनापि पूर्व्वपुण्येन जन्मन्यस्मिन्महायशाः।
जातो यशोदस्छत्रेण रत्नदीप्तेन भूषितः॥ १०४॥

དེ་ལྟར་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་ལེགས་བྱས་གྱུར་པས་ཙོ་བ་བཅིངས།
ཟླ་བ་ལྟར་དཀར་གྲགས་པའི་འོད་ཟེར་གྱིས་པའི་མི་ཏོག་ཅན།
དགེ་བ་དེ་ཡིས་ཆོས་ཀྱི་ལྗོན་པ་རབ་གྱིས་འབྲས་སྨིན་འདི།
དེ་སྐད་ཐོས་ནས་དགེ་སློང་ཚོགས་དེས་ཡ་མཚན་ཐོབ་པར་གྱུར། 105

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་གྲགས་སྦྱིན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་ཙ་གཉིས་པའོ།།

इत्यन्यजन्मसुकृतोदयबद्धमूलः
सोन्मेष एष शशिशुभ्रयशोऽंशुपुष्पः ।
धर्म्मद्रुमः पृथुतरः फलितोऽस्य साधोः
श्रुत्वेति विस्मयमवाप स भिक्षुसङ्घः ॥ १०५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां यशोदावदानं नाम द्विषष्टितमः पल्लवः ॥

Chapter LXIII

འོད་སྲུང་ཆེན་པོའི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

བགྱི་བྱིན་རྐྱང་དང་ཆུ་སོགས་ལྷ་རྣམས་དང་།
ཐུབ་མཆོག་རྣམས་ཀྱང་གང་སྐྱད་རྣམ་འགྱུར་དུ།
འགྱུར་བའི་དྲན་བདེ་ཅི་ལྟར་གཅོད་པའི་གནས།
ཡ་མཚན་ཅན་དེ་གང་སུ་རུང་བའི་མིན། 1

མ་ག་དྷ་གྲོང་ཐང་ཆེན་དུ། སྣ་ལ་ཆེན་པོའི་རིགས་མཐུངས་པ།
ནྱ་གྲོ་དྷ་ཡི་རྟོག་ཅེས་པ། གཉིས་སྐྱེས་གྲགས་པའི་དཔལ་ལྡན་བྱུང་། 2

དེ་ཡི་ཆུང་མ་གཟུགས་བཟང་མ། ཞེས་བ་ཁང་པའི་སྐྱིད་ཚལ་ན།
རོལ་པས་ལྡོན་ཤིང་པི་ཕྱ་ལའི། འོག་ཏུ་བུ་ནི་ཉི་འོད་བསྐྱར། 3

གསེར་གྱི་འོད་ཟེར་རབ་འབར་བའི། བུ་དེ་སྐྱེས་པ་ཙམ་ཉིད་ལ།
གྲགས་པ་ལྷར་དཀར་ལྷ་ཡི་གོས། ཤིང་དེ་ལས་ནི་རབ་ཏུ་བྱུང་། 4

པི་སྤྱལ་སྐྱེས་ཞེས་བྱ་བ། བྱིས་པ་པདྨའི་མིག་ཅན་དེ།
རིག་དང་སྒྲུ་ཙོལ་བློ་སྤྲངས་ཤིང་། དཔལ་དང་ལྡན་ཅིག་རྣམ་པར་ཀྱིས། 5

त्रिषष्ठितमः पल्लवः।

महाकाश्यपावदानम्।

शक्रवायुवरुणादयः सुरा
विक्रियां मुनिवराश्च यत्कृते।
यान्ति तत् स्मरसुखं तृणायते
यस्य कस्य न स विस्मयास्पदम्॥ १॥

द्विजन्मा मागधग्रामे विश्रुतश्रीर्महास्थले।
न्यग्रोधकल्पनामाभून्महाशालकुलोद्भवः॥ २॥

तस्य भार्य्या सुरूपाख्या गृहोद्यानविहारिणी।
असूत सुतमर्काभं पिप्पलस्य तरोरधः॥ ३॥

जातमात्रे सुते तस्मिन् दीप्तजाम्बूनदद्युतौ।
दिव्यांशुकं यशःशुभ्रं तस्मात् प्रादुरभूत्तरोः॥ ४॥

स पिप्पलायनो नाम बालः कमललोचनः।
विद्याकलाकलितधीर्व्यवर्द्धत सह श्रिया॥ ५॥

དེ་ནི་ཕ་ཡིས་གསོལ་བཏབ་ཀྱང་། རྟག་ཏུ་ཁྱིམ་ཐབ་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས།
ཡུལ་ལ་སྣང་ལྡན་དབེན་པ་ནི། དྲི་མེད་བསམ་པ་ལྡན་བར་གྱུར། 6

ཕ་ནི་རིགས་བརྒྱུད་ཆད་པ་ཡིས། འཇིགས་ནས་ཡང་ཡང་གསོལ་བཏབ་སྟེ།
དེ་ལ་སྨྲས་པ་ཁྱིམ་ཐབ་ཀྱི། འཆིང་བ་ལ་ནི་བདག་མི་སྲིད། 7

ཡབ་གཅིག་འདོད་པ་བདག་མི་འདོད། བདག་གི་བློ་གྲོས་ཚངས་སྤྱོད་ལའོ།
རང་འདོད་ཞི་བ་དོར་ནས་ནི། སྲིད་པའི་འཆིང་བ་སུ་ཞིག་འདོད། 8

དང་པོར་སྨིན་པ་སྨིག་ཏུ་བས་མཆི་མ་རྟག་ཏུ་འབབ་ལ་རབ་ཏུ་འཇུག།
མཚོངས་པར་ལག་པ་གདང་བས་གདུང་བའི་ལས་ལ་བརྟེན་པར་མདུད་པ་མཛད།
འཕྲིང་བའི་ཐག་པས་འཁོར་བའི་བཀའ་ཡི་དམ་ཚིག་དག་ལ་གཡོ་བ་འཆིང་།
ཁྱིམ་ཐབ་ཡིད་ནི་སྨོངས་པ་གནས་པས་ཉེར་བཅོམ་ཉམས་ཀྱི་དགའ་བའི་རྒྱུ། 9

ན་ཆུང་གཞོན་ནུའི་འཁྲི་ཤིང་གར་གྱི་རླུང་གིས་བསྐྱོད་པའི་རྩེ་དགའི་རྗེས་འབྲང་བའི།
གྱིད་མང་གླིང་བུའི་སྒྲ་ནི་ཁྱིམ་ཐབ་དུས་སུ་སྒྲོ་ལྡན་གང་གི་མ་མཉན་པ།
དེ་དག་ལ་བརྟེན་ཀྱི་ཀུན་བུ་ཞིས་ཆུང་མས་ཚོ་ངེ་སྒྲ་ཞིང་དམན་གྱུར་པ།
མཆི་མ་ལྷི་བར་ཐིགས་ཐིགས་འབབ་པས་མངོན་པར་སྤྲུར་བའི་སྒྲ་གྲགས་ཐོས་མི་འགྱུར། 10

ཞེས་པ་འབད་པ་དྲག་པོ་ཡིས། ཕ་དང་མ་ལ་ངེས་སྨྲས་ནས།
མཛེས་པས་དྲན་པ་དགེ་མཚན་གྱིས། རྒྱུ་གུ་ཡང་དག་སྐྱེས་པ་བཞིན། 11

स पित्रा प्रार्थ्यमानोऽपि विवाहविमुखः सदा ।
बभूव विषयद्वेषी विवेकविशदाशयः ॥ ६ ॥

वंशच्छेदभयात् पित्रा स पुनःपुनरर्थितः ।
तमूचे रोचते मह्यं न पाणिग्रहबन्धनम् ॥ ७ ॥

न तात कामकामोऽहं ब्रह्मचर्य्ये मतिर्मम ।
शमस्वाच्छन्द्यमुत्सृज्य कस्येष्टं भवबन्धनम् ॥ ८ ॥

बाष्पस्याद्या सततपतने होमधूमैः प्रवृत्तिः
सत्यग्रन्थिव्यंसनसरणौ तुल्यहस्तार्पणेन ।
संसारान्नासमयचलने बन्धनं माल्यदाम्ना
मोहारोहोपहतमनसां हर्षहेतुर्विवाहः ॥ ९ ॥

यैर्नृत्यानिललोलबाललतनावल्लीविलासानुगा
वीणावंशरवा विवाहसमये प्रोत्साहितैर्न श्रुताः ।
हा पुत्रेति बधूप्रलापकलनक्लीवा न तेषां श्रिताः
श्रूयन्ते गुरुबाष्पगद्गदगलन्नादाभियोगा गिरः ॥ १० ॥

इत्युक्त्वा तीव्रनिर्बन्धं पितरं जननीञ्च सः ।
हेमकन्यां समादाय कुशलैः शिल्पिभिः कृताम् ॥ ११ ॥

བཟོ་བོ་མཁས་པས་བྱས་པ་ཡི། གསེར་གྱི་བུ་མོ་བཟུང་ནས་ནི།
རིགས་ཚང་བསམས་པས་གཟིར་དེ་ལ། བདེན་པས་སྨྲར་ཡང་རབ་སྨྲས་པ། 12

ཁ་དོག་མཛེས་སྡུག་འདི་མཚུངས་པའི། བུ་མོ་གལ་ཏེ་རྙེད་གྱུར་ན།
ཡབ་གཅིག་ཁྱོད་ཀྱི་ཚིག་གིས་ནི། བདག་གི་བུད་མེད་བཟུང་བར་བགྱི། 13

ཞེས་པ་བྲུ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། དེ་མཚུངས་བུ་མོ་མགྲོ་རིས་སུ།
རྙེད་དཀར་ཤེས་ནས་བྲམ་ཟེ་ནི། རི་ཐག་ཆད་ཅིང་བཞིན་དུ་འགྱུར། 14

ཙ་ཙྩ་ཀར་ཞེས་པའི་གྲོགས། བྲམ་ཟེས་གདམས་དེ་ཐོས་བ་ཡིས།
ཀུན་དགའ་དང་བྲལ་གཡོ་མེད་པ། མྱ་ངན་གྱིས་ཉེན་དེ་ལ་སྨྲས། 15

རབ་འབད་ཙམ་གྱིས་བཟོད་དོན་པ། ཁྱོད་ནི་མྱ་ངན་བྱད་མི་འོས།
བུ་མོ་གསེར་འོད་ལྡན་པ་ནི། བལྟ་རུང་ཉིད་འགྲོ་བར་བྱ། 16

ཞེས་དེ་མཛའ་བའི་གྲོགས་པ་ནི། དང་པོར་སྐྱེས་པས་བསྟན་བྱས་ནས།
གསེར་གྱི་གཟུགས་བ་རྟན་བཟུང་ནས་ནི། བློ་ལྡན་ཕྱོགས་རྣམས་དག་ཏུ་ཡོང༌། 17

འཕྲིང་བ་གསོལ་དང་བཅས་པས་བསྐུར་ན། ལྷ་ཡི་མཚན་མའི་ཟློལ་གྱིས་ནི།
བཟུང་ནས་ཕྱོགས་སུ་འཁྱམས་བྱེད་ཅིང༌། བུ་མོས་མཆོད་པར་བྱ་ཞེས་སྨྲས། 18

གྲོང་ཁྱེར་གྲོང་དང་ལམ་རྣམས་སུ། དེ་མཆོད་དུ་འོང་བུ་མོ་རྣམས།
རྟག་ཏུ་རྣམ་པར་བལྟ་བ་དེས། དེ་དང་མཚུངས་པ་རྙེད་མ་གྱུར། 19

सञ्जातां कान्तिसिक्तस्य कौतुकस्येव कन्दलीम् ।
कुलविच्छेदचिन्तार्त्तं धीरः पुनरुवाच तम् ॥ १२ ॥

तुल्यलावण्यवर्णास्या लभ्यते यदि कन्यका ।
करोमि त्वद्गिरा तात तदहं दारसंग्रहम् ॥ १३ ॥

इति पुत्रवचः श्रुत्वा तत्तुल्यां दिवि दुर्लभाम् ।
ब्राह्मणकन्यकां मत्वा निराशोऽभूदधोमुखः ॥ १४ ॥

विगतानन्दनिस्यन्दं सुहृच्चतुरकाभिधः ।
तं विप्रः श्रुतावृत्तान्तः शोकक्लान्तमभाषत ॥ १५ ॥

प्रयत्नमात्रसाध्येऽर्थे न शोकं कर्त्तुमर्हसि ।
एष व्रजाम्यहं द्रष्टुं कन्यकां कनकप्रभाम् ॥ १६ ॥

इति स्निग्धस्य सुहृदः स कृत्वा धैर्य्यमग्रजः ।
आदाय हेमप्रतिमां ययौ धीमान् दिगन्तरम् ॥ १७ ॥

देवतालाञ्छनच्छद्मं समाल्यांशुकभूषणम् ।
गृहीत्वा दिक्षु बभ्राम कन्यापूज्यमुदाहरन् ॥ १८ ॥

तत्पूजोपगताः कन्या नगरग्रामवर्त्मसु ।
विलोकयन् स सततं न तत्तुल्यामवाप्तवान् ॥ १९ ॥

དེ་ནས་བྲམ་ཟེ་སེར་སྐྱ་ཡིས། བུ་མོ་གསེར་གྱི་བུ་མོ་བས།
འོད་ལྷག་བཟང་མོ་ཞེས་པ་ཡི། ལངས་པ་ཅན་དུ་ནམ་ཞིག་མཐོང་། 20

མཛེས་མ་ཁྱིམ་ཐབ་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས། ཆགས་བྲལ་དབེན་པ་དང་ལྡན་ཞིང་།
གསེར་རིན་མ་ད་སར་སྐྱ་ལ། རྗེས་འགྲོ་བཤད་པ་དེ་ཡིས་བསྐུངས། 21

བུ་མོའི་ཕ་ཡིས་དེར་སྨྲས་པ། འོད་སྲུངས་རིགས་སྐྱེས་འཇིག་རྟེན་ན།
ནྱ་གྲོ་དྷ་ཡི་རྟོག་པ་ཡིན། རིགས་མཆོག་རིགས་ནི་ཉམ་པར་གྲགས། 22

འོན་ཀྱང་མཛེས་མ་འབད་པ་ཡིས། ནོར་ནི་བརྟགས་ནས་སྦྱིན་པར་བྱ།
རབྱུལ་བའི་ཤུགས་རིངས་ལྡན་མ་དེས། ཕ་ཡི་ཡིད་ནི་གདུང་བར་བྱེད། 23

ཆུང་མ་འཐབ་མོ་ལ་ཆགས་དང་། བུ་མོ་ནོར་མེད་ལ་སྦྱིན་དང་།
བུ་ནི་གདུང་བས་ཉེར་བཙོམ་ཉམས། སེམས་ལ་ཁབ་བསྒྲིགས་ལྟ་བུ་ཡིན། 24

ཆུ་གཏེར་གྱི་ནི་སྐྱེས་བུ་མཆོག་ལ་དཔལ་མོ་བྱིན་བྱས་ཏེ།
ཅི་སྟེ་དེ་ནི་སྟོབས་ལྡན་ལ་སློང་མིའུ་ཐུང་ཞེས་ནས།
ད་ལྟའང་མྱུ་ངན་ལ་ཆགས་ཏེ་གདོང་མེ་ཡི་རང་བཞིན་གྱིས།
གདུང་བ་དྲག་པོ་ཤུགས་རིངས་དང་བཅས་ངེས་པར་གདོང་མི་བྱེད། 25

དེ་སྐད་ནོར་ནི་བཙལ་བྱས་ཏེ། དེ་འབྱོར་མངོན་མཐོ་ཞེས་གྱུར་ནས།
དམ་པའི་རིགས་ལ་བུ་མོ་སྦྱིན། དམ་པའི་ཡོན་ཏན་ནོར་གྱི་དབང་། 26

ततः कदाचिद् वैशाल्यां कपिलस्याग्रजन्मनः ।
कन्यामपश्यद्भद्राख्यां हेमकन्याधिकप्रभाम् ॥ २० ॥

विवाहविमुखीं कान्तां तां वैराग्यविवेकिनीम् ।
स हेमपुल्कां कपिलं ययाचे कथितान्वयः ॥ २१ ॥

तं कन्याजनकः प्राह सत्कुलं कुलविश्रुतम् ।
लोके न्यग्रोधकल्पस्य गोत्रे जातस्य काश्यपे ॥ २२ ॥

किन्तु कन्या प्रयत्नेन धनमन्विष्य दीयते ।
दरिद्रोच्छ्वासिनी सा हि पितुर्दहति मानसम् ॥ २३ ॥

पत्नी कलहसंसक्ता कन्यका निर्धनार्पिता ।
व्यसनोपहतः सूनुस्तप्ताश्चेतसि सूचयः ॥ २४ ॥

दत्त्वा श्रियं जलनिधिः पुरुषोत्तमाय
ज्ञात्वाथ वामनतरं बलियाच्ञया तम् ।
अद्यापि सक्तवडवानलरूपशोक-
सोच्छ्वास एव न विमुञ्चति तीव्रतापम् ॥ २५ ॥

तस्माद्वित्तं समन्विष्य ज्ञात्वा तद्विभवोन्नतिम् ।
दास्यामः सत्कुले कन्यां धनाधीना हि सद्गुणाः ॥ २६ ॥

ཞེས་པ་བུ་མོའི་ཕ་དང་དེའི། བུ་ནོམས་ཀྱིས་ཀྱང་བརྗོད་ཐོས་ནས།
དེ་བཞིན་ཞེས་སྨྲས་གཉིས་སྐྱེས་ནི། གཞོན་ནུའི་ཕ་ཡི་གན་དུ་སོང་། 27

གསེར་གྱི་མཛེས་མ་ལས་ལྷག་པའི། བུ་མོ་ཐོབ་ཅེས་དེ་ཡི་ཚིག
ཉ་གྲོ་དྷ་ཡི་རྟོག་པ་ཡིས། ཐོས་ནས་ཀུན་དགའ་གྱིས་པར་གྱུར། 28

བུ་མོ་ཚངས་སྤྱོད་དོན་གཉེར་མ། ཐོས་ནས་པི་སྤྲ་ལ་སྐྱེས་ནི།
སྐྱོང་མོ་བ་ཡི་ཆས་ཀྱིས་དེའི། ཁྱིམ་དུ་རང་ཉིད་དལ་གྱིས་སོང་། 29

མགྲོན་དང་བཀུར་སྟི་ཐོབ་གྱུར་པ། མཁས་པ་དེས་དེར་དེ་ལ་དྲིས།
ཚངས་སྤྱོད་དོན་དུ་གཉེར་ཤེས་ནས། ར་བ་རྫོགས་པས་རབ་སྨྲས་པ། 30

དགེ་བ་ཚངས་སྤྱོད་དོན་གཉེར་བའི། པི་སྤྲ་ལ་སྐྱེས་བྲམ་ཟེ་བདག
གང་གི་ཆེད་དུ་བྲམ་ཟེ་དེས། ཁྱོད་ནི་འབད་པས་བསླངས་པའོ། 31

ཁྱིམ་ཐབ་ལས་ནི་ཕྱིར་ཕྱོགས་བདག ཕ་ཡིས་ཤེད་དུ་དོན་དུ་གཉེར།
བཟང་མོ་ཁྱོད་ཀྱང་འདི་ལྟ་བུར། མཚུངས་པར་དགའ་བས་ཡང་དག་འགྲོགས། 32

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། རབ་དགའ་དེ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས།
ཞི་ཞིང་དུལ་བས་ཁྱིམ་ཐབས་འདི། ཕྱུ་ཙག་ལ་ནི་འགལ་བ་མེད། 33

དེ་ནས་ཡང་དག་འོས་པ་ཐོབ། རབ་དགའ་སྒྲ་བ་གྱིས་པ་དེ།
རང་གི་ཁྱིམ་དུ་སོང་ནས་ནི། ཕ་ཡི་ཚིག་དག་ལ་ཡིས་བླང་། 34

इति कन्यापितुः श्रुत्वा तत्पुत्रीणाञ्च भाषितम्।
तथेत्युक्त्वा द्विजः प्रायात् कुमारजनकान्तिकम्॥ २७॥

सुवर्णवर्णलावण्या प्राप्ता कन्येति तद्वचः।
न्यग्रोधकल्पः श्रुत्वैव बभूवानन्दनिर्भरः॥ २८॥

ब्रह्मचर्य्यैषिणीं श्रुत्वा कन्यकां पिप्पलायनः।
स्वयमेवार्थिवेशेन प्रययौ तद्गृहं शनैः॥ २९॥

सम्प्राप्तातिथिसत्कारः स दृष्ट्वा तत्र तां कृती।
ब्रह्मचर्य्यार्थिनीं ज्ञात्वा प्राह पूर्णमनोरथः॥ ३०॥

कल्याणि ब्रह्मचर्य्यार्थी विप्रोऽहं पिप्पलायनः।
यत्कृते तेन विप्रेण त्वं प्रयत्नेन याचिता॥ ३१॥

अहं विवाहविमुखः पित्रा चात्यर्थमर्थितः।
त्वमप्येवम्विधा भद्रे दिष्ट्या तुल्यः समागमः॥ ३२॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा प्रहृष्टा तमुवाच सा।
आवयोरविरुद्धोऽयं विवाहः शमसंयमात्॥ ३३॥

ततः समुचितावाप्तप्रहर्षोत्साहपूरितः।
निजं गत्वा स भवनं पितुर्वाक्यममन्यत॥ ३४॥

མཐའ་ཡས་ནོར་ནི་གྲུས་པ་དེ། ནམ་པར་བཏགས་ནས་སེར་སྐྱས་ཀྱང་།
རིན་ཆེན་མཆོག་གིས་བགྱིན་པ་ཡི། བུ་མོ་དེ་ལ་རབ་དུ་ཕྱིན། 35

འཁོར་པ་རིན་ཐང་ཆེ་བ་ཡིས། དེ་དག་ཁྲིམ་ཐབ་སྦྲ་བར་ཞུགས།
ཚངས་པར་སྤྱོད་པ་མ་ཉམས་ཤིང་། ནམ་འགྱུར་མེད་པར་འགྲོགས་པར་གྱུར། 36

དུལ་བའི་ངང་ཚུལ་དེ་དག་གི། གཟུགས་དང་ལང་ཚོ་གྲུས་པའི་ཚེ།
ཡིད་ལ་བྱུང་བའི་བཀའ་བཅག་པས། འཁོར་པ་དམན་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 37

དེ་གཉིས་རིག་པ་བསྲུང་བའི་སྐད། རེས་ཀྱི་གཅིག་ནི་གཉིད་ལོག་ཅིང་།
གཅིག་ནི་ལངས་ནས་མེལ་ཚེ་བྱེད། ཅེས་པ་ཉལ་བའི་ནམ་གཞག་བྱས། 38

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་མལ་སྟན་མཐར། དེ་ཡི་མིག་ནི་གཉིད་ཀྱིས་གྲུས།
ཐབས་ཚོ་ཡི་སྤྲ་ལ་སྐྲེས་ཀྱིས། སྦྲུལ་ནི་ནག་པོ་མཐོང་བར་གྱུར། 39

དེ་ནས་དེ་ལག་འཁྲི་ཤིང་ནི། ལོགས་སུ་འཕྱུང་བ་བཙེ་ལྡན་དེས།
རྡོ་ཡབ་མཐའ་དང་གོས་དག་གིས། བསྡུས་ནས་འཛིགས་པ་དེ་ལས་བསྲུངས། 40

འཕྲུལ་ལ་ལག་པ་བསྐྱོད་པ་ཡིས། སྐྲག་པའི་རི་དགས་མིག་ཅན་མ།
ཉམ་འདར་ཞིང་དོ་ཤལ་ནི། གཡོ་ལྡན་མ་དེས་ཁྲོ་ལ་སྨྲས། 41

ཇོ་ཡི་སྲས་པོ་ཇི་ལྟར་ན། ངེས་པར་དམ་ཚིག་བརྗེད་གྱུར་ཅིང་།
བདེན་པར་སྨྲ་པ་ཁྱོད་ཀྱི་ཐུགས། གང་འདི་ནམ་པར་བསླད་པ་སྐྱེས། 42

कपिलोऽपि समन्विष्य तमनन्तधनोदयम् ।
प्रददौ तनयां तस्मै वररत्नैरलङ्कृताम् ॥ ३५ ॥

तयोर्महार्हविभवैर्वृत्ते परिणयोत्सवे ।
अलुप्तब्रह्मचर्य्योरुर्निर्विकारः समागमः ॥ ३६ ॥

रूपयौवनसम्भारे तयोः संयमशीलयोः ।
बभूव विभवम्लानिराज्ञाभङ्गान्मनोभुवः ॥ ३७ ॥

पर्य्यायेणैकनिद्रायां जागर्त्त्येकः समुत्थितः ।
इति तौ स्पर्शरक्षायै चक्रतुः शयनस्थितिम् ॥ ३८ ॥

कदाचिदथ शय्यान्ते कालव्यालं व्यलोकयत् ।
निद्रामुद्रितनेत्रायां भद्रायां पिप्पलायनः ॥ ३९ ॥

ततः स तद्भयात्तस्या दोर्लतां पार्श्वलम्बिनीम् ।
सदयश्चामरान्तेन ररक्षोत्क्षिप्य वाससा ॥ ४० ॥

सहसा बाहुचलनचत्ता हरिणलोचना ।
सा सकम्पकुचालोलहारा पतिमभाषत ॥ ४१ ॥

आर्य्यपुत्र कथं नाम समयः सत्यवादिनः ।
विस्मृतस्तव संजातो यदयं चित्तविप्लवः ॥ ४२ ॥

ཁྱོད་ཀྱི་ནོམ་འགྱུར་ངོ་ཚའི་རྒྱུན། ཤིན་ཏུ་ཆེ་ལྡན་འདི་ནི་ཅི།
ས་འཛིན་དག་ཀྱང་བརྟེན་པའི་ལུགས། གཏོང་གི་དམ་པ་ཡོངས་མ་ཡིན། 43

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། འཇུམ་ལྡན་དེ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས།
མི་ལམ་ན་ཡང་བདག་གི་ཡིད། བཟང་མོ་ངེས་པར་བསླད་པ་མེད། 44

འོན་ཀྱང་འདིར་ནི་སྤྲུལ་ནག་འདི། འཇིགས་སུ་རུངས་པ་ཡོངས་སུ་གྱུ།
ཁྱོད་ཀྱི་ལག་པ་མལ་སྟན་ལས། འཕྱུང་བ་འཇིགས་ནས་བདག་གིས་བསྲུངས། 45

ཁྱོ་ཡི་ཚིག་འདི་ཐོས་གྱུར་ནས། རྟོགས་བཟང་དགའ་བ་དེས་སྨྲས་པ།
བདེན་པའི་ངང་ཚུལ་ཁྱོད་ཀྱི་བློ། འདོད་པས་དྲི་མར་གྱུར་པ་མེད། 46

གདུག་པའི་སྤྲུལ་ནི་ཞིགས་པ་སྟེ། ཆགས་པའི་ལྟོ་འཕྲིས་མཆོག་ཏུ་འཇིགས།
སྤྲུལ་གྱིས་ལུས་གཅིག་འཇོམས་པ་སྟེ། འདོད་པས་ལུས་ནི་བརྒྱ་མཐར་བྱེད། 47

དེ་སྐད་ནོམ་འགྱུར་འདི་དག་བསྒྲུངས། ཞེས་སྨྲས་དེ་ནི་ཆགས་དང་བྲལ།
དེ་ཡི་ཤིན་ཏུ་དུལ་བ་ཡང་། པི་སྦྲ་ལ་སྐྱེས་དག་གིས་བསྔགས། 48

དུས་ཀྱི་ནྱ་གྲོ་དྷ་ཡི་རྟོག། ཆུང་མར་བཅས་པ་མཐོ་རིས་སོང་།
རབ་མང་ཁྲིམས་ཀྱི་ཚོགས་དག་གིས། བསམ་པའི་ཁུར་ནི་དེ་ཡིས་བླངས། 49

ནམ་ཞིག་དེལ་མར་བདུང་བའི་སྐད། ཁྱུ་མཆོག་ནམས་ཀྱི་དཔལ་འཆོར་ལ།
བཟང་མོས་ཡོངས་སུ་བསྟན་པ་ཡིས། འཁོར་ནམས་དག་ནི་ཡོངས་སུ་བསྐོས། 50

लज्जावहा विकारस्य केयमापतिता तव।
त्यजन्ति धृतिमर्य्यादां भूधरा न तु साधवः॥ ४३॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा तामुवाच स सस्मितः।
भद्रे नास्त्येव मनसः स्वप्नेऽपि मम विप्लवः॥ ४४॥

किन्त्वेष कृष्णसर्पोऽत्र भीषणः परिवर्त्तते।
बाहुस्ते शयनालम्बी भीत्या संरक्षितो मया॥ ४५॥

एतत् पत्युर्वचः श्रुत्वा त्यक्तशङ्का जगाद सा।
दिष्ट्या ते सत्यशीलस्य न काममलिना मतिः॥ ४६॥

सर्पः साधुर्वराकोऽयं भयं रागोरगात्परम्।
एकां हन्ति तनुं सर्पः कामः कायशतान्तकृत्॥ ४७॥

रक्ष्यस्तस्माद्विकारोऽयमित्युक्त्वा विरराम सा।
तीव्रञ्च प्रशशंसास्याः संयमं पिप्पलायनः॥ ४८॥

न्यग्रोधकल्पे कालेन सभार्य्ये त्रिदिवं गते।
प्रभूतगृहसंभारचिन्ताभारमुवाह सः॥ ४९॥

कदाचित्तैलपानाय वृषाणान्तिलपीड़ने।
तेन भद्रा समादिष्टा न्ययुंक्त परिचारिकाः॥ ५०॥

དྲིལ་ནི་འཆོར་བ་དེ་དག་གིས། དྲིལ་མར་བུམ་པར་སྒྲོག་ཆགས་ཚོགས།
ལྗུང་ཞིང་ཉམས་པ་མགྲོན་གྱུར་ནས། སྙིང་རྗེ་བཅས་པས་པན་ཚུན་སྨྲས། 51

སྒྲོག་ཆགས་མང་པོ་ཡོངས་བསྡུག་པས། ཀྱི་མ་བདག་ཀྱང་སྡིག་པ་ཅན།
ཡང་ན་གང་གི་ཚིག་གིས་བྱས། སྡིག་པ་འདི་ཀུན་བཟང་མོ་ལའོ། 52

བཟང་མོ་ཁྱིམ་ནང་འཁོད་པ་ཡིས། དེ་གྲོས་ཆགས་བྲལ་ཉིད་དུ་གྱུར།
དེ་དུས་ཉིད་ན་བདག་པོ་ནི། ནང་ཞུགས་དབེན་པར་དེ་ལ་སྨྲས། 53

ཞིང་ལས་ཉོན་མོངས་ཀྱིས་གཟིར་བར། ཁྱུ་མཆོག་སྒྲོག་ཆགས་འཚོ་བ་སྟོན།
བཟང་མོ་བདག་གི་ཁྱིམ་གྱི་ཁུར། དྲག་དུ་ངོཡས་འཛིན་ཡོངས་མི་བཟོད། 54

བདེ་བའི་ཕུན་ཚོགས་འདི་དག་ཉམས། མཐུག་དུ་རོ་བྲལ་སྙིང་པོ་མེད།
སྨྱུང་ན་འདམ་བུའི་འདབ་མ་བཞིན། གདུང་བ་དག་ནི་སྐྱེད་པར་བྱེད། 55

ཁྱིམ་པ་རྣམས་ནི་སྡིག་པའི་འདམ། ཉོན་མོངས་ཀ་ལྦུབས་དྲ་བ་ཅན།
ཁྱིམ་ཉིད་དུ་ནི་ཉམས་འགྱུར་ཏེ། རླུངས་སུ་སླང་ནི་གོན་པོ་བཞིན། 56

དེ་སྐད་ཁྱིམ་གྱི་རྩོལ་བ་འདི། ཕྱུ་ཅག་གིས་ནི་གཏང་བར་འོས།
ཞེས་སྨྲས་ཆུང་མས་ཁས་བླངས་པས། ཞི་བ་ལ་ནི་ངེས་པར་བྱས། 57

ཁྱིམ་དང་ཡོ་བྱད་བཅས་པ་ཡི། ནོར་རྣམས་སློང་ལ་དེས་བྱིན་ནས།
རི་བའི་ཞགས་པས་འཆིང་བ་ཀུན། རྣམ་པར་གྲོལ་ཏེ་ངེས་པར་བྱུང་། 58

ताः पीड़िततिलास्तैलकुम्भेषु कृमिसञ्चयम्।
च्युतं विलोक्य सीदन्तमूचुः सकरुणा मिथः ॥ ५१ ॥

अहो नु पापमस्माकं बहुप्राणिपरिक्षयात्।
भद्रायाः सर्व्वमेतद्वा पातकं यद्गिरा कृतम् ॥ ५२ ॥

तच्छ्रुत्वान्तर्गृहगता भद्रा वैराग्यमाययौ।
तस्मिन्नेव क्षणे भर्त्ता प्रविश्योवाच तां रहः ॥ ५३ ॥

भद्रे गृहमहाभारश्रान्तोऽहं न सहे सदा।
कृषिक्लेशार्दितवृषप्राणहिंसानुशासनम् ॥ ५४ ॥

इमाः पर्य्यन्तविरसा निःसाराः सुखसम्पदः।
आस्वाद्यमानाः कुर्व्वन्ति नड़शाखा इव व्यथाम् ॥ ५५ ॥

क्लेशशैवालजालेषु पापपङ्केषु वेश्मिनः।
अवसन्ना गृहेष्वेव पङ्केष्विव जरद्गवाः ॥ ५६ ॥

तस्माद्गृहसमारम्भस्त्यागयोग्योऽयमावयोः।
इत्युक्त्वानुमतः पत्न्या शान्त्यै निश्चयमादधे ॥ ५७ ॥

स दत्त्वा धनमर्थिभ्यो गृहञ्च सपरिच्छदम्।
निश्चक्राम समुन्मुक्तसर्व्वाशापाशबन्धनः ॥ ५८ ॥

དེ་ནས་འོད་སྲུངས་རིགས་ཉིད་ཕྱིར། འོད་སྲུངས་ཆེན་པོ་ཉིད་གྱུར་ཏེ།
དེ་དུས་ཡང་དག་རྫོགས་སངས་རྒྱས། འོད་སྲུངས་དྲུང་དུ་དེ་སོང་གྱུར། 59

མཆོད་རྟེན་བྲུ་བང་ཞེས་པ་ཡི། ཙ་བར་གནས་པ་དེ་ཅན་ཕྱིན།
འདུལ་བའི་ཆོས་ནི་དེས་ཐྲིན་པས། དག་པའི་བྱང་ཆུབ་ཐོབ་པར་གྱུར། 60

བཟང་པོ་ཡིས་ཀྱང་ཆགས་བྲལ་གྱི། བསྟན་པའི་ལམ་གྱི་འདུལ་བ་ཐོབ།
སྔོན་གྱི་བསོད་ནམས་ཡོངས་སྨིན་པས། དགེ་བ་དྲི་མ་མེད་པ་བསྟེན། 61

འོད་སྲུངས་ཆེན་པོ་ལྷ་རྣམས་ཀྱིས། ཕྱག་འོས་ཉིད་ཐོབ་མཐོང་ནས་དེའི།
བསོད་ནམས་དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་དྲིས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེར་བཀའ་སྩལ། 62

ཟས་དང་འབྲུ་རྣམས་མ་ལུས་རབ་དུ་བའི་དུས།
བསོད་སྙོམས་ཉེས་པར་ལོག་ཅིང་ཞིན་དུ་མི་བཟད་ཆེ།
ཉེར་རྟེན་སྐྱེས་བུ་ཡིས་ནི་ཀླ་ཞི་གྲོང་ཁྱེར་དུ།
དགར་ཞི་ཁླི་རང་གི་ཟས་ཀྱིས་ལེགས་པར་མཆོད། 63

མི་ཡི་བདག་པོ་ཀྲི་ཀིས་བྱས་པའི་མཆོད་རྟེན་ནི།
རིན་ཅེན་གྱིས་སྤྲས་མཆོག་ཏུ་མཛེས་ལ་དེ་ཡི་བྲུ།
བསོད་ནམས་ངང་ཚུལ་གྱིས་ཀྱང་དགེ་བ་ཆེན་པོའི་སྐད།
ཉེར་བྲུ་གསེར་གྱི་རྣམ་པར་བཀྲ་བའི་གདུགས་དག་བཀོད། 64

सोऽथ काश्यपगोत्रत्वान्महाकाश्यपताङ्गतः ।
तत्कालसम्यक्संबुद्धं काश्यपं समुपाययौ ॥ ५९ ॥

बहुपुत्राख्यचैत्यस्य मूले स्थितमुपेत्य तम् ।
तद्दत्तधर्म्मविनयः शुद्धां बोधिमवाप्तवान् ॥ ६० ॥

भद्रापि लब्धविनया वैराग्याविष्टवर्त्मना ।
प्राक्पुण्यपरिणामेन लेभे कुशलमुज्ज्वलम् ॥ ६१ ॥

महाकाश्यपमालोक्य सम्प्राप्तं सुरवन्द्यताम् ।
तत्पुण्यं भिक्षुभिः पृष्टस्तानुवाच तथागतः ॥ ६२ ॥

प्रविरतनिखिलान्नशस्यकाले
विषमतरे विनिवृत्तपिण्डपाते ।
कृशधनपुरुषेण काशिपूर्य्यां
नगरशिखी महितः स्वभोजनेन ॥ ६३ ॥

कृकिनरपतिना कृतेऽपि चैत्ये
वररुचिरत्नचिते तदात्मजस्य ।
मणिकनकविचित्रमातपात्रं
व्यधित महत्कुशलाय पुण्यशीलः ॥ ६४ ॥

སྐྱེ་བ་གཉིས་སུ་ཉེ་བར་བསགས་པའི་བསོད་ནམས་ཆེར་གྱིས་པས།
ཉེ་བའི་གནས་ཀྱི་འོད་སྣངས་ཆེན་པོ་ཉིད་ནི་འདི་ཡིས་ཐོབ།
གསེར་གྱི་དཔལ་བཞིན་དུ་མཐོ་བའི་མཐུ་ནི་ཐོབ་གྱུར་ནས།
དགེ་བའི་ཚ་བའི་འབྲས་བུ་དགྲ་བཅོམ་གནས་ནི་ནོན་པར་འཛིན། 65

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྲིས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་འོད་སྣངས་ཆེན་པོའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་ཙ་གསུམ་པའོ།

जन्मद्वयोपचितपुण्यमहोदयेन
सोऽयं महोपपदकाश्यपतामवाप ।
लब्धोन्नतिः कनकताल[1] इव प्रभाव
मर्हत्पदं कुशलमूलफलं बिभर्त्ति ॥ ६५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां महाकाश्यपावदानं नाम त्रिषष्टितमः पल्लवः ॥

---

१ All the MSS. ताम ।

Chapter LXIV.

ནོར་བཟང་གི་རྟོགས་བརྗོད་ནི།

ཡལ་འདབ་མངོན་པར་གསར་པ་ལྷ་བུར་མཉེན་གྱུར་ཀྱང་།
སྨྲ་ཞིང་བརྟན་པ་དག་ནི་རྡོ་རྗེ་ལྟར་གྱུར་པ།
ཆེན་པོ་རྣམས་ཀྱི་ཡིད་ཀྱི་ནོར་བུ་དྲི་མ་དག།
མེད་པ་ལ་ཡང་ཆག་པ་དག་ནི་འཕོ་བ་མིན། 1

ཀུན་ལ་རྗེས་སུ་བརྩེ་ལྡན་ཡབ་ཀྱིས་ཤཱཀྱ་ཡི།
གནས་རྣམས་ལྷ་བ་ཉིད་ལ་མཆོག་ཏུ་གསོལ་བཏབ་པ།
ཀུན་དགའ་བདུད་རྩི་བཅུད་ཀྱི་ཟླ་བ་སྟོན་པ་ནི།
གང་དག་ཚོ་ན་རང་གི་རྒྱལ་སར་ཞུགས་གྱུར་པ། 2

དེ་དེའི་ཚེ་ནབ་གམ་དུ་སོང་རི་དགས་མིག།
ནོ་བའི་རྒྱན་གྱིས་མིག་ནི་རབ་ཏུ་མཛེས་བྱེད་པ།
གྲགས་འཛིན་མས་ནི་མཛེས་པ་དག་གི་ཕྱོགས་རྣམས་སུ།
ཡ་མཚན་རབ་ཏུ་འཁྲི་བའི་བདག་པོ་དེ་མཐོང་ནས། 3

चतुःषष्टितमः पल्लवः ।

सुधनकिन्नर्य्यवदानम् ।

अभिनवकिशलयकोमल-
मनसामपि कुलिशकठिनधैर्य्याणाम् ।
महतां मणिविमलाना-
मपि भवति न रागसङ्क्रान्तिः ॥ १ ॥

शाक्यालये दर्शनमेव पित्रा
सर्व्वानुकम्पी भृशमर्थ्यमानः ।
यदा यदानन्दसुधारसेन्दु-
र्विवेश शास्ता निजराजधानीम् ॥ २ ॥

तदा तदा हर्म्यगता मृगाक्षी
कर्णावतंसीकृतनेत्रकान्तिः ।
कान्त्या दिशां विस्मयमुल्लिखन्तं
यशोधरा तं दयितं विलोक्य ॥ ३ ॥

དེ་དང་འགྲོགས་དང་འཁྲུད་པ་དག་གི་རི་བྲལ་བའི།
དུག་གི་བསྒྲུལ་བ་བཞིན་དུ་མ་ལུས་ཕྱོགས་འཁོར་ཞིང་།
གྲོགས་པོ་བཞིན་དུ་རློག་པར་བྱེད་པའི་བདེན་པ་ནི།
དེར་ནས་ཁང་བཟང་དག་ལས་ལུས་ནི་རབ་དུ་འཕངས། 4

དག་པ་ཡལ་འདབ་ལྟར་མཉེན་ལུས་དང་ལྡན་པ་དེས།
གང་གང་ཚེ་ན་ལུས་ནི་རབ་དུ་འཕངས་གྱུར་པ།
དེ་དེ་ཚེ་ན་ཡིད་སྨུབས་ཀྱིས་ནི་སྨོངས་པ་དེ།
བརྩེ་བས་བརྒྱན་པའི་སྤྱན་ལྡན་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་བསྐྱངས། 5

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ནགས་ཀྱི་མཐར་ནི་བཅོམ་ལྡན་ལ།
དེ་ཡི་དགེ་མཚན་དག་ལས་དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་དྲིས།
ཚེམས་ཀྱི་འོད་ཟེར་ཟླ་བའི་འོད་ནམས་དག་གིས་ནི།
མཆུ་ཡི་དམར་པ་འགེབས་པར་མཛད་པ་བཞིན་དུ་གསུངས། 6

བདག་དང་བྲལ་བས་དོག་དུ་གསེར་བར་གྱུར་པ་ཡི།
གྲགས་འཛིན་མ་ནི་གང་ཞིག་གཟུ་ལུམས་འདི་དག་བྱེད།
བདེན་པ་འཕྲོག་ཅིང་སྨོངས་པ་ནམ་པར་སྦྱེར་བ་འདི།
ཆགས་པའི་ནམ་འཕྲུལ་ལྡན་པ་ནམས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཉིད། 7

तत्सङ्गमालिङ्गनयोर्निराशा
भ्रान्ताखिलाशा विषमूर्च्छितेव ।
धृतिं वयस्यामिव वारयन्तीं
निरस्य सौधात्तनुमुत्ससर्ज ॥ ४ ॥

यदा यदा पल्लवपेशलाङ्गी
देहं समुत्स्रष्टवती सती सा ।
तदा तदा मन्मथमोहितां तां
दयार्द्रचक्षुर्भगवान् ररक्ष ॥ ५ ॥

ततः कदाचिद्भगवान् वनान्ते
तत्कौतुकाक्षिप्तगणेन पृष्टः ।
जगाद दन्तद्युतिचन्द्रिकाभि-
र्निवारयन् रागमिवाधरस्य ॥ ६ ॥

यशोधरा मद्विरहेण नित्यं
करोति यत् साहसमेतदार्त्ता ।
हरन्ति धैर्यं वितरन्ति मोह-
मेष स्वभावः स्मरविभ्रमाणाम् ॥ ७ ॥

སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་དེ་དང་བྲལ་བ་ཡིས།
འདོད་པས་ཉམས་པར་སྨྱོངས་པར་བྱས་དེ་བདག་གིས་ཀྱང་།
རྒྱུན་དུ་ཡོངས་སུ་གདུང་བདག་གི་རྒྱུར་གྱུར་པ།
རབ་མང་གདུང་བའི་ཉོན་མོངས་དག་ནི་ཉམས་སུ་མྱོང་། 8

གྲོང་མཆོག་ཏ་ཀྵི་ཤ་ཡི་གྲོང་། འཆི་མེད་ཡོན་ཏན་ཕྲུལ་བར་སྤྱོན།
ཡོན་ཏན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་གཏེར། རྒྱལ་པོ་ནོར་ཞེས་བྱ་བ་བྱུང་། 9

ལག་བ་ཡིས་ནི་ས་ལ་འཁྲུད། དབྱངས་ཅན་དག་ནི་མཁྱེན་པར་བྱས།
ངག་གི་དཔལ་ནི་རབ་ཏུ་བསྟར། གྲགས་བ་ཡོན་རབ་ཏུ་བསྒྲད། 10

དེ་ཡི་བཙུན་མོ་མཛེས་མ་ལ། བུ་ནི་ནོར་བཟང་ཞེས་བྱ་བ།
གཏེར་བརྒྱ་དང་ནི་གྲགས་པ་དང་། ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་བྱུང་བར་གྱུར། 11

རིག་གནས་ཀུན་གྱི་ཀ་སྟུད་ཅན། དགག་ཏུ་ཉམས་གྱུས་བྱེད་པ་ཆགས།
དྲི་མེད་མཛེས་པ་སྒྲ་ཅོལ་ཅན། གང་བའི་ཟླ་བ་ལྟ་བུར་མཛེས། 12

ས་བདག་དེ་དང་ས་གཞི་ན། བར་མེད་ས་བདག་བྱུང་གྱུར་པ།
ཁེངས་ལྡན་དབང་ཆེན་སྡེ་ཞེས་པ། གྱི་ཆེ་ཉམས་པར་གནོན་པར་གྲགས། 13

དུས་མིན་དུས་སུ་བདེག་བྱ་ཞིང་། ཀུན་གྱི་བདོག་ཀུན་འཕྲོག་བྱེད་པ།
བཟོད་དཀའི་དཔུ་དང་ལྡན་པ་དེས། གཟིར་བའི་སྐྱེ་བོས་ངུ་ངར་བྱས། 14

मयापि तस्या विरहेण पूर्व्वं
जन्मान्तरे मारविमोहितेन ।
संसक्तसन्तापनिमित्तभूतः
खेदः प्रभूतव्यसनोऽनुभूतः[१] ॥ ८ ॥

पुरा जितामरपुरे सत्पुरे हस्तिनापुरे ।
राजा धनाभिधानोऽभूत् निधानं गुणसम्पदाम् ॥ ९ ॥

भुजेनालिङ्गिता भूमिः कृता कण्ठे सरस्वती ।
लक्ष्मीः प्रसाधिता येन कीर्त्तिरेव प्रवासिता ॥ १० ॥

रामायां तस्य जायायां तनयः सुधनाभिधः ।
अभवत् सहसञ्जातनिधानशतविश्रुतः ॥ ११ ॥

सर्व्वविद्याकुमुदिनीविकाशरसिकः सदा ।
कलावान्निर्म्मलरुचिर्यः पूर्णेन्दुरिवाबभौ ॥ १२ ॥

बभूव तस्य भूभर्त्तुर्भूपतिर्भूम्यनन्तरः ।
मानी महेन्द्रसेनाख्यः प्रख्यातपृथुविक्रमः ॥ १३ ॥

तेन दुःसहदण्डेन सर्व्वसर्व्वस्वहारिणा ।
अकालकालकल्पेन पीड़िताः शुशुचुः प्रजाः ॥ १४ ॥

---

१ $^{W}_{1}$ has the following additional S'loka :—
स्वयम्भूवर्णनमाहात्म्यमथ वक्ष्यामि हे जिनाः ।
यद्दर्शनात् सुधनोऽसौ श्रीरत्नादिकमाप्तवान् ।

ཆོས་མིན་ལ་ནི་ཞུགས་པ་དེའི། གྲོང་ནི་ལེགས་བྱས་སྤྲོ་བ་དག།
ལོག་ཅིང་གདུང་བ་དྲག་པོ་ཡིས། གདུང་བར་སྤྲིན་གྱི་ཆར་མ་ཕབ། 15

ས་སྐྱོང་རྗེས་སུ་མི་མཐུན་པ། དེར་ནི་སྨུ་གེའི་ཉེན་འཚེ་བྱུང་།
སྡུག་བསྔལ་ཅན་རྣམས་ཁོ་ན་ལ། སྡུག་བསྔལ་གྲིས་པར་གྱུར་པ་ཡིན། 16

དེ་ནས་ཉོན་མོངས་ཀྱིས་ཁྲུད་གཟིར། བདག་ངན་གྱིས་གདུངས་ཡིད་བྱུང་ཞིང་།
གྲོང་ནང་གནས་པ་ཐམས་ཅད་ནི། གཅིག་ཏུ་འཚོགས་ནས་ནོམ་པར་བསམས། 17

རྒྱལ་བླུན་མཚན་མོར་བྱེད་པ་ནི། གསར་པའི་དཔྱུ་ཟེར་འཛིབས་པ་ཡིས།
མཆོག་ཏུ་སྐྱེ་བོའི་ཚོགས་པ་ནི། པདྨོ་ཅན་བཞིན་ཟུམ་པར་གྱུར། 18

རྟག་ཏུ་ངན་པར་ཞེན་པ་འདིས། བདེན་མེད་བློན་པོའི་གྲོས་དག་གིས།
བདག་ཅག་བཅིར་ནས་གཡོ་ཅན་དང་། བྲན་དང་བླུ་མཁན་རྣམས་དག་བསོས། 19

དེ་ལའང་ས་བདག་སྡིག་པ་ཡི། དམོད་བས་ཚར་མེད་སྡུག་བསྔལ་བ།
སྐྱེ་བོ་ཡང་དག་བརྟག་བའི་དབང་། སྨུ་གེ་སྐྱིད་པར་བྱེད་པ་སྐྱེས། 20

ས་སྐྱོང་ཤིན་ཏུ་རྣོ་ཞིང་འཁོར་གྱི་སྐྱེ་བོ་རྩུབ་ཅིང་སྨྲ་ཚེར་སྨྲོངས།
བློན་པོ་རྣམས་ཀྱང་གདུག་ཅིང་དྲག་པ་གཡོ་ལྡན་གྱ་གྱུ་དག་ལ་མཁས།
ཞབས་འབྲིང་གནས་དང་ཡིག་མཁན་མི་བཟད་ཁ་སྐྱོན་རབ་ཏུ་ཁྲོས་གྱུར་པ།
དམན་པ་འཇོམས་བྱེད་མ་རུང་ཚོགས་པ་འདི་དག་རྣམས་ནི་ཇི་ལྟར་བཟོད། 21

तस्याधर्म्मप्रवृत्तस्य निवृत्तसुकृतोत्सवे ।
तीव्रोपतापसन्तप्ते पुरे न ववृषुर्घनाः ॥ १५ ॥

प्रतिकूले महीपाले तत्र दुर्भिक्षविप्लवः ।
बभूव व्यसनेष्वेव भवन्ति व्यसनोदयाः ॥ १६ ॥

ततः क्लेशविशेषार्त्ताः सर्व्वे पुरनिवासिनः ।
कुपतिव्यसनोद्वेगादेकीभूता व्यचिन्तयन् ॥ १७ ॥

राज्ञा दोषाकरेणेयं जडेन जनता परम् ।
प्रत्यग्रकरपातेन नलिनीव निमीलिता ॥ १८ ॥

एष दुर्व्यसनी नित्यमसत्यामात्यसम्मतः ।
अस्मान्निपीड्य पुष्णाति विटचेटकगायनान् ॥ १९ ॥

कष्टा तत्राप्यनावृष्टिः पापशापेन भूपतेः ।
दुर्भिक्षजननी जाता जनसंक्षयसाक्षिणी ॥ २० ॥

सुतीक्ष्णः क्ष्मापालः खरमुखरमूर्खः परिजनः
कदर्थाश्चामात्याः कटुकपटकौटिल्यपटवः ।
पदस्थाः कायस्थाः विषमसुखरोगाः प्रकुपिताः
कथं सोऽयं सह्यः कृपणदलनो दारुणगणः ॥ २१ ॥

དཔལ་ལྡན་ས་ཡི་བདག་པོ་ནི། ནོར་གྱིས་ཡུལ་འཁོར་སྐྱོང་བ་ཐོས།
བདག་ཅག་དེ་གྲོང་སོང་བ་ན། མཉེས་ག་ཤིན་དེ་ཡིས་སྐྱོང་བར་འགྱུར། 22

ས་བདག་གང་གི་ཡུལ་འཁོར་ལ། བུ་བཞིན་རྟག་ཏུ་ལྟ་བྱེད་པ།
དེ་ཡི་ཡུལ་དུ་པ་ཡིས་ནི། ཁྱིམ་དུ་བཞིན་དུ་འཚོ་བར་བྱ། 23

དེ་ལྟར་ངེས་བསྒྲུབས་དེ་དག་རྣམས། ཏ་ཀྵི་ན་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་སོང་།
ལུས་ཀྱང་གནོད་བཅས་གདང་བྱུན། ཡུལ་དང་གནས་ནི་སློམས་ཅི་དགོས། 24

མི་བདག་དབང་ཆེན་སྡེ་ཡིས་ཀྱང་། རང་གྲོང་སྐྱེ་བོ་མེད་ཤེས་ནས།
འགྲོད་པ་དྲག་པོས་ཁྲི་ལྡན་པར། བློན་པོ་ཆེན་པོ་ལ་སྨས་པ། 25

རྒྱལ་པོ་ནོར་གྱི་གྲོང་ཁྱེར་དུ། བདག་གི་གྲོང་གནས་སྐྱེ་བོ་རྣམས།
རབ་ཏུ་སོང་ཞེས་ཉན་སྣ་ནི། གསང་ནས་གྱུ་བ་དག་གིས་སྨྲས། 26

གལ་ཏེ་བདག་གི་དགྲ་གྲོང་དུ། དེ་དག་སྡུ་གིས་ཉེན་འགྲོ་ན།
གནས་ཀྱི་ཉེར་འཚོ་ཐམས་ཅད་དུ། རི་མོས་ཀྱིས་ནི་འབྱུང་བ་ཉིད། 27

ཡང་ན་རྒྱལ་པོའི་སྐྱོན་གྱིས་ནི། བདེ་བ་འདོད་པས་དེ་དག་སོང་།
རྒྱལ་པོ་སུ་ཡིས་གྲོང་ཁྱེར་གྱིས། སྐྱེ་བོ་ལས་དང་དཔྱ་ལས་གྲོལ། 28

ཕལ་ཆེར་ཡོངས་སུ་འདྲིས་ལ་སྤང་། རྟག་ཏུ་གསར་པ་གསར་པ་འཚོལ།
རིང་ནས་གནས་པ་ཐམས་ཅད་ནི། ཀུན་གྱི་ཡིད་དུ་འོང་བ་ཡིན། 29

धनः श्रीमान् क्षितिपतिः श्रूयते राष्ट्रवर्द्धनः।
गच्छामस्तत्पुरं सोऽस्मान् वत्सलः पालयिष्यति ॥ २२ ॥

अपत्यमिव राष्ट्रं यः सदा पश्यति भूपतिः।
विषये जीव्यते तस्य जनकस्येव वेश्मनि ॥ २३ ॥

इति निश्चयमाधाय ययुस्ते हस्तिनापुरम्।
त्याज्यः कायोऽपि सापायः किं पुनर्देशसंश्रयः ॥ २४ ॥

ज्ञात्वा महेन्द्रसेनोऽपि स्वपुरं निर्जनं नृपः।
तीव्रानुतापः सामर्षं महामात्यानभाषत ॥ २५ ॥

धनस्य धनिनो राज्ञः पुरं मत्पुरवासिनः।
प्रयाता इति नश्चारैः कथितं गूढचारिभिः ॥ २६ ॥

दुर्भिक्षखिन्ना यदि ते याता मम रिपोः पुरम्।
तत् सर्व्वच भवन्त्येव पर्य्यायैर्दैवविप्लवाः ॥ २७ ॥

अथवा राजदोषेण गतास्ते सुखवाञ्छया।
विष्टिदण्डकरोन्मुक्तः कस्य राज्ञः पुरे जनः ॥ २८ ॥

प्रायः परिचितद्वेषात् सदा नवनवैषिणः।
दूरस्थ एव सर्व्वस्य सर्व्वो भवति वल्लभः ॥ २९ ॥

१ विष्टि means labour without remuneration for the service of the king.

གང་གིས་གཞན་གྱི་སྐྱེ་གུ་ནི། སྨོངས་པ་ཆུང་མ་བཞིན་དུ་འཕྲོག།
ས་བདག་དེ་ལ་ཡོན་ཏན་ནི། བདག་ལས་ལྷག་པ་ཅི་ཞིག་ཡོད། 30

རི་ཞིག་དེ་ཡི་གྲགས་པ་ནི། རབ་གཞིལ་ཐབས་དག་བསམས་པར་མཛོད།
གང་ཡང་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པའི་རྒྱུ། དེ་དག་གཞོམས་པ་བསྒྲུབ་པར་མཛོད། 31

ཅེས་པ་རྒྱལ་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས། བློན་པོ་ཆེན་པོས་རབ་སྨྲས་པ།
ལྷ་གཅིག་གང་གི་རྒྱལ་པོ་ནི། ནོར་དང་སྐྱེ་བོ་དར་བ་ཉོན། 32

ས་བདག་དེ་ཡི་དར་བ་ནི། གཟུགས་ཅན་བསོད་ནམས་ཀྱིས་བདགས་བཞིན།
ཡུལ་ནཀླུ་ཡི་རྒྱལ་པོ་ནི། ཚུ་མ་ཙི་ཏྲ་ཞེས་པ་ཡོད། 33

དེ་ཡི་མཐུ་ཡིས་དུས་མིན་དུ། འབྲུ་ནི་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པར་འགྱུར།
ས་བདག་ཕུན་སུམ་ཚོགས་ཀུན་གྱིས། ཚོ་བ་ཞིང་ནི་ཕུན་སུམ་ཚོགས། 34

དེ་སྐད་རིག་པའི་སྟོབས་དག་གིས། ཀླུ་དེ་གལ་ཏེ་འཕྲོག་ནུས་ན།
དེ་ཚེ་དེ་ཡི་སྐྱེ་གུ་རྣམས། རང་ཉིད་ཁྱོད་ལ་བརྟེན་པར་འགྱུར། 35

དེ་སྐད་སྔགས་སྟོབས་འབར་བ་ཡིས། སྒྲུབ་པ་པོ་འགའ་བཙལ་ནས་ནི།
ཀླུ་ཡི་རྒྱལ་པོ་འཕྲོག་པ་ལ། བརྩོན་པ་དག་ནི་མྱུར་དུ་མཛོད། 36

ཅེས་པ་བློན་པོའི་ཚིག་ཐོས་ནས། ས་བདག་གིས་ནི་བདེན་ཞེས་སྨྲས།
རང་ཉིད་ཡོན་ཏན་ནོར་རྣམས་པའི། མི་བསྲུན་པ་རོལ་སྐྱོན་ལ་སྦྱོར། 37

अस्मदभ्यधिकः कोऽसौ तस्य भूमिपतेर्गुणः।
परेषां हरते येन मुग्धा जाया इव प्रजाः ॥ ३० ॥

उपायश्चिन्त्यतां तावत् तस्य दर्पप्रशान्तये।
समृद्धिकारणं यच्च तद्विघातो विधीयताम् ॥ ३१ ॥

इति राजवचः श्रुत्वा महामात्या बभाषिरे।
श्रूयतां देव येनासौ राजा धनजनोर्ज्जितः ॥ ३२ ॥

विषये नागराजोऽस्ति चित्रो नाम बहूदकः।
तस्य क्षितिपतेर्मूर्त्तः पुण्यवह्न इवोदयः ॥ ३३ ॥

अकाले शस्यनिष्पत्तिस्तत्प्रभावेण जायते।
कृषिसम्पत्तिमूलाश्च भूभुजां सर्व्वसम्पदः ॥ ३४ ॥

तस्माद्विद्याबलान्नागः संहर्त्तुं यदि शक्यते।
तदा यान्ति स्वयं तस्य प्रजास्त्वामेव संश्रयम् ॥ ३५ ॥

दीप्तमन्त्रबलं कञ्चित्तस्मादन्विष्य साधकम्।
नागराजस्य हरणे क्रियतां तूर्णमुद्यमः ॥ ३६ ॥

इत्यमात्यवचः श्रुत्वा तथेत्याह महीपतिः।
स्वगुणाधानविकलाः परदोषोद्यताः खलाः ॥ ३७ ॥

དེར་ནི་གསེར་ནི་མང་པོ་དག། ངོན་པ་རབ་ཏུ་སྡེར་བའི་སྒྲ།
བསྒྲགས་ནས་གྲོས་པ་ཉམས་ཀྱིས་ནི། གླུ་དག་འཆིང་བའི་སྤྱུགས་པ་ཐོབ། 38

གསེར་སྦྱིན་དས་བཅས་དེ་དག་གྲིས། གསོལ་གདབ་རིག་འཛིན་ཞེས་བྱ་བ།
དེ་ནི་ཅོ་ད་ནྲ་བའི་སྐད། དཀྵི་ན་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་སོང་། 39

དེར་ནི་ནགས་ཚལ་དག་གི་མཐའ། སྤྱུས་ལྡང་ཀྱང་འཕྲང་ལྡན་པ་ན།
གདེངས་ཅན་བདག་པོའི་ཁང་པ་ནི། ནམ་མཁའི་འོད་ཅན་དེ་ཡིས་མཐོང་། 40

བ་ཀུ་ལ་ཡི་འཕྲེང་གསོ་ཞིང་། ཏི་ཀ་ལ་ཡི་དཔལ་གྲིས་པ།
ནགས་ཀྱི་དཔལ་མོའི་གྲུན་དག་གི། ནོར་བུའི་མེ་ལོང་ཉེ་བ་བཞིན། 41

དྲི་མེད་རྒྱུ་དེ་མཐོང་གྱུར་ནས། ཆགས་པས་ཉམས་པའི་ཡིད་ཅན་གྱིས།
སྤྱུགས་ཀྱི་བསམ་གདན་ཆས་ཞུགས་ཏེ། བསྒྲུབ་སྐད་ཕྱོགས་ནི་བཅིང་བ་བྱས། 42

བརྟུལ་ཞུགས་རབ་དྲག་གཟི་ལྡན་དེས། ཕྱོགས་ནི་བཅིངས་པ་བསྒྲུབ་པ་ནི།
ཀླུ་བདག་གདེངས་ཀའི་ནོར་བུ་ནི། གདུང་ཞིང་མགོ་པོ་གཟིར་བར་གྱུར། 43

དེ་ནས་མ་མཐོང་ཨང་དག་ལངས། སྤྱུགས་ནི་བསྒྲུབ་པ་དེ་མཐོང་ནས།
འདར་ཞིང་གདེངས་ཅན་བདག་པོ་ནི། བཅིངས་པས་སྐྲག་པས་རབ་བསམས་བ། 44

ཁྲོ་བ་སྨྲ་ར་སྨིན་མ་སེར། ལྕ་བྱེད་སེར་སྐྱ་གློག་ལྕ་བུ།
དུས་མིན་དུས་དང་མཚུངས་པ་ཡི། གདུག་པ་འདི་ནི་ག་ལས་འོངས། 45

ततः प्रभूतकनकप्रदानपणघोषणाम्।
श्रुत्वा ते मन्त्रिणः प्रापुर्नागबन्धनमन्त्रिणम्॥ ३८॥

स तैर्विद्याधरो नाम सुवर्णार्पणसंविदा।
प्रार्थितस्त्विचमानेतुं प्रययौ हस्तिनापुरम्॥ ३९॥

तत्र काननपर्य्यन्ते स्निग्धश्यामलपादपे।
भवनं भोगिनां भर्त्तुः स ददर्श नभःप्रभम्॥ ४०॥

वलद्वकुलमालाया विलसत्तिलकश्रियः।
वनलक्ष्या इवासन्नमण्डनामणिदर्पणम्॥ ४१॥

तद्विलोक्यामलजलं स्पृहामलिनमानसः।
मन्त्रानुध्यानसन्नद्धः सिद्धौ दिग्बन्धमादधे॥ ४२॥

दिग्बन्धे विहिते तेन व्रतेनात्युग्रतेजसा।
शिरोव्यथा नागपतेरभूत्तत्फणामणेः॥ ४३॥

अथाहश्यः समुत्थाय तं दृष्ट्वा मन्त्रसाधकम्।
कम्पमानः फणिपतिर्बन्धत्रासादचिन्तयत्॥ ४४॥

बभ्रुभ्रूश्मश्रुधवलस्तडित्कपिललोचनः।
अकालकालसङ्काशः कुलं हन्तुं समागतः॥ ४५॥

ད་ནི་གདུག་པའི་བདག་ཉིད་འདིས། ནགས་ཀྱི་ཕྱོགས་ནི་བཅིངས་པ་བྱས།
ཇི་སྲིད་འདིས་བདག་མ་བཅིངས་པ། དེ་སྲིད་རིགས་པའི་རིམ་པ་བཟོད། 46

དྲང་སྲོང་ཆེན་པོ་ཤིན་ཤུན་ཅན། འཇུག་ངོགས་ཉེ་བའི་མཐའ་འདིར་གནས།
བདག་ཡངས་བསྐྱབ་པ་དམ་པ་ནི། དེས་ཀྱང་ནུས་པ་མིན་པར་ཤེས། 47

གང་འདི་དེ་ཡི་བསྟི་གནས་ན། རྟག་ཏུ་རིམ་གྲོ་ཡོངས་བསྐྱབ་པ།
ཛོན་པ་པདྨ་ཅན་ཞེས་པས། དེ་ཡིས་བདག་ནི་བསྲུང་བར་བཟོད། 48

ཅེས་པ་ཡིད་ཀྱིས་ངེས་བྱས་ནས། ཛོན་པ་གཡལ་བ་དེར་སོང་།
རང་གི་སྡུག་ཚུལ་བཤད་ནས་ནི། དེ་ལ་འཆི་བ་བསྲུང་བར་ཞུས། 49

ཀླུ་ཡི་གྲོལ་པོས་སྐྱབ་པ་པོ། གསང་བའི་སྔད་དུ་གསོལ་བདབ་སྟེ།
གཉུ་དང་ལྡན་པས་གནས་དེར་ཕྱིན། སྡུགས་པ་དཔའ་བོ་མཐོང་བར་གྱུར། 50

གནས་སྐབས་དེར་ནི་སྐྱབ་པ་པོ། སྡུགས་པ་ཡིས་ཀྱང་སྨིན་སྨིག་མེས།
བཅིང་བར་འདོད་པས་ཀླུ་ཡི་ནི། གྲོལ་པོ་རབ་ཏུ་དགུག་པར་བྱས། 51

གདེངས་ཅན་བདག་པོ་སྡུགས་ཀྱིས་ནི། དྲངས་ཚེ་དེ་ཡི་གནས་ཀྱི་རྒྱ།
རྒྱ་ཡི་རྒྱ་བུར་རབ་དཀྲིགས་པས། སྤྲ་ངན་བྱེད་པར་བརྩོན་པ་བཞིན། 52

ལག་འགྲོའི་རྩང་མ་ཀུན་ཏུ་སྐྲག་པས་འཁྲུགས་པའི་སྤྲ་ངན་གྱིས།
ཤུགས་རིངས་ཤུགས་ཀྱིས་རབ་བསྐྱབས་རབ་འབར་དབྱུ་བའི་ཕྲེང་བ་ཅན།
རབ་ཏུ་འདར་ཞིང་གཡོ་བའི་རྒྱ་ནི་སོ་ཀླུབས་ལག་པ་ཡིས།
ཐལ་མོ་སྦྱར་བྱས་བསྲུང་བ་དོན་དུ་གཉེར་བར་བྱེད་པ་བཞིན། 53

वने सम्प्रति दिग्बन्धः कृतोऽनेन दुरात्मना ।
बध्नात्येष न यावन्मां तावद्युक्तिक्रमः क्षमः ॥ ४६ ॥

तीरोपान्ते वसत्यस्मिन् महर्षिर्वल्कलायनः ।
जाने सोऽपि न मे साधुः परित्राणे प्रगल्भते ॥ ४७ ॥

तस्याश्रमपदे योऽसौ परिचर्यापरः सदा ।
लुब्धकः पद्मको नाम स मे संरक्षणक्षमः ॥ ४८ ॥

इति निश्चित्य मनसा गत्वा स लुब्धकान्तिकम् ।
स्ववृत्तान्तं निवेद्यास्मै बन्धरक्षामयाचत ॥ ४९ ॥

साधकस्य वधायैव नागराजेन सोऽर्थितः ।
धन्वी तं देशमभ्येत्य मन्त्रधीरं व्यलोकयत् ॥ ५० ॥

अस्मिन्नवसरे मन्त्री स प्रकोपी हुतानलः ।
आकृष्टिं नागराजस्य विदधे बन्धनोत्सुकः ॥ ५१ ॥

मन्त्राकृष्टे फणिपतौ क्षणं तद्भवनोदकम् ।
सविषादं रुरोदेव प्रोद्यद्बुद्बुदशब्दितम् ॥ ५२ ॥

सन्त्रासविह्वलभुजङ्गवधूविषाद-
निश्वासवेगविहितोज्ज्वलफेनमालम् ।
रक्षार्थनामिव चकार तरङ्गहस्त-
सक्ताञ्जलिप्रबलकम्पविलोलमम्भः ॥ ५३ ॥

མཁའ་ལྡིང་གཟི་བྱིན་ལྡན་པ་དེས། རིག་པའི་སྟོབས་ཀྱིས་ཀླུ་བཟུང་སྟེ།
འཁྲམས་ཞིང་གྱུ་གྱུ་ལྡན་པའི་ལུས། ཆུ་ཡི་སྟོད་དུ་བཙལ་བ་ན། 54

རྔོན་པ་ཡིས་ནི་གཞུ་བཀང་སྟེ། དུག་གིས་བྱུགས་པའི་མདའ་དག་གིས།
སྐྲག་པས་མིག་ནི་ཉམས་གྱུར་ཅིང་། གསེར་ལ་ཆགས་པ་དེ་ལ་བསྣུན། 55

འཇིགས་པས་ལག་འགྲོ་བདང་གྱུར་ཅིང་། མིད་འཇུག་དེ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་དེ།
དེ་ཡི་འཇིགས་རྩུང་རལ་གྲི་ཡིས། མགོ་བོ་དག་དང་བྲས་བ། 56

སྨོངས་པ་དེ་ཡིར་གི་པ་ནི། གཡེམ་མ་ཆགས་ལས་གཞན་དག་དང་།
ཉེ་བར་སྤྱོར་བ་གཡབ་མདོ་ཀྱང་། རང་ཉིད་བརླག་དོན་འབབ་ཞིག་གྱུར། 57

གླེན་པོའི་རིག་པ་འཁྱོར་བ་སྟོབས། ཕ་རོལ་ཉེ་བར་གཏུང་བའི་སླད།
སྦྱོར་བ་ནོམས་ནི་འཕྲལ་ལ་ཉིད། སྒྲོག་དང་ལྷན་ཅིག་ཉམས་པར་གྱུར། 58

དེ་ནས་རབ་དགའ་ཡོངས་རྫོགས་པ། བྲས་ཞེས་གདེངས་ཅན་འདྲེན་པ་ཡིས།
རང་གི་ཁང་པར་རྔོན་པ་དེ། མཛའ་གཙུགས་བློ་དང་ལྡན་པས་བོས། 59

ནོར་བུའི་ཁང་པ་གཞལ་ཡས་ཁང་། རིན་ཆེན་འཁྲི་ཤིང་སྐྱེད་ཚལ་དེར།
ཅི་དྲ་ཡིས་ནི་མཆོད་བྱེད་ཅིང་། དེ་ཡི་དུས་ནི་འགའ་ཞིག་གནས། 60

དེ་ནས་ཡ་མཚན་ལྡན་པ་དེས། ནམ་ཞིག་གློག་འཕྲེང་ལྷ་བུ་ཡིས།
ཞགས་པ་དོན་ཡོད་ཅེས་བྱ་བ། ཀླུ་ཡིས་མཆོད་པར་བྱེད་པ་མཐོང་། 61

आत्ते विद्याबलात्तेन नागे गरुडतेजसा।
सङ्कोचितबिलाभोगे क्षिप्ते च जलभाजने ॥ ५४ ॥

तं हेमलुब्धं बाणेन त्राससन्दिग्धलोचनम्।
विव्याध धनुराकृष्य विषदिग्धेन लुब्धकः ॥ ५५ ॥

मग्नबाणं तमभ्येत्य भूयस्त्यक्तभुजङ्गमम्।
करालकरवालेन त्विङ्गिलक्ष्यं चकार सः ॥ ५६ ॥

सा विद्या बन्धकी तस्य लोभादन्योपयोगिनी।
अभूत् सिद्धापि मुग्धस्य स्वविनाशाय केवलम् ॥ ५७ ॥

मुक्ताः परोपतापाय विद्याविभवशक्तयः।
सहसैव विमूढानां विनश्यन्ति सहासुभिः ॥ ५८ ॥

ततः प्रहर्षसम्पूर्णः कृतज्ञः फणिनायकः।
तं निनाय स्वभवनं लुब्धकं स्नेहलुब्धकः ॥ ५९ ॥

तत्र रत्नतलोद्यानविमानमणिवेश्मसु।
अभ्यर्च्यमानश्चिरेण कञ्चित्कालमुवास सः ॥ ६० ॥

कदाचिदथ नागेन पूज्यमानः सविस्मयः।
विद्युद्दामोपमं पाशममोघाख्यं ददर्श सः ॥ ६१ ॥

དེ་མཐོང་དེ་ཡི་ནུས་མཐུ་དག། ཀླུ་ཡིས་བ་ཤད་པ་འོས་གྱུར་ནས།
རྫོན་པ་ཆགས་པའི་ཡིད་ལྡན་པས། དེ་ནི་འབད་ནས་རབ་ཏུ་བསྒྲངས། 62

གཡུལ་གྱི་སྒྲོར་བ་མི་ཐམ་ཞིང་། ལྷ་ནོམས་ཀྱང་ནི་འཆིང་བྱེད་པ།
སྒྲོག་ལས་ལྷག་པ་དེ་དེ་ལ། གདེངས་ཅན་དབང་པོ་དགའ་བས་བྱིན། 63

དེ་ནས་ཞགས་པ་དེ་བླངས་ནས། ཅོ་དྲ་ལ་ཞེས་རྫོན་པ་ནི།
ཀླུ་ཡི་ཁང་པ་ལས་འགྲོན་དེ། རྫོན་ཐོབ་རང་གི་གནས་སུ་སོང་། 64

ཀླུ་ཡི་མཐུ་ཡིས་ཐོབ་པ་ཡི། ཕུན་ཚོགས་ཡུན་རིང་དེ་སྤྱད་ནས།
ཨུ་ཏྤལ་ཅན་ཞེས་བུ་བ་ཡི། བུ་ལ་ཞགས་པ་བྱིན་ནས་འདས། 65

རྫོན་པ་གཞོན་ནུ་དེ་ཡིས་ཀྱང་། ཕ་ཡི་སྤྱོད་པ་སྐྱོང་བྱེད་ཅིང་།
རིགས་ཀྱི་ལུགས་ཀྱིས་ཐུབ་ལ་དེའི། རིམ་གྲོ་བྱེད་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 66

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ཐུབ་པ་ནི། བཞུགས་པའི་མདུན་ན་གནས་པ་དེས།
ཤིན་ཏུ་ཕྲ་ཞིང་སྐན་པའི་ཀླུ། ནོ་བའི་བཙུད་ལེན་གྱིས་པ་ཐོས། 67

ཐུབ་པ་རི་མོ་བཀོད་པ་བཞིན། མཐོང་ནས་ཡ་མཚན་དེས་དྲིས་པ།
པདྨོ་ཁོངས་སུ་བྱུང་བ་ནི། ཡང་དག་བསྔམས་པའི་སྒྲ་མཚུངས་ཤིང་། 68

ཁ་བྱུག་དབྱངས་ལྡར་སྐན་པ་ཡི། སྒྲ་འདི་དག་ནི་གང་ལས་ཐོས།
ཞེས་པ་རྫོན་པའི་བུ་ཡིས་དྲིས། དེ་ལ་ཐུབ་པས་རབ་སྨྲས་པ། 69

तं दृष्ट्वा तत्प्रभावञ्च श्रुत्वा नागनिवेदितम्।
यत्नात्तदर्थनाञ्चक्रे लुब्धको लुब्धमानसः॥ ६२॥

अजय्यं समरोद्योगे सुराणामपि बन्धनम्।
तं जीविताधिकं तस्मै ददौ प्रीत्या फणीश्वरः॥ ६३॥

ततस्तं पाशमादाय चिरमामन्त्र्य लुब्धकः।
उत्तीर्य्य नागभवनाल्लब्धार्थः स्वपदं[१] ययौ॥ ६४॥

नागप्रभावसम्प्राप्तां चिरं भुक्त्वा स सम्पदम्।
पुत्रायोत्पलकाख्याय पाशं दत्त्वा व्यपद्यत॥ ६५॥

पालयन् पितुराचारं सोऽपि लुब्धकुमारकः।
मुनेस्तस्य कुलस्थित्या परिचर्य्यापरोऽभवत्॥ ६६॥

ततः कदाचित् स मुनेर्विश्रान्तस्य स्थितः पुरः।
शुश्राव काकलीगीतं कीर्णं कर्णरसायनम्॥ ६७॥

गीतश्रवणनिस्पन्दनिलीनहरिणं वनम्।
चित्रन्यस्तमिवालोक्य सोऽपृच्छद्विस्मितो मुनिम्॥ ६८॥

कमलाबन्धसंरुद्धमधुपध्वनिसोदरः।
कुतोऽयं कोकिलालापललितः श्रूयते स्वनः॥ ६९॥

---

[१] W/1 स्वपुरं।

མི་འམ་ཅི་ཡི་བུ་མོ་རྣམས། སྙན་པར་བརྗོད་པ་འདི་དག་ལེན།
མི་འམ་ཅི་བདག་སྔོན་པ་ཡི། བུ་མོ་ཡིད་འཕྲོག་མ་འདི་ནི། 70

བུ་མོ་ལྔ་བརྒྱས་ཡོངས་བསྐོར་ནས། ཀླུ་ཡི་ཁང་པ་དག་ན་རྩེ།
དེ་ཐོས་དགེ་མཚན་གྲིས་ནོན་ནས། དེ་ཡིས་སླར་ཡང་ཐུབ་ལ་སླས། 71

མི་འམ་ཅི་ཡི་བུ་མོ་དག སྐྱེས་བུས་ཐུབ་པར་ནུས་སམ་ཅི།
ཐུབ་པས་དེར་སྐྱེས་གང་གི་ནི། ལག་རྩེར་ནོར་ཡོད་ཅེས་བྱ་བའི། 72

ཞགས་པས་སོང་སྟེ་འདོད་ལྡན་མ། མི་འམ་ཅི་མོ་བླང་བར་ནུས།
དེ་ནས་དེ་ཐོས་སྤྲོ་ལྡན་པའི། ཇོན་པས་དེ་ལ་ཕྱག་བཙལ་ནས། 73

ཞགས་པ་བཟུང་སྟེ་གདེངས་ཅན་གྱི། དབང་པོའི་ཁང་པ་དག་ཏུ་སོང་།
དེར་དེས་མི་འམ་ཅི་མོའི་ཚོགས། རྩེ་དགའ་རོལ་བས་མཚན་པ་ནི། 74

གསེར་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ནགས་ཀྱི་དཔལ། ལྕུང་གིས་བསྐྱོད་པ་འཛིན་པ་མཐོང་།
དེ་དག་དབུས་སུ་ཡིད་འཕྲོག་མས། ཁྲུས་བྱས་ལངས་པ་མཐོང་གྱུར་ཏེ། 75

ཟླན་པའི་མིག་གསུམ་མ་དག་གི། ཞི་བྱེད་རྩ་ཡི་ལྷ་མོ་བཞིན།
ལུས་མེད་ནུམ་འཕྲུལ་རྫོམ་པ་ཡི། ས་ཀླབས་ཚོགས་ལྡན་ལང་ཚོར་ནི། 76

གཞོན་ནུམ་ཉིད་བྱིང་བ་ཡི། ཉེན་པ་དག་ནི་བྱེད་པ་བཞིན།
ཡིད་འོང་ལྷ་ཡི་གོས་བགོས་ཤིང་། སྐྲ་རགས་དག་ནི་ལེགས་པར་བཅིངས། 77

इति लुब्धकपुत्रेण पृष्टस्तं मुनिरब्रवीत्।
गायन्ति मधुरालापमेताः किन्नरकन्यकाः॥ ७० ॥

द्रुमस्य किन्नरपतेः कन्या कन्याशतैर्वृता।
पञ्चभिर्नागभवने क्रीड़त्येषा मनोहरा॥ ७१ ॥

श्रुत्वैतत् कौतुकाक्रान्तः स पुनर्मुनिमभ्यधात्।
अपि शक्नोति पुरुषः प्राप्तुं किन्नरकन्यकाम्॥ ७२ ॥

तमुवाच मुनिर्यस्य भवेत् पाशः कराग्रगः।
अमोघाख्यः स शक्नोति हर्त्तुं किन्नरकामिनीम्॥ ७३ ॥

स तदाकर्ण्य[1] सोत्साहस्तं प्रणम्याथ लुब्धकः।
प्रययौ पाशमादाय भोगीन्द्रभवनान्तिकम्॥ ७४ ॥

तत्र केलिविलासाङ्कं सोऽपश्यत् किन्नरीगणम्।
विश्राणमनिलालोलहेमवल्लीवनश्रियम्॥ ७५ ॥

मध्ये स्नानोत्थितां तासां स ददर्श मनोहराम्।
स्मरस्येव त्रिनेत्राग्निनिर्व्वाणजलदेवताम्॥ ७६ ॥

अनङ्गविभ्रमारम्भनिर्भरोर्मिणि यौवने।
मज्जतः शैशवस्येव कुर्व्वाणामवलम्बनम्॥ ७७ ॥

---

१ W/2 एतदाकर्ण्य।

ཆུ་རྩེད་རོལ་པས་དགྱེ་བ་ཡི། འཕྲིང་བ་རབ་གསལ་ཆགས་པ་བཞིན།
མཛེས་སྡུག་རབ་ཏུ་དཀྲིགས་གྱུར་པ། དོ་ཤལ་གསར་པའི་ཕྲུན་དག་ནི། 78

ཤིན་ཏུ་ཆེ་བས་མཚན་མོའི་དཔལ། ཟླ་བ་དཀར་བ་ཕྲོགས་པ་བཞིན།
ནོ་ཕྲུན་རིན་ཆེན་འོད་ཟེར་གྱིས། ཚོགས་ཀྱི་འགྲུས་པ་དག་ལ་ནི། 79

རོལ་བའི་པ་དྲ་འཁྲི་ཤིང་སྐྲར། ཆུ་ཡི་དག་པ་བྲི་བ་བཞིན།
དཔྲལ་བའི་ཕྲུན་དུ་གློགས་མོ་ཡི། ཟླ་རྩེའི་རི་མོ་འབྲི་བྱེད་པ། 80

བསིལ་ཟེར་དྲི་མ་ལྡན་པ་ཡིས། སྐྱིངས་པ་ཞི་བར་བྱེད་པ་བཞིན།
དེ་མཐོང་ཡ་མཚན་འབེབས་བ་ཡི། ཞགས་པས་ཡིད་ནི་དྲངས་གྱུར་པ། 81

རྔོན་པས་འཕྲུལ་ལ་ཞགས་པ་ནི། དོན་ཡོད་ཅེས་པ་ལེགས་པར་བསྒྱུར།
དེ་ནས་ལག་ན་ཞགས་པ་དེས། མཐོང་ནས་འཕྲུལ་ལ་རབ་སྐྲག་ཅིང་། 82

གཡོ་བ་རི་དྭགས་མིག་ཅན་མ། མི་འམ་ཅི་ནོམས་མགྲོ་རིས་སོང་།
དེ་ཡི་མྱུར་བར་ལག་པ་ཡིས། ཞགས་པ་འཕངས་པས་ཡིད་འཕྲོག་མ། 83

སྐྲག་པའི་མིག་དང་ལྡན་པ་བཟུང་། རི་དྭགས་མོ་ནི་རྔོན་པས་བཞིན།
དེ་ཡིས་དབང་མེད་ཞགས་པས་དྲངས། སྐད་ཅིག་བརྒྱལ་ནས་མིག་ཟུམ་ཞིང་། 84

སྡུག་བསྔལ་གནས་སྐབས་བསྟེན་པ་དེར། འདི་ཅི་ཞེས་པ་ཤེས་མ་གྱུར།
ཁྱུ་ཉམས་རི་དྭགས་མོ་བཞིན་དུ། རང་གི་སྐྲི་བོ་ལྟ་བསམ་པས། 85

मेखलाबन्धसन्नद्धदिव्याम्बरमनोरमाम् ।
जलकेलिकलासिक्तस्फुरत्फेनावलीमिव ॥ ७८ ॥

लावण्यप्रसृतेनेव प्रवाहेन महीयसा ।
हरन्तीं तारहारेण शशिशुभ्रनिशाश्रियम् ॥ ७९ ॥

कलयन्तीं जलोत्क्रीडां लीलापचलतां पुनः ।
कर्णाभरणरत्नांशुकर्णोत्पलकपोलयोः ॥ ८० ॥

कस्तूरीलेखया सख्या लिख्यमानललाटिकाम् ।
कलङ्ककलनाक्लैब्यं शमयन्तीं हिमत्विषः ॥ ८१ ॥

तां दृष्ट्वा विस्मयावेशपाशेनाकृष्टमानसः ।
चक्रे पाशममोघाख्यं सज्जं सपदि लुब्धकः ॥ ८२ ॥

ततः सन्त्रासतरलाः सहसा हरिणेक्षणाः ।
किन्नर्यो दिवमुत्पेतुः पाशहस्तं विलोक्य तम् ॥ ८३ ॥

लघुहस्ततया क्षिप्त्वा पाशञ्चकितलोचनाम् ।
मनोहरां स जग्राह हरिणीमिव लुब्धकः ॥ ८४ ॥

सा पाशविवशा तेन कृष्टा कष्टदशां श्रिता ।
किमेतदिति नाभासीत् क्षणं मूर्च्छानिमीलिता ॥ ८५ ॥

ཕྱོགས་སུ་ཉམས་པར་ལྟ་བྱེད་ཅིང་། ཀུན་སྨོངས་མ་རེས་དེ་ལ་སྨྲས།
ཕྲོང་ཞིག་ཕྲོང་ཞིག་བདེན་པར་བཅིངས། བདག་ལ་མ་རིག་ཡོངས་སུ་སྤྱངས། 86

ངེས་པར་སྐྱ་ངན་གྱིས་གཟིར་ལ། གདུག་པ་ཉམས་ཀྱང་བརྩེ་ལྡན་ཡིན།
ཆགས་ལས་ལྷ་ཡི་བུ་མོ་ནི། མཆོག་མིན་གནས་ལ་སྦྱར་བ་ན། 87

འཕྲུལ་ལ་སྒྲུབ་པ་པོ་ཉིད་སྲེག། རབ་ཏུ་འབར་བའི་རིག་པ་བཞིན།
གླི་ལྡན་གླི་ཡིས་ཉམ་དབྱོད་ནས། ཉེས་པ་དག་ལ་བདག་སྨྲ་ལ་ན། 88

ཁྱོད་ལ་ངེས་པར་ཆོས་དང་ནི། ནོར་གྱི་ཆགས་ཆེན་འབྱུང་བར་འགྱུར།
ཞགས་པས་བསྡམས་པར་གདུང་བ་ནི། བདག་གིས་མི་བཟོད་བཅིངས་པ་ཕྲོང་། 89

གང་དུ་ཁྱོད་འགྲོ་མངོན་འདོད་པ། དེར་ནི་བདག་རང་ཉིད་ཀྱིས་འགྲོ།
བཅིངས་བ་བཏང་བར་གྱུར་ཀྱང་བདག། མཁའ་ལ་འཕྱུར་ནས་ཡོངས་མི་འགྲོ། 90

གང་གི་དབང་གིས་མཁའ་ལ་བདག། འགྲོ་བའི་གཙུག་གི་རིན་ཅེན་བཟུང་།
ཞེས་དེས་མཆི་མ་དང་བཅས་སྨྲས། སྙིང་རྗེས་བརླན་བ་ཉིད་གྱུར་དེས། 91

གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཡང་དག་བླངས! ཞགས་པ་བཀྲོལ་ནས་དེ་ལ་སྨྲས།
དགེ་མ་དབྱུགས་ནི་དབྱུང་བར་མཛོད། སྐྱ་ངན་བྱ་བར་ཡོངས་མི་འོས། 92

ངེས་པར་འོས་པ་མིན་ལ་ཁྱོད། རང་གི་འདོད་པས་སྐྱོལ་མི་བགྱིད།
གང་གི་གྲགས་པ་བདུད་རྩི་ཡི། ཟ་རླབས་ཀྱིས་ནི་ཕྱོགས་ཀུན་ཁེངས། 93

यूथभ्रष्टेव करिणी स्वजनालोकनाशया ।
निरीक्षमाणा ककुभः सा सम्भ्रान्ता तमभ्यधात् ॥ ८६ ॥

मुञ्च मुञ्च हठाक्षिप्तां मा स्प्राक्षीः परिरक्ष माम् ।
क्रूरा अपि भवन्त्येव शोकार्त्तेषु कृपालवः ॥ ८७ ॥

लोभादनुत्तमपदप्रयुक्ता दिव्यकन्यका ।
सद्यः प्रदीप्ता विद्येव निर्दहत्येव साधकम् ॥ ८८ ॥

मां विचार्य्य धिया धीमन्नुचिताय प्रयच्छतः ।
भविष्यति तवावश्यं महान् धर्म्मधनागमः ॥ ८९ ॥

पीड़ां पाशकृतामेतां न सहे मुञ्च बन्धनम् ।
स्वयं व्रजाम्यहं तत्र यत्र तेऽभिमता गतिः ॥ ९० ॥

दिवमुत्पत्य गच्छामि नत्वहं मुक्तबन्धना ।
यद्दशान्मे गतिर्व्योम्नि चूड़ारत्नं गृहाण तत् ॥ ९१ ॥

इत्युक्तः स तया सार्द्धं प्रयातः करुणार्द्रताम् ।
चूड़ामणिं समादाय पाशं मुक्त्वा जगाद ताम् ॥ ९२ ॥

समाश्वसिहि कल्याणि न शोकं कर्त्तुमर्हसि ।
न नामानुचिताय त्वां प्रयच्छामि निजेच्छया ॥ ९३ ॥

ཡོན་ཏན་རིན་ཅེན་རྒྱ་གཏེར་ཆེ། དཔལ་ལྡན་གྲུབ་པོའི་སྲས་པོ་ཡོད།
དེ་ནི་རིག་པ་ཞལ་ལ་ཆགས། སྒྱུ་རྩལ་རྩེད་འཇོས་ནམ་པར་བསྒྲུན། 94

རང་གི་རིགས་ཀྱི་ཁྱད་པར་ཅན། ལེགས་སྤྱོད་ནོར་བཟང་ཞེས་པའོ།
བདེ་དགའ་དག་གི་དཔལ་བཞིན་དུ། གཞོན་དང་ལོངས་སྤྱོད་སྐལ་བ་བཟང་། 95

ནམ་འཕྲུལ་ས་ཡི་གྲུན་གྱུར་དེ། སྨིན་ལེགས་ཁྱོད་ལ་ཡང་དག་འོས།
གང་གི་ས་ཡི་མཚན་མོའི་བདག། ལྷ་དང་དྲི་ཟ་མི་འམ་ཅི། 96

རིག་འཛིན་ནམ་པར་རྩེན་ནམས་ཀྱི། ཞིངས་པ་དག་ནི་ཕྲང་དུར་བྱེད།
ཅེས་པ་དེ་ལ་དབུགས་ཕྱུང་ཞིང་། གཉེན་ཚོགས་བྲལ་བའི་ཡིད་འཕྲོག་མ། 97

ཀུ་ར་རི་བཞིན་ཤིན་ཏུ་ནི། སྙིང་རྗེ་རྗེ་སྐད་ཆེ་ངེ་བརྗོད།
སྐབས་དེར་འབིགས་བྱེད་ངོས་ལ་ནི། རྟོན་གྱི་རྩེད་མོའི་དགེ་མཚན་ལ། 98

འཕོངས་མཁས་ནོར་བཟང་སོང་གྱུར་པ། རིམ་གྱིས་གནས་དེར་འོངས་པར་གྱུར།
དེ་ཡི་ཤིང་རྟའི་སྒྲ་ཁྱུད་སྐྲས། མི་བུའི་ཚོགས་ཀྱིས་གར་བྱས་ནས། 99

དུ་ཀུ་ལ་ཉིད་གཡོ་ཞིང་སྦྲོ། ནགས་ཀྱི་དཔལ་མོས་སྐད་ཅིག་ཐོབ།
དེ་ནི་རྡུལ་གྱི་རྒྱ་ཐིགས་དག། འགྲམ་པར་ཆགས་པས་རབ་མཛེས་པས། 100

ནོ་གྲུན་མཐའ་ན་རབ་མཛེས་པས། སྨུ་དིག་འབྲས་བུ་འཕོས་པ་བཞིན།
མདུན་དུ་སོ་ཡི་འོད་ཟེར་གྱིས། ཤིང་རྟའི་རྟ་མིག་གིས་བསྐྱངས་པའི། 101

अस्ति राजसुतः श्रीमान् गुणरत्नमहोदधिः ।
पूरिताः ककुभः सर्व्वा येन कीर्त्त्यमृतोर्म्मिभिः ॥ ९४ ॥

स विद्यावन्धनादर्शः कलाकेलिविभूषणः ।
सुवृत्तः सुधनो नाम निजवंशविशेषकः ॥ ९५ ॥

स ते समुचितः सुभ्रु विभ्रमाभरणं भुवः ।
त्यागोपभोगसुभगः सुखोत्सव इव श्रियः ॥ ९६ ॥

सुरकिन्नरगन्धर्व्वविद्याधरविलासिनाम् ।
यः खर्व्वीकुरुते गर्व्वमुर्व्वरांशर्व्वरीपतिः ॥ ९७ ॥

इति तेन कृताश्वासा बन्धुवर्गवियोगिनी ।
कुररीवातिकरुणं विललाप मनोहरा ॥ ९८ ॥

अथान्तरे विन्ध्यतटीं मृगयाकेलिकौतुकी ।
प्रस्थितः सुधनो धन्वी शनैस्तं देशमाययौ ॥ ९९ ॥

रथनेमिस्वनैस्तस्य प्रनृत्यच्छिखिमण्डली ।
वनलक्ष्म्याः क्षणं लेभे लोलनीलदुकूलताम् ॥ १०० ॥

स कपोलप्रणयिभिर्बभौ स्वेदोदबिन्दुभिः ।
सङ्क्रान्तैः कुण्डलप्रान्तकान्तमुक्ताफलैरिव ॥ १०१ ॥

དངུལ་གྱི་ཚོགས་ཉམས་འཕྲོག་པ་བཞིན། ཁ་ལོ་པ་ལ་དེས་སྨྲས་པ།
ཀྱེ་མ་ཡིད་ཀྱི་ཤིང་རྟས་བཞིན། ཤིང་རྟ་རླུང་ལྟར་མགྱོགས་པ་ཡིས། 102

རང་སྤྱི་རིང་དུ་བཏང་ནས་ནི། ཇི་སྙེད་ས་གཞི་འདས་པར་གྱུར།
བྱང་ཆུབ་ཤིང་གི་ཡལ་འདབ་ནི། རླུང་གཞོན་གྱིས་བསྐྱོད་གཡོ་ལྡན་པ། 103

ས་འཛིན་གྱིན་ནི་ལྗོང་ག་ཡིས། ལྗོང་པའི་མཛེས་པ་ཉིད་དག་འཕྲོག།
འཁྲི་ཤིང་གསར་པ་བྱི་རུའི་མཆུ། མེ་ཏོག་ཕྲན་བུའི་ནུམ་གྱིས། 104

སྐྱེ་མ་རླུང་གིས་དཀྲུགས་འདི་དག། སྲིད་ལྡན་བཞིན་དུ་གཡལ་བར་བྱེད།
མ་ར་ཀད་ལྟར་ལྗང་བའི། ཙ་སྔོན་ཚོགས་ཀྱི་སྟོད་ཀོར་ཅན། 105

མེ་ཏོག་རྡུལ་གྱིས་སྦྲུས་པ་ཡི། ནགས་འཕྲིང་འདི་དག་རབ་ཏུ་མཛེས།
སྐྲག་ནས་བྲོས་བའི་རི་དྭགས་མོ། འདི་དག་མགྲིན་པ་འཁྱོག་པོ་ཡིས། 106 107
གཡོ་ཞིང་བལྟ་བས་ཨུཏྤལ་ནི། སྔོན་པོའི་ནགས་ཚལ་སྤྲོ་བ་བཞིན།

སོ་ནི་མཚན་མོར་བྱེད་པའི་ཆ་ཡི་སྤུ་གུ་ལྟར་མཛེས་ཤིང་།
ཐུམ་པ་རི་ཁྲོད་མ་བདག་མཛའ་མོའི་ནུམ་དག་དང་མཚུངས།
རྒྱབས་ཀྱི་སྨྲས་བཅོམ་ཉམས་པར་གཡོ་བའི་ནི་བླགས་སོ་ལྡན་གྱི།
ཕྲུག་གུ་འདི་དག་ཀུན་ནས་བདག་གི་ཤིང་རྟ་དག་ལ་བལྟ། 108

स्यन्दनाश्वखुरोद्भूतं दन्तदीधितिभिः पुरः ।
हरन्निव रजःपुञ्जं व्याजहार स सारथिम् ॥ १०२ ॥

अहो मनोरथेनेव रथेनानिलरंहसा ।
दूरोज्झिता स्वसैन्येन कियती लङ्घिता क्षितिः ॥ १०३ ॥

एता बालानिलोल्लासलोलपिप्पलपल्लवाः ।
हरन्ति हरितच्छायां हरिणाभरणा भुवः ॥ १०४ ॥

एता बालप्रवालोष्ठाः स्तवकस्तनबन्धुराः ।
सोत्कण्ठा इव जृम्भन्ते मञ्जर्यः श्वसनाकुलाः ॥ १०५ ॥

इमा मरकतश्यामशष्पसञ्चयकञ्चुकाः ।
राजन्ते कौसुमरजोरञ्जिता वनराजयः ॥ १०६ ॥

एता विवलितग्रीवा हरिण्यस्त्रासविद्रुताः ।
नीलोत्पलवनानीव सृजन्ति तरलेक्षितैः ॥ १०७ ॥

एते निशाकरकराङ्कुरकान्तदन्ताः
पल्लीपतिप्रणयिणीस्तनतुल्यकुम्भाः ।
पश्यन्ति दन्तिशिशवः परितो रथं मे
नेमिस्वनापहृतचापललीनकर्णाः ॥ १०८ ॥

---

१ W₂ पल्लीपति० ।

ཤ་བ་རི་ཡི་རྐེད་སྐབས་ལས་འཕྲེ་མོ་བྱའི་འདབ་འཕྲེང་རོལ་པས་བསྐྱོད་བ་ཡི།
རྩེད་འཇོའི་ནོར་འཕྲུལ་ཆ་ཡི་འཆིང་བ་ཉམས་ལ་ཆས་པར་གྱུར་པ་འཛིགས་བྱེད་རྒྱུང་།
དྲི་མེད་ཆུ་སྦྲུང་ཤར་མ་ནུ་ངོགས་འཁྲི་ཤིང་གསོ་ཞིང་ནོར་པར་གྱུར་བ་ཡི།
མི་དོག་སྦྲང་རྩིའི་དགའ་སྟོན་གྱིས་པས་རབ་བསྒྲོས་འདི་དག་སྨོས་པ་བཞིན་དུ་འཁྲུས། 109

ཞེས་པ་སྨྲ་བའི་མི་བདག་བུ། ནགས་ཀྱི་དཔལ་ལ་སྤྲོད་པ་ཡིས།
སྐྱེ་བོ་མེད་བར་མི་འམ་ཅིའི། སྙིང་རྗེའི་སྒྲ་ཡིས་གང་བ་ཐོས། 110

ཐོས་ནས་དགེ་མཚན་གྲིས་དྲངས་ཏེ། དེ་དང་ཉེ་བ་བརྩེ་བའི་གཏེར།
ཡོན་ཏན་དང་པའི་མེ་ལོང་ནི། སོང་བས་རི་དྭགས་མིག་དེ་མཐོང་། 111

མིག་རྒྱུར་བཅས་པས་རྗོན་པ་ལ། ཡོངས་སུ་བསྐྱབ་པ་ཞུ་བྱེད་ཅིང་།
ནགས་ཀྱི་ཟད་པའི་སྡུག་བསྔལ་དང་། ལྡན་པའི་ནགས་ཚལ་ལྷ་མོ་བཞིན། 112

རི་དྭགས་མཚན་པའི་དཔལ་མོ་ནི། རབ་བརྟགས་རི་དྭགས་རྗོན་བ་ཡིས།
དྲངས་པ་འཚོལ་དུ་འོངས་གྱུར་པ། ནགས་སུ་འཁྲུམས་ཤིང་སྐྱོ་བ་བཞིན། 113

དེ་མཐོང་ཐུལ་དུ་བྱུང་བའི་གཟུགས། ངོ་མཚར་བཅས་པས་ཡ་མཚན་ཏེ།
མངོན་པར་འདོད་པའི་རས་ལ་ནི། མྱུར་དུ་རི་མོ་བཀོད་བཞིན་གྱུར། 114

དེ་བསམས་ཀྱི་མ་འདི་ཡི་བཞིན། ལེགས་བར་འབྲི་ལ་མཛེས་པ་ནི།
རྣམ་པར་སྤྲུལ་བྱེད་གོམས་བྱས་བའི། བྱེད་པོ་རི་མོ་ཡོངས་སུ་སྨིན། 115

एते निर्मलनर्मदापरिसरव्याजृम्भिवल्लीवलत्-
पुष्पोद्दाममधूत्सवप्रणयिनः क्षीवा इवाघूर्णिताः ।
सन्नद्धाः शबरीनितम्बविलसन्मायूरपत्रावली-
लीलान्दोलननर्मविभ्रमकलाबन्धेषु विन्ध्यानिलाः ॥ १०९ ॥

इति ब्रुवाणः कलयन् वनलक्ष्मीं नृपात्मजः ।
शुश्राव निर्जनाकीर्णं किन्नर्याः करुणस्वनम् ॥ ११० ॥

श्रुत्वैव कौतुकाकृष्टस्तत्समीपं कृपानिधिः ।
सोऽभ्येत्य सद्गुणादर्शस्तां ददर्श मृगीदृशम् ॥ १११ ॥

याचमानां परित्राणं लुब्धकं साश्रुलोचनाम् ।
वनेचरभयोद्विग्नामिव काननदेवताम् ॥ ११२ ॥

अन्वेष्टुं लुब्धकाकृष्टं स्वमङ्कमृगमागताम् ।
खिन्नामिव वनभ्रान्त्या लक्ष्मीं हरिणलक्ष्मणः ॥ ११३ ॥

तां विलोक्य स साश्चर्यरूपातिशयविस्मितः ।
अभिलाषपटे क्षिप्रं चित्रन्यस्त इवाभवत् ॥ ११४ ॥

सोऽचिन्तयदहो रम्यनिर्माणाभ्यासकारिणः ।
अस्मिन्मुखसमुल्लेखे रेखापरिणतिर्विधेः ॥ ११५ ॥

གདིངས་ཅན་གནས་ན་རྟེན་པར་དཀའ། མི་ཡི་ཡུལ་ན་གཏམ་ཉིད་ཅི།
མཛེས་སྡུག་གྱི་འདི་མཐོ་རིས་སུའང་། གསར་དུ་མགྲོན་པར་འཁྲུངས་སམ་སྙམ། 116

གཞོན་ནུ་མ་ཉིད་དར་ལ་བབ་པས་འཕྲུངས་པས་ལུས་མེད་དང་བཅས་སྒེག་ལྡན་ཞིང་།
ལུས་ཕྲ་མཉེན་ལྷུག་གསར་དུ་བསྟོད་བྱས་ཡན་ལག་ཀུན་འགྲོགས་གྲོགས་ཅན་གང་གིས་ནི།
འབབ་མེད་པ་རོལ་གཞོན་ལ་ཞེན་དུ་གྱུ་ཆེར་རྩོམ་པའི་མངོན་སྦྱོར་དང་བྲལ་བར།
འགྲོ་བའི་རྒྱལ་སྲིད་ཚོ་ལ་རྩེ་དགའི་མཚོན་དང་ལྡན་པའི་ལྷ་ནི་ནོམ་པར་རྒྱལ། 117

དེ་ལྟར་ཡ་མཚན་སྐྱིད་པོ་ཅན། མངོན་པར་འདོད་ལྡན་མིག་གི་ནི།
དེ་འཕྲུངས་མཚུངས་ལ་མངོན་ཕྱོགས་དེ། ཕྱག་འཚལ་ཇོན་བས་རབ་སྨྲས་པ། 118

མི་འམ་ཅི་རྒྱལ་རིགས་ཀྱི་ན། དཔག་བསམ་ལྗོན་པ་ལྗོན་པ་ཡི།
བུ་མོ་ཡིད་དུ་འོང་མ་འདི། ལྷ་གཅིག་བདག་གི་ཞགས་བས་དྲངས། 119

ཁྱོད་སྐད་བླངས་པའི་གཞོན་ནུ་མ། མཆོག་འདི་རབ་ཏུ་གཟུང་བར་མཛོད།
ཡོན་ཏན་གྱི་ཆེ་ཁྱོད་ཉིད་ནི། ས་གཞི་འདི་ཡི་བདག་ཏུ་འོས། 120

འདི་ཡི་གཙུག་གི་ནོར་བུ་འདི། རང་འདོད་འགྲོ་ཕྱིར་བདག་གིས་ནི།
བཟུང་ཕྱི་དེ་དང་བྲལ་བས་ནི། ནམ་མཁའ་དག་ལ་འགྲོ་བ་མེད། 121

ནོར་བུ་འདི་ནི་བསྲུང་བྱ་སྟེ། འདི་བྱིན་འདི་དང་ཕྲད་པ་མེད།
བུ་མོ་རིན་ཅན་རིན་ཅན་ཡང་། དེ་བརྗོད་དེ་ལ་ཇོན་པས་བྱིན། 122

दुर्लभा भोगिभवने मर्त्यलोके कथैव का ।
मन्ये लावण्यमुद्रेयं स्वर्गेऽप्यभिनवोदिता ॥ ११६ ॥

तारुण्येन निपीतशैशवतया सानङ्गशृङ्गारिणी
तन्वङ्ग्याः सकलाङ्गसङ्गमसखी भङ्गिर्नवाङ्गीकृता ।
निःसंरम्भपराक्रमः पृथुतरारम्भाभियोगं विना
साम्राज्ये जगतां यया विजयते देवो विलासायुधः ॥११७॥

इति विस्मयगर्भेण साभिलाषेण चक्षुषा ।
तां पिबन्तमिवाभ्येत्य प्रणम्य प्राह लुब्धकः ॥ ११८ ॥

कुलकल्पद्रुमस्येयं द्रुमस्य दयिता सुता ।
देव किन्नरराजस्य पाशेनापहृता मया ॥ ११९ ॥

आनीता त्वत्कृते दिव्यकन्यैषा प्रतिगृह्यताम् ।
त्वमेवास्या गुणोदार भर्त्ता भुव इवोचितः ॥ १२० ॥

अस्याश्चूडामणिरयं मया स्वेच्छागतिप्रदः ।
गृहीतस्तद्विरहिता नेयं याति विहायसा ॥ १२१ ॥

रक्ष्यो मणिरयं नास्ति दत्तेऽस्मिन् सङ्गमोऽनया ।
इत्युक्त्वास्मै ददौ कन्यारत्नं रत्नञ्च लुब्धकः ॥ १२२ ॥

ས་ཡི་རི་དྭགས་མཚན་མ་དེ། རྒྱལ་པོའི་བུ་ཡིས་བླངས་པ་ན།
བདུད་རྩིས་བྲན་བཞིན་རང་ཡུལ་དང་། བྲལ་བའི་མེ་ནི་བདང་བར་གྱུར། 123

འདོད་ལྡན་མིག་གིས་གཡོ་བ་ཡི། རི་དྭགས་གཞོན་ནུ་མ་འདྲ་དེ།
རྔོན་པས་བདང་ནས་ཡིད་ཀྱིས་ནི། ཆགས་པའི་གྲི་ཡིས་བཅིངས་པར་གྱུར། 124

མི་འམ་ཅི་མོ་ཤིང་རྟར་བགོད། རྔོན་པ་རིན་ཆེན་ནོམས་ཀྱིས་བཀང་།
དགའ་བ་བསྐྱེས་པའི་ས་བདག་སྲས། རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་དག་ཏུ་སོང་། 125

ཏ་ཕྱི་ན་ཡི་གྲོང་ཕྱིན་ཏེ། རང་གི་གདམས་ནི་ཕ་ལ་བཤད།
དགའ་བས་ཡ་མཚན་གྱུར་པ་དེས། བག་མ་ཡི་ནི་དགའ་སྟོན་བསྒྲུབས། 126

གཟུགས་ཅན་རི་བོང་ཅན་གྱི་དཔལ། དགེ་བས་སྤྱད་བྱར་གྱུར་པ་བཞིན།
མི་འམ་ཅི་ཡི་བུ་མོ་ནི། ཕོ་བྲང་འཁོར་དུ་གནས་པར་བྱས། 127

མཆུ་ཡི་སྦྲང་རྩིར་ཆགས་ལྡན་པ། སྦྲང་རྩི་འཐུངས་པས་བཞན་དུ་དེས།
རིག་པས་བཞིན་གྱི་ཆུ་སྐྱེས་ནི། དྲུད་ཅིང་པདྨོ་ཅན་དེ་འདར། 128

སྨྲ་བ་བཅད་ཀྱང་སྨྲེད་པ་འཆང་། གཡོ་བ་མེད་ཀྱང་ཡང་ཡང་འདར།
སྐྱེངས་པར་གྱུར་ཀྱང་དཔལ་མདངས་གསལ། དེ་ཡི་དགའ་བ་དེ་ཡིས་བསྒྲུབས། 129

དལ་གྱིས་མཆུ་ཡི་རོ་མྱངས་ཞིང་། སོ་ཡི་འཛིགས་པ་བྱིན་ནས་ནི།
ཆུ་སྐྱེས་གྱུར་པའི་མིག་ཅན་དེའི། སྨྲ་བ་བཅད་གྱུར་དེ་ཡིས་ཕྲལ། 130

गृहीता राजपुत्रेण सा महीमृगलक्षणा।
सुधासिक्तेव तत्याज स्वदेशविरहानलम्॥ १२३॥

उत्कण्ठालोकनालोलां तां बालहरिणीमिव।
बबन्ध लुब्धकात्यक्तां रागवागुरया स्मरः॥ १२४॥

किन्नरीं रथमारोप्य रत्नैरापूर्य्य लुब्धकम्।
हर्षपूर्णः स्वनगरं प्रतस्थे पार्थिवात्मजः॥ १२५॥

स हस्तिनापुरं प्राप्य निवेद्य स्वकथां पितुः।
हर्षाद्विस्मयिना तेन विवाहे विहितोत्सवः॥ १२६॥

सुकृतैर्भोग्यतां यातां मूर्त्तामिव शशिश्रियम्।
अन्तःपुरप्रणयिनीं चक्रे किन्नरकन्यकाम्॥ १२७॥

दधता मधुपेनेव तेनाधरमधुस्पृहाम्।
स्पृष्टा नतमुखाम्भोजा चकम्पे नलिनीव सा॥ १२८॥

मौनेऽपि कथितोत्कण्ठा मुहुः कम्पेऽपि निश्चला।
वैलक्ष्येऽपि स्फुटश्लक्ष्णीस्तस्य प्रीतिं ततान सा॥ १२९॥

स शनैरधरास्वादे दत्वा दन्तविभीषिकाम्।
निमीलितदृशस्तस्या मौनमुद्रामवारयत्॥ १३०॥

གོས་མདུད་འགྲོལ་དང་དགག་པ་ལ། ཁྲོ་ཤུག་ལག་བའི་པདྨ་དག།
རབ་ཏུ་འདར་ལྡན་གདུབ་བུའི་སྒྲ། ཅོད་པ་བྱེད་པར་གྱུར་པ་བཞིན། 131

རྩེ་དགའ་འཇུམ་གྱི་མི་དོག་གྱིས། མཛེས་མའི་ནུ་མའི་འབྲས་བུ་མཚན།
ཆགས་བཅས་ཡལ་འདབ་ལྡན་པ་དེའི། ལོངས་སྤྱོད་ཀང་འཕུང་སྤྲུད་བྱུར་གྱུར། 132

གནས་སྐབས་དེར་ནི་ཀློ་ཕྱོགས་པ། བྲམ་ཟེ་སེར་སྐྱ་པུཀྐ་ར་གཉིས།
རྒྱལ་པོ་ནོར་གྱི་མདུན་སར་ནི། འཚོ་བ་འདོད་པས་འོངས་པར་གྱུར། 133

རིག་པ་ཕྲུལ་བྱུང་བ་སྤུགས་འོས་པ། དེ་དག་མདུན་ན་འདོན་གཉིས་སྤོབ།
སེར་སྐྱ་དག་ནི་ས་སྐྱོང་གི། རྒྱལ་པོའི་བུ་ཡིས་གཞན་པའོ། 134

དེ་དག་རིག་པས་བཅིངས་པ་ཡིས། དོག་ཏུ་ནམས་པར་ཅོད་བྱེད་ཅིང་།
ཇོས་གཅིག་མངོན་པར་འདོད་པ་ཡིས། ནམས་པར་སྨོང་བ་ཡང་དག་སྤྲིས། 135

སླུང་པོ་ལ་འོས་སྐུན་བྱེད་པ། དེ་དག་གདོང་གི་རིག་པ་ནི།
ཚང་གི་རི་མོ་ལྟ་བུ་དག། ཞི་སྟང་སྐྱོན་གྱིས་ཉམས་པར་བསླུབས། 136

གང་གིས་རིག་པ་མར་མེའི་རྩེ་མོ་དངོས་པོ་ནམ་འབྱེད་ཡོན་ཏན་དག་གི་སྒྲོགས།
འཇིག་རྟེན་རབ་ཏུ་གསལ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་མདུན་དུ་ཞི་སྟང་སྨྲན་པ་མི་བཟད་བྱེད།
སྨོངས་པས་ཉེར་བཅོམ་ཊོག་སྤྱོད་དང་བྲལ་གཞུང་བཟང་རྩུང་མའི་དགྲ་པོ་དེ་དག་ཚམས།
ཅན་དན་བླ་བ་རྩ་ཤེལ་པདྨ་ཁ་བ་ལས་འབྲངས་མི་ཡིས་སློག་པར་བྱེད། 137

नीवीमोक्षे निषेधे च दम्पत्योः पाणिपद्मयोः ।
विवाद इव सोत्कम्पं कङ्कणस्वनयोरभूत् ॥ १३१ ॥

स रागपल्लवस्तस्य विलासस्मितपुष्पितः ।
कान्ताकुचफलाढ्योऽभूत् भोग्यः सम्भोगपादपः ॥ १३२ ॥

अत्रान्तरे दाक्षिणात्यौ विप्रौ कपिलपुष्करौ ।
आजग्मतुर्वृत्तिकामौ धनस्य नृपतेः सभाम् ॥ १३३ ॥

तौ विद्यातिशयश्लाघ्यौ पौरोहित्यमवापतुः ।
कपिलः क्षितिपालस्य राजपुत्रस्य चापरः ॥ १३४ ॥

तयोः स्पर्धानुबन्धेन सदा विवदमानयोः ।
एकद्रव्याभिलाषेण विद्वेषः समजायत ॥ १३५ ॥

द्वेषदोषेण मातङ्गयोग्यनिर्घातयोस्तयोः ।
विदधे मदलेखेव विद्या मलिनतां मुखे ॥ १३६ ॥

येषां वस्तुविवेकिनां गुणसखी लोकप्रकाशोन्मुखी
विद्यादीपशिखा करोति विषमं द्वेषान्धकारं पुरः ।
ते मोहोपहता विचाररहिताः सौजन्यजन्याहिताः
दग्धाश्चन्दनचन्द्रकान्तकमलस्यन्दोद्गतेनाग्निना ॥ १३७ ॥

ཐོས་དང་དྲན་དང་རྟོད་ཉམས་ལ། གནས་དང་གནས་སུ་པུཎྜ་ར་གྱིས།
ངེས་པར་ཚར་བཅད་སེར་སྣ་ཡིས། ཁྲོ་བའི་གདུང་བས་ཡོངས་སུ་བསམས། 138

རྣོ་ཞིང་བརྟན་པར་གོམས་གྱུར་པ། མི་བཟད་ཤུགས་ཤིང་འཆར་བ་འདིས།
རྟག་ཏུ་གོམས་བས་ཞན་པ་བདག། མདུན་ས་དག་ཏུ་སྐྱེངས་པར་བྱེད། 139

ཤེས་རབ་སྐྱེ་བྱེད་ཚུལ་དང་ནི། ཐོས་པ་དྲིགས་པའི་རིམ་དག་དང་།
ནོར་ནི་ཆོས་དག་འགོག་པའི་སྐད། མ་རབས་སེམས་ལྡན་ཉམས་ལ་འགྱུར། 140

དྲིགས་ལྡན་འདི་ཡི་རྒྱལ་སྲས་ལ། བརྟེན་ནས་བདག་ནི་ཡོངས་སུ་འཛེམས།
དེ་སྐད་འདི་ཡིས་རྟེན་ཉིད་ལ། དཔལ་གྱི་ཙཱ་བ་བདག་གིས་གཞོམ། 141

རིགས་པའི་ཐབས་ནི་འབད་ཞིག་གིས། རྒྱལ་པོའི་སྲས་ནི་དགུམ་པ་ལ།
བདག་ནི་འབད་པ་བྱ་བར་འོས། ཁྱེངས་པ་ཉམས་པ་ཇི་ལྟར་བཟོད། 142

དེ་ལྟར་དྲག་པོའི་སྡིག་བརྟགས་པ། དེ་ལ་སྡང་བས་ཡང་དག་སྦྱར།
ཕྲག་དོག་གིས་གང་མི་བྱེད་པའི། སྡིག་དེ་འཇིག་རྟེན་ན་ཡོད་མིན། 143

གང་གིས་མི་བཟད་ཁྲོ་བ་ཡི། དགུ་གི་མིག་སྨན་མིག་ཏུ་བཏབ།
རྟག་ཏུ་བསམ་པ་འཁྲུགས་པ་དེས། ལེགས་པའི་ལམ་ནི་ཇི་ལྟར་མཐོང་། 144

འདོད་ཆགས་མཆོག་ཏུ་སྡིག་ཅིང་དེ་ལས་ཀྱང་ནི་ལྷག་པར་དྲེགས་པ་སྡིག།
ཁྲོ་ལས་སྡིག་གཞན་འགྲོ་བ་ན་མེད་བཟོད་དཀའི་སྡིག་པ་ཆགས་པའོ།
གདུང་བ་དང་ལྡན་འགྲོ་ན་སྡིག་པའི་ཚོགས་ནི་ཇི་སྙེད་བགྲངས་གྱུར་བ།
དེས་ཀྱང་ཉམ་པར་སྨྲོང་བས་བསྒྲུན་པའི་སྡིག་པའི་ཆ་ལ་མཚུངས་རེག་མིན། 145

श्रुतिस्मृतिविवादेषु पुष्करेण पदे पदे ।
निगृह्यमाणः कपिलः कोपतापादचिन्तयत् ॥ १३८ ॥

मन्दाभ्यासं दृढाभ्यासस्तीक्ष्णस्तीव्रमदोद्धतः ।
सदा संसदि मामेव नयत्येष विलक्षताम् ॥ १३९ ॥

प्रज्ञा वञ्चकवृत्ताय श्रुतं दर्पज्वराय च ।
धनं धर्म्मनिषेधाय भवत्यधमचेतसाम् ॥ १४० ॥

हसः परिभवत्येष राजपुत्राश्रयेण माम् ।
तस्मादाश्रयमेवास्य श्रीमूलं प्रहराम्यहम् ॥ १४१ ॥

निधने राजपुत्रस्य युक्त्युपायेन केनचित् ।
युक्तः कर्त्तुं प्रयत्नो मे मानम्लानिं कथं सहे ॥ १४२ ॥

इत्युग्रपापसङ्कल्पस्तस्य द्वेषात् समुद्ययौ ।
नास्ति तत्पातकं लोके यन्न कुर्व्वन्ति मत्सराः ॥ १४३ ॥

कथं पश्यति सद्धर्म्मं समदो व्यथिताश्रयः ।
दत्तं नयनयोर्येन तीव्रामर्षविषाञ्जनम् ॥ १४४ ॥

रागः पापं परममधिकं दर्पपापं ततोऽपि
क्रोधात् पापं जगति न परं दुःसहं लोभपापम् ।
यावानेष व्यसनिनि जने गण्यते पापवर्गः
पापांशस्य स्पृशति न तुलां सोऽपि विद्वेषहृतेः ॥ १४५ ॥

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་སྨིན་ཞེས་པའི། གདུག་ཅིང་ཀར་པ་ཊར་གནས་པ།
གནོད་པ་བྱེད་པའི་རྒྱལ་ཕྲན་གྱིས། དཔུང་ཚོམས་སྤྲིངས་པས་གསོད་པ་དག། 146

ཐོས་ནས་མི་བདག་ཁྲོས་པ་ཡིས། ཐབས་ནི་བཞི་པར་ངེས་བྱས་ཏེ།
བློན་པོ་ནམས་ཀྱི་འདོད་པ་ཡིས། གཞོན་ནུ་ལ་ནི་འདི་དག་སྨྲས། 147

གཞོན་ནུ་སྟོབས་ཀྱིས་དགྲ་དག་ནི། མྱུར་དུ་གཅོད་དུ་འགྲོ་བར་གྱིས།
ཁྱོད་ཀྱིས་རིམ་འོངས་རྒྱལ་སྲིད་ཆེའི། འདི་ནི་ཟུག་རྔུ་མེད་པར་འགྱུར། 148

གསུམ་གྱི་རྩོམ་པར་ཁྱོད་ཀྱི་ནི། དཔུང་བ་མཐུ་ཡིས་བསྒྱུར་བ་འདི།
འགྲོ་བར་རྒྱལ་བའི་གླང་པོ་དག། འདོགས་པའི་ཀ་བ་ཉིད་དུ་འགྱུར། 149

ས་འཛིན་རིགས་ནི་ནོན་པའི་སྲིན། སྡུག་ཅིང་ལྷག་པར་བྱས་པ་དག།
བཅོམ་ན་ཁྱོད་ཀྱི་གཟི་བྱིན་གྱི། ཕྱོགས་སུ་སྒྲིབ་པའི་བགེགས་མེད་འགྱུར། 150

སྟོབས་མེད་མཐའ་ན་གནས་པ་ཡི། རྒྱལ་ཕྲན་གཞན་ནི་བསད་པས་ཅི།
རིགས་ལྡན་དེ་ཉིད་གཞོམ་པར་བྱ། དེ་བསད་ན་ནི་ཐམས་ཅད་འགྲུབ། 151

གང་ཞིག་ཆ་ཡི་རང་བཟས་ཉིད་དུ་རྩོམ་པར་བསྒྲུབས་པ་ཡི།
གླང་ཆེན་ཚོགས་ནི་འཁྲུག་བྱེད་ཀྱིས་བཅོམ་དགེ་མཚན་ཅི་ཞིག་ཡོད།
གལ་ཏེ་སྤྲེར་མོའི་གད་རྒྱངས་ལྡན་པའི་གདོང་ལྔ་མངོན་བཅོམ་ན།
དེ་ནི་དེ་ཡི་སྐྱེས་བུ་རྩལ་ཡོད་གདམ་གྱི་ཡུལ་དུ་འགྱུར། 152

ततः कदाचिन्मेघाख्यं क्रूरं कर्व्वटवासिनम् ।
विसृष्टसैन्यहन्तारं सामन्तमपकारिणम् ॥ १४६ ॥

श्रुत्वा नरपतिः कोपाच्चतुर्थोपायनिश्चये ।
अमात्यानामनुमते कुमारमिदमब्रवीत् ॥ १४७ ॥

कुमार गम्यतां तूर्णमुच्छेत्तुं तरसा रिपुम् ।
क्रमोपपन्नं साम्राज्यं निःशल्यमिदमस्तु ते ॥ १४८ ॥

अयं ते समरारम्भे प्रभावाभरणो भुजः ।
आलानस्तम्भतां यातु जगद्विजयदन्तिनः ॥ १४९ ॥

मेघे भूभृत्कुलाक्रान्तसंरम्भाभ्यधिकोदये ।
हते तव प्रतापस्य निर्व्विघ्नावरणा दिशः ॥ १५० ॥

दुर्व्वलैः किं हतैरन्यैः सामन्तैरन्तवासिभिः ।
हन्तः स एव हन्तव्यस्तद्वधे सर्व्वसिद्धयः ॥ १५१ ॥

किं कौतुकं यदि हरिः करिचक्रवाल
माहन्ति दैवविहितं निजमेव भोज्यम् ।
पञ्चाननं यदि भिनत्ति नखाङ्कुशाग्रं
तत्तस्य पौरुषकथापथमेति शौर्य्यम् ॥ १५२ ॥

ཞེས་པ་ཕ་ཡིས་བསྟན་པ་ན། གཡུལ་གྱི་དགའ་སྟོན་འདོད་པ་དང་།
མི་འམ་ཅི་འབར་གཡོ་བས་རེ། སྐད་ཅིག་ཁྲོགས་ལ་འཕྱུང་བཞིན་གྱུར། 153

ཡུན་རིང་འགྲོ་བ་མིན་བརྗོད་པས། འབད་པས་ཆུང་མ་དབུགས་བྱུང་ནས།
དེ་ཡི་མ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། ཕྱག་གྲུས་དལ་གྱིས་རབ་སྨྲས་པ། 154

མི་འམ་ཅི་དབང་བགྱི་བྱིན་དུ། བདག་བུའི་བུ་མོ་ཁྱིངས་ལྡན་མ།
ཁྱོད་ཀྱི་བདག་ལ་བྱམས་པའི་བློས། འཕྲལ་བའི་མྱ་ངན་གྱིས་གཟེར་སྐྱོངས། 155

འདི་ཡི་གཙུག་གི་ནོར་བུ་ནི། རང་འདོད་འགྲོ་བ་སྤེར་འདི་དག།
སློག་ལ་ཕ་ཚིམ་མ་གདོགས་པ། མ་མ་ཀུན་དུ་སྤྲིན་མི་བྱ། 156

ཞེས་བརྗོད་མ་ཡི་ལག་ཏུ་ནི། མཛེས་མ་མཛེས་མའི་གཙུག་གི་ནོར།
གདང་ནས་དབྱུང་གི་ཕྱོགས་ཀྱི་སྒོ། སྒྲིབ་ཅིང་དེ་ནི་མྱུར་དུ་སོང་། 157

དེ་ཡི་དུ་ཚོགས་ཀྱིས་བསྐྱང་བ། རྡུལ་ཚུབ་སྤྲིན་ལྟར་ཁྲུས་པ་ཡིས།
དང་བའི་རྒྱལ་པོ་སྨག་པ་དང་། ཉོན་མོངས་ཀྱི་ཉིད་དག་ཏུ་གྱུར། 158

ཁྱོ་ནི་རིང་དུ་སོང་བ་ན། འཕྲལ་བ་ཡིས་ནི་ཡིད་འཕྲོག་མ།
པདྨ་གཞོན་ནུའི་འདབ་མ་ཡིས། མལ་སྟན་ལ་ནི་བརྟེན་པར་གྱུར། 159

སྲིད་ལྡན་ཉིན་བར་བཀྲུང་བའི་རྩོམ་པ་དག་ལ་རྟག་ཏུ་མངོན་སྤྲོར་ཞིང་།
གྲངས་གྱི་རི་མོའི་ལམ་ནི་ས་ལ་འདར་ཞིང་གཡོ་བས་འདྲི་བྱེད་པ།
དེ་ཡི་ལག་པ་ཕྲ་བ་ཉིད་ཀྱིས་སྨྲ་ལྡན་གདུབ་བུ་ལྷུང་བ་ལ།
མའི་མའི་རྒྱན་གྱི་མུ་ཏིག་གདུབ་ཀོར་དག་ནི་མྱུར་དུ་གནས་པར་གྱུར། 160

इति पित्रा समादिष्टः समीहितरणोत्सवः ।
किन्नरीविरहाल्लोलः सोऽभूद्दोलाकुलः क्षणम् ॥ १५३ ॥

अचिरागमनाख्यानैर्यत्नेनाश्वास्य वल्लभाम् ।
जननीं स्वैरमभ्येत्य प्रणिपत्य जगाद सः ॥ १५४ ॥

दुहिता शक्रकल्पस्य किन्नरेन्द्रस्य मानिनी ।
पाल्या विरहशोकार्त्ता मद्वात्सल्यधिया त्वया ॥ १५५ ॥

अस्याश्चूडामणिरयं रक्ष्यः स्वेच्छागतिप्रदः ।
दातव्यः सर्व्वथा मातर्नान्यत्र प्राणसंशयात् ॥ १५६ ॥

इत्युक्त्वा जननीहस्ते कान्तं कान्ताशिखामणिम् ।
निक्षिप्य स ययौ तूर्णं सैन्याच्छादितदिङ्मुखः ॥ १५७ ॥

तस्य वाजिव्रजोद्भूतरजःपुञ्जघनोदयः ।
प्रययौ राजहंसानां सन्त्रासायासहेतुताम् ॥ १५८ ॥

दूरं प्रयाते दयिते विरहेण मनोहरा ।
बभूव बालनलिनीपत्त्राशशयनाश्रया ॥ १५९ ॥

सोत्कण्ठाया दिवसगणनारम्भनित्याभियोगे
संख्यालेखासरणिमवनौ कम्पलोलं लिखन्त्याः ।
तस्याः पाणौ निपतितरणत्कङ्कणे तानवेनं
क्षिप्रं मुक्तावलयकलनामश्रुधारा चकार ॥ १६० ॥

མི་དོག་མདའ་ཅན་ལ་སྔང་བདེ་ལ་ཕྱིར་ཕྱོགས་ལུས་ལའང་ཆགས་པ་ཉིད་མ་ཡིན།
བདག་པོའི་བསམ་གདན་སྐྱོང་ཞིང་ཉིན་མཚན་དུ་ནི་དེ་ཡི་མིང་གི་གསང་སྔགས་བཟླས།
མ་ལ་སྟན་ས་གཞིར་བྱས་དེ་དེ་ལྟ་ན་ཡང་གཟུགས་བཟང་གདུང་བ་ཉམས་མ་གྱུར།
འདོད་ཆགས་གཡོ་མེད་ཆགས་པའི་ཡིད་ཉམས་བརྟུལ་ཞུགས་དྲག་པོས་གྲོལ་བ་མེད་ནས་ཏེ། 161

ཤེལ་གྱི་ཁྲི་སྟན་ལ་འདུག་ཅིང་། ཧ་རི་ཙན་དན་གྱིས་སྐུ་བ།
གཟུགས་ཅན་མ་དེ་ཟླ་འོད་ཀྱི། དབུས་སོང་ཟླ་རིས་བཞིན་དུ་མཛེས། 162

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ས་སྐྱོང་ནི། མི་ལམ་མཐོང་ནས་དོགས་གྱུར་པས།
མདུན་ན་འདོན་ནི་སེར་སྐྱ་དག། ཡང་དག་ཐོས་ནས་དབེན་པར་བྲིས། 163

གྲོང་ཁྱེར་དགྲ་ཉམས་ཀྱིས་བཀག་ཅིང་། བདག་གི་ལྟོ་བཙོལ་གྱི་མ་ནི།
དྲངས་ན་ཡོངས་སུ་དཀྲིས་པ་ཡིས། མི་ལམ་དེ་རིང་བདག་གིས་མཐོང་། 264

བློ་གྲོས་ཆེན་པོ་མི་ལམ་འདིའི། རྣམ་སྨིན་འབྲས་བུར་འོས་པ་གསུང་།
དགེ་བར་ཡོངས་སྒྱུར་འོས་པ་ཡིས། ཕྱིར་བཅོས་དག་ཀྱང་བསམས་པར་མཛོད། 165

ཅེས་བ་ས་ཡི་དབང་པོས་དྲིས། མདུན་ན་འདོན་གྱིས་སྐད་ཅིག་ནི།
གུས་པའི་ཚུལ་ཆོས་བསམ་གདན་བཟུང་། ནང་དུ་མངོན་པར་འདོད་པ་བསམས། 166

ཤུ་ཀྲ་ཡི་ཉིན་གཅད་སྐད། རྒྱལ་པོའི་བུ་ནི་ཉམས་པ་ལ།
ཤིན་ཏུ་ཡུན་རིང་བསམས་པའི་ཐབས། འདི་ནི་བདག་གིས་དཀའ་བས་ཐོབ། 167

द्वेषः पुष्पशरे सुखे विमुखता देहेऽपि निःस्नेहता
पत्यौ ध्यानपरायणत्वमनिशं तन्नाममन्त्रे जपः।
शय्या भूमितले तथापि सुतनोस्तापक्षतिर्नाभवत्
नूनं निश्चललीनरागमनसां मुक्तिर्न तीव्रव्रतैः॥ १६१॥

लीना स्फटिकपर्यङ्के हरिचन्दनपाण्डुरा।
चन्द्रलेखेव सा तन्वी ज्योत्स्नामध्यगता बभौ॥ १६२॥

कदाचिदथ भूपालः स्वप्नदर्शनशङ्कितः।
पुरोहितं समाहूय पप्रच्छ कपिलं रहः॥ १६३॥

दृष्टमद्य मया स्वप्ने निरुद्धं शत्रुभिः पुरम्।
पाटितोदरक्लृष्टैश्च ममान्त्रैः परिवेष्टितम्॥ १६४॥

स्वप्नस्यास्य विपाकार्हं फलं ब्रूहि महामते।
विचिन्त्य शुभोदर्कामुचिताञ्च प्रतिक्रियाम्॥ १६५॥

इति पृष्टः क्षितीशेन क्षणमन्तः पुरोहितः।
भक्तिदम्भधृतध्यानः समीहितमचिन्तयत्॥ १६६॥

उपायोऽयं मया दिष्ट्या प्राप्तः सुचिरचिन्तितः।
पुष्करस्याश्रयोच्छित्त्यै राजपुत्रविनाशने॥ १६७॥

དེ་ཡི་ཧྲུང་མ་མི་འམ་ཅི། ཡིད་འཕྲོག་མ་མཆོག་འཚོ་བ་ཉིད།
དེ་དངོས་མེད་ན་ངེས་པར་ནི། སྡུག་ཅིང་བསྔལ་བས་དེ་མི་འཚོ། 168

ཞེས་པ་བསམས་ནས་དཔལ་བུ་ཡིས། བརྩོན་གྱིས་སྐྱོར་དང་ཚགས་བྲལ་ཅན།
མདུན་ན་འདོན་ནི་མི་ཕན་པ། འཚོལ་བས་ནོར་འཛིན་དབང་ལ་སྨྲས། 169

ལྷ་གཅིག་ཁྱོད་ཀྱི་རྨི་ལམ་ན། མཆོག་ཏུ་སྙིང་ནི་འདར་བྱེད་འདི།
མཐོང་སྟེ་དེ་ཡི་འབྲས་བུ་ནི། བཟོད་དཀའ་གསལ་བར་ཇི་ལྟར་བརྗོད། 170

རྗེ་ལ་གུས་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ཀྱིས། གནས་ཤིང་སྐྱོན་སྤྲུབ་བདག་ཉིད་མིན།
ཕན་པ་འཚོལ་ནམས་ནི་བར་ནི། མི་སྙན་བརྗོད་པ་དགག་པ་མེད། 171

རྨི་ལམ་འདི་འབྲས་གསལ་བར་ནི། རྒྱལ་སྲིད་དམ་ནི་ལུས་ལས་ཉམས།
འདི་ལ་དོགས་དང་བྲལ་བ་ཡིས། འཁོར་པའི་སྐད་དུ་ཕྱིར་བཅོས་བྱ། 172

མཆོད་སྦྱིན་ཞིང་དུ་རྫིང་བུ་ནི། ཕྱུགས་ཀྱི་ཁྲག་གིས་ཡོངས་གང་བར།
ཁྱོད་བཀྲུས་བྲམ་ཟེས་དག་བྱས་ཤིང་། གསེར་དང་རིན་ཅེན་རབ་མང་སྦྱིན། 173

མི་འམ་ཅི་མོའི་ཚོལ་གྱིས་མེར། སྦྱིན་སྲེག་བྱས་པས་ཁྱོད་དགེ་འཐོབ།
ཁྱོད་ཀྱི་མནའ་མ་པོ་བྲང་ན། ཡོད་པས་མི་འམ་ཅི་མི་དགོན། 174

ཞེས་པ་དེ་ཚིག་མ་རུངས་པ། ཐོས་ནས་སྡིག་པས་ཉམས་བྱིན་ཅིང་།
གཏུམ་པོའི་སྤྱོད་པ་སླག་གྱུར་པ། ས་ཡི་བདག་པོས་དེ་ལ་སྨྲས། 175

प्रिया मनोहरा ज्येष्ठं जीवितं तस्य किन्नरी ।
अभावे नियतं तस्या न स जीवति दुःखितः ॥ १६८ ॥

इति सञ्चिन्त्य शनकैर्मिथ्याखेदविषादवान् ।
अभ्यधाद्वसुधाधीशमहितैषी पुरोहितः ॥ १६९ ॥

दुःस्वप्नोऽयं त्वया देव हृदयाकम्पनः परम् ।
दृष्टः स्पष्टफलं तस्य दुःसहं कथमुच्यते ॥ १७० ॥

प्रभुभक्तिव्रतस्थानां देोषेष्वविहितात्मनाम् ।
न कर्णकटुकं वक्तुं निषेधोऽस्ति हितैषिणाम् ॥ १७१ ॥

राज्यात् भ्रंशः शरीराद्वा स्वप्नस्यास्य फलं स्फुटम् ।
शङ्काविरहितैः कार्य्यः प्रतीकारोऽस्य भूतये ॥ १७२ ॥

पुष्करिण्यां क्रतुक्षेत्रे पूर्णायां पशुशोणितैः ।
स्नातस्त्वं मार्ज्जितो विप्रैर्भूरिरत्नसुवर्णदः ॥ १७३ ॥

किन्नरीमेदसा वह्निं हुत्वा कुशलमाप्स्यसि ।
अन्तःपुरे मुधा तेऽस्ति किन्नरी न तु दुर्लभा ॥ १७४ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा क्रूरपातककूणितः ।
नृशंसवृत्तसन्त्रस्त स्तमभाषत भूपतिः ॥ १७५ ॥

རང་གི་སྲོག་ནི་བསྲུང་སླད་དུ། བུད་མེད་གསོད་པར་ཇི་ལྟར་སྤྲོ།
མི་འམ་ཅི་མོ་དང་བྲལ་ན། ངེས་པར་བདག་གི་བུ་མི་འཚོ། 176

ཞེས་དེ་ས་ལ་སྤྱོད་པས་དེའི། འདོད་པ་ཕྱིར་ལ་བཟློག་པ་ན།
མདུན་ན་འདོན་ནི་ཐིག་པ་ལ། མངོན་པར་ཞེན་པས་ཡང་དེར་སྨྲས། 177

ཀྱེ་མ་རྒྱལ་པོ་བློ་གྲོས་དང་། ལྡན་ཡང་སྐྱེ་བའི་ལུགས་མི་ཤེས།
སྡེ་གསུམ་སྒྲུབ་བྱེད་རྒྱལ་སྲིད་དང་། སྲོག་ཀྱང་གཏང་བར་བྱ་བ་མིན། 178

ནོར་བཞིན་ནང་མི་གྲོགས་པ་ཆུང་མ་བུ་དག་ནི།
ཉམས་པ་སྐྱེས་བུ་གནས་ན་སླར་ཡང་འབྱུང་བར་འགྱུར།
དབུགས་ཙམ་བྲལ་ཞིང་སྲོག་ནི་སོང་བར་གྱུར་པ་ལས།
དེ་དུས་ཉེ་བར་གནས་ཀྱང་ཐམས་ཅད་མེད་པ་ཉིད། 179

འཚོ་བའི་དོན་དུ་རང་ལུས་དང་། གཅེས་པའི་བུ་ཡང་གཏོང་བར་བྱེད།
རྒྱལ་པོ་འཚོ་བའི་འཇིག་རྟེན་ན། སྲོག་ལས་གཞན་ནི་གཅེས་པ་མེད། 180

དེ་ལྟར་དེ་ཡིས་སྣ་ཚོགས་ཀྱི། དཔེ་ཡིས་དཔལ་གྱིས་བྲིད་པ་ན།
རྒྱལ་པོ་སྲོག་ལ་ཆགས་པ་ཡི། སྡིག་ལ་རིགས་པར་ཁ་ཡིས་བླངས། 181

དེ་ནས་ཕུན་ཚོགས་དམ་པ་ཡིས། མཆོད་སྦྱིན་ལས་ལ་འཇུག་བྱེད་ཅིང་།
ཕྱུགས་ཀྱི་ཁྲག་གིས་གང་བ་ཡི། རྫིང་བུ་ཡང་ནི་བྲུས་པའི་ཚེ། 182

निजजीवितरक्षार्थं कथं स्त्रीवधमुत्सहे।
किन्त्वीविरहेऽवश्यं न च जीवति मे सुतः ॥ १७६ ॥

इति भूमिभुजा तस्य प्रत्याख्याते समीहिते।
तं पापाभिनिवेशेन मुनः प्राह पुरोहितः ॥ १७७ ॥

अहो राजन्न जानीषे धीमानपि जनस्थितिम्।
त्रिवर्गसाधनं त्याज्यं न राज्यं न च जीवितम् ॥ १७८ ॥

अर्था इव स्वजनमित्रकलत्रपुत्रा
नष्टाः स्थितस्य पुरुषस्य पुनर्भवन्ति।
उच्छ्वासमात्रविरहे गतजीवितस्य
तत्कालसन्निहितमप्यसदेव सर्व्वम् ॥ १७९ ॥

त्यज्यन्ते जीवितस्यार्थे निजदेशप्रियात्मजाः।
जीवितादपरं राजन् जीवलोकेऽस्ति न प्रियम् ॥ १८० ॥

इति जीवितलोभाय तेन नानानिदर्शनैः।
शनैः प्रतारितः पापे राजा युक्तममन्यत ॥ १८१ ॥

ततः सुसम्भृतारम्भे प्रवृत्ते यज्ञकर्म्मणि।
हतायां पुष्करिण्याञ्च पूर्णायां पशुशोणितैः ॥ १८२ ॥

དབེན་པར་རང་གི་བཙུན་མོ་ལ། རྒྱལ་པོས་རང་གི་སྤྱོད་ཚུལ་བཤད།
བུ་ནི་བྲིས་བགྲོད་སྤྱ་ངན་གྱིས། གཟིར་ཅིང་སྡིག་པས་སྐྲག་པས་བསམས། 183

ཀྱེ་མ་མནའ་མ་གསོད་པ་ཡི། སྐྱབ་བྱེད་སྡིག་པ་གྲུ་ཆེ་འདིར།
མདུན་ན་འདོན་ནི་གདྲི་སྲུག་གིས། ཡོང་བས་རྒྱལ་པོ་རབ་སྨོངས་བསྐུལ། 184

འཆི་བའི་མཚམས་ནི་ངེས་བཅད་བ། འབད་པས་ཡོངས་འཁྲོག་མི་ནུས་ཀྱང་།
གཞན་གྱི་སྲོག་ནི་ཕྲོགས་པ་ཡིས། ཕྲན་པོ་ཉམས་ནི་འཚོ་བར་འདོད། 185

གལ་དེ་སྲོག་ལ་ཆགས་པ་ཡིས། བུ་མོ་བཞིན་བཟང་བདུད་རྩི་འདྲ།
མནའ་མ་ཡིན་ཡང་རྒྱལ་པོ་ཡིས། གསད་ན་བདག་གིས་ཅི་ཞིག་སྨྲ། 186

མ་གཅིག་ཁྱོད་ཀྱིས་མཉེས་ག་ཤིན་ལས། བདག་གི་ཡིད་འཕྲོག་མ་འདི་སྐྱོངས།
ཞེས་བརྗོད་བུ་ནི་ནོར་བཟང་དག། བདག་ལ་ཆུང་མ་གཏད་ནས་སོང་། 187

དེ་སྐད་བདག་ལས་གཙུག་གི་ནོར། ཐོབ་ནས་དེ་ནི་མཁའ་ལ་འགྲོ།
དེ་ནི་འཚོ་ན་བདག་པོ་དང་། སླར་ཡང་ཕྲད་པ་ཉིད་དུ་འགྱུར། 188

ཞེས་བསམས་མནའ་མ་ག་ལ་བར། མིག་ཆུར་བཅས་པ་དེ་སོང་ནས།
རྒྱལ་པོའི་ཚུལ་ནི་དེ་ལ་བཤད། རབ་འདར་ལྡན་བས་སྐྲར་སྐྲས་པ། 189

མཉེས་ག་ཤིན་གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཆིངས། ནམ་མཁའ་དག་ལ་མགྲོགས་པར་སོང་།
མི་བདག་འདི་ནི་སྡིག་དང་ལྡན། དམ་པའི་སྤྱོད་ལ་མི་ལྡོན། 190

राज्ञा कथितवृत्तान्ता निजपत्नी स्वयं रहः ।
पुत्रप्रवासशोकार्त्ता पापत्रस्ता व्यचिन्तयत् ॥ १८३ ॥

अहो मूर्खतरो राजा मोहान्धेन पुरोधसा ।
स्नुषावधविधानेऽस्मिन् प्रेरितः पृथुपातके ॥ १८४ ॥

यत्नैरपरिहार्य्येऽपि निबद्धे निधनावधौ ।
परप्राणापहारेण मूढा वाञ्छन्ति जीवितम् ॥ १८५ ॥

यदि जीवितलुब्धेन मुग्धा मृगवधूरिव ।
स्नुषापि हन्यते राज्ञा तत् किं वक्ष्याम्यहं सुतम् ॥ १८६ ॥

मातस्त्वयेयं वात्सल्यात् पाल्या मम मनोहरा ।
इत्युक्त्वा सुधनः सूनुर्गतो निक्षिप्य मे वधूम् ॥ १८७ ॥

तस्माच्चूड़ामणिं मत्तः प्राप्य व्योम्ना प्रयातु सा ।
भविष्यति तया पत्युर्जीवन्त्या सङ्गमः पुनः ॥ १८८ ॥

इति सञ्चिन्त्य सा गत्वा साश्रुनेत्रा स्नुषान्तिकम् ।
राजवृत्तं निवेद्यास्यै सोत्कम्पा पुनरब्रवीत् ॥ १८९ ॥

वत्से चूड़ामणिं बद्धा गच्छ तूर्णं विहायसा ।
नृपः पापप्रवृत्तोऽयं न सदाचारमीक्षते ॥ १९० ॥

ཁྱོད་ནི་མཆོད་སྦྱིན་སར་སོང་ནས། ནམ་མཁའི་ལམ་ནས་འགྲོ་བར་བྱ།
གཞན་ནི་ཁྱོད་ནི་འགའ་ཞིག་ཏུ། བདག་གིས་སྨས་བཀོང་འདི་ཡིས་རིག། 191

ཅེས་པའི་ཚིག་གོས་ཡིད་འཕྲོག་མ། ཁྱོ་དང་བྲལ་བས་གདུངས་གྱུར་པས།
འབད་པས་དེ་དང་ཕྲད་པའི་སྐད། རབ་ཏུ་གཅེས་པས་ལུས་བསྲུངས་ཤིང་། 192

གཙུག་གི་ནོར་བུ་སྒྲུག་མོ་ཡིས། སྤྲད་པ་བླངས་ནས་སྤྱི་བོར་བཅིངས།
མནའ་མ་བོས་པ་མཆོད་སྦྱིན་གྱི། ཞིང་དུ་སོང་ནས་མཁའ་ལ་འགྲོ། 193

རྒྱལ་པོ་བྲུ་ནི་གཅེས་ཀྱང་མནའ་མ་གསད་པར་བྱ་བ་གང་འདི་ནི།
ཁྱོད་ཀྱིས་འོས་པ་མ་ཡིན་ཁྱོད་ནི་ཤེས་གྱུར་བདག་ནི་རང་གནས་སོང་།
བདག་བྲལ་བདེན་པ་རབ་ཏུ་ཉམས་པའི་གཞོན་ནུ་འདི་ཡང་བསྲུང་བར་གྱིས།
དེར་ནི་བརྗོད་ནས་རབ་ཕྲ་གླིག་གི་ནམ་འཕྲུལ་དག་གིས་དེ་སོང་གྱུར། 194

དེ་སོང་ཚེ་ན་མི་བདག་གི། མཆོད་སྦྱིན་བགེགས་ཀྱིས་དོགས་བར་གྱུར།
མདུན་ན་འདོན་གྱིས་དེ་ལ་སྨྲས། ས་བདག་ཐེ་ཚོམ་ཡོངས་མ་བྱེད། 195

གདུག་པ་ཞེས་བྱ་ཚངས་པ་ཡི། སྲིན་པོ་བདག་གིས་སྔགས་ཀྱིས་བྲངས།
མི་འམ་ཅི་མོ་དེ་ངེས་གསད། ཁྱོད་ཀྱི་མཆོད་སྦྱིན་བགེགས་མེད་གྲུབ། 196

ཅེས་པ་དེ་ཡི་བཙུན་གྱི་ཚིག། རྒྱལ་པོ་ཡིས་ནི་བདེན་པར་བསམས།
འཁྲུལ་འཁོར་གཟུགས་བརྙན་རྩེ་དགའ་ཡིས། སློངས་ཉམས་བྱ་གྲུས་གར་བྱེད་དོ། 197

यज्ञभूमिं त्वया गत्वा गन्तव्यं व्योमवर्त्मना ।
अन्यथा त्वामसौ वेत्ति गूढन्यस्तां मया क्वचित् ॥ १९१ ॥

इति भर्तृप्रवासार्त्ता वचः श्रुत्वा मनोहरा ।
तत्सङ्गमाय रक्षन्ती यत्नात् प्रियतरं वपुः ॥ १९२ ॥

श्वश्र्वा दत्तं समादाय बद्धा मूर्द्धि शिखामणिम् ।
नृपाहूता क्रतुक्षेत्रं गत्वा व्योम व्यगाहत ॥ १९३ ॥

राजन्नेतत् तव समुचितं यत् प्रियस्यापि सूनो-
र्बध्या पत्नी निजपदमियं स्वस्ति तुभ्यं गताहम् ।
रक्ष्यश्चासौ प्रतिहतधृतिर्मद्वियोगे कुमारः
तन्नेत्युक्त्वा तनुतरतडिद्विभ्रमैः सा जगाम ॥ १९४ ॥

तस्यां गतायां नृपतिर्यज्ञविघ्नेन शङ्कितः ।
पुरोहितस्तमवदद्देव मा संशयं कृथाः ॥ १९५ ॥

मन्त्रैर्मया समाकृष्टः क्रूराख्यो ब्रह्मराक्षसः ।
निर्विघ्नस्ते क्रतुः सिद्धः सा हृता तेन किन्नरी ॥ १९६ ॥

इति मिथ्यावचस्तस्य राजा सत्यममन्यत ।
नर्त्यन्ते कुटिलैर्मुग्धा यन्त्रपुत्रकलीलया ॥ १९७ ॥

པ་ཡི་ཁང་པར་མངོན་ཕྱོགས་དེ། དགའ་བ་སྟེར་བྱེད་ཡིད་འཕྲོག་མས།
སྙིང་ལ་ཁྲོ་ནི་བཟུང་བྱས་དེ། རང་གི་སྤྱོད་པའི་མཐའ་ཉམས་ཆ་ཤད། 198

ཡབ་ཀྱི་བཀའ་ཡིས་མི་དང་ནི། འགྲོགས་པའི་དྲི་མ་ཞི་བའི་སླད།
གསེར་གྱི་བུམ་པ་ལྔ་བརྒྱ་ཡིས། ཉི་མ་སོ་སོར་ཁྲུས་དག་བྱས། 199

བཀུས་པས་མི་ཡི་དྲི་མ་ནི། རབ་ཏུ་ཆུང་བ་ཉིད་དུ་གྱུར།
ནོར་བཟང་ལ་ནི་མཛེའ་གཟུགས་ལྡན། རི་དགས་མིག་གི་ཆགས་པ་མིན། 200

ལྷ་ཡི་སྐྱིད་ཚལ་ལོངས་སྤྱོད་ལ། དེ་ནི་དགའ་བར་ཡོངས་མ་གྱུར།
གཞན་ལ་ཆགས་པར་གྱུར་པ་ཡི། ལུས་ཅན་གཞན་ན་དགའ་བ་མེད། 201

ནམ་ཞིག་མཁའ་ལ་འགྲོ་མ་དེ། སྡུག་པ་དང་བྲལ་ཉོན་མོངས་ཤིང་།
ཀླུ་ཡི་ཁང་པའི་ཉེ་འཁོར་དེ། ནགས་མཐའི་ནོར་འཛིན་དགའ་དུ་སོང་། 202

དྲང་སྲོང་ཆེན་པོ་བསྟི་གནས་དེར། གནས་པ་ཤིང་ཤུན་ཅན་དེ་ལ།
རབ་ཏུ་བཏུད་ཅིང་ཕྱགས་ལ་དེ། དུད་ཅིང་མངོན་དུ་ཕྱོགས་པས་སྨྲས། 203

བདག་ནི་འཆིང་བ་ཐོན་པ་ལ། ཉེ་བར་བསྟན་པ་ཁྱོད་ཀྱིས་ནི།
གལ་ཏེ་རིགས་པས་འདི་བྱས་ན། བཅོམ་ལྡན་ཁྱོད་ཉིད་དག་གིས་གསུངས། 204

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཅུང་ཟད་ངོ་ཚས་བཞིན་བདུད་དེ།
ཐུབ་པས་དེར་སྨྲས་བཞིན་བཟང་མ། འདི་ནི་ཁྱོད་ཀྱིས་སྤྱོད་བྱ་ཉིད། 205

पितुर्भवनमभ्येत्य कीर्णहर्षा मनोहरा।
न्यवेदयत् स्ववृत्तान्तं वहन्ती वल्लभं हृदि॥ १९८॥

सा पितुः शासनान्मर्त्यसङ्गदोषप्रशान्तये।
हेमकुम्भशतैः स्नानं पञ्चभिः प्रत्यहं व्यधात्॥ १९९॥

मर्त्यामोदः प्रतनुतां क्षालितायाः शनैर्ययौ।
सुधनस्नेहसंयोगो न तु रागो मृगीदृशः॥ २००॥

दिव्योद्यानोपभोगेषु न सा निर्वृतिमाययौ।
अन्यत्र बद्धरागाणां रतिर्नान्यत्र देहिनाम्॥ २०१॥

सा कान्तविरहक्लान्ता कदाचिद्व्योमगामिनी।
तां नागभवनोपान्तवनान्तवसुधां ययौ॥ २०२॥

तत्राश्रमस्थलीसक्तं महर्षिं वल्कलायनम्।
अवदत् सा समभ्येत्य प्रणामविनमन्मुखी॥ २०३॥

लुब्धकस्योपदिशता भवता मम बन्धनम्।
त्वमेव ब्रूहि भगवन् यदि युक्तमिदं कृतम्॥ २०४॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा किञ्चिल्लज्जानताननः।
तामुवाच मुनिर्मुग्धे तवैषा भवितव्यता॥ २०५॥

དེ་ལ་ཞུགས་པ་དོན་ཡོད་ནི། ཡོད་ཅེས་བདག་གིས་མ་ཤེས་བཤད།
གཡོན་ཅན་རྫོན་པས་དེ་ཡི་གདམས། ཤེས་ནས་ཁྱོད་ནི་བཅིངས་པར་གྱུར། 206

བདེན་པར་སྨྲ་བའི་སྤུ་ཅོར་ཅན། རང་བཞིན་དྲང་བ་བདག་ཅག་གིས།
མ་རྟུངས་བདག་ཉིད་གདུག་པ་ཡི། སེམས་ཀྱི་གྱ་གྱུ་ཡོངས་མི་ཤེས། 207

ཞེས་བ་ཐུབ་པས་བརྗོད་དེ་ལ། གཟུགས་ཅན་མ་ཡིས་གུས་པས་སྨྲས།
བྲུ་མོའི་ཚིག་ནི་གསོ་བ་འདི། བཅོམ་ལྡན་གྱིས་ནི་བཟོད་པར་མཛོད། 208

ཁྱེད་ཀྱི་མདུན་དུ་བདག་གིས་ནི། གང་འདི་ཅུང་ཟད་བརྗོད་གྱུར་པ།
དམ་པའི་སྤྱོད་ལས་བགལ་བ་འདི། ཐུད་མེད་ནམས་ཀྱི་སྐལ་པ་བཟང་། 209

སྡུག་བསྔལ་འདོན་ལ་ཆས་གྱུར་ཅིང་། ཡོངས་སུ་གདུང་ལ་བརྩེ་ལྡན་ནམས།
འོས་པ་མིན་པ་ནམས་ཀྱི་ཡང་། ཕལ་ཆེར་བྱ་བ་སྒྲུབ་མཛད་ཡིན། 210

ཚེ་ང་དང་ནི་ལྡན་པ་བདག། རྫོན་པའི་ཞགས་པས་བཅིངས་ལས་གྲོལ།
འཁྲོག་བྱེད་མཛར་བའི་ཞགས་པ་ཡིས། རྒྱལ་པོའི་བུ་ཡིས་ངེས་པར་བཅིངས། 211

ནོར་བཟང་ཞེས་པ་སྐལ་པ་བཟང་། བདག་བྲལ་མེ་ཡི་གདུང་བ་འདི།
གལ་དེ་ལམ་ནི་འདི་ཉིད་ནས། ཁྱོད་ཅག་ཉེ་བར་ཕོངས་གྱུར་ན། 212

སྙིང་རྗེ་ལས་ནི་ཁྱོད་ཉིད་ཀྱིས། བདག་གི་འཕྲིན་འདི་སྨྲ་བར་གྱིས།
ཁྱོད་བྲལ་གདུང་བས་བདེ་མེད་ཅིང་། བདག་ནི་ཡབ་ཀྱི་ཁྱིམ་ན་འཁོད། 213

अमोघपाशस्तस्यास्तीत्यज्ञात्वा कथितं मया।
उपलभ्य कथां धूर्त्तस्त्वां बबन्ध स लुब्धकः॥ २०६॥

दुष्टात्मनां न जानीमः कौटिल्यं क्रूरचेतसाम्।
सत्यप्रवादमुखराः सद्भावसरला वयम्॥ २०७॥

इत्युक्ता मुनिना तन्वी प्रणयात्तमभाषत।
भगवन् क्षम्यतामेतद्बालावचनचापलम्॥ २०८॥

इदन्तु भवतामग्रे यन्मया किञ्चिदुच्यते।
ललनासुभगः सोऽयं सदाचारव्यतिक्रमः॥ २०९॥

कथातिथित्वमायान्ति चापल्ये गुरवोऽपि यत्।
सा वियोगाग्नितापस्य ज्वालायोगासहिष्णुता॥ २१०॥

दुःखोद्धरणसन्नद्धाः सन्तप्तानां दयालवः।
कार्य्यान्तरज्ञाः प्रायेण भवन्त्यनुचितेष्वपि॥ २११॥

पाशबन्धाद्वियुक्ताहं लुब्धकेन प्रलापिनी।
निबद्धा राजपुत्रेण स्नेहपाशेन हारिणा॥ २१२॥

सुभगः सुधनाख्योऽसौ मद्वियोगानलाकुलः।
अमुना यदि मार्गेण समेष्यति तवान्तिकम्॥ २१३॥

འདུན་དང་རྗེས་སུ་བརྩེ་བ་འམ། བྱས་ཤེས་ལྡན་ཅིག་སྐྱེས་པ་ཡི།
རྗེས་མདུན་མདུན་དུ་བདར་བྱས་དེ། འདི་ནས་མྱུར་དུ་འགྲོན་པར་མཛོད། 214

མི་འམ་ཅི་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་ལས། བསྒྲོད་དཀའ་ཉོན་མོངས་བགྲུ་ཡི་རྟེན།
བརྩོན་འགྲུས་སྤོབས་གཟི་ཆུང་བ་ཡི། མི་རྣམས་ཀྱིས་ནི་ས་མིན་ཉིད། 215

དཀའ་ཐུབ་ནགས་མཐའ་འདིར་འབར་བ། བདུད་རྩི་ཞེས་པའི་སྨན་ཆེན་ནི།
མཐོང་སྟེ་ཞུན་མར་ལ་བཙོས་པ། ཁྱོད་རང་ཉིད་ཀྱིས་བཏུང་བར་བྱ། 216

དེ་མཐུས་སྙིང་སྤོབས་གྲོགས་ལྡན་ཁྱོད། ཉོན་མོངས་རབ་ཏུ་སྒྲོལ་འགྱུར་ཏེ།
ལམ་ནི་ཀཻ་ལ་ས་ཐོད་ལྟར། དཀར་བས་བདག་གྲོང་ཕྱིན་པར་གྱུར། 217

བདག་གི་རྟགས་མཚན་སོར་གདུབ་ནི། འདི་ཡང་དེ་ལ་སྦྱིན་པར་བྱ།
ཞེས་བརྗོད་དེ་ཡིས་མི་བཟད་པའི། ལམ་ནི་རིམ་པས་བཤད་བྱས་ཏེ། 218

ངོ་མཚར་རིགས་པ་བདག་གིས་ནི། བགེགས་རྣམས་ཕྱིར་བཅོས་ཐབས་བསྟན་ནས།
ར་བའི་འཆིང་བས་སྒྲོག་གཟུང་བ། སོར་གདུབ་བྱིན་ནས་སོང་བར་གྱུར། 219

ལམ་རིང་སྒྲོལ་བྱེད་མེད་བྱུང་དག། དེ་ཡིས་བཤད་པ་ཐོས་གྱུར་ཏེ།
སོར་གདུབ་དག་ནི་བླངས་བྱས་ནས། ཐུབ་པ་དེ་དག་ཉིད་ལ་སེམས། 220

སྐབས་དེར་ས་ཡི་བདག་པོ་སྤྲིན། ཐམ་བར་བྱས་ཤིང་མཛོད་བླངས་ནས།
ཆུང་མ་བལྟ་བར་འདོད་བ་ཡི། རྒྱལ་པོའི་བུ་ནི་འདོས་པར་གྱུར། 221

तदिदं भवता वाच्यं कारुण्याद्वचसा मम ।
स्थिता त्वद्विरहायासनिःसुखाहं गृहे पितुः ॥ २१४ ॥

उत्कण्ठामनुकम्पां वा सहजां वा कृतज्ञताम् ।
दाक्षिण्यं वा पुरस्कृत्य तूर्णमागम्यतामिति ॥ २१५ ॥

दुर्गमः किन्नरपुरे मार्गः क्लेशशताश्रयः ।
अभूमिरेव मर्त्यानामल्पवीर्य्यबलौजसाम् ॥ २१६ ॥

दीप्ता तपोवनान्तेऽस्मिन् सुधा नाम महौषधिः ।
दृश्यते हविषा पक्वा पातव्या सा स्वयं त्वया ॥ २१७ ॥

तत्प्रभावात् समुत्तीर्य्य क्लेशं सत्त्वसहायवान् ।
कैलासहासशुभ्रेण पथा मत्पुरमेष्यसि ॥ २१८ ॥

इदञ्च तस्मै दातव्यं मदभिज्ञाङ्गुलीयकम् ।
इत्युक्त्वा विषमं मार्गं[१] कथयित्वा क्रमेण सा ॥ २१९ ॥

विघ्नप्रतिक्रियोपायान् सन्दिश्याश्चर्य्ययुक्तिभिः ।
आशाबन्धधृतप्राणा ययौ दत्वाङ्गुलीयकम् ॥ २२० ॥

तया कथितमाकर्ण्य दूराध्वतरणाद्भुतम् ।
अङ्गुलीयकमादाय तदैवाचिन्तयन्मुनिः ॥ २२१ ॥

---

48 A   १ W_1 and W_2 वर्त्म ।

གྲོལ་སྲན་གདུགས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱིས། མཁའ་ནི་རྒྱ་གཏེར་སྤྲུ་བའི་འཛུམ།
གྲིས་པ་དག་དང་མཚུངས་བྱེད་ཅིང་། དེ་ནི་རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་ཞུགས། 222

དེ་ནས་མཐའ་མའི་ཉིས་གྱོད་ཀྱི། ལོ་རྒྱུས་འཆད་ལ་ཉེན་མོངས་ཤིང་།
འདར་བའི་ཕོ་བྲང་འཁོར་སོང་སྟེ། དེ་ཡི་ཡབ་ལ་རབ་ཏུ་བདུད། 223

འོག་ཏུ་བཞིན་ཕྱོགས་སྐྱེ་བོ་ཀུན། སྤུ་ངན་ཟུག་ཚུས་དགའ་སྟོན་བཅོམ།
ཡབ་ཀྱི་ཕོ་བྲང་འཁོར་མཐོང་ནས། དེ་ནི་དགའ་དང་བྲལ་བར་དོགས། 224

འབྲལ་བས་གཟིར་བའི་ཡིད་འཕྲོག་མ། གཟུགས་བཟང་མ་དེ་འཚོའམ་ཅི།
ཞེས་སྨྲ་དེ་ལ་སུ་ཡིས་ཀྱང་། གང་ཚེ་མི་སྨན་མ་བརྗོད་པ། 225

དེ་ཚེ་མ་ཡིས་རབ་སྨྲས་པ། བུ་གཅིག་ཁྱོད་ཀྱི་དགའ་མ་འཚོ།
འོན་ཀྱང་སྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཆེ། གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཐོབ་ནས་སོང་། 226

ཞེས་བ་ཐོས་པ་ཉིད་ན་དེ། འཕྲུལ་ལས་ཡི་གཞི་ལ་འགྱེལ།
རྡོ་ཤལ་འཕྲི་ཞིང་བཀྲམ་པ་ཡིས། མཆི་མའི་རྒྱུན་ལྷན་བྱེད་པ་བཞིན། 227

ཁ་བའི་ཐིགས་པ་ལྟར་དཀར་བའི། ཏ་རི་ཙན་དན་རྒྱ་དག་གིས།
ད་ལ་གྲིས་འདུ་ཤེས་རྙེད་པ་དེས། མཆི་མས་འགར་འགར་ནམ་པར་སྨྲས། 228

མཁའ་མེན་རི་བོང་ཅན་གྱི་དཔལ། བསྐྱབས་མེན་བདུད་རྩིའི་རྒྱུན་དང་ལྡན།
འབད་མེད་མེ་ཏོག་གཞུ་ཅན་གྱིས། རིན་ཅེན་གནས་དེ་གང་ན་ཡོད། 229

अत्रान्तरे राजहनुर्जित्वा मेघं महीपतिम्।
आययौ कोशमादाय दयितादर्शनोत्सुकः॥ २२२॥

स विवेश स्वनगरीं सामन्तच्छत्रमण्डलैः।
फुल्लफेनस्मितस्याब्धेः कुर्व्वाणः सन्निभं नभः॥ २२३॥

स्नुषा-वैशसवृत्तान्त-कथनक्लेशकम्पितम्।
अथान्तःपुरमभ्येत्य जनकं प्रणनाम सः॥ २२४॥

अधोमुखाखिलजनं शोकशल्यहतोत्सवम्।
पितुरन्तःपुरं दृष्ट्वा स विप्रियमशङ्कत॥ २२५॥

अपि जीवति सा तन्वी विरहार्त्ता मनोहरा।
इति ब्रुवाणं न यदा तमूचे कश्चिदप्रियम्॥ २२६॥

तदा जगाद जननी पुत्र जीवति ते प्रिया।
गता चूड़ामणिं प्राप्य किन्तु जीवितसंशये॥ २२७॥

इति श्रुत्वैव सहसा स पपात महीतले।
कीर्णहारलतां कुर्व्वन् साश्रुधारामिव क्षितिम्॥ २२८॥

तुषारशीकरस्मेरहरिचन्दनवारिभिः।
स लब्धसंज्ञः शनकैर्विललापाश्रुगद्गदः॥ २२९॥

བླ་མ་རི་བཀས་བཅིངས་རིང་དུ་འགྲོ་བྱེད་པ། བདག་གི་རི་དྭགས་མིག་ཅན་མཆི་མ་ཡིས།
མིག་ནི་འགགས་པའི་དགའ་བ་མ་བསྒྲུབས་པ། དེས་ན་དྲན་པའི་དམོད་འདི་བདག་ལ་ལྷུང་། 230

ཡིད་འཕྲོག་མ་ནི་གང་དུ་སོང་།
སྨིན་ལེགས་ཚིག་གི་ལན་དག་སྦྱིན།
བག་མེད་བླུན་པོ་བདག་གིས་ནི།
རི་དྭགས་མིག་ཅན་ཁྱོད་མ་བསྲུངས། 231

ཁྱོད་དང་འགྲོགས་པའི་སྐལ་བཟང་ལྡན། ལྷ་ཡི་མདུན་ས་བསྔགས་པར་འོས།
ཁྱོད་དང་བྲལ་བས་མི་ཡིས་ནི། འཇིག་རྟེན་བདག་བཞིན་ཅི་ཞིག་མཛེས། 232

ཞེས་པ་སླ་ཞིང་དལ་བུ་ཡིས། མཛེས་མའི་ལོངས་སྤྱོད་དབང་གྱུར་པ།
སྐྱེད་མོས་ཚལ་དུ་དགའ་མ་མཆོག། འཚོལ་དུ་རང་ཉིད་སོང་བར་གྱུར། 233

འཁོར་གྱི་སྐྱེ་བོ་ཁྲིད་བྱས་ཏེ། མཚན་མོ་དག་ནི་མ་ཚོར་བར།
ནགས་མཐར་སོང་ནས་མཉམ་པ་དང་། མི་མཉམ་ཉམས་སུ་ཉམས་པར་འཁྱམས། 234

འདོད་ཆགས་དྲག་པོའི་ཤ་ཟ་ནི། ཆེན་པོས་ཉམས་པར་སྨོངས་པ་དེས།
སྨྱོན་པ་བཞིན་དུ་སེམས་ལྡན་དང་། སེམས་མེད་ལ་ཡང་ཉམས་པར་དྲིས། 235

གྲོགས་པོ་ནི་ཅིའི་ཕྲུག་གུ་གྲོགས་ཀྱི་གྲོགས་མོ་ནི།
སྨོག་མཚུངས་ཟླ་རྫོགས་བཞིན་ལྡན་དེ་ནི་སྨྲ་བར་བྱོས།
དེ་ཡི་སོ་ཡི་སྦྲིབ་བྱེད་དམར་བ་དག་གི་ཚར།
ཞིམ་པའི་འབྲས་བུ་རྟག་ཏུ་ཁྱོད་ཀྱི་ལོངས་སྤྱོད་ཡིན། 236

अनाकाशशशाङ्कश्रीरमन्यामृतवाहिनी ।
अयत्नरत्नवड़भी क्व सा कुसुमधन्वनः ॥ २३० ॥

गुरुशासनयन्त्रितेन दूरं
व्रजता बाष्पनिरुद्धलोचनायाः ।
विहिता न धृतिर्मया मृगाक्ष्या-
स्तदयं मे पतितः स्मराभिशापः ॥ २३१ ॥

देहि प्रतिवचः सुभ्रु क्व गतासि मनोहरे ।
मया प्रमादमूढ़ेन हरिणाक्षी न रक्षिता ॥ २३२ ॥

तत्समागमसौभाग्यश्लाघ्यस्य सुरसंसदि ।
ममैव मर्त्यलोकस्य त्वद्वियुक्तस्य का द्युतिः[1] ॥ २३३ ॥

इति ब्रुवाणः शनकैः कान्तासम्भोगसाक्षिषु ।
उद्यानेषु प्रियतमां विचेतुं[2] स्वयमाययौ ॥ २३४ ॥

वञ्चयित्वा परिजनं स रजन्यामलक्षितः ।
गत्वा वनान्तं बभ्राम समेषु विषमेषु च ॥ २३५ ॥

तीव्ररागपिशाचेन महता स विमोहितः ।
उन्मत्त इव पप्रच्छ चेतनाचेतनानपि ॥ २३६ ॥

---

१ $^{W}_{1}$ गतिः । २ $^{W}_{1}$ अन्वेष्टुं ।

ཀྱི་ལགས་ངང་པ་ལུས་དཀར་དང་འགྲོགས་པདྨོ་ཅན་རོལ་ནི་ཀྱིན་ལྟར་མཛེས་པ།
སྡུ་དིག་ཚོགས་ནི་རྣམ་པར་གསོ་བ་གང་གི་འོ་མ་འཛིན་པ་ཀྱིས་པའི་ཕྱིར།
བ་སྤྲུའི་འཁྲི་ཤིང་དང་པ་ལ་ནི་ཙ་ལྦིབས་འཁྲི་ཤིང་ལྟུང་བཞིན་ནམ་མཛེས་པ།
དྲི་བཟང་ཁང་པ་པདྨའི་བཞིན་ལྡན་མཛེས་པའི་བོ་ཀླུབས་ཅན་དེ་མཐོང་ངམ་ཅི། 237

དེ་ལྟར་སྡུག་བསྔལ་དྲག་པོས་བཅིངས་པ་ལས།
རབ་སྐྱེ་མཉམ་པ་ལ་ཡང་འགྲེད་དེ་ལ།
བརྩེ་བས་ལམ་ནི་རབ་གསལ་སྟོར་བ་བཞིན།
དལ་གྱིས་བསིལ་ཟེར་ཅན་ནི་ནམ་མཁར་འཛོགས། 238

མཚན་མོའི་བདག་པོ་ཡིད་སྲུབས་གཉེན་གྱི་ནི།
གཟུགས་མཛེས་མཁའ་ལ་སྦྲུར་བ་དེ་མཐོང་ནས།
འཛུམ་ལྡན་ཟླ་ཞལ་མ་ཡིས་ནམ་མཁའ་ཡི།
གཞལ་ཡས་ཁང་པའི་སྟེང་ནས་བཞིན་བསྟན་བསམས། 239

མི་སྨྲ་དྲི་མས་མཚན་ཞིང་སྐྲོན་དག་སྤོབ།
ནམ་འཕྲུལ་མེད་ཅིང་དགོད་དང་རྩེད་འཛེས་དམན།
ཟླ་བ་བཞིན་དུ་རིང་ཞིག་ལོན་ནས་ངེས།
མི་ཡི་མགོན་པོའི་བུས་ནི་འགྲོ་ཞིང་དྲིས། 240

ब्रूहि सखे शुकशावक सख्युः
प्राणसखीं निखिलेन्दुमुखीं ताम्।
तद्दशनच्छदरागविभागे
बिम्बफलेऽस्तु सदा तव भोगः॥ २३७॥

हंहो हंस सितांस शंस नलिनी-लीलावतंसद्युते
दृष्टा सौरभसद्मपद्मवदना किं कान्तिकल्लोलिनी।
यस्याः पीनपयोधराग्रविलुठन्मुक्ताकलापस्य सा
हंसस्येव विभाति रोमलतिका शैवालवल्ली च्युता॥ २३८॥

तस्येति तीव्रव्यसनानुबन्धात्
प्रलापिनः प्रस्खलतः समेऽपि।
दिशन् प्रकाशं दययैव मार्गे
शनैर्जगाहे गगनं सितांशुः॥ २३९॥

श्यामापतेर्मन्मथबान्धवस्य
कान्तं स दृष्ट्वाम्बरचुम्बि बिम्बम्।
सन्दर्शितं सस्मितमिन्दुमुख्या
मेने मुखं व्योमविमानश्रृङ्गात्॥ २४०॥

གྲོགས་པོ་ཁྱོད་ཀྱིས་མཁའ་ལ་མཛེས་སྡུག་གྲོགས།
གང་གི་བཞིན་གྱི་ཉེར་འཛུམ་འཕྲིལ་ཐོབ་པའི།
འགྲོ་ལ་ཁྱོད་ཀྱི་གྲགས་པ་རབ་གྲུས་པ།
མཚན་མ་རི་དྭགས་མིག་མཚུངས་མཐོང་ངམ་ཅི། 241

མཛེས་མའི་གནས་ནི་དོན་གཉེར་དངོས་གྱུར་པ།
བདག་ལ་ཅུང་ཟད་ཇི་ལྟར་འདི་མི་སྨྲ།
གཞན་དོན་བསྒྲུབ་པ་ལ་ནི་བསིལ་གྱུར་པ།
སྒྲུ་ཅོལ་ཆ་ལྡན་སྲུ་ཡི་རོ་དག་བྱེད།

གང་གི་སྐྲ་སོགས་འཕྲེང་བས་ཉམས་བཀྲ་སྟི། 242
ཁྱོད་ཀྱི་མཛུག་མའི་ཚོགས་ཀྱི་གྲགས་གྱུར་པ།
ཡིད་འོང་གློག་གི་རབ་གསལ་སྤྲིན་ལྡན་གཞི།
འགར་ཡང་མོ་བྱ་ཁྱོད་ཀྱིས་མཐོང་ངམ་ཅི། 243

གཙུག་ན་རིན་ཅན་མཆོག་ལྡན་ལག་འགྲོ་མ།
གལ་ཏེ་ལག་འགྲོ་ཁྱོད་ཀྱིས་འགར་མཐོང་ངམ།
ལྟོས་ཤིག་གང་གི་དུག་གིས་ཟེར་སྤྲོས་པས།
བཟོད་དཀའི་འབྲལ་བས་འདིར་ནི་བདག་སྡིག་གོ། 244

अपि त्वया कान्तिसखी सखे खे
तुल्येक्षणा लक्ष्ममृगस्य दृष्टा ।
तवोदिता यद्वदनोपमान-
सम्बन्धलब्धा जगति प्रसिद्धिः ॥ २४१ ॥

कथं न किञ्चित् कथयत्ययं मे
गतस्य कान्ताकथनार्थिभावम् ।
परार्थसम्पादनशीतलेन
कलावता कस्य कृतोऽनुरोधः ॥ २४२ ॥

अपि त्वया स्निग्धतड़ित्प्रकाशा
घनस्तनी क्वापि मयूर दृष्टा ।
त्वद्बर्हभारस्य सुहृत् स यस्या
विचित्रमाल्यः कवरीकलापः ॥ २४३ ॥

भुजङ्ग काचिद्भवता भुजङ्गी
दृष्टा क्वचित् सा वररत्नचूड़ा ।
विषच्छटाः पश्य यया विसृष्टा
मां दुःसहेऽस्मिन् विरहे दहन्ति ॥ २४४ ॥

---

49 A "मूकं कलङ्काङ्कमवाप्तदोषमविभ्रमं ह्रासविलासहीनम् ।
चिरेण निश्चित्य शशाङ्कमेव पप्रच्छ गच्छन्नरनाथसूनुः ॥"

This Sanskrit S'loka should have been placed in Juxta-position with Tibetan Verse No. 240, Sanskrit S'loka No. 210 has no corresponding Tibetan Verse. But owing to an oversight it was not placed at the footnote on that page.

རི་དྭགས་ཁྱོད་ཀྱི་ཡིད་སྨུབས་ས་དག་གི།
ཏོ་རའི་རྩེད་འཛེ་མ་དེ་མཐོང་ངམ་ཅི།
གང་གིས་ཟུར་མིག་ཨུ་དྤལ་ཆ་དག་གིས།
རི་དྭགས་རྣམས་ནི་ནགས་ན་མཛེས་སམ་སྐམ། 245

ཉིས་འཕྲུལ་སྐྱེ་ས་ཡལ་འདབ་མཛེས་པའི་མཆུ།
རོལ་པས་ཉམ་པར་གཡོ་བའི་བུད་མེད་དག།
ཕུར་བུ་ཅན་དེ་འཕྲི་ཤིང་བཞིན་དུ་ནི།
ནགས་མཐར་ནགས་བདག་ཁྱོད་ཀྱིས་མཐོང་ངམ་ཅི། 246

དེ་ནི་སྤྲིན་དང་མཚུངས་པ་ནགས་ཚལ་གྱི།
གླང་པོ་འདི་ཡིས་ཟླ་བའི་ཆ་བཞིན་དུ།
གསེར་གྱི་རྩ་ཤིང་ཡོངས་འཁྱུད་ལ་ཆགས་ནས།
བླངས་ནས་ཁྱེར་རམ་བསྐྱིབས་པ་མ་ཡིན་ནམ། 247

དེ་ལྟར་ནགས་ཚལ་སྐྱིབས་རྣམས་སུ། ཟླ་བཅོལ་རབ་བརྗོད་དེ་ཡིས་ནི།
ཀུ་ངན་གྱིས་བཞིན་མཚན་མོ་ནི། ཟླ་བའི་བཞིན་རས་མདོག་བྲལ་སོང་། 248

དེ་ཡིས་ཀླུ་ཡི་གནས་དང་ཉེ། ངོགས་འགྲམ་དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་དུ།
དཔལ་གྱིས་ཞུགས་དེ་དྲང་སྲོང་ཆེ། ཤིང་ཤུན་ཅན་ལ་རབ་ཏུ་ཕྱིན། 249

सारङ्ग सारङ्गविलासिनी किं
दृष्टा त्वया मन्मथपार्थिवस्य।
यस्याः कटाक्षोत्पलसंविभागै-
र्विभान्ति मन्ये गहने हरिण्यः॥ २४५॥

अपि त्वया विभ्रमजन्मभूमि-
र्वनस्पते पल्लवपेशलोष्ठी।
लीलाविलोला ललना वनान्ते
लतेव दृष्टा स्तवकावनम्रा॥ २४६॥

अनेन नूनं वनकुञ्जरेण
सा राजरम्भा परिरम्भलौल्यात्।
आकृष्य नीता घनसन्निभेन
संच्छादिता वा शशिनः कलेव॥ २४७॥

इति काननकुञ्जेषु तस्योन्मादप्रलापिनः।
शोकादिव विवर्णेन्दुवदना रजनी ययौ॥ २४८॥

स नागभवनासन्नतीरोपान्तं तपोवनम्।
शनैः प्रविश्य पप्रच्छ महर्षिं वल्कलायनम्॥ २४९॥

འདིར་ནི་འབྲལ་ནས་སེམས་དམན་སྤྱང་ངན་ཤུགས་རངས་ཀྱིས་སྤྲར་བའི།
འདོད་པའི་མི་ཡི་དུ་བས་སྤྲོ་ཆགས་ལྷས་མ་གཅིག་པ་ཅན།
རི་བོང་ཅན་གྱི་མཛེས་སྡུག་ཛྲིགས་གྱིས་ཞི་བྱེད་རི་དྭགས་མིག།
མི་འམ་ཅི་མོ་སྤུ་ཞིག་ཐུབ་པ་མཆོག་གིས་གཟིགས་སམ་ཅི། 250

ཞེས་བ་མཛེས་མ་དང་བྲལ་ཞིང་། སྨྲོན་པའི་སྐབས་ནི་ཐོབ་གྱུར་པ།
དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ཐུབ་པ་ཡིས། ཡོངས་སུ་ཤེས་ནས་དེ་ལ་སྨྲས། 251

ཁྱོད་ནི་ངལ་གསོ་དབུགས་ཕྱུང་ལ། ཡོངས་སུ་གདུང་བ་འདི་གཏང་མཛོད།
ཁྱོད་ཀྱི་དགེ་མ་ཡིད་ཀྱི་ནི། ཟླ་བའི་འོད་དེ་བདག་གིས་མཐོང་། 252

ཁྱུ་ཉམས་རི་དྭགས་མོ་བཞིན་དུ། འཚོ་བ་ལ་ཡང་ལྟོས་པ་མེད།
སྐྱང་མོ་ཞགས་པས་དྲངས་པ་བཞིན། དེ་ནི་ཁྱོད་ཀྱི་བསམ་པས་འཚོ། 233

ལག་པ་དག་ལ་བཞིན་གྱི་པདྨ་ཉལ་ཞིང་ཡལ་འདབ་མལ་སྟན་ལ།
གདུང་བས་ཉེན་ཅིང་གཡོ་བའི་ཚིག་ལྷན་རི་མོ་ཀུན་དུ་ཉམས་པའི་ལུས།
རེ་བ་བཅས་ལ་བརྟེན་པ་བཞིན་དུ་བློ་གྲོས་ཁྱོད་བྲལ་འཁྲུགས་གྱུར་པ།
དེ་ཡི་ཡིད་ནི་འགར་ཡང་ཅི་ཡང་ངལ་གསོས་ཉིད་དུ་འགྱུར་མ་ཡིན། 254

ལྡོན་པ་མི་འམ་ཅི་ཡི་བདག། ཡབ་ཀྱི་ཁྱིམ་ན་བདག་གནས་སོ།
ཁྱོད་ནི་མྱུར་དུ་ཤོག་ཅིག་ཅེས། དེ་ཡིས་ཁྱོད་ལ་ཡང་དག་བསྟན། 255

इह विरहविचिन्ताशोकनिश्वासमूर्च्छ-
न्मदनदहनधूमश्यामसत्त्वैकवेणी ।
अपि शमितशशाङ्कोद्दामसौन्दर्य्यदर्पा
मुनिवर हरिणाक्षी किन्नरी कापि दृष्टा ॥ २५० ॥

इति कान्तावियुक्तस्य प्राप्तस्योन्मादिनीं दशाम् ।
मुनिः श्रुत्वा वचस्तस्य परिज्ञाय तमब्रवीत् ॥ २५१ ॥

समाश्वसिहि विश्राम्य सन्तापस्त्यज्यतामयम् ।
दृष्टा सा तव कल्याणी मया मानसचन्द्रिका ॥ २५२ ॥

यूथभ्रष्टेव करिणी निरपेक्षापि जीविते ।
पाशाकृष्टेव हरिणी धार्य्यते सा त्वदाशया ॥ २५३ ॥

पाणौ शेते वदनकमलं प्रस्तरे पल्लवानां
तापक्लान्ता तरलवचनसंशिनीगात्रलेखा ।
आशाबन्धे धृतिरिव मतिस्त्वद्वियोगाकुलाया
स्तस्या नैव क्वचिदपि मनः किन्तु विश्रान्तिमेति ॥ २५४ ॥

द्रुमस्य किन्नरपतेः स्थिताहं भवने पितुः ।
आगन्तव्यं त्वया तूर्णमिति त्वां सन्दिदेश सा ॥ २५५ ॥

བརྩོན་འགྲུས་སྙིང་སྟོབས་སྟོབས་དང་ཐབས། བདེན་དང་སྨྲ་ལྡན་ནོམས་ཀྱིས་ཀྱང་།
བགྲོད་མིན་མི་འམ་ཅི་ཡི་ནི། གྲོང་ཁྱེར་ལམ་ཡང་རིམ་པས་བཤད། 256

གང་གི་འོད་འཛམ་རིག་པ་ཡིས། ཕྱོགས་ནོམས་སེར་པོ་ཉིད་འགྱུར་བ།
རིན་ཅེན་སོར་གདུབ་འདི་ཡང་ནི། དེ་ཡིས་ཁྱོད་ཀྱི་ཆེད་དུ་བྱིན། 257

ཞེས་བརྗོད་ཀུན་དགའི་བདུད་རྩི་ཡིས། དྲན་བཞིན་བདེན་པ་དག་གི་དེན།
སོར་གདུབ་དག་ནི་དེ་ལ་བྱིན། ལམ་ཡང་ཐུབ་པས་རབ་དུ་བཤད། 258

དེ་ཡིས་བསྟན་པའི་ལམ་དག་ནི། ཐབས་དང་བཅས་པས་མི་བདག་བྲུ།
བདེན་པས་ནོར་འཛིན་གནས་པ་ཡི། ཕྱོགས་སུ་འགྲོ་བར་རབ་དུ་བཙམས། 269

སྨན་ཆེན་བདུད་རྩི་ལེགས་གྲུབ་པ། མར་གྱིས་སྨིན་པ་འཐུངས་ནས་ནི།
རྫུ་འཕྲུལ་སྟོབས་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཐོབ། མཚོན་ཆ་དང་བཅས་དཔལ་གྱིས་སོང་། 260

རྫུ་འཕྲུལ་གྱིས་ནི་ལམ་དུ་དེའི། ཉེར་མཁོ་ཐམས་ཅད་ཉེར་གནས་གྲུར།
སྙིང་སྟོབས་གྲོགས་དང་ལྡན་ནོམས་ཀྱི། གྲུབ་པ་ཕུན་ཚོགས་རང་དབང་ཉིད། 261

དེ་ནས་རིག་འཛིན་བུ་མོ་ནི། རྩེ་དགའ་གྲོད་པ་ལྷུར་མཛེས་པ།
གངས་ཅན་བགོལ་ནས་དེ་ཡིས་ནི། ཀུ་ཀྲུ་ལྟ་ཡི་རི་ལ་སྐྱེབ། 262

འབྲས་བུའི་སྐྱེས་གྱིས་ཁས་བླངས་བྲུས། དེར་ནི་སྨྲ་ཨུའི་ཁྲུ་ཡི་བདག
རླུང་ཤུགས་ཞེས་པ་ལ་ནོན་ནས། རི་བོ་དེ་ནི་དེ་ཡིས་འགོངས། 263

वीर्य्यसत्त्वबलोपायधैर्य्योत्साहवतामपि ।
अगम्ये किन्नरपुरे क्रमाद्वर्त्म शशंस च ॥ २५६ ॥

इदञ्च त्वत्कृते दत्तं तया रत्नाङ्गुलीयकम् ।
यस्य स्निग्धप्रभाभ्यङ्गैर्दिशो यान्ति पिशङ्गताम् ॥ २५७ ॥

इत्यानन्दसुधासिक्तमुक्त्वा धैर्य्यावलम्बनम् ।
अङ्गुलीयं ददौ तस्मै मार्गञ्चाकथयन्मुनिः ॥ २५८ ॥

पथा तदुपदिष्टेन सोपायेन नृपात्मजः ।
धीरः प्रचक्रमे गन्तुं धनदाध्युषितां दिशम् ॥ २५९ ॥

स सिद्धां घृतपाकेन सुधां पीत्वा महौषधिम् ।
लब्धद्विबलमाहात्म्यः सायुधः प्रययौ शनैः ॥ २६० ॥

कृत्वा सन्निहितं तस्य सर्व्वोपकरणं पथि ।
अभूत सत्त्वसहायानां स्वाधीनाः सर्व्वसम्पदः ॥ २६१ ॥

अथ विद्याधरवधूविलासहसितद्युतिम् ।
हिमवन्तमतिक्रम्य कुक्कुलाद्रिमवाप सः ॥ २६२ ॥

फलोपहारैः स्वीकृत्य तत्र वानरयूथपम् ।
वायुवेगाख्यमारुह्य स तं शैलमलङ्घयत् ॥ २६३ ॥

དེ་ནས་ལུག་གི་ལམ་ཞེས་པའི། ས་འཛིན་དག་ནི་རབ་ཏུ་གཞལ།
འཇིགས་སུ་རུང་བའི་སྤྲུལ་ཆེན་ནི། བགེགས་ཀྱི་ཚོགས་བཞིན་མདའ་ཡིས་བསྣུན། 264

འདོད་པའི་གཟུགས་ཅན་སྲིན་མོ་ནི། ཀྱིད་མང་ལྷ་ཡིས་དབང་བྱས་ནས།
འདོད་པའི་གཟུགས་ཀྱི་རི་བོ་འདས། མི་འམ་ཅི་མོའི་བདག་པོ་སོང་། 265

དེ་ནས་ཀྱིན་གཅིག་རི་བོ་ལ། ཡང་ཡང་མཚོན་གྱི་རྩེ་མོ་ཡིས།
བསྣུན་ཅིང་བཀོས་པ་དག་གིས་ནི། སྤོབས་ལྡན་ཤིན་ཏུ་དུལ་བས་འཇོམས། 266

དེ་ནས་རྡོ་རྗེ་ཅན་ཞེས་པའི རི་བོ་རབ་དྲག་དེ་ཡིས་འཇོམས།
སྲིན་མོ་ཤ་ནི་འཚོལ་བྱེད་པ། བྱ་རྒོད་གཟུགས་ཅན་ཡང་དག་མཐོང་། 267

ཤ་ལྡན་རི་དྭགས་ལྷགས་པ་ནི། ཡོངས་སུ་བསྐྱུར་བས་ཀུན་ཏུ་གཡོགས།
རི་བོ་དེ་ཡི་གནས་ཀྱི་རྩེར། དེ་ཡི་ལུས་ནི་གཡོ་མེད་འཁོད། 268

མཚན་གྱི་བྱ་རྒོད་གཟུགས་ཅན་ནི། ཤ་ལ་ཆགས་བས་དེ་གླངས་ནས།
འཇིགས་རུང་གཟུགས་ཀྱིས་བཟའ་བའི་ཕྱིར། རི་རྩེའི་སྟེང་དུ་རྣམ་པར་བཀོད། 269

བརྩོན་འགྲུས་ཅན་གྱིས་རི་དྭགས་ཀྱི། པགས་པ་བཏང་ནས་དེ་བསད་དེ།
སེང་ལྡེང་ཕྱུག་པོས་ཁྲིངས་པ་ཡི། སེང་ལྡིངས་འཛིན་དག་ཏུ་ཕྱིན། 270

དེ་ཡི་ཕྱུག་ཞུགས་རྩོ་བསམ་བས། གྲང་དང་ཚ་དང་བསྟུན་པ་སྤྲུལ།
སྲིན་པོ་ལ་སོགས་འཇིགས་པ་དག། འཕྲོག་པའི་སྐད་ནི་ཆེན་པོ་ཐོབ། 271

अथाजपथनामानमतिचक्राम भूधरम् ।
निहत्याजगरं घोरं विघ्नसंघमिवेषुणा ॥ २६४ ॥

वीणास्वनैर्वशीकृत्य राक्षसीं कामरूपिणीम् ।
कामरूपाद्रिमुल्लङ्घ्य प्रययौ किन्नरीप्रियः ॥ २६५ ॥

वलवान्मुद्गराघातनिखातैः शस्त्रशङ्कुभिः ।
एकधारं ततः शैलमारुरोहातिसाहसः ॥ २६६ ॥

अथोग्रतरमारुह्य वज्रकाख्यं स पर्व्वतम् ।
गृध्ररूपां समालोक्य राक्षसीं पिशितैषिणीम् ॥ २६७ ॥

परिवृत्तेन संच्छन्नः समांसमृगचर्म्मणा ।
स पादमूले तस्याद्रेस्तस्थौ निश्चलविग्रहः ॥ २६८ ॥

मांसलुब्धा तमुत्क्षिप्य गृध्ररूपा निशाचरी ।
निदधे शिखरस्याग्रे भोक्तुं भीषणविग्रहा ॥ २६९ ॥

मृगचर्म्म समुत्सृज्य तां निहत्य स वीर्य्यवान् ।
नीरन्ध्रखदिराकीर्णं प्राप खादिरभूधरम् ॥ २७० ॥

प्रविश्य तद्गुहां लेभे शिलां व्यस्य महौषधिम् ।
शीता तपतमःसर्पराक्षसादिभयापहाम् ॥ २७१ ॥

འཁྲུལ་འཁོར་རི་གཉིས་རབ་བསྡེབས་པས། སྒྲོག་ནི་འཕྲོག་པར་དེ་ཡིས་སྒྲིབ།
འཁྲུལ་འཁོར་སྲུང་པ་མདའ་རྩེ་ཡིས། བཅད་ནས་གསོ་བ་མེད་པར་བྱས། 272

འཁྲུལ་འཁོར་སྲུང་པ་བཅད་ནོ་བས་ཀྱིས། འཁྲུལ་འཁོར་སྒྲ་ནི་དེས་བཙོས་ཞིང་།
འཁྲུལ་འཁོར་འཁོར་ལོ་བཅད་དེ་བཞིན། ལྕགས་ཀྱི་འཁྲུལ་འཁོར་སྲུང་བའོ། 273

དྲག་ཏུ་སྐྲུན་བྱེད་སྐྱེས་བུ་གཉིས། བརྡོད་དཀར་ཞུག་གི་འཁྲུལ་འཁོར་གཉིས།
དེ་བཞིན་ཆུ་སྲིན་སྲིན་པོའི་སོའི། འཁྲུལ་འཁོར་དྲག་པོས་འཛོམས་པ་གཉིས། 274

འཛིགས་རུང་སྲུན་པ་ཟབ་བའི་ཕུག། ཁྲོན་པ་གཉིས་ཀྱང་ནོམ་པར་འགོངས།
ཆུ་བོ་ཆེན་པོ་ཡང་དག་བསྒོལ། དེ་ངོགས་སྲིན་པོ་ནོམས་བསད་ནས། 275

མཆེ་བའི་དུག་ལྡན་གནས་པའི་ཚོ། པ་ཏྲཾ་གཞིས་ཐུར་འགྲོད་དང་།
གང་འབྲས་མི་འམ་ཅི་དག་གི། འབངས་ནོམས་ངུ་བའི་སྒྲ་དག་གི། 276

དེ་འགྲོའི་སེམས་ལ་བགེགས་བྱེད་པ། སྐྱུང་ནི་དུ་བ་ཅན་དག་དང་།
དེ་བཞིན་གཏོད་བ་ཅན་ཞེས་པ། གཏོད་པས་སེམས་ལ་གནོད་བྱེད་དང་། 277

མི་འམ་ཅི་མོ་ནོམས་དག་གིས། གང་གི་འབྲས་དུ་གདུང་སྐྱེར་བ།
ཐུར་བགྲོད་གཞན་ཡང་བཟླས་བྱས་དེ། དེ་འོག་སྨ་ལྡན་སྐྱུང་ཅན་ཕྱིན། 278

དེ་ནས་དེ་ལ་ཐུར་འདོད་བས། འབྲས་ཀྱི་སྨ་ཡི་འཁྲི་ཤིང་བཟུང་།
ལྷུང་གིས་བསྐྱལ་བས་པ་རོལ་ཕྱིན། སྨ་ཡི་འཁྲི་ཤིང་དེ་ཡིས་ཐོབ། 279

स यन्त्रपर्व्वतौ प्राप्य संघट्टैः प्राणहारिणम् ।
यन्त्रकीलं शराग्रेण छित्वा चक्रे विनिश्चलौ ॥ २७२ ॥

यन्त्रकीलसमुच्छेदैर्यन्त्रद्वारं विदार्य्य सः ।
छेदनं यन्त्रचक्रस्य यन्त्रयुक्तौ तथायसौ ॥ २७३ ॥

तीव्रप्रहारौ पुरुषौ यन्त्रमेषौ च दुःसहौ ।
यन्त्रोग्रदन्तनिष्पेषौ तथा मकरराक्षसौ ॥ २७४ ॥

घोरान्धकारगम्भीरं गुहाकूपं विलङ्घ्य च ।
तुङ्गां सरितमुत्तीर्य्य हत्वा तत्कूलराक्षसान् ॥ २७५ ॥

आशीविषाहतजलां पतङ्गाख्यां च निम्नगाम् ।
रोदिनीञ्च नदीं तीरे यस्याः किंन्नरचेटिकाः ॥ २७६ ॥

कुर्व्वन्ति रोदनरवैर्विघ्नं तद्गतचेतसाम् ।
तद्विधां हासिनीं नाम हासापहृतचेतसाम् ॥ २७७ ॥

दिशन्ति पुलिने यस्या व्यसनं किन्नराङ्गनाः[१] ।
लङ्घयित्वापगाश्चान्या वेचां प्राप्य नदीं ततः ॥ २७८ ॥

कूलवेचलतालम्बी तस्यामथ तितीर्षया ।
पवनप्रेरितां पारवेचवल्लीमवाप सः ॥ २७९ ॥

१ H reads किन्नरीगणाः ।

རི་བ་བཞིན་དུ་རབ་རིང་བ། དེ་ཡི་ཕ་རོལ་འགྲམ་དུ་ཕྱིན།
མི་འམ་ཅི་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་ནི། རབ་གསལ་ཤེལ་གྱི་ཁང་པ་མཐོང་། 280

དེ་ཡི་རལ་གྲུས་ནང་དུ་ཞུགས། གསེར་གྱི་བད་ལྡན་མཛེས་པར་ཕྱིན།
དེ་ཡི་ངོགས་ཀྱི་ཤིང་ལ་འཛེགས། རིན་ཆེན་འཁྲི་ཤིང་གིས་འཁྲིབས་ནས། 281

དེར་དེས་ཆུ་སྐྱེས་རྡུལ་ཚོགས་ཀྱི། དྲི་བཟང་སེར་པོར་གྱུར་བའི་ཆུ།
མི་འམ་ཅི་མོ་ནོམ་དག་གིས། གསེར་གྱི་བུམ་པར་ལེན་པ་མཐོང་། 282

དེར་ནི་བུམ་འདེགས་ངལ་བ་ཡིས། གཟིར་བ་ཅིག་ཅན་དེས་མདོན་ཕྱོགས།
ལག་པས་རྟེན་ནས་གྲོགས་བྱས་ཏེ། རལ་གྲུ་ཡིས་ནི་དེ་ལ་དྲིས། 283

མ་མ་སུ་ཡི་ཆེད་དུ་ནི། ཆུ་འདི་འབད་ནས་ལེན་པར་བྱེད།
གང་ལ་གུས་པས་བྱེད་ཉམས་ནི། ཡོངས་སུ་ངལ་འདི་ཅི་མི་བྱེད། 284

དེ་སྐད་ཚིག་སྙན་གྱིས་དེས་དྲིས། མཛེས་སྡུག་སྙན་སྒྲ་ལྡན་པ་ཡིས།
ཕྱོགས་སུ་སྐད་ཅིག་གིས་ལྡུང་མ། དེ་ཡིས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ། 285

མི་ཡི་དྲི་སྨང་དག་ཅའི་སྨུར། རྟག་དུ་དྲི་བཟང་ཆུ་ནོམས་ཀྱིས།
མི་འམ་ཅི་རྒྱལ་ཡབ་ཀྱི་བཀས། ཡིད་འཕྲོག་མ་ནི་ཁྲུས་བྱེད་དོ། 286

ཞེས་པ་དེ་ཡིས་བརྗོད་ཐོས་ནས། སྐད་ཅིག་བདུད་རྩིས་བྲན་པ་བཞིན།
དེ་ཡི་རྟགས་མཚན་སོར་གདུབ་ནི། གསེར་གྱི་བུམ་པར་དེ་ཡིས་འཕངས། 287

तया प्राप परं पारमाशयेवातिदीर्घया ।
ददर्श किन्नरपुरं स्फारस्फटिकमन्दिरम् ॥ २८० ॥

प्रविश्य स शनैः प्राप्य कान्तां कनकपद्मिनीम् ।
तत्तीरतरुमारुह्य तस्थौ रत्नलतावृतः ॥ २८१ ॥

स ददर्शाम्बुजरजःपुञ्जैः सुरभिपिञ्जरम् ।
हेमकुम्भैर्जलं तत्र नयन्तीः किन्नराङ्गनाः ॥ २८२ ॥

कुम्भोत्क्षेपे श्रमार्त्तायास्तत्रैकस्याः समेत्य सः ।
हस्तालम्बेन साहाय्यं कृत्वा पप्रच्छ तां शनैः ॥ २८३ ॥

मातः कस्य कृते तोयमिदं यत्नेन नीयते ।
यद्भक्त्या गण्यते नायं भवतीभिः परिश्रमः ॥ २८४ ॥

इति तेन प्रियगिरा सा पृष्टा तमभाषत ।
माधुर्यधुर्यसौन्दर्ये पक्षपातवती क्षणात् ॥ २८५ ॥

मर्त्यामोदापनोदाय सदा सुरभिवारिभिः ।
पितुः किन्नरराजस्य गिरा स्नाति मनोहरा ॥ २८६ ॥

तयेति कथितं श्रुत्वा सुधासिक्त इव क्षणात् ।
स हेमकुम्भे चिक्षेप तदभिज्ञाङ्गुलीयकम् ॥ २८७ ॥

---

१ W[1] स्फुरत्स्फटिकमन्दिरम् ।

དེ་ནས་སྨོར་གདུབ་མངོན་པར་འཕྲོག་བྱེད་དེ་ནི་བུམ་པ་ལས།
ཁས་བྱེད་ཡིད་འཕྲོག་མ་ཡི་ནུ་མའི་བུས་པ་རྫང་ལ་ལྷུང་།
གང་གི་གཟུགས་བརྟན་ཟེར་ལྡན་རིན་ཅན་འོད་ཟེར་རི་མོ་ཡིས།
སྤུར་དུ་སེན་མོ་འདེབས་པའི་རྩེ་དགའ་དག་དང་མཚུངས་པ་ཐོབ། 288

ད་རྫེས་རིན་ཅན་སྨོར་གདུབ་ལུས་མེད་གདམ་དག་ནང་སོང་བ།
རང་གི་རྫེས་སུ་ཆགས་པ་གཟུགས་ཅན་བཞིན་དུ་བརྟགས་བྱས་ནས།
བདག་པོ་འོངས་པར་ཤེས་ཏེ་འདི་ནི་ཁྱོད་ཀྱིས་གང་ལས་ཐོབ།
ཅེས་བ་དེ་ཡིས་འབངས་མོ་ལ་ནི་རངས་པ་བཞིན་དུ་སྨྲས། 289

དེ་ནས་འབངས་མོས་དེ་ལ་སྨྲས། ལྷ་མོ་རྗེ་ང་བུའི་ངོགས་དག་ན།
ཡིད་སྨྲུབས་མངོན་དུ་གྱུར་པ་བཞིན། དར་བབ་མཛེས་བ་འགའ་ཞིག་མཆིས། 290

གང་མཐུ་སྟོབས་པོ་ཅན་གྱི་ཚུ། གུར་གུམ་མཛེས་པ་ཉིད་བསྙེན་པ།
སྨོར་གདུབ་འདི་ནི་དེ་ཉིད་ཀྱིས། གསེར་གྱི་བུམ་པ་འདི་རུ་འཕངས། 291

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་སྙན་ཐོས། གཟུགས་བཟང་ལྡན་པ་ཡིད་འཕྲོག་མས།
ཁྱོ་ནི་འོངས་པར་ངེས་བྱས་ནས། དེ་ཉིད་དེ་ནི་འགུགས་སུ་བཏང་། 292

དེ་ཡིས་རབ་སྨྲས་སྐྱིད་ཚལ་གྱི། ཁང་བར་བཀོད་པའི་མཛེས་པ་ནི།
ཀུ་མུད་ཅན་གྱི་ཟླ་བ་བཞིན། ཡིད་འཕྲོག་མ་ནི་སོང་བས་མཐོང་། 293

स्नान्त्यास्ततस्तदभिहारि मनोहरायाः
कुम्भात्पपात कुचकुम्भयुगेऽङ्गुलीयम् ।
यस्यांशुमत्प्रतिमरत्नमयूखलेखाः
क्षिप्रं नखक्षतविलासतुलामवापुः ॥ २८८ ॥

मूर्त्तं ततः स्वमनुरागमिवाकलय्य-
रत्नाङ्गुलीयकमनङ्गकथान्तरङ्गम् ।
सा कान्तमागतमवेत्य कुतस्त्वयेदं
सम्प्राप्तमित्यवददुच्छ्वसितेव दासीम् ॥ २८९ ॥

ततस्तामवदद्दासी देवि पुष्करिणीतटे ।
स्थितः कोऽपि युवा कान्तः प्रत्यक्ष इव मन्मथः ॥ २९० ॥

निक्षिप्तं हेमकुम्भेऽस्मिन्निदं तेनाङ्गुलीयकम् ।
भजते यत्प्रभागर्भं पयः कुङ्कुमकान्तताम् ॥ २९१ ॥

इति तद्वचनं तन्वी प्रियं श्रुत्वा मनोहरा ।
निश्चित्य दयितं प्राप्तमानिनाय तयैव तम् ॥ २९२ ॥

तया गुप्ततरे न्यस्तं कान्तमुद्यानमन्दिरे ।
कुमुद्वतीव शशिनं गत्वापश्यन्मनोहरा ॥ २९३ ॥

ཕན་ཚུན་ལྟ་བར་བྱེད་པའི་ཉམ་འཕྲུལ་དང་།
འབྲལ་བའི་ཡོངས་གདུང་ཉམ་པར་ཆད་བ་དང་།
དེ་དག་རབ་དགའ་ཉམས་སུ་མྱོང་གྱུར་པ།
ལུས་མེད་ཡན་ལག་ཀུན་ལྡན་མཛེས་པ་ཐོབ། 294

བྲལ་བའི་དུས་སུ་གང་གང་ཅུང་ཟད་བསམས་པས་ནང་དུ་གོམས་བྱས་དང་།
གང་གང་རབ་དགའ་རབ་གྱིས་ཡིད་སྲུང་འགྲོགས་ཀྱི་འདེབ་དང་སྟོན་པ་དང་།
གང་གང་མཛད་པར་མཚུངས་དགའ་བར་སྨིད་ལྡན་བྱུང་པོར་འོས་གྱུར་བ།
དེ་དེ་ཐམས་ཅད་མཛའ་གཅུགས་སྐལ་བཟང་ཁྱོ་ཤུག་དེ་གཉིས་དག་གིས་བྱས།
295

དེ་རྗེས་སྤྱོད་ཚུལ་བསྒྲིབས་པ་ནི། ངོ་ཚ་ལྡན་པའི་ཡིད་འཕྲོག་མས།
བཤད་ནས་པ་མ་དག་ལ་ནི། བདག་ཉེས་ཡི་ཡིད་འབྱུང་བསྟན། 296

དེ་ནས་མི་འམ་ཅི་ཡི་རྒྱལ། དེ་ལ་ཁྲོས་པས་མཆུ་བསྐྱོད་ཅིང་།
བུ་མོའི་བདག་ནི་མགོན་བའི་ལམ། ཡོངས་སུ་བཏང་ནས་རབ་སྨྲས་པ། 297

ཀྱེ་མ་མི་འོས་སྐྱེ་བོ་ལ། ཚ་ཡིས་བག་མེད་ལྷུང་གྱུར་པ།
སྤྱོད་ཚུལ་ངན་པ་བཀུར་ཀྱང་ནི། ཆགས་པ་ཉིད་ནི་ཁྱོད་མི་གཏོང་། 298

ཁྱོད་ཀྱི་མཛེས་སྡུག་ལང་ཚོལ། ལྷ་ཉམས་ཀྱིས་ནི་རིག་བྱ་འདི།
ཀྱེ་མ་མི་དང་མཛའ་བ་ཡིས། ཤ་ངན་བྱ་འོས་ཉིད་དུ་གྱུར། 299

परस्परालोकनविभ्रमेण
वियोगसन्तापनिवेदनेन।
तयोः प्रहर्षानुभवेन लेभे
शोभामशेषाङ्गवतीमनङ्गः ॥ २९४ ॥

यद्यत् किञ्चिद्विरहसमये चिन्तयाभ्यस्तमन्त-
र्यद्यत् प्रौढ़प्रमदसुहृदा मन्मथेनोपदिष्टम्।
यद्यत् प्रेम्णः सदृशमुचितं यद्यदौत्सुक्यराशे
स्तत्तत्सर्व्वं प्रणयसुभगं दम्पती चक्रतुस्तौ ॥ २९५ ॥

ततः प्रच्छन्नवृत्तान्तं लज्जमाना मनोहरा।
निवेद्यादर्शयत् पित्रोः पतिं भूमिमनोभवम् ॥ २९६ ॥

ततः किन्नरराजस्तां कोपप्रस्फुरिताधरः।
उवाच दर्शनपथं परिहृत्यात्मजापतेः ॥ २९७ ॥

अहो प्रमादपतिता दैवादनुचिते जने।
न विमुञ्चसि दुर्वृत्ते क्षाल्यमानापि रक्तताम् ॥ २९८ ॥

यौवनोत्पत्तिलावण्यं स्पृहणीयं दिवौकसाम्।
यत प्रयातमेतत्ते मर्त्यसङ्गेन शोच्यताम् ॥ २९९ ॥

མཐོན་པོའི་རིགས་ལས་སྐྱེས་གྱུར་ཅིང༌། ཕྱུག་པོའི་ཡང་ཆོ་རབ་གྱིས་པ།
ཐུར་འགྲོ་འཁྲུགས་པས་ནོར་ཉམས་པ། ཁྱོད་ནི་ཤིན་དུ་འོག་དུ་འགྲོ། 300

མཁས་པ་ཆགས་བྲལ་སྐྱིད་བྱེད་ཅིང༌། རིགས་ནི་སྐྱོངས་པར་བྱེད་པ་མོ།
མི་བསྐྱུན་རིགས་བཞིན་དྲི་མ་ཅན། ཁྱོད་ནི་སུ་ཡང་མི་འདོད་དོ། 301

གཟུགས་ཙམ་གྱིས་ནི་ཁྱོད་ཆོམ་ནས། གལ་དེ་མི་ཡི་དབང་གྱུར་ན།
གསེར་ལས་སྤྲུལ་པ་སྐྱེས་བུ་ཡི། གཟུགས་དང་རྩེ་དགའ་ཅིས་མི་བྱེད། 302

མཐུ་དང་ཡོན་ཏན་གྱིས་དམན་པ། སྐྱེས་བུ་རབ་མཛེས་དབྱིབས་ཅན་གྱི།
མཛེས་སྡུག་རི་མོར་བྲིས་པ་ཡི། སྐྱེས་བུ་ཡི་བཞིན་རྟག་པ་མཛེས། 303

འབྲེལ་དམན་ངོ་ཚས་སྡིག་ཅན་མ། ཁྱོད་ཁྱོ་བདག་གིས་གསད་བར་བྱ།
ཁྱོད་སློང་ལ་འོངས་ལྷ་ནམས་ཀྱི། བཞིན་ནི་བདག་གིས་ལྟ་མི་བོད། 304

བདེན་བར་སྨྲ་བ་དང་ལྡན་ཞིང༌། མཐོན་པོར་གྱུར་པའི་རིགས་དག་ནི།
བུ་མོས་འཁྲུམས་པར་བྱེད་པ་སྟེ། དུས་ནི་དེ་བར་དགའ་བས་བཞིན། 305

དེ་སྐད་པ་ཡིས་སྨད་གྱུར་དེས། མཆི་མའི་ཐིགས་པ་ནུམ་ལ།
དོ་ཤལ་སྐུད་མེད་སྤྲིག་བྱེད་ཅིང༌། བཞིན་བདུད་དེ་ལ་རབ་སྤྲས་པ། 306

ཡབ་ལགས་ཁྲོ་བར་མི་འོས་པ། དེ་དག་བདག་ལ་གསུང་འོས་མིན།
མཐུ་ཡིས་མི་འདས་ཅི་དག་ལས། ལྷག་པའི་མི་མ་ཐོས་སམ་ཅི། 307

उदग्रगोत्रप्रभवा घनयौवननिर्भरा ।
निम्नगे क्षोभविभ्रष्टा यातासि सुतरामधः ॥ ३०० ॥

विद्वदुद्वेगजननी कुलवैलक्ष्यकारिणी ।
मलिना खलविद्येव सम्मतासि न कस्यचित् ॥ ३०१ ॥

रूपमात्रेण दृष्टा त्वं यदि मर्त्यवशं गता ।
तत् किं न रमसे हेमनिर्म्माणपुरुषत्विषा ॥ ३०२ ॥

प्रभावगुणहीनस्य पुंसश्चारुतराकृतेः ।
आलेख्यपुरुषस्येव सौन्दर्य्यं भित्तिरञ्जनम् ॥ ३०३ ॥

वध्यो मे त्वत्पतिः पापे हीनसम्बन्धलज्जया ।
मुखं द्रष्टुं न शक्नोमि त्वद्यात्स्वातदिवौकसाम् ॥ ३०४ ॥

सत्यमुत्साहयुक्तस्य कुलस्योन्नतिशालिनः ।
जरेव किल कायस्य कन्या सङ्कोचकारिणी ॥ ३०५ ॥

इति सा भर्त्सिता पित्रा तमुवाच नतानना ।
अस्वच्छहारं कुर्व्वाणा कुचयोर्बाष्पविन्दुभिः ॥ ३०६ ॥

कोपादनुचितं तात नैतन्मां वक्तुमर्हसि ।
न श्रूयन्ते प्रभावेण किं नराः किन्नराधिकाः ॥ ३०७ ॥

མཁའ་ལྡིང་གིས་ཀྱང་བགྲོད་དཀའ་བ། ས་འདི་གང་གིས་བགྲོད་གྱུར་ནས།
འོངས་པ་མཐུ་ཡི་ས་གཞི་དེ། མི་ཉིད་ཡིན་པར་ཅི་ལྟར་འགྱུར། 308

ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ལུས་དག་ནི། ཡོན་ཏན་ཡང་དག་རྗོད་བྱེད་ཉིད།
བསིལ་ཟེར་ཅན་གྱི་འོད་ཟེར་ནི། ཀུན་དགའ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པ་ཡིན། 309

ཡབ་གཅིག་རིགས་ཀྱིས་ཅི་ཞིག་བྱ། ཡོན་ཏན་རང་བཞིན་རྗེས་སུ་འབྲང་།
ཀླུ་གྲིས་བདུད་རྩི་ཟག་པ་ནི། ནག་པོ་བརྩེགས་པའི་སྤྲིན་ཀླུ་ཉིད། 310

ཁ་ཅིག་ནང་ན་ཡོན་ཏན་ལྡན། དེ་བཞིན་གཞན་ནི་སྐྱོན་བསྒྲིབས་པས།
ནོར་བུ་རྣམས་ཀྱི་རིན་དག་ནི། མ་བརྟགས་འགོངས་པར་ཡོངས་མི་བྱ། 311

དེ་གྲོས་མི་འམ་ཅི་ཡི་བདག དེ་དེ་བཞིན་ཞེས་སེམས་བྱེད་ཅིང་།
མག་པ་ཡང་དག་བོས་ནས་ནི། ཡོན་ཏན་ཤེས་པར་འདོད་པས་སྨྲས། 312

མི་འམ་ཅི་ཡི་བུ་འདི་དག རེ་ཞིག་ཁྱོད་ཀྱི་མཛེས་པས་བཏུལ།
མཐུ་ནི་ཡང་དག་བསྟན་པ་ནི། མཆོག་གི་འབྲེལ་པ་དག་ཏུ་འོས། 313

ཤིན་ཏུ་ཡངས་པ་ཤ་རིའི་ནགས། ཤ་ར་ཁྱུང་བྲུས་སྐད་ཅིག་གིས།
དེ་ལ་བྲི་གང་བདབ་མི་ཉུད་བར། རབ་ཏུ་བསྐུས་ལ་སྨྲར་ཡང་བྱིན། 314

བརྟེན་དང་འབེན་ལ་སོགས་པ་ཡི། གཞུ་ཡི་རིག་བྱེད་མཁས་པ་སྟོན།
དེ་ནས་གྲགས་པའི་བ་དན་ནི། ཡིད་འཕྲོག་མ་འདི་ཁྱོད་དབང་གྱུར། 315

गरुड़स्यापि दुर्लङ्घ्यामिमामुल्लङ्घ्य यः क्षितिम्।
प्रभावभूमिरायाति मनुष्यः स कथं भवेत्॥ ३०८।

गुणसंवादिनी मूर्त्तिर्भवत्येव शरीरिणाम्।
करोत्यानन्दसंवादं द्युतिरेव हिमत्विषः॥ ३०९॥

जात्या किं क्रियते तात स्वभावानुगुणा गुणाः।
पूर्णेन्दुरमृतस्यन्दी कालकूटस्य सोदरः॥ ३१०॥

भवत्यन्तर्गुणाः केचिच्छन्नदोषास्तथा परे।
अपरीक्ष्य न कर्त्तव्या मणीनां मूल्यलङ्घना॥ ३११॥

श्रुत्वैतत् किन्नरपतिस्तत्तथेति विचिन्त्य च।
जामातरं समाहूय गुणजिज्ञासयाब्रवीत्॥ ३१२॥

त्वया कान्त्या जितास्तावदेते किन्नरदारकाः।
सन्दर्शितप्रभावस्तु दिव्यसम्बन्धमर्हसि॥ ३१३॥

अत्यायतं शरवणं छित्वोद्धृतशरं क्षणात्।
व्युप्तमन्यूनमुच्चित्य पुनर्देहि तिलाढकम्॥ ३१४॥

सन्दर्श्य धनुर्वेदे दृढलक्ष्यादिकौशलम्।
ततः कीर्त्तिपताकेयं तवायत्ता मनोहरा॥ ३१५॥

ཞེས་དེ་དེ་ཡིས་གྲུ་གྲུ་ལས། འོས་པ་མིན་པའི་ལས་ལ་བསྐུལ།
གཞོན་ནུ་མཛེས་མ་ལ་ཆགས་པས། ཐམས་ཅད་བྱ་བར་རབ་ཏུ་བཙེམས། 316

ནོན་མེད་ངལ་ཞིང་ཚོར་མོངས་འབྲས། ཤ་ར་འབྲིན་ལ་རབ་ཞུགས་པ།
ཏ་ཤེས་མིག་སྟོང་ལྡན་པ་ནི། ཕྱོགས་སུ་ལྷུང་བས་ཡང་དག་བསམས། 317

ཅི་སྐད་བསྐལ་པ་བཟང་པོ་པའི། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གྲུལ་སྲས་འདི།
འབྲས་མེད་ཉོན་མོངས་ལས་ལ་ནི། མི་འམ་ཅི་ཡི་དབང་གིས་བསྐོས། 318

འདི་ཡི་ངལ་དུབ་དུས་འདི་ལ། བདག་གིས་སྟོང་གྲོགས་རབ་ཏུ་བྱ།
དེ་ལྟར་བསམས་ནས་བརྒྱ་བྱིན་གྱིས། དེ་ཡི་ལས་ནི་རྫོགས་བྱས་ཏེ། 319

མཆོད་སྦྱིན་བརྒྱ་པས་བསྟན་པ་ཡི། གནོད་སྦྱིན་ལག་གི་གཟུགས་ཅན་གྱིས།
ཤ་རའི་ནགས་ནི་རབ་སྲུང་བ། མཉམ་པར་ཏིལ་ནི་བྲི་གང་བཏབ། 320

བརྒྱ་བྱིན་གྱིས་སྤྲོས་གློག་སྦྲུར་གྱིས། ཡང་དག་བསྡུས་ནས་གཅིག་ཏུ་བྱས།
མི་འམ་ཅི་ཡི་དབང་པོ་ལ། ཨ་མཚན་སྐད་དུ་གཞོན་ནུས་ཕུལ། 321

སྟོབས་གྱིས་དེ་ཡི་གསེར་གྱི་ནི། ར་བ་བདུན་དང་ཏ་ལ་བདུན།
ཕག་གི་འཁོར་ལོ་ཡང་དག་ལྡན། སྒོ་ལྡན་ཤིན་ཏུ་རྣོ་བས་ཕྲུག 322

གང་གིས་དེ་ཡི་ཅོད་པན་ལ། ལྷ་ཡི་མེ་ཏོག་ཆར་འཐིབ་པ།
བསྟན་བཅོས་མཆོད་དང་ཅོལ་དང་ནི། སྒྲུ་ཅོལ་བཟོ་དང་སྟོབས་རྣམས་བསྟན། 323

इत्यशक्तोऽपि कौटिल्यात् प्रेरितस्तेन कर्म्मणि ।
सर्व्वं कान्तानुरागेण कुमारः कर्त्तुमुद्ययौ ॥ ३१६ ॥

मिथ्याश्रमक्लेशफले प्रवृत्तं शरपाटने ।
तं विज्ञाय सहस्राक्षः पक्षपातादचिन्तयत् ॥ ३१७ ॥

किं भाद्रकल्पिको बोधिसत्त्वोऽयं पार्थिवात्मजः ।
नियुक्तः किन्नरेन्द्रेण निष्फले क्लेशकर्म्मणि ॥ ३१८ ॥

अस्यास्मिन् समयायासे कार्य्यं साहायकं मया ।
इति सञ्चिन्त्य शक्रोऽस्य कर्म्मनिष्पत्तिमादधे ॥ ३१९ ॥

शतक्रतुसमादिष्टैर्यक्षैः शूकररूपिभिः ।
उत्पाटिते शरवने समे व्युप्तन्तिलाढकम् ॥ ३२० ॥

एकीकृतं समुच्चित्य शक्रसृष्टैः पिपीलकैः ।
कुमारः किन्नरेन्द्राय विस्मिताय न्यवेदयत् ॥ ३२१ ॥

स सप्तकनकस्तम्भान् सप्ततालान् बलोर्ज्जितः ।
शूकरीचक्रसंयुक्तान् विद्धा निशितपत्रिणा ॥ ३२२ ॥

शास्त्रास्त्रविक्रमकलाशिल्पशक्तिमदर्शयत् ।
ययास्य पेतुर्मुकुटे दिव्याः कुसुमवृष्टयः ॥ ३२३ ॥

མི་འམ་ཅི་ཡི་རྒྱལ་པོ་ནི། དེ་མཐུས་ཡ་མཚན་གྱུར་མོད་ཀྱང་།
དེ་ཉིད་བསླུ་བའི་སླད་དུ་སླར། རིགས་པ་དེ་དེ་སེམས་པར་བྱེད། 324

མངོན་པར་ཞེན་པ་ཤིན་ཏུ་བདེན་ལྡན་གཞན་གྱི་གནོད་པས་རྣ་བཞིན་འཁྲུག།
ཡོན་དང་བགྲོ་ཐབ་གིས་ཀྱང་མི་མཐུ་ཤིན་ཏུ་འགལ་བའི་བློ་ཅན་རྣམས།
གྱི་ཆེ་མཚར་ལ་སྨྲ་བཅད་འཛིན་ཅིང་དམ་པ་བསྙོད་ལ་དགོད་པར་བྱེད།
གྲགས་པ་མཆོག་ལ་བཞིན་དག་ལོག་ཅིང་འགལ་བ་བརྗོད་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། 325

དེ་ལ་དེས་སྨྲས་ཁྱོད་ཀྱིས་ནི། ལྷ་ཡི་མཐུ་འདི་གསལ་བར་བྱས།
དེ་ནི་ཤེས་རབ་ཁྱད་འཕགས་དག། ཁྱོད་ཀྱི་ཡང་དག་བསྟན་པར་འོས། 326

གཟུགས་དང་ཁ་དོག་དབྱེར་མེད་ཅིང་། གྱོན་དང་ན་ཚོད་མཚུངས་གྱུར་པ།
མི་འམ་ཅི་མོ་འཁོར་པ་ཡི། དབུས་ནས་རང་གི་དགའ་མ་བྱུང་། 327

ཞེས་པ་བརྗོད་ནས་དེ་ཡིས་སླར། མི་འམ་ཅི་མོ་ལྔ་བརྒྱ་དག།
རྟོགས་པ་ཁ་དོག་ལང་ཚོ་དང་། ཆས་མཚུངས་མདུན་དུ་དེ་ཡིས་མཐོང་། 328

དེ་དག་དབུས་ནས་ཡིད་འཕྲོག་མ། དེ་ཡིས་ཡོངས་སུ་ཤེས་ནས་བཟུང་།
འཁྲི་ཤིང་ནགས་ཀྱིས་བསྒྲིབས་པ་ཡི། ཟླ་བའི་འཁྲི་ཤིང་གང་བས་བཞིན། 329

དེ་ནས་མི་འམ་ཅི་དབང་གིས། འདི་ནི་ལྷ་ཞེས་ངེས་བྱས་ནས།
ཆོམ་པས་དེ་ལ་ཡིད་འཕྲོག་མ། ལྷ་ཡི་རིན་ཆེན་དང་བཅས་བྱིན། 330

विस्मितोऽपि प्रभावेण तस्य किन्नरभूपतिः ।
पुनस्तद्वञ्चनायैव तां तां युक्तिमचिन्तयत् ॥ ३२४ ॥

दधति विपुलाश्चर्य्ये मौनं हसन्ति सतां स्तुतौ
मलिनवदनाः कीर्त्त्युत्कर्षे व्रजन्ति विवादिताम् ।
अपि गुणशतैर्नाराध्यन्ते विरुद्धधियः परं
परपरिभवक्षोभारम्भस्थिराभिनिवेशिनः ॥ ३२५ ॥

स तमूचे प्रभावोऽयं दिव्यः प्रकटितस्त्वया ।
प्रज्ञाप्रकर्षमधुना सन्दर्शयितुमर्हसि ॥ ३२६ ॥

अभिन्नवर्णरूपाणां तुल्याभरणवाससाम् ।
किन्नरीणां स्थितां मध्ये गृहाण निजवल्लभाम् ॥ ३२७ ॥

इत्युक्तः स पुनस्तेन किन्नरीशतपञ्चकम् ।
तुल्यवर्णवयोवेशं ददर्श व्यग्रमग्रतः ॥ ३२८ ॥

तासां मध्ये परिज्ञाय स जग्राह मनोहराम् ।
वल्लरीवनसंच्छन्नां भृङ्गश्चूतलतामिव ॥ ३२९ ॥

देवोऽयमिति निश्चित्य ततस्तं किन्नरेश्वरः ।
तुष्टस्तस्मै ददौ दिव्यरत्नैः सह मनोहराम् ॥ ३३० ॥

མཆོག་གི་ལོངས་སྤྱོད་འབྱོར་པ་ཡིས། གུས་དང་བཅས་པས་དེ་ཡིས་མཆོད།
དེ་ལ་ཞུས་ནས་ཐུང་ངར་བཅས། གཞོན་ནུ་རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་སོང༌། 331

ཡིད་འཕྲོག་མ་སྟོན་འགྲོ་བའི་བུ། འོང་བ་མཐོང་ནས་ས་ཡི་བདག།
བདུད་རྩིའི་རྒྱ་མཚོས་ལྷུང་བོའི་དབང༌། མཐོང་ནས་འཕྲུར་བཞིན་ནོམ་པར་མཛེས། 332

དེ་ནས་རྒྱལ་ཁྲིན་སྤྱོད་ཚུལ་ལྷ་བའི་གདུགས་དཀར་ལྡན་པ་ལ།
སྐྱེ་གུའི་གདུང་བ་འཕྲོག་པའི་དེ་ནི་མངོན་པར་དབང་བསྐུར་ནས།
ཚིག་ཤེས་བསིལ་ལྡན་དབེན་པའི་བདུད་རྩིས་མངོན་པར་དགའ་བ་ཡིས།
རབ་ཏུ་ཞི་བ་ལྡན་པའི་གྲིབ་བསིལ་མི་ཡི་བདག་པོས་བསྟན། 333

ནོར་བཟང་དབང་བསྐུར་ཐོབ་པའི་སྤྲོ་བྲོ་ཉིད།
གཟི་བྱིན་གྱི་ཚེ་དེ་ལ་རིན་ཅན་བདུན།
གཙོ་བོ་ཉིད་གྱུར་གསར་པའི་མཐུས་འཇིགས་ནས།
གཡོག་ལ་གནས་པའི་དོན་བཞིན་ཉེ་བར་འོངས། 334

ནོར་བཟང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དང་དེ་ཉིད་དེ།
ཡིད་འཕྲོག་མར་གྱུར་དེ་ཡང་གྲགས་འཛིན་མ།
དེ་དང་བྲལ་བའི་སྡུག་བསྔལ་མེས་གདུངས་པ།
འདི་སྐྱིང་འདོད་པས་བཅིངས་ལས་བདག་གིས་ཐོབ། 335

श्लाघ्योपभोगविभवैः पूजितस्तेन सादरम् ।
जायासखस्तमामन्त्र्य कुमारः स्वपुरं ययौ ॥ ३३१ ॥

मनोहराग्रगं पुत्रं प्राप्तमालोक्य भूपतिः ।
राकेन्दुदर्शनोद्भूतः सुधाम्बुधिरिवाबभौ ॥ ३३२ ॥

पुत्रं ततश्चरितचन्द्रसितातपत्रे
राज्येऽभिषिच्य परितापहरं प्रजानाम् ।
सन्तोषशीतलविवेकसुखाभिरामां
छायामसेवत नृपः प्रशमद्रुमस्य ॥ ३३३ ॥

प्राप्ताभिषेकं सुधनं प्रभाते
तं सप्तरत्नानि पृथुप्रतापम् ।
नवप्रभावप्रभुभावभीत्या
सेवानिवासार्थमिवोपजग्मुः ॥ ३३४ ॥

स बोधिसत्त्वः सुधनोऽहमेव
यशोधरा सापि मनोहराभूत् ।
तद्विप्रयोगव्यसनानलार्त्तिः
कामानुबन्धाद्दयिती मयाप्ता ॥ ३३५ ॥

དེ་སྐད་འདོད་པ་པདྨོའི་བཞིན་གྱི་མིག་གི་མཐའ་ལ་གནས་གྱུར་ཅིང་།
རབ་གྲུས་མི་དོག་ལས་སྐྱེས་རྡུལ་ཚོགས་ཏྲལ་ཏྲལའི་རྩེ་མོ་ཅན།
སྐོངས་བྱེད་སྦྲུ་ངན་གདུང་བའི་མདའ་ཡིས་གང་གི་འཇིག་རྟེན་འབིགས་བྱེད་པ།
ཇོན་པའི་རྩེ་དགས་ཞི་བའི་རི་དྭགས་འཆིང་བྱེད་དམ་པ་ནམས་ཀྱིས་སྤངས། 336

དེ་ནས་གྲོལ་བ་རང་གིས་རང་གི་གདམས།
བ་ཤད་པ་དེ་ནི་དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་ཐོས།
འདོད་པ་རི་ལྡན་ཁོ་ན་སྤྲིད་པ་ནི།
འདབ་བགྲོའི་ཚ་བ་སྤྲོས་པོ་ཉིད་དུ་ངེས། 337

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ནོར་བཟང་གི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སུ་དྲུག་ཅུ་ཙ་བཞི་པའོ།།

तस्मात् कामः कमलवदनानेत्रपर्य्यन्तवासी
वर्ज्यः सद्भिः शमम्रगवधूबन्धकेलीकिरातः।
स्फुर्जत्पुष्पप्रसरजरजःपुञ्जहालाहलोग्रै-
र्लोकः शोकव्यसनविशिखैर्मोहनैर्येन विद्धः॥ ३३६॥

इति भिक्षुगणः स्वयं जिनेन
स्वकथान्तां विनिवेदितां निशम्य।
सरसं पृथुमूलमेव मेने
शतशाखस्य मनोभवं भवस्य॥ ३३७॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां सुधनकिन्नर्य्यवदानं नाम चतुःषष्टितमः पल्लवः॥

CHAPTER LXV.

རྣ་གཅིག་པའི་རྟོགས་བརྗོད།

ཡོངས་སྤྱོད་རྩེ་དགའ་དག་གི་དྲི་ཡི་ཚོགས་ཀྱིས་དབང་པོ་ཐམས་ཅད་ཡོངས་སུ་དྲངས་གྱུར་པ། ཆགས་ལྡན་སྣང་རྩེ་འཕྲངས་ཉམས་ཤིན་ཏུ་རམ་པར་འདི་ཉིད་དུ་ནི་གང་གང་འཆིང་བྱེད་པ། སྐྱེ་བ་སྔར་གོམས་ཞེན་ཅིང་ཤིན་ཏུ་ཆགས་བཅས་ལས་བྱུང་བག་ཆགས་ཙ་བའི་ལྷག་མ་ལས། རྟོགས་པ་མེད་ཀྱང་སྐྱེ་བོའི་ཡིད་འདིར་པདྨོའི་རྗེས་སུ་མཐུན་པའི་འདོད་ཆགས་འབྱུང་བར་འགྱུར། 1

ཤཱཀྱའི་གྲོང་ཁྱེར་དག་ཏུ་སྔོན། ནྱ་གྲོ་དྷ་ཡི་ཀུན་རར་གནས། རྒྱལ་བ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་སྨྲར། དགེ་སློང་ཡང་དག་ཚོགས་པས་ཞུས། 2

ཞི་བར་ཞུགས་ཤིང་ཆས་ནི་ཡོངས་སུ་བསྒྱུར།
འཁོར་བའི་ཉམ་འགྱུར་སྤྱོད་ལས་ཐོག་པ་ཁྱོད།
མི་ཡི་བདག་པོའི་པོ་བྲང་འཁོར་འདུག་པ།
གྲགས་འཛིན་མས་མཐོང་ཉམ་པར་སྨོངས་པ་བཞིན། 3

ཁྱོད་མཐོང་ཉིད་ནཀུན་དུ་བསྒྲིན་ཅས་ཤིང་།
འདར་ཞིང་གཡོ་བའི་ལུས་ལྡན་ཉམ་པར་གནས།
ལག་ནལ་དུའི་སྣོད་བཟུང་ཁྱོད་ཀྱིས་ནི།
ཟས་ཀྱི་ལྷག་གནས་དག་ལ་ཆགས་པར་བྱེད། 4

पञ्चषष्टितमः पल्लवः ।

एकशृङ्गावदानम् ।

प्राग्जन्माभ्यासलीनादतिसरसलसद्वासनामूलशेषात्
निःशङ्कस्यापि जन्तोः कमलकलनया जायते मानसेऽस्मिन् ।
रागः सम्भोगलीलापरिमलपटलाकृष्टसर्व्वेन्द्रियाणा-
मेकत्रैवातिमात्रं सरसमधुलिहां बन्धनं यः करोति ॥ १ ॥

न्यग्रोधारामनिरतं पुरा शाक्यपुरे जिनम् ।
भगवन्तं समापन्नाः पप्रच्छुर्भिक्षवः पुनः ॥ २ ॥

प्रवृत्तशान्तिं परिवृत्तवेशं
निवृत्तसंसारविकारवृत्तम् ।
अन्तःपुरं त्वां नृपतेर्विशन्तं
यशोधरा वीक्ष्य विमुह्यतीव ॥ ३ ॥

त्वद्दर्शने तिष्ठति सर्व्वथैव
विभूषिता कम्पतरङ्गिताङ्गी ।
भोज्याधिवासे भवतः करोति
विलोभनं मोदकपात्रहस्ता ॥ ४ ॥

དེ་ཡི་ཡིད་ཀྱི་ནོས་འགྱུར་ནོ་པར་ལྡན།
ད་ལྟ་ཡང་ནི་ཉེ་བར་ཞི་མི་འགྱུར།
ཁྱོད་ཞལ་ཟླ་འོད་བྲལ་ན་ཤིན་དུ་དེ།
ཉམས་དེ་ཉིད་བར་ཀུ་མུད་ལྡན་པ་བཞིན། 5

དེ་སྐད་མཚར་ལས་དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་དྲིས།
ཅུང་ཟད་འཛུམ་པ་མཆུ་ཡི་ཤལ་འདབ་ལ།
སུ་དྲིག་འབྲས་བུ་རབ་སྨྲས་བྱུ་རུའི་འོད།
མཛེས་མ་འགོད་ཅིང་བཅོམ་ལྡན་གྱིས་གསུངས་པ། 6

མངོན་འདོད་ཅེ་དགའ་ནོས་འགྱུར་ལྡན་པ་འདི།
གྲགས་འཛིན་མ་ནི་དེང་ཉིད་འཛིན་པ་མིན།
སྐྱེ་གཞན་ལ་ཡང་འདོད་པའི་ནོས་འཕྲུལ་གྱིས།
དེ་ཡི་ལ་དུས་བདག་ལ་ཆགས་པར་བྱས། 7

ཀ་ཤིའི་གྲོང་དུ་མི་དབང་ཀ་ཤྲུ་སྟོན།
ཟླ་བའི་འོད་ལྟར་དཀར་བའི་གྲགས་པ་ཅན།
དགྲ་སྟོས་གཉིས་འཕྲུང་ལུགས་ཀྱི་ཡིན་མོད་ཀྱང་།
སྤྱོད་ཚུལ་མི་རྣོ་རང་བཞིན་དྲང་བོར་གྱུར། 8

नाद्यापि शान्तिं समुपैति तस्याः
मनोविकारः स बहुप्रकारः ।
त्वदाननेन्दुद्युतिविप्रयुक्ता
सीदत्यलं सा हि कुमुद्वतीव ॥ ५ ॥

इति स्मयाद्भिक्षुगणेन पृष्टः
किञ्चित् स्मितेनाधरपल्लवस्य ।
प्रत्युप्तमुक्ताफलविद्रुमाभां
निवेश्य शोभां भगवान् बभाषे ॥ ६ ॥

यशोधरा्यैव विकारयुक्तां
बिभर्त्ति नैतामभिलाषलीलाम् ।
जन्मान्तरेऽपि स्मरविभ्रमैर्मे
सा मोदकैर्लोभनमेव चक्रे ॥ ७ ॥

काश्यः पुरा काशिपुरे नरेन्द्र-
श्चन्द्रावदातद्युतिकीर्त्तिरासीत् ।
अप्यङ्कुशः शत्रुमदद्विपाना-
मतीक्ष्णदण्डः सरलस्वभावः ॥ ८ ॥

དཀའ་ཐུབ་འབད་པས་བུ་དོན་གཉེར་དེ་ལ།
བུ་མོ་པདྨ་ལྷན་ཉིད་གཅིག་པུ་བྱུང་།
སྐྱེ་གུ་སྐྱོང་ལ་གཡེལ་བ་དང་བཅས་པའི།
ས་བདག་པལ་ཆེར་རིགས་བརྒྱུད་ཉུང་བར་འགྱུར། 9

པོ་བྲང་འཁོར་དུ་དེ་ནི་ཡོངས་བསྐྱེད་ཅིང་།
སེམས་ལའང་བསམས་པའོ་མི་བདག་གིས་སྤྱད་ནས།
མཁས་པ་ལ་སོགས་བློན་པོ་བོས་ནས་ནི།
གཉིད་བྲལ་དགའ་བ་ཉམས་པས་རབ་སྨྲས་པ། 10

ལོ་འདབ་གྱིས་ཞིང་ཚ་བ་བརྟན་པར་ཟུག།
སྐྱེ་བོ་ཀུན་གྱི་ཉེར་འཚོ་ཞིན་དུ་མཐོ།
མཚུངས་པར་སྐྱེ་བས་དམན་པའི་རྒྱལ་སྲིད་ནི།
སྨིན་བྱས་ཟོས་པའི་ཞིང་བཞིན་བདག་གིས་རིག། 11

ཡང་ཚོ་རབ་དུ་སྨིན་འོས་བསྟེན་པ་ཡིས།
བུ་མོ་པད་ལྷན་གཅིག་བུ་བདག་ལ་ཡོད།
དེ་ནི་འབད་པས་མག་པ་ལ་བྱིན་ཆོ།
བུ་ཚ་ཉིད་དང་དེ་ལ་བྱམས་པའང་རིང་། 12

पुत्रार्थिनस्तस्य तपःप्रयत्नै-
रेकैव कन्या नलिनी बभूव।
प्रायः प्रजापालनसावलेपाः
स्वल्पान्वया एव भवन्ति भूपाः॥ ९॥

अन्तःपुरे तां परिवर्द्धमानां
चित्ते च चिन्तां नृपतिर्विचिन्त्य।
आहूय विद्वत्प्रमुखानमात्यान्
प्रजागरग्रस्तरतिर्जगाद॥ १०॥

विस्तीर्णशाखं स्थिरबद्धमूल-
मभ्युन्नतं सर्व्वजनोपजीव्यम्।
अवैमि तुल्यप्रसवावहीनं
घुणक्षतं वृक्षमिवाधिपत्यम्॥ ११॥

एकैव कन्या नलिनी ममास्ति
वयः प्रदानोचितमाश्रयन्ती।
तस्यां प्रयत्नेन वरार्पितायां
मपत्यता तत्प्रणयोऽपि दूरे॥ १२॥

ལག་པར་སྐྲོན་མའི་སྡོང་བུ་རབ་འབར་བཞིན།
སྐྱེ་བོས་རང་གི་བུ་མོ་བཟུང་མི་ནུས།
གདམས་པའི་ནོར་བཞིན་གཞན་ལ་གཏང་བྱ་བ།
རིགས་ཀྱི་བུ་མོ་བསམ་བའི་འབྲས་བུ་ཉིད། 13

གཡོག་ལ་སྦྱིན་མིན་གྲོང་པ་ལ་འོས་མིན།
མི་དབང་བུ་མོ་རིང་པོ་ཉིད་ལ་འོས།
དེ་ལྟར་ཀུན་སྦྱུད་རིང་པོ་མི་ཤེས་པས།
ཤི་དང་སོང་བ་དག་ལ་བྲེ་བྲག་ཅི། 14

དེ་སྐད་གང་ཞིག་བུ་དངོས་བདག་ཉིད་ཅན།
རང་ཡུལ་རབ་སྤྱངས་བདག་གི་ཡུལ་འཛིན་པ།
བདག་གི་མག་པའི་དངོས་གྱུར་འགའ་ཞིག་དེ།
ཡོན་དན་ལྡན་པ་འབད་པས་བཙལ་བར་བྱ། 15

བདག་གིས་ཐོས་པ་གཏྲ་དག་གི་རྒྱུན།
བསོད་ནམས་དག་པའི་ངོགས་དང་ཉེ་བ་ན།
སྐྱིམ་པར་བཙས་ན་དཀའ་ཐུབ་ནགས་མཐར་ནི།
རྒྱལ་པོའི་དྲང་སྲོང་ཀཱ་ཤྱ་པ་གནས་སོ། 16

पाणौ प्रदीप्तामिव दीपवर्त्तिं
धर्त्तुं न शक्नोति जनः स्वकन्याम् ।
न्यासार्थतुल्या हि परार्पणीया-
श्चिन्ताफला एव कुलस्य कन्याः ॥ १३ ॥

न भृत्यदेया न च पौरयोग्या
दूरोचिता एव नरेन्द्रकन्याः ।
अज्ञातनित्याचरितस्य दूरं
मृतस्य जातस्य च को विशेषः ॥ १४ ॥

तस्मात् प्रयत्नेन मया स कश्चि-
ज्जामातृभावे गुणवान् नियोज्यः ।
स्वदेशमुत्सृज्य ममैव देशे
बिभर्त्ति यः पुत्र इवाधिपत्यम् ॥ १५ ॥

श्रुतं मया जह्नुसुताप्रवाह-
पुण्यावदाते पुलिनोपकण्ठे ।
साङ्ग्जनीनाम्नि तपोवनान्ते
राजर्षिरास्ते किल काश्यपाख्यः ॥ १६ ॥

དེ་ཡི་ས་བོན་ལྷི་བས་ལྷུང་གྱུར་པ།
ལྐྲ་ཡི་བསྐྱེད་ལས་རྡོ་སྡིང་དམའ་བར་ཆགས།
ཆུ་འདོད་ཀྱིས་གཟིར་རི་དྭགས་མོ་ཡིས་འཐུངས།
གསེར་གྱི་མདོག་ཅན་གཞོན་ནུ་བཙས་པར་གྱུར། 17

དེ་ཡི་པས་བཟུང་ནགས་སུ་རི་དྭགས་ནི།
ཉམས་པར་བསྐྱེད་ཅིང་བདུལ་ཞུགས་དག་ཀྱང་བསྒྲུབས།
སོར་ཚད་ནྲ་ཡི་ཡང་དག་མཚན་གྱུར་པས།
ཁྲིས་པ་ནྲ་གཅིག་པ་ཞེས་མིང་དུ་གྲགས། 18

དར་བབ་བསམ་གཏན་བཞི་པོ་སྐྱོང་བྱེད་ཅིང་།
ཚངས་སྤྱོད་དང་བཅས་དྲི་མེད་རང་བཞིན་ཅན།
ཡུལ་ནི་མངོན་པར་མི་ཤེས་གྲོགས་མེད་གནས།
དེར་ནི་དྲག་པོའི་ཉི་འོད་ལྷ་བུར་མཛེས། 19

དེ་ནི་གལ་ཏེ་པད་ལྷན་ཕྱོད་ཉིར་དུ།
གྱུར་ནས་གྱོད་ནི་རབ་ཏུ་ཞི་མིང་གྱུར།
གཟི་བརྗིད་གཏེར་དེ་རབ་ཏུ་འགགས་པ་ཡིས།
གནོད་མེད་རིགས་པ་ཅི་ཡང་བསམ་པར་མཛོད། 20

तस्य स्रुतं प्रस्रवणेन वीर्य्यं
दैवोदयादश्मनि सन्नताग्रे।
तोयस्पृहार्त्ता हरिणी निपीय
सुवर्णवर्णं सुषुवे कुमारम्॥ १७॥

वने मृगीस्तन्यविवर्द्धितोऽसौ
पित्रा गृहीतो विहितव्रतश्च।
नाम्ना प्रसिद्धः शिशुरेकशृङ्गः
स लक्ष्यमाणाङ्कुलमात्रशृङ्गः॥ १८॥

युवा चतुर्ध्यानपरायणश्च
स ब्रह्मचारी विमलस्वभावः।
निःसङ्गवासाद्विषयानभिज्ञ-
स्तत्राकठोरार्कहचिश्चकास्ति॥ १९॥

स येन्नलिन्याः पतितामुपैति
तद्देष वंशः प्रशमं न याति।
तेजोनिधेरानयने तु तस्य
विचिन्त्यतां काप्यनपाययुक्तिः॥ २०॥

ཅེས་པ་མི་བདག་ཚིག་ཐོས་ཡུན་རིང་དུ།
དཔྱད་ནས་བློན་པོ་ཀུན་གྱིས་དེ་ལ་སྨྲས།
དེ་ནི་དེ་ཡི་བསྟིག་ནས་ཉེ་བའི་སར།
ནགས་སུ་རྒྱལ་པོའི་བུ་མོ་རྩེ་ཙ་ཐོང་། 21

དེ་ཚིག་རྗེས་སུ་འདོད་བྱས་རྒྱལ་པོ་ཡིས།
འདོད་པའི་དོན་ཀུན་ཉམས་པར་བཤད་ནས་ནི།
པདྨོ་ཅན་བསམངས་རབ་ཏུ་སྤྲོབས་པ་བཞིན།
ཐུབ་པའི་གཞོན་ནུ་དབྲོག་ཕྱིར་རྩེ་ཙ་སོང་། 22

མཛེས་མས་ནགས་ཀྱི་མཐར་ནི་དལ་གྱིས་ཕྱིན།
གཟུགས་བཟང་སྟེད་འཛེས་མངོན་པར་དགའ་བས་རོལ།
མཛེས་པའི་མིག་ཅན་དེ་ནི་ལྷུང་གཞོན་གྱིས།
བསྐྱོད་པའི་འཁྲི་ཤིང་བཞིན་དུ་ཡང་དག་གྱུ། 23

དེ་ནི་རོལ་ཅིང་མེ་ཏོག་འཐུ་བ་ཡིས།
རི་དྭགས་རྭ་རབ་གཡོ་ཞིང་ཉམས་བསྐྱོད་པའི།
ནགས་མཐོང་རང་གི་དགའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་ནས།
དགེ་མཚན་ལྡན་པའི་གཞོན་ནུས་ཡང་དག་འོངས། 24

श्रुत्वेति वाक्यं नृपतेरमात्या
विचार्य्य सर्व्वं सुचिरात्तमूचुः ।
तदाश्रमोपान्तवने विहर्त्तुं
विसृज्यतां सम्प्रति राजपुत्री ॥ २१ ॥

तद्वाक्यलुब्धानुमतेन राज्ञा
समीहितार्थं विनिवेद्य सर्व्वम् ।
ययौ विसृष्टा नलिनी विहर्त्तुं
हर्त्तुं प्रगल्भेव मुनेः कुमारम् ॥ २२ ॥

कान्ता वनान्तं शनकैरवाप्य
लीलाभिरामा विजहार तन्वी ।
बालानिलेनाकलिता लतेव
सञ्चारिणी चारुविलोचना सा ॥ २३ ॥

विलासपुष्पावचयेन तस्य
भृङ्गोत्तरङ्गं विचलत्कुरङ्गम् ।
वनं विलोक्य स्वतपोवनान्तात्
समाययौ कौतुकवान् कुमारः ॥ २४ ॥

ནི་ཡི་གྲོགས་མེད་པདྨ་ལྟར་ཡང་མིག།
ཡ་མཚན་མིག་ནི་འཛུམ་དང་བྲལ་བ་དེས།
ཡང་ཚོའི་ནམ་འཁྲུལ་གྱིས་གཡོ་ལུས་བཏུད་ཅིང་།
ཨེ་དྲལ་གྱིས་པའི་མིག་ཅན་དེ་མཐོང་གྱུར། 25

མཛེས་མ་རི་དྭགས་མིག་ཅན་དེ་མཐོང་ནས།
དགའ་མ་མངོན་ཤེས་མེད་ཀྱི་ཐུབ་པ་དགའ།
བག་ཆགས་གོམས་པས་ནང་དུ་ཞེན་པ་ཡི།
ཡུལ་ལ་མངོན་འདོད་སྐྱེ་བོས་གཏོང་མ་ཡིན། 26

རི་དྭགས་བུ་ཡི་རབ་མཛེས་ཡིད་འོངས་མིག།
དེ་ཡི་བཞིན་གྱི་པདྨར་ནམ་བཀོད་ནས།
རིག་འཛིན་ནམས་ནི་ཐུབ་པའི་བུ་དག་ཏུ།
ཤེས་ནས་མཛའ་བའི་དབང་གིས་དེར་ཕྱག་འཚལ། 27

སྒོམ་བརྩོན་གྱིས་བཏུད་བཞིན་རས་དུད་གྱུར་པ།
དེ་མི་མཆུ་ནི་བྱུ་རུའི་འོད་ལྡན་གྱིས།
འོད་ཟེར་ཚོགས་ཀྱིས་ཀུན་བསྒྲིབས་དོ་ཤལ་དག།
དྲི་མེད་རང་བཞིན་གྱིས་ཀྱང་ཆགས་པ་བཟུང་། 28

स सन्नताङ्गीममनुष्यसङ्ग-
स्तरङ्गितां यौवनविभ्रमेण ।
ददर्श तां विस्मयनिर्निमेषः
फुल्लोत्पलाक्षीं कमलायताक्षः ॥ २५ ॥

विलोक्य कान्तां मृगलोचनान्तां
रामानभिज्ञोऽपि मुनिर्जहर्ष ।
न वासनाभ्यासविलीनमन्त-
र्जहाति जन्तुर्विषयाभिलाषम् ॥ २६ ॥

सुस्निग्धमुग्धां विनिवेश्य दृष्टिं
मृगीसुतस्तद्वदनारविन्दे ।
विद्याधरं वा मुनिपुत्रकं वा
विज्ञाय तां प्रीतिरसादवन्दे ॥ २७ ॥

प्रतिप्रणामावनताननाया-
स्तस्याः प्रवालद्युतिनाधरेण ।
आच्छाद्यमानोऽंशुवनेन रागं
जग्राह हारोऽप्यमलस्वभावः ॥ २८ ॥

དྲིལ་ཆུང་སྒྲ་སྙན་དག་གིས་གྲོགས་ཀྱི་བཞིན།
འདོད་པའི་ཉེ་བར་སྤྱོད་པ་བརྟམས་བྱས་པ།
རྟུལ་ཟགས་ཕྲིག་ལེ་དག་གི་མཐར་མཛེས་ཤིང་།
རབ་འདར་ལུས་ཅན་དེ་ལ་གཞོན་ནུས་སྨྲས། 29

ཀྱ་ཡེ་ཐུབ་པའི་སྲས་ཁྱེད་ལེགས་འོངས་སམ།
དཀའ་ཐུབ་ནགས་མཚར་རི་དྭགས་དགེ་འམ་ཅི།
ཏོག་ཏུ་ཁྱེད་ལ་ལྟ་ཞིང་གཡོ་མེད་པ།
གང་དག་ཉམས་ནི་ཐང་ལ་དམན་པར་གྱུར། 30

བརྟུལ་ཞུགས་མཆོག་ལྡན་ཁྱོད་གཟུགས་བདུད་རྩིའི་ཆར།
ཁ་ནས་སྒོ་མེད་པ་འདི་མཐོང་བའི།
རལ་པ་ཤིང་ཤུན་ལྡན་པ་ཐུབ་ཉམས་ཀྱི།
ལུས་ནི་ཤིང་སྐམ་བཞིན་དུ་བདག་རྟོག་གོ། 31

འཁྲི་ཤིང་མེ་ཏོག་ཉམས་ཀྱིས་སྤྲས་བྱས་པ།
ཁྱོད་ཀྱི་རལ་པའི་ཚོགས་ནི་མཛེས་པ་འདི།
སྤྲིན་གསེར་ཚོགས་ལ་ཉམ་པར་གདེངས་པ་ཡི།
རྨ་བྱའི་འཇུག་མའི་མཛེས་སྡུག་ཉམ་པར་འཛིན། 32

तां स्वेदसीदत्तिलकालकान्ता-
मुत्कम्पिताङ्गीमवदत् कुमारः।
सख्येव काञ्च्या मधुरस्वरेण
स्मरोपचारेषु कृतोपदेशाम्॥ २९॥

भोः स्वागतं ते मुनिपुत्र कच्चित्
तपोवनान्ते कुशलं मृगाणाम्।
सदा तदालोकननिश्चलानां
स्थलीषु येषां विरलः प्रचारः॥ ३०॥

इदं विलोक्याद्य तवानवद्यं
दिव्यव्रतस्यामृतवर्षि रूपम्।
वपुर्जटावल्कलिनां मुनीनां
शुष्कद्रुमाणामिव तर्कयामि॥ ३१॥

अयं तव स्निग्धजटाकलापः
कृतोपचारः कुसुमैर्लताभिः।
नवाभ्रसम्भारविजृम्भमाण-
मयूरबर्हप्रतिमां बिभर्त्ति॥ ३२॥

ཁྱོད་ཀྱི་བྲང་འདི་དཔལ་འབྲས་ཐུང་གིས་སྦྲུས།
བགྲང་འཕྲེང་དཀར་པོ་དག་གིས་རྣམ་པར་བཅིངས།
རི་དྭགས་གཞོན་ནུའི་མིག་ལྟར་བཀྲ་བ་ཡིས།
ཡིད་ལ་དགའ་བ་སྐྱེད་བྱེད་རྣམ་པར་མཛེས། 33

སྤྲིན་སྤྲིག་མེ་ཡི་མེ་ལྡག་གསལ་ཆགས་པའི།
སྐེ་རགས་འཛིན་ཅིང་ལུས་ཕྲ་འཁྲི་ཤིང་གཞོན།
ཡལ་འདབ་གསར་པས་མཚན་འདྲ་ཁྱོད་ཀྱི་ལུས།
འདི་ནི་སུ་ཡི་དགེ་མཚན་ཀྱུས་མི་བྱེད། 34

ཐང་ག་གང་དུ་གཡོ་ལྡན་འདབ་སྐྱེས་ནི།
ཁྱོད་ཞབས་བཀོད་པས་རྣམ་པར་གསལ་བྱས་པ།
འོད་ཀྱི་རྟག་ཏུ་རྣམ་པར་མཛེས་པ་ཡིས།
དགའ་ཐུབ་ནགས་མཐའ་གང་ཡིན་དང་བས་སྨོས། 35

རི་དྭགས་རང་བཞིན་ཐུབ་པའི་གཞོན་ནུ་ནི།
ཐུད་མེད་མི་ཤེས་དེ་རིག་སུ་མོ་དེས།
ངོ་ཚར་བ་བཏང་རྣམ་པར་རྟོགས་མེད་པ།
མ་བསྡུ་མས་སྟེ་དགའ་དག་ནི་ཀུན་བཞིན་གྱུར། 36

इदं तव श्रीफलयुग्मशोभि-
वक्षोविनिक्षिप्तसिताक्षसूत्रम् ।
आसूत्रयद्बालकुरङ्गनेत्र-
वैचित्र्यमैत्रीं मनसश्चकास्ति ॥ ३३ ॥

होमाग्निलग्नस्फुटविस्फुलिङ्गां
मौञ्जीं दधाना नवपल्लवाङ्काम् ।
कुतूहलं बाललतेव तन्वी
तनुस्तवेयं न तनोति कस्य ॥ ३४ ॥

ब्रूहि प्रसन्नं क्व तपोवनं ते
त्वत्पादविन्यासविकाशिनीभिः ।
यत्र प्रभाभिः सततं विभाति
सञ्चारिणी पङ्कजिनी स्थलेषु ॥ ३५ ॥

इति ब्रुवाणं ललनानभिज्ञं
मृगस्वभावं तमवेत्य बाला ।
उत्सृज्य लज्जामविशङ्कमाना
निर्यन्त्रलीलाभरणा बभूव ॥ ३६ ॥

དེ་ནས་ཀུན་དགའི་རོས་བརྟན་སེམས་ལྡན་དེར།
འཛམ་པར་སྨྲ་བྱེད་དེ་ཡིས་དཔལ་གྱི་སྨྲས།
བདག་གི་བསྒྲི་གནས་འབྲས་ཞིམ་མི་རྟོག་ཅན།
དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་འདི་དང་ཉེ་བར་གནས། 37

ཞེས་བརྗོད་ཀ་རའི་འཇུམ་དང་ག་ཟུར་གྱིས།
ཤང་ཚངས་ལྡན་ཞིང་ཡིད་འོང་ཡ་མཚན་འོས།
ལ་དུ་མཁས་པའི་ལེགས་བཤད་མཚུངས་པ་ཡི།
དེ་ཡིས་དེ་ནི་ཉམས་པར་ཆགས་པར་གྱུར། 38

དེ་ཡི་སྨྱོས་བྱེད་རོ་འཛིན་རྗེས་མཐུན་པ།
སེམས་དགའ་མཛའ་བའི་རང་བཞིན་རྩེ་དགའ་དང་།
བསྒྲགས་པ་བདུད་རྩི་གུས་མཆོད་འཆིང་བ་ཡིས།
འཕགས་པའི་རི་དྭགས་དེ་ནི་གྲོས་བཞིན་བཅིངས། 39

ཆེར་འོས་དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་བདག་ལ་སྟོན།
ཞེས་བརྗོད་མིག་ཟུམ་དེ་ལ་གྲོལ་པོ་ཡི།
བྲུ་མོས་ལག་པའི་འཁྲི་ཤིང་དག་གིས་ནི།
དམ་དུ་ཡོངས་འཁྱུད་ཚུར་ཤོག་ཅེས་པ་སྨྲས། 40

ततस्तमानन्दरसार्द्रचित्तं
शनैर्बभाषे मृदुभाषिणी सा।
तपोवनस्यास्य समीपवर्त्ती
ममाश्रमः स्वादुफलप्रसूनः ॥ ३७ ॥

उक्तेति खण्डस्मितमोदकैः सा
तस्याथ कर्पूरपरागगर्भैः।
चकार माधुर्य्यचमत्क्रियार्है-
र्विलोभनं सत्कविसूक्तितुल्यैः ॥ ३८ ॥

तैर्मोदकैः सा रसनानुकूलै-
श्चित्तोत्सवैः प्रेममयैर्विलासैः।
कर्णामृतैश्च प्रणयोक्तिबन्धै-
स्तं वागुरेवार्य्यमृगं जहार ॥ ३९ ॥

तपोवनं दर्शय मे महार्ह-
मित्युल्लपन्तं भुजवल्लरीभ्याम्।
गाढं परिष्वज्य निमीलिताक्ष-
मेहीति तं राजसुता जगाद ॥ ४० ॥

ཆམས་ཞིང་ཐུང་ཟད་ཀྱང་གིས་སོང་དེ་ལ།
སྐྱར་ཡང་དེར་བསྐྱོད་སྐད་དུ་བསྒྱུར་བྱས་པའི།
ཤིང་རྟ་ལ་ཞོན་ལག་པ་བཀྱངས་ནས་དེས།
བཞོན་པ་ཉིད་ནི་ཚིག་གིས་རབ་ཏུ་བསྔོས། 41

ཤིང་རྟ་འདྲེན་པའི་རྟ་དག་དེས་མཐོང་ནས།
བྱི་བྲག་ས་རྟོགས་རི་དྭགས་ཡིན་པར་ཤེས།
རི་དྭགས་བྱ་བདག་རི་དྭགས་སྟེང་དུ་ནི།
ཀྱང་པས་མི་རིག་ཅེས་པ་དེ་ལ་སྨྲས། 42

དེ་ནས་ཡིད་ཀྱིས་ཐུབ་དབང་བྱ་འཛིན་ཅིང་།
ཤིང་རྟ་ཡིད་ལྟར་མགྱོགས་པས་སོང་ནས་ནི།
མི་བདག་བྱ་མོ་རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་ཕྱིན།
དེ་ཡི་སྤྱོད་པ་མི་ཡིས་བདག་ལ་བཤད། 43

སྟོབས་ཀྱིས་རབ་སྒྱུར་དགུག་པའི་མངོན་སྤྱོར་ལ།
མི་མཚུངས་བྲང་སྟོང་ཆེན་པོས་འཇིགས་གྱུར་པ།
རྒྱལ་པོ་བློན་དང་བཅས་པས་དེ་འོང་ལ།
རབ་ཏུ་འབད་པས་ཐབས་ནི་མངོན་པར་བསམས། 44

तं प्रस्थितं सा कतिचित् पदानि
गत्वा पुरस्तद्गमनाय सज्जम्।
रथं समारुह्य विसार्य्य पाणि-
मारोहणायैव गिरा न्ययुंक्त॥ ४१॥

रथे तुरङ्गान् स विलोक्य युक्तान्
मत्वा कुरङ्गान् विगलद्विशेषः।
मृगीसुतोऽहं न मृगाग्रमेतं
स्पृशामि पद्भ्यामिति तामुवाच॥ ४२॥

रथेन गत्वाथ मनोजवेन
मुनीन्द्रसूनुं मनसा वहन्ती।
नरेन्द्रकन्या स्वपुरीमवाप्य
न्यवेदयत्तच्चरितं नृपाय॥ ४३॥

राजापि तस्यागमने प्रयत्ना-
दचिन्तयन्मन्त्रिभिरभ्युपायम्।
हठप्रयुक्त्या हरणाभियोगे
भीतः क्षमालुप्रतिमान्महर्षेः॥ ४४॥

དེ་ནས་སླར་ཡང་གཞོན་ནུ་འགུགས་པ་ལ།
ཀུ་ཡི་ཚོགས་བསྣམས་བཅིངས་ཤིང་ངལ་བྲུས་པས།
གང་གའི་ངོགས་ཀྱི་དགའ་ཐུབ་ནགས་ཀྱི་མཐར།
རྩེ་དགའི་འཁྲི་ཤིང་དེ་ནི་གྲུལ་བོས་གདང་། 45

སྐབས་དེར་བུ་ནི་བྲུ་བ་མཐའ་དག་བདང་།
སྨི་བདག་བུ་མོའི་ནམས་གདན་སྒྲ་བཅད་བཅིངས།
མངོན་འདོད་གསར་པའི་བརྡུལ་ཞུགས་ལྡན་རྟོགས་ནས།
ཐུབ་པ་དག་ནི་ཡ་མཚན་གཡོ་མེད་གྱུར། 46

དེ་ནས་པས་དྲིས་དེ་ལ་ཐུབ་སྲས་ཀྱིས།
ཤུགས་རིངས་རྒྱུད་མ་དག་གི་བསྟི་གནས་དང་།
ཉེར་གནས་སྐྱི་མའི་ཡལ་འདབ་ཡང་ཡང་དུ།
སྐྱིག་ཅིང་རོལ་པ་བསྐྱོད་ཅིང་རབ་སྨྲས་པ། 47

ཡབ་གཅིག་དཀར་ཐུབ་ནགས་སུ་དེང་བདག་གིས།
ཀླུ་བའི་གཟུགས་བརྙན་རབ་ཏུ་ཕྱིས་པའི་ཞལ།
དྲང་སྲོང་ཚེ་སྲུས་འདྲེན་བྱེད་འོད་དག་གིས།
རི་དྭགས་བུ་མོའི་རིགས་པ་འཕྲོག་པ་མཐོང་། 48

ततः कुमाराहरणे पुनस्तां
विलासवल्लीं विससर्ज राजा ।
नौभिर्घटावन्धकृताश्रमाभि-
र्मन्दाकिनीकूलतपोवनान्तम् ॥ ४५ ॥

अत्रान्तरे त्यक्तसमस्तकृत्यं
नृपात्मजाध्याननिबद्धमौनम् ।
नवाभिलाषव्रतमाकलय्य
पुत्रं मुनिर्विस्मयनिश्चलोऽभूत् ॥ ४६ ॥

पृष्टोऽथ पित्रा मुनिपुत्रकस्तं
प्रोवाच निश्वासपरम्पराभिः ।
समीपसक्ताश्रममञ्जरीणां
दिशन्मुहुः पल्लवलास्यलीलाम् ॥ ४७ ॥

तपोवने तात मयाद्य दृष्टः
प्रभ्रष्टचन्द्रप्रतिबिम्बवक्त्रः ।
महर्षिसूनुर्नयनप्रभाभि-
र्दर्पापहारी हरिणाङ्गनानाम् ॥ ४८ ॥

དེ་ཡི་སྙིང་ག་ཀང་ལག་མགྲིན་པ་ལ།
བདགས་པའི་སྐུད་པ་རྣམ་པར་བཀྲ་གྱུར་པ།
དབང་པོའི་མཚོན་ཡངས་དག་དང་མཚུངས་པ་ཡོད།
ཡབ་གཅིག་བདག་ཀྱང་ཅི་སྐད་དེ་ལྟ་མིན། 49

གང་གི་ཚིག་གི་གྲུ་ཆེ་མཚུངས་པ་ཡང་།
ཅི་ཡང་ཡོད་མིན་ཕྱུལ་དུ་བྱུང་བའི་སྐྲ།
ནམ་ཡང་ཙྭ་དའི་གནས་སུ་བདག་གིས་ནི།
ཐོས་པ་ཁུ་བྱུག་གི་མིན་བྱུང་བའི་མིན། 50

དེ་ཉི་ད་ལྟའང་བདག་ནང་སྨོགས་པ་བཞིན།
དཔལ་བབ་ལག་བཀྲུས་དབྲུ་བ་ཆགས་པ་ཡི།
འོད་དང་མཚུངས་པ་ཤིང་ཤུན་གསར་པ་ཡིས།
ཤིན་ཏུ་ཕྲ་བ་དེ་ཡི་ལུས་དག་མཛེས། 51

བདག་གི་ལུས་ནི་ལག་པས་ཡུན་རིང་བསྐམས།
གདོང་གི་པདྨར་བཞིན་རས་རྣམ་པར་བཀོད།
བསྐྱབས་པས་མཆུ་བསྐྱོད་འདི་ཡི་དགའ་བ་ཡིས།
བདུད་རྩི་རེག་པའི་ཁྱད་པར་བསྐྱབ་པར་བྱས། 52

वक्षःकटीपाणिगलावसक्त-
विचित्रसूत्राणि विभान्ति तस्य।
इन्द्रायुधापत्यनिभानि सन्ति
ममापि किन्तात न तद्विधानि ॥ ४९ ॥

अद्यापि मेऽन्तर्दधतीव तस्य
वाणी शतांशप्रतिमापि यस्याः।
श्रुता मया चूतवने कदाचित्
न कोकिलानां न च षट्पदानाम् ॥ ५० ॥

मन्दाकिनीमज्जनलीनफेण-
समानभासा नववल्कलेन।
तनीयसी तस्य तनुर्विभाति
नेदं प्रियं वल्कलकं ममाद्य ॥ ५१ ॥

निवेश्य वक्त्रं वदनारविन्दे
निपीड्य दोर्भ्यां सुचिरं वपुर्मे।
चक्रे जपप्रस्फुरिताधरोऽसौ
हर्षाम्बितस्पर्शविशेषदीक्षाम् ॥ ५२ ॥

མཛེས་པས་ཉོམ་པར་མཚན་པ་དེ་མེད་ན།
བདག་གི་བཟོད་པ་ནགས་འདིར་སྐད་ཅིག་མིན།
གང་གིས་བདུལ་ཞུགས་བསྟན་པས་བདག་ཉིད་ལ།
སྨོངས་པའི་གྲོགས་པོ་གཉིད་ནི་གནས་མི་བྱེད། 53

བདག་གི་མིག་ནི་དེ་ལ་ལྟ་བར་འདོད།
དེ་ཚིག་མེད་ན་ཐོས་པ་ཡོངས་མི་གནས།
ལུས་ལ་གནོད་བྱེད་ཟློ་ནི་ཉང་དགུ།
མི་གསལ་དེ་ཡི་བསམ་པས་མཆོག་ཏུ་གཟིར། 54

ཞེས་པ་མཛེས་མས་ཡིད་སྲོགས་བུ་ཡིས་ནི།
གདུང་བའི་བསམ་པ་གོ་བྱེད་ཚིག་ཐོས་ནས།
དཀའ་ཐུབ་བར་ཆད་གྱུར་པས་འཇིགས་པ་ཡིས།
དྲང་སྲོང་ཆེན་པོ་ཤིན་ཏུ་ཡུན་རིང་བསམས། 55

ཀྱེ་མ་དྲན་པའི་ཇོན་པ་མི་བཟད་པས།
དཀའ་ཐུབ་ཅན་སྨོངས་རི་དྭགས་བུ་འདི་ནི།
བུད་མེད་མཆོག་ཏུ་གྱུར་པའི་སྒྱུ་དག་གིས།
ཟུར་མིག་གལ་དུ་ལྷུང་བས་འཕྲུལ་ལ་བཅིངས། 56

न मे क्षमा कान्तविलक्षणेन
नैव क्षणं तेन विना वनेऽस्मिन् ।
करोति मे यद्व्रतशासनेन
दृशोः पदं मोहसखी न निद्रा ॥ ५३ ॥

दृष्टिस्तदालोकनमीहते मे
श्रुतिर्विना तद्वचनं न चास्ते ।
तच्चिन्तया ताम्यति धीर्नितान्तं
मन्त्रं न जानाति तनुव्यथायाः ॥ ५४ ॥

श्रुत्वेति कान्ताहृतमानसस्य
सन्तापचिन्तापिशुनं महर्षिः ।
पुत्रस्य वाक्यं तपसोऽन्तरायं
निपातभीतः सुचिरं प्रदध्यौ ॥ ५५ ॥

कष्टं तपस्वी मृगशावकोऽयं
तीव्रेण मुग्धः स्मरलुब्धकेन ।
वराङ्गनावागुरया कटाक्ष-
कूटावपाती सहसा निबद्धः ॥ ५६ ॥

སྐད་ཅིག་དེ་བསམས་སྒྲུབ་པ་མཁས་པ་ཡིས།
བྲ་ཡི་ཡིད་ཀྱི་ཉམས་འགྱུར་དབྲོག་པའི་སྐད།
འདོད་པའི་ལག་འགྲོས་དུག་བདང་ཡུལ་ལ་ནི།
མངོན་འདོད་འཛིན་པ་དེ་ལ་ཕས་སྨྲས་པ། 57

བྲ་དེ་དྲང་སྲོང་ཆེ་སྲས་ལེགས་པ་མིན།
དེ་ནི་བུད་མེད་ཡིད་སྐྱེས་ལག་འགྲོའི་ས།
དར་ལྡང་རྨོངས་པ་ཤིན་དུ་མི་བཟད་པའི།
རྗེས་ཆགས་དུག་གི་གདུང་བ་ཉམས་པར་འཛིན། 58

མིག་སྨན་ནག་པོ་བརྩེགས་ཆགས་ནན་ཏུང་གི།
ཟུར་མིག་རྣོན་པོས་ཕྱུག་པའི་སྨྱུ་བོ་དག།
སྨྲོན་བཅས་བུད་མེད་ལག་པའི་ཞགས་པས་བསྡམས།
འཁོར་བའི་བཙོན་ར་དག་ཏུ་སྲུ་ངན་བྱེད། 59

ཀུན་རྨོངས་དྲི་མར་ལྡན་པའི་སྲིད་པ་དག།
སྤྲིན་གྱི་དབུས་སུ་གྱ་གྱུར་གསལ་བྱེད་པ།
སྐད་ཅིག་མཐའ་ཅན་མཛེས་མའི་གློག་དག་གིས།
བྲལ་ཆེ་སྐྱེས་བུ་མཆོག་ཏུ་སྨྲུན་པར་བྱེད། 60

इत्थं विचिन्त्येति मुनिर्मनीषी
मनोविकारं तनयस्य हर्त्तुम् ।
तमब्रवीत् कामभुजङ्गमुक्तं
विषं वहन्तं विषयाभिलाषम् ॥ ५७ ॥

न पुत्र साधुः स महर्षिसूनुः
सा स्त्री मनोजन्मभुजङ्गभूमिः ।
तत्र क्षतस्तीव्रतरानुराग-
विषव्यथामेव बिभर्त्ति मूढः ॥ ५८ ॥

जनाः प्रसक्ताञ्जनकालकूटै-
र्विद्धाः सुतीक्ष्णैस्तरुणीकटाक्षैः ।
शोचन्ति योषिद्भुजपाशबद्धाः
संसारकारासदने सदोषाः ॥ ५९ ॥

घनस्य संमोहमलीमसस्य
भवस्य मध्ये कुटिलाः स्फुरन्त्यः ।
कुर्व्वन्ति कान्तातडितः क्षणान्ताः
पुंसां वियोगे भृशमन्धकारम् ॥ ६० ॥

བྲང་མེད་ནོམས་ཉི་སྨྱུ་ངན་གྲུས་པའི་གཉེན།
སྨྱོ་ཞིང་བགྲོལ་བྱེད་དུག་གི་འཁྲི་ཤིང་སྟེ།
སྤོངས་པའི་ཤ་ཟ་ཆེན་མོ་འདི་དག་གིས།
ཀུན་དུ་རིག་པའི་འཇིག་རྟེན་དགེ་ལྡན་མིན། 61

བྲང་མེད་མིག་ཟུར་གདུང་བྱེད་ཟུག་རྡུ་ནི།
རྟོན་པོ་གང་གིས་སེམས་ལ་མ་ཟུག་པ།
ཚོག་ཤེས་ཀྱིས་མཛེས་དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་དུ།
གནས་པའི་དམ་པ་འདི་དེ་ནོལ་དུ་གནས། 62

ཞེས་པ་དབེན་པའི་ཚིག་ནི་དེ་དང་དེས།
པ་ཡི་འབད་པས་རབ་ཏུ་རྟོགས་པར་བྱས།
འདོད་པ་དང་ལྡན་མཛེས་སྡུག་བདུང་བ་ཡིས།
རྣམ་པར་འཕྲུལ་པ་དེ་ནི་རྟོགས་མ་གྱུར། 63

དེ་ནས་ཉིན་གཞན་སྣ་ཚོགས་བུ་བ་བྱས།
ཐུབ་པ་འབྲས་བུ་ཡམ་ཤིང་ལེན་དུ་སོང་།
མི་དབང་བུ་མོ་འཛེ་སྐྱིག་ལྡན་པ་ནི།
གཞོན་ནུ་ཆགས་པ་བྱེད་དུ་སླར་ཡང་འོངས། 64

एताभिरुत्सेककुटुम्बिनीभि-
रुन्मादमूर्च्छाविषवल्लरीभिः ।
स्त्रीभिर्महामोहपिशाचिकाभिः
संस्पृश्यमानः कुशली न लोकः ॥ ६१ ॥

स्वस्थास्त एते निवसन्ति सन्तः
सन्तोषकान्तेषु तपोवनेषु ।
सन्तापनं स्त्रीनयनान्तशल्यं
येषां शितं चेतसि नावसन्नम् ॥ ६२ ॥

इति प्रयत्नाज्जनकेन तैस्तै-
र्विवेकवाक्यैः प्रतिबोध्यमानः ।
नाबुध्यतासौ मदनान्वितेन
लावण्यपानेन विघूर्णमानः ॥ ६३ ॥

अथापरेद्युर्विहितस्वकृत्ये
मुनौ फलेध्माहरणे प्रयाते ।
लीलावती लोभयितुं कुमारं
नरेन्द्रकन्या पुनराजगाम ॥ ६४ ॥

འབངས་མོའི་ཚོགས་རྣམས་རྗེས་འབྲང་འཁྲི་ཤིང་ནི།
མེ་ཏོག་འཛུམ་ལྡན་དག་གིས་དཔལ་བསྟེན་ཅིང་།
ལུས་ཅན་ལུས་མེད་གསར་མཚུངས་རྣ་གཅིག་ཅན།
འབྱོར་པས་མཐོ་བའི་ལུས་ལྡན་བརྟན་པས་ཕྱིན། 65

བདག་གི་བསྟི་གནས་དཔག་བསམ་ཤིང་རྩེ་ལས།
འཕྱང་བའི་འཁྲི་ཤིང་གིས་དགའ་ལྷ་ལ་འོས།
ལྷ་བར་ཁྱོད་ཀྱིས་སྨྲས་ཞེས་བརྗོད་ནས་དེས།
དེ་ནི་གང་གཱ་དག་གི་ངོགས་སུ་ཁྲིད། 66

དེས་དེར་རིན་ཆེན་རབ་འབར་འདབ་མ་བཀྲ།
གསེར་གྱི་འཁྲི་ཤིང་མེ་ཏོག་འབྲས་བུ་དགའ།
ཀླུ་ཡི་བཟུང་བའི་བཙོས་མ་རྣམས་བརྟགས་ནས།
དགའ་བ་ལ་བཞིན་བདེ་བའི་གནས་ལ་འཇོགས། 67

འཁོར་བ་དང་མཚུངས་གྲོལ་གྱི་བསྟི་གནས་དེར།
ཆུ་བོའི་རྒྱུན་ལ་དེ་ནི་རབ་ཏུ་ཁྲིར།
དེ་ཉིད་ཞེས་པ་མིན་ཡང་ཆགས་ཚུལ་གྱིས།
འཇའ་བོ་ཅན་བཞིན་བ་ར་ཀྲ་སིར་ཕྱིན། 68

दासीगणेनानुगता लतानां
पुष्पस्मितानां श्रियमाश्रयन्ती ।
साङ्गं नवानङ्गमिवैकश्टङ्ग-
मासाद्य हृष्टा विबभौ नताङ्गी ॥ ६५ ॥

दिव्योचितं कल्पलताग्रलम्बि-
फलाभिरामं रुचिराश्रमं मे ।
द्रष्टुं त्वमेहीत्यभिधाय सा तं
निनाय तीरं त्रिदशापगायाः ॥ ६६ ॥

स तत्र रत्नोज्ज्वलचित्रपत्र-
सुवर्णवल्लीफलपुष्परम्यम् ।
नौभिर्धृतं कृत्रिममाकलय्य
सुखाश्रमं हर्षमिवारुरोह ॥ ६७ ॥

संसारतुल्येन हृतः स तेन
सरित्प्रवाहे कपटाश्रमेण ।
अज्ञाततत्त्वोऽप्यनुरक्तवृत्ति-
र्वाराणसीं प्रीतिमिवाससाद ॥ ६८ ॥

དེ་ཡི་ས་གཞི་དབང་ཆེན་ཀུ་ཤུ་ཡིས།
རིན་ཅེན་རིན་ཐང་ཆེ་ལྡན་རྒྱལ་སར་ཕྱིན།
ཐུབ་དབང་ནོམས་ཀྱི་གདུགས་ལ་བཞུད་པ་ཡིས།
མགྲོ་རིས་གནས་ནི་མིག་ལམ་གྱུར་པར་སེམས། 69

དེ་ནས་རབ་དགའ་ཀྱིས་པ་ས་ཡི་དབང་།
སྐུབ་ཞེས་ཚོགས་དེ་ལ་རི་དྭགས་མིག།
གཡས་སློར་བསློར་བ་དོ་ཤལ་གསོ་ལྡན་མ།
བུ་མོ་རི་བ་རྫོགས་པའི་དཔལ་གྱིས་བྱིན། 70

མི་དབང་སྨུ་མོ་ལག་པར་ལག་བཀོད་ཅིང་།
ཐག་མའི་བསྲིག་རྫས་མི་ལ་ནོམ་པར་བཀོད།
དེར་ནི་གཞོན་ནུ་བློ་གྲོས་གཞན་པ་མེད།
སྦྱིན་སྲིག་ནོམ་པ་གཞན་དག་ཡིན་པར་སེམས། 71

དགའ་སྟོན་ཆེ་དང་སྒྲོ་བའི་ཉམས་ཀྱིས་པ།
རྒྱལ་པོས་གུས་པས་རབ་ཏུ་མཆོད་པ་དེས།
བརྟུལ་ཞུགས་དུལ་ལྡན་ཉིད་དུ་དེར་འདུག་ནས།
ཆུང་མ་དང་འགྲོགས་རང་གི་ནགས་མཐར་སོང་། 72

अवाप्य काश्यस्य स राजधानीं
महीमहेन्द्रस्य महार्हरत्नाम् ।
मेने मुनीन्द्रैः कथितं कथासु
स्वर्गाङ्गणं दृष्टिपथं प्रयातम् ॥ ६९ ॥

ततः प्रमोदाकुलितः क्षितीश-
स्तस्मै मृगाक्षीं विधिना विधिज्ञः ।
प्रदक्षिणावर्त्तविलोलहारां
ददौ सुतां पूर्णमनोरथश्रीः ॥ ७० ॥

नरेन्द्रकन्याकरसक्तपाणि-
र्व्विवाहहव्यावहितं हुताशम् ।
अमन्यतानन्यमतिः कुमार-
स्तत्राग्निहोत्रस्य परं प्रकारम् ॥ ७१ ॥

महोत्सवोत्साहरसाकुलेन
सम्पूज्यमानः प्रणयेन राज्ञा ।
स्थित्वा तपःसंयत एव तत्र
जायासखः स्वं प्रययौ वनान्तम् ॥ ७२ ॥

ཆུང་མའི་གྲོགས་བཅས་དབེན་པར་བགྲོད་པ་དེ།
མ་མ་རི་དྭགས་མོས་མཐོང་རབ་དགའ་སྟེ།
ཐུབ་པའི་དྲིན་ལས་མི་ཡི་ཚིག་ཐོས་པས།
གང་ནས་ཁྱོད་ཀྱི་བུད་མེད་འདི་ཞེས་སྨྲས། 73

དེ་ལ་རབ་བདུད་དེ་ཡིས་གུས་སྨྲས་པ།
མ་མ་བདག་གི་མཛེས་ལྡན་གྲོགས་མོ་འདི།
རབ་འབར་མེ་ཡི་དཔང་ཅན་གྲོགས་མེད་ཀྱིས།
འདོད་པར་བྱ་བའི་གཟུགས་ཅན་འབད་པས་ཐོག། 74

ཅེས་སྨྲས་བག་མ་ལ་སོགས་གཏམ་མི་ཤེས།
རྨོངས་པ་དེ་རིག་རི་དྭགས་མོ་དེ་ཡིས།
ཁྱེ་ཡི་བརྟུལ་ཞུགས་དཀའ་ཐུབ་ཅན་རྣམས་ཀྱིས།
དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་དག་ཏུ་དལ་གྱིས་ཁྲིད། 75

ཆོས་རྗེས་འགྲོ་འདི་ཁྱོད་ཀྱི་ལྡན་ཅིག་སྤྱོད།
འདི་ཡི་བདག་པོ་ཁྱོད་ཅེས་མ་ལུས་པ།
བག་མའི་སྤྱོད་ཚུལ་དག་གི་བཤད་པ་དེ།
ཐོས་ནས་ཆུང་མ་དགའ་མ་ཉིད་དུ་རིག། 76

जायाद्वितीयं विजने भ्रमन्तं
दृष्ट्वा मृगी तं जननी प्रहृष्टा ।
मुनिप्रसादात्तमनुष्यवाचा
कुतस्तवेयं ललनेत्युवाच ॥ ७३ ॥

स तां प्रणम्य प्रणयाद्बभाषे
मातर्ममायं द्युतिमान् वयस्यः ।
प्राप्तः प्रयत्नात् स्पृहणीयरूपः
सख्येन दीप्तानलसाक्षिकेण ॥ ७४ ॥

इति ब्रुवाणं तमवेत्य मुग्धं
मृगी विवाहादिकथानभिज्ञम् ।
पतिव्रतानामथ तापसीनां
तपोवनं सा शनकैर्निनाय ॥ ७५ ॥

धर्म्मानुगा ते सहचारिणीयं
पत्नी त्वमस्याः पतिरित्यशेषम् ।
विवाहवृत्तं कथितं स ताभिः
श्रुत्वा प्रियामेव विवेद जायाम् ॥ ७६ ॥

ཡབ་ནི་འོད་སྲུངས་ཀྱིས་ཀྱང་དགའ་བ་ཡིས།
བག་མའི་ཆོས་ནི་ཉེ་བར་བསྟན་པ་བསླབས།
དེར་བདུད་དེ་ཡི་ཚིག་གིས་ཚུང་མར་བཅས།
གྲོས་པོ་རྒྱལ་པོའི་གྲོང་ཁྱེར་དག་ཏུ་སོང་། 77

སྙིང་སྟོབས་རབ་འབར་ཞི་བའི་ལམ་བསྟེན་པ།
གཞན་པོ་དེ་ཡི་རང་གནས་ལ་དབང་བསྒྱུར།
རྒྱལ་ཕྲན་ཅོད་པན་ངལ་གསོའི་གནས་དེ་ཡིས།
ས་ཡུལ་སྲུ་གཞི་དག་ནི་རབ་ཏུ་བསྐྱངས། 78

དབང་ཕྱུག་སྨོངས་པས་བློ་གྲོས་ཟིལ་མ་མཐུན།
དབེན་པའི་ཆོས་ཀྱི་རང་བཞིན་ལས་འཁྲུངས་ཤིང་།
གཞན་པོ་བུ་དང་ཚ་བོ་མང་ལྡན་དེ།
རབ་ཏུ་བྱུང་བས་བཞི་བ་འདོད་པར་གྱུར། 79

སྤྲབ་གཉེན་རྭ་གཅིག་ལྡན་པར་གང་གྱུར་དེ།
ང་ཉིད་པད་ལྡན་དེ་ཡང་གྲགས་འཛིན་མ།
དེར་ཡང་སྐྱེ་བ་གཞན་གྱི་བག་ཆགས་ལས།
བདག་ལ་ཆགས་པའི་སྐད་དུ་མངོན་པར་སྨྲོར། 80

पित्रा प्रहर्षादपि काश्यपेन
विवाहधर्म्मे विहितोपदेशः ।
प्रणम्य तं तद्वचसा जगाम
पुरीं सभार्य्यः श्वशुरस्य राज्ञः ॥ ७७ ॥

वृद्धेन तेन स्वपदेऽभिषिक्तः
सत्त्वोज्ज्वलं शान्तिपदं श्रितेन ।
शशास सामन्तकिरीटकोटि-
विश्रान्तपादः स महीमशेषाम् ॥ ७८ ॥

ऐश्वर्य्यमोहानाभिभूतबुद्धि-
र्धर्मस्वभावात् स लसद्विवेकः ।
जरान्वितोऽभूदहुपुत्रपौत्रः
प्रव्रज्यया शान्तिपथाभिकामः ॥ ७९ ॥

योऽभूत् कुमारो मुनिरेकशृङ्गः
सोऽहं नलिन्येव यशोधरा सा ।
अद्यापि जन्मान्तरवासनास्या
विलोलनायैव ममाभियुक्ता ॥ ८० ॥

རང་གི་སྐྱེ་བ་གཞན་གྱི་གཏམ། །གྱུར་པས་ཕྱེ་བར་བསྟུགས་པ་འདི།
ཐོས་ནས་དགེ་སློང་དེ་དག་ཉམས། །ཐམས་ཅད་ཡ་མཚན་ལྡན་པར་གྱུར། 81

ཞེས་པ་དག་པའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཉྭ་གཅིག་པའི་རྟོགས་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་ཙ་ལྔ་པའོ།།

निजजन्मान्तरकथां जिनेनेत्युपवर्णिताम् ।
आकर्ण्य भिक्षवः सर्व्वे बभूवुस्ते सविस्मयाः ॥ ८१ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां एकशृङ्गावदानं नाम पञ्चषष्टितमः पल्लवः ॥

Chapter LXVI.

གཞོན་ནུ་སྣན་དངགས་མཁན་གྱི་རྟོགས་བརྗོད།

འཇིག་རྟེན་དུ་ནི་སྐྱེས་བུའི་ལས་ལམ་གྲིབ་མ་བཞིན།
ལུས་ལ་ལྷན་ཅིག་སྤྱོད་འདི་ངེས་པར་མི་མཚན་ཏེ།
ལུས་འདི་ཡོངས་བསྒྱུར་བགྲོ་ཡི་མཐའ་མར་མི་ཕྱིན་ཅིང་།
མགྲོགས་པར་ཐོས་པ་དག་ལ་རྣམ་པར་འཆད་མི་འགྱུར། 1

ལྷས་བྱིན་གྱིས་ནི་རྡོ་འཕངས་ཏེ། ཞབས་མཐེབ་སྣད་ནས་ཁྲག་བྱུང་བའི།
རྒྱུ་མཚན་དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་དྲིས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དེར་བཀའ་སྩལ། 2

མི་གློག་ལྡོན་ནི་དྲན་པ་ལས། སྐྱེས་པའི་ལས་ཀྱི་རྣམ་སྨིན་དག།
གང་གི་བདག་གི་རྐང་པ་ཡི། མཐེ་བོ་ཡོངས་སྣད་པ་ཉོན། 3

ལྷ་ལེན་དག་ཏུ་གྲོང་ཁྱེར་ནི། ཀ་པི་ལུར་སྔོན་ས་གཞི་སྐྱོང་།
བདེན་དང་ཆོས་ལ་ཡང་དག་བརྟེན། བདེན་པར་དགའ་ཞེས་བྱ་བ་བྱུང་། 4

སྐྱེ་བོ་ཡང་དག་བསྲུང་འོས་པ། དེ་ཡི་བཙུན་མོ་མཚན་ཉིད་བཟང་།
མཚན་ཉིད་ཅན་ཞེས་བྱ་བ་ནི། མཆོད་སྦྱིན་དག་གི་ཡོན་བཞིན་གྱུར། 5

षट्षष्टितमः पल्लवः ।

कविकुमारावदानम् ।

नायाति कायपरिवृत्तिशतैर्विरामं
विच्छेदमेति न जवेन पलायितस्य ।
लग्ना न नाम वपुषः सहचारिणीयं
छायेव कर्म्मसरणिः पुरुषस्य लोके ॥ १ ॥

देवदत्तशिलापातपादाङ्गुष्ठक्षतासृजः ।
कारणं भगवान् पृष्टो भिक्षुभिस्तानभाषत ॥ २ ॥

श्रूयतां येन दुर्वारवैरस्मरणजन्मना ।
मम कर्म्मविपाकेन पादाङ्गुष्ठः परिक्षतः ॥ ३ ॥

पञ्चालेषु महीपालः काम्पिल्ये नगरे पुरा ।
अभूत् सत्यरतो नाम संश्रयो धर्म्मकर्म्मयोः ॥ ४ ॥

बभूव लक्ष्मणा नाम पत्नी तस्य सुलक्षणा ।
प्रजासंरक्षणार्हस्य यजनस्येव दक्षिणा ॥ ५ ॥

ཕྱི་ལམ་དེ་ལ་བུ་མེད་ཚོ། དེ་ཡིས་གསོལ་བཏབ་ས་ཡི་བདག།
བུ་དོན་གཉེར་བས་ཞུས་འཕགས་མ། ཆོས་བཟང་ཞེས་པ་ཁབ་ཏུ་བླངས། 6

ཁྲོ་ཡིས་བག་མ་བླངས་པའི་ཚེ། མཚན་ཉིད་ཅན་ལ་བུ་བཙས་དེ།
དོན་མེད་ཚུན་མ་གྲོབ་པ་ཡིས། རྫས་སུ་འགྲོད་པ་དག་ཀྱང་བཟུང་། 7

དེ་ནི་མ་དྲུད་པ་ཞེས་བྱ། གཞོན་ནུ་པ་ནི་རབ་ཏུ་དགྲེས།
རིག་གནས་དུལ་བ་ཕུན་ཚོགས་ཤིང་། སྒྱུ་ཙོལ་བསྟན་བཙོས་མཚོན་མཐར་ཕྱིན། 8

དེ་ནས་ཆོས་བཟང་མངལ་དག་དང་། ལྡན་པའི་ཚེ་ན་རྒྱལ་པོ་འདས།
རྩོལ་པ་ཀུན་ལ་ལུས་ཅན་གྱིས། བསམ་པ་བདེན་གྱི་ལུས་མི་བདེན། 9

དེ་ནས་དེ་མཐར་བློན་ནམས་ཀྱིས། རྒྱལ་ཕྲན་གླང་པོའི་ལྕགས་ཀྱུ་ནི།
གསར་པ་བཞིན་དུ་གང་གྱུར་པ། མཚན་ཉིད་ཅན་གྱི་བུ་དབང་བསྐུར། 10

གང་ལུགས་བ་ལང་རྣ་ཙོ་ལྟར། གྲུ་གྲུ་གཞན་གྱི་མི་ཤེས་པ།
བློན་པོ་ཆེན་པོ་བ་གླང་རྣ། ཞེས་པ་དེ་ཡི་མཛའ་བོར་གྱུར། 11

དུས་ཀྱི་ཆོས་བཟང་བཙའ་བ་ཡི། མཚམས་དང་ཉེ་བར་གྱུར་པ་ན།
མཚན་མཁན་མདུན་ན་འདོན་དག་གིས། མངལ་གྱི་མི་བདག་མཐར་བྱེད་སྨྲས། 12

དེ་ནས་བློན་པོའི་ཚིག་གིས་ནི། བྲིས་པ་སྐྱེས་ཚེ་གསོད་པ་ལ།
དེ་ཡི་པོ་བྲང་སྲུང་འོས་པ། མཚོན་གྱི་སྦྱོར་ལྡན་རྒྱལ་པོས་བསྐོས། 13

दैवात्तस्यामपुत्रायां पुत्रार्थी पृथिवीपतिः।
सुधर्म्मां नाम वैदेहीमुपयेमे तयार्थितः॥ ६॥

पत्यौ कृतविवाहेऽथ लक्ष्मणासूत दारकम्।
मिथ्या सपत्नीलाभेन पश्चात्तापमुवाह च॥ ७॥

सोऽभूद्लोलमन्त्राख्यः कुमारः पितुरीप्सितः।
विद्याविनयसम्पन्नः कलाशास्त्रार्थपारगः॥ ८॥

सुधर्म्मायां सगर्भायामथ राजा व्यपद्यत।
सर्व्वारम्भस्थिराशानां देहिनां नो स्थिरा तनुः॥ ९॥

अमात्यैरभिषिक्तोऽथ तस्यान्ते लक्ष्मणासुतः।
नवाङ्कुश इवाभूद् यस्तीक्ष्णः सामन्तदन्तिनाम्॥ १०॥

गोविषाणाभिधस्तस्य महामात्यः प्रियोऽभवत्।
गोशृङ्गकुटिला यस्य नीतिर्न ज्ञायते परैः॥ ११॥

प्रत्यासन्ने सुधर्म्मायाः कालेन प्रसवावधौ।
गर्भं नृपान्तकं प्राह निमित्तज्ञः पुरोहितः॥ १२॥

अथ मन्त्रिगिरा राजा जन्मक्षणवधे शिशोः।
तदन्तःपुररक्षार्थानादिदेशायतायुधान्॥ १३॥

དེ་དག་ཤེས་ནས་ཆོས་བཟང་ཡང་། བློན་པོ་ཆེན་པོ་བ་གླང་རྫི།
རང་འདོད་བཞིན་དུ་བྱེད་པ་ལས། ཤིན་དུ་སྐྲག་ནས་སྐྱབས་སུ་སོང་། 14

དེ་ཡི་རྗེ་བོའི་ཆུང་མ་ཞེས། བསྟན་རེས་བུ་ཡི་འཇིགས་པ་ལ།
བུ་ནི་ཡང་དག་སྐྱེས་པ་དག། ཉ་པ་རྣམས་ཀྱི་ཁང་པར་བཞག། 15

དེ་ཉིད་ནས་ནི་བུ་མོ་དག། དེ་ཡིས་བླངས་ནས་རབ་བསྟན་པ།
ཤེས་ནས་ས་ཡི་བདག་པོ་ཡིས། མཚན་མཁན་ཚིག་ནི་བདེན་མིན་བརྗུང་། 16

ཉ་པའི་ཁྱིམ་དུ་བྱིས་པ་དེས། རིག་པ་བཟོ་གནས་སྒྱུ་རྩལ་དག།
དེ་དེ་ཐོས་པ་གང་ངེས་ན། བློ་ལྡན་གཞོན་ནུ་སྙན་དངགས་མཁན། 17

བྱིས་པ་རྣམས་དང་ལྷན་ཅིག་དེར། ལམ་དུ་རྩེད་མོའི་གྲོང་ཁྱེར་བྱས།
རྒྱལ་པོའི་རྩེད་འཛེ་ཡོངས་འདྲིས་ལ། དཔྱོད་ཆེན་དེ་ནི་ཉམས་པར་རྩེ། 18

དེར་ནི་མཚན་མཁན་མདུན་ན་འདོན། འདོད་དགའ་དག་དུ་འོངས་པ་ཡིས།
དེ་མཐོང་མི་བདག་ལ་ཕྱོགས་ཏེ། གསུས་པར་མངོན་པར་འདོད་པས་སྨྲས། 19

ལྷ་གཅིག་ཉ་པའི་ཁང་པར་ནི། གང་གིས་ཁྱོད་ཀྱི་རྒྱལ་སྲིད་དང་།
སྲོག་དག་འཕྲོག་པར་སྤྱར་བརྗོད་པའི། གཞོན་ནུ་བདག་གིས་མཐོང་བར་གྱུར། 20

འདི་ཐོས་མི་བདག་ཁྲོས་པ་ཡིས། གཞན་པའི་མ་ལ་རབ་སྨད་དེ།
བློན་པོ་ཆེན་པོ་བ་གླང་རྫི། ཡང་དག་བོས་ནས་རབ་སྨྲས་པ། 21

तद्विज्ञाय सुधर्म्मापि सन्त्रस्ता शरणं ययौ।
महामात्यं विधातारमिव स्वच्छन्दकारिणम्॥ १४॥

प्रभुभार्य्येति सा तेन निर्दिष्टतनयाभिधा।
सञ्जातं सुतमत्याक्षीत् कैवर्त्तानां निकेतने॥ १५॥

तत एव समानीतां तया कन्यां प्रदर्शिताम्।
ज्ञात्वा निमित्तिकवचः सत्यं मेने न भूपतिः॥ १६॥

धीमान् कविकुमाराख्यः स कैवर्त्तगृहे शिशुः।
लेभे यतस्ततस्तास्ता[१] विद्याशिल्पान्विताः कलाः॥ १७॥

स तत्र बालकैः सार्द्धं क्रीड़ानगरकल्पयि।
राजकेलीपरिचर्यैर्विजहार महाभुजः॥ १८॥

यदृच्छयागतस्तत्र नैमित्तिकपुरोहितः।
तं दृष्ट्वा नृपमभ्येत्य बभाषे भक्तिसम्मतः॥ १९॥

देव कैवर्त्तसद्ने मयादृष्टः कुमारकः।
य एव कथितः पूर्व्वं राज्यप्राणापहस्तव॥ २०॥

श्रुत्वेति नृपतिः कोपात् निर्भर्त्स्यापरमातरम्।
गोविषाणं समाहूय महामात्यमभाषत॥ २१॥

---

१ $^{W}_{1}$ कान्ताः।

ཀྱེ་མ་བདག་གི་ཐེ་ཚོམ་ལ། ཉེ་བ་འཇོན་པ་རབ་གསལ་བ།
ཁྱོད་ཀྱི་གྲུལ་སྲིད་ཆུ་གཏེར་ལ། གྲུ་བཞིན་དཔལ་བཟང་སྐྱོམས་བྱས། 22

ཁྱོད་ཀྱི་བློ་ལ་སེམས་བཀོད་པ། བདག་ནི་བདེ་བར་གཉིད་གྱུར་ཏེ།
དེ་རིང་སྒྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་གྱི། རིམ་གྱི་གཞང་གི་གནས་དག་བསྟེན། 23

བདག་གི་མཐར་བྱེད་སྲས་པའི་མངལ། ཉ་པ་དག་ལ་ཡོངས་གཏད་ནས།
རབ་ཏུ་དགའ་བས་གཞན་པའི་མ། ངེས་པར་ཉི་མ་བགྲང་བར་བྱེད། 24

ད་དུང་དེ་ནི་གསང་པའི་ཐབས། རིགས་པ་ཁྱོད་ཀྱིས་སྨྲ་བར་མཛོད།
སེན་མོས་ཚོད་པའི་དུས་ཀྱི་ནི། ཕུ་རེ་ཡིས་ཀྱང་ནུས་མི་འགྱུར། 25

རྗེ་བོ་ཡུལ་འཁོར་ནོར་དང་རྫོང་། གྲོགས་དང་དཔུང་གྲུས་སྐྱོང་བྱེད་པ།
དེ་ཡི་སྐད་དུ་རང་བཞིན་ལས། བློན་པོའི་རང་བཞིན་ཤིན་ཏུ་བརླིང་། 26

བློན་པོ་གདུང་བ་ཞི་བྱེད་བསམ་གཏན་ལ་ཆགས་རྟག་ཏུ་ཕན་པ་བློས།
ཉན་ནི་ཏུ་ལ་བའི་ཚུལ་ལྡན་གསུས་པའི་བརྩོལ་ཞུགས་དག་ནི་ངེས་པར་འཛིན།
མངོན་འདོད་འབྲས་བུ་ཐོབ་པས་གྲུབ་པ་དག་ནི་འཕྲུལ་ལ་རབ་ཏུ་སྟོན།
ཡོངས་འདྲིས་དག་ཅིང་གྲོ་ཆེ་ས་བདག་ཉམས་ཀྱི་བསོད་ནམས་དག་གིས་ཐོབ། 27

གྱུར་དུ་རབ་ལྷ་སྟོམ་པ་ཡིས། བྲིས་པ་འདི་ནི་ཉོམ་པར་ཚོམ།
དུས་དང་ཐལ་བའི་འཆད་པ་ནི། རྗེས་སུ་གདུང་བྱེད་འབབ་ཞིག་ཡིན། 28

अहोऽवतावलेपेन भवता मम संशये।
राज्याब्धिकर्णधारेण नौरिव श्रीरुपेक्षिता ॥ २२ ॥

त्वन्मतिन्यस्तचित्तस्य सुखं निद्राभवन्मम।
सैवाद्य प्राणसन्देहज्वरतन्द्रीपदं श्रिता ॥ २३ ॥

गूढगर्भं परित्यज्य कैवर्त्तेषु मदन्तकम्।
प्रहृष्टा परमा ताता मे गणयत्येव वासरान् ॥ २४ ॥

अद्यापि तद्वधोपाये त्वया यत्नो विधीयताम्।
नखच्छेद्ये कुठारोऽपि कालेनायाति कुण्ठताम् ॥ २५ ॥

रक्षति स्वामिराष्ट्रार्थं दुर्गमिचवलोदयम्।
अमात्यप्रकृतिस्तस्मात् प्रकृतिभ्यो गरीयसी ॥ २६ ॥

व्यसनशमनध्यानासक्ताः सदा हितजापिनः
प्रणिधिनियतव्यक्ता भक्तिव्रताः किल मन्त्रिणः।
अभिमतफलप्राप्त्या सद्यः प्रदर्शितसिद्धयः
शुचिपरिचयोदाराः पुण्यैर्भवन्ति महीभुजाम् ॥ २७ ॥

तूर्णं गुरुतरारम्भैर्दारकोऽसौ विदार्य्यताम्।
कालहीनप्रयत्नो हि पश्चात्तापाय केवलम् ॥ २८ ॥

ཞེས་པ་རྒྱལ་པོས་ཡང་དག་བསྟེན། སྔོན་གྱི་བཏང་སྙོམས་སྐྱེངས་པའི་བློས།
བློན་པོ་གླང་པོ་ར་དང་ནི། ཤིང་རྟའི་ཚོགས་དང་ལྡན་ཅིག་སོང་། 29

ཆོས་བཟང་གིས་ཀྱང་གནས་སྐབས་དེར། བུ་ནི་གསང་ནས་བོས་བྱས་ཏེ།
གྲོས་དེ་དེ་ལ་རྣམ་པར་བཤད། འགྲོ་བར་མཛོད་ཅེས་དེ་ལ་སྨྲས། 30

མ་ཡིས་གཙུག་གི་ནོར་བྱིན་ནས། བཏང་པ་དེ་ནི་རིངས་པས་འཁྲུགས།
རིན་ཅན་གྱིས་བསྒྱུར་འགྲོ་བ་དག། བློན་པོ་ཡིས་ནི་རིང་ནས་མཐོང་། 31

རྒྱལ་པོའི་བུ་དེ་གསང་ནས་ནི། བྲོས་པ་འདི་ཉིད་མ་ཡིན་ནམ།
ཞེས་བརྗོད་དེ་ཡིས་དེ་གསད་སྐད། དཔུང་གི་སྔོན་འགྲོ་དྲག་པོ་བསྐུལ། 32

མགྱོགས་པས་དེ་དག་ལ་འབྲོས་ཤིང་། རི་དྭགས་ལྟར་མགྱོགས་རིང་བགྲོད་དེ།
ཙམ་པ་ཀ་ཞེས་བྱ་བ་ཡི། ཀླུ་ཡི་གནས་ཀྱི་ཆུ་ལ་བྱིང་། 33

དེ་ནས་མཐོང་ཉམས་དེ་ཡི་ཚེ། བློན་པོ་ཆེན་པོ་འབབ་ལྡན་པར།
རྫས་སྲུ་དེ་ནི་བཙལ་བའི་སྐད། པད་ཀ་ཞེས་ཉམ་ནོ་བཏང་། 34

དེ་ནས་གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཡི། མཐུ་ཡིས་ཆུ་ནི་རིངས་བྱས་ཤིང་།
ཀླུ་ཡིས་གཞོན་ནུ་དབུགས་ཕྱུང་ནས། འདུག་ཅིག་ཅེས་པ་རབ་ཏུ་སྨྲས། 35

རྒྱལ་སྲས་ལ་འདོས་ཀོང་པ་ཡིས། ཀྲུ་ལྡན་ས་གཞི་མཐོང་གྱུར་ནས།
ཀླུ་ཡི་གནས་ན་གནས་པ་དག། པད་ཀ་ཡིས་དེ་ལ་བརྗོད། 36

इति राज्ञा समादिष्टः पूर्व्वापेक्षाविलक्षधीः ।
गजवाजिरथानीकैरमात्यः सहितो ययौ ॥ २९ ॥

अत्रान्तरे सुधर्म्मोऽपि गूढ़माहूय पुत्रकम् ।
तन्मन्त्रितं निवेद्यास्मै गम्यतामित्युवाच तम् ॥ ३० ॥

दत्त्वा चूड़ामणिं मात्रा स विसृष्टस्त्वराकुलः ।
व्रजन् दूरादमात्येन दृष्टो रत्नविभूषितः ॥ ३१ ॥

राजपुत्रः स एवायं नूनं गूढ़ं पलायते ।
इत्युक्त्वास्य वधायोग्रान् स सेनाग्रानचोदयत् ॥ ३२ ॥

जवेन धावतां तेषां मृगवेगः स दूरगः ।
चम्पकाख्यस्य नागस्य ममज्ज भवनाम्भसि ॥ ३३ ॥

दृष्टनष्टे ततस्तस्मिंस्तमन्वेष्टुं प्रयत्नवान् ।
पद्काख्यं महामात्यः पश्चाचारं विसृष्टवान् ॥ ३४ ॥

चूड़ामणिप्रभावेण संस्तम्भितजलं ततः ।
नागः कुमारमाश्वास्य स्थीयतामित्यभाषत ॥ ३५ ॥

विलोक्य राजपुत्राङ्घ्रिपादमुद्रावतीं भुवम् ।
स्थितं नागस्य भवने पद्कस्तमसूचयत् ॥ ३६ ॥

དེ་ནས་ཀླུ་ཡི་དབང་པོའི་གནས། ཀུན་ནས་ཡོངས་སུ་བསྐོར་ནས་ནི།
བློན་པོ་ཆེན་པོས་ས་བདག་བཀའ། གདེངས་ཅན་དབང་ལ་རབ་ཏུ་བསྒྲགས། 37

ལག་འགྲོ་ཁྲོད་ཀྱི་ཁང་པ་ནི། བདག་གིས་རྩལ་གྱིས་ཞིངས་པར་བྱ།
ཧུ་ཉི་ཛོ་བོ་ཁྲོས་པ་ཡིས། ཐང་དང་གཙོང་རོང་དག་ཏུ་བྱེད། 38

རང་ཉིད་ལག་འགྲོའི་ཡོངས་སྐྱོད་དབང་། གལ་ཏེ་འཆད་པར་མི་འདོད་ན།
རྒྱལ་པོའི་རྒྱལ་པོ་མི་མནའ་པ། རྒྱལ་པོའི་བུ་ནི་ཡོངས་སུ་གཏོང་། 39

དེ་སྐད་དེ་ཡིས་སྣ་ཕྱོགས་པ་ན། མཚན་མོའི་དུས་སུ་ཀླུ་ཡིས་ནི།
སྐྱུར་བར་རྒྱལ་པོའི་བུ་བཏང་སྟེ། སྤྲོག་ཆགས་ཉམས་ནི་འཇིགས་དབང་གྱུར། 40

དེ་ནས་རྒྱལ་སྲས་རབ་བསྐྲིབས་དེ། འཁྲུད་མཁན་དག་གི་ཁང་པར་གནས།
ཀོང་པ་བཀོད་བའི་སྒྲ་དག་གིས། པ་ཏ་ཀ་ཡིས་ཉེ་བར་མཚོན། 41

དེ་ནས་བློན་ཆེན་འོངས་པའི་ཚེ། དེས་འཇིགས་འཁྲུད་མཁན་དག་གིས་ཀྱང་།
གོས་ཀྱི་ཁུར་གྱི་ནང་བཅུག་ནས། འཇུག་རྟོགས་མཐའ་རུ་ཡོངས་སུ་བཏང་། 42

དེ་ནས་ཀྱང་ནི་གསང་སྟེ་སོང་། དེ་ནི་ཛ་མཁན་ཁང་པ་ན།
གཡུལ་སྐད་ནས་ཀྱང་མི་བདག་བུ། དུས་ལ་སྟོད་ཅིང་རབ་ཏུ་གནས། 43

དེར་ཡང་བ་གླང་རྭ་དག་ནི། ཀོང་པའི་སྒྲ་ཡིས་རྫས་འབྲང་བ།
དཔུང་གི་འཁོར་ལོ་ཆེན་པོ་ཡིས། ལམ་ནི་ཡང་དག་བགགས་པའི་ཚེ། 44

अथ नागेन्द्रभवनं परिवार्य्य समन्ततः।
अश्रावयन्महामात्यः पार्थिवाज्ञां फणीश्वरम्॥ ३७॥

पांशुभिः पूरयाम्येष भवनं ते भुजङ्गम।
जलं स्थलं स्थलं श्वभ्रं करोति कुपितः प्रभुः॥ ३८॥

भुजङ्गीभोगविच्छेदं न चेदिच्छसि तत् स्वयम्।
अहिनं राजराजस्य राजपुत्रं परित्यज॥ ३९॥

इति सन्तर्जितस्तेन नागक्रूरं क्षपाक्षणे।
तत्याज राजतनयं भयभोग्या हि जन्तवः॥ ४०॥

प्रच्छन्नं राजपुत्रोऽथ रजकावसथे स्थितः।
चरणन्यासमुद्राभिः पङ्केनोपलक्षितः॥ ४१॥

ततः प्राप्ते महामात्ये रजकेनापि तद्भयात्।
वस्त्रभारान्तरगतः परित्यक्तस्तटान्तरे॥ ४२॥

गूढं ततोऽपि गत्वासौ कुम्भकारनिवेशने।
तस्थौ योद्धुं समर्थोऽपि कालाकाङ्क्षी नृपात्मजः॥ ४३॥

तत्रापि गोविषाणेन पादमुद्रानुसारिणा।
महता बलचक्रेण सन्निरुद्धेषु वर्त्मसु॥ ४४॥

ས་བདག་བུ་ནི་གྲོགས་དག་གིས། གཡོགས་ཤིང་མི་རྟོག་འཁྲིད་བས་མཚན།
ཚོང་དང་བཅས་ཇོ་མཁན་གྱིས། རོ་ཡི་ཐོལ་གྱིས་དབེན་པར་དོར། 45

དབེན་པར་མགྲོགས་པས་འགྲོ་བྱེད་པ། དེ་ཡི་རྗེས་ཀྱི་འཁྲིད་བ་དག།
སོང་བའི་རྗེས་སུ་སོང་གྱུར་པས། ཀློང་པོ་ཆེན་པོ་མགྲོགས་པར་འོངས། 46

ཀུན་དུ་ཡོངས་སུ་མི་གཏོང་ཞིང་། ལས་བཞིན་དུ་ནི་རྗེས་འབྲང་བ།
འཚོལ་བའི་ངལ་དུབ་ཀྱིས་གཟིར་བ། ཀློང་པོ་གདུག་པས་དེ་མཐོང་གྱུར། 47

མགྲོགས་ལས་གཡང་ས་མ་བརྩིས་དེ། གཡང་ས་ཆེན་པོར་ལྷུང་གྱུར་ནས།
འཁྲི་ཤིང་ཤིང་སྐམ་ཚོགས་དག་ལ། གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཆགས་པར་གྱུར། 48

མི་བཟད་གཡང་ས་གཅོད་དག་ཏུ། ལྷུང་བ་དེ་མཐོང་ཀློན་པོ་ཡིས།
གཙུག་གི་ནོར་བུ་ཡང་དག་བླངས། སོང་ནས་རྒྱལ་པོ་དག་ལ་བཤད། 49

གཏོང་སྦྱིན་ཨ་ཛ་ལ་ཞེས་བ། གཡང་སར་གནས་བས་གཞོན་ནུ་ཡང་།
བསྲུངས་ཏེ་འདབ་ཆགས་བཞིན་དུ་ནི། ས་ལ་ཕྱིན་ཅིང་ཤི་མ་གྱུར། 50

བུ་ནི་ལྷུང་ཐོས་ཚོས་བཟང་དག། རང་ཉིད་འཆི་བ་འཚོལ་བ་ནི།
ལྷ་མོ་ནོརས་ཀྱི་ཁྱོད་ཀྱི་བུ། འཚོ་ཞེས་བརྗོད་ནས་རབ་ཏུ་བསྲུངས། 51

གཞོན་ནུ་ཡང་སྡུག་མིག་རྣོན་པོ་ཡིས། རྗོ་བའི་གཞི་ནི་ཉམས་བྲུས་ཤིང་།
གླང་པོའི་ཁྲག་གིས་སྦྲོས་པ་ཡིས། མི་བཟད་སྡུག་ལྡན་ནགས་སུ་ཞུགས། 52

वस्त्रैराच्छादितः पुष्पमालाङ्कः क्षितिपात्मजः ।
त्यक्तः कुलालैः साक्रन्दैः शवव्याजेन निर्जने ॥ ४५ ॥

जवेन व्रजतस्तस्य विजने पदपङ्क्तिभिः ।
गतिं मत्वा महामात्यस्तूर्णं पश्चात् समाययौ ॥ ४६ ॥

असंत्यक्तः स सर्व्वत्र कर्म्मणेवानुसारिणा ।
अन्वेषणश्रमार्त्तेण दृष्टः क्रुद्धेन मन्त्रिणा ॥ ४७ ॥

वेगादगणितश्वभ्रः स पपात महावटे ।
लग्नचूड़ामणिः शुष्कलताविटपसङ्कटे ॥ ४८ ॥

तं दृष्ट्वा पतितं मन्त्री विषमे श्वभ्रकोटरे ।
चूड़ामणिं समादाय गत्वा राज्ञे न्यवेदयत् ॥ ४९ ॥

कुमारोऽप्यञ्जनाख्येन यक्षेण श्वभ्रवासिना ।
रक्षितः क्षितिमासाद्य पक्षिवन्न व्यपद्यत ॥ ५० ॥

सुधर्म्मा पतितं श्रुत्वा पुत्रं स्वं निधनैषिणी ।
सुतस्ते जीवतीत्युक्ता रक्षिता दिव्ययोषिता ॥ ५१ ॥

कुमारोऽपि खरव्याघ्रखुरक्षुण्णशिलातलम् ।
गजास्त्रव्रस्तशार्दूलदारुणं वनमाविशत् ॥ ५२ ॥

དེ་ནི་རྗོན་པ་མིག་སེར་ཅན། ཞེས་པ་ཡིས་ནི་རབ་བཤད་དེ།
ལམ་ནི་ཐོབ་པའི་སྐྱེས་བུ་དག། ལུས་ཀུན་བཅད་པ་མཐོང་བར་གྱུར། 53

དེ་མཐོང་སྙིང་རྗེ་སྐྱེས་པ་ཡི། མི་བདག་བུ་ཡིས་རབ་དུ་དྲིས།
ཁྲོད་ཀྱི་སྡུག་བསྔལ་གནས་སྐབས་འདི། མི་མེད་ནགས་སུ་ཅི་ཡིས་ཐོབ། 54

དེས་སྨྲས་རིང་པོ་མིན་འདི་ན། གཏུམ་པོ་གཏུམ་པོའི་སྤྱོད་ཚུལ་ཅན།
བཟོད་དཀའ་སུ་དྷ་ས་ཞེས་པ། སྐྱེས་བུ་ནོམས་ཀྱི་མཐར་བྱེད་གནས། 55

དེ་ལ་དུང་གི་ཁ་ཞེས་བ། ཁྱི་ནི་འཇིགས་སུ་རུང་བ་ཡོད།
ལམ་གནས་མཐའ་དག་གང་མཐོང་བ། གདོན་མི་ཟ་བར་ནམ་འཇོམས་པ། 56

དེ་ཡི་སྤྱོད་ཚུལ་ལྟུང་གྱུར་པ། ཡུད་ཙམ་འཚོ་བའི་ལྷག་མ་ཅན།
བདག་གི་གནད་བསྣུན་རྨུག་ཚུ་འདི། ཡན་ལག་བཅད་ལས་ཡང་དག་སྐྱེས། 57

གཏུམ་པོ་ཉིན་གང་གདུང་བའི་ཚེ། གདུག་པ་དུང་གི་ཁ་དག་གིས།
མགྲིན་པ་རབ་བཅད་དོན་མཐུན་གྱི། ཁྲག་ནི་རྟག་ཏུ་འཐུང་བར་བྱེད། 58

དེ་ནས་དེ་ཡིས་ཚིག་ཐོས་ནས། བརྩེ་བས་ཡིད་ནི་ཐུག་གྱུར་ཅིང་།
མཚོན་དང་བྲལ་བ་རྒྱལ་པོའི་བུ། ཅི་ཞིག་བྱ་ཞེས་རབ་ཏུ་བསམས། 59

དྲག་པོ་གཉུ་ཡི་དཀྱིལ་འཁོར་ཅན། དེ་ནས་གཏུམ་པོ་འོངས་གྱུར་ཏེ།
ཕྱོགས་སུ་མིག་གིས་ཐག་གི་ནི། ཁྲག་གི་ཟེར་མ་འཕེན་པ་བཞིན། 60

तत्र पिङ्गलकाख्येन लुब्धकेन निवेदितम् ।
मार्गमासाद्य पुरुषं कृत्तगात्रं व्यलोकयत् ॥ ५३ ॥

विलोक्य जातकरुणस्तं पप्रच्छ नृपात्मजः ।
केनेमां वैशसावस्थां नीतोऽसि विजने वने ॥ ५४ ॥

सोऽब्रवीन्नातिदूरेऽत्र चण्डालश्चण्डचेष्टितः ।
निवसत्यन्तकः पुंसां सुदासो नाम दुःसहः ॥ ५५ ॥

तस्य शङ्खमुखो नाम सारमेयोऽस्ति भीषणः ।
पान्थास्थिशकलाकीर्णा येनैता विहिता दिशः ॥ ५६ ॥

तद्गोचरच्युतस्येयमङ्गच्छेदसमुद्भवा ।
मुहूर्तशेषजीवस्य व्यथा मे मर्मशातिनी ॥ ५७ ॥

कृत्तशङ्खमुखोत्कृत्तकण्ठानां सार्थगामिनाम् ।
मध्याह्नतमश्चण्डालः सदा पिबति शोणितम् ॥ ५८ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा राजपुत्रो निरायुधः ।
किं करोमीति कृपया प्रदध्यौ विह्वमानसः ॥ ५९ ॥

अथाजगाम चण्डालश्चण्डकोदण्डमण्डलः ।
दिक्षु क्षिपन्निव दृशा वाराहरुधिरच्छटाः ॥ ६० ॥

དེ་ཡི་ངོས་སུ་ཁྲི་ཕང་མཐོང་། སོག་ལེ་ལྟར་རྩུབ་སོ་དང་ལྡན།
གསར་བའི་བག་གིས་བསྒོམས་པ་ཡི། སྐྱེར་མོའི་རྩེ་མོས་ས་ལ་འབྲད། 61

རི་དྭགས་ཉམས་ཀྱི་ཡན་ལག་འཇོམས། གཡག་ཉམས་དག་ནི་ཁྲིས་པའི་གདོན།
ཅེ་སྤྱང་ཉམས་ཀྱི་རིགས་ཀྱི་ནད། ཕག་ཉམས་ཉམས་པར་བྱེད་པའི་རིམས། 62

གདུམ་པོའི་ཕྱོགས་སུ་སྣང་བ་ཡིས། བྱེད་པོས་ནགས་ཀྱི་ལམ་དུ་ནི།
འཚོ་བ་དག་གི་ངལ་དུབ་བཞིན། རྡིགས་ལྡན་གདུག་པ་ཅན་དེ་སྤྲུལ། 63

འགྲོན་པོའི་ཚུང་མ་གསར་དུ་ནི། ཡུག་སའི་གདུང་བསྒྲུབ་བྱེད་དེའི།
དྲུ་ཞིས་གྷར་གྷར་སྒྲ་དག་གིས། བསེ་རུ་དྲུས་མ་ཉམ་པར་འགྲོས། 64

ཤིན་དུ་གདུམ་པོ་གྲོད་པ་ཡིས། བདེ་ཡི་མདོན་དུ་འོང་བ་དེ།
མཐོང་ནས་ས་སྐྱོང་བུ་ཡིས་ནི། སྐླུ་རུ་ར་ཡི་ཤིང་ལ་འཇོགས། 65

ཤིང་ལ་འཇོགས་པ་དེ་མཐོང་ནས། ཉི་བའི་བར་དུ་མདའ་དྲངས་ཤིང་།
གདུམ་པོས་གདུག་པ་དུང་གི་ཁ། དེ་ནི་གསོད་ལ་མངོན་ཕྱོགས་བྱས། 66

འཕྲུར་སླ་གདུག་པའི་མིག་དེ་ཡིས། མདའ་དང་ཁྲི་ཡི་མཆེ་བ་ལྟར།
རྣོ་བའི་ཚིག་གིས་ཕྲུག་པ་ཡི། རྒྱལ་པོའི་བུ་ཡིས་རབ་བསམས་པ། 67

ཀྱི་མ་རྒྱལ་པོའི་རྒྱལ་པོ་ཡིས། གཡུལ་དུ་སྒྲོ་བ་དང་ལྡན་པ།
མཚོན་མེད་བདག་ལུས་འཇིག་པ་འདི། བྱེད་པོ་དག་གི་ཉམ་པར་སྤྲུལ། 68

तत्पार्श्वे क्रकचक्रूरदशनः श्वाप्यदृश्यत ।
प्रत्यग्रशोणितासक्तनखकोटिक्षतावनिः ॥ ६१ ॥

अङ्गभङ्गः कुरङ्गाणां चमराणां गलग्रहः ।
शृगालानां कुलव्याधिः शूकराणां क्षयज्वरः ॥ ६२ ॥

मातङ्गपक्षपातेन विधिना वनवर्त्मनि ।
क्रौर्य्यदर्पः स सिंहानामायास इव निर्म्मितः ॥ ६३ ॥

तस्याध्वन्यवधूनव्यवैधव्यविधिवेधसः ।
हुङ्कारघर्घरारावैर्दुद्रुवुः खड्गिधेनवः ॥ ६४ ॥

तमभिद्रुतमत्युग्रचण्डालक्षोभसंज्ञया ।
दृष्ट्वा वरोह भूपालस्तनुरामलकद्रुमम् ॥ ६५ ॥

तं वीक्ष्य पादपारूढमाकर्णाकृष्टसायकः ।
क्रुद्धः शङ्कुमुखं चक्रे चण्डालस्तदधोन्मुखम् ॥ ६६ ॥

शरश्वदंष्ट्रातीक्ष्णाभिर्वाग्भिरद्भुतवादिना ।
विद्धः क्रूरदृशा तेन राजस्तनुरचिन्तयत् ॥ ६७ ॥

अहो निरायुधस्यायं वेधसा मम निर्म्मितः ।
राजराजरणोत्साहयोग्यस्य वपुषः क्षयः ॥ ६८ ॥

སྐྱེ་བ་ངན་པ་རྒྱ་མེད་ཀྱིས། དགྲ་འདི་ཐུལ་བར་གྱུར་པ་ནི།
མཛའ་བས་མ་ཡིན་སྦྱིན་པས་མིན། མཆོད་མིན་ཡོན་ཏན་གྱིས་ཀྱང་མིན། 69

ངེས་པར་དཔུལ་བའི་གནས་དག་ནི། འདི་ཡི་མདུན་ན་བསྟན་བྱས་པ།
མིའི་ཀང་རྟུས་འབྲིང་བ་ཅན། ནགས་ཀྱི་ས་གཞི་རབ་དུ་སྨྲ། 70

གང་དུ་གྲུལ་རིགས་གཙུག་གི་ནོར། གྲུལ་པོ་ཟླ་བའི་རིགས་སུ་སྐྱེས།
ཁྲི་འམ་གཉིས་པོའི་བུ་དག་གིས། མཆོད་མེད་བདག་ནི་གསོད་པར་བྱེད། 71

ནམ་ཀུན་ངེས་པར་མི་གསོ་ཞིང་། སྐྱེ་བའི་མཐར་ཐུག་གནས་གྱུར་པ།
སྐྱེས་བུའི་ནོར་དང་འགལ་འགྱུར་བ། སྡོན་གྱི་ལས་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ། 72

དམར་པའི་དྲ་བ་དག་ལ་སྐྱོན་བུག་ཅི་མིན་ཡོན་ཏན་སྐྱད་གྱིས་མིན།
འཛིག་རྟེན་རབ་མང་སྐྱོན་གྱིས་གང་སྐྱོན་ཤིན་ཏུ་ཆུང་བ་དག།
རིང་ནས་ཤིན་ཏུ་གསལ་བར་མཐོང་ནས་བརྟུབ་མོ་དག་གིས་སྟོན་བྱེད་པ།
ཀུན་ལས་མཐོ་བས་རང་རིགས་ཟླ་བ་དེ་ཡི་སྐྱེ་བར་མ་གྱུར་ཅིག། 73

དེ་ལྟར་སེམས་དཔའ་དེ་ཡིས་ནི། མི་བཟད་སྲོག་གི་ཐེ་ཚོམ་ལ།
བདག་ཉིད་ཀ་བས་པས་ཕྱུས་དག་ནི། འཛིངས་པས་འཛིགས་པ་ཡོངས་མ་གྱུར། 74

སྐབས་དེར་ཐུབ་པ་རིག་པ་འཛིན། མཐར་ཡིས་ལྷ་མིག་གིས།
དེ་ཡི་གནས་སྐབས་མི་བཟད་པའི། ཉོན་མོངས་ཅན་ཞིག་བརྩེ་བ་ཡིས། 75

न स्नेहेन न दानेन न मानेन गुणेन वा ।
अयं निष्कारणरिपुर्निजतामेति दुर्जनः ॥ ६९ ॥

नरकं नियतावासमस्य सज्जीकृतं पुरः ।
नरकङ्कालमालिन्यो वदन्ति वनभूमयः ॥ ७० ॥

क्व जन्म राजचन्द्रस्य वंशे क्षत्रशिरोमणेः ।
शुनश्चण्डालपुत्राद्वा निःशस्त्रस्य वधः क्व मे ॥ ७१ ॥

सर्व्वथा निश्चलायैव जन्मपर्य्यन्तशालिने ।
पुरुषार्थविरुद्धाय नमः प्राक्तनकर्म्मणे ॥ ७२ ॥

न च्छिद्राली न च गुणततिर्गण्यते जाल्मजाले
सर्व्वोन्नत्या स्वकुलशशिनस्तस्य जन्मैव माभूत् ।
दोषं दोषप्रचयवसतिर्दर्शयत्येव दूरात्
यस्याङ्गुल्या तनुतरमतिव्यक्तमालोक्य लोकः ॥ ७३ ॥

इति चिन्तयतस्तस्य विषमे प्राणसंशये ।
अभून्मानक्षयादेव न शरीरक्षयाद्भयम् ॥ ७४ ॥

अत्रान्तरे दिव्यदृशा ज्ञात्वा विद्याधरो मुनिः ।
माठरः कृपया तस्य तीव्रक्लेशवतीं दशाम् ॥ ७५ ॥

མཁའ་དང་རལ་གྲི་འགྲོགས་པ་ཡི། ཡོན་དར་གཅིག་ཉིད་སྟོན་བྱེད་ཅིང་།
ལག་ན་ཤུབས་མེད་རལ་གྲི་ཅན། མཁའ་ཡི་ལམ་ནས་ཡང་དག་འོངས། 76

ཁྲོས་ཤིང་ཤིན་དུ་སྡུག་པའི་མིག། འཇིགས་རུངས་ལུས་ཅན་དེ་འོངས་ཏེ།
གཏུམ་པོའི་བུ་དང་དུང་གི་ནི། ཁ་ཡི་མགོ་དག་རབ་ཏུ་བཅད། 77

དེ་ནས་རང་གི་གནས་སུ་ཁྲིད། མི་བདག་སྨས་དེ་དབུགས་ཕྱུང་ནས།
རྗེ་འཕྲུལ་ཆེ་དང་ལྡན་ཅིག་རེས། སྒྱུ་མའི་རིག་པ་དེ་ལ་བྱིན། 78

དེ་ནས་ཐུབ་པ་དེ་ལ་ཞུས། ཁེངས་ལྡན་ཀྱིལ་སྨས་ཀྱིལ་སྲིད་ནི།
བཞིན་ཅིང་དགྲ་ལས་ཀྱིལ་འདོད་པས། ཀཾ་པི་ལར་ནི་དལ་གྱིས་སོང་། 79

དེ་ཡིས་རེར་ནི་གར་མཁན་མ། ཡིད་འཕྲོག་དགའ་མའི་གཟུགས་བྱས་ནས།
ཡིད་འོང་གར་སྟབས་དེ་དང་རེས། གྲོང་པའི་འཇིག་རྟེན་ཚིམ་པར་བྱས། 80

དེ་ཡི་གར་དང་གླུས་གར་དག། མཁས་པ་མི་བདག་གིས་ཐོས་ནས།
གློན་པོ་དང་བཅས་རང་ཉིད་ནི། གླུས་གར་ཁང་པར་ལྟ་རུ་སོང་། 81

དེ་ཡི་དེ་ནི་སྒྲ་ཅན་གྱིས། རྩེ་དགའ་ཡིད་འོང་དེ་དག་མཐོང་།
མཛེས་མའི་གཟུགས་སུ་གཡོ་མེད་ནི། བདུད་རྩི་ཞེན་དུ་འོང་བ་བཞིན། 82

དེ་ཡི་གར་སྟབས་མཛེས་སྡུག་ལ། ཉམ་པར་དབྱུང་ནས་འཛིན་མ་འཛིན།
འཇོ་སྒེག་སྒྲུང་ཞིང་སྐྱོས་གྱུར་པས། བློན་པོའི་གཙོ་ལ་རབ་སྨས་པ། 83

व्योममार्गेण निष्कोषखड्गपाणिः समाययौ।
नभोनिस्त्रिंशयोमैंत्रीमेकरूपां प्रदर्शयन्॥ ७६॥

सोऽभ्येत्य भीषणतनुः क्रोधक्रूरतरेक्षणः।
चण्डालस्तनोश्चिच्छेद शिरः शङ्खमुखस्य च॥ ७७॥

अथ स्वमाश्रमं नीत्वा तमाश्वास्य नृपात्मजम्।
स तस्मै प्रददौ मायाविद्याः सह महर्द्धिभिः॥ ७८॥

ततस्तं मुनिमामन्त्र्य मानी शत्रुजिगीषया।
राज्यकामः शनैः प्रायात् काम्पिल्यं पार्थिवात्मजः॥ ७९॥

स तत्र नर्त्तकीरूपं कृत्वा रतिमनोरमम्।
ललिताभिनयैस्तैस्तैः पौरलोकमतोषयत्॥ ८०॥

✓श्रुत्वा नरपतिस्तस्य कौशलं नृत्यवाद्ययोः।
स्वयं द्रष्टुं सहामात्यैः प्रययौ नाट्यमण्डपम्॥ ८१॥

स तत्र कैशिकी-लीला-ललितं तं व्यलोकयत्।
अमृताहरणायातं कान्तारूपमिवाच्युतम्॥ ८२॥

तस्याभिनवसौन्दर्य्यं विचार्य्य धरणीधरः।
शृङ्गारास्वादनक्षीवः प्रधानामात्यमब्रवीत्॥ ८३॥

ཀྱེ་མ་མཛེས་སྡུག་ཀུན་རྫོགས་ཞིང་། བསྔགས་འོས་ལུས་མཆོག་ལྡན་པའི་ལུས།
ངོ་མཚར་གར་སྟབས་ལྡན་པ་ནི། བདག་ཅག་ཉམས་ཀྱི་ཡིད་འཕྲོག་བྱེད། 84

མགྲོ་རིམ་དོ་རའི་ཅིད་འཛིན་མཁན། མི་ན་ཀ་དེ་འདི་མིན་ནམ།
གཞན་དུ་གསར་པའི་ཚོན་རིམ་དང་། དབྱིབས་མཛེས་འདི་ནི་ག་ལ་འོང་། 85

འགྱུར་བག་ཤིར་དུ་ལེགས་པའི་རང་བཞིན་གྱིས་སྤྲས་ཉམས་བཀྲ་མཛེས་པའི་རིམ་པ་ཡི།
ཚོགས་ཉམས་ཉིད་ཀྱིས་ཉམས་སུ་མྱོང་བྱ་ཉམས་ཉམས་ངེས་པར་རྫོགས་པ་ལ་བརྟེན་ཞིང་།
རྫོགས་པའི་དབུས་སུ་གླུ་ཡི་འགྱུར་གྱིས་ཡང་ཡང་རབ་ཏུ་དང་བ་སྒྲུབ་བྱེད་པ།
རྫ་ངེ་ཡང་དག་བསྒྲགས་པས་ཉེ་བར་སྤྲས་པའི་ཀློས་གར་ཀྱི་མ་ཡིད་དགའ་འགུགས། 86

སྐད་ནི་བརྗོད་པ་ཡོངས་སུ་འཛིན་ཆེ་ཡིད་འོང་རྒྱུད་མང་སྒྲ་ཡིས་དགའ་ལྡན་པ།
སྙིང་སྟོབས་གསལ་བར་འབྱེད་པས་འདར་ཞིང་གཡོ་ལྡན་འོག་བག་མཛེས་སྡུག
རི་མོའི་གཟུགས།
གསང་བོར་བརྗོད་ལ་མངོན་ཕྱོགས་མི་འཕྲོགས་ཡིད་འོང་སྟབས་དང་ལྡན་པར་སྒྲིག
པར་སྤྲས།
གཟུགས་བཟང་སྨིན་མ་ཟུང་ནི་སྒྲིག་ཅིང་རོལ་པའི་བསྒྲུབ་པས་སྤྲས་པ་ཀུན་ཏུ་བསྟེན། 87

ཞེས་དེ་དེ་གདོང་རྩ་སྤྲེས་ལ། མིག་བཀོད་ས་ཡི་བདག་པོ་ཡི།
བཞིན་གྱི་ཚུལ་གྱིས་བྲན་པ་ཡི། འདོད་པའི་ཀང་འཕྲུང་ཡང་དག་སྐྱེས། 88

དེ་ལ་ཚེ་ན་མེད་ཉིན་མོའི་མཐར། རིན་ཅེན་ཡོངས་རྫོགས་བྱིན་ནས་ནི།
ཕོ་བྲང་འཁོར་གྱི་ནང་སོང་སྟེ། མི་ཡི་བདག་པོས་བདག་ཉིད་བསམས། 89

अहो सम्पूर्णलावण्या धन्या वरतनोस्तनुः।
इयं हरति नश्चेतश्चित्राभिनयशालिनी ॥ ८४ ॥

इयं सा मेनका नूनं स्वर्गरङ्ग-विलासिनी।
अन्यथा नवनेपथ्या कुतः कान्तेयमाकृतिः ॥ ८५ ॥

भावा भव्यतरस्वभावरचना वैचित्र्यचारुक्रमैः
आस्वाद्यस्य रसस्य सङ्गततया निष्पादनायोद्यताः।
निष्पन्नस्य मुहुः प्रसाधनविधिर्मध्ये भ्रुवो[१] गीतिभिः
संमूर्छन्मुरजोपरञ्जितमहो नाट्यं मनः कर्षति ॥ ८६ ॥

वाणी पाठ्यपरिग्रहे [२]परिलसद्वीणास्वनामोदिनी
सत्त्वव्यक्तिविभक्तिकम्पतरला तालोन्मुखी मेखला।
आहार्य्यं रचयत्यहार्य्यरुचिरं सौन्दर्य्यरेखासखी
तन्व्या लास्यविलासशिष्यकलनां भ्रूयुग्ममासेवते ॥ ८७ ॥

इति तद्वदनाम्भोजन्यस्तनेत्रस्य भूपतेः।
उद्ययौ वदनस्वेदसिक्तो मदनपादपः ॥ ८८ ॥

दिनान्ते रत्नसम्पूर्णं दत्त्वास्यै पारितोषिकम्।
अन्तःपुरोदरं गत्वा तामेवाचिन्तयन्नृपः ॥ ८९ ॥

---

१ भ्रुवा in all MSS.   २ $\frac{W}{1}$ परिग्रमत्।

འཁོར་བའི་སྒྱུས་བཞིན་བདེན་མེད་གཟུགས། བཅོས་མའི་འདོད་ལྡན་མ་ཡིས་ནི།
ས་བདག་དེ་ཡི་ནང་དག་ཏུ། ཉམ་པར་གནས་ཤིང་སྨོངས་པར་བྱས། 90

འདོད་པས་གཟིར་བ་དེ་ཡིས་དེ། དལ་བུ་ཡིས་ནི་ཁྱིམ་དུ་བོས།
ཡོངས་སུ་གྱུར་པའི་འགལ་བ་ལ། འཆི་བར་འདོད་ཉམས་ཆགས་པར་བྱེད། 91

གྲགས་པ་མེ་ཏོག་ཉམ་བཀྲ་ཞིང་། སྡེ་ཚན་གསུམ་གྱི་འབྲས་བུ་ཅན།
མི་བདག་ལྗོན་པ་ཉམས་དག་གིས། དབང་པོ་ས་བསྲལས་ལྟ་རེ་ཡིན། 92

གླང་པོ་རྗེས་སུ་ཆགས་པ་དྲག་པོའི་དབང་དུ་གྱུར་པ་ལ།
གལ་ཏེ་གླང་མོ་དེ་ཡིས་སྨོངས་པའི་བསྐྱབ་པ་མ་བྱིན་ན།
ཡོངས་རྫོགས་སྨིན་པས་བྱུང་པའི་དོན་མཐུན་ཡོངས་སུ་དགྲེས་བྱས་པ།
ཁྲུ་ཡི་མགོན་པོ་ལྷུང་བའི་གཡང་ལ་ངེས་པར་ལྷུང་བ་མིན། 93

དེ་ནས་དལ་གྱིས་གྲོལ་ཁབ་ཏུ། བྲན་ཁོལ་བླུན་པོ་འདུན་པ་ཡི།
རྗེས་སུ་འཇུག་པས་བརླག་པའི་སྐད། བཅོས་མའི་བུད་མེད་རབ་ཏུ་བཙུག། 94

དབེན་པར་བརྟེན་པ་བདང་བྱས་ཤིང་། གསང་བ་མངོན་པར་འདོད་དེ་ལ།
དུས་ནི་མཛེས་མའི་གཟུགས་དག་གིས། མགུལ་ནས་འཛིན་ལ་མངོན་ཕྱོགས་གྱུར། 95

དེ་ནས་གཉིད་ནི་རིང་པོའི་སྐད། གུས་པས་མལ་སྟན་འཛེགས་དེ་ལ།
གཞོན་ནས་གར་མཁན་མ་ཡི་གཟུགས། སྤྲངས་ནས་འཕྲུལ་ལ་རབ་སྐྲས་པ། 96

असत्यरूपा तस्यान्तर्विश्रान्ता कूटकामिनी ।
चक्रे संसारमायेव वामा मोहं महीपतेः ॥ ९० ॥

आनिनाय स तां स्वैरं सदनं मदनातुरः ।
परिणामविरोधीनि स्पृहयन्ति मुमूर्षवः ॥ ९१ ॥

यशःपुष्पप्रकाराणां त्रिवर्गफलशालिनाम् ।
परशुन्दपवृक्षाणामिन्द्रियाणामनिग्रहः ॥ ९२ ॥

नैवावटे पतति पातिनि यूथनाथः
सम्पूर्णदानपरिपूरितभृङ्गसार्थः ।
सा बन्धकी यदि करोति न कुञ्जरस्य
गाढानुरागविवशस्य विमोहदीक्षाम् ॥ ९३ ॥

ततः स्वैरं गृहं राज्ञश्चेटकैः कूटकामिनी ।
छन्दानुवृत्तिभिर्मूढैर्विनाशाय प्रवेशिता ॥ ९४ ॥

विविक्ते त्यक्तधैर्य्यस्य तस्य गाढाभिलाषिणः ।
बभूव कान्तारूपेण कालः कण्ठग्रहोन्मुखः ॥ ९५ ॥

ततस्तं दीर्घनिद्रायै शय्यामारूढमादरात् ।
विहाय नर्त्तकीरूपं कुमारः सहसाब्रवीत् ॥ ९६ ॥

ཁྱོད་ཀྱི་ལོངས་སྤྱོད་ལ་ཆགས་ཤིང་། སྤུན་ཟླའི་མཛའ་ལ་ལྟོས་མེད་པས།
ལྷན་ཅིག་སྤྱོད་བྱ་རྒྱལ་སྲིད་ནི། གཅིག་པུ་ཡིས་ནི་ཇི་ལྟར་སྤྱོད།། 97

མི་བཟད་ཉོན་མོངས་ཆུ་གཏེར་དུ། སྐྱོབ་མེད་ང་ནི་ཁྱོད་ཀྱིས་འཐངས།
དེ་ཡི་ལེ་ལན་སེམས་བྱེད་བདག། རང་གི་ལས་ནི་སྨྲོར་བས་ཐར།། 98

ཞེས་བརྗོད་དེ་ཡིས་མི་བདག་བཅིངས། རྒྱལ་སྲིད་རབ་ཏུ་གྲགས་པ་ཐོབ།
སྐྱེ་བོ་འི་ཚོགས་ནི་དབུགས་ཕྱུང་སྟེ། སྲིད་ལྡན་རབ་ཏུ་ཞི་བར་གྱུར།། 99

གནས་ཐོབ་དེ་ཡི་རང་ཉིད་ཀྱིས། གནོད་པ་དྲག་པོ་སེམས་བྱེད་ཅིང་།
སྔ་དྲོ་བརྩེ་མེད་ཁྲོ་བ་ཡིས། མི་ཡི་བདག་ལ་རྡོ་བ་འཐངས།། 100

སྤུན་ཟླ་བསད་པས་ཆགས་པ་ཡི། ཁྲག་དང་སྤགས་བཞིན་དཔལ་འབྱོར་དེ།
སྤྲུད་ནས་གཞོན་ནུ་སྙན་དངགས་མཁན། ལུས་ཀྱི་མཐུག་ཏུ་དམྱལ་བར་སོང་།། 101

དེ་ཉིད་ང་ཡིན་སྡོང་ཐུག་ལོར། ལས་ཀྱི་སྡིག་པ་དེ་སྤྲུད་ནས།
སྡིག་པ་ཟད་སོད་ད་ལྟ་ཡང་། ཤིང་པའི་མགོ་བོ་ཡོངས་སུ་སྐྱེད།། 102

སྐྱེ་བའི་འཁོར་མོར་རིམ་གྱིས་ཡོངས་འདྲིས་རྒྱུད་དག་གིས་ནི་སྨིན་གྱུར་ཤིང་།
ཕྱི་ནས་སྐམ་དང་ཆུ་དང་ཤིང་དང་རྡོ་ཡི་སྙིང་པོ་འི་དབུས་སྐྱེས་ཀྱང་།།
སྣ་ཚོགས་རོ་ཡི་ཡོ་བྱེད་ལུས་ཀྱི་སྣོད་ནི་དེ་དང་དེ་སྤྲུད་དེ།
སྐྱེས་བུའི་ལས་ཀྱི་ལྷག་མ་སྐམ་པ་གནོད་པ་ཡིས་ཀྱང་གཏོང་མི་འགྱུར།། 103

भोगलुब्धेन भवता भ्रातृस्नेहानपेक्षिणा ।
सहभोग्यमिदं राज्यं कथमेकेन भुज्यते ॥ ९७ ॥

निर्दोषः क्लेशजलधौ क्षिप्तोऽहं विषमे त्वया ।
स्वकर्मयोगादुत्तीर्णस्तत्प्रतीकारचिन्तकः ॥ ९८ ॥

उक्त्वेति बद्ध्वा नृपतिं प्राप्तं राज्यमवाप्य सः ।
लुब्धप्रशमनं चक्रे जनताश्वासनेन सः ॥ ९९ ॥

स संप्राप्तपदस्तीव्रं चिन्तयन् स्वपराभवम् ।
शिलां प्रभाते चिक्षेप नृपतेर्मन्युनिष्कृपः ॥ १०० ॥

तां भ्रातृवधसंसक्तरक्तसिक्तामिव श्रियम् ।
भुक्त्वा कविकुमारोऽपि देहान्ते नरकं ययौ ॥ १०१ ॥

सोऽहं वर्षसहस्राणि भुक्त्वा तत्कर्मपातकम् ।
प्रक्षीणकिल्बिषोऽप्यद्य पादाङ्गुष्ठे परिक्षतः ॥ १०२ ॥

जन्मावर्त्तक्रमपरिचयैः सन्ततैः पच्यमानम् ।
पश्चाद्यातं स्थलजलतरुग्रावगर्भान्तरेऽपि ।
तैस्तैर्नानारसपरिकरैः कायपात्रे स्वभुक्तम् ।
कल्पापायैरपि न पुरुषः कर्मशेषं जहाति ॥ १०३ ॥

དེ་སྐད་སྐྱེ་བ་གཞན་གྱི་སྤྱོད། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས་ཐོས་ནས།
དགེ་སློང་ཀུན་གྱིས་ཡས་ཀྱི་རྒྱུར། བསྒོམ་པར་བྱ་བ་མིན་པར་ངེས།། 104

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་གཞོན་ནུ་སྟོན་དངགས་མཁན་གྱི་
རྟོགས་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་རྩ་དྲུག་པའོ།།

इत्यन्यजन्मचरितं श्रुत्वा भगवतोदितम् ।
श्लाघ्यां मेनिरे सर्व्वे भिक्षवः कर्म्मसन्ततिम् ॥ १०४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्वावदानकल्पलतायां
कविकुमारावदानं षट्षष्टितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་དྲུག་ཅུ་རྩ་བདུན་པ །

དགེ་འདུན་སྲུངས་ཀྱི་རྟོགས་བརྗོད་ནི །

འཁོར་བ་ཡངས་པའི་ཀྱ་ངམ་ལམ་ཆེན་རབ་མང་ཉོན་མོངས་དྲག་པོས་གདུང་བྱེད་པ།
ཡོངས་སུ་རྫོགས་པའི་བསོད་ནམས་གཏེར་གྱུར་དམ་ཆོས་རྟོགས་ཤིང་ཡེ་ཤེས་མཆོག་དང་ལྡན།
བླ་མས་ཉེར་བསྟན་རབ་ཏུ་གྲུས་པའི་མཐུ་སྟོབ་བདག་ཉིད་ཆེན་པོ་གང་དག་གིས།
ཁྲིམས་ཀྱི་ཁྲིམས་སུ་རྩེ་བ་ལྟ་བུས་ཡང་དག་རྒྱལ་བྱེད་དེ་དག་བསྔགས་པར་འོས།། 1

མཉན་ཡོད་དག་ཏུ་སྔོན་བྱུང་བ། ཁྲིམས་ཀྱི་བདག་པོ་སངས་རྒྱས་སྐྱོང་།
གང་གི་ཁྲིམས་ཀྱི་དཔལ་སྟུག་ནི། སྐྱོང་བའི་ཚོགས་ཀྱིས་ཉེར་མཁོར་གྱུར།། 2

གང་ཞིག་ཡིད་སྤྱོད་རབ་དང་བ། དགེ་བའི་སྐད་དུ་བསླབ་པའི་གནས།
རབ་ཏུ་དང་བའི་དགེ་སློང་མ། ཤཱ་རིའི་བུ་ཡིས་དམ་པར་བྱས།། 3

དེ་སྲས་དམ་པའི་ཀུན་སྤྱོད་ཅན། རིག་གནས་ཀུན་ལ་རྣམ་པར་མཁས།
ཡོན་དན་མཚན་ཉིད་ཡང་དག་རྫོགས། དགེ་འདུན་སྲུང་ཞེས་བྱ་བར་གྱུར།། 4

ནམ་ཞིག་ཁྱིམ་དུ་ཤཱ་རིའི་བུ། འོངས་ཚེ་ཕ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས།
བུ་ཁྱོད་མངལ་ན་གནས་པ་ན། འདི་ཡི་ཉེ་གནས་སུ་དམ་བཅས།། 5

सप्तषष्टितमः पल्लवः ।

सङ्घरक्षितावदानम् ।

धन्यास्ते परिपूर्णपुण्यनिधयः सद्धर्मसंबोधिनः
ज्ञानोदग्रगुरूपदेशमहिमप्राप्तप्रभावोदयाः ।
गेहप्राङ्गणलीलया बहुतरक्लेशोग्रसन्तापकृत्
यैः संसारविसारि-मारव-महामार्गः समुल्लंघ्यते ॥ १ ॥

पुराभवद्गृहपतिः श्रावस्त्यां बुद्धरक्षितः ।
अर्थिसार्थोपकरणगुर्व्यो यस्य गृहश्रियः ॥ २ ॥

यः प्रसन्नमनोवृत्तिः कुशलाय प्रसादिना ।
कृतः शिक्षापदोत्सृष्टः शारिपुत्रेण भिक्षुणा ॥ ३ ॥

संघरक्षितनामाभूत् संपूर्णगुणलक्षणः ।
पुत्रस्तस्य सदाचारः सर्व्वविद्याविचक्षणः ॥ ४ ॥

तं कदाचिद्गृहायाते शारिपुत्रे पिताब्रवीत् ।
त्वमुपस्थायकः पुत्रो गर्भस्थोऽस्य प्रतिश्रुतः ॥ ५ ॥

དེ་སྐད་ད་ནི་བདག་གི་ཚིག། དེ་ནི་བདེན་པར་བྱ་བར་འོས།
ཕ་ལ་བུ་ལོན་མེད་བྱེད་པའི། བུ་བཟང་བསོད་ནམས་དབང་གིས་འགྱུར།། 6

དེ་སྐད་ཕ་ཡིས་ཡང་དག་བསྟན། དགེ་འདུན་སྲུང་འདི་རབ་དགའ་སྟེ།
ཤཱ་རིའི་བུ་ཡི་རྗེས་འབྲང་ཞིང་། རིམ་གྱི་ཡོངས་སུ་སྨིན་བར་གྱུར།། 7

དེ་ནས་དེ་ཡིས་རབ་བྱུང་སྟེ། ཀུན་སྤྱོད་དང་ནི་བསླབ་པ་ལ།
ཆོས་ཀྱི་ལུང་ནི་བཞི་པོ་དག། མ་ལུས་དེ་ཡི་ཁ་འདོན་སྦྱངས།། 8

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ཚོང་པ་ནི། མཚུངས་པར་སྐྱེས་པའི་གྲོགས་པོ་དག།
བརྒྱ་ཕྲག་ལྔ་ཡིས་རྒྱ་གཏེར་ལ། ལྷན་ཅིག་འགྲོ་བར་གསོལ་བདབ་སྟེ།། 9

དེ་དག་དགེ་བ་སེམས་བྱེད་པས། འཇིགས་པ་དག་ལ་བརྟན་བསྐྱེད་པ།
བླ་མའི་བཀའ་ནི་བཟུང་བྱས་ཏེ། གཟིངས་ལ་རབ་ཏུ་ཞོན་པར་གྱུར།། 10

དེ་ནས་གཟིངས་དེ་རྒྱ་གཏེར་གྱི། དབུས་སུ་ཡང་དག་འགགས་གྱུར་ཅིང་།
ཚོང་པའི་དོན་མཐུན་ཚོ་ངེ་དག། སྐྲགས་ཚེ་རྒྱ་ལས་ཚིག་དྲག་པ།། 11

གལ་ཏེ་གཟིངས་འདི་ཁྱེད་ཅག་རྣམས། གྲོལ་བར་འདོད་པ་དེ་ལྟ་ན།
དགེ་འདུན་སྲུང་འདི་རྒྱ་ལ་ནི། སྐྱུར་པ་ཉིད་དུ་འཕང་བར་མཛོད།། 12

དེ་ཐོས་སྐྲག་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཆེ། དེ་དག་རྣམས་ལ་བློ་འདི་བྱུང་།
ཤི་བར་གྱུར་པ་མཆོག་ཡིན་གྱི། དམ་པའི་གྲོགས་པོ་གསོད་པ་མིན།། 13

तस्मात्तदधुना सत्यं कर्त्तुमर्हसि मे वचः ।
पुण्यैर्भवन्ति सत्पुत्राः पितुरानृण्यकारिणः ॥ ६ ॥

इति पित्रा समादिष्टः प्रहृष्टः संघरक्षितः ।
अनुगः शारिपुत्रस्य परिचर्य्यापरोऽभवत् ॥ ७ ॥

ततः प्रव्राजितस्तेन समुदाचारशिक्षया ।
अध्यापितः स निखिलं धर्मागमचतुष्टयम् ॥ ८ ॥

ततः कदाचिद्वणिजां मित्राणां तुल्यजन्मनाम् ।
शतैः पञ्चभिरम्भोधिगमनेन सहार्थितः ॥ ९ ॥

आरुरोह प्रवहणं तेषां कुशलचिन्तकः ।
भयेषु धैर्य्यजननं गृहीत्वा शासनं गुरोः ॥ १० ॥

अथाब्धिमध्ये संरुद्धे तस्मिन् प्रवहणे क्षणम् ।
साक्रन्दे वणिजां सार्थे प्रोच्चचार वचोऽम्भसः ॥ ११ ॥

यदि प्रवहणस्यास्य मुक्ति र्युष्माकमीप्सिता ।
तदेष क्षिप्यतां क्षिप्रं सलिले संघरक्षितः ॥ १२ ॥

श्रुत्वैतत् प्राणसन्देहे तेषामेकाभवन्मतिः ।
वरन्निधनमेवास्तु न तु साधुसुहृद्वधः ॥ १३ ॥

དེ་དག་ཀི་བཟང་བྲི་ཚོམ་ལ། བརྩེ་བ་ཡིས་ནི་བསྲུང་བརྩོན་པས།
ཆུ་གཏེར་འཁྲུགས་པར་དགེ་འདུན་སྲུང་། རང་གི་བདག་ཉིད་རབ་ཏུ་འཕངས།།
14

དེ་ནས་ཀླུ་ཡི་གནས་སུ་ཕྱིན། དེ་ནི་ཀླུ་ཡིས་གསོལ་བཏབ་དེ།
རྫོགས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་མཆོད་རྟེན་ལ། མངོན་པར་ཕྱག་འཚལ་མངོན་བསྐུལ་བས་
ནས།། 15

བསམ་པས་ཕྲ་རེས་མཐོང་དབྱུགས་དང་། སོ་རིག་དྲུག་ལྡན་དེ་དག་ལ།
ལེགས་པའི་སྤྱོད་ཚུལ་མངོན་འདོད་པའི། ཆོས་ནི་རབ་ཏུ་བསྟན་པ་མཛད།། 16

ཆགས་བྲལ་དྲག་པོ་འི་ཡིད་འབྱུང་གིས། རང་ཡུལ་འགྲོ་བར་འདོད་པ་དེ།
ཀླུ་རྣམས་ཀྱིས་ནི་ཚོང་པ་ཡི། གཟིངས་ལ་སྐད་ཅིག་ཉིད་ཀྱིས་བཀོད།། 17

འཇིག་རྟེན་གཞན་ལས་ལོངས་པ་བཞིན། དེ་དག་དགའ་བ་ཡང་དག་ཐོབ།
གཟིངས་ནི་ཕྱིར་ལ་ལོག་གྱུར་ནས། རྒྱ་མཚོ་ཆེན་པོ་འི་ངོགས་སུ་ཕྱིན།། 18

རང་གི་འདོད་པས་དེ་དག་རྣམས། ཞིན་དུ་རིངས་པར་བགྲོད་པ་ཡིས།
དགེ་འདུན་སྲུང་ནི་བྱེ་མ་ཡི། ངོགས་སུ་གཉིད་དུ་སོང་བ་བཞིད།། 19

དེ་ནས་དོན་མཐུན་སོང་ཚེ་སད། སྤྲ་དྲི་མི་མེད་ཕྱོགས་རྣམས་སུ།
ལྟ་ཞིང་གྲོགས་དང་བྲལ་བ་ཡིས། ཆགས་བྲལ་བློ་ཅན་དེས་བསམས་པ།། 20

ཀྱི་མ་མཐོང་དང་ཉམས་པ་ཅན། དྲི་ཟའི་གྲོང་ཁྱེར་ལྟ་བུ་ཡི།
སྣང་སྡུག་གཉེན་དང་འགྲོགས་པ་དག། བྲལ་ན་ནམ་པར་སྨོངས་པར་བྱེད།། 21

विषमे संशये तेषां कृपया रक्षणोद्यतः ।
चिक्षेप स्वयमात्मानं क्षुब्धाब्धौ संघरक्षितः ॥ १४ ॥

स नागनिलयं प्राप्तस्तत्र नागैरथान्वितः ।
विधाय पूर्व्वसंबुद्ध-स्तूपचैत्याभिवन्दनम् ॥ १५ ॥

दृष्टिश्वासरदस्पर्शविषाणां चिन्तया कृशः ।
सुचिराभिमतान्तेषां विदधे धर्म्मदेशनाम् ॥ १६ ॥

तीव्रारतिसमुद्विग्नः स्वदेशगमनोत्सुकः ।
स नागैर्वणिजामेव न्यस्तः प्रवहणे क्षणात् ॥ १७ ॥

ते प्रहृष्टाः समासाद्य परलोकादिवागतम् ।
प्रत्यावृत्तप्रवहणास्तीरं प्रापुर्महोदधेः ॥ १८ ॥

स्वगृहोत्कण्ठया तेषां व्रजतामतिसत्वरम् ।
निद्रालुर्वालुकाकूले विस्मृतः संघरक्षितः ॥ १९ ॥

गते सार्थे प्रबुद्धोऽथ प्रभाते विजना दिशः ।
पश्यन् सुहृद्विरहितः प्रदध्यौ स विषण्णधीः ॥ २० ॥

अहो दृष्टाश्च नष्टाश्च गन्धर्वनगरोपमाः ।
विमोहयन्ति विरहे सुहृद्बन्धुसमागमाः ॥ २१ ॥

ས་ཁར་ཉ་གཞོན་འཕར་བ་ལྟ་བུར་རབ་ཏུ་གཡོ་བའི་མཛེས་སྡུག་གྲོགས།
མི་རྣམས་དག་ལ་བརྟེན་གྱི་ཡིད་བརྟན་བརྟན་པར་གནས་པའི་འཆིང་བ་སྐྱུབ།།
རང་གི་སྐྱེ་བོ་དང་བྲལ་མལ་དུ་ཉལ་ཞིང་དེ་བཞིན་ངེས་པར་མཆིས།
ཀུན་ཏུ་ཆགས་པ་དགེ་དང་མི་དགེའི་ལས་དང་ལྡན་ཅིག་སྒྲོག་ཆགས་རྒྱུ།། 22

བརྟན་པའི་བློ་ཡིས་འདི་བསམས་ཏེ། ཡུལ་གྱི་ལམ་ནས་འགྲོ་བ་ངེས།
དཔལ་གྱིས་སྐྱོ་བོ་འི་བསམ་པ་བཞིན། མཐའ་མེད་སཱ་ལའི་ནགས་ཚལ་སྤྱིབ།། 23

དེ་ནས་དེར་ནི་ཁང་བཟང་དང་། ཁང་པ་རིན་ཆེན་ལས་འགྲུབ་པ།
གཙུག་ལག་ཁང་ཆེན་མངོན་གྱུར་ཏེ། དགེ་མཚན་གཟུགས་དང་ལྡན་པ་བཞིན།། 24

ཁྲི་དང་མལ་སྟན་ལེགས་བཤམས་པ། དེར་ནི་དགེ་སློང་དགེ་འདུན་ནི།
ཆོས་གོས་མཛེས་པ་ཞི་བ་ཡི། མཚན་ཉིད་ཉམས་པ་མེད་པ་མཐོང་།། 25

དེ་ནས་དེ་དག་གིས་མགྲོན་བསྙུབས། དེར་ནི་དེ་ཡིས་སྟན་དག་བཀྲུན།
ཟས་དང་བཀུར་སྟི་སྙིད་གྱུར་ནས། སྐད་ཅིག་ངལ་བསོས་ཐོབ་པར་གྱུར།། 26

དེ་ནས་དགེ་སློང་རྣམས་དག་གིས། ཟས་ཀྱི་དུས་ལ་བབ་པའི་ཚེ།
མདུན་དུ་ལྷུང་བཟེད་བསྟན་བྱས་པ། ཐོབ་ཆེན་པོ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 27

གཙུག་ལག་ཁང་དེ་མི་སྣང་བར། དེ་དག་ཐོ་ཆེན་མཚོན་ཆ་ཡིས།
པན་ཚུན་མགོ་བོ་རྣམས་བཅོམ་ནས། ས་གཞི་ཁྲག་གིས་སྦྲན་པར་བྱས།། 28

तरुणशफरोत्फाललोलाः परप्रियसङ्गमा
विदधति नृणामास्थामिथ्यास्थिरस्थितिबन्धनीम् ।
स्वजनरहितः शेते गर्भे तथैव विपद्यते
विचरति सहासक्तैर्जन्तुः शुभाशुभकर्म्मभिः ॥ २२ ॥

इति ध्यात्वा धिया धीरः स व्रजन् विषमाध्वना ।
जनचिन्तामिवानन्तां प्राप शालाटवीं शनैः ॥ २३ ॥

ततस्तत्र समुद्भूतरत्नप्रासादमन्दिरम् ।
महाविहारमद्राक्षीत् स मूर्त्तमिव कौतुकम् ॥ २४ ॥

स्वास्तीर्णासनपर्य्यङ्के तस्मिन् रुचिरचीवरम् ।
ददर्श संघं भिक्षूणामक्षुण्णशमलक्षणम् ॥ २५ ॥

ततस्तैर्विहितातिथ्यः स तत्रालंकृतासनः ।
लब्धभोजनसत्कारः क्षणं विश्रान्तिमाप्तवान् ॥ २६ ॥

भिक्षूणामथ संप्राप्ते भोजनावसरे पुरः ।
सज्जीकृतानि पात्राणि स्थूलमुद्गरतां ययुः ॥ २७ ॥

विहारेऽन्तर्हिते तस्मिंस्ते महामुद्गरायुधाः ।
मिथः शिरांसि निर्भिद्य चक्रुः क्ष्मां शोणितोक्षिताम् ॥ २८ ॥

ཟས་ཀྱི་དུས་ནི་འདས་པ་ན། གཙུག་ལག་ཁང་ཡང་མངོན་གྱུར་ཞིང་།
དེ་བཞིན་དགེ་སློང་དེ་དག་རྣམས། རབ་ཞི་ལྡན་པར་རྣལ་དུ་གནས།། 29

ངོ་མཚར་དེ་མཐོང་ཨ་མཚན་ཅན། དེ་ཡིས་དེ་དག་རྣམས་ལ་དྲིས།
ཟས་ཀྱི་དུས་སུ་རྩོད་པ་འདི། ཁྱེད་ཅག་རྣམས་ལ་ཅི་སྐད་བྱུང་།། 30

དེ་ལ་དེས་སྨྲས་བདག་ཅག་གིས། སྐྱེ་བ་སྔ་མར་ཟས་དུས་སུ།
གཙུག་ལག་ཁང་དུ་རྩོད་པ་བྱས། ལས་དེའི་འབྲས་བུ་འདི་དག་གོ།། 31

དེ་དག་ཐོས་ནས་དེ་ནས་དེ། སོང་བས་གཞན་དུ་དེ་ལྟ་ཡི།
གཙུག་ལག་ཁང་གཞན་དགའ་བ་ནི། རབ་ཏུ་འཁྲུངས་པར་གྱུར་པ་མཐོང་།། 32

དེ་ནས་དེར་ཡང་ཟས་ཀྱི་ཚེ། དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱི་མདུན་དུ་ཟས།
ལྷུགས་ཀྱི་ཁུ་བ་ཉིད་གྱུར་པ། མཐོང་ནས་དེ་དག་ལ་དེ་དྲིས།། 33

དེ་ལ་དེས་སྨྲས་སྔོངས་པ་ལས། དགེ་སློང་འོངས་པའི་ཟས་ཀྱི་གོགས།
དགེ་སློང་ངན་པའི་བདག་ཉིད་ཅན། བདག་ཅག་རྣམས་ཀྱིས་སྤྱོད་ཚེ་བྱས།། 34

དེ་ཐོས་དེ་ནས་སོང་གྱུར་པ། དེ་ཡིས་གསེར་ཞིང་མཛེས་པའི་གནས།
གཙུག་ལག་ཁང་ནི་གསུམ་པ་དག། དགེ་སློང་གིས་གང་མདུན་དུ་སོང་།། 35

དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱི་ཟས་ཀྱི་ཚེ། དེ་ཡང་ཚིག་ཅིང་སྐྱར་ཡང་བྱུང་།
དེ་མཐོང་ཡ་མཚན་གྱུར་པ་ཡིས། འཚིག་པའི་རྒྱུ་ནི་ཚོགས་ལ་དྲིས།། 36

आहारकालेऽतिक्रान्ते विहारेऽभ्युदिते पुनः ।
स्वस्थास्ते भिक्षवस्तस्थुस्तथैव प्रशमान्विताः ॥ २९ ॥

स तदाश्चर्य्यमालोक्य तान् प्रपच्छ सविस्मयः ।
भक्तकाले कलिः कस्माद् युष्माकमयमुत्थितः ॥ ३० ॥

तमवोचत ते ऽस्माभि र्विहारे पूर्व्वजन्मनि ।
भक्तकाले कृतं युद्धं तस्यैतत् कर्म्मणः फलम् ॥ ३१ ॥

ते तान् बभाषिरे मोहादागन्तूनां दुरात्मभिः ।
भक्तविघ्नः कृतोऽस्माभिः भिक्षूणां भिक्षुभिः पुरा ॥ ३२ ॥

एतदाकर्ण्य स ततो यात्वा पश्यन्नवं पुनः ।
तृतीयं रुचिरावासं विहारं भिक्षुभिर्व्वृतम् ॥ ३३ ॥

भिक्षुभक्तक्षणे तत्र निर्द्दग्धं पुनरुत्थितम् ।
दृष्ट्वा तं विस्मितः सङ्घमपृच्छत्तद्धकारणम् ॥ ३४ ॥

ते तमूचुः पुरास्माभिः भिक्षुभिर्भिक्षुमत्सरात् ।
आदीपितः क्रौर्य्यरतैः विहारः पूर्व्वजन्मनि ॥ ३५ ॥

श्रुत्वैतत्स ततो गत्वा ददर्शान्यच निश्चलान् ।
स्तम्भकुशघ्नलाकारान् मार्जनीरज्जुसन्निभान् ॥ ३६ ॥

དེ་ལ་དེས་སྨྲས་དགེ་སློང་ལ། ཕྲག་དོག་ལས་སྔོན་གཙུག་ལག་ཁང་།
སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བར་གདུག་པ་ལ། དགའ་བ་བདག་ཅག་རྣམས་ཀྱིས་བསྒྲིགས།། 37

དེ་ཕྱིར་དེ་ནས་སོང་བ་དེས། གཞན་དུ་གསོ་མེད་ཀ་བ་དང་།
རྩིག་པ་འབྲས་བུའི་རྣམ་པ་ཅན། ཕྱུགས་མ་ཐག་པར་མཚུངས་པ་དང་།། 38

ཁྲི་སོགས་གདན་ནི་དྲག་པ་དང་། རྣལ་མའི་ལྕག་དང་རྣམ་གཉིས་གྱུར།
ཉལ་ཞིང་སེམས་ལྡན་བདེ་མེད་པའི། སེམས་ཅན་སྙིང་སྟོབས་མཆོག་གིས་མཐོང་།། 39

དེ་མཐོང་འགྲོ་བ་དེ་ཉིད་ཀྱིས། དཀའ་ཐུབ་དྲག་ལྡན་ཐུབ་པ་ནི།
བརྒྱ་ཕྲག་ལྔ་ཡིས་བསྟན་པ་ཡིས། བསོད་ནམས་དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་ཕྱིན།།40

དེ་དག་གིས་དེ་རིང་པོ་ནས། མཐོང་ནས་པན་ཚུན་ངེས་པར་བྱས།
བདག་ཅག་རྣམས་ཀྱི་འདི་ལ་གནས། འདི་སྦྱིན་སྐྱན་པར་སྨྲ་མི་བྱ།། 41

ཤཱ་ཀྱའི་སློབ་མ་རང་བཞིན་གྱིས། མང་བརྗོད་ཕེབས་པར་སྨྲ་བྱ་མིན།
ཞེས་པའི་གྲོས་ནི་རབ་བསྒྲུབས་དེ། ཐུབ་པ་དེ་དག་རབ་ཏུ་གནས།། 42

དེ་དག་གིས་དེར་གནས་མ་བྱིན། དེ་ཡིས་ཉིན་མོ་ཟད་ཚེ་འཁྲུམ།
འདམ་སྐྱེས་མཛོད་ནི་འཚུམས་པ་ཡིས། རྐང་དྲུག་རི་བ་ཉམས་པ་བཞིན།། 43

ཐུབ་པ་གཅིག་གིས་དེ་ལ་ནི། མཚན་མོ་ཁྱོད་ནི་མི་སྨྲ་བར།
གནས་པར་བྱ་ཞེས་རབ་བརྗོད་ནས། ཞག་སར་བཞི་གནས་སྟོང་པ་བྱིན།། 44

खट्वाद्युलूखलस्थूलांस्तन्तुभेषान् द्विधागतान् ।
सत्त्वान् सत्त्ववतामग्र्यः सुप्तचैतन्यनिःसुखान् ॥ ३७ ॥

स तान् दृष्ट्वा व्रजन्नेव पुण्यं प्राप तपोवनम् ।
सेवितं तीव्रतपसां मुनीनां पञ्चभिः शतैः ॥ ३८ ॥

ते तं दूरात् समालोक्य चक्रिरे निश्चयं मिथः ।
अस्य दातव्यमस्माभिर्न स्थानं न प्रियं वचः ॥ ३९ ॥

शाक्यशिष्यो न संभाष्यो बहुजल्पः स्वभावतः ।
इति संविदमाधाय ते तस्थुर्मौनिनः परम् ॥ ४० ॥

तैरदत्ताश्रयस्तत्र स बभ्राम दिनक्षये ।
बद्धकोशैर्विनष्टाशः पङ्कजैरिव षट्पदः ॥ ४१ ॥

मुनिरेकस्तु वासाय तस्य शून्यां कुटीं ददौ ।
त्वया मौनवता रात्रौ स्थातव्यमिति संविदा ॥ ४२ ॥

तत्र तैरकृतातिथ्यं तं क्षपाक्षयकारिणम् ।
ऊचे शयानमभ्येत्य शनैराश्रमदेवता ॥ ४३ ॥

उत्तिष्ठ साधो सौजन्यात् कुरु मे धर्म्मदेशनाम् ।
सद्धर्म्मवादिनां लोके प्रथमोऽसि मे मतः ॥ ४४ ॥

ཞེས་དེས་གསོལ་བཏབ་ཐུབ་པ་དེས། གཙོ་བསྐུངས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།
མ་མ་ཁྲོད་དང་ཁྲོ་བོ་ཡིས། ངེས་པར་འཁྲིད་པ་ཅི་སྐད་སྤྲུལ།། 45

གནས་དེར་བདག་ལ་ཐུབ་པ་ཡིས། མི་སྨྲ་བ་ཡི་དམ་ཚིག་བྱས།
དེ་ལས་འདས་པར་གྱུར་ན་བདག ། ངེས་པར་འདི་ཡིས་འཁྲིད་པར་འགྱུར།། 46

ཞེས་སྨྲ་དེ་ལ་གསུས་པ་ཡིས། དེ་ཡིས་མང་དུ་གསོལ་བཏབ་སྟེ།
བྲམ་ཟེས་རྗེས་སུ་གནང་བ་ཡིས། ཆོས་ནི་སྨྲ་བར་ཡང་དག་བརྩམས།། 47

རྒྱུན་དུ་ལུས་ནི་གདུང་བར་བྱེད་པ་ངེས་པ་བརྟུལ་ཞུགས་མིན།
སྐྱེ་བོ་མེད་པའི་དགའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་དག་པར་བྱེད་པ་མིན།
བཟུང་དཀའི་རལ་པ་བཞེས་པ་ཡོངས་འཛིན་སྐྱེས་བུ་རྣམས་དག་གིས།
ཆགས་པས་ཡོངས་འདྲིས་སེམས་ནི་ཡོངས་སུ་གདུང་བར་བྱེད་པ་ཡིན།། 48

ནགས་སུ་འབྲས་བུ་ཟ་བའི་སྤྲེའུ་འདི་དག་རྣམས་དང་ནི།
སྡོང་པ་འདབ་མ་ཤིང་ཤུན་དང་བཅས་རལ་ཚོགས་ལྡན་པ་དང་།
འཇུག་ངོགས་ཆུ་ནང་དུ་ཆགས་ཉི་མེད་རྣམས་ཀྱང་འགྲོ་བ་མིན།
རབ་ཞི་སྤྱངས་པ་རྣམས་ཀྱིས་དགའ་ཐུབ་ཡོ་བྱད་བརྟེན་པ་ཉིད།། 49

ཐལ་བས་དཀར་བའི་གླང་པོ་དང་ནི་ལྷུང་དག་འཐུང་བའི་སྤྲུལ་རྣམས་དང་།
ནགས་ན་ཞེན་པའི་རི་དྭགས་རྣམས་དང་ཐང་ལ་ཉལ་བའི་གཟུངས་མོ་དང་།
འབྲས་བུ་ཟ་བའི་ནེ་ཙོ་དང་ནི་གོས་མེད་རྫོན་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་།
ཡུལ་ལ་ཆགས་པ་མ་བཏང་རབ་ཏུ་ཞི་བ་འགའ་ཡང་རྟོགས་མི་འགྱུར།། 50

इत्यर्थितस्तया मौनी स तां प्राह लघुस्वनः ।
मातर्निष्कासनायैव त्वं मे केनापि निर्म्मिता ॥ ४५ ॥

अस्मिन् मे मुनिना मौनसमयः संश्रयः कृतः ।
निष्कासयति मामेष तद्व्यतिक्रमकारिणम् ॥ ४६ ॥

इति ब्रुवाणः प्रणयादकुण्ठः स तयार्थितः ।
ब्राह्मणानुमतं धर्म्मं वक्तुं समुपचक्रमे ॥ ४७ ॥

नैव व्रतानि तनुशोधनसाधनानि
नो पावनानि विजनानि तपोवनानि ।
पुंसां जटाजिनपरिग्रहदुर्ग्रहाणाम्
चेतः स्पृहापरिचितं परिशोधयन्ति ॥ ४८ ॥

एते वने फलभुजः कपयो न मुक्ताः
वृक्षाः सवल्कलपलाशजटासटाश्च ।
अन्तर्जलप्रणयिनस्तिमयश्च तीर्थे
मिथ्यातपःपरिकरः प्रशमोज्झितानाम् ॥ ४९ ॥

न भूतिधवलैरिभैः पवनपायिभिः पन्नगैः
वनव्यसनिभिर्म्मृगैः सलतकैः स्थलीशायिभिः ।
फलप्रणयिभिः शुकैरपि निरम्बरैर्लुब्धकैः
असुक्तविषयस्पृहैरधिगता प्रशान्तिः क्वचित् ॥ ५० ॥

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ཏེ། ཡ་མཚན་བཅས་པའི་ཐུབ་རྣམས་ཀྱང་།
དེ་ལ་གུས་པ་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། ཀུན་ཀྱིས་ཡོངས་སུ་བསྐོར་ནས་གནས།། 51

དེ་ཡི་བསམ་པ་འཁོར་བར་ནི། ཡོངས་སུ་བསྐོར་བའི་ཆགས་པ་འདི།
ངེས་པར་བརྟན་གྱི་བདུལ་ཞུགས་ཀྱིས། རྒྱུན་དུ་ཉོན་མོངས་གདུང་བ་སྤྱོད། 52

མི་རྣམས་མ་རིག་འདུ་བྱེད་དང་། རྣམ་ཤེས་མིང་དང་གཟུགས་དང་ནི།
སྐྱེ་མཆེད་དྲུག་དང་རེག་པ་དང་། ཚོར་བ་སྲེད་པ་དང་བཅས་དང་།། 53

ལེན་པ་སྲིད་པ་སྐྱེ་བ་དང་། ན་ཤི་ཡིས་ནི་ངེས་པར་འགྲོ།
སྡུག་བསྔལ་རང་བཞིན་ཕུང་པོ་འདི། ཤིན་ཏུ་ཆེ་བར་ཡོངས་སུ་འཕེལ།། 54

རབ་ཞི་མཁས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ནི། མ་རིག་ལ་སོགས་རིམ་པ་ཡིས།
རེ་རེ་འགགས་པར་གྱུར་པ་ན། གཞན་དང་གཞན་ནི་འགག་པར་འགྱུར།། 55

དེ་ལྟར་ཡིད་ཀྱིས་ངེས་བྱ་རེས། དེ་དག་མདུན་དུ་དེ་ལྟ་ཡི།
དམ་པའི་ཆོས་ནི་བསྟན་བྱས་ནས། སླར་ཡང་དེ་དག་ལ་འདི་སྨྲས།། 56

གང་དག་ཡིད་ནི་བྱམས་པས་གཙང་གྱུར་ཅིང་།
འཚོ་བ་དག་ཀྱང་དམ་པའི་ཆོས་ཀྱིས་དག།
རབ་ཞི་འོས་པས་མཐོ་བ་དེ་དག་གིས།
སྐྱེ་བ་མྱ་ངན་མི་བྱ་དགའ་བར་བྱ།། 57

इति तद्वचनं श्रुत्वा मुनयोऽपि सविस्मयाः ।
तमादरोन्मुखाः सर्व्वे परिवार्य्यावतस्थिरे ॥ ५१ ॥

सोऽचिन्तयदियं पर्षत् संसारपरिवर्त्तिनी ।
मिथ्यैव व्रतसन्तापसन्ततक्लेशमश्नुते ॥ ५२ ॥

नृणामविद्यासंस्कारा विज्ञानं नामरूपता ।
षड़ायतनसंस्पर्शो वेदना सह तृष्णया ॥ ५३ ॥

उपादानं भवो जातिर्जरामरणदुर्गतिः ।
एष दुःखमयः स्कन्धः सुमहान् परिवर्द्धते ॥ ५४ ॥

अविद्यादिक्रमेणैव प्रशान्तानां मनीषिणाम् ।
एकैकस्य निरोधेन लयं याति परः परः ॥ ५५ ॥

इति निश्चित्य मनसा स तेषां तद्विधां पुरः ।
सद्धर्म्मदेशनां कृत्वा पुनस्तानिदमब्रवीत् ॥ ५६ ॥

तेषामशोच्यं स्पृहणीयमेव
जन्मप्रशमोचितमुन्नतानाम् ।
मैत्रीपवित्राणि मनांसि येषाम्
सद्धर्म्मशुद्धानि च जीवितानि ॥ ५७ ॥

ས་གཞི་འདི་དང་ནམ་མཁའ་དང་ནི་གདེངས་ཅན་དག་གི་གནས་ན་ཡང་།
སེམས་ཅན་གང་འཁོར་དེ་ལ་གུས་པའི་ཚིག་གིས་ལེགས་བྱས་བདག་དོན་གཉེར།
སྙིང་ནི་བྱམས་པའི་སྣོད་དུ་མཛོད་ཅིག་བློ་གྲོས་དག་གིས་ཆོས་དག་སྟོན།
ལུས་ཅན་རྣམས་ལ་མི་བཟད་སྡུན་པར་ཆོས་ལས་གཞན་པའི་སྐྱོན་མ་མེད།། 58

ཅེས་བརྗོད་ལྡོན་པའི་འོག་ཏུ་ནི། དེ་ཡིས་སྐྱིལ་ཀྲུང་བཅིངས་པ་བྱས།
དྲང་པོ་རབ་ཏུ་གསལ་བ་ཡིས། དགྲ་བཅོམ་ཉིད་དེར་མངོན་དུ་བྱས།། 59

དེ་ལ་ངེས་སྐྱེས་བདག་ཅག་རྣམས། ཤཱ་ཀྱ་ཐུབ་པའི་གནས་སུ་ཁྲིད།
ལེགས་གསུངས་ཆོས་ནི་འདུལ་བ་ལས། རབ་བྱུང་བདག་ཅག་དོན་གཉེར་རོ།། 60

དེ་ནས་དེ་ལྟར་དེ་དག་གིས། གསོལ་བཏབ་ཚིག་གིས་སྟོན་ལ་འཕྱུངས།
དེ་དག་ཁྲིར་ནས་དགེ་འདུན་སྨྲུངས། རྫུ་འཕྲུལ་ཆེ་དེ་མཁའ་ལ་སོང་།། 61

དེ་ཡིས་སྟོན་པའི་གནས་སུ་ཕྱིན། དེ་ཡི་ཞབས་པད་གཉིས་ལ་ནི།
ཀུན་དགའ་ལྡན་པའི་སྤྱི་བོ་ཡིས། མངོན་བདུད་དེ་ལ་ཐམས་ཅད་བཤད།། 62

དེ་ཡི་ཚིག་གིས་ཐུབ་རྣམས་ལ། བཅོམ་ལྡན་བརྩེ་ལྡན་དགྲེས་པ་ཡིས།
ཡིད་ནི་རབ་དང་སྨྲེད་པ་ཡིས། དམ་པའི་ཆོས་ནི་བསྟན་པར་མཛད།། 63

དྲི་མེད་རབ་ཞི་གྲུས་པ་ནི། དེ་ཡི་དྲིན་ལས་སྐྱེས་དེ་དག།
ཉོན་མོངས་ཐམས་ཅད་གཞོང་འོས་པའི། མཆོད་འོས་དགྲ་བཅོམ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 64

यावन्तोऽस्यां भुवि नभसि वा भोगिनामालये वा
सत्त्वाः सन्ति प्रणयवचसा तान् सुहृत् प्रार्थयेऽहम् ।
मैत्रीपात्रं कुरुत हृदयं धर्म्मबुद्धिं भजध्वम्
धर्म्मादन्यस्तमसि विषमे देहिनां नास्ति दीपः ॥ ५८ ॥

इत्युक्त्वा पादपतले कृतपर्य्यङ्कबन्धनः ।
ऋजुप्रकाशमर्हत्त्वं तत्र साक्षाच्चकार सः ॥ ५९ ॥

ते तमूचुर्भदन्तास्मान् नय शाक्यमुनेः पदम् ।
स्वाख्याते धर्म्मविनये प्रव्रज्यामर्थयामहे ॥ ६० ॥

इति तैरर्थितः सोऽथ चीवरप्रान्तलम्बिनः ।
तानादाय ययौ व्योम्ना महर्द्धिः सङ्घरक्षितः ॥ ६१ ॥

स शास्तुः पदमासाद्य तत्पादनलिनद्वयम् ।
मूर्द्ध्नाभिवन्द्य सानन्दस्तस्मै सर्व्वं न्यवेदयत् ॥ ६२ ॥

भगवान् प्रणयिप्रीत्या मुनीनामथ तद्गिरा ।
मनःप्रसादजननीं चक्रे सद्धर्म्मदेशनाम् ॥ ६३ ॥

ते तत्प्रसादसंजातविमलप्रशमोदयाः ।
सर्व्वक्लेशप्रहाणार्हं पूज्यमर्हत्त्वमाययुः ॥ ६४ ॥

དེ་དག་སོང་ཚེ་སྔོན་པ་ལ། དགེ་འདུན་སྤྲུངས་ཀྱིས་རབ་དྲིས་པ།
བཅོམ་ལྡན་ཀ་བ་རྟིག་སོགས་གཟུགས། མི་དགེ་འབྲས་བུ་མཚུངས་པ་དང་།། 65

ཐག་མཚུངས་སྐལ་མའི་ལྷག་མ་ཡང་། སེམས་ཅན་བདག་གིས་ལམ་དུ་མཐོང་།
སྐྱོངས་པས་བཅིངས་པ་དེ་དག་ནི། དེ་དག་ལས་ནི་ཅི་ཡི་འབྲས།། 66

ཞེས་པ་དེ་ཡིས་གུས་པས་དྲིས། དེ་ལ་ཀུན་མཁྱེན་གྱིས་གསུངས་པ།
དེ་དག་སྔོན་ཚེ་སྔོན་པ་ནི། འོད་སྲུང་ཞེས་པའི་ཉན་ཐོས་གྱུར།། 67

དགེ་འདུན་ཁང་པའི་ཀ་བ་དང་། རྟིག་པ་ལ་རེས་དར་སྣབས་འཐངས།
གཞན་གྱིས་དགེ་འདུན་ལྷོན་པ་ལས། མི་དགེ་དང་ནི་འབྲས་བུ་གླངས།། 68

དགེ་འདུན་ཟས་དང་བདུང་བ་ལ། གཞན་གྱི་སྤྱང་བས་གེགས་དག་བྱས།
གཞན་གྱིས་དགེ་འདུན་རྟེན་པ་ནི། དགེ་སློང་དག་ལ་ཡོངས་བསྒྲུར་བྱས། 69

དེ་དག་ལས་ཀྱི་རྣམ་སྨིན་དེས། རྣམ་པ་དེ་དེ་ཉིད་དུ་གྱུར།
བཅོམ་ལྡན་གྱིས་བཤད་དེ་ཐོས་ནས། དེ་ནི་ཡ་མཚན་ལྡན་པར་གྱུར།། 70

དགྲ་བཅོམ་གནས་བརྟན་དགེ་འདུན་སྤྲུངས། དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་མཐོང་ནས་ནི།
ལས་དེ་རྒྱལ་བ་དག་ལ་དྲིས། དྲིས་པ་དེས་ཀྱང་དེ་ལ་གསུངས།། 71

སྔོན་པ་འོད་སྲུངས་ཞེས་པ་ཡི། བསྟན་པ་པ་ནི་རབ་བྱུང་འདི།
དགེ་འདུན་གཙུག་ལག་ཁང་དུ་སྔོན། ཞལ་ཏ་བྱེད་པ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 72

तेषु यातेषु शास्तारमपृच्छत्सङ्घरक्षितः ।
भगवंस्तम्भकुड्यादिरूपाः पुष्पफलोपमाः ॥ ६५ ॥

रज्ज्वाभास्तन्तुशेषाश्च दृष्टाः सत्त्वा मया पथि ।
तत्तेषां कर्म्मणः कस्य फलं मोहानुवर्त्तिनाम् ॥ ६६ ॥

इति तेनादरात् पृष्टः सर्व्वज्ञस्तमभाषत ।
बभूवुः काश्यपाख्यस्य ते शास्तुः श्रावकाः पुरा ॥ ६७ ॥

स्तम्भकुड्येषु तैः श्लेष्म प्रक्षिप्तं सङ्घमन्दिरे ।
भुक्तानि सङ्घवृक्षेभ्यः फलपुष्पाणि चापरैः ॥ ६८ ॥

भिक्षुभोजनपानेषु द्वेषाद्विघ्नः कृतोऽपरैः ।
सङ्घलाभपरावृत्तिर्भिक्षूणामपरैः कृता ॥ ६९ ॥

ते तत्कर्म्मविपाकेन तत्तदाकारतां गताः ।
इत्याख्यातं भगवता श्रुत्वा सोऽभूत् सविस्मयः ॥ ७० ॥

प्राप्तमर्हत्पदं दृष्ट्वा भिक्षवः सङ्घरक्षितम् ।
जिनं तत्कर्म पप्रच्छुः पृष्टः स च जगाद तान् ॥ ७१ ॥

एष प्रव्रजितः शास्तुः काश्यपाख्यस्य शासने ।
पुरा विहारे सङ्घस्य वैयापृत्यकरोऽभवत् ॥ ७२ ॥

གཙུག་ལག་ཁང་ན་གནས་པ་ནི། ལྔ་བརྒྱ་དེ་ཡིས་གྲོགས་པོར་གྱུར།
ལུས་ཀྱི་མཇུག་ཏུ་སྨོན་ལམ་ནི། དགེ་བའི་སྐད་དུ་དེ་ཡིས་བྱས།། 73

སྐྱེ་བ་འདི་ལ་དགེ་འདུན་སྲུངས། དེ་ཡིས་དགྲ་བཅོམ་ཉིད་ཐོབ་ཅིང་།
དེ་དག་ཐུབ་པ་ལྔ་བརྒྱ་པོ། འདི་དག་དེ་དང་ཡང་དག་འགྲོགས།། 74

ལུས་ཅན་རྣམས་ནི་དམར་དང་དཀར་དང་གནག་དང་ཁྲ་བའི་ལས་སྐུད་ཀྱི།
རྣམ་པར་བཀྲ་བ་སྐྱེ་བའི་གོས་ཀྱིས་ལན་མང་དག་ཏུ་གཡོགས་པར་གྱུར།
ལག་འགྲོ་ཆེན་པོ་ཕྱོགས་དམན་འདོར་བའི་རིགས་པ་དག་གིས་དེ་བཏང་ནས།
གྲངས་མེད་ཚ་བ་མེད་པའི་འབའ་ཞིག་གང་དེར་དགེ་བ་ལྡན་པ་འཇུག།། 75

ཅེས་པ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དེས་གསུངས་པ།
ཐོས་ནས་དགེ་སློང་དེ་དག་གུས་བཅས་པས།
དམ་པའི་སེམས་ལྡན་དེ་ཡིས་སྤྱོད་པ་དག།
ཡིད་ནི་གཞན་དང་བྲལ་བས་རབ་ཏུ་བསྟུགས།། 76

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་དགེ་འདུན་སྲུངས་ཀྱི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་རྩ་བདུན་པའོ།

पञ्च चास्य शतान्यासन् सङ्गतानि विहारिणाम् ।
प्रणिधानं शरीरान्ते कुशलाय चकार सः ॥ ७३ ॥

तेनास्मिन् जन्मनि प्रापदर्हत्त्वं सङ्घरक्षितः ।
तदेतत् सङ्गतञ्चास्य मुनीनां शतपञ्चकम् ॥ ७४ ॥

रक्तैः शुक्लैरसितशबलैर्देहिनां कर्म्मसूत्रैः
चित्राकारं भवति बहुशः प्राकृतं जन्मवस्त्रम् ।
त्यक्ते तस्मिन् जरठभुजगम्लाननिर्म्मोकयुक्त्या
तत् कैवल्यं विशति कुशली यन्न शीतं न चोष्णम् ॥ ७५ ॥

इति तस्य निशम्य सादराः
कथितं तेन तथागतेन ते ।
प्रशशंसुरनन्यमानसाः
चरितं सच्चरितस्य भिक्षवः ॥ ७६ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
सङ्घरक्षितावदानं सप्तषष्टितमः पल्लवः ।

ཡལ་འདབ་དྲུ་བཅུ་རྩ་བརྒྱད་པ།

པདྨ་ལྡན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་ནི།།

པན་དང་མི་ཕན་ལས་རྣམས་དག་ནི་སྔོན་དུ་བསྒྲུབས་གྱུར་པ།
ལོངས་སྤྱོད་དུས་ཀྱིས་ཞིན་དུ་འདས་ཤིང་ཉམས་པར་གྱུར་པ་དག།
རབ་རྒྱས་མི་རྟོག་མཚུངས་པས་དེ་ལ་རྣམས་དག་ལ་བསྒོ་བ་བཞིན།
སྒྲིག་ཆགས་རྣམས་ལ་རང་གི་བག་ཆགས་བཞག་ནས་འགྲོ་བར་འགྱུར།། 1

རྡོ་རྗེ་འི་གདན་ལ་སངས་རྒྱས་བདུད་རྩི་འི་ཟེར།
རྡོ་རྗེ་དིང་འཛིན་བཅིངས་ལས་བཞེངས་པའི་ཚེ།
རབ་འབར་ཡེ་ཤེས་རྒྱས་པ་ལོ་དྲུག་གིས།
ཐོབ་པ་དེ་ལ་དེག་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་ཞུས།། 2

ཁྱོད་ཐལ་མེ་ཡིས་གདུངས་གྱུར་པ། གྲགས་འཛིན་མ་ཡི་དཀྱུ་ནང་དུ།
མངལ་ནི་ཆགས་པར་གྱུར་བ་དག། བཅོམ་ལྡན་ལོ་དྲུག་དག་ནས་བཙས།། 3

ཁྱོད་མཚུངས་བྲིས་པ་སྒྲ་གཅན་འཛིན། ཞེས་པ་དེ་ནི་སྐྱེས་པ་ན།
རྒྱལ་པོ་ཟས་གཙང་ཁྲོས་པ་ཡིས། འདི་ནི་ག་ལས་སྐྱེས་ཞེས་སྨྲས།། 4

ས་བདག་བཀའ་ཡིས་དེ་ཉིད་ནི། གསོད་པའི་སར་ནི་ཁྲིད་གྱུར་པ།
སྤྲིང་ཡིག་གིས་བཞིན་ཁྱོད་ཀྱི་མཐུས། དག་པ་དེ་ནི་རབ་དུ་བསྲུངས།། 5

अथ अष्टषष्टितमपल्लवः ।

पद्मावत्यवदानम् ।

कर्म्माणि पूर्व्वविहितानि हिताहितानि
स्पिष्टानि भोगसमयैरतिवाहितानि ।
गच्छन्ति जन्तुषु लसत्कुसुमोपमानि
लीनन्तिलेष्विव निधाय निजाधिवासम् ॥ १ ॥

वज्रासने वज्रसमाधिबन्धा-
दथोत्थिते बुद्धसुधामयूखे ।
संवत्सरैः षड्भिरवाप्तदीप्त-
ज्ञानोदये भिक्षुगणस्तमूचे ॥ २ ॥

त्वद्वियोगाग्निसन्तप्ता भगवन् कुक्षिकोटरे ।
निलीनं सुषुवे गर्भं षड्भिर्वर्षैर्यशोधरा ॥ ३ ॥

तस्मिन् राहुलकाभिख्ये जाते त्वत्सदृशे शिशौ ।
जातः कुतोऽयमित्याह राजा शुद्धोदनः क्रुधा ॥ ४ ॥

सा वध्यवसुधां नीता शासनेन महीपतेः ।
सती तवैव लेखेन प्रभावेणैव रक्षिता ॥ ५ ॥

དེ་ནས་ཁྲོད་བྱིན་རྡོ་ནང་དུ། དེ་ཡིས་བྱིས་པ་ངེས་པར་བཀོད།
དེ་ཡིས་བདེན་པ་བརྗོད་པ་ཡིས། རྡོ་བ་དེ་ནི་ཆུ་ལ་ལྡིངས།། 6

མི་གཡེམ་དགག་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ཅན། དེ་ལ་གྲོས་པོ་ཁྲོ་བ་སྐྱེས།
སྡུག་བསྔལ་སྐད་ཅིང་གདུང་བ་དེ། ལས་ནི་ཅི་ཡི་རྣམ་སྨིན་ལགས།། 7

ཞེས་པ་དགེ་སློང་ཚིག་ཐོས་ནས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ལན་གསུངས་པ།
ལས་ནི་གང་གིས་གྲགས་འཛིན་མ། སྡུག་བསྔལ་ཐོབ་པ་རབ་ཏུ་ཉོན།། 8

གྲོང་ཁྱེར་ཀམ་པི་ལ་དག་ཏུ། ས་ཡི་བརྒྱ་བྱིན་དཔལ་དང་ལྡན།
འདོད་ལྡན་མ་ཡི་མེ་ཏོག་མཆོག། རྒྱལ་པོ་ཚངས་བྱིན་སློན་བུང་གྱུར།། 9

གཡུལ་དུ་རལ་གྲིའི་རྒྱུན་འཛིན་པའི། དཔུང་པ་ཡིས་ནི་རབ་བསྐྱེས་པས།
གང་གི་གཟི་བྱིན་མེ་དག་ནི། དགྲ་ལ་སྲུན་པ་རབ་སྡེར་འབར།། 10

ནམ་ཞིག་ནགས་སུ་གཞུ་འཛིན་རིས། སློན་གྱི་ཟླ་དགའི་དགེ་མཚན་ལ།
ཤིན་དུ་མགྲོགས་འགྲོ་རྟ་ཡིས་ནི། གཅིག་བུར་བྱས་ཏེ་རིང་དུ་ཞུགས། 11

དེ་ཡི་འགྲམ་ངར་རྟུལ་གྱི་ཐིགས། ཉི་མའི་ཟེར་གྱིས་རབ་བསྐྱེད་པས།
རྣ་རྒྱན་མུ་ཏིག་རྣམས་ཀྱིས་ནི། གཟུགས་བརྙན་དག་དང་མཚུངས་པར་བྱས།། 12

ལམ་ནས་འོང་བའི་རི་དྭགས་ཕྲུག་གུ་དགེ་མཚན་གཡོ་མེད་ཀྱིས།
ཡང་དང་ཡང་དུ་དེ་ལ་དགའ་བར་ཀུན་དུ་ལྟ་བྱེད་ཅིང་།

त्वद्घायामशिलोत्सङ्गे निक्षिप्तेऽथ तया शिशौ ।
तत्सत्ययाचनेनासौ सलिले पुप्लुवे शिला ॥ ६ ॥

साध्वीव्रतपवित्रायास्तस्याः श्वशुरकोपजः ।
दुःखावमानसन्तापः स पाकात् कस्य कर्म्मणः ॥ ७ ॥

इति भिक्षुवचः श्रुत्वा भगवान् प्रत्यभाषत ।
श्रूयतां कर्म्मणा येन दुःखं लेभे यशोधरा ॥ ८ ॥

काम्पिल्ये नगरे राजा ब्रह्मदत्तः पुराभवत् ।
भूतलाखण्डलः श्रीमान् कामिनीकुसुमायुधः ॥ ९ ॥

खड्गधाराधरेणाजौ भुजेन जनितः परः ।
प्रजज्वाल प्रतापाग्नि र्यस्यारातितमःप्रदः ॥ १० ॥

स कदाचिद्वनं धन्वी मृगयाकेलिकौतुकी ।
विवेश दूरमेकाकी हृतोऽश्वेनातिरंहसा ॥ ११ ॥

तस्यार्ककिरणोद्भिन्नाः कपोले स्वेदविन्दवः ।
चक्रुः कुण्डलमुक्तानां प्रतिविम्बविडम्बनम् ॥ १२ ॥

मार्गागतेन स मुहुर्मृगशावकेन
रम्यावलोकनकुतूहलनिश्चलेन ।

དོ་ཤལ་རྩེ་ཡི་རིན་ཆེན་དུམ་བུར་གཟུག་བརྒྱན་སྣང་བྱེད་པས།
སྐད་ཅིག་བདུད་རྩིའི་ཟེར་གྱི་གཟུགས་ཀྱི་གནས་དང་མཚུངས་པར་གྱུར།། 13

རྗེས་སུ་ཆགས་ལྡན་རི་དྭགས་མོ་དང་གླང་མོ་ལ་ཆགས་པའི།
མིག་ཟུམ་རི་དྭགས་གཉིས་འབྱུང་རྣམས་ཀྱིས་རབ་ཏུ་བསྟན་བྱ་བ།
རི་ཁྲོད་མ་ཡི་སྦྲ་ཚོགས་མེ་ཏོག་ལ་རེག་དྲི་བཟང་ཅན།
སྨྲེས་པའི་ནགས་མཐའི་རླུང་གིས་དེ་ཡི་ངལ་བའི་རྩྭ་དག་བསྒྲོགས།། 14

སྐབས་དེར་ཐུབ་པ་ཆེན་པོ་ནི། ཤཱ་རི་ལུ་ཡི་གཞོན་ནུ་མ།
གཅི་བ་འཕྲུངས་པས་མངལ་གྱི་སྒོ། ཐོབ་པ་རི་དྭགས་བུ་མོ་ནི། 15

མཛེས་སྡུག་བདུད་རྩིའི་རྒྱུན་ཞིང་། ཆུ་ནི་ལེན་དུ་འོང་པ་དག།
མིག་རབ་གཡོ་ལྡན་བསྟི་གནས་ཀྱི། ཆུ་ཀླུང་ངོགས་སུ་དེ་ཡིས་མཐོང་།། 16

དཔལ་མོ་པདྨའི་དགའ་ཚལ་ལ། དགའ་བས་བཞིན་དུ་པདྨའི་ཚལ།
ཀང་བཀོད་ལས་སྐྱེས་པདྨ་ཡི། དཀྱིལ་འཁོར་དག་གིས་སྒྲོ་བྱེད་ཅིང་།། 17

སྐྱོན་མེད་དགེ་མཚན་ལྡན་པ་དེ། མཐོང་ནས་མི་ཡི་དབང་པོ་ནི།
སྐད་ཅིག་མིག་ནི་འཛུམ་བྲལ་བས། ལྷ་ཉིད་ཐོབ་པ་བཞིན་དུ་གྱུར།། 18

དེས་བསམས་ཀྱི་མ་མཛེས་མ་འདི། ཐུབ་པའི་བུ་སྲུ་ཞིག་ཡིན།
རི་དྭགས་མོ་བཞིན་རབ་མཛེས་ཤིང་། ཡིད་འོང་ལྟ་བས་ཡིད་འཕྲོག་བྱེད།། 19

हाराग्ररत्नशकलप्रतिबिम्बितेन
प्राप क्षणं सहशरूपपदं सुधांशोः ॥ १३ ॥

तस्यानुरक्तहरिणी-करिणी-प्रसक्त-
व्यामीलितेक्षणमृगद्विपसेव्यमानाः ।
जह्रुः श्रमाम्बु शवरीकवरीकलाप-
पुष्पस्पृशः सुरभिमत्तवनान्तवाताः ॥ १४ ॥

अस्मिन्नवसरे कन्यां शाण्डिल्यस्य महामुनेः ।
प्रस्तावयानसंप्राप्तगर्भ-मुग्धमृगीसुताम् ॥ १५ ॥

सलिलाहरणायातां लावण्यामृतवाहिनीम् ।
स ददर्शाश्रमसरित्तीरे तरललोचनाम् ॥ १६ ॥

कमलां कमलावासप्रीत्येव कमलाकरम् ।
सृजन्ती चरणन्यासजातैः कमलमण्डलैः ॥ १७ ॥

अपूर्व्वकौतुकवतीं तां दृष्ट्वा मनुजेश्वरः ।
अमरत्वमिव प्राप निर्निमेषेक्षणः क्षणम् ॥ १८ ॥

सोऽचिन्तयदहो कापि कान्तेयं मुनिकन्यका ।
हरिणीव हरत्येव स्निग्धमुग्धैर्विलोकितैः ॥ १९ ॥

པད་མ་ཅན་ནི་ཀང་པ་ཉིད་པའི་གཡོག་གི་མཚམས་ལ་ངེས་པར་བསྐོས་གྱུར་ཅིང་།
ཟླ་བ་ཉ་བ་བཞིན་གྱི་མཚན་མ་ཕྲིས་པའི་འབད་ཉིད་རབ་ཏུ་ཐོབ་པར་བྱས།།
སྨྲ་ལེགས་སྨིན་མའི་རྣམ་འཕྲུལ་རང་ཉིད་ཀུན་ལས་རྒྱལ་བར་རབ་ཏུ་རྩོམ་པ་ན།
ངེས་པར་འདོད་པའི་གཞུ་ཡི་འཁྲི་ཤིང་དྲི་མེད་ཡོན་ཏན་མེད་པ་ཉིད་ལ་བརྟེན།། 20

འདི་ཡི་བཞིན་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ཡིད་འོང་བསིལ་ཟེར་ཅན་དག་གིས།
བཀོད་པའི་རི་མོ་འི་རིམ་པས་དབའ་བའི་བདུད་རྩི་རྒྱས་བར་བྱེད།།
མིག་དག་ནུ་བའི་རྩ་བར་ཞེན་དུ་བྱམས་པར་གྱུར་པ་འདི།
ཞུད་པལ་གསར་པ་རོལ་པའི་རྒྱན་གྱིས་མཛེས་པ་རབ་ཏུ་འཛིན།། 21

ཞེས་བསམས་ནས་དེ་ཡིས་དལ་གྱིས་ནི། ཉ་ལས་ཡང་དག་བབས་བྱས་ཏེ།
དགེ་མཚན་བཟླ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་མ། དེ་ལ་བདུད་དེ་རབ་སྨྲས་པ།། 22

ལེགས་བྱས་རྒྱ་ཆེ་མི་དམན་པའི། ལྷ་ཡི་མགྲིན་པར་གཟུང་འོས་མ།
རྣམ་རྒྱལ་ནོར་བུའི་འཕྲེང་བ་བཞིན། ཞུད་པལ་མིག་ཅན་ཁྱོད་ནི་སུ།། 23

ཁྱོད་ཀྱི་མཛེས་སྡུག་དགའ་བ་ཡི། ཚོགས་ནི་རྒྱས་པར་བྱེད་པ་འདིས།
སུ་ཡི་ཡིད་ནི་དགེ་མཚན་ལ། འགུགས་པ་ཉིད་དུ་བྱེད་མ་ཡིན།། 24

སུ་ཡི་རིགས་བརྒྱུད་སྟུ་དོག་གི། འཁྲི་ཤིང་རབ་ཏུ་འཐོབ་པ་དག།
སྟོན་ཟླ་ལྟར་དཀར་ཁྱོད་འཁྲུངས་པས། རྣམ་པར་བརྒྱན་པ་རབ་ཏུ་སྤྲོས།། 25

ཞེས་པ་དེ་ཡིས་གུས་པས་དྲིས། དེ་ནི་ཐུབ་པའི་བུར་ཤེས་ནས།
འདོད་པའི་སྤྱོད་ཚུལ་མི་ཤེས་ཀྱང་། མངོན་པར་འདོད་ལྡན་དེ་ཡིས་སྨྲས།། 26

सेवासीम्नि निवेशिता कमलिनी संवाहने पादयोः
पूर्णेन्दुर्वदनस्य लक्ष्मलिखितं दासत्वमापादितः ।
प्रारब्धे स्वयमेव विश्वविजये भ्रूविभ्रमैः सुभ्रुवः
कामं निर्ममकामकार्मुकलता नैर्गुण्यमालम्बते ॥ २० ॥

किरति वदनबिम्बं हर्षपीयूषमस्या
ललितसितमयूखोल्लेखलेखाक्रमेण ।
इयमतिशयमैत्री नेत्रयोः श्रोत्रमूले
नवकुवलयलीलोत्तुङ्गकान्तिं तनोति ॥ २१ ॥

इति संचिन्त्य स शनैरवरुह्य तुरङ्गमात् ।
तामुवाच समभ्येत्य कौतुकालोकनोन्मुखीम् ॥ २२ ॥

अम्लानसुकृतोदारसुरकण्ठग्रहोचिता ।
विजने मणिमालेव का त्वं कुवलयेक्षणे ॥ २३ ॥

इयमानन्दसन्दोहस्यन्दिनी ललिता तव ।
न कस्य कुरुते कान्तिः कौतुकाकुञ्चितं मनः ॥ २४ ॥

ब्रूहि कस्य त्वया प्रांशुः शरच्चन्द्रावदातया ।
काममुक्तालते वंशः सम्भवेन विभूषितः ॥ २५ ॥

इति तेनादरात् पृष्टा ज्ञात्वा तं मुनिपुत्रकं ।
अज्ञातकामवृत्तापि साभिलाषा जगाद सा ॥ २६ ॥

ཀྱང་ཕས་པད་འཕྲིང་རབ་བསྐྱེད་པས། བདག་ནི་པདྨ་ཅན་ཞེས་བྱ།
རི་དྭགས་མངལ་སྐྱེས་ཐུབ་པ་ནི། ཤྲཱི་ཧ་ལུ་ཡི་བུ་མོ་ཡིན།། 27

ཐུབ་པའི་སྨྲས་ཁྱོད་ལེགས་པར་འོངས། བདག་ནི་ཁྱོད་མཐོང་རབ་ཏུ་དགའ།
ཤིན་ཏུ་ཡིད་འཕྲོག་བཀྲ་བ་ཡི། ཤིང་ཤུན་བརྟུལ་ཞུགས་འདི་ནི་ཅི།། 28

རྨ་བྱའི་གཙུག་ཕུད་ལྕེ་དག་གིས། བརྒྱན་པ་བཞིན་དུ་ཁྱོད་ཀྱི་ནི།
རལ་ཚོགས་འདི་དག་ལྷ་ལས་ཀྱང་། མི་དོག་དག་གིས་རྒྱས་པར་མཛེས།། 29

སླ་ཏྲུ་ར་ནི་རགས་པ་ཡི། འབྲས་བུ་ཁ་བ་རབ་འབར་འདྲ།
བགྲང་འཕྲིང་འཕྲིང་བ་རིང་པོ་ཡིས། ཁྱོད་ཀྱི་མགྲིན་ལ་ཡོན་ཏན་མང་།། 30

འོད་མའི་དབྱུག་པ་འཁྱོག་པོ་འདིར། ཡལ་འདབ་གསར་པའི་འཕྲིང་བ་ལ།
ཁྱོད་ཀྱི་ལག་པ་ཀུ་ཤ་ཡིས། དག་བྱེད་བཀྲ་བས་ཀུན་ཏུ་སྨྲས།། 31

ལེགས་པ་བདག་ཡིད་རི་དྭགས་ནི། གང་དུ་ངལ་ནི་བསོས་གྱུར་པ།
དགའ་བར་རྨ་བྱའི་བརྟུལ་ཞུགས་ཅན། ཁྱོད་གནས་གང་ན་ཡོད་པ་སྨྲོས།། 32

ཞེས་པ་བཞིན་བཟང་མ་ཡི་ཚིག། སྙན་ཞིང་བདུད་རྩིས་བརླན་པ་དག།
ས་བདག་གིས་སྙིང་ལམ་བརྒྱུགས་ཀྱི། ལ་དུ་བྱིན་ནས་དེ་ལ་སྨྲས།། 33

སྨིན་ལེགས་ཁྱོད་ལུས་ཤིན་ཏུ་གཞོན། ཤིང་དང་རྩ་ནི་བསྐམས་གྱུར་ཅིང་།
ཀུ་ཤའི་ཁབ་ཀྱི་ཚོགས་གདམས་པའི། ནགས་ཚལ་འདིར་ནི་འོས་པ་མིན།། 34

अहं पद्मावती नाम पादोद्यत्पद्ममालिका ।
मृगीगर्भसमुद्भूता शाण्डिल्यस्य सुता मुनेः ॥ २७ ॥

स्वागतन्ते मुनिसुत प्रियं मे तव दर्शनम् ।
मनोहरतरं चित्रं वल्कलं किमिदं व्रतम् ॥ २८ ॥

विभूषितोऽयं मायूरैः शिखण्डैरिव पञ्चभिः ।
सुरार्चाकीर्णकुसुमः शोभते ते जटाभरः ॥ २९ ॥

अयमामलकस्थूल-प्रालेयफलकोज्ज्वलः ।
दीर्घाक्षसूत्रमालाभिः कण्ठे बहुगुणस्तव ॥ ३० ॥

आस्तृणयति ते पाणिस्त्रित्रैः कुशपवित्रकैः ।
कुटिले वेणुदण्डेऽस्मिन् बालपल्लवमालिकाम् ॥ ३१ ॥

रमणीयव्रतवतः कथ्यतां क तवाश्रमः ।
मनो मृगाजिनं श्रान्तं तत्र विश्रान्तिमेति मे ॥ ३२ ॥

इति मुग्धावचः स्वादु सुधार्द्रं वसुधाधिपः ।
आस्वाद्य दत्त्वा पाथेयमोदकं तामभाषत ॥ ३३ ॥

नैवास्मिन्नुचितं सुभ्रु दर्भसूचीचयाचिते ।
सुकुमारन्तव वपुः शुष्यत्तरुतृणे वने ॥ ३४ ॥

འདི་ནས་ཧ་ཅང་མི་རིང་ན། བདག་གནས་ལོངས་སྤྱོད་འོས་པའི་དཔལ།
གང་ན་རྣམ་པ་འདི་ལྟ་ཡིས། འབྲས་བུ་བརྒྱུད་པ་གྲུས་པ་ཡོད།། 35

དེར་ནི་རྣམ་པར་གནས་པར་མཐོང་། ཡིད་སྐྱབས་དག་གི་དཀའ་ཐུབ་མཐོང་།
སྐྱེ་བོ་མཆོག་ནི་ལོངས་སྤྱོད་ཀྱིས། རིམ་གྲོ་དག་ལ་རྣམ་པར་སྤྱོད།། 36

མིག་གསུམ་རབ་ཏུ་ཁྲོས་ཚེ་མེ་ཡི་ལམ་དུ་ཕྲེ་མ་ལྷབ་ཉིད་གྱུར་ལྡན་པ།
སྨྲིག་ནི་རབ་ཏུ་རྫོགས་པ་བྱེད་པོས་གསར་དུ་སྤྲུལ་པ་འདི་ཉིད་ཡིན་བསམ་སྟེ།
ཁྱོད་ཀྱི་ལུས་མཛེས་ནོར་འཛིན་བདུད་རྩིའི་ཟེར་གྱི་ཆ་ཡི་མཐོང་ཀྱི་རྗེས་མཐུན་པ།
ཡིད་ལས་སྐྱེས་པའི་མཛེས་སྡུག་མཚུངས་མེད་དང་པོ་དེ་ནི་འདི་ཉིད་གཞན་མ་
ཡིན།། 37

ཞེས་པ་སྐ་བདག་མཛངས་པའི་ཚིག། བཞིན་བཟང་མ་ཡིས་ཐོས་ནས་ནི།
ལ་དུ་རླབ་ལྟར་དཀར་བ། མྱངས་ནས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།། 38

ཁྱོད་ཀྱི་བརྟུལ་ཞུགས་རྗེས་སྤྱོད་པ། ཁྱོད་ཀྱི་གནས་སུ་བདག་གནས་བགྱི།
ཇི་སྲིད་སོང་ནས་བླ་མའི་བཀའ། དོན་དུ་གཅེར་ལ་སྐད་ཅིག་སྟོད།། 39

ཅེས་པའི་གྲོས་ནི་བསྐྱབས་ནས་དེ། རང་གི་བསྟི་གནས་དག་ཏུ་སོང་།
མངོན་འདོད་གསར་པས་དབང་བྲལ་བས། ཤུགས་ནི་འཇིན་ཅིང་ཐུབ་ལ་སྨྲས།། 40

ཡབ་ལགས་བདག་གིས་ཐུབ་པ་ཡི། གཞོན་ནུ་སུ་ཞིག་ནགས་སུ་མཐོང་།
ཤིང་ཤུན་མཐའ་ནི་བགྲབ་དག། རབ་ཏུ་དང་བའི་རྩ་ལྟར་མཛེས།། 41

इतः संभोगयोग्यश्रीर्नातिदूरे ममाश्रमः।
एवंविधा विशीर्यन्ते यस्मिन् फलपरम्पराः॥ ३५॥

निवासः क्रियतां तत्र चर्यतां मान्मथं तपः।
संभोगपरिचर्यासु जनोऽयं विनियुज्यताम्॥ ३६॥

अग्न्युत्सङ्गपतङ्गतां गतवतस्त्र्यक्षप्रकोपक्षणे
जीवोत्पादनमेतदेव विधिना मन्ये नवं निर्म्मितम्।
कान्तं ते वसुधासुधाकरकलाकोशानुकारं वपुः
लावण्यावनिपुण्यपण्यमसमं नान्यन्मनोजन्मनः॥ ३७॥

इति श्रुत्वा विदग्धस्य मुग्धा भूमिपतेर्वचः।
चन्द्रावदातमास्वाद्य मोदकं तमभाषत॥ ३८॥

त्वद्व्रतानुव्रतैवाहं निवसामि तवाश्रमे।
प्रतीक्षस्व क्षणं यावत्त्वाज्ञामर्थये गुरोः॥ ३९॥

इति संविदमाधाय सा गत्वा निजमाश्रमम्।
नवाभिलाषविवशा श्वसन्ती मुनिमभ्यधात्॥ ४०॥

दृष्टस्तात वने कोऽपि मया मुनिकुमारकः।
प्रसन्नसलिलच्छायचित्रपर्य्यन्तवल्कलः॥ ४१॥

གང་གི་འབྲས་བུ་གཞན་གྱི་ཚོགས། བསྔོས་པར་ཡོངས་སུ་རྫོགས་བྱེད་པ།
དེ་ཡི་གནས་སུ་རབ་འབྱུངས་པའི། འབྲས་བུ་མཆོག་ནི་བདག་གིས་སྤྱོང་། ༎ 42

དེ་ཡི་དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་དུ། ཁྱོད་ཀྱི་རྗེས་གཤུང་བདག་མཆིའོ།
དེ་ཡི་གཞུང་བཟང་ལ་ཆགས་པའི། བདག་བློ་གཞན་ན་དགའ་བ་མེད། ༎ 43

ཅེས་པ་དེ་ཚིག་འདོད་པ་ནི། གསལ་བྱེད་ཐོས་ནས་ཨ་མཚན་ཞིང་།
ལང་ཚོ་སྨིན་པར་རྟོགས་པ་ཡི། ཐུབ་པས་མཛེས་མ་དེ་ལ་སྨྲས། ༎ 44

ཁྱོད་ཀྱིས་མཐོང་དེ་ལག་འགྲོ་ནི། རིན་ཅན་གྱིས་བརྒྱན་ཡིན་ནས་སྐམ།
བུ་མོ་ཐུབ་པ་རྣམ་དག་ནི། ཡོངས་སྤྱོད་ཅན་མིན་ལྷ་གཉིས་མིན། ༎ 45

ཡུལ་བཞིན་ཡོངས་སུ་གྱུར་ཚེ་སྡུག་བསྔལ་རབ་སྟེར་སྒྲུམ་བཅས་ལྷི་བའི་ལ་དུ་ནི།
ཞིན་དུ་དངར་བ་དག་གིས་འོངས་པ་ལ་ནི་དོན་མེད་དགའ་བར་ཡོངས་མ་བྱེད། ༎
མཛེས་མ་འདོད་པའི་འབྲས་བུར་རོ་ལྡན་ཉོན་མོངས་དག་གིས་བྲན་པ་གང་དེ་
རྣམས།
ཞིན་དུ་ངེས་པར་དུག་དང་མཚུངས་པའི་ཉམས་སུ་སྤྱོང་བ་བསྐྱེད་པས་རྒྱལ་བར་
བྱེད། ༎ 46

རྩར་ཤོག་རི་ཞིག་ཐུབ་པའི་སྨྲས། དེ་སུ་རིང་ནས་བདག་ལ་སྟོན།
ཅེས་བརྗོད་སྐྱང་གི་ངོགས་སུ་ནི། དེ་དང་ལྷན་ཅིག་ཐུབ་པ་སོང་། ༎ 47

དེ་ཡི་ཆུ་སྐྱང་ངོགས་སུ་ནི། ས་ཡི་བདག་པོ་ཚངས་བྱིན་མཐོང་།
ཡོན་དན་ཚོགས་ནི་རྒྱ་ཆེ་སྟེ། མགུ་པ་དག་དུ་འོས་པར་བསམས། ༎ 48

दिव्यं तदाश्रमोद्भूतं फलमास्वादितं मया ।
येनान्यफलसम्भारे नियमः परिकल्पितः ॥ ४२ ॥

गच्छामि त्वदनुज्ञाता कान्तं तस्य तपोवनम् ।
तत्सौजन्यप्रसक्ता मे नान्यत्र रमते मतिः ॥ ४३ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मितः स्मरसूचकम् ।
तामुवाच मुनिर्मुग्धां यौवनोन्मादशङ्कितः ॥ ४४ ॥

दृष्टस्त्वया भुजङ्गोऽसौ मन्ये रत्नविभूषितः ।
भवन्ति मुनयः पुत्रि न द्विजिह्वा न भोगिनः ॥ ४५ ॥

सक्लेदैर्गुरुभिः परं परिणतौ दुःखप्रदैर्मोदकै
रापाते विषयै रिवातिमधुरैः प्रीतिं वृथा माकृथाः ।
मुग्धे कामकलानिभानि सरसान्यायाससिक्तान्यलं
येषामेव विषोपमेन जनता स्वादेन संमूर्च्छति ॥ ४६ ॥

एहि दर्शय मे दूरात् कस्तावत्स मुनेः सुतः ।
इत्युक्त्वा तटिनीतीरं तया सह ययौ मुनिः ॥ ४७ ॥

स विलोक्य सरित्तीरे ब्रह्मदत्तं महीपतिम् ।
योग्यं गुणगणोदारं जामातरममन्यत ॥ ४८ ॥

མི་བདག་གྲིས་ཀྱང་ཐུབ་པ་ནི། མཐོང་ནས་སྐྱེངས་པས་བཞིན་དུད་ཅིང་།
གཉིས་འགྱུར་རབ་ཏུ་བདུད་པ་ཡིས། ངེས་པར་རབ་ཏུ་དང་བ་ཐོབ།། 49

ཐུབ་པས་རང་ལ་འོས་པ་ཡི། ཚིག་ཡིས་ནི་རབ་ཏུ་བྱིན།
དེ་ནས་རབ་དགའ་བདུད་རྩི་ཡི། རླབས་དེ་མི་ཡི་བདག་པོས་བླངས།། 50

ནམ་ཡང་ཁྱོད་ཀྱི་ཚིག་གཞན་གྱིས། འདི་ལ་ཁྲོ་བར་མི་བྱ་ཞིང་།
མཛེས་མ་འདི་ནི་བསྲུང་བྱ་ཞེས། བརྗོད་ནས་ཐུབ་པ་རང་གནས་སོང་།། 51

དེ་ནས་དགའ་བཞིན་ཉ་ལ་ཞོན། ཆུང་མ་དང་འགྲོགས་སྐད་ཅིག་གིས།
རྒྱལ་སར་ཡང་དག་ཕྱིན་ནས་ནི། རྒྱལ་པོས་དགའ་སྟོན་ཆེན་པོ་བྱས།། 52

ཕོ་བྲང་འཁོར་གྱི་སྐྱེ་ཀུན་གྱི། གཙུག་ཏུ་ས་བདག་གིས་བཀོད་དེ།
སྒྱུ་རྩལ་མཁས་པའི་རྩེད་འཛོ་ལ། བདག་པོའི་སློབ་མ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 53

དེ་ཡི་རྐང་པ་བཀོད་པས་ས་གཞི་པདྨས་བརྒྱན་པ་མཐོང་གྱུར་ནས།
དེར་ནི་རྒྱལ་པོའི་འཁོར་གྱི་ལྷ་མོའི་སྐྲ་དག་ཇི་བཞིན་དོན་ཅན་བཟུང་།
བསོད་ནམས་ལྡན་པའི་མཆོག་ཏུ་ཁྱད་འཕགས་ལེགས་བྱས་གྲགས་ནི་རྫོགས་
གྱུར་པ།
ངོ་མཚར་རྒྱས་པ་ཕུལ་བྱུང་རང་བཞིན་མཚན་ཉིད་རྣམས་ཀྱིས་གསལ་བར་བྱེད།། 54

ཕོ་བྲང་འཁོར་གྱི་བུད་མེད་ལས། ཕྱི་རོལ་ཕྱོགས་པའི་ས་བདག་དང་།
རྩེ་ཞིང་ཉ་རྒྱས་ལྡན་པ་དེས། སྐལ་པ་བཟང་ཞིང་མཛེས་པ་ཐོབ།། 55

नृपोऽपि मुनिमालोक्य वैलक्ष्यविनताननः ।
द्विगुणेन प्रणामेन निनायैव प्रसन्नताम् ॥ ४९ ॥

निजोचितेन विधिना मुनिना प्रतिपादिताम् ।
ततस्तां हर्षपीयूषलहरीमग्नहीन्नृपः ॥ ५० ॥

नास्याः कदाचित्कर्त्तव्यो मन्युः परगिरा त्वया ।
मुग्धा पाल्येयमित्युक्त्वा मुनिः प्रायात् स्वमाश्रमम् ॥ ५१ ॥

अथ हर्षमिवारुह्य हयं जायासखः क्षणात् ।
राजधानीं समासाद्य नृपश्चक्रे महोत्सवम् ॥ ५२ ॥

सर्व्वान्तःपुरवर्गस्य मूर्द्ध्नि न्यस्ता महीभुजा ।
सा ययौ शिष्यतां पत्युः कलाकौशलकेलिषु ॥ ५३ ॥

पादन्यासैः कमलकलिकां भूमिमालोक्य तस्या
देवीशब्दं नृपपरिजन स्तत्र मेने यथार्थम् ।
दिव्योत्कर्षः सुकृतसचिवः सूच्यते केतुभूतैः
स्फीताश्चर्य्यै रतिशयमयैर्लक्षणैः पुण्यभाजाम् ॥ ५४ ॥

अन्तःपुरपुरन्ध्रीषु विमुखेन महीभुजा ।
लेभे सौभाग्यशोभां सा रममाणा घनस्तनी ॥ ५५ ॥

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་ནོར་འཛིན་གྱི། བདག་ལས་དེ་ཡིས་མངལ་བཟུང་ཞིང་།
ཕོ་བྲང་བཙུན་མོ་འི་སྐྱེ་བོ་ཡིས། བསམ་པས་ཆགས་པའི་རྟག་ཏུ་ཡང་།། 56

དེ་ནས་ཁྱིམ་དུ་མཛེས་མ་ནི། བཙར་ཀྱི་དེ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ།
གྲ་གྲུ་གདུག་པའི་ཕྲག་དོག་ལས། རྒྱལ་པོ་འི་བཙུན་མ་རྣམས་ཀྱིས་སྨས།། 57

མི་བདག་ལ་འོས་བཙའ་བ་ཡིས། ཚིག་སྨོངས་མ་ཁྱོད་མི་ཤེས།
མ་ཡི་མིག་ནི་གོས་དག་གིས། བསྒྲིབས་ལ་བུ་ནི་བཙའ་བར་བྱ།། 58

ཞེས་པ་བཙུན་མོ་གཞན་གྱིས་སྨས། མངལ་གྲུས་ཁུར་གྱིས་གཟིར་བ་དེས།
ཁྱོད་ཀྱིས་བདག་ལ་འོས་པ་ནི། མཛོད་ཅེས་དེ་དག་རྣམས་ལ་སྨས།། 59

དེ་ནས་དེ་དག་རྣམས་ཀྱིས་མིག། རས་ཀྱི་དམ་དུ་བཅིངས་པས་བཀག།
བཙོམ་གསེར་གྱི་འོད་ལྡན་པའི། ཁྱིམ་པ་ཟུང་ནི་དེ་ལ་བཙས། 60

གཞོན་ནུ་དེ་དག་སྒྲོམ་བུར་བཅུག། གོས་ཀྱིས་དཀྲིས་ཤིང་རྒྱ་བདབ་ནས།
བུད་མེད་སྙིང་རྗེ་མེད་རྣམས་ཀྱིས། གང་གཱའི་ཆུ་ལ་གསང་སྟེ་འཕངས།། 61

པདྨ་ཅན་གདོང་ཁྲག་གིས་ནི། བསྒྲོས་ཏེ་དེ་དག་གིས་སྨས་པ།
ཁྱོད་ལ་དུས་བུ་གཡོ་མེད་གཉིས། བཙས་པ་དག་ནི་ཆུ་ལ་འཕངས།། 62

དགའ་སྟོན་རྒྱ་ཆེ་ཆས་བརྩམ་ཅིང་། བུ་ནི་བལྟ་བར་འདོད་པ་ཡིས།
ས་ཡི་བདག་པོས་ཅི་སྐྱེས་ཞེས། ཕོ་བྲང་འཁོར་པ་རྣམས་ལ་དྲིས།། 63

अथ कालेन सा गर्भ माधत्त वसुधापतेः ।
चिन्ताशल्यञ्च संसक्तमन्तःपुरवधूजनः ॥ ५६ ॥

आसन्नप्रसवां मुग्धां ततस्तामेत्य मन्दिरे ।
कौटिल्यक्रूरमात्सर्य्यादूचे राजाङ्गनाजनः ॥ ५७ ॥

प्रसवस्य विधिं मुग्धे न जानीषे न्टपोचितम् ।
जननी हि सुतं सूते पट्टेन पिहितेक्षणा ॥ ५८ ॥

इत्युक्ता सा सपत्नीभिः प्रौढ़गर्भभरार्दिता ।
उचितं भवतीभिर्मे क्रियतामित्युवाच ताः ॥ ५९ ॥

ततस्ताभिर्निरुद्धाक्षी दृढ़बन्धेन वाससा ।
साऽसूत बालयुगलं प्रतप्तकनकप्रभम् ॥ ६० ॥

धृत्वा तौ वस्त्रपिहिते मञ्जूषे गूढ़मुद्रिते ।
गङ्गाजले निष्करुणाः कुमारौ चिक्षिपुः स्त्रियः ॥ ६१ ॥

कृत्वा रक्ताक्तवदनामूचुः पद्मावतीञ्च ताः ।
शकलद्वयमस्पन्दं जातन्ते क्षिप्तमम्भसि ॥ ६२ ॥

विपुलोत्सवसन्नद्धः किं जातमिति भूपतिः ।
अपृच्छदान्तःपुरिकान् पुत्रसन्दर्शनोत्सुकः ॥ ६३ ॥

དེ་ལ་དེ་དག་གིས་སྨྲས་ལྷ། སུས་ནི་ཁྱོད་དང་མཚུངས་པ་གཉིས།
ཡང་དག་འཁྲུངས་པ་ལྷ་སོགས་ཟེས། ཤ་ཟ་མོ་ཉིད་ཅི་ཞིག་བརྗོད།། 64

འདི་གྲོས་མི་བདག་སྨྲ་པ་ཡིས། ཕོ་བྲང་འཁོར་གྱི་ཁང་པར་སོང་།
ལྷ་མོ་བཞིན་རས་ཁྲག་གིས་ནི། སྦགས་པ་མཐོང་ནས་བདེན་པར་བསམས།། 65

ས་བདག་རབ་ཏུ་ཁྲོས་པ་ཡིས། དེ་ནི་གསད་སྐད་ཕྱི་རོལ་བཏང་།
ཚུན་མའི་སྔོན་དུ་ངོགས་པ་ཡིས། བློན་པོ་མཆོག་གིས་སྨྲས་དེ་བཟུང་།། 66

དེ་ནས་མཁའ་ལ་ཤུར་ཊ་ལུའི། བསྟི་གནས་ལྷ་མོ་མངོན་ཕྱོགས་དེ།
མི་སྣང་བར་ནི་སྐྱེ་བོ་ཡི། མདུན་དུ་འགྲོ་བའི་བདག་ལ་སྨྲས།། 67

ཁྱོད་དབང་བུད་མེད་སྐྱོན་མེད་ནི། གསད་སྐད་གཏོང་བ་ཁྱོད་ཉིད་ཀྱིས།
རྣམ་པར་མ་དཔྱད་བག་མེད་ཀྱིས། གྲགས་པ་ཟད་ནས་ཕྱུང་ངམ་སྙམ།། 68

ནགས་ཀྱི་རི་དྭགས་བུ་མོ་སྨྲོངས། པདྨ་ཅན་ནི་ཚུན་མ་ཡིས།
རང་ཉིད་བདེ་སྐྱིད་བསླུས་པ་འདི། ས་བདག་ཁྱོད་ཀྱིས་ཡོངས་མ་ཤེས།། 69

འཁྱེར་པའི་ཤ་ཟ་དྲག་པོ་ཡིས། རྟག་ཏུ་བྱིན་བརླབས་སེམས་ལྡན་ལ།
ཐལ་ཆེར་རྣམ་པ་འདི་ལྟ་ཡི། བློ་གྲོས་སྨྲོན་པ་འབྱུང་བར་འགྱུར།། 70

ཛེ་བོ་ཡོངས་སྤྱོད་ཀྱིས་ལོང་རང་བཞིན་གྱིས་སྨྲོད་དཔལ་གྱི་རྣམ་འཕྲུལ་ལྡན་ཞིང་
འཕུར།

ན་ཆུང་བདེན་པ་ཉམས་པའི་ས་གཞི་བསོད་ནམས་མངོན་པར་འཛོམས་པའི་ཕྲ་བ་
ཅན།

ते तं बभाषिरे देव सदृशन्ते सुतद्वयम् ।
सञ्जातं भक्षितं देव्या पिशाच्येव किमुच्यते ॥ ६४ ॥

त्रस्तः श्रुत्वेति नृपतिर्गत्वान्तःपुरमन्दिरम् ।
रक्ताक्तवदनां देवीं दृष्ट्वा सत्यममन्यत ॥ ६५ ॥

बधाय वह्निरुत्सृष्टा सा क्रुद्धेन महीभुजा ।
गुप्तं धृता मन्त्रिवरैः सपत्नीदोषशङ्किभिः ॥ ६६ ॥

अथ व्योम्ना समभ्येत्य शाण्डिल्याश्रमदेवता ।
अन्तर्हिता जनस्याग्रे जगाद जगतीपतिम् ॥ ६७ ॥

निर्दोषां दुर्दशां यातां बधायोत्सृजतस्तव ।
निर्विचारप्रवादेन मन्ये निर्मूलितं यशः ॥ ६८ ॥

पद्मावती सपत्नीभिर्मुग्धा वनमृगीसुता ।
वञ्चिता स्वसुखायेति न जानीषे विशांपते ॥ ६९ ॥

विभवोग्रपिशाचेन नित्याधिष्ठितचेतसाम् ।
एवंविधैव प्रायेण भवत्युन्मादिनी मतिः ॥ ७० ॥

भोगान्धाः प्रभवः स्वभावचपलाः श्रीविभ्रमोच्छृङ्खलाः
सत्यव्यत्ययभूमयो युवतयः पुण्याभिचारक्रियाः ।

ཕྲ་མ་ལྡན་པ་རང་འདུན་མེད་བྱུང་སྙི་བྱེད་མཁའ་ལ་རི་མའི་ལས་སྦྱོར་རྣམས།
གང་དུ་ངེས་པར་རྣམ་པར་གནས་པ་དེར་ནི་དྲན་པ་དྲང་པོ་ཛེ་ལྟར་འཚོ།། 71

ལྷ་མོ་ལུས་ནི་མི་སྣང་བའི། ཚིག་དེ་ཐོས་ནས་ས་བདག་ནི།
ཁྲིམས་པས་དེ་ཡི་བྱུང་ཚུལ་དག། བཙུན་མོའི་ཚོགས་ལ་རབ་ཏུ་དྲིས།། 72

ཁྲོ་བས་ནོན་པ་མི་བདག་གི། བཀའ་ནི་དྲག་པོས་དོགས་གྱུར་པ།
དེ་དག་གིས་ནི་བྱུང་ཚུལ་བཞིན། བཤད་ནས་འཛིགས་པས་འཁྲུགས་པར་གྱུར།། 73

ཚུར་མས་བསྐུས་པའི་བཙུན་མོ་ནི། གསོད་སར་རབ་ཏུ་བཏང་བ་དག།
སྐྱོན་མེད་ཤེས་ནས་མི་ཡི་བདག། འགྱོད་པས་གཟིར་བས་མྱ་ངན་བྱས།། 74

མཚུངས་པར་སྤོབས་རྒྱས་ཆགས་དང་ཁྲོ། བརྩེ་བས་ངོ་ཚ་མྱ་ངན་དང་།
རྨོངས་པའི་གྲོགས་ཀྱིས་ཡང་ཡང་དུ། དེ་ནི་བསྐལ་པར་བྱས་བཞིན་གྱུར།། 75

ཀྱི་ཧུད་དགའ་མ་ཁྲོད་དང་ནི། ཕྱི་ནས་བསོད་ནམས་དམན་པ་དག།
གང་དུ་འགྲོགས་པ་ཞེས་བརྗོད་ནས། མི་བདག་ས་ལ་འགྱེལ་བར་གྱུར།། 76

དེ་ནས་གང་གཞི་རྒྱུན་ཐོབ་པ། སློམ་བུ་རྒྱལ་པོའི་རྟགས་མཚན་ཅན།
ཉ་བ་རྒྱ་ཡིས་འཚོ་རྣམས་ཀྱིས། བཟུང་ནས་མདུན་སར་ཡང་དག་འོངས།། 77

དེ་དག་གིས་དེ་མདུན་བཀོད་ཅིང་། འཕྲལ་ལ་མི་བདག་གིས་ཕྱེ་ཚོ།
པདྨ་གསར་པའི་འོད་ལྡན་པའི། བྲིས་པ་ལྷུང་ཞིག་མཐོང་བར་གྱུར།། 78

स्वच्छन्दाद्भुतवादिनश्च पिशुनाः खे चित्रकर्म्मोद्यता
यत्रैकत्र वसन्ति तत्र सरलः साधुः कथं जीवति ॥ ७१ ॥

अन्तर्हिततनोर्देव्याः श्रुत्वेति वचनं नृपः ।
कुपितस्तत्र वृत्तान्तं पप्रच्छान्तःपुरांगनाः ॥ ७२ ॥

क्रोधाक्रान्तस्य नृपतेस्तीव्रशासनशङ्किताः ।
ता निवेद्य यथावृत्तं बभूवुर्भयविह्वलाः ॥ ७३ ॥

निर्दोषां दयितां ज्ञात्वा सपत्नीवञ्चितां नृपः ।
वध्यभूमिसमुत्सृष्टां शुशोचानुशयाकुलः ॥ ७४ ॥

राग-क्रोध-कृपा-लज्जा-शोकैस्तुल्यबलोदयैः ।
मुमोह मोहसचिवैर्भागीकृत इवाभवत् ॥ ७५ ॥

हा प्रिये हीनपुण्यस्य क्व पुनः सङ्गमस्त्वया ।
ममेत्युक्त्वा नरपति र्निपपात महीतले ॥ ७६ ॥

अथ गङ्गाप्रवाहात्तं मञ्जूषं जालजीविनः ।
आदाय राजमुद्राङ्क माययुर्धीवराः सभां ॥ ७७ ॥

तैर्न्यस्ते पुरतस्तस्मिन् सहसोद्घाटिते नृपः ।
ददर्श बालयुगलं प्रत्यग्रकनकोज्ज्वलम् ॥ ७८ ॥

འོད་སྟོང་པ་ཡི་བྲ་སྐར་བཞིན། གཞོན་ནུ་འདི་དག་མི་བདག་གི།
གཟུགས་མཚུངས་མཚན་ཉིད་རྒྱ་ཆེ་བར། སྐྱེས་ཞེས་སྐྱེ་བོས་རབ་ཏུ་བསྒྲགས།། 79

དེ་ནས་ས་བདག་མཆི་མ་དང་། བཅས་པས་སྨྲས་དག་པང་དུ་བླངས།
དགའ་མ་དང་བྲལ་མྱ་ངན་གྱིས། གཟིར་བའི་བདུང་པ་ལྷག་པར་གྱུར།། 80

དེ་ནས་བློ་གྲོས་རིང་ཞེས་པའི། བློན་པོ་ཆེན་པོས་དེ་ལ་སྨྲས།
ལྷ་གཅིག་ཁྱོད་ཀྱི་བཙུན་མོ་ནི། རྒྱན་མའི་ཚོགས་ཀྱིས་བསྐྱུས་པའི་འཚོ།། 81

དེ་ཐོས་འཕྲུལ་ལ་རྒྱལ་པོ་ནི། འཚོ་བ་ཐོབ་པ་བཞིན་དུ་ལངས།
དགའ་བས་སྔོན་ཞེས་བརྗོད་ནས་ནི། བློན་པོ་འི་ཁང་པར་རབ་ཏུ་སོང་།། 82

དེར་ནི་སྡུག་བསྔལ་ལྡན་པ་དེ། ཁྲོ་བས་གསུས་པ་བརྗེད་གྱུར་ཅིང་།
སྨད་པས་ཀུན་ཏུ་ཡིད་བྱུང་མ། མཐོང་ནས་འགྲོ་བའི་བདག་གིས་སྨྲས།། 83

གང་གི་མི་བཟད་ལྷག་མ་ནི། དགའ་མ་ཁྲོད་ལ་རྣམ་སྤྲུལ་བ།
ཚུར་ཤོག་ད་ནི་དེ་དག་རྣམས། གསོད་པའི་སྡུག་བསྔལ་དཀའ་ལ་ལྟོས།། 84

གདུང་བ་ཐོང་ལ་དང་བར་མཛོད། མི་སྨྲ་མངོན་དུ་ཕྱོགས་མ་བྱེད།
ཅེས་བརྗོད་དེ་ཡི་ཀང་པ་ལ། ས་ཡི་བདག་པོ་རྣམ་པར་འཁྱིལ།། 85

ནུ་མ་རྒྱས་པ་མཆི་མ་ཡི། རྒྱན་གྱི་བྲན་བྱེད་རེས་སྨྲས་པ།
སྐྱེ་བོ་མི་བཟད་གནོད་བྱེད་ལ། མི་དབང་ཁྲོ་བ་ཡོངས་མ་མཛད།། 86

तुल्यरूपौ नृपस्येमौ सहस्रांशोरिवाश्विनौ ।
कुमारौ लक्षणोदारौ जाताविति जनस्वनः ॥ ७९ ॥

ततः सवाष्पस्तनयौ गृहीत्वाङ्के महीपतिः ।
प्रियाविरहशोकार्त्तः सन्तापमधिकं ययौ ॥ ८० ॥

अथ दीर्घमतिं नाम महामात्यस्तमब्रवीत् ।
देव जीवति ते पत्नी सपत्नीजनवञ्चिता ॥ ८१ ॥

श्रुत्वैतत्सहसा राजा लब्धजीव इवोत्थितः ।
हृष्टः सन्दर्शयेत्युक्त्वा प्रययौ मन्त्रिमन्दिरम् ॥ ८२ ॥

तत्र तां दुःस्थितां दृष्ट्वा मन्युविस्मृतसम्भ्रमाम् ।
अवमानसमुद्विग्नां जगाद जगतीपतिः ॥ ८३ ॥

यैरेष विषमः क्लेशः प्रिये तव विनिर्म्मितः ।
एहि पश्याधुना तेषां विचित्रवधवैशसम् ॥ ८४ ॥

प्रसीद त्यज सन्तापं मा मौनाभिमुखीभव ।
इत्युक्त्वा निपपातास्याः पादयोः पृथिवीपतिः ॥ ८५ ॥

सावद्बाष्पधाराभिः सिच्यमानोन्नतस्तनी ।
नरेन्द्र मा कृथाः कोपं जने तीव्रापकारिणि ॥ ८६ ॥

མི་གདག་བདེན་པར་དགའ་དང་བྲལ་བར་བྱེད་པ་རྣམས་ལ་བདག་ནི་ཁྲོ་ཡོད་མིན།
ངེས་པར་བཟོད་པས་དགྲ་ནི་ཉེ་བར་ཞི་འགྱུར་ཁྲོ་གྱི་དེ་ཉིད་འཕེལ་བར་འགྱུར།
གནོད་པ་བསྒྲུབ་ལ་དགྲ་ནི་ཁྲབ་བདག་མ་ཡིན་ངེས་པར་གྲོགས་ནི་ཕན་ལ་མིན།
ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་བདེ་དང་སྡུག་བསྔལ་འདི་དག་ཐམས་ཅད་སྔོན་གྱི་ལས་ཀྱིས་སྤྲུལ།། 87

གནོད་པ་བྱེད་པ་ལ་ཡང་གནོད་པའི་སྦྱོར་བ་དག།
མ་དཔྱད་པར་ནི་བློ་གྲོས་ལྡན་པས་མི་བྱ་སྟེ།
ཁྲོ་བས་མཆོག་ཏུ་ཁྲོ་བའི་དགྲ་ནི་འཕེལ་བར་འགྱུར།
མེ་ཉིད་མནན་པས་མེ་ནི་ཞི་བར་མི་འགྱུར་རོ།། 88

རེ་ཞིག་སྡུག་བསྔལ་གྱིས་གདུངས་བདག། ཡབ་ཀྱི་དཀའ་ཐུབ་ཚལ་ཉིད་དུ།
འགྲོ་དེ་དེ་ཚིག་འདོད་ལྡན་མ། བདག་གི་སྔོན་ཆེ་ཡོངས་མ་བྱས།། 89

བདག་ནི་འདོད་འབྲས་ལ་ཆགས་པ། དེ་ཡིས་རབ་ཏུ་ཟློག་གྱུར་ཀྱང་།
ཡང་ཆོས་སྨྱོས་པའི་སྐྱོན་གྱིས་ནི། ཟློག་པར་མ་གྱུར་ཅི་ཞིག་བྱ།། 90

ཞེས་བརྗོད་དེ་ནི་ཤུགས་འབྱིན་ཅིང་། ཀྲང་པ་ཡིས་ནི་ས་ལ་འབྲི།
སྐད་ཅིག་བཞིན་དང་དུད་པ་ཡིས། མི་སྨྲ་བ་ལ་བརྟེན་པར་གྱུར།། 91

མི་བདག་གིས་ནི་ཕྱག་བྱས་ཀྱང་། དེ་ནི་རབ་དང་ཉིད་མ་གྱུར།
རྫུན་གྱི་སྐྱོན་ནི་ཡོངས་བཟུང་བ། མཛའ་བའི་ཐུག་ཏུ་མཚུངས་པར་འཛིན།། 92

सत्यं विप्रियकारिणीषु नृपते मन्युर्न मे विद्यते
वैरं हि क्षमयैव यात्युपशमं वैरेण तद्वर्द्धते ।
शत्रुर्नैव विभुः पराभवविधौ नैवोपकारे सुहृत्
सर्वं प्राक्तनकर्म्मनिर्म्मितमिदं दुःखादिकं देहिनाम् ॥ ८७ ॥

कृतापकारेऽपि पराभवोद्यमं
न नाम कुर्य्यादविचार्य्य बुद्धिमान् ।
क्रुधा परक्रोधविषं विवर्द्धते
न शान्तिमेति ज्वलितोऽग्निरग्निना ॥ ८८ ॥

दुःखसन्तापिता तावत्तातस्यैव तपोवनम् ।
गच्छामि तद्वचः पूर्व्वं कामिन्या न कृतं मया ॥ ८९ ॥

वारितापि परन्तेन मम कामफलस्पृहा ।
यौवनोन्माददोषेण न निर्वृत्ता करोमि किम् ॥ ९० ॥

इत्युक्त्वा निःश्वसन्ती सा विलिखन्ती पदा भुवम् ।
बभूवानम्रवदना क्षणं मौनावलम्बिनी ॥ ९१ ॥

प्रणामेनापि नृपतेर्न सा प्राप प्रसन्नताम् ।
प्रेम्णि शल्यतुलां धत्ते मिथ्यादोषपरिग्रहः ॥ ९२ ॥

དེ་ནི་དམར་བའི་བཞིན་བཟུང་ནས། ཡབ་ཀྱི་བསྟི་གནས་དག་ཏུ་སོང་།
ཁྲིངས་ལྡན་རྣམས་ཀྱི་ཁྲོ་བ་ནི། ཡག་འགྲོ་གྲུ་གྲུ་དེ་བཟོད་དཀའ།། 93

སྲུང་བའི་སྒྲ་ཡིས་དགེ་ལེགས་བརྗོད་པ་ཡི།
ཤིང་གྲོགས་མོ་རྣམས་ཀྱིས་འཁྲུད་པ་བཞིན།།
རི་དྭགས་རྣམས་ཀྱི་མཛའ་བས་ཡོངས་བསྐོར་
ཞིང་ཕ་ཡི་དཀའ་ཐུབ་ནགས་སུ་དེ་ཕྱིན་གྱུར།། 94

དཀའ་ཐུབ་ཁྱད་པར་གྱིས་བསྒྲུབས་འཇིག་རྟེན་ནི།
དང་པར་ཐུབ་པ་བསོད་ནམས་གཏེར་སོང་ཚེ།
བསྟི་གནས་སྟོང་མཐོང་འཚོ་བ་མི་བརྟན་པའི།
པདྨ་ལྡན་ནི་སྨོངས་པས་བཅོམ་པར་གྱུར།། 95

རང་བཞིན་རྣལ་གནས་པ་ཡི་མཆིས་གཤིན་དང་།
སྐྲེ་བའི་པར་ནི་ནང་གཙུགས་པ་བྲན།
འཇིག་རྟེན་གསུམ་བཞིན་སྟོངས་པར་སེམས་ཤིང་དེ།
དྲུག་གིས་གཟིར་བཞིན་སྤྲུལ་གྱིས་བཅོམ་བཞིན་གྱུར།། 96

ཐུབ་པས་དམན་པས་ནགས་ཚལ་དེ་ཉིད་ནི།
དེ་ལ་དགའ་བ་དགའ་མིན་ཉིད་དུ་གྱུར།

सा धातुरक्तवसना जगाम पितुराश्रमम् ।
भुजङ्गकुटिलो मन्युर्मानिनीनां हि दुःसहः ॥ ९३ ॥

आलिङ्ग्यमानेव लतासखीभि-
र्भृङ्गस्वनैः स्वागतवादिनीभिः ।
प्रेम्णा मृगीभिः परिवार्यमाणा
तपोवनं सा पितुराससाद ॥ ९४ ॥

याते मुनौ पुण्यनिधौ प्रसन्नं
तपोविशेषार्जितमेव लोकम् ।
दृष्ट्वाश्रमं शून्यमधीरवृत्तिः
पद्मावती मोहहता बभूव ॥ ९५ ॥

वात्सल्यमाजन्मनिलीनमन्तः
स्वच्छप्रभावस्य पितुः स्मरन्ती ।
शून्यां त्रिलोकीमिव मन्यमाना
विषार्दितेवाहिहतेव साभूत् ॥ ९६ ॥

तदेव तस्या मुनिना विहीनम्
वनं जगाम प्रियमप्रियत्वम् ।

དུས་ཀྱི་སྙིང་པོ་མ་ལུས་འཐུངས་གྱུར་པའི།
དངོས་པོ་རྣམས་ནི་འབྲལ་བའི་རང་བཞིན་ཡིན།། 97

ཡིད་འཕྲོག་ཡུལ་ནི་དེ་དག་ཁོ་ན་དང་།
མི་རྟོག་འབྱུང་གནས་ཉིན་པར་དེ་དག་ཉིད།
སྐུ་ཞིག་གཅིག་དང་བྲལ་བའི་སྐྱེ་བོ་ལ།
ཐམས་ཅད་ཆགས་བྲལ་གནས་ཉིད་དག་ཏུ་འགྱུར།། 98

དེ་ནས་ས་གཞི་དག་གི་ལྷ་རིས་དེ།
རང་བྱུང་རྗེས་སུ་མཐུན་པའི་ཆས་བརླུང་ནས།
བདེ་བས་བདང་སྒེ་ཕྱོགས་སུ་ཡོངས་འཁྱམ་ཞིང་།
ཞི་བར་བཞིན་དུ་པ་ར་ཀྵ་སེར་ཕྱིན།། 99

དེ་ནས་རྒྱལ་པོ་ཀྲྀ་ཀི་འདོད་ལྡན་པས།
དེར་ནི་རི་དྭགས་མིག་དེ་དོན་གཉེར་ཡང་།
དཀའ་ཐུབ་མེ་ལྕེ་འབར་བཞིན་དེ་ཡིས་ནི།
རྗེ་ཞིག་ལྷུར་ཡང་རིག་འཚོས་ཉིད་མ་གྱུར།། 100

རྒྱལ་པོ་འི་བཙུན་མོ་རྣམས་ཀྱིས་རབ་འབད་ནས།
མངོན་པར་མཆོད་ཅིང་ལྷ་མོ་བཞིན་དུ་དེ།

कालेन निःशेषनिपीतसारा
भवन्ति भावा विरसस्वभावाः ॥ ९७ ॥

तेष्वेव देशेषु मनोहरेषु
तेष्वेव पुष्पाकरवासरेषु ।
एकेन केनापि विना जनस्य
सर्व्वं विषादास्पदतामुपैति ॥ ९८ ॥

वेषं ततः प्रव्रजितानुरूपं
विधाय सा भूतलचन्द्ररेखा ।
सुखोज्झिता दिक्षु परिभ्रमन्ती
वाराणसीं शान्तिमिवाससाद ॥ ९९ ॥

तत्राथ राज्ञा रुक्मिणा मृगाक्षी
सा प्रार्थ्यमानाप्यभिलाषभाजा ।
तपःप्रदीप्ताग्निशिखेव तस्य
संस्पर्शयोग्या न कथंचिदासीत् ॥ १०० ॥

सा राजपत्नीभिरतिप्रयत्ना-
दभ्यर्च्यमाना त्रिदशाङ्गनेव ।

ལོགས་སྤྱོད་སེམས་ཤིང་བདག་པོ་འི་བརྟུལ་ཞུགས་ཀྱིས།
དེར་ནི་ཅུང་ཟད་དུས་ཤིག་ཉི་བར་གནས།། 101

འབྲལ་བའི་སྡུག་བསྔལ་མོ་ཡིས་སྨྲེག་བྱེད་ཅིང་།
དེ་ནི་དེ་ན་གནས་པ་ས་ཡི་བདག
ཚངས་བྱིན་གྱིས་ཀྱང་ཉན་ནུ་བསྲུངས་ལས་གྲོས།
བྲམ་ཟེའི་ཚལ་སུ་བཅོས་ནས་ཡང་དག་འོངས།། 102

དེ་ནས་བརྟུལ་ཞུགས་མཛེས་པའི་ཚལ་ཀྱི་བསྐྱིབས།
ཚུལ་ཁྲིམས་གྲགས་པའི་བ་དན་དེ་མཐོང་ནས།
དང་བའི་སྐད་དུ་མི་བདག་གསུས་པར་ནི།
མངོན་དུ་ཕྱོགས་པས་རང་གཟུགས་གསལ་བར་བྱས།། 103

ས་བདག་བདག་གི་གནོད་པ་མི་བཟད་པ།
ཞེས་སྨྲ་ཆེ་ན་དེ་ནི་ཡུན་རིང་དུས།
ཁྲིངས་ལྡན་རྣམས་ཀྱིས་སྨད་པའི་ཁྲོ་བ་ནི།
བརྗོད་པ་ན་ཡང་གསར་པ་ཉིད་དུ་འགྱུར།། 104

སྡུག་པོ་མཆི་མའི་རྒྱུན་ནི་སོངས་སེལ་ཞིང་།
འདོད་པའི་ཟླ་རིས་ཕྱོགས་སུ་འབྲས་ལྡན་བྱེད།

तत्र स्ववृत्तानि विचिन्तयन्ती
पतिव्रता कालमुवास कञ्चित् ॥ १०१ ॥

तां ब्रह्मदत्तोऽपि विशिष्टचार-
स्तत्र स्थितां भूमिपतिर्निशम्य ।
वियोगदुःखानलदह्यमानः
समाययौ ब्राह्मणकूटवेषः ॥ १०२ ॥

अथ व्रताच्छादितचारुवेषाम्
विलोक्य तां शीलयशःपताकाम् ।
प्रसादनाय प्रणयाभिसारी
नृपः स्वरूपं प्रकटीचकार ॥ १०३ ॥

तीव्रापराधोऽहमिति ब्रुवाणे
महीपतौ सा सुचिरं रुरोद ।
मनस्विनीनामवमानमन्यु-
रुदीरणेनापि नवत्वमेति ॥ १०४ ॥

घनाश्रुधारापरिहारकारी
स्मरेन्दुरेखासफलीकृताशः ।

རྒྱལ་པོ་སྟོན་དུས་ལྟ་བུས་མཛེས་མ་ནི།
དང་བར་བྱས་ནས་རང་གི་རྒྱལ་སར་ཁྲིད།། 105

རྐང་པའི་པདྨ་བཀོད་པའི་མཚོ་སྐྱེས་འཕྲེང་།
བྲལ་བའི་དུས་སུ་རབ་ཏུ་ཞི་གྱུར་པ།
དགའ་དང་འགྲོགས་ཚོ་དེ་ལ་རབ་འཁྲུངས་ཏེ།
ཆགས་པ་དྲག་པོ་འི་ལོངས་སྤྱོད་དཔལ་འབྱོར་བཞིན།། 106

སྐྱེ་བ་གཞན་ལས་ངེས་པར་བུ་མོ་དེས།
རང་སངས་རྒྱས་ལ་རྩེ་དགའི་པདྨ་དག།
ཕུལ་ནས་ཆགས་བླངས་ཏེ་དེ་ཡིས་ནི།
མཛེས་པ་སྤྱད་ནས་སླར་ཡང་དེ་ཡིས་ནི།། 107

རབ་ཏུ་ཕུལ་བས་འདི་ཡི་རྐང་པ་ནི།
བཀོད་པ་རྣམས་ལ་མཚོ་སྐྱེས་འཁྲུངས་པར་གྱུར།
བླངས་པའི་སྔོན་ལས་དུས་སུ་བྲལ་གྱུར་ཅིང་།
སླར་ཡང་ཕུལ་བས་སླར་ཡང་བྱུང་བར་གྱུར།། 108

བྱིན་དང་ལེན་པ་དེ་དག་ལས་འཁྲུངས་པ།
རང་ལས་སྨིན་པ་ཡིས་དེ་སྨོན་རྣམས་ལ།

कान्तां शरत्काल इव प्रसाद्य
निनाय राजा निजराजधानीम् ॥ १०५ ॥

पादाम्बुजन्याससरोजपाली
वियोगकाले प्रशमं प्रयाता ।
प्रादुर्बभूव प्रियसंगमेऽस्याः
सम्भोगलक्ष्मीरिव गाढ़रागा ॥ १०६ ॥

जन्मान्तरे सा किल कन्यकैव
प्रत्येकबुद्धाय विलासपद्मम् ।
दत्वापि लोभात्पुनराददे
तद्विचार्य्य शोभां प्रददौ पुनश्च ॥ १०७ ॥

पद्मप्रदानेन बभूवुरस्याः
पादावतारेषु सरोरुहाणि ।
आदानदोषाद्विरतानि काले
पुनः प्रदानात्पुनरुन्नतानि ॥ १०८ ॥

तेनैव दत्ता हरणोद्भवेन
स्वकर्म्मपाकेन मलीमसेन ।

པདྨོ་ཅན་དེ་གསོད་པའི་གནས་བདང་སྟེ།
དུས་ཀྱི་ད་ལྟ་གྲགས་འཛིན་མ་ཡང་ངོ་།། 109

ལས་ཀྱི་འབྲས་བུ་རྒྱས་པའི་བཀྲ་བ་དེ།
དེ་སྐད་རྒྱལ་བས་གསུངས་བ་ཐོས་གྱུར་ནས།
དགེ་སློང་དེ་དག་ཐམས་ཅད་ངོ་མཚར་ནི།
ཡོངས་སུ་འཛིན་པས་རི་མོར་བཀོད་བཞིན་གྱུར།། 110

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་པདྨ་ལྡན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་
ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་རྩ་བརྒྱད་པའོ།།

पद्मावती वध्यपदं विसृष्टा
सैवाद्य कालेन यशोधरा च ॥ १०९ ॥

श्रुत्वेति सर्व्वं कथितां जिनेन
तां चित्रितां कर्म्मफलोदयस्य ।
बभूवुराश्चर्य्यपरिग्रहेण
चित्राभिलीना इव भिक्षवस्ते ॥ ११० ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
पद्मावत्यवदानमष्टषष्टितमः पल्लवः ॥

ཡཀ་འདབ་དྲུག་ཅུ་རྩ་དགུ་པ།

གང་གི་སྤྱོད་པའི་ཁྱད་པར་མཐོ་བའི་མཚན་ཉིད་ལྡན་རྣམས་ཀྱིས།
ལེགས་བྱས་དག་ནི་མཆོད་རྟེན་ལྡན་པའི་ནོར་འཛིན་མས་སྐྱ་ཞིང་།
མ་ཞུས་དགེ་བའི་སྨོན་ལམ་གནས་སུ་གྱུར་པ་དེ་དག་ནི།
འཇིག་རྟེན་འདི་དང་གཞན་ཡང་དག་ཅིང་བདེ་བ་བསྟན་པར་གྱུར།། 1

གྲོང་ཁྱེར་པ་ཊ་ལི་པུ་ཏྲར། གང་གིས་ཡང་དག་བསྐྱངས་བསྲུངས་པས།
འཇིག་རྟེན་མྱ་ངན་མེད་པ། ས་བདག་མྱ་ངན་མེད་པ་བྱུང་།། 2

བྱང་ཆུབ་སླད་དུ་ཁྲུས་བསྐྱབས་ནས། གང་གི་གསེར་གྱི་ཆར་འབེབས་ཤིང་།
ཆོས་གོས་གསུམ་ནི་འགེབས་པ་ཡིས། དགེ་སློང་དགེ་འདུན་རྣམ་པར་མཆོད།། 3

འདས་པའི་སངས་རྒྱས་སྐུ་ཡི་ནི། རིང་བསྲེལ་གཟི་བརྗིད་འབར་རྣམས་དང་།
བླ་མེད་དཔལ་ལྡན་གནས་བརྟེན་ནི། གྲགས་པ་དེ་ཡིས་མཆོད་བྱར་གྱུར།། 4

རིན་ཐང་མེད་པའི་རིན་ཅན་རྣམས། གུས་པས་བསྡུ་བ་བྱས་ནས་ནི།
ས་གཞི་སྤུ་རིག་གདུགས་མཛེས་ཀྱི། མཆོད་རྟེན་དག་གིས་མཚན་པ་བསྐྲུནས།། 5

अथोनसप्ततितमः पल्लवः ।

तेषामशेषकुशलप्रणिधानधाम्नां
मुद्धः सुखस्थितिरयं च परश्च लोकः ।
येषां विशेषरचितोन्नतलक्षणानां
चैत्याङ्किता वसुमती सुकृतं ब्रवीति ॥ १ ॥

पुरे पाटलिपुत्रेऽभूदशोकः पृथिवीपतिः ।
येनाशोकः कृतो लोकः सम्यक्पालनलालितः ॥ २ ॥

विधाय बोधिस्नपनं येन काञ्चनवर्षिणा ।
त्रिचीवराच्छादनेन भिक्षुसंघोऽभिपूजितः ॥ ३ ॥

मान्यस्यानुमते श्रीमान् यशसः स्थविरस्य यः ।
अतीतबुद्धशारीरधातूनां दीप्ततेजसाम् ॥ ४ ॥

अनर्घ्याणां च रत्नानां कृत्वा सङ्ग्रहमादरात् ।
विदधे मौक्तिकच्छन्दचारुचैत्याङ्कितां महीम् ॥ ५ ॥

རང་ཉིད་ཀླུ་ཡི་འཛིགས་རྟེན་དུ། ཕྱིན་ནས་བདེ་ག་ཤེགས་རིང་བསྲིལ་ཚོགས།
ཀླུ་ཡིས་བྱིན་པ་བླང་ནས་དེ། རིན་ཆེན་མཆོད་རྟེན་འཕྲིང་བ་བྱས།། 6

དེ་ཡི་མཆོད་རྟེན་ཆོས་རྒྱལ་གྱིས། ལུགས་དང་ལྡན་པ་སྟོང་ཕྲག་ནི།
བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བཞི་དུས་གཅིག་ལ། སྤྲུལ་པ་ཡིས་ནི་རྣམ་པར་མཛེས།། 7

དུས་གཅིག་རབ་ཏུ་གནས་པ་ལ། དེ་ཚེ་གནས་བརྟན་མཁར་སོང་ནས།
ཉི་མ་བསྒྲིབས་དེ་ས་གཞི་ནི། གྲིབ་མའི་འདུ་ཤེས་དག་ཏུ་བཏགས།། 8

དེ་ནས་དེ་ཡི་དགེ་འདུན་གྱི། མཆོད་རྟེན་རྒྱ་ཆེ་དག་འཛུགས་ལ།
རབ་བྱུང་ཁྲ་བས་འཁོགས་གྱུར་པ། འགའ་ཞིག་དལ་གྱིས་འོངས་པར་གྱུར།། 9

དེར་ནི་རྒྱལ་པོ་ལ་འོས་བྲམ། ས་ཡི་བདག་པོས་རབ་སྤྲིངས་པ།
བྲ་ཞིང་མཆོག་ཏུ་དགའ་བ་ནི། བདུད་རྩི་བཞིན་དུ་དེ་ཡིས་ཐོབ།། 10

དགེ་སློང་གཞན་གྱིས་དེ་ལ་སྨྲས། རང་ལ་འོས་པའི་བཟའ་བ་འདི།
ཁྱོད་ལ་ས་བདག་གིས་བྱིན་པ། ཅི་ཡི་དོན་སླད་ཁྱོད་ཞེས་སམ།། 11

ཤིན་དུ་རྒན་པ་ཁྱོད་ཉིད་ལས། དམ་ཆོས་ལྡན་དང་འདོད་པ་ཡི།
ས་སྐྱོང་གིས་ནི་བཀུར་སྟི་དག ཤིན་དུ་ཆེ་བས་ཁྱོད་ལ་མཆོད།། 12

ཅེས་པ་བཞིན་འཛུམ་དགེ་སློང་གིས། བརྗོད་ཚེ་སྨྲངས་པས་ངོ་ཚ་ཞིང་།
མྱུར་དུ་ཟླུག་རྩུས་ཕྱུག་པ་བཞིན། དགེ་སློང་རྒན་པོས་རབ་བསམས་པ།། 13

नागाल्लोकं स्वयं गत्वा सौगतं धातुसञ्चयम् ।
स नागाहृतमादाय रत्नस्तूपावलीन् व्यधात् ॥ ६ ॥

तस्याशीतिसहस्राणि चत्वारि च महीतले ।
धर्मराजिकयुक्तानां स्तूपानां निर्मितिं बभौ ॥ ७ ॥

एकक्षणप्रतिष्ठासु पृथिव्यां स्थविरस्तदा ।
खमुत्पत्यार्कमाच्छाद्य छायासंभ्राममकल्पयत् ॥ ८ ॥

नित्यप्रवृत्ते तस्याथ वितते सङ्घभोजने ।
शनैः प्रव्रजितः कश्चिज्जराजीर्णः समाययौ ॥ ९ ॥

राजार्हमशनं तत्र प्रेषितं स महीभुजा ।
भुञ्जानः परमां प्रीतिं माससाद सुधामिव ॥ १० ॥

तं प्राहान्यतमो भिक्षुरपि जानासि भूभुजा ।
किमर्थं स्वोचितं तुभ्यमिदं भोज्यमुपाहृतम् ॥ ११ ॥

अतिवृद्धतरास्त्वत्तः सद्धर्मं श्रोतुमुत्सुकः ।
त्वामर्चयति भूपालः सत्कारेण महीयसा ॥ १२ ॥

इति स्मितमुखेनोक्तो भिक्षुणा मौर्ख्यलज्जितः ।
मत्स्यविद्ध इव क्षिप्रं वृद्धभिक्षुरचिन्तयत् ॥ १३ ॥

ང་ཚའི་སྐད་དུ་སྡུག་བསྔལ་མཐའ། ཟས་འདི་བདག་གིས་ཅི་སྐད་ཟོས།
ཚོགས་སུ་བཅད་པ་བཞི་ཆ་ཡང་། བདག་གིས་མི་ཤེས་ཡི་གེ་མེད།། 14

དམ་པའི་དབུས་སུ་ས་བདག་གིས། གལ་ཏེ་དྲིས་ན་བདག་ཅི་བྱེད།
སྐྱེ་བོ་འགའ་ཞིག་དགོད་འདི་དག། ལྐུགས་པ་བདག་ལ་ཅི་བརྗོད་འགྱུར།། 15

སློན་བུ་ཁོག་སྟོང་བྱེད་པ་རྣམས་ཀྱིས་དཔལ་གྱིས་སྟོང་པོ་འདི་རྒྱུན་ནི་གཞིགས་གྱུར་ཅིང་།

ནང་དུ་མི་དག་ཉལ་ཞིང་དུ་བས་དྲི་མར་གྱུར་པ་གཡང་པའི་ཤིང་ཡང་སྐྱ།
མཁས་པ་བཞིན་རས་མཛེས་པས་བཙོམ་པའི་སྨོངས་པ་སྐྱེངས་ཤིང་ཞུམ་པས་གནས་གྱུར་པ།
ལྐུག་ཅིང་ལོང་བའི་གཟུགས་ཅན་བག་མེད་དུ་གནས་སྐྱེ་བོ་བདག་འདྲར་མ་གྱུར་ཅིག། 16

དེ་ལྟར་བསམས་པ་ཡོངས་འདྲིས་ཤིང་། ཚ་བའི་དབུགས་འབྱིན་བདེ་མེད་པ།
དེ་ལ་ལྷ་མོས་སངས་རྒྱས་ལ། རབ་དང་མངོན་དུ་ཕྱོགས་ཏེ་གནས།། 17

གང་ཚེ་ཁྱོད་ལ་རྒྱལ་པོ་འདྲི། དེ་ཚེ་ཁྱོད་ཀྱིས་འདི་བརྗོད་བྱ།
ཤིན་ཏུ་རྒྱ་ཆེ་ལྡན་པའི་ཚོས། མདོར་བསྡུས་པ་དག་ཉན་པར་མཛོད།། 18

ནོར་ནི་ཅུང་ཟད་ཙམ་ཞིག་ཕན་པ་བྱེད་ཅིང་བྲུ་བ་ཤིན་ཏུ་ཉུང་བ་ཉིད།
སྒྲོག་གི་ཟུངས་ན་ཤིན་ཏུ་ཆུང་ཞིང་རོ་དང་བྲལ་བའི་ཟས་ཀྱིས་ཀྱང་།
མིག་དག་གཉིད་ཀྱི་རྒྱ་ནི་སྐད་ཅིག་གིས་ཀྱང་འདི་ཉིད་རྒྱུན་དུ་ནི།
ཉེར་མགོ་ལྷག་མ་བདང་ནས་ལུས་ཅན་ཡོངས་སྤྱོད་རྩོམ་པ་རྒྱ་ཆེར་འགྱུར།། 19

लज्जायै किमिदं भुक्तं दुःखान्तमशनं मया ।
अपि गाथाचतुर्भागं न जानामि निरक्षरः ॥ १४ ॥

किं करोमि सतां मध्ये यदि पृच्छेन्महीपतिः ।
तत्किं वक्ष्यति मामेष मूकं हास्यरतिर्जनः ॥ १५ ॥

कीटैः कोटरकारिभिर्विघटितस्कन्धप्रबन्धः शनै
रन्तःसुप्तकृशानुधूममलिनः श्वभ्रेऽपि धन्यस्तरुः ।
मूर्खः पण्डितखण्डिताननरुचि र्वैलक्ष्यलीनस्थितिः
मूकान्धप्रतिमः प्रमादवसति र्मामास्तु माद्दृग्जनः ॥ १६ ॥

इति चिन्तापरिचितं तप्तनिःश्वासनिःसुखम् ।
बुद्धप्रसादिनी देवी समभ्येत्य जगाद तम् ॥ १७ ॥

प्रक्ष्यति त्वां यदा राजा वक्तव्यं भवता तदा ।
विस्तीर्णतरधर्मस्य संक्षेपः श्रूयतामिति ॥ १८ ॥

किञ्चिन्मात्रं धनमुपकृतौ कृत्यमभ्यर्थ्यमेव
प्राणाधारं तनुतरमपि स्वादनिर्मुक्तमन्नम् ।
निद्रामुद्रा क्षणमपि दृशोरित्यशक्तोपयुक्तं
शेषं त्यक्त्वा व्रजति विपुलारम्भभोगं शरीरी ॥ १९ ॥

ཞེས་པ་ལྷ་མོས་ཡང་དག་བསྟན། རབ་གསལ་དབྱངས་ཅན་གཞོན་པོ་ཡིས།
ས་བདག་ཀུན་དུ་འོངས་པ་ལ། ཆོས་ནི་རབ་ཏུ་བསྟན་པ་མཛད།། 20

སྙིང་ལ་བབ་པ་དེ་ཡི་ནི། ལེགས་བཤད་རྒྱལ་བས་ཐོས་གྱུར་ནས།
ཀྱེ་མ་མཁས་པ་བརྗོད་གྱུར་བ། འདི་ནི་བདེན་ཞེས་རབ་ཏུ་བསམས།། 21

བློ་གྲོས་ཆེན་པོས་བདག་ཉིད་ཀྱིས། ཆེད་དུ་ཐམ་པ་འདི་དག་གསུངས།
དེ་ཉིད་བརྗོད་པ་དམ་པའི་ཚིག། ཉམས་སྨྱོང་བསོད་ནམས་དག་གིས་ཐོབ།། 22

གང་གི་མཛོད་རྣམས་སུ་ནི་མི་ཡི་བུད་ཤིང་དུ་མཐོང་ནོར་གྱི་ནགས་དག་བསྒྲུབས།
གང་ཡང་བྱ་བས་རྒྱ་མཚོ་བཞི་ཡི་གོས་ཅན་སྣ་ཚོགས་འཛིན་པ་ཁྱབ་པར་བྱས།
ཟས་ཀྱང་རྣམ་པར་བཀྲལ་ཡོངས་སུ་འདྲིས་ཤིང་བདག་གི་གཉིད་ཀྱང་ཤིན་ཏུ་ཆེ།
ཐམས་ཅད་སྐྱོངས་པའི་བདེ་སྐྱིད་མཐུག་གི་དུས་སུ་གང་དུ་ཅི་ཡང་མཐོང་མ་ཡིན།། 23

ཞེས་བསམས་མི་ཡི་བདག་པོ་ཡིས། དེ་ལ་རབ་ཏུ་ཕྱག་འཚལ་ཏེ།
འོད་ལྡན་མཛེས་པའི་ཆོས་གོས་ནི། གསེར་གྱི་རབ་ཏུ་སྤྲས་པ་ཕུལ།། 24

དེ་ནས་ལམ་དུ་འགྲོ་བྱེད་ཅིང་། རྒྱལ་པོ་འི་མཆོད་པས་མཛེས་པ་དེ།
བསམ་བརྟན་ཁ་དོན་སྦྱོར་བའི་སྐད། ལྷ་མོ་ཡིས་ནི་ཡང་དག་བསྐུལ།། 25

དེ་ནས་དེ་ཡི་མནའ་ངག་གིས། དེ་ཡི་བསམ་བརྟན་བསྒྲུབས་པ་ན།
ཉོན་མོངས་མ་ལུས་ཟད་པ་ལས། དགྲ་བཅོམ་ཉིད་ནི་མངོན་དུ་བསྒྲུབས།། 26

इति देव्या समादिष्टो वृद्धः स्पष्टतरस्वरः ।
श्रोतुं प्राप्तस्य भूभर्तु र्विदधे धर्मदेशनाम् ॥ २० ॥

राजा हृदयसंवादि श्रुत्वा तस्य सुभाषितम् ।
अचिन्तयदहो सत्यमिदमुक्तं मनीषिणा ॥ २१ ॥

मामेवैतत्समुद्दिश्य हितमाह महामतिः ।
तत्त्वसंवादसास्वादाः पुण्यप्राप्याः सतां गिरः ॥ २२ ॥

यत्कोशेषु निधीयते धनवनं तृष्णानलस्येन्धनं
कृत्यं यच्च चतुःसमुद्ररसनां व्याप्नोति विश्वम्भराम् ।
आहारोऽपि विचित्रतापरिचयो निद्रापि मे भूयसी
सर्वं मोहसुखाय नान्तसमये किञ्चित् क्वचिद्दृश्यते ॥ २३ ॥

इति संचिंत्य नृपतिस्तस्मै काञ्चनचर्चितम् ।
प्रणम्य प्रददौ चारुरुचि सच्चीवरांशुकम् ॥ २४ ॥

अजन्तमथ तं मार्गे राजपूजाविराजितम् ।
ध्यानाध्ययनयोगाय देवता समचोदयत् ॥ २५ ॥

ततस्तदुपदेशेन निखिलक्लेशसंक्षयात् ।
साक्षाद्विहितमर्हत्त्वं तेन ध्यानावधानिना ॥ २६

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ས་བདག་གིས། དགེ་འདུན་མཆོད་སྟོན་ཡངས་པ་ལ།
དགེ་སློང་ཆོས་གོས་ལྷ་ཡི་ནི། དྲི་བཟང་ལྡན་པ་གསར་དུ་འོངས།། 27

སྟོན་མེད་དྲི་ལ་ཆགས་པ་ཡི། བྱུང་བའི་འཕྲིང་བས་བསྐོར་དེ་ལ།
མི་བདག་གིས་དྲིས་ཁྱོད་ཀྱི་དྲི། རྒྱས་འདི་རེ་ཞིག་གང་ལས་བྱུང་།། 28

དེས་སྨྲས་ལྷ་ཡི་འཇིག་རྟེན་གྱི། ཡོངས་འདུ་ལྡོན་པའི་འོག་དུ་བདག།
དབྱར་གྱི་དུས་སུ་གནས་གྱུར་པ། དེ་ཡི་མེ་ཏོག་དག་གིས་བསྒོས།། 29

དེ་ཕྱིར་མི་བདག་དེ་ཡི་ནི། མཐུ་ལ་ལྷག་པར་གུས་གྱུར་ཅིང་།
དཀོན་ཅོག་གསུམ་མཆོད་ལ་ཆགས་པ། བསོད་ནམས་ཀུན་རར་དགའ་བར་གྱུར།། 30

གལ་ཏེ་གུས་པར་ཆོས་ལ་གནས་ན་དེ་ཉིད་འཚོ་བ་ཡིན།
གལ་ཏེ་སྐལ་བཟང་བདེན་པར་སྤྱོད་ན་དེ་ཉིད་སྐྱ་བ་ཡིན།
གལ་ཏེ་མཐར་ཐུག་སེམས་པར་བྱེད་ན་དེ་ཉིད་བློ་གྲོས་ཡིན།
གལ་ཏེ་སྦྱིན་པའི་བྱ་བ་བྱེད་ན་དེ་ཉིད་དཔལ་འབྱོར་ཡིན།། 31

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཆོས་ཀྱི་རྒྱལ་པོ་རབ་གནས་ཀྱི་རྟོགས་
པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དྲུག་ཅུ་རྩ་དགུ་པའོ།།

कदाचिदथ भूभर्तुर्विपुले सङ्घभोजने ।
नवः समाययौ भिक्षुर्दिव्यसौरभचीवरः ॥ २७ ॥

अपूर्वगन्धलुब्धालिमालावलयितं नृपः ।
तमपृच्छत् कुतस्तावदयं ते सौरभोद्भवः ॥ २८ ॥

सोऽवदद् देवलोकेऽहं पारिजाततरोस्तले ।
उषितो वार्षिकं कालं तत्पुष्पैरधिवासितः ॥ २९ ॥

एतदाकर्ण्य नृपतिस्तत्प्रभावाधिकादरः ।
रत्नचयार्चनासक्तः पुण्यारामरतोऽभवत् ॥ ३० ॥

धर्मस्थितिप्रणयिनी यदि सैव वृत्तिः
सत्योपभोगसुभगा यदि सैव वाणी ।
पर्यन्तचिन्तनरता यदि सैव बुद्धि-
र्दानक्रियोपकरणं यदि सैव लक्ष्मीः ॥ ३१ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्प-
लतायां धर्मराजिकाप्रतिष्ठावदानं
ऊनषष्टितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བདུན་ཅུ་པ།

གང་གི་གྲགས་པའི་མཚན་ཉིད་ཁྱད་པར་རྣམ་པར་བཀོད་པ་ཡིས།
ས་གཞི་བསོད་ནམས་མཆོག་གི་བསོད་ནམས་ལྡན་པར་ཉེར་བསྟན་ཅིང་།
རྒྱལ་བ་ལ་ནི་གུས་པ་རབ་བསྒྲུབས་བག་ཆགས་བསྐྱེད་བྱས་ལ།
དེ་དག་རྣམས་ཀྱི་མངོན་འདོད་ལེགས་བྱས་སྦྱོར་བ་རྒྱལ་གྱུར་ཅིག།། 1

དགེ་སློང་ཉི་གུང་ཞེས་བྱ་བ། ཀླམ་དགའ་བོའི་ཚོག་གིས་ན།
ཁ་ཆེའི་དཀྱིལ་འཁོར་དག་ཏུ་ན། སངས་རྒྱས་བསྟན་པ་འཛིན་དུ་སོང་།། 2

ཀླུ་ཡིས་བྱིན་བརླབས་དེ་ཤེས་ནས། ས་གཞི་འདར་བྱེད་དེ་ཡིས་ནི།
སྙིང་སྟོབས་བརྟན་ལྡན་ཏིང་འཛིན་གྱིས། ཀླུ་རྣམས་ཀུན་ཏུ་བསྐྱོད་པ་བསྒྲུབས།། 3

རྣམ་འགྱུར་ཁྲི་ལྡན་དེ་དག་གིས། མཚོན་དང་མེ་ཡི་ཆར་སྤྲོས་པ།
མཐུ་ཡིས་དེ་ཡི་སྤྱི་བོར་ནི། པདྨ་ཨུད་པལ་འཕྲེང་བར་གྱུར།། 4

དེ་ནས་དེ་ཡི་བརྩོན་འགྲུས་ཀྱིས། རབ་ཏུ་ཡ་མཚན་ཀླུས་དེ་ལ།
སྨྲས་པ་ཇི་སྲིད་སྐྱོལ་ཀྱང་བཅས། དེ་སྲིད་ཡུལ་འདིར་ཁྱོད་ཀྱི་གནས།། 5

ཞེས་པ་བརྗོད་ནས་དེ་ལ་ནི། སྐྱོལ་ཀྱང་ཡངས་པར་བཅིངས་པ་ཡི།
ཚད་དང་མཚུངས་པ་སྟོང་པ་ཡི། དཀྱིལ་འཁོར་དག་ནི་རབ་ཏུ་བྱིན།། 6

अथ सप्ततितमः पल्लवः ।

भक्तिप्रवर्त्तितजिनोदितवासनानां
तेषां जयत्यभिमतः सुकृताभियोगः ।
यत्कीर्त्तिलक्षणविशेषनिवेशनेन
पुण्यापि पुण्यतरतामुपयाति पृथ्वी ॥ १ ॥

माध्यन्तिकाभिधो भिक्षुरानन्दस्य गुरोर्गिरा ।
बुद्धशासनमाधातुं ययौ काश्मीरमण्डलम् ॥ २ ॥

तन्नागाधिष्ठितं ज्ञात्वा धीरसत्वः समाधिना ।
ससङ्क्षोभं प्रणिदधे नागानां कम्पितावनिः ॥ ३ ॥

शस्त्राम्बिरदृष्टिरुत्सृष्टा तैरमर्षविकारिभिः ।
प्रभावेणाभवत्तस्य मूर्ध्नि पद्मोत्पलावली ॥ ४ ॥

ततस्तं जगदुर्नागा स्तद्वीर्योत्कर्षविस्मिताः ।
यावान् पर्य्यङ्कबन्धोऽत्र देशस्तावान् वशे तव ॥ ५ ॥

उक्त्वेति तस्मै पर्य्यङ्कबन्धतुल्यं प्रमाणतः ।
नवद्रोणमुखायामं प्रददुः शून्यमण्डलम् ॥ ६ ॥

དེར་ནི་དེ་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་དང་། གྲོང་གི་ཁྱད་པར་འགོད་བྱེད་ཅིང་།
དགྲ་བཅོམ་ལྔ་བརྒྱ་དག་དང་ནི། ཐར་ཅིག་རབ་ཏུ་གནས་པར་བྱས།། 7

དེར་ནི་མི་ཟད་བཅོམ་ལྡན་ཆོས་དག་རྣམ་པར་བཀོད་བྱས་ནས།
མཛེས་པའི་གཙུག་ལག་ཁང་གི་རྒྱན་དང་ལྡན་པའི་འཛིན་བྱེད་དེ།
སྤོས་ངད་ལྡན་གྱི་ངོས་ལས་བླངས་ཤིང་སྙིང་པོ་ཐོབ་གྱུར་པ།
གུར་གུམ་བསང་པའི་རྩ་བའི་ཚོགས་ཀྱིས་རབ་ཏུ་ཁྱབ་པར་བྱས།། 8

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཉི་མ་གྲུང་པའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་
ཡལ་འདབ་སྟེ་བདུན་ཅུ་པའོ།།

4
817

स तत्र नगरग्रामसन्निवेशविशेषकृत् ।
स्थितिं बबन्ध सहितः शतैः पञ्चभिरर्हताम् ॥ ७ ॥

तत्राक्षयं भगवतः स निवेश्य धर्मं
कृत्वा विहाररुचिराभरणां धरित्रीम् ।
तां गन्धमादनतटोद्धृतलब्धसारैः
व्याप्तां चकार नवकुङ्कुमकन्दवृन्दैः ॥ ८ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्प-
लतायां माध्यन्तिकावदानं नाम
सप्ततितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བདུན་ཅུ་རྩ་གཅིག་པ།

ཞི་བ་ལ་རེག་དྲི་མེད་ཚུལ་ཁྲིམས་རས་དཀར་རྩེ་དགའ་ཡིས།
མཛེས་པས་བསྒྲེན་ཅིང་ཡུལ་དང་ཆས་ལས་ཕྱིལ་ཕྱོགས་རྣམས་ལ།
དར་གོས་དག་དང་ཤཱ་ནའི་གོས་རྒྱལ་དྲི་མ་ཅན་གྱི་ཀྱང་།
མངོན་པར་ཞེངས་པ་སྐྱེད་མིན་དམན་པ་ཉིད་དུ་བསྒྲུབ་པ་མིན། 1

ཤཱ་ནའི་གོས་ཅན་དགེ་སློང་སྟོན། ཡོན་ཏན་ལྡན་པའི་བླ་མའི་བཀས།
རྒྱལ་བའི་བསྟན་པ་གཟུང་བའི་སླད། གླིང་ཁྱིར་བཅོམ་བརླག་དག་དུ་ཞུགས།། 2

དེ་ནི་ལམ་དུ་འགྲོ་བ་ན། འཕགས་པའི་རང་བཞིན་གྲུད་གཉིས་དང་།
ཕན་ཚུན་རབ་ཏུ་བརྗོད་པ་ཡི། ཞར་བྱུང་འཕགས་པ་འདི་དག་ཐོས།། 3

དྲི་མེད་ཚུལ་ཁྲིམས་གནས་དང་ཐོས་པ་ཡི། མིས་དང་ལྡན་པར་གྲགས་ཤིང་བཟོད་པ་ཅན།
དགེ་སྦྱོང་དེ་དག་ཉིད་ནི་ས་གཞི་ལ། དགེ་སློང་ཤཱ་ནའི་གོས་ཅན་དག་ཏུ་བརྗོད།། 4

དེ་བརྗོད་དེ་ནས་དེ་ཡིས་ཀྱང་། དེ་ཉིད་བརྗོད་ཐོས་དེ་དག་གིས།
དེར་སྨྲས་ཤཱ་ནའི་གོས་ཅན་དེ། ཁྱོད་ཉིད་ཡིན་པར་ཐེ་ཚོམ་མེད།། 5

ཅི་སྐད་ཤཱ་ནའི་གོས་ཅན་ཞེས། སློ་བཟང་ཁྱོད་ནི་ཕྱོགས་སུ་གྲགས།
ཐུབ་པ་དམ་ཆོས་སྨྲ་བ་རྣམས། ཁྱོད་ཀྱི་ཚིགས་སུ་བཅད་པ་སློགས།། 6

अथ एकसप्ततितमः पल्लवः ।

शान्तिस्पृशां विमलशीलदुकूललीला-
शोभाजुषां विषयवेषपराङ्मुखानाम् ।
चीनांशुकैर्मलिनशीर्णपटच्चरैर्वा
नैवाभिमानकलना न च दैन्यवृत्तिः ॥ १ ॥

शाणवासी पुरा भिक्षु र्गुणवान् गुरुशासनात् ।
जिनशासनमाधातुं मथुरां प्रस्थितः पुरीम् ॥ २ ॥

स व्रजन् पथि शुश्राव मल्लयोर्वदतोर्मिथः ।
प्रसङ्गोपगतामेतामार्य्यामार्य्यस्वभावयोः ॥ ३ ॥

ये विमलशीलनिलयाः श्रुतविश्रुतचक्षुषः क्षमावन्तः ।
तानेव शाणवासी कथयति भिक्षुर्भुवि श्रमणान् ॥ ४ ॥

एतदुक्त्वाय तेनापि तदेवोक्तं निशम्य तौ ।
तमूचतुस्त्वमेवासौ शाणवासी न संशयः ॥ ५ ॥

कस्मात्त्वं शाणवासीति सुमते दिक्षु विश्रुतः ।
गाथा गायन्ति मुनयस्तव सद्धर्मवादिनः ॥ ६ ॥

དེས་སྨྲས་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་བདག། སྨན་པ་གསོ་བར་བྱེད་པ་ཡིས།
རང་སངས་རྒྱས་ནི་སྙིང་ནད་ཀྱིས། གཟིར་བར་རབ་ཏུ་བསོས་པར་བྱས།། 7

དེ་ཡི་ཤཱ་ནའི་གོས་དག་ནི། ཚུང་ཞིང་རབ་ཏུ་རྙིངས་པ་མཐོང་།
རྒྱལ་པོ་ལ་འོས་མཛེས་པའི་གོས། བདག་གིས་རབ་ཏུ་གུས་པས་ཕུལ།། 8

དེ་ཡིས་སྨྲས་པ་གྲོགས་པོ་དག། མཛེས་པའི་གོས་ལ་བདག་མི་སྲིད།
ཤཱ་ནའི་གོས་ཀྱི་རབ་ཞི་བ། བསྔགས་པར་འོས་ཤིང་མཛེས་པ་ཐོབ།། 9

ཅེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས   ཤཱ་ནའི་གོས་རྙིང་འདོད་པ་བདག།
དམ་པའི་གྲོགས་ཀྱིས་ཆགས་བྲལ་ཐོབ། དམ་པའི་གོས་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས་གྱུར།། 10

དུས་ཀྱི་དེ་ཡི་ལུས་ཀྱི་མཐར། མཛེས་པའི་མཆོད་པ་བསྒྲུབས་བྱས་ཏེ།
དེ་མཚུངས་ཉིད་ནི་ཐོབ་པའི་སླད། བདག་གིས་སྨོན་ལམ་བློ་གྲོས་བྱས།། 11

སྨོན་ལམ་དེ་དང་དེ་ལ་ནི། ཡང་དག་མཆོད་པ་ཡིས་ཀྱང་བདག།
ཤཱ་ནའི་གོས་དང་ལྡན་པར་སྐྱེས། ཤཱ་ནའི་གོས་ཅན་ཞེས་སུ་གྲགས།། 12

ཞེས་བརྗོད་བཅོམ་བརླག་གྲོང་ཁྱེར་དུ། ཕྱིན་ཅིང་དལ་གྱིས་འགྲོ་བ་དེས།
མགོ་ཅན་ཞེས་པའི་རི་བོ་ལ། རྩོམ་པ་ཆེན་པོ་དག་གིས་འཛེགས།། 13

དེར་ནི་ས་གཞི་འདར་བྱེད་པའི། སྐྱིལ་ཀྲུང་བཅས་དེ་ཉེ་བར་འཁོད།
ཆར་ཆེན་འབེབས་པའི་སྤྲུ་དག་ནི། བགེགས་ལ་ཆས་པ་རྣམ་པར་བདུལ།། 14

स जगाद मयान्यस्मिन् जन्मन्यामयपीड़ितः ।
प्रत्येकसुगतः स्वास्थ्यं नीतो वैद्यचिकित्सया ॥ ७ ॥

शाणं शीर्णतरं वासस्तस्य दृष्ट्वा मयाल्पकम् ।
उपनीतं प्रणयिना राजाहँ रुचिराम्बरम् ॥ ८ ॥

सोऽब्रवीन्न सखे मह्यं रोचते रुचिरांशुकम् ।
लभ्यते प्रशमश्लाघ्या शोभा शाणेन वाससा ॥ ९ ॥

इत्यहं तद्वचः श्रुत्वा शीर्णशाणांशुकोत्सुकः ।
सत्सङ्गमात्तवैराग्यः सद्वस्त्रविमुखोऽभवम् ॥ १० ॥

कालेन तस्य देहान्ते रुचिरार्चाविधायिना ।
मया तत्तुल्यभावार्थे प्रणिधानमतिः कृता ॥ ११ ॥

तेनाहं प्रणिधानेन तत्समभ्यर्चनेन च ।
सशाणवस्त्रः सञ्जातः शाणवासीति विश्रुतः ॥ १२ ॥

इत्युक्त्वा स शनैर्गच्छन्नवाप्य मथुरापुरीम् ।
उरुमुण्डाभिधं शैलमारुरोह महोद्यमः ॥ १३ ॥

तत्रोपविश्य पर्यङ्कबन्धेनाकम्पितस्थितिः ।
विलीय विषसन्नद्धौ नागौ तुमुलवर्षिणौ ॥ १४ ॥

བཅོལ་བརྣག་ལ་གནས་ཚོང་དཔོན་སྲུ། ནཊ་བྷ་ཊ་ཞེས་བྱ་བ།
གྲོགས་ཀྱི་སླད་དུ་བཟུང་ནས་ནི། དེ་ཡི་གཙུག་ལག་ཁང་པར་སྤྲུལ།། 15

རིན་ཆེན་རབ་འབར་ཞལ་དང་གསེར་གྱི་བ་གམ་དག་དང་ལྡན།
ཁྲི་དང་ཁྲིའུ་མལ་སྟན་དག་གིས་སྤྲས་ཤིང་མཛེས་པར་དགའ།
མགྲོ་རིས་ལྷ་བུ་སྐལ་བཟང་ལོངས་སྤྱོད་གཏེར་གྱི་གཙུག་ལག་ཁང་།
བསོད་ནམས་གནས་པ་དེ་ནི་ནཊ་བྷ་ཊ་ཞེས་པར་གྱུར།། 16

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཤཱ་ནའི་གོས་ཅན་གྱི་རྟོགས་པ
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བདུན་ཅུ་རྩ་གཅིག་པའོ།།

मथुरावासिनौ श्रेष्ठिसुतौ नटभटाभिधौ ।
आदाय सहकृत्याय स विहारं विनिर्ममे ॥ १५ ॥

रत्नोज्ज्वलैः स्फटिककाञ्चनरम्यहर्म्यैः
पर्य्यङ्कपीठरचनाशयनाभिरामः ।
स्वर्गोपमः सुभगभोगनिधिर्विहारः
पुण्यस्थितिर्नटभटाभिध एव सोऽभूत् ॥ १६ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
शाणवास्यदानमेकसप्ततितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བདུན་ཅུ་རྩ་གཉིས་པ།

སྐྱེ་བོ་འདོད་པའི་རྡུལ་གྱིས་མིག་ནི་ལོངས་སུ་ཉམས་པ་ཀུན།
ཡུལ་ནི་གང་དག་ཉིད་ཀྱིས་མངོན་པར་འདོད་པའི་སར་གྱུར་པ།
དེ་ཉིད་ཀྱིས་ནི་བསོད་ནམས་ལོངས་གཙང་དག་པ་བསྟེན་རྣམས་ཀྱི།
ཡིད་ནི་རབ་ཏུ་ཞི་ཞིང་ཆགས་བྲལ་ལྡན་པ་དག་ཏུ་གྱུར།། 1

བཅོམ་བརླག་དག་ན་གནས་པ་སྤྱོད། སྤྲས་པ་ཞེས་བྱ་སློས་འཚོང་གི།
བུ་ནི་དཔལ་དང་ལྡན་པ་དག། ཉེར་སྤྲས་ཞེས་པར་གྲགས་པ་བྱུང་།། 2

ཤ་ནའི་གོས་ཅན་དགེ་སློང་གི། རྗེས་འབྲང་ངོ་ཞེས་པ་ཡི་ནི།
ཚིག་གིས་མ་སྐྱེས་པ་ནས་བཏགས། དེ་ནི་དེ་ལ་གསུས་ལྡན་གྱུར།། 3

ལང་ཚོ་གསར་པ་དང་ལྡན་དེ། ཆགས་བྲལ་ལ་ནི་མངོན་ཕྱོགས་ཚེ།
བགེགས་ཚོགས་རྩོམ་པ་ཉམས་པ་ཡིས། ཡིད་འབྱུང་གི་ནི་བསམ་པ་ཐོབ།། 4

ཕ་ཡི་ཚིག་གིས་དུས་འགའ་ཞིག། ཤ་རི་ཙནྡ་ན་སྦྱ་རྩི་དང་།
ཨ་ཀ་རུ་དང་ག་བུར་འཚོང་། ཕ་སྐད་རྣམས་ནི་དེ་ཡི་བྱས།། 5

དེ་ནས་ནོར་ལྷས་བྱིན་ཞེས་པས། སློས་ནི་ཀྱོ་ཙ་གདང་བ་ཡིས།
རང་གི་འབངས་མོས་དེ་ཡི་གཟུགས། ཡོན་ཏན་གྲགས་པ་བཤད་ཐོས་ནས།། 6

अथ द्विसप्ततितमः पल्लवः ।

यैरेव याति विषयैरभिलाषभूमिं
सर्वो जनः स्मररजःपरिभूतदृष्टिः ।
तैरेव पुण्यपरिमार्जनशुद्धिभाजां
वैराग्ययोगमुपयाति मनःप्रशान्तिम् ॥ १ ॥

अभूद्गुप्ताभिधानस्य गान्धिकस्य सुतः पुरा ।
मथुरावासिनः श्रीमानुपगुप्त इति श्रुतः ॥ २ ॥

अजातः कल्पितः पित्रा स भिक्षोः शाणवासिनः ।
अनुयायीति वचनात्तद्भक्तिनिरतोऽभवत् ॥ ३ ॥

वैराग्याभिमुखे तस्मिन् नवयौवनशालिनि ।
भग्नविघ्नगणारम्भश्चिन्तां लेभे मनोभवः ॥ ४ ॥

हरिचन्दनकस्तूरीकर्पूरागुरुविक्रयी ।
स कञ्चित्कालमकरोद्व्यवहारं पितुर्गिरा ॥ ५ ॥

अथ वासवदत्ताख्या गन्धक्रयविसृष्टया ।
स्वदास्या कथितं श्रुत्वा तं रूपगुणविश्रुतम् ॥ ६ ॥

ཆགས་པའི་ཚོགས་ནི་རབ་རྒྱས་ཤིང་། འགྲོགས་པ་དོན་གཉེར་སྨད་འཚོང་མས།
མངོན་པར་འདོད་པའི་ཕོ་ཉ་མོ། བཏང་ནས་དེ་ལ་བསམ་པ་བཤད།། 7

དཔལ་གྱི་ཕོ་ཉ་མོས་དོན་གཉེར། འཛུམ་ལྡན་དེ་ཡིས་དེར་སྨྲས་པ།
དེ་དང་ཕྲད་པའི་དུས་འདི་ན། བདག་ལ་མངོན་པར་འདོད་པ་མེད།། 8

དེ་ནས་ཕོ་ཉ་མོ་ལོངས་ཚེ། སྨད་འཚོང་ཆགས་བྲལ་ལྡན་པར་གྱུར།
རྗེས་སུ་ཆགས་པས་ཆགས་བྲལ་བ། སྨད་འཚོང་མ་ལ་ངེས་པ་མེད།། 9

ཚོང་དཔོན་བུ་ནི་ཡང་ཚེ་ལྡན། ནམ་ཞིག་དེ་ཡི་ཁྱིམ་གནས་ཚེ།
དཔལ་དང་ལྡན་པའི་དོན་མཐུན་བདག། གྲོང་གི་ལམ་ནས་གསར་དུ་འོངས།། 10

དེ་ཡི་མཚན་མོ་ལོངས་སྤྱོད་སྐྱད། གོས་དང་བཅས་པའི་གསེར་དག་སྤྲིངས།
བཀེམ་ཆགས་ལྡན་པའི་སྨད་འཚོང་མ། མ་དང་བཅས་པས་རབ་བསམས་པ།། 11

ནོར་ཟད་གྱུར་པ་ཚོང་པའི་བུ། འདི་ནི་རེ་ཞིག་ཁྱིམ་ན་གནས།
གཞན་ཡང་དོན་གཉེར་ནོར་ཆེན་ལྡན། བདག་གི་ཅི་བྱ་དེ་མ་རིག།། 12

འདོད་ལྡན་ནོར་ནི་སྐྱུགས་པ་དག། ཕྱི་ནས་ལྷག་པར་སྤྱིར་མི་འགྱུར།
འབྲས་བུ་མེད་པར་ཡོངས་སྙིང་པར། གྱུར་པ་དེ་ཡིས་ཅི་ཞིག་བྱ།། 13

གསར་པ་མངོན་འདོད་གསར་པ་ལས། མ་བསླངས་པར་ཡང་ཐམས་ཅད་སྤྱིར།
དང་པོར་གྱུས་པས་མི་མཛད་ཡང་། མཛད་བ་ཉམས་སུ་མྱོང་བར་བྱེད།། 14

सञ्जातरागसंवेगा गणिका संगमार्थिनी ।
विसृज्याभिमतां दूतीं भावं तस्मै न्यवेदयत् ॥ ७ ॥

स स्वैरमर्थितो दूत्या सस्मितस्तामभाषत ।
अयं नाभिमतः कालस्तस्याः सन्दर्शने मम ॥ ८ ॥

अथ दूत्यां प्रयातायां सोद्वेगा गणिकाभवत् ।
नानुरागे विरागे वा नियतिर्वेश्ययोषिताम् ॥ ९ ॥

कदाचिन् मन्दिरे तस्याः स्थिते यूनि वणिक्सुते ।
नवः सार्थपतिः श्रीमानाजगामोत्तरापथात् ॥ १० ॥

विसृष्टे रात्रिभोगाय तेन हेम्नि सहांशुकैः ।
जनन्या सहिता लुब्धा गणिका समचिन्तयत् ॥ ११ ॥

एष तावत् स्थितो गेहे वणिक्सूनुः कृतव्ययः ।
अर्थी महाधनश्चान्यः किं करोमि न वेद्मि तत् ॥ १२ ॥

वान्तचित्तः पुनः कामी न भवत्यधिकप्रदः ।
तेन पर्युषितेनैव क्रियते निष्फलेन किम् ॥ १३ ॥

नवस्त्वभिनवौत्सुक्यात्सर्वं मुञ्चत्ययाचितः ।
अप्रियेऽपि प्रियास्वादं करोति प्रथमादरः ॥ १४ ॥

དེ་སྐད་ནང་དུ་ཟུག་རྔུ་བཞིན། ཞུགས་པ་འདི་ལ་ཅི་ཞིག་བྱ།
ལས་ཀྱི་འཆིང་བཞིན་རྗེས་འབྲང་འདི། མ་བཅད་པར་ནི་འགྲོ་མ་ཡིན།། 15

གལ་དེ་ནོར་ལྷུར་འདི་བདང་ན། བདག་ཅག་ལ་ནི་ཚོང་ཁེ་མེད།
ཆོས་ཕྱིར་མ་ཡིན་འདོད་ཕྱིར་མིན། བདག་ཅག་ནོར་གྱི་ཕྱིར་དུ་སྐྱུལ།། 16

ཞེས་བསམས་ནོར་ནི་དོན་གཉེར་མ། དེ་ཡིས་མ་ཡི་གྲོས་ཀྱིས་ནི།
ཚང་མཆོག་དུག་ལྡན་ཀླུད་པ་ཡིས། ཚོང་པའི་བུ་ནི་རབ་དུ་བསད།། 17

དེ་ནས་སྲོག་དང་བྲལ་བ་དེ། ཕུག་དར་ཁྲོད་ཀྱི་ཕུང་པོར་སྦས།
རིད་དཔོན་ནང་དུ་རབ་བཅུག་ནས། དེ་ཡིས་ནོར་ནི་རྒྱ་ཆེན་ཐོབ།། 18

སྐྱད་འཚོང་མ་ཡི་ཁང་པར་ནི། འཇུག་པ་མཐོང་སྤེ་ཕྱིར་འགོན་མིན།
ཞེས་དེ་གཉེན་རྣམས་ཀྱིས་བཅལ་བས། ཚོང་པའི་བུ་ནི་སྲོག་བྲལ་བྱེད།། 19

དེ་ནས་དེ་བསད་གཏུང་བ་ཅན། དེ་དག་གིས་གསོལ་ས་བདག་གིས།
སྡིག་དྲག་ལ་འོས་ཆད་པ་ནི། མི་བཟད་སྐྱད་འཚོང་མ་ལ་བསྟན།། 20

སྨྲ་གྲོལ་གོས་དང་བྲལ་བ་དེ། གསོད་ས་ཡི་ནི་སར་ཁྲིད་དེ།
ལག་པ་རྐང་པ་རབ་བཅད་ཅིང་། རྣ་བ་དང་ནི་སྣ་ཡང་བཅད།། 21

རང་གི་ཁྲག་གི་འདམ་ལ་ནི། གདུང་བས་ཉམས་ཅིང་འདྲེ་ལྟོག་བྱེད།
ཤ་ཟ་ལྕོག་ཅིང་འཕྱོན་མ་ནི། འབངས་མོར་བཙས་པ་སྒྲ་ངན་བྱེད།། 22

तस्मात् किमस्य क्रियतामन्तःसक्तस्य शल्यवत् ।
अभोगेन न यात्येष कर्मबन्ध इवानुगः ॥ १५ ॥

नास्माकमेतद्वाणिज्यं त्यज्यते यदि वित्तवान् ।
न धर्माय न कामाय वयमर्थाय निर्मिताः ॥ १६ ॥

इति संचिंत्य सा मातुः संमते द्रविणार्थिनी ।
वरासवेन न्यवधीत् सविषेण वणिक्सुतम् ॥ १७ ॥

निक्षिप्यावस्करचये ततस्तं गतजीवितम् ।
अवाप्य विपुलं वित्तं सार्थवाहं प्रवेश्य सा ॥ १८ ॥

दृष्टः प्रविष्टो गणिकागृहं न तु विनिर्गतः ।
इति बन्धुभिरन्विष्य व्यसुः प्राप्तो वणिक्सुतः ॥ १९ ॥

ततस्तद्वधसन्तप्तैः श्रावितस्तैर्महीपतिः ।
वेश्यायास्तीव्रपापार्हमादिदेशोग्रनिग्रहम् ॥ २० ॥

सा वध्यवसुधां नीता मुक्तकेशी निरम्बरा ।
निकृत्तपाणिचरणा च्छिन्नश्रवणनासिका ॥ २१ ॥

वेष्टयन्ती व्यथाक्रान्ता निजशोणितकर्दमे ।
निवार्य्यमाणक्रव्यादा दास्या चुक्रोश बन्धकी ॥ २२ ॥

དེ་ནས་དེ་ཡི་སྡུག་བསྔལ་ནི། མི་བཟད་ཉིར་སྣས་ཀྱིས་ཐོས་ནས།
དེ་ནི་བསྐ་བའི་དུས་འདི་ཞེས། བརྗོད་ནས་ས་གཞི་དེ་རུ་སོང་།། 23

ཀླུ་འོད་ཅན་དེ་འོངས་པ་ནི། འཕངས་མོས་བཤད་པ་མགོན་གྱུར་ནས།
སྔོན་གྱི་ས་ཏེན་འདོད་ལྷག་མ་ཡིས། ང་ཆ་ལྡན་ཞིང་ཕྲ་གྱུར་གྱུར།། 24

བག་ཆགས་གོམས་པ་དག་གིས་ལས། འགའ་ལས་ནང་དུ་རབ་ཞུགས་པ།
ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ཆགས་པ་ནི། གནས་སྐབས་འགར་ཡང་གཏོང་མི་འགྱུར།། 25

འབངས་མོ་འི་གོས་ཀྱི་འདབ་མ་ཡིས། མདོམས་ནི་རབ་དུ་བསྒྲིབས་བྱས་ཤིང་།
ཉ་མར་ལག་བཀོད་བཞིན་རས་ནི། རབ་དུད་དེ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས།། 26

བདག་གིས་འབད་པ་ཆེན་པོ་ཡིས། དོན་དུ་གཅེར་ཡང་ཁྱོད་མ་འོངས།
ད་ལྟ་སྐལ་བ་ཞན་པ་བདག། མཐོང་བ་ཡིས་ནི་ཁྱོད་ལ་ཅི།། 27

གང་ཚེ་བདག་ནི་ལོངས་སྤྱོད་ཀྱིས། སྐལ་བཟང་རྣམ་འཕྲུལ་ཅི་ཡང་ལྡན།
དེ་ཡི་ཚེ་ན་ཁྱོད་ཀྱིས་ནི། བལྟ་བའི་དུས་འདི་མིན་ཞེས་སྨྲས།། 28

ཡན་ལག་བཅད་ཅིང་ཁྲག་གིས་བསྒོས། ཉོན་མོངས་རྒྱ་མཚོར་ལྷུང་བ་བདག།
ལྟ་བ་ཡི་ནི་དུས་འདི་དག། པདྨའི་མིག་ཅན་ཁྱོད་ཀྱི་ཅི།། 29

ཞེས་པ་སྨྲ་ཞིང་མཆི་མ་ཡི། ཆུ་ཡིས་གོས་ཀྱི་མཐའ་དག་བསྒྲད།
རྗེས་སུ་གདུང་བ་ཅན་དེ་ལ། དལ་གྱིས་ཉིར་སྣས་ཀྱིས་སྨྲས་པ།། 30

उपगुप्तस्ततस्तस्याः श्रुत्वा विषमवैशसम् ।
तद्विलोकनकालोऽयमित्युक्त्वा तां भुवं ययौ ॥ २३ ॥

दास्या निवेदितं दृष्ट्वा तमायान्तं शशिद्युतिम् ।
पूर्वाभिलाषशेषेण सा लज्जाकुटिलाभवत् ॥ २४ ॥

अन्तःप्रविष्टः केनापि वासनाभ्यासवर्त्मना ।
न कस्यांचिदवस्थायां रागस्त्यजति देहिनाम् ॥ २५ ॥

जघनावरणं कृत्वा दास्या वसनपल्लवम् ।
सा स्तनन्यस्तहस्ता तं बभाषे विनतानना ॥ २६ ॥

प्रयत्नेनापि महता नायातस्त्वं मयार्थितः ।
अधुना मन्दभाग्यायास्तव सन्दर्शनेन किम् ॥ २७ ॥

यदा ममाभवत्कोऽपि भाग्यसौभाग्यविभ्रमः ।
न दर्शनस्य कालोऽयमित्युक्तं भवता तदा ॥ २८ ॥

कृत्ताङ्गी रुधिरादिग्धा च्युताहं क्लेशसागरे ।
कालः कमलपत्राक्ष किमयं दर्शनस्य मे ॥ २९ ॥

इति ब्रुवाणां बाष्पाम्बुप्लाव्यमानांशुकांचलाम् ।
शनकैरुपगुप्तस्तां सानुतापमभाषत ॥ ३० ॥

མཛེས་སྡུག་ཟླ་བའི་གྲོགས་དང་ལུས་ནི་གསེར་གྱི་རྩ་ཞིང་མཛེས་པའི་ཀུན་པོ་དང་།
བཞིན་རས་པདྨ་ཟུམ་བྱེད་མིག་ནི་ཨུཏྤ་ལ་དག་ལ་དམན་པ་སྟེར་བྱེད་པ།
ཞིན་དུ་ཡིད་འཕྲོག་དེ་དག་རྣམས་ལ་བདག་ནི་མི་དགའ་འོན་ཀྱང་འབད་པས་བདག།
རྣམ་པར་སྨྲད་ན་རོ་དང་བྲལ་བ་འདོད་པ་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་ལྟ་བུ་འོངས།། 31

རྒྱུན་དང་གོས་ཀྱིས་རབ་བསྒྲིབས་ཤིང་། དྲི་བཟང་མཆོག་གིས་རབ་བསྒོས་པ།
ཁྱོད་ཀྱི་ལུས་ནི་མཛེས་པ་དག། སླར་ཡང་རང་བཞིན་འདི་འདྲར་གྱུར།། 32

ཤ་དང་རུས་པས་གང་བའི་དབྱིབས་ཅན་རྟག་ཏུ་མི་ཡིས་ནི།
ཡན་ལག་མ་ལུས་རབ་འཚེད་རྣག་ཁྲག་དང་ལྡན་སྨད་པའི་གནས།
ལུས་ཀྱི་མིང་ཅན་དུར་ཁྲོད་སྡུག་བསྔལ་ཚོགས་ཀྱི་གཏེར་དག་ལ།
གང་གི་དགའ་བ་དེ་དག་ཀྱི་ཉུང་ཀྱི་ཉུང་བརླག་པར་འགྱུར།། 33

ཀྱི་མ་རྨོངས་ལས་མི་རྣམས་ནི། རྣམ་པར་ཟག་ཅིང་དྲི་ང་ཅན།
རྣམ་འགྱུར་བུག་པས་གང་གྱུར་པའི། ལུས་པོ་ལ་ཡང་དགའ་བ་བསྒོམ།། 34

བདེ་གཤེགས་ཉེ་བར་བསྟེན་པ་ལས། ལུས་ཀྱི་རྣམ་གྲངས་གཅོད་པ་ཅན།
མི་བཟད་སྒྲུ་མ་དག་གི་གནས། སྡུག་བསྔལ་ཕུང་པོ་འདི་ཟད་འགྱུར།། 35

རྨོངས་པའི་མུན་པ་དག་གི་ཉིན་བྱེད་ཉོན་མོངས་གནས་སྐབས་མཐའ་དག་གཅོད་བྱེད་པ།

སྟོན་པའི་བསྟན་པའི་གནས་ལ་གང་དག་གིས་ནི་དགེ་བའི་གྲོགས་ཀྱི་སྨོན་ལམ་བཏབ།

कान्तिश्चन्द्र सखी सुवर्णकदलीलावण्यचौरं वपु-
र्वक्त्रं पद्मनिमीलनं कुवलयक्लैव्यप्रदे लोचने।
नैतन्मे दयितं मनोहरतरं किन्तु प्रयत्नादहं
कामानां प्रकृतिं विचारविरसां द्रष्टुं समभ्यागतः ॥ ३१ ॥

विभूषणांशुकच्छन्ने वरसौरभवासिते।
शोभा तवाभवत् काये स्वभावः पुनरीदृशः ॥ ३२ ॥

वत वत निहतास्ते कीर्णकेशास्थिसंस्थे
सततमनलतापोत्पच्यमानाखिलाङ्गे।
कुणपवति रमन्ते ये जुगुप्सानिधाने
व्यसनगणनिधाने कायनाम्नि श्मशाने ॥ ३३ ॥

विस्यन्दिनि दुरामोदे विक्षतच्छिद्रसङ्कुले।
अहो मोहान्मनुष्याणां कायेऽपि प्रियभावना ॥ ३४ ॥

सापायः कायपर्य्यायमायाविषयसंश्रयः।
दुःखस्कन्धः क्षयं याति सुगतोपासनादयम् ॥ ३५ ॥

मोहध्वान्तदिवाकरस्य सकलक्लेशावकाशच्छिदः
शास्तुः शासनसंश्रये प्रणिहितं कल्याणमित्रस्य यैः।

དེ་དག་ལུས་ཞེས་བརྗོད་པའི་དཔྱལ་བ་དམར་པའི་ཀིང་ཅུས་དྲ་བས་གང་གྱུར་ཅིང་།
རྒྱ་མའི་འཕྲེང་བ་བརྒྱུས་པས་དཀྲིགས་པའི་རྣམ་འགྱུར་སྟོད་དུ་སྤྲར་ཡང་ལྟུང་མི་
འགྱུར།། 36

དེ་དག་ཐོས་ནས་སྨད་འཚོང་མ། སྡུག་བསྔལ་གྱིས་ཉེན་ཆགས་བྲལ་ཅན།
ཞི་སྙད་བསོད་ནམས་དཀོན་ཅོག་གསུམ། སྐྱབས་འདིས་དག་ལ་སྐྱབས་སུ་སོང་།།
37

དེ་ནས་དེ་ཡིས་ཉེར་སྦྲས་ཀྱི། གདམ་གྱིས་རྒྱན་ཤུགས་འབྲས་བུ་ཐོབ།
ཆོས་ཀྱི་ལམ་ལ་ཞུགས་པ་ཡིས། བདེན་པ་མཐོང་ནས་ཞི་བར་གྱུར།། 38

དེ་ནས་དེ་ནི་ལྷ་ཡི་ཚོགས། འདོད་དང་ལྡན་པར་སྐྱེས་པ་དག།
བཅོམ་བརྟག་དགའ་འཁྲིད་རྣམས་ཀྱིས། ཐོས་ནས་དེ་ལུས་སྤྱང་པ་བྱས།། 39

སྐབས་དེར་ཤུ་ནའི་གོས་ཅན་ནི། རབ་དང་བློ་ཡི་མངོན་ཕྱོགས་དེ།
ཉེར་སྦྲས་རབ་ཏུ་འབྱུང་བ་ཡིས། དུས་ལ་བབ་པར་ཡང་དག་བསམས།། 40

དེ་ནས་དེ་ཡིས་རབ་བྱུང་ངེས། བླ་མེད་དགྲ་བཅོམ་གནས་ཐོབ་ནས།
གྲོང་ཁྱེར་དགའ་གནས་རྣམས་ལ། དམ་ཆོས་སྟོན་པའི་ཚུལ་པ་མཛད།། 41

འཁོར་དེར་ཆོས་ནི་བདུད་རྩི་དང་། བཙས་པ་རབ་ཏུ་སྟོན་དེ་ལ།
བགེགས་ཚོགས་རྣམ་འགྱུར་རབ་མང་བ། དེ་དང་དེ་ནི་བདུད་ཀྱིས་བྱས།། 42

ཉན་པ་སེམས་ནི་གཡེང་བ་རྣམས། གང་གིས་རྣམ་པར་འཕྲུལ་གྱུར་པ།
མཛེས་པ་གསེར་དང་བཅས་པ་ཡི། དེར་ནི་སྒྲ་དྲིག་ཆར་པ་ཕབ།། 43

नैव क्लिन्नकलङ्कपङ्ककलिते कीर्णान्त्रमालाकुले
ते मज्जन्ति विकारभाजि नरके कायाभिधाने पुनः ॥ ३६ ॥

एतदाकर्ण्य गणिका दुःखोद्वेगविरागिणी ।
पुण्यं रत्नत्रयं शान्त्यै शरण्यं शरणं ययौ ॥ ३७ ॥

उपगुप्तकथावाप्तस्रोतःप्राप्तफलाथ सा ।
धर्ममार्गप्रणयिनी दृष्टसत्या व्यपद्यत ॥ ३८ ॥

तस्यां देवनिकायेऽथ संभूतायां प्रभामये ।
मथुरावासिनः श्रुत्वा चक्रुस्तद्देहसत्क्रियाम् ॥ ३९ ॥

अत्रान्तरे शाणवासी समभ्येत्य प्रसन्नधीः ।
प्रव्रज्यामुपगुप्तस्य प्राप्तकालाममन्यत ॥ ४० ॥

सोऽथ प्रव्रजितस्तेन प्राप्यार्हत्पदमुत्तमम् ।
सद्धर्मदेशनारम्भं विदधे पुरवासिनाम् ॥ ४१ ॥

धर्मं प्रदिशतस्तस्य तस्यां पर्षदि साम्प्रतम् ।
चकार मारः प्रचुरां तां तां विघ्नौघविक्रियाम् ॥ ४२ ॥

ववर्ष मौक्तिकं तत्र रुचिरं च सकाञ्चनम् ।
येन व्याक्षिप्तचित्तानां श्रोतॄणामभवद्भ्रमः ॥ ४३ ॥

དེ་ཡི་མི་འཕྲོག་གར་མཁན་མ། མཛེས་སྡུག་འཛེ་སྒེག་གཟུགས་བྱས་ནས།
དྲི་ཟ་ལྷ་མོ་ཡི་ཚོགས་རྣམས་དང་། ལྷན་ཅིག་དེར་ནི་གར་དག་བྱས།། 44

མཛེས་པའི་གར་དང་རོལ་རྩེད་ཀྱིས། བདེ་བླག་ཏུ་ནི་སེམས་ཕྲོགས་པ།
གདུལ་བྱ་རྣམས་ཀྱི་ཡིད་ནི་དེར། ངེས་པར་འདོད་པའི་རང་བཞིན་གྱུར།། 45

དེ་ནས་རྣམ་པར་མ་དུལ་བའི། བདུད་ནི་འདུལ་བ་ལ་བརྩོན་པ།
ཉེར་སྦས་ཀྱིས་ནི་རྣམ་འགྱུར་ལ། འོས་པའི་ཕྱིར་བཅོམ་རབ་ཏུ་བསམས།། 46

བ་ཀུད་ལ་ཕྱོགས་ཏེ་ངེས་སླེབས་པ། ཁྱོད་ནི་མཁས་པས་བདག་ཚིམ་སྟེ།
ཀྱི་མ་གར་དང་ཀྱི་མ་གླུ། མཆོག་ཉིད་ཁོ་ན་ཅི་ཞིག་བརྗོད།། 47

ཅེས་བརྗོད་འཕྲེང་བའི་ཟློལ་གྱིས་ནི། རོ་ནི་གསུམ་དག་དེ་ལ་བཏགས།
མགོ་ལ་སྦྲུལ་གྱི་རོ་དང་ནི། མགྲིན་པར་མི་དང་ཁྱི་ཡིའོ།། 48

བ་ཀུད་དེས་རོ་ནི་གསུམ་པོ་དེ། རང་གིས་དགྲོལ་བར་མ་ནུས་ནས།
དབང་པོ་ཉེ་དབང་གདོང་བཞི་དང་། བཅས་པའི་ལྷ་ལ་སྐྱབས་སུ་སོང་། 49

དེས་གྲོལ་བར་མ་ནུས་ཚེ། པདྨ་སྐྱེས་ཀྱིས་རབ་བསྐུལ་ཏེ།
དེ་ནས་དྲེགས་པ་ཉམས་པའི་བདུད། དེ་ཉིད་ལ་ནི་སྐྱབས་སུ་སོང་།། 50

ཤིན་ཏུ་དུལ་བས་ཉེར་སྦས་ཀྱིས། ཀང་པ་དག་ལ་དེས་གཏུགས་ཏེ།
རྒྱགས་པ་བཏང་ནས་རབ་དང་བས། ཐལ་སྦྱར་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།། 51

स कृत्वा हार्यसौन्दर्य्यं ललितं नर्त्तकीवपुः ।
ननर्त्त सहितस्तत्र गन्धर्वाप्सरसाङ्गणैः ॥ ४४ ॥

कान्तानृत्यविलासेन हेलापहृतचेतसाम् ।
अभूत्तत्र विनेयानां कामं काममयं मनः ॥ ४५ ॥

अविनीततरस्याथ मारस्य विनयोद्यतः ।
अचिन्तयद्विकारार्हा मुपगुप्तः प्रतिक्रियाम् ॥ ४६ ॥

सोऽभ्येत्य मारमवदत्तुष्टोऽहं तव कौशलात् ॥
अहो नृत्यमहो गीतं दिव्यमेव किमुच्यते ॥ ४७ ॥

उक्तेति मालाव्याजेन बबन्धास्य शवत्रयम् ।
मस्तके सर्पकुणपं कर्णे च श्वमनुष्ययोः ॥ ४८ ॥

स्वयं मोक्तुमशक्तोऽसौ मारस्तत्कुणपत्रयम् ।
प्रययौ शरणं देवान् सेन्द्रोपेन्द्रचतुर्मुखान् ॥ ४९ ॥

तेषु मोक्तुमशक्तेषु प्रेरितः पद्मजन्मना ।
भग्नदर्पोऽथ कन्दर्प स्तमेव शरणं ययौ ॥ ५० ॥

स निपत्यातिविनयादुपगुप्तस्य पादयोः ।
प्रसाद्य मदमुत्सृज्य तमुवाच कृताञ्जलिः ॥ ५१ ॥

གནོད་པ་བྱས་པ་བདག་ལ་ནི། ཡང་དག་འཇིགས་པ་ཁྱོད་ཀྱིས་བྱས།
ད་ནི་ཁྱོད་ལ་བདག་བརྟེན་པས། ཁྲོ་བ་སྤོང་ལ་བཀའ་དྲིན་མཛོད།། 52

བདག་གིས་གནོད་པ་བྱས་མོད་ཀྱང་། བདེ་གཤེགས་བདག་ཉིད་ཆེན་པོ་ཡིས།
བུ་ནི་རྣམ་པར་མ་དུལ་བ། ཕ་ཡིས་བཞིན་དུ་རབ་ཏུ་བསྲུངས།། 53

བྱང་ཆུབ་སྙིང་པོར་རྡོ་རྗེའི་གདན། བསྟེན་པ་དེ་ལས་བདག་གིས་སྤྱོན།
གནོད་པ་ཡིས་ནི་ཚོགས་དག་བྱས། དེ་ཡིས་བདག་ལ་བཟོད་པ་ཉིད།། 54

བྱང་ཆུབ་དིང་འཛིན་གྲུབ་པའི་གནས་དེར་སྐྱིལ་ཀྲུང་དག་ནི་བཅས་ནས་གནས་པའི་ཚེ།
རྣམ་འགྱུར་རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་བྱེད་པ་བདག་ལ་ར་བ་ཉིད་ནི་འཛིན་བྱེད་ཅིང་།
ཁྲོ་བ་བཟོད་པས་བཀུས་པའི་སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་དག་པ་ཉིད་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཅན།
བསམ་གདན་མཆོག་ཏུ་སྦྱོང་བར་བྱེད་པ་དེ་ཡི་སྤྱན་ཡང་ཅུང་ཟད་ཕྱེ་མ་ཡིན།། 55

ཁྱོད་ཀྱིས་སྙིང་རྗེ་བདང་ནས་རིང་། བདག་ནི་རབ་ཏུ་སྨད་པར་བྱས།
གནོད་བྱེད་ལ་ཡང་ཆེན་པོ་ཡིས། ཡིད་ནི་ཁྲོ་བའི་དྲི་ལྡན་མིན།། 56

བདག་ལ་རོ་དག་བདགས་པ་ཕོང་། ཁྱོད་ཀྱི་བཀའ་ལ་བདག་གནས་སོ།
དུལ་བས་དེ་སྐད་སྨྲ་བྱེད་པ། དེ་ལ་ཉེར་སྦྲས་ཀྱིས་སྨྲས་པ།། 57

གལ་ཏེ་སྨྲར་ཡང་ཉེར་འཚོ་ཁྱོད། དགེ་སློང་རྣམས་ལ་མི་བྱེད་ན།
ཁྱོད་ལ་བརྟན་པར་བཅིངས་པ་ཡི། རོ་འདི་དག་ནི་བདག་གིས་དགྲོལ། 58

कृतं कृतापकारस्य त्वया यदुचितं मम ।
प्रसीद त्यज्यतां मन्युरधुनाहं त्वदाश्रयः ॥ ५२ ॥

अहं कृतापराधोऽपि सुगतेन महात्मना ।
अविनीततरः सूनुर्जनकेनेव रक्षितः ॥ ५३ ॥

बोधिमूले मया तस्य वज्रासनयुषः पुरा ।
कृता निकारनिकराः क्षान्तमेव च तेन मे ॥ ५४ ॥

नानाकारनिकारकारिणि मयि प्राकारतां बिभ्रता
तस्मिन् बोधिसमाधिसिद्धिभवने पर्यङ्कबन्धस्थितौ ।
क्षान्तिक्षालितमन्युना भगवता बुद्धेन शुद्धात्मना
तेन ध्यानपरायणेन न मनागुन्मीलितं लोचनम् ॥ ५५ ॥

भवता त्वद्य करुणामुत्सृज्याहं खलीकृतः ।
सापराधेऽपि महतां न मन्युमलिनं मनः ॥ ५६ ॥

मुञ्च मे कुणपाबन्धं स्थितोऽहं तव शासने ।
इति ब्रुवाणं प्रणयादुपगुप्तस्तमभ्यधात् ॥ ५७ ॥

न करिष्यसि चेदेवं भिक्षूणां विप्लवं पुनः ।
तदेतत्तव मुञ्चामि दृढं कुणपबन्धनम् ॥ ५८ ॥

གུས་ལྡན་བདག་ལ་དགའ་བ་ནི། འདི་ཡང་ཁྱོད་ཀྱིས་རབ་ཏུ་བྱ།
འདས་པའི་བདེ་གཤེགས་རྣམ་པ་ནི། ཁྱོད་ཀྱིས་ཡང་དག་བསྟན་པར་འོས།། 59

ཀུན་གྱི་རྗེས་མཐུན་ཁྱོད་ཀྱིས་ནི། བློས་གར་ནུས་པ་བདག་གིས་མཐོང་།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་མཐོང་བ་དག། བདག་ནི་མཆོག་ཏུ་འདོད་པར་གྱུར།། 60

བདེ་གཤེགས་ཀྱི་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ། ཐོས་པའི་བདག་ཉིད་བདག་གིས་མཐོང་།
ངེས་པར་མིག་གི་བདུད་རྩིའི་རྒྱུན། གཟུགས་ཀྱི་སྐུ་དེ་མ་ཡིན་ནོ།། 61

ཞེས་བརྗོད་དེ་ཡི་རོ་དག་ནི། བཀྲོལ་བ་མི་རྟོག་མཚོན་ཅན་གྱིས།
དེ་ལ་སྨྲས་པ་བདེ་གཤེགས་ཀྱི། གཟུགས་དང་མཚུངས་པར་བྱེད་མི་ནུས།། 62

དེ་ལྟ་ན་ཡང་ཁྱོད་ཀྱི་བཀའ། འདུལ་བ་ལ་གནས་བདག་གིས་བསྟན།
ཁྱོད་ཀྱིས་བདག་ནི་བདེ་གཤེགས་དབྱིབས། ཕྱག་འོས་ལ་ཡང་ཕྱག་མི་བྱ།། 63

ཞེས་བརྗོད་བདེ་གཤེགས་རྣམ་པ་ནི། རྣམ་པ་ཀུན་ཏུ་བདེ་སྟེར་ཞིང་།
གསེར་གྱི་སྣང་བ་རབ་ཏུ་སྤྲོ། མཛེས་པ་དག་ནི་དེ་ཡིས་བསྟན།། 64

སྤྱན་ནི་ཟུང་དག་རིང་ཞིང་བསམ་བརྟན་ལ་ཆགས་སྨིན་མའི་ཁྲི་ཤིང་རྣམ་འགྱུར་བྲལ།

ཞངས་ཀྱི་རྒྱུད་ནི་མཛེས་པར་ཆགས་ཤིང་གསེར་གྱི་གདུགས་དང་མཚུངས་པའི་མཚན་མ་ཅན།

རྒྱན་མེད་སྐན་གྱི་ཞགས་པ་རིང་ཞིང་མཛེས་ལ་ཕྱག་གྱི་ལྷོན་པ་ཀུན་ཏུ་འཕྱང་།
སངས་རྒྱས་ཀྱི་ནི་གཟུགས་དག་མཐོང་ནས་བསམ་པ་མེད་པ་རྣམས་ཀྱང་དགའ་བར་གྱུར།། 65

इदं च भवता कार्यं प्रियं प्रणयिनो मम ।
अतीतसुगताकारं सन्दर्शयितुमर्हसि ॥ ५९ ॥

दृष्टा तव मया शक्तिर्नाट्ये सर्वानुकारिणः ।
सन्दर्शने भगवतः परमुत्कण्ठितो ह्यहम् ॥ ६० ॥

धर्मकायो मया दृष्टः सुगतस्य श्रुतात्मना ।
रूपकायस्तु नैवासौ नयनामृतनिर्भरः ॥ ६१ ॥

इति निर्मुक्तकुणपस्तेनोक्तः कुसुमायुधः ।
तमूचे सौगतं रूपं तुल्यं कर्त्तुं न शक्यते ॥ ६२ ॥

तथापि दर्शयाम्येष त्वदाज्ञाविनये स्थितः ।
प्रणम्येन प्रणम्योऽहं न त्वया सुगताकृतिः ॥ ६३ ॥

इत्युक्त्वा सुगताकारमविकारसुखप्रदम् ।
स समुत्सृष्टकनकालोककान्तमदर्शयत् ॥ ६४ ॥

दीर्घध्याननिमीललोचनयुगं निःसम्भ्रमभ्रूलतम्
नासावंशनिषक्तकान्तकनकच्छायोपमानालिकम् ।
निर्भूषायतकर्णपाशललितं व्यालम्बिबाहुद्रुमम्
बौद्धं रूपमवेक्ष्य निर्वृतिरभून्निश्चेतनानामपि ॥ ६५ ॥

བཅོམ་ལྡན་སྐུ་ནི་མཛེས་པ་དེ། མཐོང་ནས་ཉེར་སྦས་མཆི་མ་དང་།
བཅས་ཤིང་སྤྱི་ཡོང་རྒྱས་པ་ཡིས། དེ་ཡི་ཞབས་ལ་ཕྱག་དག་བྱས།། 66

ངེས་པར་བདག་གི་ཕྱག་འོས་མིན། ཞེས་པ་ཡིད་སྨྲབས་སྨྲ་བྱེད་ཚེ།
དེ་ལ་ཉེར་སྦས་ཀྱིས་སྨྲས་པ། རྒྱལ་བའི་རྣམ་པ་ཁྱོད་ཕྱག་འོས།། 67

བཅོམ་ལྡན་སྐུ་ནི་བཅོས་མ་ཡི། གཟུགས་རྣམས་ལ་ཡང་ཕྱག་བྱར་འོས།
མཁས་པ་རྣམས་ནི་ས་ཤིང་དང་། ཁམས་ལ་ཕྱག་དེ་བྱེད་པ་མིན།། 68

ཉེར་སྦས་ཀྱིས་ནི་འདི་བརྗོད་པ། རབ་དང་བློ་ལྡན་བདུད་ཀྱིས་ཐོས།
བདེ་གཤེགས་གཟུགས་ནི་ཡོངས་བཏང་སྟེ། རང་གི་གཟུགས་སུ་རབ་ཏུ་བསྟན།། 69

དེ་ནས་དུལ་ཞིང་ཕན་པ་འཚོལ། དེ་ཡིས་ཡང་དག་བཟོས་པ་ཡི།
གྲོང་ཁྱེར་པ་རྣམས་དམ་པའི་ཆོས། ཉན་དུ་ཉེར་སྦས་དྲུང་དུ་འོངས།། 70

དེ་ཡི་མན་ངག་གདམས་གྱིས་ནི། བདེན་པ་མཐོང་ཞིང་དགའ་བ་ཡིས།
གྲོང་ཁྱེར་ན་གནས་འབུམ་ཕྲག་ནི། བཅོ་བརྒྱད་དགྲ་བཅོམ་ཐོབ་པར་འགྱུར།། 71

དེ་ལྟར་འཇིག་རྟེན་མཐའ་དག་དགེ་བ་དག་གིས་སྣང་བྱེད་ཅིང་།
རབ་རིབ་འཕྲོག་པར་བྱེད་པས་ཆོས་ཀྱི་ལམ་གྱི་མན་ངག་བསྒྲུབས།
རྒྱ་ཆེ་དགེ་བའི་རྩ་བས་བསོད་ནམས་རྒྱས་པ་ཐོབ་རྣམས་ཀྱིས།
ཛུ་འཕྲུལ་ཆེན་པོ་གང་དེ་གཞན་ལ་ཕན་པའི་དོན་དུ་གྱུར།། 72

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཉེར་སྦས་ཀྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བདུན་ཅུ་རྩ་གཉིས་པའོ།།

उपगुप्तस्तदालोक्य कान्तं भगवतो वपुः ।
सबाष्पपुलकाकीर्णश्चक्रे तत्पादवन्दनम् ॥ ६६ ॥

नच नाम प्रणम्योऽहमिति वादिनि मन्मथे ।
उपगुप्तस्तमवदत् प्रणम्यस्त्वं जिनाकृतिः ॥ ६७ ॥

कृत्रिमेष्वपि बिम्बेषु वन्द्या भगवतस्तनुः ।
न स मृत्काष्ठधातूनां प्रणामः क्रियते बुधैः ॥ ६८ ॥

इत्युक्तमुपगुप्तेन श्रुत्वा मारः प्रसन्नधीः ।
विहाय सौगतं रूपं स्वं वपुः प्रत्यपद्यत ॥ ६९ ॥

तेनैवाथ समाहूता विनीतेन हितैषिणा ।
उपगुप्तान्तिकं पौराः सद्धर्मं श्रोतुमाययुः ॥ ७० ॥

तस्योपदेशकथया सत्यदर्शननिर्वृताः ।
लक्षाण्यष्टादश प्रापुरर्हत्त्वं पुरवासिनाम् ॥ ७१ ॥

इति सकललोकालोक कल्याणकारी
व्यथिततिमिरहारी धर्ममार्गोपदेशः ।
विपुलकुशलमूलप्राप्तपुण्योदयानां
भवति किल महर्द्धिर्या परेषां हिताय ॥ ७२ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलताया
मुपगुप्तावदानं नाम द्वासप्ततितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བདུན་ཅུ་རྩ་གསུམ་པ།

ཉམས་པ་མེད་པའི་བཀའ་དང་ཡངས་པའི་དཔལ།
གྲགས་པ་འཕེལ་ཟེར་བྱེད་པ་བརྒྱ་ལྷར་དཀར།
ངོ་མཚར་སྤྱོད་པས་མཛེས་པའི་མཐུ་དག་ནི།
བདེ་གཤེགས་མཆོད་པའི་འབྲས་བུ་ཆ་ཤས་ཡིན།། 1

གྲོང་ཁྱེར་པ་ཏ་ལི་པུ་ཏྲར། རྒྱལ་པོ་དཔལ་ལྡན་མྱ་ངན་མེད།
བྱུང་སྟེ་གང་གིས་སྦྱིན་པ་རྟོན། གྲངས་ཀྱི་སྒྲ་ཡི་དབྱུལ་བར་གྱུར། 2

ནམ་ཞིག་མདུན་སར་འཁོད་དེ་ལ། ཚོང་པ་གླིང་དུ་འགྲོ་བ་པོ།
བདོག་ཀུན་ཉམས་པའི་མྱ་ངན་གྱིས། གཟིར་ཅིང་ཤུགས་རིང་ལྡན་པས་ཞུས།། 3

དཔུང་པའི་གྲིབ་མ་རིང་པོ་ལ། སྐྱིད་པ་ངལ་གསོ་ལྷ་ཁྱོད་ཀྱིས།
རྒྱལ་སྲིད་དག་ན་འགའ་ཞིག་ཀྱང་། རི་བ་བསམ་པས་གཟིར་བ་མཐོང་།། 4

སྐལ་བ་ཉམ་ཆུང་འབབ་ཞིག་ལས། རྒྱ་མཚོར་གནས་པའི་ཀླུ་རྣམས་ཀྱིས།
བདག་ཅག་རྣམས་ཀྱི་གཟིངས་བཅག་ནས། རིན་ཅན་ནོར་རྣམས་ཕྲོགས་པར་གྱུར།། 5

བདག་ཅག་རྣམས་ནི་གཞན་དུ་འཚོ། ཁྱབ་བདག་དེ་ལ་བཏང་སྙོམས་ན།
རྒྱ་མཚོར་འགྲོ་བ་ཆད་པ་ལས། ཁྱོད་ཀྱི་མཛོད་ཉིད་སྐམ་པར་སྐྱུར།། 6

अथ त्रिसप्ततितमः पल्लवः ।

अखण्डितं शासन मायता श्रीः
यशस्तुषारांशुशतावदातम् ।
आश्चर्य्यचर्य्याहचिरः प्रभावः
फलांशलेशः सुगतार्चनस्य ॥ १ ॥

राजा श्रीमानशोकोऽभूत्पुरे पाटलिपुत्रके ।
दानार्थिनामभूद् यस्य संख्याशब्ददरिद्रता ॥ २ ॥

तं कदाचित् सभासीनं वणिजो द्वीपगामिनः ।
सर्वस्वनाशशोकार्ताः सनिश्वासा व्यजिज्ञपुः ॥ ३ ॥

देव दीर्घभुजच्छायाविश्रान्तभुवनस्य ते ।
राज्ये न दृश्यते कश्चिच्चिन्तासन्तापिताशयः ॥ ४ ॥

अस्माकं तु प्रवहणं भंक्त्वा रत्नधनं हृतम् ।
केवलं भाग्यदौर्बल्यान्नागैः सागरवासिभिः ॥ ५ ॥

वयमन्यच्च जीवामस्तदुपेक्षा तु ते विभो ।
समुद्रयात्राविच्छेदात् कोशशोषविधायिनी ॥ ६ ॥

ཅེས་པ་དེ་དག་ཚིག་ཐོས་ནས། དེ་དག་གདུང་བ་འཕོས་པ་ཡིས།
རྒྱལ་པོས་རྒྱ་མཚོར་སོང་བའི་སྐུ། རྣམ་པར་བསམས་ནས་གཡོ་མེད་གྱུར།། 7

ཡིད་ནི་ཁྲི་བས་འཁྲུགས་གྱུར་ཅིང་། བཅོམ་ཐབས་མེད་པ་དེ་མཐོང་ནས།
རྫུང་གནས་མཛོད་ཤེས་རྣུག་པ་ཡི། དགེ་སློང་དབང་པོ་ཞེས་པས་སྨྲས།། 8

རིན་ཅེན་ཀུན་པོ་སྐུ་རྣམས་ལ། ཁྲོད་མཐུ་མི་ནི་གོ་བྱེད་པ།
ཟངས་ཀྱི་གླིགས་བུ་ལ་བཀོད་པའི། སློང་ཡིགས་བདག་སློང་བར་མཛོད།། 9

ཅས་པ་དགེ་སློང་ཚིག་ཐོས་ནས། རྒྱལ་པོ་ཡིས་ནི་སློང་ཡིག་སློངས།
རྩ་གཏེར་དག་ཏུ་འཕངས་པ་དེ། སྐུ་རྣམས་ཀྱིས་ནི་ངོགས་སུ་འཕངས།། 10

མ་བཀུར་པ་དེས་མི་བདག་ནི། བཞིན་གྱི་རྩ་སྐྱེས་མཛེས་བྲལ་ཞིང་།
བསམ་པས་བློ་ཉལ་དབུགས་འབྱིན་ཅིང་། སྣ་མ་སོར་མོ་བཀོད་དེ་གནས།། 11

མ་ཉིང་ལ་ནི་བུད་མེད་བཞིན། དེ་ལ་གཏིང་ནི་ཕྱིར་ཕྱོགས་གྱུར།
བཀྲས་ཚགས་ཅན་གྱི་སྲིད་པ་ནི། རིང་བཞིན་མཚན་མོ་ཟད་མ་གྱུར།། 12

གཞན་དོན་སྤྱོར་ལྡན་དེ་ལ་ནི། ནམ་མཁའི་ལྷ་མོས་མངོན་ཕྱོགས་སྨྲས།
ས་སྐྱོང་ཐབས་ནི་ཡོད་པ་ལ། བསམ་པ་བྲ་བར་མི་འོས་སོ།། 13

གང་ཞིག་ཕྱུག་འཚོལ་ཡོངས་སུ་བསྐྱ་བས་ཆེར་འོས་བསོད་ནམས་ཅན།
སྐྱི་ཟོ་ཐར་མོ་སྤྲུར་བས་མཚན་པས་རྒྱལ་བ་མཆོད་བྱེད་པ།

इति तेषां वचः श्रुत्वा राजा संक्रान्ततद्भयः ।
समुद्रान्तर्गतान् नागान् विचिन्त्य स्तिमितोऽभवत् ॥ ७ ॥

तं दृष्ट्वा निष्प्रतीकारकोपव्याकुलमानसम् ।
इन्द्रो नामाब्रवीद् भिक्षुः षडभिज्ञः स्थितोऽन्तिके ॥ ८ ॥

नागानां रत्नचौराणां त्वत्प्रतापाग्निसूचकः ।
ताम्रपट्टार्पितो लेखः प्रेष्यतां पृथिवीपते ॥ ९ ॥

इति भिक्षुवचः श्रुत्वा लेखं राजा विसृष्टवान् ।
क्षिप्तमेव तमम्भोधौ नागास्तीरे प्रचिक्षिपुः ॥ १० ॥

नृपस्तेनावमानेन विच्छायवदनाम्बुजः ।
चिन्तासुप्तमतिस्तस्थौ श्वसन्नासार्पिताङ्गुलिः ॥ ११ ॥

निद्रा पराङ्मुखी तस्य क्लीवस्येवाङ्गनाभवत् ।
दीर्घा तृष्णेव लुब्धस्य न च रात्रिः क्षयं ययौ ॥ १२ ॥

तं व्योमदेवताभ्येत्य परार्थोद्यतमभ्यधात् ।
उपाये सति भूपाल न चिन्तां कर्तुमर्हसि ॥ १३ ॥

ये पूजयन्ति जिनमञ्जलिरञ्जितेन
मूर्ध्ना प्रणामपरिणाममहार्हपुण्याः ।

རྣམ་པར་རྒྱལ་ལྡན་དེ་དག་བཀའ་ཡི་འབྲིང་བ་རྣམ་བཀྲ་ཞིང་།
དངོས་པོ་མཆོག་གི་མཛེས་པ་ལྷ་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་སྤྱི་བོར་འཛིན།། 14

དེ་ཕྱོས་ནང་པར་མི་བདག་ནི། ཁྲུས་བྱ་བརྟུལ་ཞུགས་གཙང་ལྡན་པས།
དག་པའི་ཡིད་ཀྱིས་སངས་རྒྱས་ནི། བསམས་ནས་གུབ་སྨད་རབ་སྨྲས་པ།། 15

སྐྱི་ཟ་སྤོབས་ཀྱིས་འཇུམ་རོ་ལྡན་སྙིང་རྗེ་ཟླ་བའི་འོད་ཀྱི་རི་བ་སྐྱོང་།
མཛེས་པའི་མཐའ་དག་སྤུན་པ་ཞི་སྐྱད་དཀར་པོ་འི་ཕྱོགས་ལ་རྣམ་པར་གནས།
རྟག་ཏུ་ཀུན་དགའ་རྣམ་འགྱུར་མེད་ཅིང་མཆོག་གི་བདུད་རྩི་རྣམ་པར་སྤྲོ།
གཡུང་བ་རབ་ཞིའི་གྲོགས་པོ་སངས་རྒྱས་ཟླ་ཉའི་གཟུགས་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ།། 16

གང་ཞིག་རྟག་ཏུ་ཡུལ་གྱི་སྐྱོན་ལས་ཕྱི་རོལ་ཕྱོགས་གྱུར་ཅིང་།
རབ་མང་པ་རོལ་ཕྱིན་པ་བརྟེན་པའི་སེམས་ནི་དབང་གྱུར་པ།
གཞན་ཕན་དག་ལ་མཆོག་ཏུ་མངོན་ལྡན་རྟེན་ཅིང་ཀུན་རྟོག་གི།
དཔག་བསམ་ལྗོན་པ་དག་བདག་ལ་དགེ་བར་སྟེར་གྱུར་ཅིག།། 17

ཅེས་པ་ས་ཡི་བདག་པོ་ཡི། སྨོན་ལམ་གསུས་པ་སྒྲུབ་བྱེད་ཀྱིས།
དགྲ་བཅོམ་སྟོང་ཕྲག་དྲུག་ཅུ་ནི། ཕྱོགས་རྣམས་དག་ལ་མྱུར་བར་བྱོན།། 18

དེ་ནས་དགེ་སློང་དབང་པོ་ཡིས། གཅིག་ནི་མི་བདག་མཆུངས་པ་དང་།
གཞན་པ་ཀླུ་ཡི་རྒྱལ་པོ་ཡི། རྣམ་པ་གསེར་གྱི་རང་བཞིན་བྱས།། 19

तेषां सुरा अपि सुवर्णविचित्रशोभा
माल्यास्रजं विजयिनां शिरसा वहन्ति ॥ १४ ॥

एतदाकर्ण्य नृपतिः प्रातः स्नातः शुचिव्रतः ।
सिद्धौ शुद्धेन मनसा ध्यात्वा बुद्धं समभ्यधात् ॥ १५ ॥

सत्त्वस्मेरं सरसकरुणाकौमुदीपूरिताशम्
शान्त्यै कान्तं सकलतमसां शुक्लपक्षे निविष्टम् ।
नित्यानन्दं परमममृतं निर्विकारं व्रजन्तम्
वन्दे तापप्रशमसुहृदं बुद्धपूर्णेन्दुबिम्बम् ॥ १६ ॥

चित्तं सदा विषयदोषपराङ्मुखानाम्
येषां वशे परमपारमिताश्रयाणाम् ।
ते मे परं परहिताभिनिवेशभाजः
सङ्कल्पकल्पतरवः कुशलं दिशन्तु ॥ १७ ॥

इति भक्तिविधानेन प्रणिधानेन भूपतेः ।
सहस्राण्यर्हतां षष्टिस्तूर्णं दिग्भ्यः समाययुः ॥ १८ ॥

अथेन्द्रो भिक्षुराकारं हैमं रम्यमकारयत् ।
सदृशं नृपतेरेकं नागराजस्य चापरम् ॥ १९ ॥

དེ་ནས་དལ་བུ་དལ་བུ་ཡིས། ས་བདག་གཟུགས་ནི་དམའ་བ་དང་།
སྐུ་ཡི་དབང་པོའི་གཟུགས་དག་ནི། ཡ་མཚན་བྱེད་པ་མཐོ་བར་གྱུར། 20

ཇི་ལྟ་ཇི་ལྟར་མི་བདག་གིས། རྟག་ཏུ་དཀོན་ཅོག་གསུམ་མཆོད་བྱས།
དེ་ལྟ་དེ་ལྟར་སྐུ་ཡི་གཟུགས། དམའ་ཞིང་གཞན་པ་མཐོ་བར་གྱུར།། 21

དེ་ནས་རྒྱལ་པོས་སྤྲིང་ཡིག་སྐུར། སྤྲིངས་ཚེ་སྐུ་ཡི་གང་ཟག་རྣམས།
མ་ལུས་ཚོང་པའི་རིན་ཅན་ཁུར། ཕྲག་ལ་བཀོད་ནས་འོངས་པར་གྱུར།། 22

མ་ལུས་ནོར་དེ་མི་བདག་གིས། ཚོང་དཔོན་རྣམས་ལ་རབ་ཏུ་བྱིན།
སྐུ་རྣམས་བཏང་ནས་རྒྱལ་བ་ཡི། བསྟན་ལ་གུས་དང་བཅས་པར་གྱུར།། 23

མི་བདག་ལ་འོས་ཉེར་སྤྱད་ཀྱིས། དགྲ་བཅོམ་རྣམས་ལ་མཆོད་པ་བསྐྱབས།
ཀུན་ཏུ་རྟོག་པ་མི་ཆུང་བས། སངས་རྒྱས་བལྟ་བར་འདོད་པར་གྱུར།། 24

ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་འདས་གྱུར་པས། རྒྱལ་བ་མཐོང་བ་རྙེད་དཀའི་ཚེ།
ཡོན་ཏན་གྱིས་ནི་ཉེར་སྤྲས་དང་། བདེ་གཤེགས་མཚུངས་པར་དེ་ཡིས་ཐོས།། 25

གུས་དང་ལྡན་པའི་དབང་གྱུར་ཅིང་། མཛའ་ལ་མཉེས་གཞིན་འགྲོ་ཚེ་ན།
གནས་པ་དེ་ནི་མི་བདག་གིས། གུས་པས་ཡོ་ཉ་དག་གིས་བོས།། 26

དམ་ཆོས་དགེ་བ་རྒྱས་པ་ནི། ཨོངས་རྫོགས་དེ་ཡི་མཆོད་པས་ཐོབ།
རྟག་ཏུ་དཀོན་ཅོག་གསུམ་པོ་ནི། རྒྱལ་པོའི་དཔུང་གཉེན་དག་ཏུ་གྱུར།། 27

ततः क्षितिपते मूर्त्तिर्विननाम शनैः शनैः ।
उन्ननाम च नागेन्द्रमूर्तिं विस्मयकारिणी ॥ २० ॥

यथा यथा नृपश्चक्रे सदा रत्नत्रयार्चनम् ।
तथा तथा नागमूर्तिर्विननामोच्चयौ पुरा ॥ २१ ॥

अथ राज्ञा पुनर्लेखे प्रहिते नागपुङ्गवाः ।
स्कन्धार्पिताखिलवणिग्रत्नभाराः समाययुः ॥ २२ ॥

तदशेषं नरपतिर्वितीर्य्य वणिजां धनम् ।
विसृज्य नागानभवज्जिनशासनसादरः ॥ २३ ॥

स विधायार्हतां पूजामुपचारैर्नृपोचितैः ।
बभूवानल्पसङ्कल्पैर्बुद्धसंदर्शनोत्सुकः ॥ २४ ॥

दुर्लभे परिनिर्वाणनिलीनजिनदर्शने ।
उपगुप्तं स शुश्राव सुगतप्रतिमं गुणैः ॥ २५ ॥

विधेयं भक्तियुक्तानां नृपः प्रणयिवत्सलः ।
उरुमुण्डस्थितं दूतै रानिनाय तमादरात् ॥ २६ ॥

तत्सपर्य्याप्तपर्य्यन्तसर्ववर्मकुशलोदयः ।
बभूव सततं राजा रत्नत्रयपरायणः ॥ २७ ॥

དེ་ལྟར་རྒྱལ་བ་དྲན་པས་ས་ཡི་བདག་པོ་དག།
རབ་རྒྱས་བསོད་ནམས་ཆེ་བར་དར་བ་ཕྱུན་ཚོགས་ཀྱིས།
བཀའ་ནི་མི་རྟོག་འཁྲིང་བར་གྱུར་པའི་རྩ་དགའ་དག།
དུག་འཛིན་རྣམས་ཀྱི་མགོ་བོ་ལ་ཡང་ཐོབ་པར་གྱུར།། 28

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཀླུ་ལ་སྤྲིངས་པའི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བདུན་ཅུ་རྩ་གསུམ་པའོ།

इति जिनस्मरणेन महीपतिः
प्रसभपुण्यमहोदयसम्पदा ।
विषभृतामपि मौलिषु शासनम्
कुसुमदामविलासमवाप्तवान् ॥ २८ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्प-
लतायां नागदूतप्रेषणावदानं नाम
त्रिसप्ततितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བདུན་ཅུ་རྩ་བཞི་པ།

གང་ཞིག་སྦྱིན་ལ་བརྩོན་པས་འཕྲལ་ལ་དགའ་བ་སླང་ཆེན་བཞིན།
ཡན་ལག་རྫོགས་ཤིང་མཛེས་སྡུག་རྒྱས་ལ་རྒྱ་ཆེ་དབུས་ཀྱི་ཕྱོགས།
ས་ནི་རང་གི་མཆེས་ག་ཞིན་དང་བཅས་རབ་ཏུ་སྟེར་བྱེད་པ།
དེ་དག་བསོད་ནམས་རབ་སྨིན་ལམ་དུ་ཛེ་ཏཱར་འགྲོ་མ་ཡིན།། 1

དེ་ནས་ས་བདག་སྐུ་ངན་མེད། སྦྱིན་ལ་ཤིན་དུ་ཆེར་གོམས་པས།
སྐྱོང་བ་ཕྱོགས་ནས་འོངས་རྣམས་ཀྱི། དཔག་བསམ་ཤིང་ཉིད་དག་ཏུ་གྱུར།། 2

རྟག་ཏུ་རྒྱལ་པོ་ལ་འོས་པའི། ཟས་དང་གོས་དང་རྒྱན་རྣམས་ཀྱིས།
ཁྲིམ་དུ་དགེ་སློང་འབུམ་ཕྲག་གསུམ། གུས་ཤིང་གཙང་བ་དག་གིས་མཆོད།། 3

གསེར་ནི་བྱེ་བ་བརྒྱ་སྟེར་བ། གང་གི་ལུགས་ལ་ངེས་པར་གྱུར།
དགེ་བ་ལྡན་པའི་སྙིང་སྟོབས་ཉིད། ཤིན་ཏུ་ཟད་པ་མེད་པའི་མཛོད། 4

རྒྱལ་སྲིད་ཆེ་ལ་འབྱོར་མ་དེས། སྙིང་སྟོབས་བློ་ཡིས་དགེ་འདུན་ལ།
ལོ་ནི་སུམ་ཅུ་དྲུག་གི་གསེར། བྱེ་བ་དགུ་བཅུ་རྩ་དྲུག་ཕུལ།། 5

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་མི་བདག་ནི། ནད་ཀྱིས་ཐེབས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར།
ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ལེགས་བྱས་ཉིད། བརྟན་པ་ཡིན་གྱི་ལུས་ནི་མིན།། 6

ལུས་ནི་མཐའ་ལ་ཉེ་བ་ཉིད། ངེས་ནས་ས་ཡི་བདག་པོ་ཡིས།
ཐ་གག་ཀུན་རར་དགེ་སློང་ལ། ནོར་ནི་འབུལ་བར་རྩོམ་པར་གྱུར།། 7

चतुःसप्ततितमः पल्लवः ।

पुण्यं प्रणामपथमेति कथं न तेषाम्
दानोद्यताः सपदि गामिव लीलयैव ।
पूर्णाङ्गपुण्यरुचिरां पृथुमध्यदेशां
ये गां स्ववत्ससहितां प्रतिपादयन्ति ॥ १ ॥

अथाशोकः क्षितिपति र्दानाभ्यासेन भूयसा ।
अभ्यागतप्रणयिनां प्रययौ कल्पवृक्षताम् ॥ २ ॥

राजोचितैः स सततं भोजनाभरणाम्बरैः ।
भिक्षुलक्षत्रयं गेहे भक्तिपूजैरपूजयत् ॥ ३ ॥

हेमकोटिशतं दातुं स्थिरोऽभूदस्य निश्चयः ।
सत्त्वमेव स्थिरतरः कोशः कुशलशालिनाम् ॥ ४ ॥

साम्राज्ये भूरिविभवः षड्विंशद्भिः स वत्सरैः ।
हेम्नः षण्णवतिं कोटिं ददौ सङ्घाय सत्त्वधीः ॥ ५ ॥

ततः कालेन नृपति र्व्याधिना ग्लानिमाययौ ।
स्थिराणि सुकृतान्येव न शरीराणि देहिनाम् ॥ ६ ॥

तनुमासन्नपर्य्यन्तां निश्चित्य पृथिवीपतिः ।
भिक्षुभ्यः कुक्कुटारामे द्रविणं दातुमुद्ययौ ॥ ७ ॥

དེ་ཡི་ཚ་བོ་ཕུན་ཚོགས་ཅན། ཞེས་པས་ཆགས་སྣང་མཛོད་སྤུང་ལ།
བསྐོས་པས་སྨིན་པའི་བསོད་ནམས་ལ། ཞུགས་པ་དེ་ཡི་བཀའ་དག་བཀློག། 8

ཚ་བོས་སྨིན་པ་བཀག་པའི་ཚེ། དགེ་བདུན་ལ་ནི་ས་བདག་གིས།
རང་སྐལ་ཉིད་དུ་གྱུར་པའི་སྐན། སྐྱུ་རུ་ར་ཡི་ཕྲེ་དག་ཕུལ། 9

དེ་ནས་བློན་པོ་བློ་ལྡན་ནི། མགུ་བྱེད་སྨྲས་པའི་གྲོས་དག་གིས།
དགེ་འདུན་ལ་ནི་ས་གཞི་དག། མ་ལུས་ས་ཡི་བདག་པོས་ཕུལ།། 10

གང་གཞི་ཆ་ཡི་དོ་ཤལ་མཛེས་ལྡན་རྒྱ་མཚོ་བཞི་ཡི་ནི།
ཐ་གྲུབས་སྐྱེ་རགས་ཡངས་ཤིང་མ་ལ་ཡ་ཡི་རྣ་རྒྱན་ཅན།
ནོར་འཛིན་མ་ཉིད་མ་ལུས་བྱིན་ནས་ཕན་པའི་སྐད་དུ་ནི།
བསོད་ནམས་ཚད་ཀྱིས་དཔག་དང་བྲལ་བ་དེ་ཡིས་ཡང་དག་ཐོབ།། 11

དེ་ནས་གསེར་ནི་བྱེ་བ་དགུ་བཅུ་དྲུག་བྱིན་རབ་གྲགས་པ།
མི་ཡི་བདག་པོ་མགོ་རིས་སོང་ཚེ་དེ་ཡི་ཚ་བོ་ཡིས།
ས་དེ་གསེར་གྱི་ལྷག་མ་བྱེ་བ་ཕྲག་ནི་བཞི་རྣམ་གྱིས།
བློན་པོའི་ཚིག་གིས་གསལ་བར་རབ་ཏུ་ཉོས་ཏེ་བླངས་པར་གྱུར།། 12

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྲིས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ས་གཞི་ཕུལ་བའི་རྟོགས་པ
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བདུན་ཅུ་རྩ་བཞི་པའོ།།

तत्पौत्रः सम्पदी नाम लोभान्धस्तस्य शासनम् ।
दानपुण्यप्रवृत्तस्य कोशाध्यक्षैरवारयत् ॥ ८ ॥

दाने निषिद्धे पौत्रेण सङ्घाय पृथिवीपतिः ।
भैषज्यामलकस्यार्धं ददौ सर्वस्वतां गतम् ॥ ९ ॥

धीमतः संमतेनाथ राधगुप्तस्य मन्त्रिणः ।
ददौ सङ्घाय निखिलां पृथिवीं पृथिवीपतिः ॥ १० ॥

गङ्गाम्बुभाररुचिरां चतुरम्बुराशि-
वेलाविलासवसनां मलयावतंसाम् ।
दत्त्वाखिलां वसुमतीं स समाससाद
पुण्यं प्रमाणकलनारहितं हिताय ॥ ११ ॥

प्रख्यातषण्णवतिकोटिसुवर्णदाने
याते दिवं नरपतावथ तस्य पौत्रः ।
शेषेण मन्त्रिवचसा क्षितिमाजहार
स्पष्टं क्रयी कनककोटिचतुष्टयेन ॥ १२ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
पृथिवीप्रदानं चतुःसप्ततितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་སྐྱེ་བདུན་ཚུ་ཙ་ཊཱ་པའོ།

མ་རིག་པ་ཡི་ཙ་བ་ཅན། འཁོར་བའི་ལྗོན་པ་རྣམ་བཀྲ་ཀུན།
ཤེས་དང་བརྗོད་དང་གཞོམ་པར་ནི། ཀུན་མཁྱེན་མ་གདོགས་སུ་ཡིས་ནུས།། 1

མཉན་ཡོད་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་ན་སྟོན། བཞུགས་པའི་རྒྱལ་བ་དགེ་ལེགས་ཅན།
མ་ལུས་གཟིགས་པ་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། དགེ་སློང་ཚོགས་ལ་བཀའ་སྩལ་པ།། 2

ཡེ་ཤེས་སྣང་བ་དྲི་མེད་ཀྱི། ཡིད་ཅན་དགེ་ལེགས་སྐད་དུ་ཉོན།
རྟེན་ཅིང་འབྲེལ་འབྱུང་བདག་གིས་ནི། ཁྱོད་ལ་རིམ་བཞིན་བཤད་པར་བྱ།། 3

མ་རིག་པ་ཡི་བག་ཆགས་འདི། འཁོར་བ་དུག་གི་ལྗོན་པ་ནི།
སྡུག་བསྔལ་ཕུང་པོ་ཆེན་པོ་ཡིས། ཙ་བ་འཆིང་བ་སྐྱབ་པར་བྱེད།། 4

དེ་ཡི་རྐྱེན་གྱི་འདུ་བྱེད་ནི། ལུས་ངག་ཡིད་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཅན།
འདུ་བྱེད་ཀྱིས་བསྐྱེད་རྣམ་ཤེས་ཡིད། དབང་པོ་དྲུག་པོའི་བདག་ཉིད་ཅན།། 5

དེ་ཡི་རྐྱེན་གྱིས་མིང་དང་གཟུགས། མིང་དང་མཐོང་བ་ཞེས་བརྗོད་པའོ།
འདི་ལས་དྲུག་པ་ཡིད་དག་ཀྱང་། དབང་པོ་ལ་གནས་སྐྱེ་མཆེད་དྲུག།། 6

སྐྱེ་མཆེད་དྲུག་གིས་ཡང་དག་སྦྱོར། རེག་པ་ཞེས་ནི་མངོན་པར་བརྗོད།
རེག་པ་དྲུག་གི་ཉམས་མྱོང་གང་། དེ་ནི་ཚོར་བ་དག་ཏུ་གྲགས།། 7

पञ्चसप्ततितमः पल्लवः ।

सर्व्वमविद्यामूलं संसारतरुप्रकारवैचित्र्यम् ।
ज्ञातुं वक्तुं हन्तुं कः शक्नोत्यन्यत्र सर्व्वज्ञात् ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां स्वस्तिमान् पूर्व्वं जिनो जेतवने स्थितः ।
अशेषदर्शी भगवान् भिक्षुसङ्घमभाषत ॥ २ ॥

शृणुत श्रेयसे प्रज्ञालोकनिर्मलमानसाः ।
प्रतीत्य समुत्पादं वः कथयामि यथाक्रमम् ॥ ३ ॥

अविद्या वासनैवेयं दुःखस्कन्धस्य भूयसः ।
संसारविषवृक्षस्य मूलबन्ध विधायिनी ॥ ४ ॥

तत्प्रत्ययात्तु संस्काराः कायवाङ्मानसात्मकाः ।
संस्कारोत्थन्तु विज्ञानं मनः षष्ठेन्द्रियात्मकम् ॥ ५ ॥

तत्प्रत्ययं नामरूपं संज्ञासन्दर्शनाभिधम् ।
मनः षष्ठेन्द्रियस्थानं षड़ायतनमप्यतः ॥ ६ ॥

षड़ायतनसंश्लेषः स्पर्शइत्यभिधीयते ।
षट् स्पर्शानुभवो यश्च वेदना सा प्रकीर्त्तिता ॥ ७ ॥

ལུས་ཀྱི་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་ལས། །དེ་ཡིས་ཆགས་སྲེད་རབ་ཏུ་སྤྱོད། །
དེ་ལས་བྱུང་བའི་ལེན་པ་ནི། །འདོད་པ་སོགས་ལ་འཇུག་པར་འགྱུར། ། 8

ལེན་པ་ལས་བྱུང་སྲིད་པ་འདོད། །གཟུགས་དང་གཟུགས་མེད་རང་བཞིན་ནོ། །
སྲིད་པ་ལས་བྱུང་སྣ་ཚོགས་ཀྱིས། །སྐྱེ་གནས་སུ་འཇུག་སྐྱེ་བའོ། ། 9

རྒ་ཤི་མྱ་ངན་ལ་སོགས་བརྒྱུད། །སྐྱེ་བ་ལ་ནི་བརྟེན་པ་ཡིན། །
མ་རིག་ལ་སོགས་འགོག་པ་ཡིས། །དེ་དག་རིམ་བཞིན་ཞི་བར་འགྱུར། ། 10

མ་རིག་པས་དྲངས་ལུས་མང་རྟེན་ཅིང་འབྲེལ་པར་འབྱུང་བའི་གནས་འདི་ན། །
དབེན་པའི་ནགས་སུ་གནས་ཤིང་ཞི་བ་ཁྱོད་རྣམས་དག་གིས་བསམ་པར་བྱ། །
ཡང་དག་ཡོངས་སུ་ཤེས་ན་དུས་ཀྱི་ངེས་པར་ཐར་བ་ཉིད་དུ་འགྱུར། །
ཐར་བ་ཉིད་ནི་ཡང་དག་ཐོབ་ནས་བདེ་སླག་ཉིད་དུ་སློག་པར་འགྱུར། ། 11

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་རྟེན་ཅིང་འབྲེལ་པར་འབྱུང་བའི་
རྟོགས་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བདུན་ཅུ་རྩ་ལྔ་པའོ། །

तथा विषयसंश्लेषरागात् तृष्णा प्रजायते ।
कामादिषु तदुद्भूत मुपादानं प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥

उपादानोद्भवः कामरूपारूप्यमयो भवः ।
नानायोनिपरावृत्त्या जातिर्भवसमुद्भवा ॥ ९ ॥

जरामरणशोकादिसन्ततिर्जातिसंश्रया ।
अविद्यादिनिरोधेन तेषां व्युपरमक्रमः ॥ १० ॥

प्रतीत्योत्पादोऽयं बहुगतिरविद्याकृतपदः
स चिन्त्यो युष्माभि र्विजनवनविश्रामशमिभिः ।
परिज्ञातः सम्यग्व्रजति किल कालेन तनुतां
तनुत्वं सम्प्राप्तः सुखतरनिवार्य्यश्च भवति ॥ ११ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
प्रतीत्यसमुत्पादावदानं पञ्चसप्ततितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བདུན་ཅུ་རྩ་དྲུག་པའོ།

འོད་ལྡན་རབ་གདངས་ཡིད་ཅན་རྣམས་ལ་ཕྲག་དོག་དབང་
གི་ཁྲོ་བ་ཅི་བར་གནས།
ཁྲོ་བས་ལོང་བ་ཉིད་བློ་གྲོས་ཉམས་རྣམས་མི་བཟད་རབ་རིབ་
གཡང་སར་རྣམ་པར་ལྷུང་།
དེར་ནི་རབ་དྲག་རྣམ་མང་དམྱལ་བའི་ཉོན་མོངས་ཚ་བས
སྨོངས་པ་སྨིན་བྱེད་ཅིང་།
བསྐལ་པའི་བར་དུ་སྲུ་གྱི་མལ་སྟན་དུ་བཏགས་ཡུལ་གྱིས
གཞིས་བཅོམ་རྣམས་བརླག། 1

བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བས་མཉན་ཡོད་ཀྱི། ཚུ་སྐྱུང་ཁྱམས་ལྡན་ཞེས་པར་ནི།
ཟློན་པས་སེམས་ཅན་རྣམ་འགྱུར་ཅན། སྐྱེ་བོས་ཀུན་ཏུ་བསྐོར་བ་གཟིགས།། 2

རྨ་ལས་བྱུང་བ་སྲིན་བུ་ཡི། ཚོགས་ཀྱིས་ལུས་ཆེན་ཟ་བྱེད་ཅིང་།
གདུང་བའི་ཚོངས་དམྱལ་བ་ན། གནས་པའི་སྡུག་བསྔལ་གསུམ་བྱེད་པ།། 3

དེ་མཐོང་ཐུགས་རྗེ་སྐྱེས་པ་ཡི། ཀུན་མཁྱེན་ཚུ་སྐྱུང་ངོགས་སུ་ནི།
གྲོང་ཁྱེར་པ་ཡི་སྐྱེ་བོ་ཡིས། ཡོངས་སུ་བཤམས་པའི་གདན་ལ་བཞུགས།། 4

དེ་ཡི་རང་བཞིན་དྲིང་འཛིན་གྱིས། འཕྲལ་ལ་སྐྱེ་བ་དྲན་མཛད་ནས།
དཔྱུས་ལོང་རྣམ་འགྱུར་རྣམ་པ་ཅན། མ་ཧེ་མཚུངས་ལ་དེས་གསུངས་པ།། 5

अथ षट्सप्ततितमः पल्लवः ।

क्रोधः सन्निहितः प्रतप्तमनसा मौर्ष्यावशात् कामिनाम्
क्रोधान्धा निपतन्ति तीव्रतिमिरश्वभ्रे मतिध्वंसिनः ।
तत्र क्रूरतरप्रकारनरकक्लेशात् प्रमूर्च्छाजुषा-
माकल्पक्षुरतल्पकल्पविषमक्षोणीक्षतानां क्षयः ॥ १ ॥

नद्यां अजिरवत्याख्यां श्रावस्त्यां भगवान् जिनः ।
सम्प्राप्तः सत्त्वमद्राक्षीदाहतं विक्षतं जनैः ॥ २ ॥

महाकायं कृमिकुलैर्भक्ष्यमाणं व्रणोद्भवैः ।
सूचयन्तं व्यथारावैर्नरकस्थितिवैशसम् ॥ ३ ॥

तं दृष्ट्वा जातकरुणः सर्व्वज्ञस्तटिनीतटे ।
उपाविशत् पौरजनैरासने परिकल्पिते ॥ ४ ॥

सोऽवदद्विक्षताकारं जात्यन्धं महिषोपमम् ।
कृत्वा जातिस्मरं सद्यस्तद्रूपेण समाधिना ॥ ५ ॥

ཁི་དུ་ར་ཁྲོད་མི་བཟད་པའི། ལས་ཀྱི་འབྲས་བུ་ལོངས་སྤྱོད་དས།
ཚུལ་ངན་སྐྱིད་པར་བྱེད་པ་ཡི། ཀློ་དེ་ཁྲོད་ཀྱིས་དྲན་ནམ་ཅི། 6

བདེ་གཤེགས་ཀྱིས་གསུངས་དེ་ཐོས་ནས། མི་ཡི་ཚོགས་གི་དེས་སླས་པ།
བཅོམ་ལྡན་མི་བཟད་སྡིག་པ་ཡི། འབྲས་བུ་རྒྱ་ཆེ་ལོངས་སྤྱོད་དོ། 7

ཞེས་པ་སྨྲ་བ་དེ་ཡིས་ནི། མཆོག་དུ་སྐྱེ་བ་དྲན་པ་ལས།
སྐྱེ་བོ་མང་པོས་འདི་ཅི་ཞེས། དགེ་སློང་དགེ་འདུན་དག་ལ་དྲིས། 8

དེ་ནས་དགེ་སློང་ཀུན་དགའ་བོས། དེ་ཡི་ལས་ཀྱི་དགེ་མཚན་ལས།
ངོ་མཚར་སྤྲོས་བྱུང་དྲིས་དེ་ལ། བཅོམ་ལྡན་ཀུན་མཁྱེན་གྱིས་གསུངས་པ། 9

ས་བདག་ཁི་དུ་ར་ཞེས་པ་ཀླུ་ངན་མེད་བཞིན་མིག་གཡོ་མས།
གང་པས་བསྟན་པའི་དགེ་མཚན་ཅན། འཕགས་རྒྱལ་དག་དུ་སྤོར་བྱུང་གྱུར། 10

ནམ་ཞིག་སྣང་རྩི་འཕུངས་པའི་གཉན། དཔྱིད་དུས་རླུང་གི་གཡོ་བ་ཡིས།
འཁྲི་ཤིང་ཡིད་འོང་ནགས་ཚལ་དུ། དེ་ནི་བུད་མེད་ཚོགས་དང་རྩེ། 11

ས་སྐྱོང་བུད་མེད་དེ་དག་རེར། མེ་ཏོག་འཐུ་བས་བྲེལ་གྱུར་པ།
གང་གུ་བ་སྨ་ཡི་འདབ་ཆགས་ནི། རྣམ་པར་བསྐྱོད་ཅིང་རབ་ཏུ་འཕྲུས། 12

དེར་ནི་ཞི་བ་ལ་བརྟེན་བཞིན། དབེན་པར་རྣམ་པར་གནས་པ་ཡི།
རང་སངས་རྒྱས་ནི་དགྲ་བཅོམ་གྱིས། ཡོངས་བསྐོར་མཛེས་མ་རྣམས་ཀྱིས་
མཐོང་། 13

अपि को विदुर क्रूरकर्मणो भुज्यते फलम् ।
अपि दौर्जन्यजननी सा मतिः स्मर्य्यते त्वया ॥ ६ ॥

श्रुत्वैतत् सुगतेनोक्तं स मनुष्यगिराब्रवीत् ।
तीव्रपापस्य भगवन् भुज्यते विपुलं फलम् ॥ ७ ॥

इति तस्य ब्रुवाणस्य जातिसंस्मरणात् परम् ।
किमेतदिति पप्रच्छ भिक्षुसङ्घं महाजनः ॥ ८ ॥

आश्चर्य्यवृत्तं भगवानानन्देनाथ भिक्षुणा ।
तत्कर्म्म कौतुकात् पृष्टः सर्व्वप्रत्तमभाषत ॥ ९ ॥

उज्जयिन्यामभूत् पूर्व्वं विदुरो नाम भूपतिः ।
अशोक इव लोलाक्षीचरणाहतिकौतुकी ॥ १० ॥

स कदाचिदधूतन्दैर्मधौ मधुपबान्धवे ।
विललासानिलालोलस्रतालसितकानने ॥ ११ ॥

ता भूमिपाललललनास्तत्र पुष्पोच्चयाकुलाः ।
विचेरु र्नूपुरारावतरङ्गितविभ्रमाः ॥ १२ ॥

एकान्ते तत्र विश्रान्तं कान्ताः शान्तेरिवाश्रयम् ।
प्रत्येकबुद्धमर्हद्भिर्ददृशुः परिवारितम् ॥ १३ ॥

ཀྱིལ་ཀྲུང་ངཙམ་ནས་གནས་གྱུར་ཅིང་། བསམ་གཏན་སྤྱན་ནི་གཡོ་མེད་པ།
དེ་མཐོང་འཕྲམ་ལ་དེ་དག་རྣམས། ཡིད་ནི་རབ་ཏུ་དང་བར་གྱུར། ། 14

བསམ་གཏན་མཐར་ནི་དགའ་བའི་ཆོས། བདུད་རྩི་བཞིན་དུ་སྟོན་དེ་ལ།
རྐང་པར་ཕྱུག་ཕྱུས་དེ་དག་གིས། ཡོངས་སུ་བསྐོར་ནས་ཉེ་བར་གནས། ། 15

མི་བདག་ཡུལ་དེར་སོང་བ་ཡི། བུད་མེད་རྣམས་དེར་མཛེན་ཕྱོགས་མཐོང་།
ཚུལ་ཁྲིམས་དག་ལྡན་དེ་དག་གི། ལུས་ནི་བཅད་ལ་རབ་ཏུ་བསྐོས། ། 16

སྡིག་པ་དེ་ཡིས་ཡངས་པ་ཡི། དུས་སུ་དཀྱིལ་བ་ཉམ་ང་ངར།
རྣམ་འགྱུར་སེམས་ཅན་གྱིས་ཟ་ཞིང་། ངན་པའི་དབྲིབས་ཅན་འདི་དག་སྨིན། ། 17

མགོ་ནས་རྐང་བར་དུ་མ་ཡི། རྣམ་འགྱུར་རྣ་ལམ་བྱུང་གྱུར་པའི།
སྲིན་བུའི་རིགས་ཀྱིས་ཁེངས་གྱུར་བ། འདི་ཡི་ལུས་ནི་སྐྱོད་པ་ལྡོས། ། 18

བསྐལ་པའི་མཐར་ནི་དཀྲུལ་བ་དག སྤྱོད་ནས་གདུང་བོ་ཉིད་གྱུར་དེ།
ཇོན་པའི་ངང་ཚུལ་ལྡན་པ་འདྲིས། རང་སངས་རྒྱས་ནི་གསད་པར་འགྱུར། ། 19

སླར་ཡང་དཀྲུལ་བའི་སྡུག་བསྔལ་གྱིས། ལུས་ཅན་རྣམ་པར་ཉམས་བྱེད་ཅིང་།
གྲངས་ལས་འདས་པའི་དུས་ཀྱིས་ནི། མི་ཉིད་རབ་ཏུ་ཐོབ་པར་འགྱུར། ། 20

དེ་ནས་སྡིག་པ་ཟད་གྱུར་དེ། ཉོན་མོངས་མེ་ཆེན་དག་གི་ནི།
ཡིད་བྱུང་སྟོན་པ་ཨུད་དྲ་ར། ཞེས་པའི་བསྟན་པ་རབ་འབྱུང་འགྱུར། ། 21

स्थितं पर्य्यङ्कबन्धेन ध्यानस्तिमितलोचनम् ।
तं दृष्ट्वा सहसैवासां प्रसन्न मभवन्मनः ॥ १४ ॥

ध्यानान्ते ता दिशन्तं तं धर्म्मं शुद्धमिवामृतम् ।
परिवार्य्योपविविशुः कृतपादाभिवन्दनाः ॥ १५ ॥

नृपस्तं देशमभ्येत्य स्त्रैणं दृष्ट्वा तदुन्मुखम् ।
शारीरं शुद्धशीलानां तासां निग्रहमादिशत् ॥ १६ ॥

तेन पापेन विपुलं कालं नरकसङ्करे ।
यश्चोऽयं विकृतैः सत्त्वै र्भक्ष्यमाणो दुराकृतिः ॥ १७ ॥

आपादमस्तकानेकविकारिव्रणसम्भवैः ।
कीर्णं कृमिकुलैः कायं पश्यतास्य जुगुप्सितम् ॥ १८ ॥

कल्पान्ते नरकं भुक्त्वा चण्डालत्वमुपागतः ।
प्रत्येकबुद्धं मृगयाशीलोऽयं निहनिष्यति ॥ १९ ॥

पुनर्नरकसंक्लेशशीर्य्यमाणायताकृतिः ।
संख्यातीतेन कालेन प्रयास्यति मनुष्यताम् ॥ २० ॥

शास्तुरुत्तरसंभस्य ततः क्षपितकिल्बिषः ।
दीर्घक्लेशानलोद्विग्नः शासने प्रव्रजिष्यति ॥ २१ ॥

དེ་ནས་ཀ་ཤིའི་རྒྱལ་པོ་ཡི། སྐྱིད་སོས་ཚལ་དུ་མཛེས་མས་མཆོད།
ཐུག་དོག་ཁྲི་ནས་ལུས་དག་ནི། ཚད་པ་དྲག་པོས་གཙེད་པར་འགྱུར།། 22

དེ་རྗེས་འདི་ཡི་སྡུག་བསྔལ་མི། མི་བཟད་རབ་ཏུ་ཉམས་པར་འགྱུར།
ཞེས་པ་སྟོན་པའི་གསུང་ཐོས་ནས། ཐམས་ཅད་ཚགས་བྲལ་ལྡན་པར་གྱུར།། 23

དེ་ནས་དེར་ནི་སྟོན་པའི་གསུང་གི་རང་བཞིན་བདུད་རྩིའི་རྒྱུན་རྫོགས་པས།
ཚགས་བྲལ་སྲིད་པའི་འཇིགས་པའི་ཉོན་མོངས་བསམ་པས་གཟིར་བ་དེ་དག་རྣམས།
དགའ་བ་དང་ལྡན་དགེ་བའི་རྒྱུ་ཡིས་བསམ་པ་རབ་ཏུ་རྫོགས་གྱུར་ཅིང་།
རབ་ཞི་མི་དོག་དགའ་ཚལ་ལྡན་པ་རྣམས་ཀྱི་གདུང་བ་ག་ཤེད་སོང་།། 24

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ནི་ཌུ་རའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་
ཡལ་འདབ་སྟེ་བདུན་ཅུ་རྩ་དྲུག་པའོ།།

उद्याने काशिराजस्य कान्ताभिः पूजितस्ततः ।
ईर्ष्याकोपेन शारीर मवाप्स्यत्युग्रनिग्रहम् ॥ २२ ॥

ततोऽस्य तीव्रदुःखाग्रे रवसानं भविष्यति ।
इति शास्तुर्वचः श्रुत्वा सर्व्वे वैराग्यमाययुः ॥ २३ ॥

उद्विग्नानामथ भवभयक्लेशचिन्तातुराणाम्
शास्तुः पूर्णैरमृतविसरैर्वाङ्मयैस्तत्र तेषाम् ।
सत्काह्लादैः कुशलसलिलैः प्लाव्यमानाशयानाम्
तापः क्वापि प्रशमकुसुमारामभाजां जगाम ॥ २४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
विदुरावदानं षट्सप्ततितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བདུན་ཅུ་རྩ་བདུན་པ།

མི་བསྲུན་རབ་ཏུ་རྒྱས་པ་ཡིས། ཀུན་གྱི་ཡོན་ཏན་ཉམས་པར་བྱེད།
བདག་ཉིད་ཆེན་པོའི་མཐུ་ཡིས་ནི། སྔོན་པར་དར་བ་ཉིད་དུ་འགྱུར།། 1

ཨ་ཏུ་ན་ཡའི་ནགས་ཀྱི་མཐར། འབྱུང་པོའི་ཁང་པའི་ཕུག་ནང་ན།
བཅོམ་ལྡན་བདེ་བར་གཤེགས་པ་སྟོན། བསམ་གཏན་རབ་ཏུ་སྒྲུབ་ཞིང་གནས།། 2

དེར་ནི་སི་བཟང་ལྷ་འབབ་པ། དྲག་པོས་ཁྲུ་མཆོག་ཞིང་པ་བཅོམ།
དེ་ནི་བསམ་གཏན་ལ་ཆགས་པས། སྤྲིན་གྱི་སྒྲ་ཡང་གསན་མ་གྱུར།། 3

དེ་ནས་དཔལ་འབབ་ངོགས་སུ་ནི། བསམ་གཏན་མཐའ་རུ་སྟོན་པའི་གསུང་།
ཉན་ཏུ་རྒྱལ་པོ་ཆེན་པོ་ནི། བཞི་ཞེས་བརྗོད་པ་སྟོན་དུ་འོངས།། 4

ཡུལ་འཁོར་སྲུང་དང་འཕགས་སྐྱེས་པོ། མིག་མི་བཟང་དང་ནོར་བདག་གོ།
དེ་ཡི་ཞབས་ལ་དེ་དག་གིས། ཕྱག་འཚལ་རིན་ཅན་མེ་ཏོག་གཏོར།། 5

དེ་དག་ལས་ནི་འཕགས་པའི་རིགས། ཡུལ་འཁོར་སྲུང་དང་འཕགས་སྐྱེས་པོ།
གཞན་གཉིས་གདུག་པའི་རིགས་ཅན་ཏེ། དེ་དག་ལ་ནི་དམ་ཆོས་དགག།། 6

བཅོམ་ལྡན་འབྱུང་པོ་དགོངས་པ་ཡིས། རང་ལ་འོས་པའི་སྐད་ཀྱིས་བསྟན།
གང་གིས་དེ་དག་བསྟན་པ་ཡི། ཆོས་ལ་རབ་ཏུ་མཁས་པར་གྱུར།། 7

དཀོན་མཆོག་གསུམ་ལ་རབ་བརྟེན་ཅིང་། བསླབ་པའི་གནས་བཟུང་དེ་དག་རྣམས།
བཅོམ་ལྡན་ཞབས་ལ་བཏུད་ནས་ནི། གཞལ་མེད་ཁང་ནས་མཐོ་རིས་སོང་།། 8

सप्तसप्ततितमः पल्लवः ।

खलोत्कर्षेण सर्वस्य गुणग्लानिः प्रजायते ।
भवत्यभ्युदयायैव प्रभावस्तु महात्मनाम् ॥ १ ॥

आह मायावनोपान्ते भगवान् सुगतः पुरा ।
शून्यागारगुहागर्भे तस्थौ ध्यानपरायणः ॥ २ ॥

तत्र तीव्राशनिस्फोटनिष्पिष्टवृषकर्षकः ।
तेन ध्यानविलीनेन घनशब्दोऽपि न श्रुतः ॥ ३ ॥

ध्यानान्तेऽथ प्रवचनं शास्तु मन्दाकिनीतटे ।
चत्वारः श्रोतुमाजग्मु र्महाराजाभिधाः सुराः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र-विरूढाख्य-विरूपाक्ष-धनाधिपाः ।
ते कीर्णरत्नकुसुमा स्तस्य पादौ ववन्दिरे ॥ ५ ॥

तेषां त्वाचार्य्यजातीयौ धृतराष्ट्रविरूढकौ ।
द्वावन्यौ क्रूरजातीयौ तेषां स्वोचितभाषया ॥ ६ ॥

सद्धर्मदेशनां चक्रे भगवान् भूतभावनः ।
येन शासनधर्म्मेषु बभूवुस्ते विशारदाः ॥ ७ ॥

शिक्षापदप्रणयिनस्ते रत्नत्रयमाश्रिताः ।
नत्वा भगवतः पादौ विमानैस्त्रिदिवं ययुः ॥ ८ ॥

དེ་དག་སོང་ཚེ་བཅོམ་ལྡན་ལ། རིག་སྔོན་ཡ་མཚན་སྐྱེ་རྣམས་ཀྱིས།
དེ་དག་སྔོན་ཚེ་བསོད་ནམས་ཚོགས། རྫིས་པ་ཐམས་ཅད་རིག་པས་གསུངས།། 9

སྐུ་ནི་དབུགས་ཚུང་དབུགས་ཆེན་དག། སྔོན་བྱུང་དེ་དག་དགྲ་བོ་ནི།
འདབ་བཟང་གཙུག་ལྡན་དེ་བཞིན་དུ། མི་ཏིའི་དབྱངས་ཞེས་བྱ་བའོ།། 10

སྐུ་ཡིས་སྟོན་པ་འོད་སྲུངས་ཀྱི། བཀའ་ནི་ཡང་དག་ཐོབ་གྱུར་ནས།
སྟོབས་ལྡན་འདབ་བཟང་དག་གིས་ནི། བརྗེ་བར་ཞུས་པ་མིན་པར་གྱུར།། 11

ཞི་སྡང་འགྲན་ཞིང་མགོན་ཁེངས་པ། འདབ་བཟང་གིས་ཀྱང་འོད་སྲུངས་ལ།
བསྟན་པ་རིན་ཆེན་བཟུང་ནས་ནི། དཀོན་མཆོག་གསུམ་ལ་སྐྱབས་སུ་སོང་། 12

སྐུ་དེ་དག་ནི་འཕགས་པའི་རིགས། ཡུལ་འཁོར་སྲུང་དང་འཕགས་སྐྱེས་པོ།
གདུག་པའི་འདབ་བཟང་དེ་དག་ནི། མིག་མི་བཟང་ནོར་བདག་འདི།། 13

ཞེས་པ་གསུང་བ་རྒྱལ་བ་ཡི། བསོད་ནམས་གསུང་རབ་བདུད་རྩི་ནི།
ནགས་ཚལ་དེ་ན་གནས་པ་ཡི། ཐུབ་པ་ཀ་ནེ་ཡ་ཀས་ཐོས།། 14

དེ་ཡི་མཐུ་ཡི་ཡ་མཚན་དེ། དེ་ཉིད་ལ་ནི་སྐྱབས་སུ་སོང་།
ཕྱིར་མི་འོང་ནི་ཐོབ་གྱུར་ནས། བདེན་པ་མཐོང་ཞིང་དགའ་བར་གྱུར།། 15

དེ་ཡི་ཚ་བོ་ཤི་ལ་ཡང་། དེ་བཞིན་འདུལ་བ་ལ་བརྟེན་ནས།
བདེན་པ་མཐོང་ཞིང་རྒྱ་ཆེ་བ། ཕྱིར་མི་འོང་གིས་འབྲས་ཐོབ་གྱུར།། 16

तेषु यातेषु भगवान् भिक्षुभिर्जातविस्मयैः ।
प्राक् पुण्यसञ्चयं तेषां पृष्टः प्रोवाच सर्ववित् ॥ ९ ॥

अल्पाश्वासमहाश्वासौ पुरा नागौ बभूवतुः ।
तद्द्वेषिणौ सुपर्णौ च चूडिर्मिटिस्वरस्तथा ॥ १० ॥

नागौ काश्यपसंज्ञस्य शास्तुः संप्राप्य शासनम् ।
सुपर्णयोरधृष्टावभूतां बलशालिनौ ॥ ११ ॥

द्वेषस्पर्द्धाभिमानेन सुपर्णावपि काश्यपात् ।
गृहीत्वा शासनं रत्नत्रयं शरण मापतुः ॥ १२ ॥

तौ नागाचार्य्यजातीयौ धृतराष्ट्रविरूढकौ ।
क्रूरौ सुपर्णौ तावेतौ विरूपाक्षधनाधिपौ ॥ १३ ॥

जिनस्येति ब्रुवाणस्य पुण्यं सुवचनामृतम् ।
तद्वनोपान्तनिलयः श्रुत्वा कैनेयको मुनिः ॥ १४ ॥

विस्मितस्तत्प्रभावेण तमेव शरणं गतः ।
अनागामिफलाख्याभूत् सत्यदर्शननिर्वृतः ॥ १५ ॥

तद्भागिनेयः शैलोऽपि तथैव विनयाश्रितः ।
अनागामिफलोदारं सत्यदर्शन माप्तवान् ॥ १६ ॥

དེ་དག་འཁོར་བཅས་བཅོམ་ལྡན་གྱི། བསྟན་པའི་ཆོས་ལ་རབ་དགའ་ཞིང་།
རབ་ཏུ་བྱུང་བ་བླངས་ནས་ནི། བསྒུགས་པར་འོས་པའི་དགྲ་བཅོམ་ཐོབ།། 17

དེ་ནས་དེ་ཡིས་ལྷག་རྣམས་ལ། བདེ་གཤེགས་བཀའ་ཡིས་ཀ་ཤཱི་ན།
ཤཱ་རིའི་བུ་དང་མཽ་གལ་གྱི། བུ་ཡིས་ཀྱང་ནི་བསྟན་པ་མཛད།། 18

ཀཱི་ཎེ་ཡ་ཀ་ཤཱི་ལ་ནི། ཡིད་རབ་དང་མཐོང་དེ་དག་གིས།
སྔོན་གྱི་བསོད་ནམས་དགེ་སློང་གིས། དྲིས་ཤིང་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་གསུངས།། 19

སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བར་འདི་དག་ནི། བ་ར་ཎ་སིར་ཁྱིམ་བདག་གཉིས།
ཨང་ག་ཨ་ག་ཎ་ཞེས་པ། གྲོགས་པོ་ཆོས་ལ་དགའ་བར་གྱུར།། 20

བླ་མ་འོད་སྲུངས་དྲུང་དུ་ནི། ཚངས་པར་སྤྱོད་པ་སྤྱད་དེ་དག།
མཐར་ཐུག་སྨོན་ལམ་དག་གིས་ནི། ད་ལྟ་རབ་ཏུ་ཞི་ཉིད་ཐོབ།། 21

དེ་ལྟར་ཐུབ་མཆོག་བསོད་ནམས་སྨོན་ལམ་ལས་སྐྱེས་པ།
དེ་ལ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བཤད་པ་དག་ནི་ཐོས་གྱུར་ནས།
རབ་ཏུ་ཞི་བའི་རིགས་པས་སྲིད་པའི་ལག་འགྲོ་ནི།
ཁྲིལ་གྱིས་མཚན་སྐད་དགེ་སློང་དགེ་འདུན་ཙེ་གཅིག་གྱུར།། 22

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཀཱི་ན་ཡ་ཀའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བདུན་ཅུ་ཙ་བདུན་པའོ།།

तौ सानुगौ भगवतः प्रसन्नौ धर्म्मशासने ।
प्रव्रज्यां समुपादाय श्लाघ्य मर्हत्त्व मापतुः ॥ १७ ॥

ततस्तदवशिष्टानां चक्रुः सुगतशासनात् ।
कफिणः शारिपुत्रस्य मौद्गल्यस्यापि देशनाम् ॥ १८ ॥

मनःप्रसादमालोक्य परं कैनेयशैलयोः ।
तत्पूर्व्वपुण्यं भगवान् पृष्टो भिक्षुभिरभ्यधात् ॥ १९ ॥

एतौ गृहपती पूर्व्वजन्मन्यङ्गाङ्गनाभिधौ ।
सुहृदौ धर्म्मनिरतौ वाराणस्यां बभूवतुः ॥ २० ॥

चरितब्रह्मचर्य्यौ तौ काश्यपस्यान्तिके गुरोः ।
पर्य्यन्तप्रणिधानेन प्रापतावद्य प्रशान्तताम् ॥ २१ ॥

कथितमिति तथागतेन पुण्यं
मुनिवरयोः प्रणिधानजं निशम्य ।
अभवदवहितः प्रशान्तियुक्त्या
भवभुजगाभिभवाय भिक्षुसङ्घः ॥ २२ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
कैनेयकावदानं सप्तसप्ततितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བདུན་ཅུ་རྩ་བརྒྱད་པ།

གང་གི་སྐབས་གསུམ་དབང་ཕྱུག་ལ་ཡང་བརྩེ་བ་དང་ལྡན་པའི།
ཕིག་ནི་ཞི་བ་སིན་པ་ཞི་བྱེད་ལ་དཔའ་ལྷུང་བྱེད་པ།
ཆེན་པོ་དེ་དག་རྣམས་ཀྱི་མཐུ་ནི་ཆེར་འོས་ཆེན་པོ་ཉིད།
དགེ་མཚན་གྱིས་ནི་རྗེ་མོ་ཤིན་ཏུ་མཐོ་བ་དག་ཏུ་འཛོགས།། 1

བརྒྱ་བྱིན་མདུན་སར་འཁོད་པ་སྔོན། མཐོ་རིས་ནས་ལྷུང་མཚན་ཉིད་ཀྱིས།
རིག་ཅིང་སེང་གེའི་གདན་སྟེང་དུ། དགའ་བ་རབ་ཏུ་ཐོབ་མ་གྱུར།། 2

དེ་ཡི་མགོ་ལ་མན་ད་རའི། འཕྲེང་བ་གསེར་ལྡན་མཛེས་པ་ནི།
བསོད་ནམས་མ་ཡིན་བསྐྱིབས་པ་ཡིས། ལང་ཚོའི་དཔལ་བཞིན་ཉམས་པར་གྱུར།། 3

དེ་ཡི་ཐིག་ལེ་གྲགས་པ་ལྟར། དཀར་ལ་ཉམས་པར་བྱ་བའི་སྐད།
རྡུལ་གྱི་ཆུ་ཐིགས་གསར་པ་ཡིས། ངན་སླས་བཞིན་དུ་གནས་དག་བྲས།། 4

དེ་ནི་སེམས་ནི་བསམས་པ་ལ། ཆགས་ཤིང་ལྷུང་ལ་ཉེ་གྱུར་པ།
དེ་ཡི་བསྟན་པ་ཕྲག་དོག་གིས། ཁྲོས་བཞིན་རབ་ཏུ་རིང་པོར་སོང་།། 5

མྱ་ངན་ཡོངས་འདྲིས་དེ་མཐོང་ནས། འཇིགས་པའི་སྦེ་སོགས་ཀྱིས་སྤྲས་པ།།
ལྷུང་བ་དག་ལ་ཉེ་བ་འདིར། དེན་ནི་རབ་ཏུ་བསམ་པར་མཛོད།། 6

འཇིག་རྟེན་རྣམས་ལ་བརྒྱུད་པ་ཡིས། བསྒོམ་བྱ་མིན་པ་ཙམ་དེ་ངེས།
གང་ཞིག་གཉོན་མོངས་ཐིགས་པ་འདི། འགྲོ་བའི་བདག་པོ་ཁྱོད་ལ་ཡང་།། 7

अष्टसप्ततितमः पल्लवः ।

उत्तुङ्गशृङ्गमधिरोहति कौतुकस्य
तेषां प्रभावमहिमा महतां महार्हः ।
ये पातयन्त्यशिरसं शमनप्रगल्भां
दृष्टिं दयाप्रणयिनीं त्रिदशेश्वरेऽपि ॥ १ ॥

सभासीनः पुरा शक्रः त्रिदिवच्युतिलक्षणैः ।
स्पृष्टः सिंहासनोत्सङ्गे न रतिं प्रत्यपद्यत ॥ २ ॥

सुवर्णरुचिरा तस्य मौलौ मन्दारमालिका ।
अपुण्योत्सन्नतारुण्या श्रीरिव म्लानतां ययौ ॥ ३ ॥

यशःशुभ्रे विलोपाय तिलके तस्य चक्रिरे ।
अपवादा इव नवाः पदं स्वेदोदबिन्दवः ॥ ४ ॥

आसन्नपतनस्याथ चिन्तासंसक्तचेतसः ।
ईर्ष्यारुष्टेव प्रययौ तस्य दूरतरं धृतिः ॥ ५ ॥

शुचः परिचितं दृष्ट्वा तमूचे चकिता शची ।
आसन्नेऽस्मिन्निपतने चिन्त्यतामवलम्बनम् ॥ ६ ॥

अलङ्घ्यं नास्ति लोकेषु विपदामिति निश्चयः ।
तथापि जगतां पत्यु र्यदिमाः क्लेशविप्रुषः ॥ ७ ॥

ངེས་པར་ནམ་ཀུན་ཕྱིར་ཕྱོགས་པས། འབད་པ་ཡིས་ནི་བཙལ་བཙལ་ནས།
ལྷུང་བ་ཡོར་དན་ལ་སྡིད་ཅིང་། ཆེན་པོ་རྣམས་དང་འགྲོགས་པར་འདོད།། 8

ཁྲབ་བདག་རང་ཉིད་འཛམ་གླིང་དུ། རི་ཞིག་བོངས་ལ་ཁྲོད་ཀྱིས་ནི།
སྒྲུད་པ་བསྲུང་པར་བཟློད་པ་ཡི། དགེ་སློང་འགའ་ཞིག་བསྐུལ་བར་མཛོད།། 9

གང་དག་དགེ་བས་བགྲོད་བྱེད་ཅིང་། དགེ་བ་ཉིད་ཀྱིས་སྦྱོར་བྱེད་པ།
དགེ་སློང་མཐུ་ནི་རྒྱ་ཆེ་ཞིང་། ཁྱད་པར་འཕགས་པ་གྲགས་པ་ཐོས།། 10

ཞེས་པ་དགའ་མའི་ཚིག་ཐོས་ནས། དེ་བཞིན་ཞེས་སྨྲ་ལྷ་ཡི་བདག།
ས་ལ་མངོན་ཕྱོགས་ཉོན་མོངས་ནི། འཇིལ་བ་དགེ་སློང་རྣམས་ལ་དྲིས།། 11

བརྒྱ་བྱིན་གྱིས་ནི་དྲིས་ཙམ་གྱིས། མཐུ་ཡིས་མངོན་ཁྲིངས་དེ་དག་གིས།
ཐལ་མོ་སྦྱོར་བྱས་དེ་ཉིད་ལ། ཕྱག་འཚལ་བཞིན་རས་བདུད་པར་གྱུར།། 12

གང་ཞིག་བདག་ཉིད་ལ་འདུད་པ། དེ་ཡི་ཇི་ལྟར་སྲུང་བྱེད་འགྱུར།
ཞེས་བསམས་ལྷ་ཡི་བདག་པོ་ནི། རི་བ་ཉམས་པས་རང་གནས་སོང་།། 13

དེ་ནས་དེ་ཡི་བདེ་གཤེགས་ནི། མཆོག་གི་བདུད་རྩི་ཐོབ་ཤེས་ནས།
ལྷུང་པ་རབ་ཏུ་ཉེ་བ་ནི། ཡོངས་སུ་སྐྱབས་པ་དག་ཏུ་བསམ།། 14

དེ་ནས་དེ་ནི་རྗེས་འབྲང་བཅས། དབང་པོའི་འཕྲེང་བའི་ཕྲུག་ནང་ན།
དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མི་ཁམས་ལ། སྙོམས་ཞུགས་གནས་པ་ལྷ་རུ་སོང་།། 15

सर्व्वथा खलवैमुख्यादन्विष्यान्विष्य यत्नतः ।
महद्भिः सङ्गमिच्छन्ति गुणलुब्धा इवापदः ॥ ८ ॥

अवतीर्य्य स्वयं तावज्जम्बुद्वीपं त्वया विभो ।
मृग्यतां श्रमणः कश्चिद् व्यसने रक्षणक्षमः ॥ ९ ॥

प्रभावविपुलोत्कर्षाः श्रूयन्ते श्रमणाः किल ।
युज्यन्ते कुशलैरेव येषां कुशलगामिनः ॥ १० ॥

इति प्रियावचः श्रुत्वा तथेत्युक्त्वा मरुत्पतिः ।
क्षितिमभ्येत्य पप्रच्छ श्रमणान् क्लेशसंक्षयम् ॥ ११ ॥

शक्रप्रणयमानेन ते प्रभावाभिमानिनः ।
बभूवुरञ्जलिव्यग्रास्तत्प्रणामनताननाः ॥ १२ ॥

ते कुर्व्वन्ति कथं रक्षां मामेव प्रणमन्ति ये ।
पतिर्ध्यात्वेति मरुतां भग्नाशः स्वपदं ययौ ॥ १३ ॥

ततः स सुगतं ज्ञात्वा संप्राप्तपरमामृतम् ।
प्रत्यासन्ने निपतिते परित्राणममन्यत ॥ १४ ॥

इन्द्रशैलगुहागर्भस्थितं सोऽथ तथागतम् ।
तेजोधातुसमापन्नं ययौ द्रष्टुं सहानुगैः ॥ १५ ॥

དེ་ནས་བདེ་སོགས་བདག་པོ་དེས། འཕྲུལ་ལ་ཕྱག་དང་ཉེ་བར་ཕྱིན།
བྱུར་ཕྱུ་ལྷུ་པ་ཞེས་པ་ཡི། དྲི་ཟའི་བུ་ལ་གསུས་པས་སྨྲ།། 16

དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་བཅོམ་ལྡན་འདས། མི་ཡི་ཁམས་ལ་སྙོམས་ཞུགས་པ།
ཁྱོད་ནི་རང་གི་སྒྱུ་རྩལ་ལ། མཁས་པས་རྟོགས་པ་བྱ་བར་འོས།། 17

གང་ཞིག་དུས་མིན་ཉེར་བགྲོད་དང་། མ་བརྗོད་པར་ནི་ནང་འཇུག་དང་།
བསམས་པ་ཤེས་པ་མིན་པ་དེ། དམ་པ་རྣམས་ཀྱིས་སྨད་པའི་གནས།། 18

ཞེས་བརྗོད་ལྷ་ཡི་རྒྱལ་པོ་ཡིས། བློ་གྲོས་ལྡན་པ་དྲི་ཟའི་བུ།
བི་ཏཱ་ར་ཡི་དབྱུག་པ་ཅན། རྒྱུད་མང་སྒྲ་སྙན་ལེན་དུ་བཅུག།། 19

རང་བཞིན་གྱིས་སྙན་ཡིད་དུ་འོང་། བསྒྲོད་དབྱངས་དགའ་བ་དང་བཅས་པས།
དེ་ཡིས་རྒྱལ་བ་སད་བྱས་ཏེ། འཕྲོག་བྱེད་ལྟ་བའི་སྒོ་སྐབས་ཕྱེ།། 20

དེ་ནས་ལྷ་དང་བཅས་པ་ཡི། མཆོད་སྦྱིན་བརྒྱ་པ་རབ་ཞུགས་ཏེ།
རབ་ཞིའི་བདུད་རྩིའི་ཆར་འབེབས་པ། དགའ་བ་སྐྱེད་བྱེད་བདེ་གཤེགས་བལྟས།།
21

ཕྱག་འཚལ་རབ་དུ་བཏུད་པ་དེས། མགོ་ཡི་མན་ད་ར་བའི་ཏོག།
སྟོན་པའི་ཞབས་ཀྱི་སེན་མོ་ཡི། མེ་ལོང་དག་ནི་རབ་དུ་ཕྱིས།། 22

དེ་ནས་རབ་ཞུགས་དེ་ལ་ནི། གང་གིས་བདེན་པ་མཐོང་བ་ལ།
ཆོས་ཀྱི་མིག་ནི་འབྱུང་གྱུར་པའི། བཀའ་དྲིན་རྒྱལ་བ་དེ་ཡིས་མཛད།། 23

गुहान्तिकमथासाद्य ससहायः शचीपतिः ।
ऊचे पञ्चशिखं नाम गन्धर्व्वसुतमादरात् ॥ १६ ॥

तेजोधातुसमापन्नं भगवन्तं तथागतम् ।
स्वकलाकौशलेन त्वं प्रबोधयितुमर्हसि ॥ १७ ॥

उपसर्पत्यकाले यः प्रविशत्यनिवेदितः ।
अनाश्रयज्ञः स सतामवमानस्य भाजनम् ॥ १८ ॥

इत्युक्तः सुरराजेन धीमान् गन्धर्व्वदारकः ।
वैदूर्य्यदण्डामकरोद्वीणां सुस्वरसारणाम् ॥ १९ ॥

स्वभावमधुरोदाररम्याभिः स्तुतिगीतिभिः ।
स विबोध्य जिनं चक्रे दर्शनावसरं हरेः ॥ २० ॥

ततः प्रविश्य सुगतं देवैः सह शतक्रतुः ।
ददर्श हर्षजननं वर्षन्तं प्रशमामृतम् ॥ २१ ॥

स प्रणामानतः शास्तुर्नखदर्पणमार्जनम् ।
चकार मौलिमन्दारमकरन्देन पादयोः ॥ २२ ॥

ततस्तस्य प्रविष्टस्य प्रसादं विदधे जिनः ।
सत्यसन्दर्शनाद्येन धर्म्मचक्षुर्बभूव सः ॥ २३ ॥

ཡོངས་སྤྱོད་དེ་ཡི་འཕྲལ་ལ་ནི། རང་གི་སྟན་ཉིད་ཐོབ་པར་གྱུར།
བསོད་ནམས་མཐུ་ནི་དེ་དག་གིས། ལྷུང་བའི་མཚན་ཉིད་རབ་ཏུ་ཞི།། 24

ཇི་སྲིད་འཚོ་བར་བདེ་བར་གཤེགས། སྐབས་འོས་དེ་ལ་སྐྱབས་སུ་སོང་།
བདག་ནི་རབ་ཐར་ཅེས་བརྗོད་ནས། དེ་ལ་ཞུས་ནས་མཐོ་རིས་སོང་།། 25

རམ་བུ་ར་ཡི་བུ་མོ་མཛེས། ཟུར་ཕུད་ལྔ་པ་ལ་དེས་བྱིན།
དམ་པ་རྣམས་ནི་ཕན་པའི་ཆ། བུ་ཡོན་བཞིན་དུ་སེམས་པར་བྱེད།། 26

དགེ་བ་ཐོབ་པས་བརྒྱ་བྱིན་ནི། གསར་དུ་འབྱུངས་པས་ཡ་མཚན་པ།
དགེ་སློང་གིས་དྲིས་བཅོམ་ལྡན་འདས། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་དེར་གསུངས་པ།། 27

གྲོང་ཁྱེར་མཛེས་ལྡན་དག་ཏུ་སྔོན། ས་ཡི་བདག་པོ་སྐལ་བཟང་གིས།
སྟོན་པ་ལོག་པར་དང་སེལ་གྱི། སྐུ་ཡི་མཆོད་རྟེན་རབ་ཏུ་བྱས།། 28

དེ་ཡི་བསོད་ནམས་སྨོན་ལམ་རྫོགས་ལྡན་པས།
རྒྱལ་པོ་དེས་ནི་ལྷ་ཡི་དབང་ཉིད་ཐོབ།
འབྲོར་པས་ཆོས་ཀྱི་བཙིངས་ཞེས་གསུངས་ནས་ནི།
བཅོམ་ལྡན་གསུང་ནི་རབ་ཏུ་ཞི་བར་གྱུར།། 29

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་ཁྲི་ཤིང་ལས་བརྒྱ་བྱིན་ལྷུང་བའི་རྟོགས་པ་བ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བདུན་ཅུ་རྩ་བརྒྱད་པའོ།།

परिच्युतः स सहसा स्वमेवासन मास्तवाम् ।
तेन पुण्यप्रभावेण प्रशान्तश्च्युतिलक्षणः ॥ २४ ॥

यावज्जीवं स सुगतं शरण्यं शरणं गतः ।
अतिक्रान्तोऽहमित्युक्त्वा तमामन्त्य ययौ दिवम् ॥ २५ ॥

ललितां तुम्बुरुसुतां ददौ पञ्चशिखाय सः ।
तृणवत् कुरुते चिन्तामुपकारकणः सताम् ॥ २६ ॥

शक्रस्य कुशलावाप्त्या प्रत्ययोद्भूतविस्मयैः ।
भिक्षुभिर्भगवान् पृष्टः सर्वज्ञस्तानभाषत ॥ २७ ॥

शोभावत्यां पुरि पुरा शोभाख्यः पृथिवीपतिः ।
ककुत्सन्दस्य शारीरं स्तूपं शास्तुरकारयत् ॥ २८ ॥

तत्पूर्णपुण्यप्रणिधानयोगात्
प्राप्तः स राजा त्रिदशेश्वरत्वम् ।
धर्मानुबन्धां भगवान् विभूति
मुक्त्वेति वाणीमनयत् प्रशान्तिम् ॥ २९ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
शक्रच्यवनावदानमष्टसप्ततितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བདུན་ཅུ་རྩ་དགུ་པ།

བུད་མེད་བློ་ཡི་སྨིན་མོ་རྣམས་ཀྱིས་བློ་གྲོས་སྦྱོངས་བྱས་ཤིང་།
བདེ་བ་འདོད་པ་ཉིད་ཀྱིས་ཡིད་ནི་ནོར་ལ་ཞུགས་གྱུར་པ།
སྐྱེས་བུ་གང་ཞིག་རབ་ཞི་དང་བྲལ་ཞི་བར་མི་བསྒྲོད་པ།
དེ་དེ་ངེས་པར་འཕྲུལ་ལ་ཉོན་མོངས་དག་ཏུ་ལྷུང་བར་འགྱུར།། 1

གང་གིས་ན་ཆོད་ཕྱིད་དག་ནི། གྲོས་པ་བརྗོད་ཅིང་ཚངས་སྤྱོད་སྤྱད།
བྲམ་ཟེ་འཚོ་བ་བདེ་ཞེས་པ། མཚན་ཡོད་དུ་ནི་སྔོན་བྱུང་གྱུར།། 2

མཛའ་བས་གཉེན་གྱིས་གསོལ་བདབ་པའི། གཞན་པོ་སྨ་ར་ཁྲ་བོ་དེ།
ཆོས་ཀྱི་ལམ་གྱི་ངོ་དག་ཏུ། བུད་མེད་རབ་ཏུ་བཟུང་བར་བྱས།། 3

ལོངས་སྤྱོད་གསར་པ་ལ་ཆགས་དེའི། ཆུང་མ་གསོ་ལྡན་མ་ཞེས་པ།
ངར་ལ་བབ་ཅིང་མིག་གསོ་མ། ཤིན་ཏུ་ཡིད་འོང་ཉིད་དུ་གྱུར།། 4

དེ་ནི་དེ་ལ་རིམ་བཞིན་དུ། ཤིན་ཏུ་སྲིད་པ་མིན་པར་གྱུར།
བུད་མེད་སྐེ་གྲུས་ལ་ཆགས་ཤིང་། ཡང་དག་ཆགས་ལ་ཆགས་བྲལ་ཉིད།། 5

ངེས་བསམ་ཀུན་ཏུ་མི་འགྲོགས་པའི། ཐ་བས་སྨ་དཀར་ལྡན་པའི་ཁྱོད།
བདག་གི་ལང་ཚོའི་དྲེགས་འདི་ལ། བསོད་ནམས་མིན་པས་ཉེ་བར་གནས།། 6

ऊनाशीतितमः पल्लवः ।

स्त्रीभिर्विमोहितमतेर्गृहराक्षसीभि-
र्वित्तप्रवृत्तमनसः सुखवाञ्छयैव ।
क्लेशाः पतन्ति परुषाः पुरुषस्य देहे
गच्छन्ति नाम न विना प्रशमं शमं ये ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां ब्राह्मणः पूर्व्वं जीवशर्म्माभिधोऽभवत् ।
वयसोऽर्द्धं श्रुताध्यायी ब्रह्मचर्य्यं चचार सः ॥ २ ॥

स जराशवलश्मश्रुः स्नेहाद्बन्धुभिरर्थितः ।
धर्म्ममार्गानुरोधेन विदधे दारसंग्रहम् ॥ ३ ॥

पत्नी तरलिका नाम तरुणी तरलेक्षणा ।
नैव सम्भोगलुब्धस्य तस्यातिदयिताभवत् ॥ ४ ॥

तस्या ज्वरोऽयमेतस्मिन्नरुचिः सुतरामभूत् ।
अभर्त्तरक्ताः संसक्तविरक्ता एव योषितः ॥ ५ ॥

साचिन्तयदनर्होऽयं जरासारशिरोरुहः ।
मम यौवनदर्पेऽस्मिन्नपुण्योपनतः पतिः ॥ ६ ॥

རྒན་པོས་གཞོན་ནུ་མ་སྤྱོད་པ། ལུས་ནི་ཉམས་པ་གོ་བྱེད་དག།
གྲ་བས་སྐྲ་ནས་བཟུང་བྱས་ཏེ། མཉིན་ག་ཤིན་གྱིས་ནི་རླིག་པ་བཞིན།། 7

རྒན་པོ་དཔལ་གྱིས་ཆུང་ཟད་ནི། འཁྲམས་ཤིང་སྐྲ་བོར་རབ་གྱུར་པ།
ས་ལ་ཡང་ཚོ་འི་ནོར་བྲུ་ནི། སྤྱོར་བ་འཚོལ་བར་བྱེད་པ་བཞིན།། 8

རྒན་པོ་བློ་ལྡན་མ་ཡིན་པ། འཇིག་རྟེན་པ་རོལ་དོན་ཤེས་པས།
གཞན་གྱི་ལོངས་སྤྱོད་ལ་སྦྱར་གང་། དེ་ཉིད་བདག་གིས་རབ་དུ་བྱ།། 9

འདི་ནི་ཁྱིམ་ན་གནས་པའི་ཚེ། ཀུན་པོ་འི་འདོད་ལྡན་དང་མཛའ་བས།
བརྩེ་མེད་ལོངས་སྤྱོད་མ་བསྔམས་པ། བདེ་བ་བདག་གིས་སྤྱོད་མི་ནུས།། 10

ཞེས་བསམས་རིགས་བཟང་རྗེས་མཐུན་ཞིང་། ངོ་ཚ་ལྡན་བ་བཞིན་དུ་དེས།
དུལ་བ་ཡིས་ནི་མདོན་ཕྱོགས་ཏེ། དལ་གྱིས་བདག་པོ་ལ་སྨྲས་པ།། 11

བྱ་མེད་བདེ་བ་འཚོལ་བྱེད་པ། ཁྱོད་ནི་ཁྱིམ་དུ་ཆགས་པ་ཡིས།
བཟོད་པར་དཀའ་བའི་དབུལ་པོ་ཉིད། ཁྱོད་ཀྱི་ལག་པས་དྲངས་ནས་བླངས།། 12

གང་ཞིག་རྩོམ་པ་ལ་སྤང་ཞིང་། དྲག་པོ་འི་སྐྱོམ་ལས་དགག་ལ་དགའ།
རབ་མང་འགོད་པའི་བརྒྱུད་ལྡན་པའི། ཁྱིམ་ན་གནས་པ་དེས་ཅི་བྱེད།། 13

གང་དུ་ཁྱིམ་བདག་སྐྱོམ་ལས་ལས། ཁྱིམ་གྱི་རྒྱུར་ནི་མིག་གདོང་བ།
དེར་ནི་བྲུད་མེད་རྨོངས་པ་རྣམས། ནོར་སྒྲུབ་སྐད་དུ་འབྲུང་ངམ་ཅི།། 14

वृद्धस्य तरुणीभोगः शरीरक्षयसूचकः ।
केशग्रहेण जरया वात्सल्येनेव वार्यते ॥ ७ ॥

किञ्चित्सङ्कोचकुटिलः प्रयाति स्थविरः शनैः ।
हारितं यौवनमणिं वीक्षमाण इवावनौ ॥ ८ ॥

वृद्धेन परलोकार्थमानीता यदि धीमता ।
परभोगप्रणयिनी तत्तदेव करोम्यहम् ॥ ९ ॥

अन्तर्गृहगते त्वस्मिन्न शक्यं चौरकामिभिः ।
प्रेमनिर्दयसम्भोगनिरर्गलसुखं मया ॥ १० ॥

इति सञ्चिन्त्य साभ्येत्य शनैः पतिमभाषत ।
लज्जमानेव विनयादाभिजात्यानुकारिणी ॥ ११ ॥

गृहसक्तेन भवता निर्व्यापारसुखैषिणा ।
हलेनाकृष्य दारिद्र्यमानीतं बत दुःसहम् ॥ १२ ॥

उद्योगद्वेषिणस्तीव्रमालस्यं यस्य वल्लभम् ।
बहुव्ययप्रवाहार्हं विवाहं स करोति किम् ॥ १३ ॥

यस्यालस्याद् गृहपति गृहकोणं न मुञ्चति ।
धनार्जनाय निर्यान्तु मुग्धास्तत्र किमङ्गनाः ॥ १४ ॥

གང་ན་སྐྱེས་པ་སྤྲོ་ལྡན་པས། ཕྲི་ཨི་ཤ་སྐད་ལ་དགའ་ཞིང་།
བུད་མེད་ཁྲིམས་གྱིས་བྱ་བར་ཆགས། དེའི་དོན་ཀུན་ཕུན་སུམ་ཚོགས།། 15

ལས་དང་བྲལ་བ་རྣམས་ཀྱི་ཁྲིམས་ནི་དགའ་སྟོན་ལོངས་སྤྱོད་ཉམས་གྱུར་ཅིང་།
རྒྱན་མེད་གོས་མེད་བུད་མེད་དག་ནི་ཟུར་ཕྱུག་དྲི་མ་ཅན་ན་ཞེན།
ཁྲི་དང་མལ་སྟན་རྣམ་པར་ཉམས་ཤིང་ཚ་སྣོད་ཆག་པའི་སྣྲ་དང་ལྡན།
འབངས་མེད་ཡོ་བྱད་མེད་ཅིང་ཡུན་རིང་ཞོ་སྲུབ་སྒྲ་ནི་རྫོགས་པར་འགྱུར།། 16

དེ་ཡིས་དེ་བརྗོད་བྲམ་ཟེ་དེ། ནོར་ལ་མངོན་དུ་ཕྱོགས་དེ་སོང་།
བུད་མེད་ཀྱིས་ནི་དབང་བྱས་རྣམས། ཡུལ་གྱི་གཡང་ས་དག་ཏུ་ལྷུང་།། 17

དེ་ཡིས་ནོར་འཛིན་རྒྱ་མཚོ་འི་མཐར། འཁྲམས་ནས་སྦྱིན་པ་ཐོབ་གྱུར་དེ།
གསེར་དང་གོས་ནི་རྫོགས་གྱུར་པས། དུས་ཀྱི་རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་སོང་།། 18

དེ་ནས་ཁྲིམས་འདོད་ཆགས་ཀྱིས་དེ། སོང་བ་གྲོང་མཐའི་ནགས་ཚལ་དུ།
ཆོམ་རྐུན་པ་ཡི་བཅོམ་གྱུར་ནས། ལུས་ཙམ་ལྷག་མ་ཉིད་དུ་འགྱུར།། 19

བདེ་བ་དོན་གཉེར་ནུས་པ་ཡིས། དོན་མེད་ནོར་ནི་ཉེར་བསྒྲུབས་ཀྱང་།
སྨྱ་ངམ་ཚ་ཡི་ཐིགས་པ་བཞིན། བྱེད་པོ་བཞིད་པ་མིན་པས་བྱེད།། 20

དེས་བསམས་ཀྱི་མ་འབད་པ་ཡིས། བདག་གི་ནོར་ར་ནི་བསྒྲུབས་གྱུར་ཀྱང་།
བདག་ནི་སྐལ་དང་མི་ལྡན་པས། ཀྱི་ལམ་མཐོང་དང་མཚུངས་པར་གྱུར།། 21

सोत्साहः पुरुषो यत्र व्यवहाररतिं र्बहिः ।
गृहव्यापारसक्ता स्त्री सर्व्वास्तत्र सुसम्पदः ॥ १५ ॥

अभूषणमनम्बरं मलिनकोणलीनाङ्गनम्
विशीर्णशयनासनं स्फुटितवारिधानीघटम् ।
अदासमनुपस्करं चिरनिवृत्तमन्थस्वनम्
गृहं विरतकर्म्मणां भवति भग्नभोगोत्सवम् ॥ १६ ॥

इत्युक्तः स तया विप्रः प्रतस्थे द्रविणोन्मुखः ।
पतन्ति विषयश्वभ्रे ह्यपि योषिद्वशीकृताः ॥ १७ ॥

स सागरान्तां वसुधां भ्रान्त्वा लब्धप्रतिग्रहः ।
कालेन स्वपुरीं प्राप सम्पूर्णकनकाम्बरः ॥ १८ ॥

गृहोत्कण्ठोत्कराक्रान्तः पुरीपर्य्यन्तकानने ।
शरीरमात्रशेषोऽभूद् दस्युभिर्मुषितोऽथ सः ॥ १९ ॥

अनर्थोपार्जितोऽप्यर्थः सामर्थ्येन सुखार्थिना ।
करोत्यनिच्छया धातु र्मरुवारिकणायितम् ॥ २० ॥

सोऽचिन्तयदहो यत्नादपि वित्तं मयार्जितम् ।
अभाग्ययोगाद् यातं मे स्वप्नदर्शनतुल्यताम् ॥ २१ ॥

ནོར་ནི་དོན་གཉེར་ཆུང་མ་ཡིས། གན་དུ་ལག་སྦྱོང་བདག་ཕྱིན་ན།
སྨད་པ་དྲག་པོའི་དུག་ལྡན་པའི། ཚིག་རྩུབ་བརྗོད་པས་བདག་མི་འཚོ།། 22

དེ་སྐད་བདག་ནི་འདི་ཉིད་དུ། འཕྲུལ་ལ་ཞུགས་པས་བཅིངས་པ་ཕན།
དབུལ་བའི་ཉེར་འཚེ་དྲག་པོ་ཡིས། ཁྱིམ་དུ་བུད་མེད་མཚོན་མི་བཟོད།། 23

ཅེས་བསམས་དེ་ཡིས་འཕྲི་ཤིང་གི། ཞགས་པ་དག་ནི་མགྲིན་པར་བཀོད།
ཉོན་མོངས་དྲག་པོས་ཉེན་རྣམས་ཀྱིས། གཉེན་དང་ཕྲད་པ་འཆི་བ་ཡིན།། 24

སྐབས་དེར་བཅོམ་ལྡན་བརྩེ་བ་ཡི། རྒྱ་མཚོ་འབྱུང་པོ་ལ་དགོངས་པ།
ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་དེ་ཡིས་ནི། སྡུག་བསྔལ་ཤེས་ནས་ནགས་སུ་བྱོན།། 25

དེ་ནས་དེ་ཡིས་གཉིས་སྐྱེས་ནི། བརྩེ་བས་དབུགས་ཕྱུང་ཞགས་པ་བཅད།
དེ་ཡིས་བྱིན་པའི་གཏེར་སླངས་ནས། དེ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ཁྱིམ་དུ་སོང་།། 26

དེ་ཡི་ཆུང་མ་ནོར་གྱིས་ཀྱང་། རྗེས་སུ་མཐུན་པ་ཉིད་མ་གྱུར།
གཞན་གྱི་རིག་པ་ལ་ཆགས་པའི། བུད་མེད་ནོར་གྱིས་ཚིམ་མི་འགྱུར།། 27

ལོངས་སྤྱོད་རྩོམ་པ་ཆེ་ལ་ཡང་། དུས་ཀྱིས་ཡིད་ནི་ཆགས་བྲལ་དེས།
བསམ་པ་ཀུ་མ་འཁོར་བ་ན། དེ་ཉིད་དུ་ནི་བདེ་བ་མེད།། 28

དབུལ་དང་མཚུངས་པའི་སྡུག་བསྔལ་ཅི་ཞིག་ཡོད།
དེ་བས་ཀྱང་ནི་ནོར་བསྲུབས་རབ་སྡུག་བསྔལ།

शून्यपाणिर्धनार्थिन्याः पत्न्याः प्राप्याहमन्तिकम्।
न जीवाम्यवमानोग्रविषैः परुषभाषितैः॥ २२॥

तस्मादिहैव मे सद्यः पाशेनोद्बन्धनं हितम्।
दारिद्र्योपद्रवक्रूरं स्त्रीशस्त्रं न सहे गृहम्॥ २३॥

इति सञ्चिन्त्य स लतापाशं कण्ठे न्यवेशयत्।
तीव्रक्लेशविषण्णानां निधनं बन्धुसङ्गमः॥ २४॥

अत्रान्तरे कृपासिन्धुर्भगवान् भूतभावनः।
दुःखं ज्ञात्वास्य सर्व्वज्ञस्तदर्थं वनमाययौ॥ २५॥

दययाश्वासितस्तेन त्यक्त्वा पाशमथ द्विजः।
तद्दत्तं निधिमादाय तं प्रणम्य ययौ गृहम्॥ २६॥

तस्य भार्य्या धनेनापि न जगामानुकूलताम्।
परसंस्पर्शरागिण्य स्तुष्यन्त्यर्थेन न स्त्रियः॥ २७॥

स कालेन महारम्भभोगेऽप्युद्विग्नमानसः।
अचिन्तयदहो नास्ति संसारे तत्त्वतः सुखम्॥ २८॥

दारिद्र्यतुल्यं किमिहास्ति दुःखं
धनार्जनं दुःखतरं ततोऽपि।

ནོར་གྱི་ལོངས་སྤྱོད་བདེ་བའི་ཆས་བསྒྲེས་པ།
གནས་དང་གནས་སུ་སྡུག་བསྔལ་བརྒྱ་ཕྲག་སྐྱེད།། 29

དེ་ལྟར་ཆགས་བྲལ་རབ་བསམས་དེ། རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་དུ་སོང་ནས་དེས།
སྲིད་པ་གཅོད་སླད་བཅོམ་ལྡན་འདས། སྟོན་པ་ལ་ནི་སྐྱབས་སུ་སོང་།། 30

དེ་ཡི་བསམ་པ་བག་ལ་ཉལ། ཁམས་དང་དེ་བཞིན་འགྲོ་མཁྱེན་ནས།
ཆོས་ཀྱི་སྨན་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས། སྲིད་པའི་ནད་ཀྱི་སྨན་པས་བྱིན།། 31

བདེན་མཐོང་དེ་ཡིས་རབ་བྱུང་ནི། རབ་ཏུ་དང་བ་ཡང་དག་བླངས།
ཉོན་མོངས་ཐམས་ཅད་སྤངས་པའི་སླད། དགྲ་བཅོམ་ཉིད་ནི་ཐོབ་པར་གྱུར།། 32

དེ་ཡིས་གྲུབ་པ་སྨད་བྱུང་དེ། མཐོང་ནས་ཡ་མཚན་རྒྱས་པ་ཡི།
དགེ་སློང་གིས་དྲིས་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། དེ་ཡི་སྔོན་བྱུང་རབ་གསུངས་པ།། 33

བ་ར་ཎ་སིར་མི་ཡི་དབང་། དབང་ཆེན་སྡེ་ནི་སྔོན་བྱུང་སྟེ།
སེམས་ཅན་ཀུན་ལ་གང་གི་ནི། བརྩེ་བ་མཆོག་ཉིད་ཡོད་འོང་གྱུར།། 34

བདག་པོ་ངན་པས་རབ་གདུངས་པ། ཡུལ་གཞན་ནས་འོངས་སྐྱེ་བོ་ཡིས།
ལམ་གནས་གང་གི་གྲིབ་བསིལ་གྱི། ལྗོན་པ་བཞིན་དུ་མངོན་ཕྱོགས་བསྟེན།། 35

ནས་ཞིག་པ་རོལ་རྒྱལ་ཕྲན་གྱི། གྲོང་ཁྱེར་དག་ནི་བཀག་གྱུར་ཀྱང་།
ཁྲོ་མེད་དེ་ཡིས་གཡུལ་དག་ནི། ཐམས་ཅད་གནོད་ལ་བློ་མ་བསྒྱུབས།། 36

धनोपभोगः सुखलेशदिग्धः
पदे पदे दुःखशतानि सूते ॥ २९ ॥

विरक्तश्चिन्तयित्वेति स गत्वा जेतकाननम् ।
भगवन्तं भवोच्छित्त्यै शास्तारं शरणं ययौ ॥ ३० ॥

तस्याशयं सानुशयं धातुं ज्ञात्वा गतिं तथा ।
भगवान् धर्म्मभैषज्यं भवरोगभिषग् ददौ ॥ ३१ ॥

स दृष्टसत्यः प्रव्रज्यां समादाय प्रसादिना ।
सर्व्वक्लेशप्रहाणार्हं मर्हत्त्वं समवाप्तवान् ॥ ३२ ॥

तस्य तामद्भुतां सिद्धिं दृष्ट्वा विपुलविस्मयैः ।
भिक्षुभि र्भगवान् पृष्ट स्तद्वृत्तान्त मभाषत ॥ ३३ ॥

पुरा महेन्द्रसंज्ञोऽभूद्वाराणस्यां नरेश्वरः ।
यस्याग्र्या सर्व्वसत्त्वेषु दयेव दयिताभवत् ॥ ३४ ॥

यं जनः परदेशेभ्यस्तीव्रं कुगतितापितः ।
छायावृक्षमिवाभ्येत्य सन्मार्गस्य मशिश्रियत् ॥ ३५ ॥

कदाचित् प्रतिसामन्तैर्निरुद्धनगरोऽपि सः ।
अक्रोधः सर्व्वनिधने न युद्धे विदधे धियम् ॥ ३६ ॥

དེ་ནི་སྨྲོ་བ་མེད་ཞེས་ནས། ཆགས་བྲལ་བློན་པོ་ཐམས་ཅད་ཀྱིས།
སྲིད་པས་ནོར་ནི་བླངས་བྱས་ཏེ། དགྲ་པོ་དག་ལ་བརྟེན་པར་གྱུར།། 37

དེ་ནས་སྲོག་ཆགས་གསོད་པ་ལ། ཡིད་གྱུར་རྒྱལ་སྲིད་རབ་བདང་ནས།
ས་ཡི་བདག་པོ་བཟོད་པའི་ཞིང་། གཅིག་པུ་མ་ཚོར་ནགས་སུ་སོང་།། 38

རྗེ་ལ་གུས་དང་སེམས་ཅན་ལ། རེ་ཚ་རབ་བདང་ངན་པ་ཡི།
བློན་པོ་ཆགས་པས་ལྟོང་རྣམས་ཀྱིས། པ་རོལ་རྒྱལ་ཕྲན་རྒྱལ་པོར་བྱས།། 39

མི་བདག་གསར་པའི་ངོས་ན་ནི། གསར་པ་ཉིད་དུ་རྣམ་པར་འཕེལ།
རང་གི་རྗེ་བོ་བདང་རྣམས་ལ། འོས་པ་མིན་པ་འབབ་ཞིག་ལྡན།། 40

དེ་དག་ས་བདག་གསར་པ་ཡི། སྒྲོ་སྐྱུང་རྣམས་ཀྱིས་ཡུན་རིང་བཀག།
སྐྲེ་བས་བདག་ཉིད་ལ་མཆོད་དེ། ཤུགས་བྱུང་ངོ་ཚས་གླུ་བླངས་པ།། 41

རྗེ་བོ་མཉེས་གཞིན་རྙེད་སྐྱ་བ། དབང་ཆེན་སྡེ་ནི་རབ་བདང་ནས།
སྡིག་ཅན་བདབ་ཅག་གཞན་སྐྲོ་ན། དསོད་པའི་གདུང་བ་བཟོད་པར་བྱེད།། 42

དཔལ་ནི་སྐྲིད་བྱེད་ལྷ་དང་ལྷ་མིན་མི་རྣམས་རིན་ཅན་ཚོགས་ཀྱི་རྒྱུས་པར་བྱེད།
ཚ་གཏེར་དྲི་མེད་ཞིན་དུ་རྒྱ་ཆེ་དེ་ནི་ཁོག་པ་སྟོང་བ་ཁྱོད་ཀྱིས་བདང་།
ད་ལྟ་བདག་ངན་སྐྲོ་ལ་བརྟེན་ཅིང་གྱེན་དུ་ཕྱོགས་ཐབ་སྨྲོངས་པའི་དུང་དག་ཀྱི།
ཁལ་བརླུང་པོས་ཕུང་བྱས་ཚོ་ངེ་དྲག་པོ་ཅི་ཞིག་ལ་སྐྲོགས་མི་སྨྲར་འདུག།། 43

तं विज्ञाय निरुत्साहं विरक्ताः सर्व्वमन्त्रिणः ।
लुब्धा द्रविणमादाय बभूवुः शत्रुसंश्रयाः ॥ ३७ ॥

अथ प्राणिवधोद्वेगत्यक्तराज्यः स भूपतिः ।
अलक्षितः क्षमाश्लेच मेकाकी काननं ययौ ॥ ३८ ॥

प्रभुभक्तिं समुत्सृज्य सत्त्वं लज्जाञ्च दुर्जनाः ।
अमात्याः प्रतिसामन्तं लोभान्धा श्चक्रिरे नृपम् ॥ ३९ ॥

नवस्य नृपतेः पार्श्वे नवा एव जजृम्भिरे ।
स्वस्वामित्यागिनां लग्न मनौचित्यन्तु केवलम् ॥ ४० ॥

ते नवस्य क्षितिपते र्द्वारस्थै र्वारिता श्चिरम् ।
खेदादात्मान मुद्दिश्य जगु र्निश्वस्य लज्जिताः ॥ ४१ ॥

महेन्द्रसेनं सन्त्यज्य पेशलं सुलभं प्रभुम् ।
परद्वारि वयं पापाः शापतापं सहामहे ॥ ४२ ॥

त्यक्तः श्रीजनकः सुरासुरवरव्याकीर्णरत्नोत्करः
स स्वच्छः पयसां निधिः पृथुतरः शून्याशयेन त्वया ।
हे नीचोन्मुख शङ्खमूर्ख कुपते र्द्वारेऽधुना लम्बसे
तूष्णीमास्स्व खले नमत्कृतमुखस्तारं किमाक्रन्दसि ॥ ४३

དེ་ལྟར་རབ་གདུང་བློན་པོ་རྣམས། རྒྱལ་སྲིད་གསར་པའི་ཚ་གདུང་ལ།
དབང་ཆེན་སྡེ་ཡི་ཟླ་བ་ནི། རབ་ཏུ་བཟླ་བར་འདོད་པར་གྱུར།། 44

སྐབས་དེར་རྒྱལ་པོ་ཞི་བ་ཡི། དགའ་ཚལ་ནགས་ན་གནས་པ་དང་།
ཉེ་བར་བྲམ་ཟེ་སློང་བ་ཡི། ཀཽ་ཤི་ཀ་ཞེས་པ་འོངས།། 45

འབྲས་བུ་རྩ་བས་ས་བདག་གིས། མགྲོན་བྱས་ངལ་བསོས་དེ་ལ་ནི།
དེ་ཡིས་འོངས་པའི་རྒྱུ་མཚན་དག། དྲུལ་བས་དྲིས་པ་རབ་སྨྲས་པ།། 46

སློང་བའི་ཚོགས་ཀྱི་ཀུན་རྟོག་གི། འབྲས་བུ་ཆེ་ལྡན་དཔག་བསམ་ཤིང་།
མི་བདག་དབང་ཆེན་སྡེ་ལ་བདག། དབུལ་བ་ཡིས་ནི་སློང་དུ་འགྲོ།། 47

དེ་ཐོས་མི་བདག་ཕྱུག་བསྩལ་དང་། ལྡན་པས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།
བྲམ་ཟེ་ང་ནི་དབང་ཆེན་སྡེ། དཔལ་དང་བྲལ་བས་བདག་སྨད་དོ།། 48

སློང་བ་ཁྱོད་ནི་ཕྱིར་ཕྱོགས་ལས། གང་ལ་གདུང་བ་སྤེར་དུ་འོངས།
སྒྲུབ་བྱེད་ཕྱིན་ཅི་ལོག་ལས་ནི། ཕྱིན་ཅི་ལོག་ཉིད་བདག་གིས་ཐོབ།། 49

གང་གི་རེ་བ་ཉམས་པ་ཡི། སློང་བའི་བཞིན་ལོག་མཐོང་གྱུར་པ།
ཤིང་བསྐམ་ལྟ་བུ་བདག་གི་ལུས། འབྲས་བུ་མེད་པ་དག་གིས་ཅི།། 50

ཞེས་པ་རྒྱལ་པོ་འི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཇོ་བ་བསྐྱུན་བཞིན་གཉིས་སྐྱེས་ནི།
དེ་ཐག་ཆད་པས་ཡུན་རིང་ན། འདུས་ཤེས་ཐོབ་ནས་རབ་སྨྲས་པ།། 51

नवराज्यातपे तीव्रे मन्त्रिणामिति शोचताम् ।
महेन्द्रसेनचन्द्रस्य स्पृहा सन्दर्शनेऽभवत् ॥ ४४ ॥

अस्मिन्नवसरे राज्ञः श्रमारामवनस्थितेः ।
समीपं कौशिको नाम ब्राह्मणोऽर्थी समाययौ ॥ ४५ ॥

स विश्रान्तः कृतातिथ्यः फलमूलै र्महीभुजा ।
पृष्टः प्रोवाच विनयात् तचागमनकारणम् ॥ ४६ ॥

सर्व्वार्थिसार्थसङ्कल्पकल्पवृक्षमहाफलम् ।
महेन्द्रसेनं गच्छामि दारिद्र्याद् याचितुं नृपम् ॥ ४७ ॥

एतदाकर्ण्य नृपति स्तमभाषत दुःखितः ।
आशागतार्थिवैमुख्यतापोष्णं निःश्वसन्मुहुः ॥ ४८ ॥

ब्रह्मन् महेन्द्रसेनोऽहं धिङ्मां विरहितं श्रिया ।
वैमुख्याद् यस्य सन्तापमर्थी त्वं दातुमागतः ॥ ४९ ॥

किं निष्फलेन वपुषा शुष्करूक्षोपमस्य मे ।
आशाभङ्गपरिम्लानं मुखं पश्यन्ति येऽर्थिनः ॥ ५० ॥

इति राजवचः श्रुत्वा द्विज श्छिन्नमनोरथः ।
चिरेण संज्ञा मासाद्य शिलाहत इवाब्रवीत् ॥ ५१ ॥

བདག་ལ་སྐལ་བ་མེད་པ་ཡིས། ས་སྐྱོང་ཁྱོད་ཀྱིས་འབྱོར་བ་སྤངས།
གཏོང་བ་ཁྱོད་ལྟར་རྙེད་སླ་བ། འཇིག་རྟེན་དུ་ནི་ག་ལ་རྙེད།། 52

ཆོག་ཤེས་རྒྱན་ལྟར་ཁྱོད་མཛད་པ། རྒྱལ་སྲིད་དག་ལས་ཤིན་ཏུ་ལྷག།
གང་ཞིག་མཛའ་བོ་གཞན་མེད་པའི། སློང་རྣམས་བསོད་ནམས་མེད་པ་ཉིད།། 53

དཔལ་མོ་གཡོ་བ་ཉིད་ཀྱིས་འཕྲལ་ལ་ངེས་པ་བདང་གྱུར་པའི།
རིན་ཅན་འབྱུང་གནས་དག་ནི་བག་ཀྱང་དམན་པར་གྱུར་བ་མེད།
དཔལ་ནི་ཁྱོད་བཞིན་མི་བསྒྱུན་བཀས་ཆགས་ཁྲིམས་ན་དམན་ལྡན་ཞིང་།
ད་དུང་སྐྱེས་བུ་དམ་པ་ལ་བརྟེན་དགའ་བར་ཡོངས་མ་གྱུར།། 54

ཞེས་བརྗོད་སྲི་བདག་ལ་གསོལ་ནས། བསམ་བྲལ་དུག་གྱིས་གཟིར་བ་དེ།
འབྲས་བུ་འཚོ་བའི་ཤིང་བཅད་དེའི། མྱ་ངན་ལས་ནི་འཆི་བར་བརྩོན།། 55

དེ་ཡི་མགྲིན་པར་སོང་བ་ཡིས། ཞགས་པས་བདག་དེ་ཡིས་བསལ།
སྙིང་རྗེའི་རྒྱ་མཚོ་སློང་རྣམས་ཀྱིས། མཛའ་གཙུགས་གཉེན་གྱིས་དེ་ལ་སྨྲས།། 56

བདག་ཆིངས་ས་ཡི་བདག་པོ་ནི། མི་མཐུན་ཕྱོགས་ཀྱི་གྲོང་ཁྱེར་ཁྱེར།
ཁྲོད་ལ་བདག་ནི་གསོད་འདོད་དེས། མངོན་འདོད་ལས་ལྷག་ནོར་སྟེར་གྱུར།། 57

དེ་སྐད་ས་ཡི་བདག་པོས་བརྗོད། ངོ་མཚར་གྱུར་བཞིན་གཉིས་སྐྱེས་ཀྱིས།
སློང་བའི་གཉེན་དེ་བཅིངས་ནས་ནི། ནོར་ལ་སྤྱོད་བས་རབ་ཏུ་ཁྱེར།། 58

अभाग्यै र्मम भूपाल भवान् विभववर्जितः ।
सुलभ स्त्वद्विधो दाता भुवने लभ्यते कुतः ॥ ५२ ॥

राज्यादभ्यधिका शोभा सन्तोषाभरणस्य ते ।
अपुण्यान्यर्थिनामेव येषामन्योऽस्ति नाश्रयः ॥ ५३ ॥

त्यक्तस्य चञ्चलतया सहसैव लक्ष्म्या
रत्नाकरस्य न मनागपि हीनताभूत् ।
लक्ष्मीस्तु नीचखललुब्धगृहावसन्ना
नाद्यापि सत्पुरुषसंश्रयहर्षमेति ॥ ५४ ॥

इत्युक्त्वा नृपमामन्त्र्य स नैराश्यविषातुरः ।
कलत्रवृत्तिविच्छेदविषादान्मर्त्तुं मुद्ययौ ॥ ५५ ॥

तस्य कण्ठगतं पाश मपनीय स भूपतिः ।
तमूचे करुणासिन्धु र्बन्धुः स्निग्धतरोऽर्थिनाम् ॥ ५६ ॥

बद्ध्वा मां प्रतिपक्षस्य नय भूमिपतेः पुरीम् ।
मद्वधी स हि ते वित्तं दास्यत्यभिमताधिकम् ॥ ५७ ॥

इत्युक्तः पार्थिवेन्द्रेण लज्जमान इव द्विजः ।
तमर्थिबान्धवं बद्ध्वा निनाय धनतृष्णया ॥ ५८ ॥

ས་བདག་དེ་ཡིས་ཁྲིད་པ་དེ། ཕ་རོལ་རྒྱལ་ཕྲན་དག་གིས་མཐོང་།
དེ་ཡི་བྱང་ཚུལ་ཐོས་གྱུར་ནས། ཡ་མཚན་གྱུར་བས་དེ་ལ་བསྟགས།། 59

བྲམ་ཟེ་ལ་ནི་ནོར་བྱིན་ནས། རང་གི་གནས་སུ་ས་བདག་དེ།
ནགས་ལ་ཅོད་པན་གྱིས་གཏུགས་ཏེ། དང་བར་བྱས་ནས་དེ་ཡིས་བཀོད།། 60

མི་ཡི་བདག་པོ་དབང་ཆེན་སྡེ་ནི་ང་ཉིད་དེ།
གང་འདིས་སྐྱོང་བ་ཀཽ་ཤི་ཀའི་ནོར་དག་བསྒྲུབས།
སླར་ཡང་དེ་ཉིད་ཁོ་ན་འཚོ་བ་བདེ་བའོ།
ཞེས་པའི་སྤྱོད་པ་རྒྱལ་བས་རང་ལ་དཔེར་བརྗོད་དོ།། 61

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་དབང་ཆེན་སྡེའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བདུན་ཅུ་ཙ་དགུ་པའོ།།

तं दृष्ट्वा प्रतिसामन्त स्तेनानीतं महीपतिम् ।
तद्वृत्तान्तञ्च विज्ञाय विस्मितः प्रशशंस तम् ॥ ५९ ॥

स विप्राय धनं दत्त्वा स्वपदे पृथिवीपतिम् ।
चरणालीनमुकुटस्तं प्रसाद्य न्यवेदयत् ॥ ६० ॥

मनुजपतिरहं महेन्द्रसेनो
धनविरहितस्तु य एष कौशिकोऽर्थी ।
पुनरपि च स एव जीवशर्म्मा
चरितमिति स्वमुदाहृतं जिनेन ॥ ६१ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
महेन्द्रसेनावदानमूनाशीतितमः पल्लवः ॥ ० ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱད་བཅུ་ཐམས་པ།

གདུངས་པར་གྱུར་ཀྱང་ཡིད་འབྱུང་མི་འགྱུར་ཞིང་།
བསྐྱབ་པ་བཟུང་བ་ཡིས་ཀྱང་ཕན་པ་བརྗོད།
གཞན་ལ་ཕན་པ་དགའ་ཆེ་རབ་ཞུགས་པ།
དམ་པས་མཆོག་ཏུ་བདག་ཉིད་གདུང་བ་བརྗོད།། 1

སྔོན་ཚེ་དཔལ་ལྡན་འབྱིན་འཛིག་ནི། དགའ་བར་འདོད་པས་དགའ་བ་ཡི།
གྲོགས་པོ་དྲི་ཟའི་རྒྱལ་པོ་ནི། རབ་དགའ་དག་གི་ཁང་པར་ཕྱིན།། 2

དེ་ཡིས་དེར་ནི་མཆོད་པ་དག། ཤིན་ཏུ་ཆེ་ཞིང་མང་བས་མཆོད།
མཛའ་གཙུགས་མཉེན་ག་ཤིན་ལྡན་པའི་ལྷ། ཕྱན་ལ་འཁོད་དེས་དེ་ལ་སྨྲས།། 3

རབ་དགའ་ཚུར་ཤོགས་ལ་འདོད། ས་ཡི་བདག་པོ་བསོད་ནམས་ཀྱི།
རྒྱ་གཏེར་ཆེན་པོ་ཟས་གཙང་ཞེས། ཟླ་བའི་སྲས་སུ་རབ་འབྱུངས་པ།། 4

དེ་ཡིས་རབ་ཞི་བདུད་རྩི་ཐོབ། དགེ་བའི་སྐད་དུ་འགྲོ་ལ་དེས།
དེ་ནི་ཡང་དག་འགོད་པར་མཛད། ཁྱུ་ཅག་ལ་ཡང་མཛད་པར་འགྱུར།། 5

ད་ལྟ་བདག་གིས་རྒྱུད་མང་ལ། གླུ་དབྱངས་རྒྱུན་ནི་རབ་ཏུ་སྤྲུར།
ཇི་ལྟར་བདག་འགྲོ་ཕྱིན་ནས་ནི། བདག་ལ་ཐུ་བ་དཀའ་བར་འགྱུར།། 6

अशीतितमः पल्लवः ।

नोद्वेगमायान्ति कदर्थ्यमानाः
शिखाग्रहेणापि हितं वदन्ति ।
परोपकारेषु हठप्रवृत्ताः
सन्तः सहन्ते भृशमात्मपीडाः ॥ १ ॥

पुरा पुरन्दरः श्रीमान् प्रियस्य प्रियकाम्यया ।
साधुर्गन्धर्व्वराजस्य सुप्रियस्य गृहं ययौ ॥ २ ॥

स तत्र पूजितस्तेन बहुमानेन भूयसा ।
आत्तासनस्तमवदद् देवः प्रणयिवत्सलः ॥ ३ ॥

एहि सुप्रिय गच्छावः पृथिवीं पृथिवीपतिः ।
जातः शुद्धोदनाख्यस्य पुत्रः पुण्यमहोदधिः ॥ ४ ॥

प्राप्तं शमामृतं तेन जगतां कुशलाय सः ।
तत् संविभागं कुरुते करिष्यत्यावयोरपि ॥ ५ ॥

मया सम्प्रति वीणायां योजिता गीतसारणा ।
कथं गच्छामि पश्चान् मे दुष्करैषा भविष्यति ॥ ६ ॥

ཞེས་པ་དེས་བརྗོད་བཀྲ་ཤིན་ནི། ཡིད་ཁྲུང་རང་གི་གནས་སུ་སོང་།
སེམས་ནི་ཡུལ་ལ་ཆགས་རྣམས་ལ། དགེ་ལ་མངོན་དགའ་ག་ལ་ཡོད།། 7

སྐབས་དེར་སྨོན་བརྩོན་བརྟུལ་ཞུགས་ཅན། རབ་བཟང་མི་ཡི་འཇིག་རྟེན་གྱི།
ཀུ་ཤའི་གྲོང་ཁྱེར་མཚོ་ཡི་འགྲམ། ཨུ་དུམྦ་རའི་ནགས་ན་གནས།། 8

དེ་ཡི་ཨུ་དུམ་བ་རའི་ཤིང་། མེ་ཏོག་གསེར་པས་ཁྱབ་པ་མཐོང་།
མིག་ནི་ཨ་མཚན་གྱིས་གྲུབ་པས། ཞིན་དུ་ཨང་དག་ཡུན་རིང་བསམསམས།། 9

ཨུ་དུམ་བ་རའི་ནགས་ཚལ་འདི། རྒྱལ་བ་འཕྲུངས་ན་མེ་ཏོག་དཔལ།
འབྱུང་ཞིང་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བ་དག། འབྱུང་ན་ཡང་ངོ་བཞིན་དུ་མིན།། 10

ཡང་ན་བདག་གི་བསོད་ནམས་ཀྱིས། མད་བྱུང་འདི་ནི་ཨང་དག་སྐྱེས།
ཞེས་པ་བསམསམས་ནས་རབ་བཟང་ནི། ཀུན་དགའ་རབ་དུ་གྲུས་པར་གྱུར།། 11

དེ་ནས་སླར་ཨང་འཆི་མེད་བདག། སོད་ནམས་རབ་དགའ་དག་ལ་སྨྲས།
དམ་པ་རང་གི་བྱ་བ་ལས། གཞན་གྱི་བྱ་བར་བརྩོན་པ་ལྷག།། 12

ས་གཞི་ཐྲ་བ་བདེ་གཤེགས་ཀྱིས། བསྟན་པ་འོད་ཀྱིས་ཐམས་ཅད་ནི།
རབ་དུ་གསལ་བའི་ས་གཞི་ལ། རབ་དགའ་ཚུར་ཤོག་ཁྱུ་ཅག་འདོད།། 13

དེ་ལ་རབ་དགས་སྨྲས་པ་ལྷ། རྒྱུད་མང་ལ་ནི་གླུ་དབྱངས་རྒྱུན།
བདག་གིས་རབ་དུ་སྒྱུར་བ་འདི། ཕྱི་ནས་བྱ་བ་སླ་མི་འགྱུར།། 14

इत्युक्तस्तेन मघवा विमनाः स्वपदं ययौ ।
विषयासक्तचित्तानां कुशलाभिरतिः कुतः ॥ ७ ॥

अत्रान्तरे मर्त्त्यलोके कुशिपुर्य्यां सरस्तटे ।
उदुम्बरवने तस्थौ सुभद्राख्यो यतिव्रतः ॥ ८ ॥

व्याप्तान् नवैर्मुकुलितैः स दृष्ट्वोदुम्बरद्रुमान् ।
विस्मयोत्फुल्लनयनः सुचिरं समचिन्तयत् ॥ ९ ॥

जिनजन्मनि जायन्ते चक्रवर्त्त्युद्भवेऽपि वा ।
अस्मिन्नुदुम्बरवने नान्यथा मुकुलश्रियः ॥ १० ॥

ममैव पुण्यैरथवा संजातमिदमद्भुतम् ।
सुभद्रश्चिन्तयित्वेति बभूवानन्दनिर्भरः ॥ ११ ॥

अथामर्त्त्यपतिर्गत्वा सुप्रियं पुनरब्रवीत् ।
निजकार्य्याधिकोद्योगाः परकार्य्येषु साधवः ॥ १२ ॥

एहि सुप्रिय गच्छावः क्षितिं क्षितितलेन्दुना ।
सद्देशनांशुभिर्विश्वं सुगतेन प्रकाशितम् ॥ १३ ॥

तं सुप्रियोऽवदद् देव वीणायां गीतिसारणा ।
योजितेयं मया पश्चात् सुकरा न भविष्यति ॥ १४ ॥

ཞེས་ཐོས་འཆི་མེད་བདག་པོ་ནི། ཡིད་ལ་རེ་བ་ཉམས་པར་གྱུར།
འབད་མེད་བདུད་རྩི་ཉེར་གནས་པ། བསོད་ནམས་དམན་པ་འཐུང་བ་ལེན།། 15

དུས་ཀྱི་ཨུ་དུ་མ་བ་རའི་ནགས། མེ་ཏོག་རབ་རྒྱས་དྲི་བཟང་གིས།
ཕྱོགས་མཚམས་ཀུན་དུ་ཁྱེངས་གྱུར་པ། རབ་བཟང་གིས་ཀྱང་མཐོང་བར་གྱུར།།16

དེ་ཡིས་བསམས་པ་མེ་ཏོག་གི། ཚལ་ནི་རྣམ་པར་རྒྱས་པ་འདི།
སྔོན་པ་དངས་ཆོས་སྟོན་པ་དང་། འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བའི་རྒྱལ་ལ་འགྱུར།། 17

ཡང་ན་བདག་གི་བསོད་ནམས་མཐུས། མ་ལུས་ཚལ་ནི་མེ་ཏོག་རྒྱས།
ཞེས་པ་སེམས་པ་དེ་ལ་ནི། དྲེགས་དང་དགའ་བ་རབ་ཏུ་སྐྱེས།། 18

དེ་ནས་དགེ་སློང་དགྲ་བཅོམ་ཐོབ། སངས་རྒྱས་ཞེས་བྱ་མངོན་ཕྱོགས་དེ།
དེ་ནི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱིས་བདུལ་ནས། རབ་ཞི་རང་བཞིན་རྒྱས་པར་བྱས།། 19

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་བཅོམ་ལྡན་འདས། རྒྱལ་བས་འགྲོ་བའི་དོན་མཛད་ནས།
ཡོངས་སུ་མྱང་འདས་ལ་ཏོག་ཅིང་། ཐ་མའི་གཟིམས་མལ་དག་ལ་གནས།། 20

དེ་ཞིག་གདུལ་བྱ་འདུལ་བ་ལ། རྣམ་པར་བཀོད་བྱེད་རབ་ཏུ་བསམས།
རབ་བཟང་དང་ནི་དྲི་ཟ་དག། རབ་དགའ་དེ་ཡང་བདག་གི་ལྷག།། 21

རབ་བཟང་ཚོགས་ནི་ཆུང་ངུ་ཡི། འདུལ་བ་རབ་ཏུ་ཐོབ་པར་འགྱུར།
དྲི་ཟ་ལང་ཚོ་འཁྱོར་བ་ཡིས། ཐོས་པ་ཚོགས་ཀྱིས་འདུལ་བར་འགྱུར།། 22

इत्याकर्ण्यामरपति र्ययौ म्लानमनोरथः ।
प्रयत्नोपनतं हीनपुण्यः पिबति नामृतम् ॥ १५ ॥

उत्फुल्लकुसुमामोदसंपूरितदिगन्तरम् ।
कालेनोदुम्बरवनं सुभद्रोऽपि व्यलोकयत् ॥ १६ ॥

सोऽचिन्तयद् भवत्येतद् विकाशिकुसुमं वनम् ।
धर्म्मप्रवर्त्तने शास्तुर्जये वा चक्रवर्त्तिनः ॥ १७ ॥

सत्पुण्यानां प्रभावाद्वा निखिलं पुष्पितं वनम् ।
इति चिन्तयतस्तस्य दर्पप्रीतिरजायत ॥ १८ ॥

अथ चुन्दाभिधोऽभ्येत्य श्रवणाईत्वमागतः ।
कल्या चक्रे पराजित्य तं प्रशान्तमदोदयम् ॥ १९ ॥

जगत्कार्यं ततः कृत्वा कालेन भगवान् जिनः ।
कलयन् परिनिर्व्वाणं पश्चिमे शयने स्थितः ॥ २० ॥

प्रदध्यौ विनये तावद्विनयाविनिवेशितः ।
अवशिष्टः सुभद्रो मे गन्धर्व्वः स च सुप्रियः ॥ २१ ॥

अक्लेशेन सुभद्रस्तु विनयं प्रतिपद्यते ।
कृच्छ्रानुशास्यो गन्धर्व्वस्तारुण्यविभवोन्मदः ॥ २२ ॥

ཞིས་པ་བསམས་ནས་དེ་བཞིན་ག་ཤེགས། ཟླ་ཟའི་གྲོང་ཁྱེར་དག་ཏུ་བྱོན།
ཟླ་ཟའི་རྒྱལ་པོ་གཞན་པ་ནི། མཛེས་པ་ལྷག་པར་མངོན་པར་སྤྲུལ།། 23

ཐི་དུ་རུ་ཡི་དབུག་པ་ཅན། རྒྱུད་མང་རྒྱུད་སྟོང་སྦྲེང་བྱེད་ཅིང་།
འགྲན་པས་རབ་དགའི་རྒྱགས་པ་ནི། ཉམས་པར་བྱེད་ལ་བརྩོན་པར་གྱུར།། 24

རིམ་གྱིས་རྒྱུད་ནི་བཅད་གྱུར་ཀྱང་། དེ་དག་སྒྲ་དབྱངས་ཀུན་རྫོགས་པ།
སྟོན་པར་བྱེད་ལ་མཐུ་ཡིས་ནི། ཁྱད་པར་མེད་པ་དག་ཏུ་འགྱུར།། 25

རྒྱུད་ནི་ཐམས་ཅད་བཅད་གྱུར་ཀྱང་། ཟླ་ཟའི་འདྲེན་པ་དག་གིས་ནི།
དབྱངས་ཀྱི་ཚོགས་ནི་རབ་ཏུ་བསྟན། རབ་དགའ་ཡིས་ནི་ཉུས་མ་གྱུར།། 26

དེ་ནས་ཁེངས་དང་དྲེགས་བདང་བ། དེ་ལ་བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་ཡི།
ལུས་ནི་མངོན་བྱུང་དག་པ་ཡི། དམ་པའི་ཆོས་ནི་བསྟན་པ་མཛད།། 27

འཇིག་ཚོགས་ལྟ་བའི་རི་བོ་ནི། ཡེ་ཤེས་རྡོ་རྗེས་རྣམ་བཅོམ་སྟེ།
དེ་ཡིས་རྒྱུན་ཞུགས་འབྲས་བུ་ནི། རབ་ཏུ་ཞི་སྐད་མངོན་དུ་བྱས།། 28

དུས་ཀྱི་ཨུ་དུམ་བ་ར་ཡི། ནགས་ཀྱི་རབ་དགའ་མེ་ཏོག་ཚོགས།
གཉོད་པོ་དག་གིས་ཡོངས་སྤྱོད་བཞིན། དཔལ་བྱུས་རབ་ཏུ་ཉམས་པར་གྱུར།། 29

མེ་ཏོག་ཉམས་པ་དེ་མཐོང་ནས། རབ་བཟང་སྣ་ངན་རྒྱ་ཡིས་ཐེབས།
ངེས་པ་ཉིད་དུ་བདག་ཉིད་ཀྱིས། བསོད་ནམས་མིན་ལས་སྐྱེས་པར་བསམས།། 30

इति संचिन्त्य गन्धर्व्वपुरं गत्वा तथागतः ।
गन्धर्व्वराजमपरं निर्म्ममेऽभ्यधिकद्युतिम् ॥ २३ ॥

सहस्रतन्त्रीं वैदूर्य्यदण्डीं वीणामवादयत् ।
सुप्रियस्य मदोच्छेदं स्पर्द्धया कर्त्तुमुद्ययौ ॥ २४ ॥

क्रमेण तन्त्रीच्छेदेऽपि तौ सर्व्वस्वरमूर्च्छनाः ।
दर्शयन्तौ प्रभावेण निर्विशेषौ बभूवतुः ॥ २५ ॥

छेदेन सर्व्वतन्त्रीणामपि गन्धर्व्वनायकः ।
अदर्शयत् पणत्तोऽपि न शशाक च सुप्रियः ॥ २६ ॥

संत्यक्तमानदर्पस्य तस्याथ भगवान् जिनः ।
प्रत्यक्षविग्रहश्चक्रे शुद्धसद्धर्म्मदेशनाम् ॥ २७ ॥

ज्ञानवज्रेण सत्कायदृष्टिशैले विदारिते ।
स्रोतःप्राप्तिफलं साक्षात् स चकार प्रशान्तये ॥ २८ ॥

कालेनोदुम्बरवने रम्यः कुसुमसञ्चयः ।
सम्भोग इव वृद्धस्य शनकैर्म्लानिमाययौ ॥ २९ ॥

म्लानपुष्पं सदालोक्य सुभद्रः शोकमुद्रितः ।
अचिन्तयदपुण्यानां नूतनोद्भवमात्मनः ॥ ३० ॥

བསམས་པའི་མི་ཤེས་གདུངས་དེ་ལ། ཨུ་དུམ་བཱ་རའི་ནགས་ཀྱི་དངལ།
ལྷ་རྣམས་མཆོད་ཕྱོགས་རབ་སྤྲུས་པ། དོན་མེད་མྱ་ངན་ཡོངས་མ་བྱེད།། 31

རབ་ཐུ་ལྡན་ཁྱོད་ཀྱིས་བསོད་ནམས་ཀྱིས། ཚལ་ནི་མི་རྟོག་རྒྱས་པ་མིན།
ཁྱོད་ཀྱི་བསོད་ནམས་མ་ཤེས་པས། ཉམས་མེད་འདི་ཡི་རྒྱུ་དག་ཉིད།། 32

བདེ་གཤེགས་ཉིད་ནི་འཁྲུངས་པ་ན། མི་རྟོག་འདི་དག་འབྱུང་འགྱུར་དེ།
བླ་མེད་ཡེ་ཤེས་བརྙེས་པ་ན། ཀུན་ནས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་རྒྱས།། 33

མྱ་ངན་འདས་ལ་ཉེ་བ་ན། ཉམས་པ་དང་ནི་ལྷུང་བར་འགྱུར།
ཀུ་ཤའི་གྲོང་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས། ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་འདས་པར་བཞེད།། 34

ནགས་ཀྱི་དཔལ་མོ་འི་ཚིག་འདི་དག། རབ་བཟང་གིས་ནི་ཐོས་གྱུར་ནས།
རིང་ཞིང་བློ་བའི་ཤུགས་བདང་སྟེ། ཤིན་ཏུ་ཡུན་རིང་ཡང་དག་བསམས།། 35

སྟོན་པའི་ཆོས་ནི་འདུལ་བ་ལ། བདག་ནི་སྣོད་དུ་འགྱུར་བར་ཤོག།
ཅེས་པ་འདི་ནི་བདག་སྙིང་ལ། རྟག་ཏུ་རི་བ་བཅིངས་པར་གྱུར།། 36

གང་གིས་སྟོན་པའི་ཞལ་གྱི་པད། མཐོང་ཞིང་ཆོས་ཀྱི་གསུང་རབ་ལ།
དགའ་བའི་དགའ་སྟོན་ཡོངས་རྫོགས་པ། ཉོན་མོངས་བྲལ་བ་དེ་དག་བསྔགས།།37

དེ་ནི་མྱ་ངན་རབ་ཞི་གྲོགས་པོ་མི་བཟད་སྲིད་པས་གཟིར་བའི་གཉེན།
སྨྲ་ཡི་བཞིན་རས་རི་བོང་ཅན་ལས་རབ་འཁྲུངས་རབ་ཏུ་རྒྱས་པའི་གསུང་།

तच्चिन्तानलसन्तप्तमुदुम्बरवनश्रिया ।
उवाच देवताभ्येत्य विषादं मा कृथा वृथा ॥ ३१ ॥

नेदं तव प्रभावाढ्यैः पुण्यैः कुसुमितं वनम् ।
न च म्लानं तवापुण्यैः श्रूयतामद्य कारणम् ॥ ३२ ॥

पुष्पाण्येतानि जायन्ते सुगतस्यैव जन्मनि ।
अनुत्तरज्ञानलाभे विकसन्ति समन्ततः ॥ ३३ ॥

आसन्ने परिनिर्व्वाणे म्लायन्ति निपतन्ति च ।
इह ते परिनिर्व्वाणं कुशिपुर्य्यां तथागतः ॥ ३४ ॥

एतदाकर्ण्य वचनं सुभद्रः काननश्रियः ।
दीर्घमुष्णं विनिश्वस्य सुचिरं समचिन्तयत् ॥ ३५ ॥

यास्यामि धर्म्मविनये शास्तुर्भाजनतामहम् ।
इत्येष हृदये नित्यमाशाबन्धो ममाभवत् ॥ ३६ ॥

धन्यास्ते विरतक्लेशाः सम्पूर्णकुशलोद्भवाः ।
धर्म्मप्रवचने शास्तु यैं दृष्टं वदनाम्बुजम् ॥ ३७ ॥

कस्येदानीं वदनशशिनः संप्रवृत्ताः प्रवृद्ध-
ज्ञानालोकप्रसररुचिराः पुण्यपीयूषधाराः ।

ཡི་ཤེས་སྣང་བས་དཀྲིགས་ཤིང་རབ་མཛེས་བསོད་ནམས་བ་དུད་རྩི་དག་གི་རྒྱན།
སྲིད་པའི་སྦུ་ངམ་གཡུང་བར་འཇིག་རྟེན་ཉན་པའི་སྐྱོད་ཀྱིས་འཐུང་བར་འགྱུར། 38

གང་ན་བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་བཞུགས། ཀུ་ཤའི་གྲོང་དུ་བདག་འགྲོ་འོ།
ཐ་མར་དེ་མཐོང་བདག་གིས་ནི། གལ་ཏེ་རྙེད་སླར་ཐོབ་པར་འགྱུར། 39

ཞེས་བསམས་སྤྲོ་ལྡན་དེ་ཡིས་ནི། ལུས་མི་སྣང་བར་སྐད་ཅིག་ལས།
ཡིད་ལྟར་མགྱོགས་པས་ཀུང་གྱི་གནས། ཀུ་ཤའི་གྲོང་ཁྱེར་དག་ཏུ་ཕྱིན། 40

མི་རྟོག་དགའ་ཚལ་ས་ལ་ཟང་། ཞེས་པའི་ཚལ་ན་རབ་གཟིམས་པ།
རྒྱལ་བའི་སྒོ་གནས་དགར་བོ་ལ། དེ་ཡིས་ནང་དུ་འཇུག་པ་ཞུས། 41

དེ་ནས་དཔལ་གྱིས་ཀུན་དགའ་བོས། སོར་མོ་གདངས་ཤིང་གཡོ་བ་ཡིས།
ནང་འཇུག་བསམས་པ་ཟློག་བྱེད་ཅིང་། ཚང་ཚུང་སྐྱ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས། 42

ཁྱོད་ཀྱི་རྡི་དང་ལུང་སྟོན་ལ། རབ་བཟང་ད་ལྟ་གནས་སྐབས་མེད།
དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཞི་བའི་སྐྱིད། སྐུ་ནི་ཡོངས་སུ་བསྐྱིལ་ཞིང་བཞུགས། 43

སྐྱེ་བོ་འདི་དག་ཕ་རོལ་ནི། གདུང་བ་མི་ཤེས་རང་དོན་གཅེར།
ཀུན་དུ་ཇི་ལྟ་དེ་ལྟ་ཡང་། གནས་སྐབས་དག་ནི་མི་སེམས་སོ། 44

གང་ཞིག་ཡུལ་དུས་མི་ཤེས་པར། འཕྲལ་ལ་སློང་བ་ཉིད་གྱུར་བ།
དེ་དག་བཞིན་དོན་རབ་བཏང་ནས། ངོ་ཚ་སླངས་ཏེ་འགྲོ་བ་ཉིད། 45

श्लोकः शोकप्रशमसुहृदस्तीव्रतृष्णार्त्तबन्धो
र्वाच स्तप्ते भवमरुतटे पास्यति श्रोत्रपात्रैः ॥ ३८ ॥

गच्छाम्यहं कुशिपुरं यत्रास्ते भगवान् जिनः ।
प्राप्स्यामि सुलभं तस्य पश्चिमं यदि दर्शनम् ॥ ३९ ॥

इति सञ्चिन्त्य सोत्साहः सोऽन्तर्हिततनुः क्षणात् ।
मल्लाश्रयां कुशिपुरी माससाद मनोजवः ॥ ४० ॥

वैनेयमर्कशालाख्ये कुसुमारामशायिनः ।
जिनस्य द्वाःस्थमानन्दं स प्रवेश मयाचत ॥ ४१ ॥

आनन्दस्तं जगादाथ मन्दमन्दस्वनः शनैः ।
निवारयन् प्रवेशाशा मुन्नताङ्गुलिदोलया ॥ ४२ ॥

सुभद्रावसरो नायं प्रश्नव्याकरणे तव ।
विश्राम्यति परिश्रान्तः कायशान्त्यै तथागतः ॥ ४३ ॥

न चिन्तयत्यवसरं सर्व्वथैव यथा तथा ।
परव्ययानभिज्ञोऽयं स्वार्थमर्थयते जनः ॥ ४४ ॥

देशं कालमविज्ञाय याति यः सहसार्थिताम् ।
स समाहित मुत्सृज्य लज्जामादाय गच्छति ॥ ४५ ॥

རྒྱལ་བའི་སྲས་ནི་ཞི་བའི་ཚོ་ན་ལྡོན་པ་འདི་དག་ཀྱང་།
ཡལ་འདབ་འཁྲི་ཤིང་རབ་ཏུ་ཉལ་ཞིང་ངེས་པ་མི་གཡོ་ལ།
ཚུ་སྐྱུང་དག་ནི་རྣམ་པར་ཉུད་ཅིང་མགྲོགས་པ་བདང་ནས་བགྲོད།
རླུང་ཡང་འཕྲལ་ལ་རབ་ཏུ་གཡོ་ཞིང་བགྲོད་མ་ཡིན། 46

དེ་ལྟར་ཀུན་དགའ་བོ་ཡིས་ནི། འབད་པས་ཡང་དང་ཡང་དུ་བཟློག།
རི་བ་ཉམས་པས་རབ་འཁྲུགས་པ། རབ་བཟང་གིས་ནི་དེ་ལ་སྨྲས། 47

གཟིར་བ་ཡིས་ནི་སྐབས་མི་ཤེས། སྐྱོང་ལ་དང་ཞིང་བརྩེ་བར་མཛོད།
རྒྱལ་བ་རྙེད་སྐྱ་རབ་ཏུ་སྟོན། ཐུབ་པོ་འདི་ལྟ་ཡོངས་མ་མཛོད། 48

གྲིབ་བསིལ་དག་ལ་ཉེ་བར་འཁོད་ཅིང་བསིལ་བས་རབ་དགའི་སྟོན་ཐོབ་གྱུར་པ།
རྟག་ཏུ་གསར་པ་གསར་པའི་ལམ་འགྲོན་འཛོམས་ཤིང་འབྲས་
བྲུ་འཛིན་པས་གཟིར་བའི་ཤིང་།
བརྙེན་པ་དག་ལ་མཉེན་གཤིན་སྐྱོང་བ་ཀུན་གྱི་གཞི་ནི་རྙེད་སླར་གྱུར་པ་ཡི།
ལོ་མ་དག་ནི་བཅོས་དང་འཀྱུགས་དང་རབ་ཏུ་བྲངས་པའི་ཉེན་སོངས་
འཕྲིང་བ་སྨྲ་ཡིས་ཤེས། 49

དེ་ལྟར་འབད་པས་རབ་བཟང་དེས། ཡང་དང་ཡང་དུ་ཞུས་གྱུར་ཀྱང་།
དགག་པ་རྒྱ་ཡི་ཀུན་དགའ་བོས། དེ་ནི་ཀུན་དགའ་མེད་པར་བསྒྲུབས། 50

བཅོམ་ལྡན་ཀུན་མཁྱེན་གཟིམས་མལ་དུ། ལྷ་ཡི་གནས་ལས་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ།
རབ་བཟང་ནང་དུ་ཐོང་ཞིག་ཅེས། ཀུན་དགའ་བོ་ལ་གསུང་ཆེར་གསུངས། 51

वेगं विहाय विनताः सरितः प्रयान्ति
वान्ति प्रसह्य चतुरं न तथा समीराः ।
एतेऽपि नैव तनुसंश्रमने जिनस्य
सन्तप्तपल्लवलतातरव स्खलन्ति ॥ ४६ ॥

आनन्देनेति यत्नेन वार्य्यमाणः पुनः पुनः ।
आशाभङ्गसमुद्भ्रान्तः सुभद्र स्त मभाषत ॥ ४७ ॥

जानाम्यवसरं नार्त्तः प्रसीद दययार्थिनः ।
सुलभं दर्शय जिनं मा मैवं भव निष्ठुरः ॥ ४८ ॥

छायायामुपविश्य शीतलतया लब्धप्रमोदोत्सवै-
राहृत्यात्तफलैः सदा नवनवैः संपीड़ितस्याध्वगैः ।
जानात्याश्रितवत्सलस्य सुलभाधारस्य सर्व्वार्थिना
शाखाभञ्जनमोटनप्रसरणक्लेशावलीं कस्तरोः ॥ ४९ ॥

इति यत्नात् सुभद्रेण याचितोऽपि पुनः पुनः ।
तं निरानन्दमानन्दः प्रतिषेधं गते व्यधात् ॥ ५० ॥

भगवानपि सर्व्वज्ञः शय्यां प्राप्य सुरालयात् ।
उच्चैरानन्दमवदत् सुभद्रः प्रविशत्विति ॥ ५१ ॥

འཇིག་པ་ཐོབ་སྟེ་ནོར་མེད་ཀྱིས། གཉེར་བཞིན་བདེ་གཤེགས་མཐོང་གྱུར་ནས།
རབ་བཟང་གདོང་ནི་མཚོ་མ་དང་། བཅས་པས་ཕྱག་འཚལ་དེར་གསོལ་པ॥ 52

བཅོམ་ལྡན་དེ་རིང་འཇིག་རྟེན་ནི། སྐལ་བས་དབུལ་བ་ཉིད་འདི་ཅི།
དེ་རིང་ཁྱོད་ཀྱིས་བཏང་གྱུར་པ། སྣང་མེད་དག་གི་འགྲོ་བ་ནི॥ 53

བཞེས་གཉེན་ཁྱོད་དང་བྲལ་བ་ན། སུ་ཡི་ཡེ་ཤེས་སྣང་བ་ཡིས།
འགྲོ་བའི་པདྨ་ཧོངས་པ་ཡི། གཉིད་ཀྱི་རྒྱ་ལྡན་རྒྱས་བྱེད་འགྱུར॥ 54

མཐའ་དག་འགྲོ་ལ་རྒྱུན་མེད་དུ། ཕན་པ་དག་ནི་རབ་མཛད་ནས།
ཀུན་མཁྱེན་ཉིད་པ་སྨྲ་བ་ཁྱོད། ངདག་ལ་ཉིད་དགའ་ཇི་ལྟར་གྱུར॥ 55

ཅེས་པ་དེ་ཡིས་གསུས་པས་གསོལ། དེ་ལ་བཅོམ་ལྡན་འཇུམ་ལྡན་ཞིང་།
བཞིན་གྱི་ཆུ་སྐྱེས་གཟེངས་བསྟོད་དེ། རབ་དངས་མཛེས་པས་བཀའ་སྩལ་པ॥ 56

མཉེན་གཤིན་རྟག་ཏུ་མི་རྟག་ཉིད། འདི་ཁྱོད་རིག་པ་མིན་ནམ་ཅི།
འདུ་བྱེད་ཐམས་ཅད་སྐད་ཅིག་ལ། ལུས་ཀྱི་གདོན་ནི་སུ་ཞིག་འཛིན॥ 57

གང་དག་རྟག་ཏུ་ཉིན་བྱེད་འཁོར་བས་རབ་བརླམས་པའི།
མཚན་མོ་བཀྲ་བའི་ཉིན་པར་རིང་དུ་རབ་འགྲོ་བ།
མི་ཡི་འཚོ་བ་རྣམས་ཀྱི་དགེ་བ་འདི་དག་ནི།
རྒྱ་ཆེ་དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལྷུང་བས་གཅོད་པ་ཉིད॥ 58

लब्धप्रवेशः सुगतं दृष्ट्वा निधिमिवाधनः।
जगाद साश्रुवदनः सुभद्रः प्रणिपत्य तम्॥ ५२॥

भगवन् भुवनस्यास्य केयं भाग्यदरिद्रता।
संत्यक्तस्याद्य भवता निरालोकस्य का गतिः॥ ५३॥

को नाम त्वां विना मित्रं ज्ञानालोकैः करिष्यति।
मोहनिद्रासमुद्रस्य जगत्पद्मस्य बोधनम्॥ ५४॥

कृत्वा समस्तजगतामुपकारमकारणम्।
प्रयासि सर्व्वसुलभः कथं दुर्लभतां मम॥ ५५॥

इत्युक्तः प्रणयात्तेन समुन्नाम्य मुखाम्बुजम्।
प्रसन्नकान्ति भगवान् सस्मित स्त मभाषत॥ ५६॥

इमां वत्स न वेत्सि त्वं किन्तु नित्यामनित्यताम्।
क्षणिकाः सर्व्वसंस्काराः कोऽयं देहग्रहाग्रहः॥ ५७॥

दूरं प्रयान्ति दिनकृद्भ्रमनिर्गतानि
यानि क्षताश्रवलितानि सदा दिनानि।
एतानि तानि निपतत्पृथुकालचक्र-
संभ्रान्तितानि शकलानि न्रजीवितानाम्॥ ५८॥

རི་འདི་སྐྱིལ་འཁྱུར་ཆུ་གཉེར་འཛིང་ནི་མཆོག་ཏུ་བསྐལ།
རབ་སྐྱེས་འབྱུང་པོ་དང་བཅས་སྤྱོད་པའི་ལམ་རབ་འཛིག།
རི་དགས་སྐམས་མིག་ལྟར་གཡོ་སྐྱིང་པོ་མེད་འཁོར་བར།
མང་དུ་ཡོངས་འདྲིས་ལུས་ཀྱི་ཚོགས་ནི་བརྟན་གནས་མིན།། 59

ཞེས་པ་གསུངས་ནས་བཅོམ་ལྡན་གྱིས། རབ་ཏུ་ཞི་སྨྲ་རབ་བཟང་ལ།
བདེན་པའི་ལམ་ནི་གསལ་བའི་གནས། རབ་དང་ཀུན་དགའ་ལྡན་པར་མཛད།། 60

དབྱིག་བ་གསུམ་ངང་རིལ་བའི་ཚོགས། ལམ་འགྲོན་གྱིས་ནི་ཁུར་བཞིན་བཏང་།
སྟོན་པའི་བཀའ་ལམ་རབ་བྱུང་ཉི། དེ་ནས་རབ་བཟང་དག་གིས་ཐྲངས།། 61

དེ་ནས་ཉོན་མོངས་ཀུན་བཅོམ་པ། དགྲ་བཅོམ་གནས་ནི་ཐོབ་གྱུར་ནས།
བསམས་པ་ཀྱི་མ་བདག་གི་ནི། སློབ་མ་ཉིད་འདི་འོས་པ་མིན།། 62

བདག་གི་མདུན་དུ་བཅོམ་ལྡན་འདས། མྱ་ངན་འདའ་བ་ཇི་ལྟར་བལྟ།
དེ་ནས་སྤྱིན་ནས་ལུས་བཏང་ནས། བདག་ནི་རང་གི་གནས་དག་བསྙེན།། 63

ཞེས་བསམས་བྱིན་བརླབས་ལྷ་དག་ནི། བསྙེན་པ་དེ་ཡི་དཔལ་བྱ་ཡིས།
གདུངས་ཅན་ཤུན་པ་དོར་བ་ལྟར། ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་འདས་པ་ཐོབ།། 64

དེ་ནས་དེ་ཡི་ལུས་སྦྱོང་ལ། དགེ་སློང་རྣམས་དང་མུ་སྟེགས་དག།
མུ་ཡི་ཚང་སྤྱོད་དང་ལྡན་ཞེས། རྣམ་པར་རྩོད་པ་ཡང་དག་སྐྱེས།། 65

दलन्त्येते शैला जलधिवलयः शुष्यति परम्
सद्योद्भूतै भूतै र्भुवनसरणिः भ्रश्यतितराम् ।
असारे संसारे चकितहरिणीलोचनचले
चिरस्थायी नायं वहुपरिचयः कायनिचयः ॥ ५९ ॥

अभिधायेति भगवान् सुभद्रस्य प्रशान्तये ।
प्रसादानन्दिनीं चक्रे व्यक्तसत्यपथा कथाम् ॥ ६० ॥

त्रिदण्डकुण्डी सम्भारं त्यक्त्वा भारमिवाध्वगः ।
प्रव्रज्यां शासने शास्तुः सुभद्रोऽप्याददे ततः ॥ ६१ ॥

अर्हत्पदमथासाद्य स सर्व्वक्लेशसंक्षयात् ।
अचिन्तयदहो नेयमुचिता शिष्यता मम ॥ ६२ ॥

पश्यामि परिनिर्व्वाणमग्रे भगवतः कथम् ।
तस्मात् पूर्व्वमहं देहं विहाय स्वपदं भजे ॥ ६३ ॥

इति सञ्चिन्त्य स शनैः पञ्चाधिष्ठानसंश्रयः ।
फणिनिर्मोककलया परिनिर्वृतिमाप्तवान् ॥ ६४ ॥

तस्याथ देहसत्कारे भिक्षूणां सह तीर्थिकैः ।
कस्य सब्रह्मचारीति विवादः समजायत ॥ ६५ ॥

དེ་ནས་སྣུ་ཕྱོགས་བྱེད་རྣམས་ཀྱིས། རི་ཡི་སྒྲུབ་བྱེད་ཚོགས་ལ།
ཁྱོགས་ཁྱེར་མ་ནུས་སོང་བའི་ཚེ། དགེ་སློང་ཚོགས་ཀུན་དག་གིས་བསྐྱབས།། 66

དེ་ནས་དེ་ཡི་གདུང་གི་ཚོགས། མཆོད་རྟེན་བྱས་ནས་དགེ་སློང་གི།
སྔོན་ལས་མྱ་ངན་འདའ་བ་ཡི། རྒྱུ་མཚན་བདེ་བར་གཤེགས་ལ་དྲིས།། 67

དེ་དག་ལ་ནི་དེས་གསུངས་པ། བཱ་རཱ་ཎ་སཱིར་སྔོན་བྲམ་ཟེ།
མྱ་ངན་མེད་དེ་སྟོན་པ་ནི། འོད་སྲུངས་སྲོག་མཚུངས་གྲོགས་སུ་གྱུར།། 68

མཐའ་ཡི་མལ་སྟན་ལ་གནས་པ། དེ་ལས་དེ་ཡིས་འདུལ་བའི་ཆོས།
ལྷ་ཡིས་མཐོང་བར་བྱས་གྱུར་ནས། བསྔགས་པར་འོས་པའི་དགྲ་བཅོམ་ཐོབ།། 69

གུས་པའི་ངང་ཚུལ་དེ་ཡི་ལུས། རང་གི་བླ་མའི་མདུང་དུ་བཏང་།
དེ་ནས་དེར་ནི་ལྷ་ཡིས་དེར། མཐོང་ནས་སྨོན་ལམ་རབ་ཏུ་བཏབ།། 70

ཇི་ལྟར་ལེགས་བྱས་ལྡན་པ་འདི། འོད་སྲུངས་སྔོན་དུ་ཡོངས་འདས་པ།
དེ་བཞིན་བདག་ཀྱང་བླ་མའི་མཐར། སྔོན་དུ་འགྲོ་བ་པོར་གྱུར་ཅིག།། 71

ལྷ་དེ་རབ་བཟང་འདི་ཉིད་དེ། རྣམ་པར་དག་པའི་སྨོན་ལམ་དང་།
དད་པ་དེ་ཡིས་ལེགས་བྱས་པ། བདག་གི་མདུན་དུ་ལུས་དག་བཏང་།། 72

སྟོན་པ་ལོག་པར་དད་སེལ་གྱིས། མཐའ་ཡི་གཟིམས་མལ་དག་ལ་སྟོན།
ལྷ་དེ་རང་གིས་ཁྲིད་གྱུར་པའི། ཐུབ་པ་བརྒྱ་ཕྲག་ལྔ་དག་ནི།། 73

तस्याथ शिविकां वोढुमशक्तेषु क्रियाविधौ ।
तीर्थिकेषु प्रयातेषु सर्व्वभिक्षुगणोऽभ्यधात् ॥ ६६ ॥

शरीरनिचये स्तूपं कृत्वा तस्याथ भिक्षवः ।
पप्रच्छुः सुगतं पूर्व्वं परिनिर्व्वाणकारणम् ॥ ६७ ॥

स तानुवाच विप्रोऽसौ वाराणस्यामभूत् पुरा ।
अशोकः काश्यपाख्यस्य शास्तुः प्राणसमः सुहृत् ॥ ६८ ॥

स तस्माद्धर्म्मविनयं पर्य्यन्तशयनस्थितेः ।
देवताप्रापितं प्राप्य श्लाघ्यमर्हत्त्वमाप्तवान् ॥ ६९ ॥

स भक्तिशीलः स्वगुरोरग्रे विग्रहमत्यजत् ।
तं दृष्ट्वा देवता तत्र प्रणिधानमथाकरोत् ॥ ७० ॥

यथायं काश्यपस्याग्रे सुकृती परिनिर्वृतः ।
तथाहमपि भूयासं गुरोरग्रेऽग्रगामिनी ॥ ७१ ॥

सा देवता सुभद्रोऽयं ममाग्रे त्यक्तविग्रहः ।
तेन श्रद्धाविशुद्धेन प्रणिधानेन सत्कृतः ॥ ७२ ॥

ककुत्सन्दस्य शास्तुश्च पश्चिमे शयने पुरा ।
प्रासादं त्यदमालोक्य मुनीनां शतपञ्चकम् ॥ ७३ ॥

དགྲ་བཅོམ་ནིས་ཐོབ་གྱུར་པ་ཡིས། སྔོན་དུ་ལུས་བཏང་མཐོང་གྱུར་ནས།
རྨས་པ་དེ་ལྟའི་སྐྱོན་ལས་ཀྱིས། དེ་ཉིད་རབ་བཟང་ཉིད་དུ་གྱུར།། 74

ལུས་ལ་རང་བཞིན་གྱིས་སྐྱེས་པ། མཐུར་ཐུག་ཉི་བའི་གདུང་བ་འདི།
བཟོད་པར་བྱེད་ཅིང་བདག་གིས་དེ། གདུང་བ་རིད་པའི་གནས་སུ་བཀོད།། 75

དེ་ནི་སི་བདག་ཚངས་བྱིན་དང་། བདག་ཀྱང་ཧར་གྱུར་ཐེ་ཚོམ་ལ།
བདག་ནི་བྲ་མ་དྲལ་བས་ཀྱང་། དེ་ནི་དགྲ་ཡིས་བཅོམ་པ་བསྐྲལ།། 76

ཀ་རུ་ཀུབ་ཛའི་ནགས་སུ་སྔོན། ང་ནི་རི་དགས་ཁྲུ་བདག་གྱུར།
རབ་བཟང་ཁྲུ་ཡི་ནང་ནས་ནི། བདག་གི་རྗེས་འབྲང་རི་དགས་གྱུར།། 77

ནགས་སུ་ས་བདག་ཀ་རྔོ་ནི། རྔོན་ལ་འདས་པས་བཀག་གྱུར་དེ།
ཚ་སྐྱང་ངོགས་སུ་རི་དགས་རྣམས། སྡུག་ཅིང་དགའ་བ་མེད་པར་གྱུར།། 78

དེ་ནས་ཚ་སྐྱང་ནང་དུ་ནི། གཡོ་མེད་བདག་གིས་རབ་ཏུ་བབས།
བདག་གི་རྒྱབ་ཏུ་ཀང་བཀོད་པས། རི་དགས་འཛིགས་པ་དེ་དག་བསྒྲལ།། 79

དེ་དག་སྨིག་པ་བཀོད་བས་བདག། ཉམས་ཤིང་འཆི་བ་འདོད་གྱུར་ཚེ།
རི་དགས་དེ་ཉིད་གཅིག་བུ་ནི། དེ་ཚེ་རྒྱལ་ཞིང་འོངས་པར་གྱུར།། 80

སྡུག་པས་ཉེན་པ་དེ་དག་གིས། གདུང་བ་བཟོད་དཀའ་བརྣགས་བྱས་ཏེ།
སྒྱུར་བར་སྙིང་རྗེས་ཡང་དག་བསྒྲལ། འཇུག་ངོགས་དེར་ནི་ཤི་བར་གྱུར།། 81

स्वयं देवतयानीतं भक्त्याग्रे त्यक्तविग्रहम् ।
तद्विधप्रणिधानेन सैव याता सुभद्रताम् ॥ ७४ ॥

देहे स्वभावजामेतां पर्य्यन्तायतनां व्यथाम् ।
मया प्रसह्यमानेन निर्व्यथः प्रापितः पदम् ॥ ७५ ॥

ब्रह्मदत्तो नृपः सोऽभूदहमश्वस्य संश्रये ।
स मया शत्रुविच्छिन्नान्तेणापि तारितः ॥ ७६ ॥

कान्यकुब्जवने पूर्व्वमभवं मृगयूथपः ।
अभूत् सुभद्रस्य मृगो यूथमध्ये मृगानुगः ॥ ७७ ॥

मृगयार्त्तेन संरुद्धे वने कर्णेन भूभुजा ।
चस्तानां तटिनीतीरे मृगाणां नागतिर्भवेत् ॥ ७८ ॥

अवतीर्य्य सरिन्मध्ये निश्चलेन मया ततः ।
मत्पृष्ठन्यस्तचरणास्ते भीतास्तारिता मृगाः ॥ ७९ ॥

तत्खुराघातदलिते याते मयि मुमूर्षुताम् ।
एकः स एव हरिणः श्रवन्नेवं तदाप्तवान् ॥ ८० ॥

तमहं त्रासतरलं व्यथां संस्तभ्य दुःसहाम् ।
तूर्णं सन्तार्य्य कारुण्यात् पुलिने निधनं गतः ॥ ८१ ॥

དེ་ཉིད་རབ་བཟང་དེ་རིང་ཡང་། གདུང་བ་དང་བཅས་བདག་གིས་བསྒྲལ།
ཅེས་གསུངས་བཅོམ་ལྡན་ཞི་བ་ལ། མངོན་ཕྱོགས་མི་གསུང་ཉིད་ལ་བརྟེན།། 82

དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱི་རབ་དགའ་ཡང་། དགེ་བ་ཐོབ་པའི་རྒྱུ་མཚན་དྲིས།
གུས་པས་མཉེན་གཤིན་ཀུན་མཁྱེན་གྱིས། དལ་བུ་ཡིས་ནི་རབ་ཏུ་གསུངས།། 83

སྔོན་པ་འོད་སྲུངས་དག་གི་ནི། དགེ་བསྙེན་བློ་བཟང་ཞེས་བྱ་བ།
རི་ཡི་དྲིན་གྱིས་བསླབ་གནས་ནི། ཡོངས་རྫོགས་ཐོབ་ཅིང་བློ་གནས་ཀྱང་།། 84

རི་ཡི་དྲི་ཟའི་ཚོགས་ཀྱི་མཆོག། གླུ་དབྱངས་མཁས་པ་མགྲིན་གྱུར་ནས།
དྲི་ཟའི་བདག་པོ་ཉིད་ཀྱི་ནི། ཚད་དུ་སྨོན་ལམ་རབ་ཏུ་བསྒྲུབས།། 85

དེ་ནི་སྨོན་ལམ་དེ་ཉིད་ཀྱིས། རབ་དགའ་ཉིད་དུ་ཉེ་བར་གྱུར།
བསླབ་པའི་གནས་ནི་ཡོངས་བཟུང་ནས། འདུལ་བའི་ཆོས་ནི་ཡང་དག་ཐོབ།། 86

རབ་བཟང་རབ་དགའ་འདི་དག་ནི། བདག་གིས་དགེ་བ་ལྡན་པར་བྱས།།
གཞན་གྱི་མངོན་འདོད་བྱས་པ་ལ། ཀུན་ཏུ་བདག་ནི་འབྱུང་བ་མེད།། 87

གྲོང་ཁྱེར་མཆོད་འོས་ཞེས་བྱ་བ། མཐོ་རིས་དག་དང་མཚུངས་པར་ནི།
མི་བདག་དཔལ་ལྡན་བརྒྱ་བྱིན་བཞིན། རྣམ་པར་རྒྱལ་བ་ཞེས་པ་བྱུང་།། 88

བསོད་ནམས་ལ་ནི་རབ་བཞུགས་དེའི། ཆོས་ལམ་རྗེས་སུ་འབྲང་བ་ཡི།
གྲོང་པ་མཐོ་རིས་བགྲོད་རྣམས་ཀྱིས། ལྷ་ཡི་ས་གཞི་ཁེངས་པར་གྱུར།། 89

स एव सव्यथेनाद्य सुभद्रस्तारितो मया ।
इत्युक्त्वा भगवान् मौनं मालम्ब शमोन्मुखः ॥ ८२ ॥

भिक्षुभिः कुशलावाप्तौ सुप्रियस्यापि कारणम् ।
पृष्टः प्रोवाच सर्व्वज्ञः शनैः प्रणयिवत्सलः ॥ ८३ ॥

काश्यपस्य सुधीर्नाम शास्तुरासीदुपासकः ।
तत्प्रसादात्तपर्य्याप्तशिक्षापदप्रसन्नधीः ॥ ८४ ॥

स दृष्ट्वा गीतिकुशलं गान्धर्व्विकगणोत्तमम् ।
प्रणिधानं प्रविदधे गन्धर्व्वाधिपतिं प्रति ॥ ८५ ॥

स तेन प्रणिधानेन सुप्रियत्वमुपागतः ।
संप्राप्तधर्म्मविनयः शिक्षापदपरिग्रहात् ॥ ८६ ॥

सुभद्रसुप्रियावेतौ कृतौ कुशलिनौ मया ।
पराभिमतकृत्येषु निर्व्यथाः सर्व्वथा वयम् ॥ ८७ ॥

अजितोदयसंज्ञेऽभून्नगरे स्वर्गसन्निभे ।
शतक्रतुरिव श्रीमान् विजयन्ताभिधो नृपः ॥ ८८ ॥

तस्य पुण्यप्रवृत्तस्य धर्म्यमार्गानुयायिभिः ।
व्रजद्भिस्त्रिदिवं पौरैः पूरिताः सुरभूमयः ॥ ८९ ॥

རྒྱལ་པོ་དེ་ཡི་བསོད་ནམས་མཐུས། མི་ཡི་མགྲོ་རིས་ཀུན་གང་བ།
མཐོང་ནས་ལྷ་ཡི་དབང་པོ་ཡིས། སྙིང་སྟོབས་ཞེས་འདོད་སྦྱོར་བ་བྱས།། 90

དེ་ནས་བརྒྱ་བྱིན་གྱིས་སྤྲུལ་པའི། སེམས་ཅན་གདུག་པས་ས་ཡི་བདག།
དེ་ལ་ལུས་ནི་བཅད་པ་ཡི། ཤ་དང་ཁྲག་དག་རབ་ཏུ་བླངས།། 91

མི་བདག་བློ་གྲོས་རྣམ་འགྱུར་མེད། དེ་ཡི་མཐོང་འདོད་རྟུས་པའི་ལྷག།
དེ་དག་རྣམས་ལ་བྱིན་ནས་ནི། བསམ་པ་ཆེན་པོས་སྨྲ་ལམ་བཏབ།། 92

ལུས་ཀྱི་སྦྱིན་པའི་བསོད་ནམས་འདས། ལུས་ཅན་རྣམས་ནི་བསྐྱལ་པའི་སྐྱད།
བླ་མེད་ཡང་དག་རྫོགས་པ་ཡི། བྱང་ཆུབ་ཆེན་པོ་ཐོབ་པ་ཤོག།། 93

དེ་ནས་བརྒྱ་བྱིན་དེར་ཕྱོགས་སླས། རྒྱལ་པོ་རབ་གདུང་ཁྲིད་ཀྱིས་ནི།
ལུས་ནི་རབ་ཏུ་བྱིན་པ་ལ། རྣམ་འགྱུར་བྱུང་ངམ་བདེན་པར་སྨྲོས།། 94

ཞེས་པ་ལྷ་ཡི་དབང་པོས་དྲིས། སྙིང་བ་རྫོགས་པས་རབ་བསྐྱེད་པ།
དགའ་བས་མིག་ནི་རབ་རྒྱས་པས། མི་ཡི་དབང་པོ་དེ་ལ་སླས།། 95

གལ་ཏེ་བདག་ནི་གདུང་བ་ན། རྣམ་འགྱུར་མེད་ན་བདེན་པ་དེས།
བདག་གི་ལུས་འདི་རྨ་བསོས་ཤིང་། མཛེས་ལྡན་རྣལ་དུ་གནས་གྱུར་ཅིང་།། 96

ཅེས་པ་རབ་ཏུ་བརྗོད་ཙམ་གྱིས། དེ་ལུས་རབ་མཛེས་རྣལ་གནས་གྱུར།
སྦྱིན་དང་རྣམ་པར་བྲལ་བ་ཡི། རྒྱ་སྐར་བདག་པོའི་གཟུགས་བཞིན་ནོ།། 97

राज्ञः पुण्यानुभावेन स्वर्गमापूरितं नरैः ।
दृष्ट्वा युक्तिं चकारास्य सत्त्वं ज्ञातुं सुरेश्वरः ॥ ९० ॥

ततस्तन्निर्मिताः क्रूरसत्त्वास्तं पृथिवीपतिम् ।
मांसं शरीरनिष्कृत्तं रुधिरञ्च ययाचिरे ॥ ९१ ॥

निर्विकारमतिस्तेभ्यः स दत्त्वाभिमतं नृपः ।
अस्थिशेषं प्रविदधे प्रणिधानं महायशाः ॥ ९२ ॥

शरीरदानपुण्येन तारणाय शरीरिणाम् ।
एतेनानुत्तरां सम्यक्सम्बोधिं मह माप्नुयाम् ॥ ९३ ॥

ऊचे शक्रस्तमेत्याथ राजन् प्रव्यथितस्य ते ।
अपि देहप्रदानेऽभूद्विकारः सत्यमुच्यताम् ॥ ९४ ॥

इति पृष्टः सुरेन्द्रेण नरेन्द्रस्तमभाषत ।
अर्थिसंपूरणोद्भूतप्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ॥ ९५ ॥

व्यथायां निर्विकारोऽहं यदि सत्येन तेन ते ।
संरूढव्रणसच्छायः स्वस्थ एवास्तु विग्रहः ॥ ९६ ॥

इत्युदीरितमात्रेण कान्तं स्वस्थमभूद्वपुः ।
तस्य मेघविनिर्मुक्तं बिम्बं तारापतेरिव ॥ ९७ ॥

མི་བདག་རྣམ་རྒྱལ་དེ་ཉིད་ང་། གཞན་གྱི་དོན་ལ་གདུང་བ་མེད།
ཞེས་པ་བརྗོད་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས། བསམ་གཏན་ལ་ཆགས་སྤྱན་ལྡན་འགྱུར།། 98

འཕྲུལ་ལ་རི་བོ་བསྐྱོད་པས་བསྒྲུངས་པའི་ཉོན་མོངས་གཟེར་མ་དེ་དང་དེ།
ལྷ་ཚོགས་ཆེད་དུ་བདུད་རྩིའི་ཆུ་གཏེར་བསམ་པ་ཆེན་པོས་བཟློད་པར་བྱེད།
བློ་མེད་ཡིད་ལྡན་ལུས་ནི་གནོད་པ་དང་བཅས་ཚོ་ཡང་རྣམ་འགྱུར་མེད།
གཞན་ཕན་བསྒྲུབ་པར་ཞེས་པ་རྣམས་ལ་གདུང་བ་དག་ཀྱང་བདེ་བར་སྤྱོད།། 99

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་རབ་བཟང་གི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱད་ཅུ་པའོ།།

विजयन्तो नृपः सोऽहं परकायेषु निर्व्ययः ।
इत्युक्त्वा भगवान् ध्याननिलीननयनोऽभवत् ॥ ९८ ॥

अचलचलनैर्मैन्थक्लेशच्छटा मथिताम्बुधिः
सुरगणकृते तां तां सेहे प्रसह्य महाशयः ।
विमलमनसां कायापायक्षणेऽप्यविकारिणाम्
परहितविधौ सन्नद्धानां व्यथापि सुखायते ॥ ९९ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
सुभद्रावदानमशीतितमः पल्लवः ॥ ० ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་གཅིག།

ཞིགས་སྐྱོས་ཞིང་ལ་རབ་ཀྱང་གང་བཏབ་དང་།
བྲུས་ཤིས་དག་ལ་ཕན་པ་གང་བྱས་དང་།
ཡོན་ཏན་དག་གིས་མཐོ་ལ་གང་བྱིན་པ།
དེ་ནི་ལོ་མ་སྟོང་ཕྲག་འཕེལ་བར་འགྱུར།། 1

ཞིགས་ལྡན་གཉན་ཡོད་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱི། ཚལ་དུ་བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བས་སྟོན།
གདམས་གྱི་ཞར་ལ་ཉེར་འདུས་པའི། དགེ་སློང་ཚོགས་ལ་བཀའ་སྩལ་བ།། 2

གང་ཞིག་རང་གིས་སྤྱད་འོས་པ། དེ་དག་ཐམས་ཅད་འབྲས་བུ་བྲལ།
འཇིག་རྟེན་དུ་ནི་དགྲ་བཅོམ་ལ། གང་ཕུལ་དེ་ཉིད་འབྲས་བུར་ལྡན།། 3

དམ་པའི་སྣོད་ལ་ཡོན་ཉིད་ཀྱིས། ཡོན་ནི་རབ་ཏུ་ཕུལ་བ་དག།
དང་པའི་གྲོགས་བཞིན་མི་ཟད་པས། ཡོན་ཏན་གྲངས་མེད་ལྡན་པར་གྱུར།། 4

གྲོང་ཁྱེར་པཱ་ཊ་ལི་པུ་ཏྲའི། ཚོང་པ་ཙ་ནྡན་ནོར་གཉེར་སྟོན།
གཟིངས་ཆེན་དག་ལ་ཞོན་ནས་ནི། ཙ་ནྡན་གླིང་དུ་ཕྱིན་པར་གྱུར།། 5

དེ་ནས་ཙ་ནྡན་ས་མཆོག་སོགས། གླངས་ནས་དཀའ་བས་དེ་དག་རྣམས།
དེ་ལས་ཕྱིར་ནི་ལོག་གྱུར་དེ། ཆུ་གཏེར་ཆེན་པོའི་དབུས་སུ་ཕྱིན།། 6

एकाशीतितमः पल्लवः ।

क्षेत्रे सुकृष्टेऽल्पतरं यदुप्तं
कृतं कृतज्ञस्य हिताय यच्च ।
समर्पितं यच्च गुणोन्नताय
शाखासहस्रै स्तदुपैति वृद्धिम् ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां भगवान् भव्ये पुरा जेतवने जिनः ।
कथाप्रबन्धोपगतं भिक्षुसङ्घ मभाषत ॥ २ ॥

विफलं सर्व्वमेवैतत् स्वभोगाय यदर्ज्यते ।
तदेव सफलं लोके यत्समर्पितमर्हते ॥ ३ ॥

दक्षिणा दक्षिणतया सत्पात्रप्रतिपादिता ।
असङ्ख्यगुणतामेति सत्सङ्गतिरिवाक्षया ॥ ४ ॥

पुरा पाटलिपुत्रीया वणिज श्चन्दनार्थिनः ।
महाप्रवहणारूढा श्चन्दनद्वीप माययुः ॥ ५ ॥

गोशीर्षचन्दनचयं समादाय ततस्ततः ।
हृष्टाः प्रतिनिवृत्तास्ते प्रापुर्मध्यं महोदधेः ॥ ६ ॥

ཀྱ་ཆེ་དུས་མིན་རླུང་འཚུབ་ཀྱིས། བསྐྱོད་པའི་བ་རླབས་སྤོབས་ཀྱིས་དེར།
དུས་ཀྱི་རྫ་དགའ་གཡོ་བ་ཡིས། གཟིངས་ནི་བསྣུམས་པ་མེད་པར་གྱུར།། 7

སྐྱོབ་པ་དོན་གཉེར་ཚོང་པའི་ཚོགས། ལྷ་ལ་བསྟོད་པ་བྱེད་པའི་ཚེ།
དོན་མཐུན་ཡིད་ལ་རེ་བ་དང་། ལྷན་ཅིག་གཟིངས་ནི་ཞིག་པར་གྱུར།། 8

མི་བཟང་སྒྲོག་མ་ཐེ་ཚོམ་དེར། དོན་མཐུན་འདྲེན་པ་བསོད་ནམས་སྐྱེ།
ཞེས་པ་འདར་བ་དང་བཅས་པས། ཡོངས་སུ་བསྐྱབ་པ་རབ་ཏུ་བསམས།། 9

བདག་གི་ཁྲིམས་དང་ཉེ་བ་ན། དགེ་བསྙེན་ཆོས་ཀྱི་བྱང་ཆུབ་ཡོད།
དེ་ནི་ཉོན་མོངས་དུས་དག་ཏུ། སྟོན་པ་རྒྱ་ཡི་མཆོག་ཉིད་བསྟོད།། 10

ཅེས་པ་ཡིད་ཀྱིས་རབ་ཐམས་པས་ནས། དེ་ཉིད་ལ་ནི་སྐྱབས་སོང་སྟེ།
དེད་དཔོན་མཆི་མ་དང་བཅས་པས། འཇིགས་ཤིང་ངལ་བས་ལྷིབ་ལྷབ་སྨྲས།། 11

རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་རྒྱ་ཡི་མཆོག། དགེ་བ་ཡི་ནི་དཔག་བསམ་ཤིང་།
ཉོན་མོངས་ཅན་ཀུན་བདེ་མཛད་པ། དགྲ་བཅོམ་ཆེ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ།། 12

ཞེས་པ་དེ་ཡིས་བརྗོད་པའི་ཚེ། འཕྲུལ་ལ་རྒྱ་མཚོའི་ལྷ་འོངས་དེ།
དོན་མཐུན་སྒྲོག་ནི་སྐྱར་བྱུང་ཉམས། ཆུ་གཏེར་གྱི་ནི་ངོགས་སུ་བསྒྲལ།། 13

འཇིགས་ཆེན་དེ་ལས་གྲོལ་གྱུར་པ། དེ་དག་རང་གི་ཡུལ་དུ་ཕྱིན།
རྒྱ་ཡི་མཆོག་ལ་ཕྱག་བྱེད་ལ། དུས་ཀུན་དུ་ནི་ཆགས་པར་གྱུར།། 14

विपुलाकालवातालीवलितोर्म्मिवलैरभूत् ।
तत्र प्रवहणं कालदोलाकेलिविशृङ्खलम् ॥ ७ ॥

त्राणार्थिनि वणिक्चक्रे त्रिदशस्तोत्रकारिणि ।
अभज्यत प्रवहणं सहसार्थमनोरथम् ॥ ८ ॥

पुण्यसेनाभिधस्तत्र विषमे प्राणसंशये ।
अचिन्तयत् परित्राणं साकम्पः सार्थनायकः ॥ ९ ॥

अस्ति मद्देशनिकटे धर्म्मबोधिरुपासकः ।
हेतूत्तमं क्लेशकाले स्तौति शास्तारमेव सः ॥ १० ॥

इति सञ्चिन्त्य मनसा तमेव शरणं गतः ।
ऊचे सार्थपतिः सास्रः साध्वसायासगद्गदः ॥ ११ ॥

हेतूत्तमाय महते संबुद्धायार्हते नमः ।
कल्याणकल्पवृक्षाय सकलक्लेशशर्म्मणे ॥ १२ ॥

इत्युक्ते तेन सहसा समभ्येत्याब्धिदेवता ।
सार्थं प्रत्यागतप्राणं चिक्षेप जलधेस्तटे ॥ १३ ॥

तस्मान् महाभयान्मुक्ता स्ते स्वदेशमुपागताः ।
हेतूत्तमनमस्कारनिरताः सर्व्वदाभवन् ॥ १४ ॥

གནས་སྐབས་དེར་ནི་སྨོན་པ་དག། ཀླུ་ཡི་མཆོག་གི་སྐུ་ལ་ནི།
ལས་ཀྱི་ལྷག་མ་འགའ་ཡི་རིམས། དྲག་པོ་འི་གདུང་བ་གནས་པར་གྱུར།། 15

གང་དག་གཟིགས་པ་སྲིད་པའི་འཇིགས་པ་ཆེན་པོ་འི་སྨན་གྱིས་ནི།
འགྲོ་བ་ཐམས་ཅད་ལེགས་པར་བསོས་པ་ཉིད་ནི་བསྒྲུབས་མཛད་པ།
དེ་དག་གིས་ཀྱང་རང་ལས་འཁྲི་ཤིང་ཁྲུད་པར་ཆགས་པའི།
ལྷག་མ་ལྷག་པར་གནས་ཤིང་ཆགས་པ་དག་ནི་བཟོད་མི་འགྱུར།། 16

དེ་ཡི་དྲག་པོར་གདུང་བ་ནི། ཞི་སྨད་ཙནྡན་ས་མཆོག་དག།
རྒྱལ་པོ་ཟླ་བ་སྣང་ཞེས་པས། ཐམས་ཅད་དུ་ནི་བཙལ་བར་བརྩམས།། 17

ས་བདག་གིས་ནི་འབུམ་ཕྲག་བཞིས། དེད་དཔོན་དེ་ལ་དོན་དུ་གཉེར།
ཙནྡན་ས་མཆོག་ས་ལ་ནི། རྙེད་དཀའ་སྲིད་གཅིག་ཐྲིན་མ་གྱུར།། 18

དེད་དཔོན་རང་ཉིད་སོང་རྟོགས་ཏེ། དྲན་པ་ཙམ་གྱིས་ཕན་མཛད་པ།
སྟོན་པའི་སྐུ་ལ་ཙནྡན་གྱིས། གུས་པ་ཡིས་ནི་བྱུགས་པ་བྱས།། 19

དོ་ཤལ་དང་ནི་ཁ་བའི་ཚོགས། ཟླ་བ་བསིལ་བ་དམན་བྱེད་པ།
གྲགས་པ་ལྷུར་དཀར་ཙནྡན་དེས། རྒྱལ་བ་རྟག་ཏུ་གནས་པར་གྱུར།། 20

དེ་ཡིས་བསོད་ནམས་མཐུ་ཡིས་ནི། དཔལ་དང་ལྡན་པ་བསོད་ནམས་སྐྱེ།
ཟླ་བའི་འོད་དང་ཡན་ལག་ཀུན། སྨད་བྱུང་དྲི་བཟང་ལྡན་པར་གྱུར།། 21

तस्मिन्नवसरे शास्तुः कर्म्मशेषेण केनचित् ।
गात्रे हेतूत्तमस्याभूत् तीव्रतापस्थितिज्वरः ॥ १५ ॥

ये स्वस्थतां भवमहाभयभेषजेन
कुर्व्वन्ति सर्व्वजगतामवलोकनेन ।
तेऽपि प्रसक्तनिजकर्म्मलताविशेषे
शेषाधिवासकलनां न परित्यजन्ति ॥ १६ ॥

गोशीर्षचन्दनं तस्य तीव्रसन्तापशान्तये ।
राजा चन्द्रावलोकाख्यः सर्व्वत्रान्वेष्टुमाययौ ॥ १७ ॥

लक्षैश्चतुर्भि र्भूपेन स सार्थपतिरर्थितः ।
गोशीर्षचन्दनमलं न ददौ भुवि दुर्लभम् ॥ १८ ॥

भक्त्या स्वयं समभ्येत्य स्मृतिमाचोपकारिणः ।
शास्तुः सार्थपतिश्चक्रे वपुश्चन्दनचर्च्चितम् ॥ १९ ॥

तेन हारतुषारौघशशिशैत्योपहासिना ।
स्वस्थः स्वकीर्त्तिशुभ्रेण चन्दनेनाभवज्जिनः ॥ २० ॥

तेन पुण्यानुभावेन पुण्यसेनः शशिप्रभः ।
श्रीमान् बभूव सर्व्वाङ्गप्रोद्भूताद्भुतसौरभः ॥ २१ ॥

དེ་ཡི་ཙནྡན་རིན་ཅན་སོགས། རྒྱ་མཚོ་ཆུ་ལ་གང་ལྷུང་བ།
དེ་དག་ཐམས་ཅད་རང་ཁྱིམ་དང་། ཉེ་བར་ཁྲོན་པའི་ནང་ནས་བྱུང་།། 22

ཚོང་པ་རྣམས་ལ་ཙནྡན་སོགས། རང་རང་དག་ལ་དེས་བྱིན་ནས།
ཟས་དང་རིན་ཅན་གོས་རྣམས་ཀྱིས། ཁྱིམ་དུ་དགེ་སློང་དགེ་འདུན་མཆོད།། 23

དེ་ནས་དེད་དཔོན་དག་གིས་ནི། མཆོག་གི་མཐུ་ཡིས་བསྐྱེད་པའི་དཔལ།
མཐོང་ནས་མངོན་དུ་ཉེར་གནས་ཀྱིས། དེ་ཡིས་ལེགས་བྱས་རྒྱལ་ལ་དྲིས།། 24

དེ་ནས་བཅོམ་ལྡན་རྒྱ་ཡི་མཆོག། འཛུམ་དང་བཅས་པས་དེ་ལ་གསུངས།
དེད་དཔོན་གྱིས་ནི་ཙནྡན་གྱིས། གསུས་ལ་བྱུགས་པས་དཔལ་འབྱོར་ཐོབ།། 25

བསོད་ནམས་སྡེ་ནི་ལེགས་བྱས་ཀྱི། ངང་ཚུལ་དག་གིས་ལས་དེ་བྱས།
བདུད་རྩི་ཉིད་ནི་རབ་ཐོབ་པ། གང་གི་འདི་དག་ཆ་ཡི་ཐིགས།། 26

དགེ་བའི་རྩ་བ་སྨིན་པ་ན། སྐྱེ་བ་ཐ་མ་དག་ལ་འདི།
རབ་བྱུང་བླ་མེད་ཡང་དག་པར། རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཐོབ་པར་འགྱུར།། 27

བསོད་ནམས་དག་གི་ཙནྡན་ཤིང་། ཡངས་པ་ཡི་ནི་རྩ་བར་འདི།
ཙནྡན་དཔལ་ཞེས་གྲགས་པ་ཡི། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 28

དེ་སྐད་བཅོམ་ལྡན་རྒྱ་ཡི་མཆོག། ཡེ་ཤེས་སྤྱན་དང་ལྡན་པས་གསུངས།
ཞེས་པ་ཤཱཀྱ་ཐུབ་པ་ཡིས། གསུངས་ཚེ་དགེ་སློང་ཡ་མཚན་གྱུར།། 29

तस्य चन्दनरक्तादि च्युतं यत्सागराम्भसि ।
तत्सर्व्वं स्वगृहोपान्तकूपमध्यात् समुद्गतम् ॥ २२ ॥

निजं निजं स मत्वा च वणिजां चन्दनादिकम् ।
भोज्यरत्नाम्बरैर्गेहे भिक्षुसङ्घमपूजयत् ॥ २३ ॥

अथ सार्थपतेर्दिव्यप्रभावाभरणां श्रियम् ।
दृष्ट्वोपस्थापकेनाग्रे पृष्टस्तत्सुकृतं जिनः ॥ २४ ॥

हेतूत्तमोऽथ भगवान् सस्मित स्तमभाषत ।
प्राप्ता श्रीः सार्थवाहेन लिम्पता चन्दनेन माम् ॥ २५ ॥

कृतं सुकृतशीलेन पुण्यसेनेन कर्म्म तत् ।
अमृतत्वमवाप्तस्य यस्यैता लेशविप्रुषः ॥ २६ ॥

पाके कुशलमूलानामेष जन्मनि पश्चिमे ।
प्रव्रज्यानुत्तरां सम्यक्सम्बोधिं समवाप्स्यति ॥ २७ ॥

चन्दनश्रीरिति ख्यातः पुण्यचन्दनशाखिनः ।
एवं मूले विशालस्य भविष्यति तथागतः ॥ २८ ॥

इति हेतूत्तमः प्राह भगवान् ज्ञानलोचनः ।
इत्युक्ते शाक्यमुनिना भिक्षवो विस्मयं ययुः ॥ २९ ॥

ཞིགས་བྱས་ཅན་གྱི་དད་པའི་སྨིན་པའི་ཆ་ཤི་ཀྲུ་
ཀུ་ལོ་འདབ་བརྒྱ་ཡིས་འཕེལ།
དགྲ་བཅོམ་ཞིང་ལ་ཡང་དག་བདབ་པ་ཡོངས་སུ་
སྨིན་ཆེ་ཆགས་བྲལ་ཕུན་ཚོགས་འབྲས།
གང་ལ་སྐབས་གསུམ་བདག་པོ་དྲི་མེད་གདུགས་ཅན་
དར་ཞིང་བསོད་ནམས་དྲི་ཡིས་རྒྱགས།
རབ་དགའི་གྲོགས་པོ་ཕུན་ཚོགས་འདི་དག་མི་དོག་
གསར་པ་ཉིད་དུ་རབ་ཏུ་རྒྱས།། 30

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་རྒྱུའི་མཆོག་གི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་གཅིག་པའོ།།

अर्हत्क्षेत्रसमर्पणात् परिणतौ वैराग्यलक्ष्मीफलः
श्रद्धादानकणाङ्कुरः सुकृतिनां शाखाशतैर्वर्द्धते ।
यस्यैता स्त्रिदशाधिपत्यविशदच्छत्रोदयाः सम्पदः
पुण्यामोदमदप्रमोदसुहृदः प्रत्यग्रपुष्पोद्गवाः ॥ ३० ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
हेतूत्तमावदानमेकाशीतितमः पल्लवः ॥ ० ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་གཉིས་པ།

འཇིག་རྟེན་པ་རོལ་བློ་ལྡན་དོན་མེད་བྱ་ལ་ཆགས་པ་ཅི་སྙད་སྒྲུབ།
བསོད་ནམས་གང་རིགས་དེ་ནི་རང་གིས་བྱས་ཏེ་གཞན་གྱིས་བྱས་པ་སྤྱོད་མ་ཡིན།
གང་གིས་སྡིག་པའི་ལས་རྣམས་མ་ལུས་རིགས་ནི་རྣམ་པར་སྤྱུང་ཞིང་བཞིན་
དམན་ཉམས་བྱེད་པ།
དེ་དག་མཚུངས་མེད་གདུག་པའི་བྱ་བ་ལ་མཁས་བྱ་ནི་འགར་ཡི་རྣམ་པ་
བསྒྲུབས།། 1

མཉན་ཡོད་དུ་སྔོན་ཁྱིམ་གྱི་བདག། གྲོས་པའི་གོ་ཆ་དག་གིས་ནི།
རྐང་མ་གྲུལ་བའི་སྐྱེ་ལ་བྱ། སྤྱོད་པའི་གོ་ཆ་ཞེས་པ་བྱུང་།། 2

དལ་བུ་དལ་བུས་བྲིས་པ་དེ། ཁྲོ་ཤུག་དེ་དག་གིས་བསྐྱེད་དེ།
རིགས་བརྒྱུད་ཁྱད་འཕགས་ཁྱད་པར་ཀྱིས། རི་བ་རྣམ་པར་འགོད་པ་བྱས།། 3

དུས་ཀྱི་ཕ་ནི་དུས་དབང་དུ། སོང་ཚེ་སྤྱོད་པའི་གོ་ཆ་ནི།
མཛེར་ཤིང་སྡོངས་པས་གཟེར་བ་ཡི། མ་ཡིས་བསྐྱེད་བསྲིངས་བསྐྱངས་
པར་གྱུར།། 4

ཁྱིམ་མཚོས་གྲོགས་པོ་དག་དང་ནི། ལྷན་ཅིག་རྩེ་ཞིང་མ་བསྒོམས་པ།
ལས་ཚོ་དག་ལ་གནས་པ་དེ། གཉིས་འཐུང་ལྷུགས་ཀྱུ་མེད་བཞིན་འཁྲུམ།། 5

ལག་འགྲོ་རྒྱ་ལམ་ནས་བགྲོད་དེ། དཔའ་བ་ཡི་ནི་བུད་མེད་དག།
མཛེས་པ་ཞེས་པ་ཁང་བཟང་གི། རྩེ་མོ་དག་ན་གནས་པ་མཐོང་།། 6

द्व्यशीतितमः पल्लवः ।

लोकः किं परलोकधीः प्रकुरुते पुत्राय मिथ्यास्पृहाम्
तत्पुण्यं क्रियते स्वयं यदुचितं नान्यैः कृतं भुज्यते ।
पुत्रस्तद्विदधाति कश्चिदसमक्रूरक्रियाकोविदः
पापाद् येन निपातभग्नवदनः सौदत्यशेषान्वयः ॥ १ ॥

पुराभवद् गृहपतेः श्रावस्त्यां श्रुतवर्म्मणः ।
जायायां जयसेनायां भववर्म्माभिधः सुतः ॥ २ ॥

तौ दम्पती शिशौ तस्मिन् वर्द्धमाने शनैः शनैः ।
वंशोत्कर्षविशेषाशाविनिवेशं प्रचक्रतुः ॥ ३ ॥

कालेन कालवशगे जनके भववर्म्मणः ।
जननी स्नेहमोहार्त्ता संवर्द्धनपराभवत् ॥ ४ ॥

प्रातिवेश्यवयस्येन सह लीलाविशृङ्खलः ।
यौवनस्थः स बभ्राम निरङ्कुश इव द्विपः ॥ ५ ॥

व्रजन्तं राजमार्गेण भुजङ्गसुभटाङ्गना ।
ददर्श सुन्दरी नाम तं हर्म्यशिखरस्थिता ॥ ६ ॥

མངོན་པར་སྤྱོད་དང་ལྡན་པ་དེས། འཇོ་སྒྲིག་ལྡན་ལ་རྣམ་པར་བལྟས།
བཞིན་འཛུམ་མ་དེས་དེ་ཡིས་ནི། སྤྱི་བོར་སེ་དོག་འཕྲེང་བ་འཕངས།། 7

ཁྲུས་མཆོས་དེ་ཡིས་དེ་དག་གིས། བསམ་པ་རྣམ་འཕྲུལ་དང་བཅས་པ།
མཐོང་ནས་ལོངས་སྤྱོད་གོ་བྱེད་པའི། བཟ་རྣམས་ཐམས་ཅད་རིག་པར་གྱུར།། 8

གྲོགས་ལ་མཛའ་བས་ཆགས་གྱུར་ཅིང་། གནོད་པ་འབྱུང་བར་དོགས་པ་ཡིས།
འཇིགས་པ་དེ་ནི་སོང་གྱུར་ནས། སྤྱོད་པའི་གོ་ཆའི་མ་ལ་སླས།། 9

ཁྱོད་ཀྱིས་བུ་དང་དཔའ་བོ་ཡི། བུད་མེད་གསལ་བའི་བཟ་དག་བྱས།
མཚན་མོ་རྣམ་པར་མ་ཉལ་བ། དམན་མིན་རྒྱ་ཞིང་འགྲོ་བར་འགྱུར།། 10

མི་ཡི་རི་དགས་འཁོར་བ་སྡུག་བསྔལ་ནགས་ཚལ་འདིར་ནི་རྒྱུ་བྱེད་ཅིང་།
མཆོག་དུ་ལོངས་སྤྱོད་ཀྱིས་འཁྲུགས་མ་ལུས་བདེ་བའི་རྩ་ལ་ཆགས་གྱུར་རྣམས།
འཇིག་པའི་བྱ་བ་དང་ལྡན་ཇོན་པ་ཞགས་པ་དག་ཏུ་ལྷུང་འགྱུར་དེ།
མཐུག་ཏུ་དུག་ལྡན་རྣོ་བའི་མཚོན་རྣམས་དག་གིས་བརླག་པ་ཐོབ་པར་འགྱུར།། 11

གཡོ་བའི་བསམ་པ་དང་ལྡན་ཞིང་། རེ་ཞིག་ཉིན་པར་བདག་གིས་བསྲུང་།
མཚན་མོ་ཁྱོད་ཀྱིས་བསྲུང་བར་བྱ། ཞེས་པ་བརྗོད་ནས་གྲོགས་པོ་སོང་།། 12

དེ་ནས་ཁྱིམ་ནང་དུ་ཉལ་བ། སྒོ་རྩ་ཉལ་བའི་མ་ཡིས་ནི།
མཚན་མོ་རབ་ཏུ་སད་བཞིན་དུ། ཀུན་དུ་བསྲུང་བ་ལ་ཆགས་གྱུར།། 13

सा तेन साभिलाषेण सविलासं विलोकिता ।
उत्ससर्ज स्मरसखीं तन्मूर्द्ध्नि कुसुमस्रजम् ॥ ७ ॥

तयोः सविभ्रमाकूतं स दृष्ट्वा प्रातिवेश्मिकः ।
सम्भोगसूचकं सर्व्वं स सङ्केत ममन्यत ॥ ८ ॥

स गत्वा चकितः प्राह जननीं भवशर्म्मणः ।
सुहृदः स्नेहसंसक्तः शङ्कमानः पराभवम् ॥ ९ ॥

पुचस्ते कृतसङ्केतः स्पष्टं सुभटयोषिता ।
रजन्यामविनीतोऽद्य स्वैरचारी गमिष्यति ॥ १० ॥

चरन्तः संसारव्यसनगहनेऽस्मिन्नरमृगा
भृशं भोगव्यग्रा निखिलसुखशस्यप्रणयिनः ।
विनाशव्यापारस्मरशवरपाशे निपतिता
लभन्ते पर्य्यन्ते विषयनिशितशस्त्रै र्विशसनम् ॥ ११ ॥

वासरे रक्षितस्तावन्मयायं चपलाशयः ।
रक्षणीयस्त्वया रात्रा वित्युक्त्वा प्रययौ सुहृत् ॥ १२ ॥

अथान्तर्गृहसुप्तस्य पुत्रस्य द्वारशायिनी ।
माता निशि प्रबुद्धैव संरक्षणपराभवत् ॥ १३ ॥

ཆུ་ཡི་དག་བྱེད་ཟོལ་གྱིས་ནི། ཕྱིར་འབྱུང་ཞུ་བར་བྱེད་པ་ལ།
མཛའ་བས་སྐྱོངས་པའི་མ་ཡིས་ནི། ཕྱིར་ལ་འཐོན་པ་བྱིན་ན་གྱུར།། 14

དེ་བསམས་ཀྱི་མ་དགའ་བ་ཡི། བུད་མེད་རིན་ཅན་དང་འགྲོགས་ལ།
གེགས་ནི་སྐྱེད་པར་བྱེད་པ་ཡི། བདག་གི་མ་འདི་ཅི་ཡི་སྤྲུལ།། 15

རེ་ཞིག་སྐལ་བས་མ་ནི་བདག། ལང་ཚོ་ལྡན་ཞིང་འཚོ་བར་གྱུར།
བསོད་ནམས་མིན་པས་སྦྲུལ་ནག་ནི། འཇིགས་རུང་མ་ནི་ཁྱིམ་ན་གནས།། 16

གཉིད་དང་བྲལ་མ་འདི་ལ་ནི། གལ་ཏེ་བདག་གིས་འགོངས་བྱིན་ན།
འདི་ལ་འཐབ་མོ་འི་སྒྲ་བརྗོད་ཀྱིས། སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱང་རབ་སད་གྱུར།། 17

མཚན་མོ་ཕལ་ཆེ་ཡོངས་ཟད་ཅིང་། མཛེས་མ་རིང་ལ་བདག་ཅི་བྱེད།
སྐལ་བ་དམན་པ་བདག་ལ་ནི། སྐལ་བཟང་མ་དེ་ཇི་ལྟར་མོད།། 18

ཁང་བཟང་ནང་དུ་སོང་ཞིང་རྣམ་པར་བལྟ་བའི་རོ་ལས་བཞིན་གྱི་ཆུ་སྐྱེས་དང་།
ནུ་བའི་ཤུ་དྲ་ལ་རླུང་བར་གྱུར་པས་མིག་གི་མཛེས་པ་ནུ་བ་དག་ལ་ཕྱེར།
ནུ་རྒྱན་འོད་ཟེར་དག་གིས་འཁྲུས་པ་ཟུང་ལ་པ་དྨའི་འཕྲེང་བ་རྣམ་པར་འཛིན།
མཛེས་མ་དེ་ནི་ལེགས་ལྡན་དག་གིས་སྐལ་བ་རྣམས་ཀྱིས་སྤྱོད་བྱ་ངེས་སུ་འགྱུར།། 19

དེ་ལྟར་བསམས་པས་གཟིར་ཞིང་སྒོ། ཡང་དང་ཡང་དུ་སྒྲོང་བྱེད་པ།
དེ་ལ་མ་ཡིས་འདི་ཉིད་དུ། གཙང་པ་མཐོང་ཅེས་རབ་དུ་སྨྲས།། 20

वारिशौचापदेशेन याचमानस्य निर्गमम् ।
न निर्गन्तुं ददौ तस्य जननी स्नेहमोहिता ॥ १४ ॥

सोऽचिन्तयदहो रम्यरामारत्नसमागमे ।
केनेयं विघ्नजननी जननी मम निर्म्मिता ॥ १५ ॥

भाग्यैर्मे जनकस्तावद् यौवने निधनं गतः ।
इयन्त्वपुण्यैः कङ्काली कालव्याली गृहे स्थिता ॥ १६ ॥

गच्छाम्येनां समुल्लङ्घ्य निद्राविरहितां यदि ।
तदस्याः कलहालापै र्जनोऽपि प्रतिबुध्यते ॥ १७ ॥

प्रायः क्षपा परिक्षीणा दूरे कान्ता करोमि किम् ।
सुलभा भाग्यहीनस्य कथं सा सुभगा मम ॥ १८ ॥

हर्म्योत्सङ्गगता त्रिलोकनरसाल्लम्बाननाम्भोरुहा
सक्तस्य श्रवणोत्पलस्य नयनच्छायां दिशन्ती पदे ।
ताडङ्कद्युतिभिः कपोलयुगले पत्रावलीं बिभ्रती
भाग्यै र्भोगभुवं प्रयाति सुभगा भव्यस्य सा सुन्दरी ॥ १९ ॥

इति चिन्तातुरं द्वारं याचमानं पुनः पुनः ।
अत्रैव क्रियतां शौचमिति माता तमब्रवीत् ॥ २० ॥

དེ་ནས་རལ་གྲིས་མ་ཡི་མགོ། བཅད་ནས་དེ་ནི་མགྱོགས་པར་སོང་།
ཆགས་པ་ཉེར་བསྟན་སྡིག་བདག་ཉིད། ངན་པ་རྣམས་ལ་བྱ་མིན་ཏེ།། 21

མཚན་མོ་ངལ་དུབ་མ་རྟིས་པར། མཛེས་མའི་ཁང་པར་དེ་སོང་ནས།
མཁས་ཤིང་ལོངས་སྤྱོད་ལ་ཆགས་མ། དེ་ནི་དབེན་པར་ཡང་དག་གྲིབ།། 22

དེ་ལ་རང་གིས་བྱས་པའི་སྡིག། གསུས་པའི་སྐད་དུ་དེ་ཡིས་བཤད།
གང་གིས་སྐད་པ་ཉིད་འགྱུར་པ། དེ་ཉིད་ལ་ནི་སྨོངས་པ་བསྡུགས།། 23

མ་བསད་སྡིག་པ་དྲག་པོ་ནི། ཐོས་ནས་འདར་བར་གྱུར་བ་དེ།
གདུམ་པོ་ལ་བཞིན་དེ་ལ་ནི། རིག་ལ་ཤིན་དུ་ཕྱིར་ཕྱོགས་གྱུར།། 24

དེ་ཡི་གནས་ནས་ཁང་བཟང་ལ། འཇིག་པའི་ཐོལ་གྱིས་དེ་སོང་སྟེ།
སྡིག་པ་རྣམས་ཀྱིས་གསུས་པ་ཡིས། སྲིད་ལྡན་དག་ཀྱང་ཆགས་བྲལ་གྱུར།། 25

སྡིག་པ་ལས་ནི་ཕྱིར་ཕྱོགས་མ། དེ་ཡིས་བ་གམ་མཐོན་པོར་འཛེགས།
འདི་ནི་ཆོས་ཀུན་ཆོས་ཀུན་ཞེས། འཇིགས་པ་བཞིན་དུ་སྐད་ཆེར་བསྒྲགས།། 26

འཁོར་གྱི་སྐྱེ་བོས་རྒྱུགས་པའི་ཚེ། འཇིགས་པས་ཉེན་པ་དེ་རབ་བྲོས།
ཇི་སྲིད་རང་གི་ཁྱིམ་དུ་སོང་། ཁྱི་རྣམས་ཀྱིས་ནི་ཅ་ཅོ་བྱས།། 27

བདག་གི་མ་ནི་ཆོས་ཀུན་གྱིས། བསད་ཅེས་སྐད་ཆེར་རབ་སྨྲ་ཞིང་།
སྟ་རེ་དེ་ཡིས་མ་ཡི་ནི། ལུས་ལ་སོགས་པ་སྦྱང་བ་བྱས།། 28

अथ मातुः शिरश्छित्त्वा खड्गेन स ययौ जवात् ।
रागोपदिष्टपापानां किमकार्य्यं दुरात्मनाम् ॥ २१ ॥

रात्रावगणितायासः स गत्वा सुन्दरीगृहम् ।
रहः सम्भोगसन्नद्धां विदग्धां माससाद ताम् ॥ २२ ॥

स तस्यै स्वकृतं पाप मादराय न्यवेदयत् ।
तेनैव मूर्खाः श्लाघन्ते येनैवायान्ति निन्द्यताम् ॥ २३ ॥

तस्य मातृवधक्रूरपापश्रवणकम्पिता ।
श्वपाकस्येव संस्पर्शे विमुखी साभवत् परम् ॥ २४ ॥

हर्म्याधिरोहणव्याजात् सा जगाम तदन्तिकात् ।
साभिलाषोऽपि पापानामाचारेण विरज्यति ॥ २५ ॥

उच्चहर्म्यंसमारूढा प्रौढपापपराङ्मुखी ।
चौरश्चौरोऽयमित्युच्चैश्चुक्रोश चकितेव सा ॥ २६ ॥

प्रधाविते परिजने भयदिग्धः स विद्रुतः ।
ययौ जवान्निजगृहं कृतकोलाहलः श्वभिः ॥ २७ ॥

हता मे जननी चौरैरिति तारप्रलापवान् ।
प्रभाते विदधे मातुः स शरीरादिसत्क्रियाम् ॥ २८ ॥

རབ་བསྐྲིབས་སྡིག་པའི་གདུང་བ་ཡིས། སྡིག་ཅིང་ཞིན་དུ་མི་བཟད་པའི།
དམྱལ་བར་ལྷུང་བ་དེ་བསམས་ཏེ། འབྱུང་པོ་བཞིན་དུ་ས་ལ་འཁྲམས། 29

སྡིག་པ་སྨྲ་བྱེད་དེ་ཡིས་ནི། ཕྱིར་བཅོས་དྲིས་ལ་གཉིས་སྐྱེས་ཀྱིས།
སྨྲས་པ་མ་བསད་དྲག་པོ་ཡི། སྡིག་པ་དག་ལ་བཅོས་ཐབས་མེད། 30

དེ་ནས་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་སོང་བས། དེར་ནི་དགེ་སློང་ཚོགས་བརྗོད་པའི།
སྡིག་པ་ཐམས་ཅད་ཉམས་བྱེད་པའི། ཆོས་ཀྱི་ཁ་དོན་རབ་ཏུ་ཐོས། 31

དེར་ནི་བློ་ལྡན་རབ་བྱུང་སྟེ། ཁ་དོན་དག་ལ་མཆོག་ཏུ་ཆགས།
དེ་ནས་དེ་ནི་སྡེ་སྣོད་གསུམ། བརྗོད་ཅིང་ཆོས་ཀྱི་གཏམ་ཅན་གྱུར། 32

དེ་ནས་ཀུན་མཁྱེན་བཅོམ་ལྡན་འདས། མངོན་ཕྱོགས་དགེ་སློང་ཚོགས་གསུངས།
སྡིག་ཅན་འདི་ལ་རབ་བྱུང་ནི། ཁྱོད་ཀྱིས་ཅི་སླད་ཡང་དག་བྱིན། 33

མ་བསད་དྲག་པོར་གྱུར་པ་ཡི། སྡིག་པ་དེ་ཡིས་བག་མེད་འདི།
མཐུག་ཏུ་མནར་མེད་ཚ་བར་ནི། ཡུན་རིང་གནས་ལ་རབ་ཏུ་ཉེ། 34

དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་དེ་གསུངས་ཚེ། དེ་ཡང་མཁན་པོ་ཉིད་དུ་གྱུར།
དུས་ཀྱིས་དུས་ཀྱི་མཐུག་ཏུ་ནི། འཇིགས་སུ་རུང་བའི་དམྱལ་བ་ཐོབ། 35

དེར་ནི་མནར་མེད་ཚོགས་འཁྲུངས་པ། མི་བཟད་མེ་ལྕེ་བརྒྱ་ཕྲག་གིས།
ཡུན་རིང་འཚེད་པར་བྱེད་ཅིང་དེས། དམྱལ་བའི་གནས་ནི་སྐྱོ་བར་བྱས། 36

प्रच्छन्नपापसन्तापदह्यमानः स चिन्तयन् ।
सुतीव्रनरकापातं बभ्राम भुवि भूतवत् ॥ २९ ॥

प्रायश्चित्तं द्विजास्तेन पृष्टाः पातकवादिना ।
ऊचु र्मातृवधक्रूरपातके नास्ति निष्कृतिः ॥ ३० ॥

अथ जेतवनं गत्वा तत्र भिक्षुगणोदितम् ।
शुश्राव धर्म्माध्ययनं सर्व्वपापप्रणाशनम् ॥ ३१ ॥

धीमान् प्रव्रजितस्तत्र स्वाध्यायनिरतः परम् ।
तत स्त्रिपिटकाध्यायी स धर्म्मकथिकोऽभवत् ॥ ३२ ॥

सर्व्वज्ञोऽभ्येत्य भगवान् भिक्षुसङ्घ मथाब्रवीत् ।
किं भवद्भिः सपापाय प्रव्रज्यास्मै समर्पिता ॥ ३३ ॥

तेन मातृवधक्रूरकिल्बिषेण प्रमादिनः ।
प्रत्यासन्नास्य पर्य्यन्ते तप्तावीचौ चिरस्थितिः ॥ ३४ ॥

उक्ते तथागतेनेति सोऽप्युपाध्यायतां गतः ।
कालेन कालपर्य्यन्ते घोरं नरकमाप्तवान् ॥ ३५ ॥

तप्तावीचिचयोदग्रतीव्रवह्निशिखाशतैः ।
पच्यमानश्चिरं चक्रे स खेदं नरकौकसाम् ॥ ३६ ॥

དཀྱུལ་སྐྱོང་རབ་ཏུ་ཁྲོས་པ་ཡིས། ཁྲོ་བས་བརྡུངས་ཤིང་ཕྱི་མར་བདགས།
དེ་ཡིས་རིང་ནས་སྡིག་པ་ཡི། མེ་ཡིས་ཡོངས་སྨིན་ལུས་ཟད་ཐོབ།། 37

དེ་ནས་དེ་ནི་རབ་བྱུང་གི། མཐུ་ཡིས་རྒྱལ་པོ་ཆེན་པོ་དག།
བཞི་པ་ཡི་ནི་ལྷ་རྣམས་སུ། ལྷ་ཡི་རྒྱན་གྱིས་བརྒྱན་པར་སྐྱེས།། 38

དེ་ནས་དྲི་མེད་འཕྲེང་བ་ཅོད་པན་དཔུང་རྒྱན་དོ་ཤལ་ལས།
རབ་འཕྲོས་ནོར་བུའི་འོད་ཀྱིས་སྣང་བྱུང་དཔལ་ནི་འདྲི་བྱེད་ཅིང་།
ལྷ་ཡིས་བསྟེན་བྱ་རྗེས་འབྲང་འོད་ཀྱིས་རབ་མཛེས་ཟླ་བ་ལྟར།
མཛེས་པ་དེ་ནི་བདེ་བར་གཤེགས་ལ་ཕྱག་འཚལ་སླད་དུ་སོང་།། 39

དེ་ཡི་ཞབས་ཀྱི་པད་མོ་ཟུང་ལ་གུས་པས་ཕྱག་བཙལ་ཏེ།
ཀུན་དགའ་འཕེལ་ཞིང་མཛེས་པའི་བཞིན་གྱི་པདྨ་རྣམ་པར་རྒྱས།
སྟོན་པའི་ཆོས་ཀྱི་ཡང་དག་གདམས་གྱི་དེ་ནི་སྒྱུར་ཉིད་དུ།
བདེན་པ་མཐོང་ཞིང་ཡིད་ནི་རབ་ཏུ་ཐྲིས་པ་བཞིན་དུ་གྱུར།། 40

སྡིག་པ་མཚན་མོའི་རབ་རིབ་ཞི་བའི་དུས་སུ་ནི།
ཡུན་རིང་ཉེ་བར་སྤྱད་པས་སྡུག་བསྔལ་ཉམས་པའི་སྐྱེ་བོ་ལ།
ལེགས་བྱས་སྔ་དྲོ་འི་དུས་ནི་དྲི་མ་མེད་ཅིང་ཡངས་པ་ཡི།
དགེ་བ་ཕུལ་བྱུང་སྣང་བ་དེ་ལྟར་ཀུན་དུ་རྒྱས་པར་གྱུར།། 41

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་དཀྱུལ་བ་སྐྱོན་ལྡན་གྱི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་གཉིས་པའོ།།

कोपान्नरकपालेन मुद्गराघातचूर्णितः ।
स चिरात् प्राप पाकाग्निपरिपक्वतनुः क्षयम् ॥ ३७ ॥

चातुर्महाराजिकेषु सोऽथ देवेष्वजायत ।
प्रव्रज्यायाः प्रभावेण दिव्याभरणभूषितः ॥ ३८ ॥

अथ स विमलमालामौलिकेयूरहार-
प्रसृतमणिमयूखोल्लिख्यमानाद्भुतश्रीः ।
अगमदमरवन्द्यो वन्दनायेन्दुकान्तिः
सुगत मनुगताभि र्भ्राजमानः प्रभाभिः ॥ ३९ ॥

तत्पादपद्मयुग मादरवन्दनोद्य-
दानन्दसुन्दरविबुद्धमुखारविन्दः ।
धर्मोपदेशकथयैव बभूव शास्तु-
रुन्मृष्टमानस इवाश्रुतदृष्टसत्यः ॥ ४० ॥

दीर्घोपभोगचलितव्यसनस्य काले
पापप्रदोषतिमिरोपरमे जनस्य ।
इत्यातनोति विमला सुकृतप्रभाव-
वेलाविशालकुशलातिशयप्रकाशम् ॥ ४१ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
मारकपूर्व्विकावदानं द्व्यशीतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་གསུམ་པ།

མངལ་དུ་གནས་དང་སྐྱེ་དང་དེ་ནས་བྱིས་པ་དག་དང་ནི།
དར་བབ་དེ་ནས་དཔལ་གྱི་གཞོན་པོ་ཉིད་ལ་བརྟེན་གྱུར་པ།
སྐྱེ་བོ་མཚུངས་མེད་དུས་ཀྱི་གླང་པོས་ཕྱུང་བ་དག་གི་ནི།
ལས་སྐུད་འདི་ནི་པད་སྐུད་རྩལ་གྱིས་ངེས་པར་གསོ་མི་འགྱུར། ། 1

ཟས་གཙང་གི་ནི་གུས་པས་སྦྱོར། བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་མགྲོན་དུ་གཉེར།
དགེ་སློང་རྣམས་དང་བཅས་པ་ཡིས། དེ་ཡི་ཟས་ནི་རབ་བཞེས་མཛད། ། 2

དེ་ནས་གསོལ་རྗེས་རབ་དང་དེས། བཞུགས་དེ་ས་ཡི་བདག་པོ་ལ།
རྗེས་སུ་བཟུང་བས་དགའ་པ་ཡི། ཆོས་ནི་རབ་ཏུ་བསྟན་པ་མཛད། ། 3

དེར་ནི་དེ་དུས་མཐོང་བ་ལ། བྱིས་པ་སྒྲ་གཅན་འཛིན་གྱིས་དེ།
དགེ་སློང་དབུས་སུ་ཡོངས་ཤེས་ནས། ཡབ་ནི་ལ་དུ་དགག་གིས་མཆོད། ། 4

དེ་ཡི་དུས་ན་བཅོམ་ལྡན་ལ། བྱིས་པ་གུས་པ་མཐོང་གྱུར་ནས།
རབ་དུད་དགེ་སློང་ཐམས་ཅད་ནི། དགེ་མཚན་དགག་དང་ལྡན་པས་དྲིས། ། 5

ལས་ཀྱི་རྣམ་སྨིན་ཅི་ཞིག་པ། ཁྱོད་ཀྱི་གཟུགས་ཅན་ལུས་ལྡན་པའི།
བྱིས་པ་འདི་ནི་ལོ་དྲུག་དག། དཀུ་རུ་ངེས་པར་བསྒོམས་དེ་སྐྱེས། ། 6

त्र्यशीतितमः पल्लवः ।

गर्भस्थितस्य निसृतस्य ततः शिशोश्च
यूनः शनैः स्थविरता मथ संश्रितस्य ।
नासौ चलत्यतुलकालगजोद्धृतस्य
जन्तो र्मृणालकलया किल कर्म्मतन्तुः ॥ १ ॥

शुद्धोदनेन भगवान् भक्त्या भोक्तुं निमन्त्रितः ।
भिक्षुभिः सहित श्चक्रे तस्य भोज्यप्रतिग्रहम् ॥ २ ॥

भुक्तोत्तर मथासीनः प्रसन्नः पृथिवीपतेः ।
अनुग्रहेण विदधे स शुद्धां धर्म्मदेशनाम् ॥ ३ ॥

तत्र तत्क्षणदृष्टोऽपि शिशुना राहुलेन सः ।
भिक्षुमध्ये परिज्ञाय मोदकेनार्च्चितः पिता ॥ ४ ॥

भगवन्तं क्षणे तस्मिन् प्रणताः सर्व्वभिक्षवः ।
बालप्रणयमालोक्य पप्रच्छुः सकुतूहलाः ॥ ५ ॥

षड्भिर्वर्षै रयं जातः शिशुः कुक्षिनिपीडितः ।
केन कर्म्मविपाकेन प्रतिबिम्बवपुस्तव ॥ ६ ॥

ཅི་སྲད་ལྷ་མོ་གྲགས་འཛིན་མ། ཉིན་དང་མཚན་མོ་མངལ་གྱི་ཁྲར།
ཤིན་ཏུ་ཆེ་བས་ཡོངས་མནན་ཅིང་། ཤིན་ཏུ་ཡུན་རིང་གདུང་བས་བསྡེན༎ 7

དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱི་གུས་པས་ནི། བཅོམ་ལྡན་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་ལ་དྲིས།
སྐད་ཅིག་བསམས་ནས་དེ་དག་ལ། གསུངས་པ་འདིར་ནི་རྒྱུ་དག་ཉོན༎ 8

ལུས་འཕགས་ཀྱི་ནི་མི་ཁྲི་ཡར། ས་བདག་མི་རྟོག་ལྷ་ལ་ནི།
ཉི་མ་ཟླ་བ་ཞེས་པ་ཡི། བསོད་ནམས་ངང་ཚུལ་བུ་གཉིས་བྱུང་༎ 9

ཡབ་ནི་མཐོ་རིས་སོང་བའི་ཚེ། དེ་དག་དཀའ་ཐུབ་ནགས་འདོད་ལྡན།
རྒྱལ་སྲིད་ཆེན་པོ་འཁོར་འཛིན་ལ། ཕན་ཚུན་ཞུ་བ་རབ་ཏུ་བྱས༎ 10

རྣམ་པ་ཀུན་ཏུ་ཆགས་བྲལ་བས། ཉི་མས་བཏང་བའི་རྒྱལ་སྲིད་ནི།
ཕུ་བོ་འི་བཀའ་ཡིས་བསྐུལམས་པ་ཡིས། ཟླ་བས་ཇི་ཞིག་ལྟར་སྤྱིས་བཟུང་༎ 11

རྒྱལ་པོ་འི་དྲུང་སོང་ཉི་མ་དེ། ཞི་དགེ་དཀའ་ཐུབ་ཚུལ་སོང་ནས།
ཚོག་ཤེས་རྒྱལ་སྲིད་བདེ་བ་ཡིས། ཤིན་ཏུ་ཡུན་རིང་དཀའ་ཐུབ་བྱས༎ 12

ནམ་ཞིག་ཡོངས་སུ་ངལ་གྱུར་ཅིང་། སྐོམ་པ་དྲག་པོས་གདུངས་པ་དེ།
ཐུབ་པ་ཡི་ནི་བུམ་པའི་ཆུ། སྐྱོངས་ལས་མ་བརྗོད་ཉིད་དུ་འཐུངས༎ 13

དྲན་པ་སྐྱེས་ནས་མཁས་པ་དེས། མི་བྱིན་ལེན་ནི་སྡིག་པ་ལ།
རྟོག་ཅིང་བཞིན་ནི་ལོག་གྱུར་པས། འགྱོད་པ་ལས་ནི་རབ་ཏུ་བསམས༎ 4

भूयसा गर्भभारेण परिभूता दिवानिशम् ।
पीड़ां चिरतरं सेहे कस्माद्देवी यशोधरा ॥ ७ ॥

सर्व्वज्ञो भगवान् पृष्टः प्रणयादिति भिक्षुभिः ।
तानुवाच क्षणं ध्यात्वा श्रूयतामत्र कारणम् ॥ ८ ॥

मिथिलायां विदेहेषु पुष्पदेवस्य भूपतेः ।
सूर्य्यचन्द्राभिधौ पुत्रौ पुण्यशीलौ बभूवतुः ॥ ९ ॥

पितरि त्रिदिवं याते तौ तपोवनसस्पृहौ ।
साम्राज्यभारग्रहणे मिथ श्चक्रतु रर्थनाम् ॥ १० ॥

राज्यं सूर्य्येण वैराग्यात् सर्व्वथैव समुज्झितम् ।
चन्द्रः कथञ्चित्तत्राह ज्येष्ठशासनयन्त्रितः ॥ ११ ॥

सूर्य्यस्तु गत्वा राजर्षिः श्रमश्लाघ्यं तपोवनम् ।
सन्तोषराज्यसुखितश्चक्रे चिरतरं तपः ॥ १२ ॥

स कदाचित् परिश्रान्तः सन्तप्तस्तीव्रतृष्णया ।
कमण्डलुजलं मोहादनुज्ञैव पपौ मुनेः ॥ १३ ॥

स सञ्जातमति र्विद्वानदत्तादानपातकम् ।
कलयन् म्लानवदनः पश्चात्तापादचिन्तयत् ॥ १४ ॥

ལས་ཀྱི་ཞགས་པས་ཡང་དག་ཟུངས། དབང་མེད་ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱིས་ནི།
མི་འདོད་བཞིན་དུ་ཡིགས་བྱས་སས། ཉེས་བྱས་དག་ནི་ཐོབ་པར་འགྱུར།། 15

སྐྱེ་བོ་ཡིགས་བྱས་སྤྱོད་ཅིང་དཀར་བ་འདིར་ཡང་ཉེས་བྱས་དག་གི་ཚ།
འཛིན་འདི་གང་གི་བཞིན་རས་རྡི་ས་ཅན་འདི་མཆོག་ཏུ་གཡུང་བར་བྱེད།
སྐད་ཅིག་སྨིད་པའི་བདེ་བསྡུག་བསྔལ་ཚོགས་ལ་ཆགས་པས་འཕང་བ་རྣམས་ལ།
ལོ་འདབ་བརྒྱ་ལྡན་པདྨ་རྒྱས་ནང་དུ་ཞུགས་དེ་གདུང་བ་སྤྱིར་བར་བྱེད།། 16

མི་བདག་སྔོན་དུ་བདག་ཟིན་ལ། སྡིག་པ་བདག་གིས་བརྗོད་པར་བྱ།
རྒྱལ་པོའི་བཀའ་ཡིས་དག་པ་རྣམས། ཟླ་ལྡོན་མེད་པའི་ཆོས་ཀྱི་ཚོགས།། 17

ནད་ཀྱིས་གཟིར་རྣམས་སྨན་པས་གསོ། ཆོས་ལ་ཞུགས་རྣམས་བསྟན་བཅོས་ཀྱིས།
སྡིག་ལས་ཅན་རྣམས་མི་བདག་ནི། རིགས་གནས་ལུགས་ལྡན་བླ་མ་ཡི།། 18

ཞེས་བསམས་ཡོངས་སུ་གདུང་བ་ཡིས། ས་བདག་སྤྱན་ལྔའི་དྲུང་དུ་ནི།
ཕྱིན་ནས་དེ་ཡིས་སྨྲས་པར་ནི། མ་ཕྱིན་བླངས་པའི་སྡིག་པ་སྨྲས།། 19

སྤྱན་ལྔ་བ་པོ་མངོན་མཆོད་དེ། དེ་ལ་ས་བདག་གིས་སྨྲས་པ།
སྐྱེས་ནས་དག་པའི་དངོས་གྱུར་པ། ཁྱོད་ལ་སྡིག་པ་ཡོད་མ་ཡིན།། 20

རིགས་མིན་ཤིན་དུ་ཐབ་བ་ཡང་། རྫི་ཞིག་ལྷུར་སྤྱིས་གང་བྱས་པ།
ནང་དུ་རྗེས་སུ་གདུང་བ་འཛིན། དེ་ཉིད་དེ་ཡི་རྣམ་དག་ཉིད།། 21

कर्म्मपाशसमाकर्षविवशैः समवाप्यते ।
अनिच्छयैव सुकृतं दुष्कृतं वा शरीरिभिः ॥ १५ ॥

जनः शुभ्रेऽप्यस्मिन् सुकृतचरिते दुष्कृतकणा
निधत्ते येनासौ मलिनवदनः शोचतितराम् ।
स्पृहानिक्षिप्तानां क्षणभवसुखे दुःखनिचये
प्रविश्यान्तः शोषं दिशति शतशाखो ह्यनुशयः ॥ १६ ॥

गच्छामि नृपतेरग्रे पापमावेदयाम्यहम् ।
राजशासनशुद्धानामन्तणो धर्म्मसञ्चयः ॥ १७ ॥

शास्त्रं धर्म्मप्रवृत्तानां रोगार्त्तानां चिकित्सकः ।
वर्णाश्रमगुरु र्नेता नृपतिः पापकर्म्मणाम् ॥ १८ ॥

स विचिन्त्येति सन्तापाद्भूपते र्भ्रातुरन्तिकम् ।
गत्वा न्यवेदयत्तूर्णं मदत्तादानपातकम् ॥ १९ ॥

ज्येष्ठभ्रातर मभ्यर्च्य तं भूमिपति रब्रवीत् ।
आजन्मशुद्धभावस्य न पापं विद्यते तव ॥ २० ॥

सुसूक्ष्ममपि यः कृत्वा दैवात् किञ्चिदसाम्प्रतम् ।
पश्चात्तापं वहत्यन्त स्तस्य सैव विशुद्धता ॥ २१ ॥

ཅེས་པས་བདག་ཅིག་གྲོས་ནས། ཉི་མས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།
དམ་པའི་ཆོས་ནི་དཀར་བ་ཡི། གོས་ལ་དྲི་མའི་ཚ་སི་བཟོད།། 22

རྒྱལ་པོ་ཚང་པ་བདག་འཚལ་ལོ། ཤིན་ཏུ་དབྱར་ནས་བསྒྲུབ་པར་མཛོད།
དག་བྱེད་ཀྱིས་བཞིན་རྒྱལ་པོ་ཡི། ཚད་པས་སྡིག་ཅན་གཙང་བར་འགྱུར།། 23

ཞེས་དེ་འབད་པས་ལན་མང་དུ། རང་གི་ཚད་པ་དོན་གཉེར་བ།
དེ་ལ་ནུ་བོ་རྒྱལ་པོས་སྨྲས། ནང་པར་བདག་གིས་གང་བཟོད་བྱ།། 24

རེ་ཞིག་ཁྱོད་ནི་སྐྱིད་ཚལ་གྱི། ནགས་འདི་ཉིད་དུ་གནས་པར་མཛོད།
ཅེས་བརྗོད་གྲོང་པའི་བྱ་བ་ལ། ས་ཡི་བདག་པོ་ཕྱི་རོལ་སོང་།། 25

དེ་ནས་དེར་ནི་ཐུབ་པ་དག། ངེས་པར་གཡོ་མེད་གནས་པའི་ཚེ།
རྒྱལ་པོ་དེ་ཡི་བྱ་བ་བརྗོད། ཉི་མ་དྲུག་ནས་མངོན་པར་འོངས།། 26

དེ་ནས་རྒྱལ་པོ་ཕྲུ་བོ་ནི། ཟས་མེད་རིད་པའི་རྣམ་པ་མཐོང་།
ཀུན་སྤོངས་རང་གི་བློ་སྒྲོ་ཅིང་། དེ་ལ་རབ་ཏུ་དང་བར་བྱ།། 27

དེ་ནི་བྲམ་ཟེ་དང་བཅས་པས། དེ་ཡི་སྡིག་པ་དག་བྱས་ནས།
ཉིན་དྲུག་ཉོན་མོངས་བྱིན་པ་ཡིས། དེ་སོང་ཚེ་ན་རབ་ཏུ་གདུངས།། 28

ང་ཉིད་རྒྱལ་པོའི་དྲང་སྲོང་ཉི། བྱིས་པ་འདི་ཡང་རྒྱལ་པོ་ཟླ།
ཉིན་དྲུག་ཐུབ་པ་ཉོན་མོངས་པར། བྱས་པས་ལོ་དྲུག་དག་ནས་སྐྱེས།། 29

इति क्षितिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सूर्य्यस्तमभ्यधात् ।
कलङ्कमेषं न सहे सद्धर्म्मधवलांशुके ॥ २२ ॥

दण्डमेवार्थये राजन् सुविचार्य्य विधीयताम् ।
पूयते पावकेनेव राजदण्डेन किल्विषम् ॥ २३ ॥

इत्याग्रहेण बहुशो याचमानं स्वशासनम् ।
तमुवाचानुजो राजा प्रातः कर्त्तास्मि यत् क्षमम् ॥ २४ ॥

अस्मिन् प्रतीक्ष्यतां तावद्भवानुद्यानकानने ।
इत्युक्त्वा पौरकार्य्याय निर्ययौ पृथिवीपतिः ॥ २५ ॥

तत्र प्रतीक्षमाणोऽथ मुनौ नियमनिश्चले ।
राजा विस्मृततत्कृत्यः षड्भिरभ्याययौ दिनैः ॥ २६ ॥

कृशाकारं निराहारमथ दृष्ट्वाग्रजं नृपः ।
निन्दन् स्वबुद्धिसंमोहं चक्रे तस्य प्रसादनम् ॥ २७ ॥

ब्राह्मणैः सहितः कृत्वा स तत्पापप्रमार्जनम् ।
षड्दिनक्लेशदानेन याते तस्मिन्नतप्यत ॥ २८ ॥

अहं स सूर्य्यो राजर्षिश्चन्द्रो राजाप्ययं शिशुः ।
जातः संवत्सरैः षड्भिः षड्दिनक्लेशकृन् मुनेः ॥ २९ ॥

བཟང་མོ་ཞེས་བྱ་བ་ཟྀ་མོ། ཀྱིན་མོ་གྲོང་ཁྱེར་ལ་ཕྱོགས་དེ།
ཟྀ་མོ་རི་དགས་མོ་དག་དང་། འགྲོགས་ནས་དར་བ་འཇོང་དུ་སོང་། 30
དེ་ཡི་བུ་མོ་དར་ཐབ་མས། རང་གི་ནུམ་པ་རབ་སྐྱེ་བ།
མ་ཤཱན་དག་ལ་བྱིན་ནས་ནི། དེ་ཡི་ནུམ་པ་ཡང་བ་བཟུང་། 31
ས་རི་ཤཱན་ཁྱིང་ཉམ་ཆུང་དེ། བུ་མོས་དཔག་ཚང་ཕྱེར་དང་གཉིས།
བདང་ནས་གྲོང་ཁྱེར་ཉི་བ་ནི། ཞིང་དུ་ཡོངས་སུ་ངལ་བར་གྱུར། 32
གྲགས་འཛིན་མ་ནི་བ་ཟྀ་ཡི། བུ་མོ་མ་ཡི་ཉིར་སོངས་ལས།
རྒྱང་གྲགས་དྲུག་མཚུངས་ལོ་དག་ནི། མངལ་གྱི་ཁྲར་གྱིས་གཟིར་བར་གྱུར། 33

མཐྲི་རིས་ས་དང་གདུངས་ཅན་འཇིག་རྟེན་བྱིས་དང་ལང་ཚོ་དང་།
རྒྱན་དང་འཆི་དུས་མངལ་གྱི་མལ་སྟན་ལ་བརྟེན་དག་ལ་ཡང་།
ལུས་དང་ལྡན་པ་རྣམས་ཀྱི་སྔོན་གྱི་ལས་ནི་ལྡན་ཅིག་དུ།
འགྲོ་བ་འདོད་པ་རྣམ་པ་ཀུན་ཏུ་བརླག་པར་འོང་མི་འགྱུར། 34
དེ་ལྟར་སྒྲ་གཅན་འཛིན་ནི་སྔོན་གྱི་ལས་ལྡན་པ།
ངོ་མཚར་གཏམ་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པ་དག།
ངེས་པར་བཟུང་ནས་དགེ་སློང་ཚོགས་དང་ས་སྐྱོང་དང་།
སྐྱེ་བོ་དང་བཅས་ཡ་མཚན་རབ་ཏུ་རྒྱས་པར་གྱུར། 35

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་སྒྲ་གཅན་འཛིན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱད་ཅུ་ཙ་གསུམ་པའོ།།

आभीरभार्य्या भद्राख्या हरिण्या सुतया सह ।
नगराभिमुखी भद्रा तक्रं विक्रेतु माययौ ॥ ३० ॥

तत्सुता तरुणी भारं निजं गुरुतरं घटम् ।
दत्त्वा जनन्यै वृद्धायै लघुं जग्राह तद्घटम् ॥ ३१ ॥

वाहिता योजनं सार्द्धं जननी जरती कृशा ।
सा दुहिचा पुरोपान्ते परिश्रान्ततराभवत् ॥ ३२ ॥

आभीरतरुणी सेयं मातुः क्लेशाद् यशोधरा ।
षट्क्रोशतुल्यवर्षेण गर्भभारेण पीड़िता ॥ ३३ ॥

दिवि भुवि फणिलोके शैशवे यौवने वा
जरसि निधनकाले गर्भशय्याश्रये वा ।
सहगमनसहिष्णोः सर्व्वथा देहभाजां
नहि भवति विनाशः कर्म्मणः प्राक्तनस्य ॥ ३४ ॥

इति राहुलपूर्व्वकर्म्मयुक्तां
कथितां चित्रकथां तथागतेन ।
अवधार्य्य बभूव भिक्षुसङ्घः
क्षितिपालः सजनश्च विस्मयाढ्यः ॥ ३५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
राहुलकर्म्मप्लुत्यवदानं त्र्यशीतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བཞི་པ།

གང་གིས་ལེགས་པའི་ཡིད་ཅན་རྣམས་ཀྱིས་ཡིད་ནི་ཀུན་དགའ་
མཉེར་ལྡན་རིག་པར་བྱེད།
གང་གི་མཐུ་ཡིས་གདུག་རྣམས་ཀྱི་ཡང་ཡོངས་སུ་འདྲིས་པའི་
སྨན་པ་ཞི་བར་བྱེད།
གང་གི་བསོད་ནམས་གྲངས་མེད་གྲངས་ཀྱི་ཚིག་གི་ཚད་ཀྱི་ཡུལ་དུ་མ་འགྱུར་བ།
འགྲོ་བ་ཐུལ་བའི་མགོན་པོ་རབ་རྒྱས་མཐུ་ལྡན་དེ་ཉིད་གཅིག་པུ་འབྱུང་བ་ཡིན།། 1

མཉན་ཡོད་དུ་སྡོད་ཁྱིམ་ན་གནས། དཔལ་ལྡན་ཉིན་དུ་བདུན་པ་ཡི།
ཚོང་མ་མིག་བཟང་མ་དགའ་ས། འདོད་པའི་བུ་ནི་བཙས་པར་གྱུར།། 2

སྐྱེས་པ་ཙམ་ན་རབ་འཕྲུངས་པ། ལྷ་ཡི་རིན་ཆེན་གྱིས་བརྒྱན་པའི།
ཁྲི་ཕྱུན་རང་གི་བསོད་ནམས་ཀྱིས། མཚན་ལ་གང་ཞིག་ཉེར་འཁོད་མཛེས།། 3

དེ་སྐྱེས་ཚེ་ན་རྒྱ་འཛིན་ནི། སྐད་ཞིང་འཛམ་པའི་སྒྲ་དབྱངས་ཅན།
སྦྲང་རྩི་[illegible]བེབས་པས་སེ་དོག་དང་། བཙས་པའི་རིན་ཆེན་ཆར་པ་ཕབ།། 4

རྫོགས་པའི་གཞོན་ནུ་ལུས་ངར་གྱིས། གདེར་ནི་བརྒྱ་ཡིས་བསྐོར་བ་དེ།
སྦྲང་རྩིའི་ཆར་པ་འབབ་པ་ལས། སྦྲང་རྩིའི་དབྱངས་ཞེས་བྱ་བར་གྱུར།། 5

རིན་ཆེན་ཆར་འབེབས་དེ་ཡིས་ནི། ས་ལ་དབུལ་པ་མེད་ཉིད་བསྒྲུབས།
ཡང་དུའང་བྱ་རོག་དཀར་པོ་བཞིན། སློང་བ་པོ་ནི་མཐོང་མ་གྱུར།། 6

चतुरशीतितमः पल्लवः ।

औचित्येन करोति यः सुमनसामानन्दसान्द्रं मनः
क्रूराणामपि शीर्यते परिचितं यस्यानुभावोत्तमः ।
एकः कोऽपि स जायते जितजगन्नाथप्रभावोद्भवः
पुण्यं यस्य न याति मानकलनां निःसंख्यसंख्यापदैः ॥ १ ॥

श्रीमान् पुरा सुधीरस्य श्रावस्त्यां गृहमेधिनः ।
जायाया मौक्तिकः सूनुः सुनेत्राया मजायत ॥ २ ॥

जातमात्रः समुद्भूते दिव्यरत्नविभूषिते ।
उपविष्टः स्वपुण्याङ्के यः पर्यङ्के व्यरोचत ॥ ३ ॥

तस्य जन्मनि रत्नानि पुष्पैः सह पयोधराः ।
मधुरस्निग्धनिर्घोषा ववृषु र्मधुवर्षिणः ॥ ४ ॥

पूर्णः कुमारः कौवेरैः स निधानशतैर्वृतः ।
मधुवृष्टिप्रपतनान्मधुरस्वर इत्यभूत् ॥ ५ ॥

तेनादरिद्रतां नीते भुवने रत्नवर्षिणा ।
श्वेतकाक इव क्वापि नैवादृश्यत याचकः ॥ ६ ॥

ནམ་ཞིག་དགེ་སློང་ཀུན་དགའ་བོ། ཇབ་ནི་རབགས་པའི་ལས་གནས་པ།
ཁྱིམ་དུ་འགྲོར་པ་དེ་མཐོང་ནས། མདུན་དུ་པ་ལ་རབ་རྫིས་ང་།། 7

ཡབ་གཅིག་དྲི་མེད་དགེ་བ་ཅན། འདི་ཡི་བརྟུལ་ཞུགས་འདི་ནི་ཅི།
གང་ཞིག་ཡང་དག་མཐོང་ཉིད་ན། འཕྲུལ་ལ་ཡིད་ནི་དང་བར་བྱེད།། 8

ཅེས་པ་བུ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། ཤིན་ཏུ་བརྟན་པས་དེ་ལ་སྨྲས།
བུ་གཅིག་སྙིང་སྟོབས་རབ་གསལ་འདི། ཞི་བའི་བརྟུལ་ཞུགས་ཡོངས་སུ་འཛིན།། 9

གང་ཞིག་འཁོར་བའི་མཚོ་ལ་མཐའ་དག་འགྲོ་བའི་ཟམ་སྟེགས་དྲང་པོ་དང་།
ཁྲོ་བའི་ནད་ཀྱིས་གསོ་བྱེད་དག་དང་ཞི་བའི་བདུད་རྩིའི་སྙིང་པོས་སྲིད་
འཛིག་དང་།
སྐྱོན་གྱི་ཚོགས་ཀྱི་མུན་པ་ཞི་བྱེད་ཉི་མ་སངས་རྒྱས་འོད་ཟེར་རབ་རྒྱས་པ།
དེ་ཡི་ཉན་ཐོས་ཞི་བའི་ཡིད་ཅན་རྣམས་ཀྱི་མཆོག་གྱུར་འདི་ནི་ཀུན་དགའ་བོ།། 10

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་མདོར་བརྗོད་དག ཐོས་པ་ཉིད་ནི་སྣང་རྩིའི་རྒྱུངས།
སྤུར་སྐྱེ་དགེ་བ་རྒྱས་པ་ལས། བ་སྤུ་རབ་དུ་ལངས་པར་གྱུར།། 11

དེ་ནས་ཀུན་དགའ་དང་བཅས་དེས། གུས་པས་མངོན་ཕྱོགས་ཕྱག་འཚལ་ཏེ།
དགེ་སློང་ཚོགས་བཅས་ཀུན་དགའ་བོ། ལོངས་སྤྱོད་ཀུན་གྱིས་རབ་དུ་མཆོད།། 12

དེ་ནས་འདུན་པས་དེ་ཉིད་དང་། ལྷན་ཅིག་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་སོང་ནས།
འོད་ཟེར་ཕུང་པོ་བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་མཐོང་གྱུར་ཏེ།། 13

स कदाचिद् गृहायातं प्रशान्तेर्यापथस्थितम् ।
आनन्दं भिक्षुमालोक्य पप्रच्छ पितरं पुरः ॥ ७ ॥

तात व्रतविशेषोऽस्य कोऽयं वैमल्यशालिनः ।
यस्य सन्दर्शनेनैव मनः सद्यः प्रसीदति ॥ ८ ॥

पुत्रस्येति वचः श्रुत्वा सुधीर स्त मभाषत ।
पुत्र सत्त्वप्रकाशोऽयं शान्तिव्रतपरिग्रहः ॥ ९ ॥

यः सेतुः सरलः समस्तजगतां संसारघोरार्णवे
क्रोधव्याधिचिकित्सकः शमसुधासारेण तृष्णापहः ।
दोषोत्सिक्ततमोविरामतरणि र्बुद्धः प्रबुद्धद्युतिः
तस्य श्रावक एष शान्तमनसा मानन्दनामाग्रणीः ॥ १० ॥

अभिधानं भगवतः श्रुत्वैव मधुरस्वरः ।
बभूवोद्भूतरोमाञ्चः प्राग्जन्मकुशलोदयात् ॥ ११ ॥

आनन्द मथ सानन्दः प्रणम्य प्रणयोन्मुखः ।
स भिक्षुसङ्घैः सहितं सर्व्वभोगै रपूजयत् ॥ १२ ॥

औत्सुक्यात् सह तेनैव गत्वा जेतवनं ततः ।
ददर्श स त्विषां राशिं भगवन्तं तथागतम् ॥ १३ ॥

པདྨ་འདབ་མ་རྒྱས་པའི་སྤྱན། མཆོག་གི་མཚན་ཉིད་དག་གིས་མཚན།
མཛེས་ཤིང་ཡིད་འོང་རྣམ་པ་ཅན། གསེར་གྱི་དཔལ་བཞིན་དུ་མདོག ‖ 14

བདུད་རྩིས་བྲུགས་པ་ལྟ་བུ་སྟེ། མཐོང་ནས་དགའ་བ་རབ་རྒྱས་པ།
དེ་ཡི་སྤྱི་བོར་འཁྲིང་བ་བཞིན། དེ་ཡི་ཞབས་སེན་འོད་ཟེར་བླངས ‖ 15

འབད་པས་གསོལ་བ་བདབ་པ་ཡིས། གུས་ལ་མཉེན་གཤིན་བཅོམ་ལྡན་འདས།
དེ་སྐད་དེ་ཡི་ཁང་པར་བྱོན། མཆོད་སྟོན་རབ་ཏུ་བཞེས་པ་མཛད ‖ 16

བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་སྔོན་མཆོད་ནས། རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་དུ་གཤེགས་པའི་ཚེ།
སྐྱེ་བོ་འི་ཚོགས་ནི་རིན་ཅན་གྱིས། སྣང་སྟེའི་དབྱངས་ཀྱིས་ཡོངས་རྫོགས་བྱས ‖ 17

དབུལ་པོ་རྣམས་ཀྱི་ཁྱིམ་ཁྱིམ་དུ། རང་གི་བསོད་ནམས་མ་ཡིན་པས།
རིན་ཅན་ཕུང་པོ་དེས་བྱིན་བ། སྐད་ཅིག་ཉིད་ཀྱིས་སོལ་ཕུང་གྱུར ‖ 18

དེ་ནས་བྱུང་ཚུལ་དེ་ཐོས་ནས། སྣང་སྟེའི་དབྱངས་ནི་སྡུག་བསྔལ་ཞི།
དེ་དག་ལ་སྨྲས་ཁྱོད་ཀྱིས་སྔོན། ཞིགས་བྱས་དག་ནི་ཡོངས་མ་བྱས ‖ 19

བརྩེ་བས་སྦྱིན་པ་མ་བྱིན་ཅིང་། དགེ་འདུན་མཆོད་པ་མ་བྱས་ལ།
བཅོམ་ལྡན་མངོན་པར་མ་མཆོད་པས། འབྱོར་བ་འདི་དག་ཐོབ་མ་ཡིན ‖ 20

དེ་སྐད་ཁྱོད་ཀྱིས་བདེ་གཤེགས་ལ། སོགས་པའི་དགེ་འདུན་མངོན་པར་མཆོད།
ཁྱོད་ལ་ལོངས་སྤྱོད་དག་གི་ཚོགས། ཐམས་ཅད་བདག་གིས་ཕུན་ཚོགས་བགྱི ‖ 21

फुल्लपद्मपलाशाक्षं दिव्यलक्षणलक्षितम् ।
लावण्यललिताकारं हेमतालमिवोन्नतम् ॥ १४ ॥

लिम्पन्त मम्तेनेव तं दृष्ट्वा हर्षनिर्भरः ।
मालामिवाददे मूर्ध्नि स तत्पादनखद्युतिम् ॥ १५ ॥

प्रणयार्थनया तस्य प्रीत्यै प्रणयिवत्सलः ।
गत्वा चकार भगवान् गृहे भोगपरिग्रहम् ॥ १६ ॥

अभ्यर्चिते भगवति प्रयाते जेतकाननम् ।
जनतां रत्नसम्पूर्णां चकार मधुरस्वरः ॥ १७ ॥

निर्जरपुण्ये निर्म्वानां रत्नराशिं गृहे गृहे ।
तद्वितीर्णः क्षणेनैव जगामाङ्गारराशिताम् ॥ १८ ॥

तद्वृत्तान्त मथाकर्ण्य दुःखितो मधुरस्वरः ।
तामुवाच पुरा नैव भवद्भिः सुकृतं कृतम् ॥ १९ ॥

अदत्त्वा दयया दान मकृत्वा सङ्घभोजनम् ।
भगवन्त मनभ्यर्च्य न लभ्यन्ते विभूतयः ॥ २० ॥

सुगतप्रमुखः सङ्घ स्तस्माद् युष्माभि रर्च्यताम् ।
सर्व्वोपभोगसामग्री महं सम्पादयामि वः ॥ २१ ॥

ཞེས་པ་དེས་བསྐུལ་དེ་དག་གིས། དེ་ཡི་ཉེར་བསྒྲུབས་ཚོགས་རྣམས་ཀྱིས།
བཅོམ་ལྡན་དགེ་འདུན་དང་བཅས་པ། ཕྱིག་པ་ཞི་བའི་སྐད་དུ་མཆོད།། 22

དེ་ནས་དེ་ཚེ་དགེ་བ་བྱས། ཕྱིག་པ་ཟད་པ་དེ་དག་གིས།
རང་ཁྱིམ་རབ་འབར་རིན་ཆེན་གྱི། ཕུང་པོས་ཀུན་དུ་གང་བ་མཐོང་།། 23

དེ་ནས་ཚགས་བྲལ་སད་པ་ཡི། སྒྲ་དང་ལྡན་པ་སྣང་ཅིའི་དབྱངས།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་དྲུང་སོང་ནས། རབ་དུ་ཞི་སྐད་རབ་བྱུང་བླངས།། 24

སྔོན་པའི་བཀའ་ཡིས་དུལ་བ་ཡི། བཏུལ་ཞུགས་ཅན་གྱིས་མཉན་ཡོད་བདང་།
སྐྱེ་བོ་འི་མཐའ་ཡི་གཙུག་ལག་ཁང་། རི་བྲག་དག་ལ་བརྟེན་པར་སོང་།། 25

དེར་དེས་བསྒྲུབ་པའི་གནས་བྱིན་པ། རི་བྲག་པ་ཡི་སྐྱེ་བོ་རྣམས།
ཉོན་མོངས་དག་ནི་རབ་ཞིའི་སྐད། དཀོན་ཅོག་གསུམ་ལ་སྐྱབས་སུ་སོང་།། 26

གནས་སྐབས་དེར་ནི་ཆོས་ཀུན་པ། ནགས་ཀྱི་མཐའ་ན་གནས་པ་རྣམས།
དུར་གཞི་ཡ་སྤུགས་ཁས་བླངས་པའི། མི་ནི་ཚོལ་བ་དག་ལ་ཞུགས།། 27

ཕྲམ་ཅན་གྱིས་རབ་བསྟན་པའི། གཙུག་ལག་ཁང་དེར་དེ་དག་འོངས།
གཏྲའི་སྐྲ་ལ་འདུས་པ་སི། དགེ་སློང་དགེ་འདུན་ཚོགས་རྣམས་བཅིངས།། 28

ཡ་སྤུགས་སྐད་དུ་དགེ་སློང་ནི། གཅིག་ཉིད་ཁོ་ན་བདག་ཅག་འདོད།
ཆོས་ཀུན་ཚོགས་ཀྱིས་འདི་བརྗོད་ཚེ། དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་རིམ་པས་སྨྲས།། 29

इति ते प्रेषितास्तेन सम्भारै स्तदुपाहृतैः ।
ससङ्घ मंहसः शान्त्यै भगवन्त मपूजयत् ॥ २२ ॥

ततस्ते कृतकल्याणा स्तत्क्षणक्षीणकल्मषाः ।
ददृशुः स्वगृहं दीप्तैः सम्पूर्णं रत्नराशिभिः ॥ २३ ॥

ततः प्रवृद्धवैराग्यः प्रशान्त्यै मधुरस्वरः ।
प्रव्रज्या माददे धीमान् गत्वा भगवतोऽन्तिकम् ॥ २४ ॥

स शास्तुः शासनात्त्यक्त्वा श्रावस्तीं नियतव्रतः ।
जगाम जनपर्यन्तं विहारं कर्वटाश्रयम् ॥ २५ ॥

दत्तशिक्षापदस्तेन तत्र कार्वटिको जनः ।
रत्नत्रयं क्लेशविषप्रशान्त्यै शरणं ययौ ॥ २६ ॥

अस्मिन्नवसरे चौराः काननान्तनिवासिनः ।
उक्तं दुर्गोपहाराय नर मन्वेष्टु माययुः ॥ २७ ॥

ते तं विहारमासाद्य पिशुनेन प्रदर्शितम् ।
बबन्धु भिंक्षुसङ्घातं गण्डीशब्दसमागतम् ॥ २८ ॥

एक एवोपहाराय भिक्षुरस्माक मीप्सितः ।
इत्युक्ते चौरचक्रेण जगदु भिंक्षवः क्रमात् ॥ २९ ॥

ཡ་ཤུགས་དོན་དུ་བདག་ཐུང་ལ། དགེ་སློང་ཐམས་ཅད་བདང་བར་མཇོད།
ཅེས་པ་ཐན་རིམ་གྱིས་བརྗོད་ཅིང་། སྤྲང་རྫིའི་དབྱངས་ཀྱིས་རབ་སྨྲས་པ༎ 30

ང་ཉིད་ཁོ་ན་ཡ་ཤུགས་དོན། དགེ་འདུན་ཐམས་ཅད་རྣམ་པར་སྤོང་།
ཞེས་པ་ཐོས་ནས་དེ་དག་གིས། རྣམ་པ་མཆོག་ལྡན་དེ་བཟུང་སོང་༎ 31

གསོད་པར་ཆས་པ་དེ་དག་གིས། བཅིངས་ཁྲིར་རྣམ་འགྱུར་བློ་མེད་དེས།
དུ་ཐའི་གནས་ནི་ནགས་ནང་དུ། ཤིན་དུ་འཇིགས་སུ་རུང་བ་མགྲོན༎ 32

དེ་ཡང་དུས་མཐའི་སྤྲིན་གྱིས་བཞིན། གདོང་མ་ལ་ནི་བཤུར་བྱས་པའི།
མ་དེ་སྤྲེ་ཕོ་རགས་པ་ཡི། དུག་དུ་ཡ་ཤུགས་དག་གིས་གང༎ 33

དཔའ་བོས་བན་དུ་ཇི་བ་ཡི། རང་བཞིན་མི་རྟོག་འཁྲེང་སྤྲོས་བཞིན།
རུ་རུའི་ཁྲག་གི་ཐེར་མ་བརྒྱ། ཞབས་ཀྱི་ཇོ་ལ་ཆགས་པས་ཁྱབ༎ 34

ག་ཤིན་ཇེས་མི་རྟོག་རྒྱས་པ་ཡི། སློ་ལ་མཆོད་པ་བྱས་པ་བཞིན།
དྲིལ་བུའི་སྒྲོན་དུ་འཕྱང་བ་ཡི། དཔའ་བོ་འི་མགོ་ཡིས་ཡོངས་སུ་བསྐོར༎ 35

རི་ཁྲོད་མ་ཡི་ཀང་བཀོད་པས། སེན་རྩི་རབ་དུ་ཆགས་པ་བཞིན།
མི་ཁྲག་གསར་པས་བསྒོས་པ་ཡི། བཀས་དག་གིས་ནི་དམར་པའི་འོད༎ 36

ཡ་ཤུགས་མ་ཐོབ་ཇོན་པ་ཡི། བུད་མེད་རྣམས་ཀྱིས་གུས་པ་ཡིས།
རང་གི་བུ་བཙན་སྙིང་གི་ནི། པདྨ་ཁྲམས་ཀྱི་ཁ་ཁྲིར་བཀང་༎ 37

मा मादायोपहारार्थं मुच्यन्तां सर्व्वभिक्षवः ।
उक्ते वृद्धैः क्रमेणेति प्रोवाच मधुरस्वरः ॥ ३० ॥

अहमेवोपहारार्हः सङ्घः सर्व्वो विमुच्यताम् ।
इत्याकर्ण्य वराकारं ते समादाय तं ययुः ॥ ३१ ॥

बद्धः स वधसन्नद्धे र्नीत स्तै र्निर्विकारधीः ।
दुर्गायतन मत्युग्रं ददर्श गह्वरोदरे ॥ ३२ ॥

बलिसञ्जीकृतैः स्थूलशकलै र्माहिषैश्च तत् ।
कल्पान्तमेघैः स्वसुतोपहारैरिव पूजितम् ॥ ३३ ॥

व्याप्तं पादशिलासक्तरुधिरक्तच्छटाशतैः ।
स्रग्दामभि र्भटोत्सृष्टै र्बन्धुजीवमयैरिव ॥ ३४ ॥

घण्टाग्रालम्बिभि र्वीरशिरोभिः परिवारितम् ।
कृतहाराचनं फुल्लकमलैरिव मृत्युना ॥ ३५ ॥

प्रत्यग्रनररक्ताक्तैः सोपानै रुणप्रभम् ।
शवरीचरणन्याससंसक्तालक्तकैरिव ॥ ३६ ॥

असम्भ्रान्तोपहाराभिः किरातस्त्रीभिरादरात् ।
स्वशिरशूल्कृतकृत्यप्रकीर्णप्राङ्गनवेदिकम् ॥ ३७ ॥

དེ་མཐོང་སྡིག་ཆགས་རྣམས་ཀྱི་ཚོགས། སྡུག་བསྔལ་ངལ་དུབ་བཟོད་དཀའ་བཞིན།
འཁོར་བ་ཆགས་བྲལ་སྙིང་པོ་ཅན། སྣང་ཙི་དབྱངས་ཀྱིས་རབ་ཏུ་བསམསས॥ 38

དེ་ནས་ཉོན་མོངས་ཐམས་ཅད་ནི། ཡོངས་ཟད་དགྲ་བཅོམ་མངོན་དུ་གྱུར།
ཁམས་གསུམ་པ་ལས་ཆགས་བྲལ་དེ། དགའ་དང་མི་དགའ་མཚུངས་པར་གྱུར॥ 39

དེ་བསམས་གང་གི་དྲིན་གྱིས་ནི། འཁོར་བ་མེད་པ་བདེ་བའི་ས།
ཀྱི་མ་བདག་གིས་ཐོབ་པ་འདི། སྟོན་པ་སྲིད་པ་གཅོད་པའི་མཐུ॥ 40

སྐྱོངས་པའི་ལྕགས་སྒྲོག་བརྡུན་པ་གཅོད་ཅིང་ལྟ་བའི་རི་མོ་ཉམས་པར་བྱེད།
སྲི་བཟང་སྲིད་པའི་རྒྱ་བོ་སྒྲོལ་ཞིང་སྐྱེ་བའི་ལྷོན་པ་རབ་ཏུ་བྱིན།
གང་དུ་ཀླུ་ངན་མིག་ལ་སྐྱུར་ཡང་མཆི་མ་དག་ནི་མི་འཛིན་པ།
སྟོན་པའི་དྲིན་གྱིས་གདུང་བ་ཞི་བར་གྱུར་པའི་གནས་དེར་རབ་ཏུ་ཐོབ॥ 41

ཅེས་བསམས་སྙིང་སྟོབས་རྒྱ་མཚོ་དེ། རི་བཞིན་གཡོ་བ་མེད་པར་གནས།
ཁྲོ་བས་མཚོན་བླངས་ཆོམ་རྐུན་གྱིས། གསོད་རྟགས་མེ་ཏོག་འཕྲེང་བ་བཅིངས॥ 42

དེ་ལུས་གསེར་གྱི་གཟི་ལྡན་ལས། དེ་དག་རྣམས་ཀྱི་གོས་དག་ཤུས།
གོས་ནི་གཞན་དང་གཞན་བྱུང་བ། དེ་དག་མདུན་དུ་ཕྱུང་པོར་གྱུར॥ 43

སྐབས་དེར་ལྷ་མོ་དེ་ཡིས་ནི། རབ་བསྐྱེད་འབྱུང་པོ་ལྔ་བརྒྱ་ཡིས།
ཆོམ་རྐུན་དག་ནི་ལྔ་བརྒྱ་པོ། རབ་ཏུ་གཡོ་བ་མེད་པར་བྱས॥ 44

स दृष्ट्वा प्राणिसङ्घातं वैशसायासदुःसहम् ।
उद्वेगसारं संसारं प्रदध्यौ मधुरस्वरः ॥ ३८ ॥

ततः साक्षात्कृतार्हत्त्वः सर्वक्लेशपरिक्षयात् ।
त्रैधातुको वीतरागः सोऽभूत् तुल्यप्रियाप्रियः ॥ ३९ ॥

सोऽचिन्तयदहो शास्तुः प्रभावोऽयं भवच्छिदः ।
प्राप्तोऽयं यत्प्रसादेन निःसंसारसुखां भुवम् ॥ ४० ॥

मोहश्छिन्नो निविडनिगडः खण्डिता दृष्टिशैलाः
तीर्णा तृष्णा विषयतटिनी प्रोद्धृता जन्मवृक्षाः ।
प्राप्तं धाम व्यसनशमनं तत्प्रसादेन शास्तुः
यस्मिन् बाष्पं दधति न पुनः शोचनालोचनानि ॥ ४१ ॥

इति ध्यात्वा स सत्त्वाब्धिस्तस्थौ शैल इवाचलः ।
निबद्धवध्यमालाङ्कः चौरैः क्रोधोद्यतायुधैः ॥ ४२ ॥

तैस्तस्यापहृते वस्त्रे गात्रात् काञ्चनगोत्विषः ।
अन्यदन्यदभूद्दास्य तस्यैव राशिः पुरोऽभवत् ॥ ४३ ॥

अत्रान्तरे समुद्भूतैर्भूतानां पञ्चभिः शतैः ।
सा देवी निश्चलं चक्रे तच्चौरशतपञ्चकम् ॥ ४४ ॥

དེ་དག་མཚོན་གྱི་ཚོགས་ལྷུང་ཚེ། །སྤྲང་རྩི་དབྱངས་ཀྱི་སྒྲ་བོར་ནི།
མཁའ་ལམ་མེ་ཏོག་དག་གི་ཆར། །རིན་ཅན་རབ་ཏུ་མཛེས་པ་བབ། ། 45

དེ་ནས་མཁའ་ལ་འགྲོ་བ་དེ། །ཆོས་ཀུན་རྣམས་ཀྱིས་མཐོང་གྱུར་ནས།
རི་ཡི་མཐུ་ཡི་རིགས་པ་ཡིས། །དེ་ཉིད་ལ་ནི་སྐབས་སུ་སོང་། ། 46

དེ་ནས་བབ་སྟེ་བཟོད་པའི་སྐད། །རྐང་པར་མགོ་བཀོད་དེ་དག་ལ།
ཉེས་བྱས་ཐོང་ལ་ཆོས་ཀྱི་ནི། །དགའ་བར་མཛོད་ཅིག་དེ་ཡིས་སྨྲས། ། 47

དེ་ནས་དེ་དག་ཆགས་བྲལ་སྐྱེས། །སྡིག་པ་བཏང་ནས་འཁོར་བ་ཡི།
འཆིང་བ་ཞི་སྐད་རབ་བྱུང་ནི། །ཀླངས་ནས་དགྲ་བཅོམ་གནས་ཐོབ་གྱུར། ། 48

དེ་ནས་དགྲ་བཅོམ་དེ་དག་དང་། །རི་བྲག་ན་གནས་དེ་དག་བཅས།
སྤྲང་རྩིའི་དབྱངས་ནི་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱི། །ཚལ་དུ་སྟོན་པ་བལྟ་རུ་སོང་། ། 49

ལྷ་ཡི་སྐྱེས་པོས་འོངས་པ་ཡི། ། ཡོངས་སྤྱོད་སྐབས་གསུམ་པས་བསྐུབས་པ།
བདུད་རྩིའི་རོ་ལྡན་འདུ་བྱེད་ཀྱི། །དེར་ནི་དེ་ཡིས་བཅོམ་ལྡན་མཆོད། ། 50

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་དེ་དག་ལ། །ཐར་པའི་ལམ་མཆོག་གསལ་བྱེད་ཅིང་།
དགའ་བའི་དང་བ་བསྐྱེད་པ་ཡི། །ཆོས་ནི་ཕན་སྐད་བཤད་པར་མཛད། ། 51

ཐུ་ནི་བདུད་རྩིའི་སྣོད་ཉིད་ཐོབ། །ཤེས་ནས་ཤིན་ཏུ་བརྟན་པས་ཀྱང་།
ཟིགས་བྱས་ལས་འཁྲུངས་གསེར་གྱི་པད། །བཟུང་ནས་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་དུ་སོང་། ། 52

च्युते तदायुधचये पुष्पवृष्टि र्नभस्तलात् ।
पपात रत्नरुचिरा मधुरस्वरमूर्द्धनि ॥ ४५ ॥

गाहमानमथ व्योम तं विलोक्य च दस्यवः ।
स्पृष्टा स्तस्यानुभावेन तमेव शरणं ययुः ॥ ४६ ॥

सोऽवतीर्य्य ततः शान्त्यै चरणन्यस्तमस्तकान् ।
धर्मे रमध्वं संत्यज्य दुष्कृतानीत्युवाच तान् ॥ ४७ ॥

अथ ते जातवैराग्याः प्रव्रज्यां वृजिनोज्झिताः ।
आदायार्हत्पदं प्रापुः संसाराश्रवशान्तये ॥ ४८ ॥

ततस्तैः सहितोऽर्हद्भि स्तैश्च कर्वटवासिभिः ।
ययौ जेतवनं द्रष्टुं शास्तारं मधुरस्वरः ॥ ४९ ॥

तत्र दिव्यजनानीतै र्भोगै स्त्रिदशसाधितैः ।
स सुधारससंस्कारै र्भगवन्त मपूजयत् ॥ ५० ॥

शुद्धप्रसादजननीं भगवान् धर्म्मदेशनाम् ।
हिताय विदधे तेषां मोक्षमार्गाग्रदूतिकाम् ॥ ५१ ॥

सुधीरोऽप्यमृतप्राप्त्यै ज्ञात्वा पुत्रस्य पात्रताम् ।
हेमाङ्कं सुततोत्पन्नं प्राप्य जेतवनं ययौ ॥ ५० ॥

དེ་ཡིས་བདེ་གཤེགས་མངོན་མཆོད་ཅིང་། ཞབས་ལ་ཅོད་པན་གྱིས་གཏུགས་ཏེ།
དེ་ཡི་སྤྱན་ནི་རབ་དང་བས། རབ་ཏུ་ཕྱིས་པ་བཞིན་དུ་གྱུར། 53

དེ་ནས་ཉེ་བར་དགའ་བ་དང་། དེ་ལ་བཅོམ་ལྡན་གྱིས་གསུངས་པ།
ཁྱང་པ་བཀོད་པས་གསེར་གྱི་ནི། པདྨ་འབྱུངས་པར་གྲོང་འགྱུར་རོ། 54

པདྨ་འི་མཆོག་ཅེས་གྲགས་པ་ཡི། ཡང་དག་རྫོགས་སངས་རྒྱས་འགྱུར་དེ།
སེམས་ཅན་ཡང་དག་བསྒྲལ་བྱས་ནས། ཡོངས་སུ་མྱ་ངན་འདའ་བར་འགྱུར། 55

ཀུན་མཁྱེན་བདེན་པ་གཟིགས་པ་ཡིས། དེ་སྐད་བརྗོད་ཚེ་ཤིན་ཏུ་བརྟན།
འགྲོ་བའི་དགེ་ལེགས་བརྟགས་པ་ཡི། ཡིད་ལ་རེ་བ་བསྐྱུང་བར་གྱུར། 56

གུས་པས་བསོད་ནམས་ཕྱག་འཚལ་དུས་སུ་སྲིད་པའ་བིགས་བྱེད་
བཅོམ་ལྡན་སྟོན་པ་ཡི།

ཞབས་ནི་ལེགས་བྱས་ལྡན་པ་གང་གི་མགོ་ལ་བདེ་ལེགས་བྱས་པར་
བསྐྱུང་བྱས་པ།

དེ་དག་ཕྱི་ནས་སྐྱེ་བོ་ས་ཡི་ཐང་དུ་ཆོམ་སྤྱོར་ནུམའི་འོ་མ་ལ།
གཞན་རྒྱལ་དུ་ཉམ་སོ་ཡི་སྟོང་པའི་བཞིན་ནི་ལྷུན་པོ་འི་འཛུམ་དུ་བྱེད་མི་འགྱུར། 57

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་སྣང་རྩི་དབྱངས་ཀྱི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བཞི་པའོ།།

स तेनाभ्यर्च्य सुगतं चरणालीनशेखरः ।
दृष्टा तस्य प्रसादिन्या स संहृष्ट इवाभवत् ॥ ५३ ॥

तत स्तमूचे भगवानासन्नकुशलोदयम् ।
पादन्यासोदितस्वर्णकमलस्त्वं भविष्यसि ॥ ५४ ॥

पद्मोत्तर इति ख्यातः सम्यक्सम्बुद्धतां गतः ।
सत्त्वसन्तारणं कृत्वा परिनिर्व्वाण मेष्यसि ॥ ५५ ॥

सर्व्वज्ञेनेत्यभिहितः सुधीरः सत्यदर्शिना ।
जगत्कल्याणकलनामनोरथ मथाददे ॥ ५६ ॥

भक्त्या यैर्भवभेदिनो भगवतः पुण्यप्रणामक्षणे
शास्तुः स्वस्ति कृतं कृतं सुकृतिभिः पादोपधानं शिरः ।
अङ्के ते जननीजनस्य न पुनस्तृप्तिप्रयुक्ताः स्तन-
स्तन्योत्पानितदन्तशून्यवदनाः कुर्व्वन्ति मृदस्मितम् ॥ ५७ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
मधुरस्वरावदानं चतुरशीतितमः पल्लवः ॥ ० ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་ལྔ་པ།

གང་གིས་མིག་ལ་རྗེས་འཁྲིལ་ཆགས་པའི་ནད།
སྤྱང་བའི་ཇུག་ཏུ་སྐྱོང་ལ་རབ་ཆགས་དང་།
ཡན་ལག་ཀུན་ལ་ཁྱབ་པ་སྡིག་པའི་མཛེ།
འཕྲོག་བྱེད་སྨན་པ་དེ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ།། 1

དེ་ནས་གདམས་མཐར་དེ་བཞིན་གཤེགས། དཀའ་ཐུབ་ནགས་མཐར་
བཞུགས་པ་ཡི།
ཉི་མེད་ཕུགས་ལ་དགེ་སློང་རྣམས། དགེ་མཚན་དག་གིས་བསྐུལ་བས་དྲིས།། 2

བཅོམ་ལྡན་ཅི་སླད་འཇིག་རྟེན་ནི། ཀུན་གྱི་སྡུ་ངན་སེལ་བྱེད་པ།
སྲིད་པའི་ནད་ཀྱི་སྨན་པ་ཁྱོད། ནད་པ་རྣམས་ལ་ལྷག་པར་བྱམས།། 3

དེ་དག་ལ་དེས་གསུངས་པ་བདེན། ལྷག་པར་ནད་པ་ལ་བདག་མཛད།
སྐྱེས་བུ་རྣམས་ལ་ལུས་གཟིར་དང་། མཚུངས་པའི་སྡུ་ངན་ཚོགས་གཞན་མེད།། 4

སྐྱེ་བ་གཞན་རྣམས་དག་ལ་ཡང་། རང་བཞིན་གྱིས་ནི་སྨན་པའི་ས།
ནད་པ་རྣམས་ལ་རྟག་ཏུ་བདག། ཤིན་ཏུ་ཕྱོགས་སུ་ལྷུང་བར་གྱུར།། 5

གྲོང་ཁྱེར་ཤི་བིའི་དབྱངས་དག་ཏུ། སློང་བ་རྣམས་ཀྱི་གཉེན་མཆོག་བཞིན།
བསམ་པ་ཀུན་ལ་རབ་བཞུགས་པ། མི་བདག་ཤི་བི་ཞེས་པ་བྱུང་།། 6

पञ्चाशीतितमः पल्लवः ।

ये रागरोगं नयनानुबन्धं
विद्वेषशूलं हृदयप्रसक्तम् ।
सर्व्वाङ्गसंसर्पितपापकुष्ठं
हरन्ति तेभ्योऽस्तु नमो भिषग्भ्यः ॥ १ ॥

तपोवनान्तविश्रान्तं कथान्तेऽथ तथागतम् ।
भिक्षवः कौतुकाक्षिप्ताः पप्रच्छुः स्वच्छमानसम् ॥ २ ॥

भगवन् भवतः सर्व्वलोकशोकापहारिणः ।
भवार्त्तिभिषजः कस्माद्रोगिणोऽप्यधिकं प्रियाः ॥ ३ ॥

स तानुवाच सत्यं मे रोगिणोऽधिकवल्लभाः ।
कायपीडासमः पुंसां नास्त्यन्यः शोकसञ्चयः ॥ ४ ॥

जन्मान्तरेष्वपि परं प्रकृत्या दैन्यभूमिषु ।
आतुरेष्वेव सततं पक्षपातो ममाभवत् ॥ ५ ॥

नगर्य्यां शिखिघोषायां शिविर्नामा भवन्नृपः ।
प्रविष्टः सत्त्वचिन्तासु सदान्धव इवार्थिनाम् ॥ ६ ॥

ཀུན་དུ་ནད་པ་ཐམས་ཅད་ནི། ཀུན་ནས་བདག་གིས་གསོ་བར་བྱ།
ཞེས་པ་བདེན་པའི་སྙིང་སྟོབས་ཅན། དེ་ཡི་ངེས་པ་དག་ཏུ་འགྱུར།། 7

ནམ་ཞིག་གྲོང་པ་ནད་པ་ནི། ཡུན་རིང་ནད་ཀྱི་གཟིར་གྱུར་པ།
སྨན་ལ་མཆིས་གཞན་དེ་ལ་ནི། མངོན་དུ་ཕྱོགས་ཏེ་གསོ་བར་ཞུས།། 8

དེ་ནས་གསོ་སྤྱད་ས་བདག་གིས། དྲིས་ཚེ་སྨན་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱིས།
རབ་རྒྱས་ནད་ཀྱིས་གཟིར་བ་ལ། ཡུན་རིང་དཔྱད་ནས་རབ་སྨྲས་པ།། 9

ཤིན་ཏུ་སྨི་བའི་ནད་འདི་ཡིས། རྒྱལ་པོ་སྨན་ནི་རྙེད་པར་དཀའ།
སྐྱེས་ནས་བཟོད་ལྡན་སྐྱེས་བུ་ཡི། ཁྲག་གི་དེ་ནི་ཞི་བར་འགྱུར།། 10

དེ་དག་ཐོས་ནས་མི་ཡི་བདག། ཡིད་ནི་སྙིང་རྗེ་རྒྱས་པ་ཡིས།
ཡུན་རིང་ནད་པ་གསོ་བའི་སྐད། དེ་ཡིས་བསྟན་པ་ཡང་དག་བསམས།། 11

བྲིས་པའི་ཚེ་ཡང་བདག་ལ་ནི། ནམ་ཡང་གང་ཡང་ཁྲིམ་བྱུང་།
བདག་ནི་མངལ་ན་གནས་ཚེ་ཡང་། མ་ནི་ཁྲི་བ་སྤྲངས་པར་གྱུར།། 12

དེ་སྐད་ཁྲི་མེད་འཇིག་རྟེན་ན། བདག་ལྟ་བུ་ཡང་ཡོད་མ་ཡིན།
བདག་གི་ཁྲག་གི་རྒྱུན་ཉིད་ཀྱིས། འདི་ཡི་ནད་ནི་ཞི་བར་འགྱུར།། 13

དེ་ལྟར་སྨྲོར་བའི་བློ་གྲོས་ཀྱིས། རྗེས་འབྲང་ཀུན་གྱིས་བཟློག་གྱུར་ཀྱང་།
རྒྱལ་པོས་མགོ་ལས་བྱུང་བ་ཡི།། རང་ཁྲག་དག་ཏུ་དེ་ལ་བྱིན།། 14

सर्व्वे सर्व्वेच रोगार्त्ता श्चिकित्स्याः सर्व्वथा मया ।
इत्यभूत् सततं तस्य सत्यसत्त्वस्य निश्चयः ॥ ७ ॥

कदाचिदातुरः पौरै श्चिररोगनिपीड़ितः ।
तं ययाचे समभ्येत्य चिकित्सा मार्त्तवत्सलम् ॥ ८ ॥

स्वास्थ्याय तस्य भिषजः पृष्टाः सर्व्वे महीभुजा ।
प्रवृद्धव्याधिवैधुर्य्यं विचार्य्य चिरमूचिरे ॥ ९ ॥

दुर्लभं भेषजं राजन् रोगस्यास्य गरीयसः ।
आजन्मक्षमिणः पुंसः शोणितेनैष शाम्यति ॥ १० ॥

एतदाकर्ण्य नृपतिः करुणाकीर्णमानसः ।
अचिन्तयत्तदादिष्टं स्वास्थ्याय चिररोगिणः ॥ ११ ॥

बालस्यापि न मे कोपः कदाचिदभवत् क्वचित् ।
मयि गर्भस्थितेऽप्यासीज्जननी क्रोधवर्जिता ॥ १२ ॥

तस्मादक्रोधनः कश्चिल्लोकेऽस्मिन्नास्ति मद्विधः ।
ममैव रक्तपूरेण व्याधिरस्य प्रशाम्यति ॥ १३ ॥

इत्युद्यतमतिः सर्व्वै र्वार्य्यमाणोऽनुजीविभिः ।
सदा शिरोद्भवं तस्मै ददौ राजा स्वशोणितम् ॥ १४ ॥

དེ་ནས་ཟླ་བ་དྲུག་གི་ནི། ཁྲག་གིས་ནད་པ་བསོས་པར་གྱུར།
ས་བདག་རིད་པ་ལ་ཕྱུས་ནས། བསམ་པ་ཡོངས་སུ་རྫོགས་དེ་སོང་།། 15

དེ་ནས་ནས་ཞིག་ས་སྐྱོང་བུ། ཕན་པ་ཚོལ་ལ་ངལ་དུབ་ནི།
བསྙེན་ལས་ཉམས་པ་གསལ་བྱེད་པ། གཞོགས་སྐམ་ནད་ནི་བྱུང་བར་གྱུར།། 16

སྔོན་གྱི་ལས་ཀྱི་རྣམ་སྨིན་ལས། རྣམ་པར་བཟློག་པའི་རང་བཞིན་འདི།
ནད་མེད་རྣམས་ལ་ཁ་ཟས་མེད། དཔལ་ལྡན་རྣམས་ནི་ནད་དང་འགྲོག།། 17

དེ་ནས་སྨན་པ་མཆོག་རྣམས་ཀྱིས། སྨན་པ་སྦྱོང་གིས་ལེགས་བསྒྲུབས་པ།
ཀུན་གྱི་སྙིང་པོ་ཞེས་པའི་མར། དེ་ནི་བསོས་སླད་ཉེ་བར་བསྟེན།། 18

རྫས་ཀུན་གྱི་ནི་སྙིང་པོ་བླངས། འདབ་ཆགས་ཤང་ཤང་དག་གི་ནི།
ཁྲུས་ཀྱི་རྩ་ཡི་ཐང་དང་ལྡན། འབད་པ་ཆེན་པོས་ཕྱུན་མར་ནི།། 19

བཅུ་གཉིས་ལོ་ཡིས་ལེགས་པར་གྲུབ། གཞོན་ནུ་འཐུང་བར་བརྩོན་པ་ན།
ནད་ཀྱིས་གཟིར་བའི་རང་སངས་རྒྱས། ཅི་སྟེ་དེ་ལ་སློང་དུ་འོངས།། 20

ཀུན་གྱིས་བཟློག་པར་གྱུར་མོད་ཀྱང་། གཞོན་ནུ་སྙིང་སྟོབས་རྒྱ་མཚོ་ཡིས།
ཀུན་གྱི་སྙིང་པོ་ཕན་པའི་མར། ཐམས་ཅད་དེ་ལ་གུས་པས་བྱིན།། 21

དེ་ནས་རང་སངས་རྒྱས་བསོས་ཏེ། རབ་དང་སྨོན་ལམ་ལྡན་པ་ཡིས།
གཞོན་ནུ་དག་ནི་བསོས་པར་བསྒྲུབས། དམ་པ་བསྙེན་པ་བདུད་རྩི་ཡིན།། 22

रक्तेन स्वास्थ्यमायातः षड्भिर्मासै रथातुरः ।
जगाम परिपूर्णाशः क्षणमामन्त्र्य भूपतिम् ॥ १५ ॥

ततः कदाचिद् भूपालसूनो र्व्यायामशीलनात् ।
पार्श्वशोकक्षयाशंसी प्रादुरासीद्धितैषिणः ॥ १६ ॥

विपरीतस्वभावोऽयं विपाकः पुण्यकर्म्मणाम् ।
स्वस्थानामशनं नास्ति श्रीमतां रोगसङ्गतिः ॥ १७ ॥

उपदिष्टं ततस्तस्य स्वास्थ्याय भिषजां वरैः ।
सहस्रपाकसंसिद्धं सर्व्वसाराभिधं घृतम् ॥ १८ ॥

सर्व्वद्रव्यात्तसारेण जीवञ्जीवस्य पक्षिणः ।
स्नानाम्बुक्वाथयोगेन घृतं यत्नेन भूयसा ॥ १९ ॥

सिद्धं द्वादशभिर्वर्षैः कुमारे पातुमुद्यते ।
प्रत्येकबुद्धः शोकार्त्तस्तद् याचितु मथाययौ ॥ २० ॥

सर्व्वैं र्निवार्य्यमाणोऽपि कुमारः सत्त्वसागरः ।
भंक्त्वा सर्व्वं ददौ तस्मै सर्व्वसारघृतं हितम् ॥ २१ ॥

स्वस्थः प्रत्येकबुद्धोऽथ प्रसन्नः प्रणिधानवान् ।
कुमारं विदधे स्वस्थमच्युतं साधुसेवनम् ॥ २२ ॥

པན་པ་ཚོལ་བ་རྒྱལ་པོའི་བུ། དེར་ནི་ཚེ་རིང་ང་ཉིད་གྱུར།
རང་བཞིན་གྱིས་བདག་ནད་པ་ཡི། གདུང་བ་ཞི་བར་བྱེད་ལ་དགའ། ། 23

ཞེས་པ་ཐོས་ནས་རྒྱལ་ང་ལ། དགེ་སློང་ཀུན་གྱིས་སྨྲར་དྲིས་པ།
དེ་དག་ལས་ནི་ཅི་ཞིག་གིས། མཚུངས་པར་ནད་ཀྱང་བསོས་པར་གྱུར། ། 24

ཅེས་དྲིས་བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་དྲིས། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་དེར་གསུངས་པ།
བ་ར་ཎ་སི་དག་ཏུ་སྔོན། ས་ཡི་བདག་པོ་ཚངས་བྱིན་བྱུང་། ། 25

དེ་ཡི་བུ་གཉིས་དགའ་བོ་དང་། ཉེ་དགའ་ཞེས་པ་དག་ཏུ་གྱུར།
བུ་བོ་གྲགས་པའི་ཁྲིད་པར་གཅེར། རི་གཞིར་གཞན་ནི་རྒྱལ་སྲིད་འདོད། ། 26

དེ་ནས་ཉེ་དགས་དབེན་པར་ནི། གྲོགས་པོ་ཁ་གསག་ཅན་ཞེས་པ།
ཨུ་ཐབ་ཡི་མཆོད་སྦྱིན་མཁས། མདུ་ར་ན་འདོན་གྱི་བུ་ལ་སླས། ། 27

བདག་གི་སྤྲུན་ཟླ་བུ་བོ་འདི། སྐྱེ་བོ་དགའ་བ་དེ་དག་སྐྱོང་།
གྲགས་པ་བརྗོད་པས་སྐྱེ་བོ་ལས། རྒྱལ་སྲིད་དག་ནི་ཐོབ་པར་གྱུར། ། 28

བདག་ནི་སྐྱེ་བོ་ཀུན་གྱི་སྤྱངས། ཉམས་ཤིང་སྐལ་བ་མེད་པར་གྱུར།
དབེན་པར་ཤི་བ་བསྡུགས་པར་འོས། སྨད་པར་གྱུར་པས་འཚོ་བ་མིན། ། 29

ཁྱོད་ཀྱི་སྤྲུན་ཟླ་བུ་བོ་ཉིད། མདུན་ན་འདོན་དུ་རིམ་པར་འགྱུར།
ཕྱུ་ཅག་མཚུངས་པའི་སྡུག་བསྔལ་ཅན། དགོན་པ་དག་ཏུ་འགྲོ་བར་འོས། ། 30

हितैषी राजपुत्रोऽसावहमेव तदाभवम् ।
रोगिणामार्त्तिशमनं स्वभावेनैव मे प्रियम् ॥ २३ ॥

इति श्रुत्वा जिनं सर्व्वे पप्रच्छुर्भिक्षवः पुनः ।
कर्म्मणा केन तौ तुल्यरोगौ स्वास्थ्यमुपागतौ ॥ २४ ॥

इति तैर्भगवान् पृष्टः सर्व्वज्ञस्तानभाषत ।
ब्रह्मदत्तः क्षितिपति र्वाराणस्यामभूत् पुरा ॥ २५ ॥

नन्दोपनन्दनामानौ तस्य पुत्रौ बभूवतुः ।
ज्येष्ठः कीर्त्तिविशेषार्थी राज्यकामस्तथापरः ॥ २६ ॥

उपनन्दस्ततः प्राह पुरोहितसुतं रहः ।
आथर्व्वयोगकुशलं वयस्यं कुहनाभिधम् ॥ २७ ॥

एष ज्येष्ठो मम भ्राता जनरञ्जनतत्परः ।
जनात् कीर्त्तिप्रवादेन राज्यमासादयिष्यति ॥ २८ ॥

निरंशोऽहं भविष्यामि ध्वस्तः सर्व्वजनोज्झितः ।
विजने निधने श्लाघ्यं नावधूतस्य जीवितम् ॥ २९ ॥

ज्येष्ठस्यैव तव भ्रातुः पौरोहित्यं क्रमागतम् ।
अरण्यगमनं युक्तमावयोः समदुःखयोः ॥ ३० ॥

ཞེས་པ་སྨྲ་ངན་སྨྲ་བ་པོ། རྒྱལ་པོའི་བུ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས།
ཁྲོད་ལ་ཕན་པར་བྱའོ་ཞེས། མདུན་ན་འདོན་གྱི་བུ་ཡིས་སྨྲས།། 31

གང་གིས་ཕ་ཡི་མཛུག་དུ་ནི། ནུ་བོ་དེ་ཡིས་རྒྱལ་སྲིད་འཕྲོག།
དེ་ཡི་ཇུས་སྦྱོར་དག་གིས་དེའི། ཕུ་བོ་ཡན་ལག་མ་ཚང་བསྒྲུབས།། 32

དུས་ཀྱི་དེ་ཡིས་རྒྱལ་སྲིད་འཕྲོག། ཡན་ལག་མ་ཚང་སྤུན་ཟླ་ནི།
ཕུ་བོ་ལག་འཁར་ལ་བརྟེན་པ། སྒྲོང་ནས་རྗེས་སུ་འགོར་བར་གྱུར།། 33

དེ་ནས་མདུན་ན་འདོན་གྱི་བུ། མདུན་ན་འདོན་དུ་བཀོད་པ་ལ།
སྨྲས་པའི་སྡིག་པས་འཇིགས་པ་དེས། བྲུགས་རིངས་ཚ་བ་ཐུང་ནས་སྨྲས།། 34

ཀྱེ་མ་རྒྱལ་སྲིད་ལ་ཆགས་ཞིང་། ཆོས་མི་ཤེས་པ་དག་གིས་ནི།
པ་མཚུངས་སྤུན་ཟླ་ཕུ་བོ་ནི། གནས་སྐབས་ངན་པ་འདི་ལ་བཀོད།། 35

སྐད་ཅིག་འཇིག་པའི་བདེ་བ་དྲངས། ཀྱེ་མ་མ་བརྟགས་བྱེད་རྣམས་ཀྱིས།
སྡིག་པ་བྱས་ནས་བདག་ཉིད་ནི། མི་བཟང་སྡུག་བསྔལ་རྣམས་སུ་འཕེན།། 36

ཞེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། མདུན་ན་འདོན་ནི་འཁྲོད་སྐྱེས་པས།
དེ་ལ་སྨྲས་པ་བདག་ཀྱང་འདིར། རྒྱལ་པོ་འགོད་པའི་རིམས་དང་ལྡན།། 37

སྨྲར་ཡང་དེ་ཡི་ཇུས་སྦྱོར་གྱིས། མི་བདག་ཙུ་དེ་བསོས་པར་བྱས།
བསོས་པ་དེ་ལ་རང་གི་ནི། རྒྱལ་སྲིད་ནུ་བོ་དེས་ཀྱང་བྱིན།། 38

श्रुत्वेति राजपुत्रस्य वचः शोकप्रलापिनः ।
हितं तव करोमीति पुरोहितसुतोऽब्रवीत् ॥ ३१ ॥

सोऽथ द्रव्यप्रयोगेन व्यङ्गं तस्याग्रजं व्यधात् ।
येनासौ जनकस्यान्ते कनीयान् राज्यमाप्तवान् ॥ ३२ ॥

प्राप्तराज्यः स कालेन दृष्ट्वा भ्रातरमग्रजम् ।
व्यङ्गं यष्टीकरालम्बं पश्चात्तापं समाययौ ॥ ३३ ॥

पुरोहितसुतं सोऽथ पौरोहित्यनिवेशितम् ।
उवाचोष्णं विनिश्वस्य गूढं पातकशङ्कितम् ॥ ३४ ॥

अहो नु राज्यलोभेन मया धर्म्ममजानता ।
ज्येष्ठो भ्राता पितृसमः प्रापितः कुदशामिमाम् ॥ ३५ ॥

क्षणक्षयि सुखाक्षिप्ताः पापं कृत्वा क्षयेषहो ।
क्षिपन्ति दुःखेष्वात्मान मसमीक्षितकारिणः ॥ ३६ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा जाततापः पुरोहितः ।
तमुवाच ममाप्येष राजन्ननुशयज्वरः ॥ ३७ ॥

तं पुन र्द्रव्ययोगेन स्वस्थं चक्रे नृपात्मजम् ।
स्वस्थाय प्रददौ तस्मै निजराज्यं स चानुजः ॥ ३८ ॥

དེ་ནས་དུས་ཀྱིས་ཉེ་དགའ་དང་། མདུན་ན་འདོན་གྱི་བུ་རིས་ཀྱང་།
རང་སངས་རྒྱས་ལ་མཆོད་བྱས་ནས། ལུས་ཀྱི་མཐའ་ནི་རབ་དུ་ཐོབ།། 39

རྒྱལ་པོའི་བུ་དེ་ས་བདག་ནི། ཤི་བའི་བུ་ཉིད་ཐོབ་གྱུར་དེ།
མདུན་ན་འདོན་གྱི་བུ་དེ་ཡང་། རང་སངས་རྒྱས་ཉིད་རབ་དུ་ཐོབ།། 40

དེ་དག་སྨྲས་པའི་སྡིག་པ་དེས། མཚུངས་པར་ནད་ཀྱིས་ཐེབས་གྱུར་ཅིང་།
ཡན་ལག་ཉམས་པ་གསོ་བྱེད་པས། དེ་དག་བསོས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 41

རྒྱལ་བ་ཡོངས་པས་གཟིར་བ་སྐྱོབ་གཉེན་གྱིས།
རྟག་དུ་སེམས་ཅན་ལ་ཆགས་སྙིང་རྗེའི་སྒྲོ།
འདས་པའི་སྐྱེ་བོ་དང་འབྲེལ་དེ་ཐོས་ནས།
མགུ་བའི་དགེ་སློང་དེ་དག་བདེ་བ་ཐོབ།། 42

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཕན་པ་འཚོལ་བའི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱད་ཅུ་ཙ་ལྔ་པའོ།།

उपनन्दोऽथ कालेन पुरोहितसुतश्च सः ।
कारां प्रत्येकबुद्धाय कृत्वा देहान्तमापतुः ॥ ३९ ॥

शिवेर्भूमिपतेः प्राप राजपुत्रः स पुत्रताम् ।
प्रत्येकबुद्धतां लेभे पुरोहितसुतश्च सः ॥ ४० ॥

तेन तौ गूढपापेन तुल्यरोगौ बभूवतुः ।
व्यङ्गस्य स्वास्थ्यकरणाद् युगपत् स्वास्थ्यमागतौ ॥ ४१ ॥

इत्याकर्ण्यातीतजन्मानुबद्ध-
मापन्नार्त्तित्राणबन्धो जिनस्य ।
नित्यासक्तं सत्त्वकारुण्यरक्तं
हृष्टाः प्रापु र्निर्वृतिं भिक्षवस्ते ॥ ४२ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
हितैष्यवदानं पञ्चाशीतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་དྲུག་པ།

ཆོས་ཀྱི་བསྟན་པའི་རིག་པ་གང་གིས་མཆོད་པ་རྣམས་ལ་
དལ་བར་གནས་རིམ་གྱིས།

མཆོད་བྱའི་ཚོགས་ལ་རབ་འདུད་དལ་བས་ཕྱག་བྱེད་དེ་དག་
མགོ་བ་ཁྲོབ་པར་འགྱུར།

ཧྲིགས་པས་འཕུར་ལས་བློ་གྲོས་རྣམ་པར་མ་བསྒོམས་
སྨོངས་ལས་འོག་ཏུ་འགྲོ་བྱེད་ཅིང་།

གནས་འདས་རྣམས་ལ་འཛིག་རྟེན་འདི་དང་ཕ་རོལ་དེ་ཡང་
རྟག་ཏུ་སྒྱུ་ངན་བཅས།། 1

གནས་པོ་མཆོད་པའི་ཞར་ལ་སྣར། དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་དྲིས་པ་དག།
གནས་པོ་ཆོ་ག་ཇི་བཞིན་སྣར། བཅོམ་ལྡན་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་གསུངས།། 2

བ་ར་ཎ་སིར་དེ་དག་སྔོན། མི་བདག་ཚངས་བྱིན་ཞེས་པ་བྱུང་།
འགྲོ་བ་གང་གི་བསོད་ནམས་མཐུས། ཆོས་ཀྱི་ཀུན་དགའ་ར་བར་གྱུར།། 3

དེ་དུས་གྲོང་མཐའི་ནགས་ཚལ་དུ། སྔོན་གྱི་བསོད་ནམས་མཚན་ཉིད་ལས།
མི་ཡི་སྐད་བརྗོད་ལ་ཞུགས་པ། སློག་ཆགས་བཞི་ནི་བྱུང་བར་གྱུར།། 4

བ་སེན་དང་ནི་རི་བོང་དང་། སྤྲེའུ་དེ་བཞིན་གླང་པོའི་མཆོག།
དེ་དག་དམ་པའི་སྤྱོད་ཚུལ་ཅན། ཕན་ཚུན་མཛའ་བས་བཅིངས་པར་གྱུར།། 5

ནམ་ཞིག་བདེ་ཐོབ་དེ་དག་གིས། གཏམ་གྱི་མཇུག་ཏུ་ཕན་ཚུན་སྨྲས།
ཡུ་སྐྱོལ་གནས་རིམ་མེད་པ་ལ། མཆོད་པ་དག་ནི་ཇི་ལྟར་སྒྲུབ།། 6

षड़शीतितमः पल्लवः ।

वन्दन्ते स्थविरक्रमेण नियतं ये धर्म्मशिक्षाविदः
पूज्यान् पूज्यगुणाः प्रणामविनयैस्ते प्राप्नुवन्त्युन्नतिम् ।
दर्पानुद्धतया विशृङ्खलधिया मोहादधःपातिनां
ज्येष्ठातिक्रमिणामयं स च परो लोकः सशोकः सदा ॥ १ ॥

ज्येष्ठपूजाप्रसङ्गेन भिक्षुभि र्भगवान् पुनः ।
यथावृद्धविधिं पृष्टः सर्व्वज्ञः पुनरब्रवीत् ॥ २ ॥

ब्रह्मदत्ताभिधः पूर्वं वाराणस्यामभून्नृपः ।
यस्य पुण्यानुभावेन धर्म्मारण्य मभूज्जगत् ॥ ३ ॥

तस्य काले पुरोपान्तवने प्राक्पुण्यलक्षणात् ।
प्रवृत्तमानुषालापा श्चत्वारः प्राणिनोऽभवन् ॥ ४ ॥

कपिञ्जलोऽथ शशकः कपि र्गजवरस्तथा ।
ते बभूवुः सदाचाराः स्नेहवद्धाः परस्परम् ॥ ५ ॥

कदाचित् सुखसक्तास्ते कथान्ते जगदु र्मिथः ।
ज्येष्ठक्रमं विनास्माकं कथं पूजा प्रवर्त्तताम् ॥ ६ ॥

དམ་པས་ཇི་ལྟར་གཏན་རིམ་གྱིས། བཀུར་སྟི་དག་ནི་རབ་བསྒྲུབ་པ།
ངེས་པར་དགེ་ལེགས་སྐྱེད་བྱེད་ཅིང་། དགེ་བ་ཉིད་དང་ལྡན་པར་གྱུར།། 7

གཞན་པོའི་ཞེ་སས་མཆོད་བྱ་གང་། ཕྱུ་ལས་རེ་ཞིག་གཞན་པ་སྲུ།
ཞེས་པ་སྨྲ་བ་དེ་དག་ལས། གླང་ཆེན་ཁྲུ་མཆོག་གིས་སྨྲས་པ།། 8

འདབ་མ་ཆེ་རྒྱལ་ནྱ་གྲོ་དྷ། གང་འདི་སྙིང་པར་མཐོང་གྱུར་པ།
འདི་ཡི་ཡལ་འདབ་གསར་པ་དང་། རང་གི་ལུས་ནི་མཚུངས་པ་དྲན།། 9

སྨྲ་ཝ་ཡིས་ཀྱང་དེར་སྨྲས་པ། བདག་ནི་ནགས་ན་རྒྱུ་བ་ཡིས།
ནྱ་གྲོ་དྷ་འདི་རང་ལུས་དང་། མཚུངས་པ་ཞིན་དུ་ཆུང་བ་མཐོང་།། 10

རི་བོང་གིས་ཀྱང་སྨྲས་པ་སྔོན། ནྱ་གྲོ་དྷ་འདི་སོར་ལྔ་པ།
འདབ་མ་གཉིས་ཀྱིས་མཚན་པ་ལ། ཟླ་ཕྲིགས་ཀྱིས་བསྙུན་བདག་གིས་མྱང་།། 11

དེ་དག་རིམ་པས་དེ་བརྗོད་ཚེ། ཕྱི་ནས་བ་མེན་གྱིས་སྨྲས་པ།
བདག་གི་ལྟོ་བའི་ས་བོན་ལས། ཤིང་ཆེན་ནྱ་གྲོ་དྷ་འདི་སྐྱེས།། 12

དེ་ནས་གཞན་རིམ་ཤེས་གྱུར་ནས། དེ་དག་ཕན་ཚུན་མཛའ་བ་ཡིས།
རྗེས་ཞུགས་དགའ་བས་མཆོད་པ་ནི། རྟག་ཏུ་ཞི་ས་ལ་འོས་བྱས།། 13

དེ་ནས་སྲོག་གཅོད་རྐུ་བ་དང་། དེ་བཞིན་བགྲོད་མིན་འགྲོ་བ་དང་།
མི་བདེན་ཆ་མཚུངས་འབྲས་བུ་ནི། སྨྱུར་པོ་ཟ་བདག་ལས་ཀྱང་།། 14

यथाहद्विक्रिया सद्भिः सत्कारोऽथ प्रवर्त्तितः ।
कलयन् किल कल्याणं कुशलायैव कल्पते ॥ ७ ॥

ज्येष्ठः कस्तावदस्माकं योऽर्च्यः स्थविरगौरवात् ।
इति तेषां ब्रुवाणानां जगाद गजयूथपः ॥ ८ ॥

योऽयं जीर्णमहाशाखः पुराणो दृश्यते वटः ।
तुल्यमेनं स्वकायस्य स्मरामि नवपल्लवम् ॥ ९ ॥

मर्कटोऽप्यथ तानूचे वने विचरता मया ।
स्वकायतुल्य एवायं दृष्टः स्वल्पतरो वटः ॥ १० ॥

शशकोऽप्यवदत् पूर्वं मया पपद्वयाङ्कितः ।
अवश्यायलवार्द्रोऽयं लीढः पञ्चाङ्गुलो वटः ॥ ११ ॥

तैः क्रमेणेति कथिते पश्चात्प्राह कपिञ्जलः ।
ममैवायं शकृद्बीजाज्जातः प्राज्यतरो वटः ॥ १२ ॥

अथ ज्येष्ठक्रमं ज्ञात्वा ते सदा गौरवोचिताम् ।
स्नेहानुवृत्तिनिरताः पूजां चक्रुः परस्परम् ॥ १३ ॥

प्राणापहरणाच्चौर्य्यादगम्यागमनात्तथा ।
असत्यान्मद्यतुल्याम्लफलसंभक्षणाच्च ते ॥ १४ ॥

ཆགས་བྲལ་རང་གནས་ཀུན་སྤྱོད་ཀྱི། བསླབ་པས་ལེགས་སྦྱས་ལ་ཆགས་པའི།
བསོད་ནམས་མཐུ་ཡིས་ནགས་ཚལ་ན། གནས་རྣམས་སྤྱོད་ཚུལ་མཚུངས་པར་བྱས།། 15

དེ་ནས་དེ་དག་རྣམས་ཀྱི་མཐུས། རྟག་ཏུ་མི་རྟོག་འབྲས་ལྡན་ཞིང་།
སྤྲིན་ནི་དུས་སུ་ཆར་འབེབས་ཤིང་། ས་ལ་འབྲུ་རྣམས་རྒྱས་པར་གྱུར།། 16

ས་ཡི་ལེགས་བྱས་མཚན་ཉིད་ནི། ངོ་མཚར་ཆེ་བ་དེ་མཐོང་ནས།
ཐམས་ཅད་ས་བདག་ཚངས་བྱིན་གྱིས། རང་གི་བསོད་ནམས་ལས་སྐྱེས་བསམས།། 17

ལོག་པར་ཁེངས་པས་ཆོས་དེ་ལ། ཐུབ་པ་མངོན་ཤེས་ལྡན་བས་སྨྲས།
མི་རྟོག་འབྲས་བུ་རྒྱས་པ་འདི། མི་བདག་ཁྱོད་ཀྱི་དྲིན་གྱིས་མིན།། 18

ནགས་ན་སྤྲེའུ་རི་བོང་དང་། གཉིས་འཐུང་བ་མིན་ལྷན་ཅིག་གནས།
ཡོན་དན་རྒྱས་འདི་དམ་ཆོས་ཀྱི། ངང་ཚུལ་དེ་དག་རྣམས་ཀྱི་ཡིན།། 19

དེ་དག་བརྟུལ་ཞུགས་ལྡ་ཡིས་དག། ཇི་ལྟར་གྲག་པ་མཆོད་བྱེད་ཅིང་།
བ་མེན་ཚོག་གིས་ཐམས་ཅད་ནི། དམ་ཆོས་དམ་ཚིག་དག་ལ་བརྟེན།། 20

ཞེས་པ་ཐུབ་པའི་ཚིག་ཐོས་ནས། མཆོག་ཏུ་གུས་སྐྱེས་རྒྱལ་པོ་ནི།
གྲོང་པ་བཙུན་མོ་བློན་བཅས་པས། བརྟུལ་ཞུགས་ལྡ་པོ་དེ་དག་བསྟེན།། 21

བ་མེན་ང་ཉིད་རི་བོང་ནི། ཤཱ་རིའི་བུ་འོད་ཉིད་དུ་གྱུར།
སྤྲེའུ་མཽ་གལ་གྱི་བུ། གླང་ཆེན་ཁྱུ་བདག་ཀུན་དགའ་བོ།། 22

विरताः सुकृतासक्ताः स्वपदाचारशिक्षया ।
चक्रुः पुण्यानुभावेन तुल्यवृत्तान् वनौकसः ॥ १५ ॥

अथ तेषां प्रभावेण नित्यपुष्पफलद्रुमाः ।
स्फीतशस्याभवद् भूमिः कालवर्षी च वारिदः ॥ १६ ॥

तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं भुवः सकृतलक्षणम् ।
मेने स्वपुण्यजं सर्व्वं ब्रह्मदत्तो महीपतिः ॥ १७ ॥

तं मिथ्यामानसं तुष्टं पश्चाभिज्ञो मुनि र्नृपम् ।
उवाच त्वत्प्रभावेण नायं पुष्पफलोदयः ॥ १८ ॥

कानने कपिना सार्द्धं शशद्विपकपिञ्जलाः ।
स्थिताः सद्धर्म्मशीलानां तेषामेष गुणोदयः ॥ १९ ॥

ते व्रतैः पञ्चभिः शुद्धा यथास्थविरपूजकाः ।
कपिञ्जलगिरा सर्व्वे सद्धर्म्मसमयं श्रिताः ॥ २० ॥

इति श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं राजा जातादरः परम् ।
सपौरान्तःपुरामात्य स्तद्भेजे व्रतपञ्चकम् ॥ २१ ॥

कपिञ्जलोऽहमेवासौ शालिपुत्रः शशोऽभवत् ।
कपिश्च मुद्गरापत्य आनन्दो गजयूथपः ॥ २२ ॥

དེ་དག་ཇི་ལྟར་གྲགས་པའི་རིམ། མཆོད་ལས་ཆོས་ནི་དྲི་མེད་ཐོབ།
དེ་སྐད་ཐུག་དང་མཆོད་པ་ལ། གྲགས་པའི་རིམ་པ་རབ་བརྟག་བྱ།། 23

སྟོན་པའི་འདུལ་བ་ཉེར་བསྟན་དེ་ཐོས་ནས།
གྲགས་པོ་མཆོད་པའི་དགའ་ཐུབ་ཁྲིད་པར་ཐོབ།
ཇི་ལྟར་གྲགས་བཞིན་དགེ་སློང་དེ་དག་གིས།
ཞི་སར་བཙམ་པའི་མཆོད་པ་མདུན་སར་བྱས།། 24

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་བ་མེན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱད་ཅུ་ཙ་དྲུག་པའོ།

ते प्रापुर्धर्म्मवैमल्यं यथाज्येष्ठक्रमार्चनात् ।
तस्मात् प्रणाम पूजासु द्रष्टव्यः स्थविरक्रमः ॥ २३ ॥

श्रुत्वेति शास्तुर्विनयोपदेशं
ज्येष्ठार्चनं प्राप्य तपोविशेषम् ।
सगौरवां पर्षदि भिक्षवस्ते
पूजां यथाद्धिकयैव चक्रुः ॥ २४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
कपिञ्जलावदानं षड्शीतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བདུན་པ།

གང་ཞིག་གཡོ་དང་ཡོངས་ཁྲུབ་དྲིགས་པ་མི་བཟད་གང་
ཡང་གདུག་པ་རྣམ་པར་བཅས།
གང་ཡང་ཕྱིན་དུ་རབ་དྲག་ནག་པོ་བརྩིགས་པ་སྡོམ་པ་ཆོར་ནས་བརྟན་པ་དང་།
གང་དག་གཞན་ཡང་བཟོད་དཀའི་དུག་རྣམས་གསལ་བར་
གཅིག་ཏུ་བྲུས་པ་དེ་དག་གིས།
ཚིག་རྩུབ་དུག་གི་རྣོ་བ་ཉིད་ལ་ཆ་དང་དཔེར་ཡང་མཚུངས་པར་མི་འགྱུར་རོ། ‖ 1

ཁྲིམས་བདག་ཡིད་ཅེས་བྱ་བའི་བུ། ཡོན་ཏན་ལྡན་པ་མཉེན་ཡོད་དུ།
བད་མའི་སྙིང་པོ་འི་འོད་མཚུངས་པ། པདྨ་ཅན་ཞེས་བྱ་བ་བྱུང་ ‖ 2

ཚུལ་ཁྲིམས་ཅན་གྱི་དུལ་བ་དང་། བློ་ལྡན་རྣམས་ཀྱི་དབེན་པ་དང་།
དམ་པའི་ཡོན་ཏན་ལ་གུས་བཞིན། དེ་ཡི་མདུན་དུ་དེ་རབ་བསྐྱེད ‖ 3

གཟུགས་ནི་འདོད་པ་རྒྱས་ལྡན་ཞིང་། ལང་ཚོ་གསར་པ་སྡོམ་ཚེ་དེ།
ལོངས་སྤྱོད་སྡོམ་ལ་ཆགས་བྲལ་བས། ཆགས་བྲལ་ཉིད་ལ་མངོན་ཕྱོགས་གྱུར ‖ 4

དགེ་སློང་བཟོད་པའི་སེམས་ལྡན་པ། ཉི་སྡེ་ཞེས་ནི་བྱ་བ་ཡི།
བསྟན་ལ་རབ་ཞི་བསྔགས་འོས་པ། རབ་བྱུང་དེ་ཡིས་ཡང་དག་བླངས ‖ 5

འཁོར་བའི་ཕྱོགས་ལ་ཆགས་བྲལ་བས། ཆགས་པ་དང་བྲལ་ཟླ་བ་བཞིན།
ལག་ན་ལྷུང་བཟེད་ཆོས་གོས་དང་། ཡང་དག་ལྡན་དེ་མཆོག་ཏུ་མཛེས ‖ 6

सप्ताशीतितमः पल्लवः ।

यत्सार्पं परिसर्पि दर्पविषमं क्रूरञ्च यन्मारकं
यच्चात्युत्कटकालकूटविकटाटोपस्थिरस्थावरम् ।
यान्यन्यानि चितानि दुःसहविषाण्येकीकृतानि स्फुटं
वाक्पारुष्यविषस्य तीक्ष्णतुलया नायान्ति लेशोपमाम् ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां मानसाख्यस्य पद्मगर्भनिभप्रभः ।
अभून्नृपपतेः सूनुर्गुणवान् पद्मकाभिधः ॥ २ ॥

सुशीलस्येव नियमः साधोरिव गुणादरः ।
सोऽवर्धत गृहे तस्य विवेक इव धीमतः ॥ ३ ॥

स नवे यौवनारम्भे रूपकन्दर्पहासिनि ।
भोगोद्योगविरागेण वैराग्याभिमुखोऽभवत् ॥ ४ ॥

उपसेनाभिधानस्य स भिक्षोः क्षान्तिचेतसः ।
शासने प्रशमश्लाघ्यां प्रव्रज्यां समुपाददे ॥ ५ ॥

स पात्रपाणिः संसक्तचीवरः शुशुभे परम् ।
संसारे क्षणवैराग्याद्विरक्त इव चन्द्रमाः ॥ ६ ॥

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་གཅིག་ཕུ་ཉིད། ཞྭོངས་ནི་རྒྱ་ཞིང་འགྲོ་བ་དེ།
གཙུག་ལག་ཁང་དང་དགའ་ཚལ་གྱིས། མཛེས་པའི་བཅོམ་བརླག་དག་ཏུ་ཕྱིན།། 7

དེར་ནི་བསོད་སྙོམས་དོན་གཉེར་དེས། གསར་བུ་ཉིད་ཕྱིར་མ་ཤེས་ནས།
སྨད་འཚོང་ཟླ་བའི་རི་མོ་ཡིས། ཁང་པའི་ཁྱམས་ཀྱི་ནང་དུ་ཞུགས།། 8

ཨུ་ཏྤལ་མིག་ཅན་དེ་ཡིས་ནི། དེ་ལ་སྟོན་དང་བཀུར་སྟི་བྱས།
གཟུགས་ནི་མཐོང་ནས་ཡ་མཚན་ཞིང་། གུས་དང་ལྡན་པས་དེ་ལ་སྨྲས།། 9

ལང་ཚོ་གསར་པ་དང་ལྡན་པ། ཁྱོད་ཀྱི་གཟུགས་ནི་ཡིད་འོང་ལྡན།
སྨུ་ཡི་མིག་ལ་བདུད་རྩི་ཡི། ལོངས་སྤྱོད་སྟོན་པར་བྱེད་མ་ཡིན།། 10

ན་ཚོ་འདི་དང་གཟུགས་འདི་ལ། འདོད་པ་འགལ་བ་ཟླ་སྲུ་ཞིག་གིས།
ཀུན་ནོ་ལ་འོས་ཆགས་བྲལ་གྱིས། སྡུག་བསྔལ་ཡང་དག་ཉེ་བར་བསྟན།། 11

ཆགས་ལྡན་བུད་མེད་ནུ་མ་ནི། རབ་རྒྱས་རག་པས་བདེར་འོས་པ།
ལོངས་སྤྱོད་སྤོད་གྱུར་ཁྱོད་ཀྱི་ནི། ལག་ན་ལྷུང་བཟེད་མཛེས་མ་ཡིན།། 12

ང་ནི་ནུ་མའི་ཁར་གྱིས་ནོན། ཁྱོད་ནི་ལང་ཚོས་རྣམ་པར་གཡོ།
ཡུ་ཅག་གཉིས་ནི་མཛའ་བར་འོས། ད་ནི་བཏུལ་ཞུགས་བཟོད་པར་མཛོད།། 13

གཡོ་སྒྲུས་ཞི་དང་དུལ་བ་གོམས་པས་ལོངས་སྤྱོད་བདུད་རྩི
དག་ལ་ཆགས་མེད་ཅིང་།

མིག་ཡངས་མཚོ་ཡི་ཡལ་འདབ་རབ་བྱུང་རབ་དགའི་དགའ་
སྟོན་རབ་ཏུ་སྤངས་པ་བཞིན།

ततः कदाचिदेकाकी जनचारिकया व्रजन् ।
विहारारामरुचिरां मथुरां माससाद सः ॥ ७ ॥

स तत्र पिण्डपातार्थी नवत्वादनभिज्ञया ।
वेश्यायाः शशिलेखायाः प्रविवेश गृहाङ्गनम् ॥ ८ ॥

सा तस्यासनसत्कारं कृत्वा कुवलयेक्षणा ।
तं जगादादरवती रूपालोकनविस्मिता ॥ ९ ॥

इयन्ते ललिता मूर्त्ति र्नवयौवनशालिनी ।
करोत्यमृतसम्भोगदीक्षां कस्य न चक्षुषोः ॥ १० ॥

अस्मिन् वयसि रूपेऽस्मिन् केन कामविरोधिना ।
कष्टं समुपदिष्टं ते वैराग्यं स्थविरोचितम् ॥ ११ ॥

ललनावसनोत्कर्षकुचस्पर्शसुखोचिते ।
पाणौ सम्भोगपात्रस्य पात्रं तव न शोभते ॥ १२ ॥

अहं कुचभराक्रान्ता त्वं तारुण्यतरङ्गितः ।
उचितैवावयोः प्रीतिः सम्प्रति क्षमतां व्रतम् ॥ १३ ॥

उत्सृज्यायतलोचनाधरदलस्वादप्रमोदोत्सवं
सम्भोगामृतनिस्पृहः शमदमाभ्यासेन शापादिव ।

མཛེས་མའི་ནུ་མ་གཟུར་གཟུམ་གྱིས་མཚན་མཛེས་པས་སྙིང་ལ་
ཆགས་པ་མི་འཛིན་གང་།
སླེ་བོ་འི་ནགས་སུ་ཉོན་མོངས་དམན་པའི་འབྲས་བུ་ཟ་བའི་
དུལ་བ་དེ་ལ་འདུད།། 14

གལ་ཏེ་མཛའ་ལ་བཀམ་ཆགས་ཅན། བདག་གི་ཚིག་འདི་མི་བྱེད་ན།
ཁྱོད་ཀྱི་བཞིན་རས་པདྨ་འདི། སྟོབས་ཀྱིས་མནན་ཏེ་བདག་གིས་བཏུད།། 15

དེ་ཐོས་ཀུན་དུ་སྐྲག་པ་བཞིན། ཉ་བ་བསྒྲིབས་ནས་དེ་ལ་དེས།
སྨྲས་པ་མ་གཅིག་བདག་གིས་ནི། བསྟན་པ་སྲུན་འབྱིན་འོས་པ་མིན།། 16

བདག་ཉིད་ཀུན་གྱིས་ལེགས་སྤྱང་རྒྱན་ལྡན་སྐྱེས་བུ་ལ།
བདེ་གཤེགས་བརྟུལ་ཞུགས་ཅོད་པན་ཉིད་དུ་རབ་གྱུར་ཅིང་།
སྙིང་སྟོབས་དཔལ་ནི་གཙང་བས་ཐིག་ལེ་ཉིད་གྱུར་པ།
ཚུལ་ཁྲིམས་མཚུངས་པའི་རྒྱན་ནི་ཐུང་ཟད་ཡོད་ན་ཡིན།། 17

ཞེས་པ་བརྗོད་ནས་དུལ་ལྡན་དེ། གནོད་པའི་ཟུག་རྔུ་མི་བཟད་ཅན།
མཆོད་པ་རབ་བདང་སྒྱུར་ར་དང་། བཅས་པ་སྣོད་སྟོང་ཉིད་དུ་སོང་།། 18

དེ་ནས་ཐུགས་སྟོབས་ཞེས་པ་ཡི། སྨད་འཚོང་གདུམ་མོ་འདོད་ལྡན་མ།
དབང་དགུག་སོགས་ལ་འཁྲུལ་འཁོར་དང་། ཐུགས་དང་རྒྱུད་སོགས་དེ་སྦྱོར་མ།། 19
ཐོས་ནས་དེ་ལ་རང་ཉིད་ནི། ཆགས་པའི་ཟློལ་གྱིས་མནན་པ་བཤད།
ནོར་གྱིས་ཆིམ་བྱས་ཆགས་པ་ཡིས། གཟིར་མས་དགའ་དང་འགྲོགས་པ་ཞུས།། 20

यः कान्ताकुचकुङ्कुमाङ्कितरुचि धत्ते न रागं हृदि
क्लेशक्लिन्नतृणाशिने जनवने दान्ताय तस्मै नमः ॥ १४ ॥

यदि मे प्रीतिलुब्धाया वचनं न करिष्यसि ।
तदेतत्ते बलात् कान्तं पास्यामि वदनाम्बुजम् ॥ १५ ॥

एतदाकर्ण्य सन्त्रस्त इव कर्णौ पिधाय सः ।
तामूचे नोचितं मात र्मम शासनदूषणम् ॥ १६ ॥

उत्तंसता मुपगतं सुगतव्रतस्य
सत्त्वश्रियः शुचितया तिलकायमानम् ।
सर्व्वात्मना सुचरिताभरणस्य पुंसः
शीलोपमं नहि विभूषण मस्ति किञ्चित् ॥ १७ ॥

इत्युक्त्वा संयतः शून्यपात्र एव जगाम सः ।
अपायशल्यविषमां पूजामुत्सृज्य सत्वरम् ॥ १८ ॥

अथ मन्त्रबलां नाम चण्डालीं वेशकामिनीम् ।
वश्याकर्षादिनिर्यन्त्र मन्त्रतन्त्रादितत्पराम् ॥ १९ ॥

आह्वय विनिवेश्यास्ये निजं स्मरपराभवम् ।
ययाचे धनसन्तुष्टां रागार्त्ता प्रियसङ्गमम् ॥ २० ॥

དེ་ནས་དེ་ཡིས་འཕྲུལ་ལ་ནི། ཐུགས་སྟོབས་ཀྱིས་དྲངས་པདྨ་ཅན།
དབང་མེད་དེ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། བདག་གི་ཅི་ཞིག་བྱ་ཞེས་སྨྲས།། 21

དེ་ལ་དེས་སྨྲས་བསོད་ནམས་ཀྱིས། ཉེར་གནས་མཛེས་མ་ཟླ་བཞིན་མ།
མཛའ་མོ་འདི་ནི་རབ་ཏུ་བསྟན། ཡང་ན་འབར་བའི་མེ་ལ་ཞུགས།། 22

པདྨ་ཅན་གྱི་མདུན་དུ་ནི། མེད་འབར་མཐོང་ནས་གོས་བཞག་སྟེ།
སྙིང་སྟོབས་དཀར་བའི་གོས་ཅན་གྱིས། མཆོད་པར་ཆས་ནས་རབ་སྨྲས་པ།། 23

གཙང་བྱེད་འབར་བར་བདག་འཇུག་གི། མི་གཙང་ཆགས་པའི་མེད་མ་ཡིན།
ཆགས་པས་བསྒྲིགས་པའི་སྐྱེས་བུ་རྣམས། སྐྱེ་བ་བརྒྱ་ཡི་རྗེས་འབྲང་སྲིད།། 24

ཅེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། གདུང་མོ་རེ་བ་ཉམས་གྱུར་ཅིང་།
བུ་མིན་བྱས་པས་ཡིད་བྱུང་སྟེ། རྗེས་སུ་གདུང་བ་དག་ཏུ་འགྱུར།། 25

དེ་ཡི་བཟོད་པའི་གནས་དེ་ལ། གུས་པ་ཡིས་ནི་དང་བར་གྱུར།
ཆགས་བྲལ་ཞི་ཞིང་བསིལ་བ་ཡིས། བློ་ལྡན་སྨད་འཚོང་མ་དག་ཀྱང་།། 26

ཆོས་ཀྱིས་ཀུན་དུ་དག་པའི་སྐད། དེ་དག་ལ་ནི་ཆོས་བསྟན་མཛད།
གང་གིས་ཉོན་མོངས་ཀུན་ཞི་ནས། དེ་དག་གིས་ནི་དགྲ་བཅོམ་ཐོབ།། 27

དགེ་ལེགས་ལྡན་པ་པདྨ་ཅན། རང་ཉིད་དགྲ་བཅོམ་ཉིད་ཐོབ་ནས།
མཉན་ཡོད་གྲོང་དུ་བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ལྷ་རུ་སོང་།། 28

अथ मन्त्रबलाकृष्टस्तथा सपदि पद्मकः ।
विवशस्तां समभ्येत्य किं करोमीत्यभाषत ॥ २१ ॥

सा तमूचे शशिमुखीं भज प्रणयिनीमिमाम् ।
पुण्यैरुपनतां कान्तां दीप्तं वा वह्निमाविश ॥ २२ ॥

तां पद्मकोऽवदद् दृष्ट्वा ज्वलितं पावकं पुरः ।
जातसज्जः समुत्सृज्य वस्त्रं सत्त्वसितांशुकः ॥ २३ ॥

विशामि पावकं दीप्तं रागाग्निं नत्वपावकम् ।
पुंसां मदनदग्धानां दाहो जन्मशतानुगः ॥ २४ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा चण्डाली खण्डिताशया ।
अकार्य्यकरणोद्विग्ना पश्चात्तापं समाययौ ॥ २५ ॥

स तया क्षान्तिनिलयः प्रणयेन प्रसादितः ।
वेश्यया च सवैराग्यशमशीतलया धिया ॥ २६ ॥

विदधे जन्मसंशुद्धो तयोः सद्धर्मदेशनाम् ।
ते सर्व्वक्लेशशमनाद् ययार्हत्त्व मवापतुः ॥ २७ ॥

स्वयञ्चार्हत्त्व मासाद्य भगवन्तं तथागतम् ।
पद्मकः प्रययौ द्रष्टुं श्रावस्तीं स्वस्तिमान् पुरीम् ॥ २८ ॥

དེར་ནི་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་བཞུགས་པའི། རྒྱལ་བ་དེས་ས་སྐྱོང་ཕྱག་འཚལ་ནས།
བྱ་བ་བྱས་པར་རང་ཉིད་ཀྱི། སྤྱོད་མཐའ་དགེ་སློང་མདུན་དུ་བཤད།། 29

བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་དགེ་སློང་གིས། དེ་ཡི་བསོད་ནམས་ཡ་མཚན་དྲིས།
སྨད་འཚོང་མ་དང་པདྨ་ཅན། གདུམ་མོའི་སྔོན་བྱུང་རྒྱལ་བས་གསུངས།། 30

སྔོན་ཚེ་སྟོན་པ་བཅོམ་ལྡན་འདས། འོད་སྲུངས་ཞེས་པའི་བསྟན་པ་ལ།
ཁྱིམ་བདག་བ་ཤིས་གཉེན་ཞེས་པ་ནི། རབ་ཏུ་བྱུང་བ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 31

དེ་ཡི་ཆུང་མ་དགའ་མོ་དང་། རབ་དགའ་མོ་ཡང་རབ་བྱུང་སྟེ།
མཐུ་ནི་བདག་པོ་དང་མཚུངས་པ། གཙུག་ལག་ཁང་དུ་གནས་པར་བྱ།། 32

དེར་ནི་དེ་དག་རྩོད་པ་ཡི། ཚིག་རྩུབ་ཆེན་པོས་དགེ་སློང་མའི།
ཚོགས་ནི་ཡིད་དག་བྱུང་བར་བྱས། རང་བཞིན་ངེས་པར་གདང་བར་དཀའ།། 33

གཅིག་གིས་གདུམ་མོའི་ཚིག་དང་ནི། གཞན་གྱི་སྨད་འཚོང་མར་བརྗོད་པས།
དགེ་སློང་མ་རྣམས་སྨད་པ་དག། བྱས་པའི་སྡིག་པ་ཐོབ་པར་གྱུར།། 34

དེ་ཉིད་གདུམ་མོ་ངག་སྐྱོན་ལས། དེ་བཞིན་གཞན་སྨད་འཚོང་མར་སྐྱེས།
རབ་ཏུ་བྱུང་བའི་མཐུ་ཡིས་ནི། སླར་ཡང་དགེ་བ་དག་ལ་བརྟེན།། 35

ཁྱིམ་བདག་བ་ཤིས་གཉེན་དེ་ཡང་ནི། བདུལ་ཞུགས་ཀྱིས་བསྐམས་པད་ལྡན་འདི།
ཚུལ་ཁྲིམས་གཙང་བས་རྣམ་བརྒྱན་ཅིང་། དགྲ་བཅོམ་གནས་ནི་ཐོབ་པས་མཛེས།། 36

जिनं जेतवनासीनं तत्र दृष्ट्वा प्रणम्य सः ।
कृतकृत्यः स्ववृत्तान्तं भिक्षूणामब्रवीत् पुरः ॥ २९ ॥

भिक्षुभिर्भगवान् पृष्टस्तत्पुण्योदयविस्मयात् ।
वेश्या-पद्मक-चण्डालीप्राग्वृत्त मवदज्जिनः ॥ ३० ॥

पुरा भगवतः शास्तुः काश्यपाख्यस्य शासने ।
मित्रनामा गृहपतिः प्रव्रज्यां समुपाददे ॥ ३१ ॥

तस्य नन्दा सुनन्दा च भार्य्ये प्रव्रजिते पुनः ।
भर्त्तृतुल्यानुभावेन विहारे चक्रतुः स्थितिम् ॥ ३२ ॥

वाक्पारुष्येण महता कलहे भिक्षुणीगणः ।
ताभ्यामुद्वेजितस्तत्र स्वभावः किल दुस्त्यजः ॥ ३३ ॥

चण्डालीवचनेनैका वेश्यावादेन चापरा ।
भिक्षुणीनामधिक्षेपं कृत्वा पाप मवापतुः ॥ ३४ ॥

वाग्दोषात् सैव चण्डाली जाता वेश्या तथापरा ।
प्रव्रज्यायाः प्रभावेण पुनः कुशल माश्रिते ॥ ३५ ॥

स तु मित्रो गृहपतिः पद्मकोऽयं दृढव्रतः ।
विभात्यर्हत्पदावाप्त्या शुचिशीलविभूषणः ॥ ३६ ॥

པད་ཅན་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་ཡང་། །སེ་དོག་སྐྱེ་ཞེས་མེ་དོག་པ།
སེ་དོག་ཚོགས་ཀྱི་སྡོང་བ་ཡི། །སྐྱེ་བོ་དག་ཏུ་ཕིངས་བྱེད་གྱུར། ། 37

དེ་ཡི་རང་རྒྱལ་ལོངས་སྤྱོད་ཀྱིས། །མཆོད་ནས་གོས་ཀྱིས་གཡོགས་བྱས་ཏེ།
པདྨ་ཨུཏྤལ་ཀ་དན་ར། །སེ་དོག་རྣམས་ཀྱིས་ཡང་དག་མཆོད། ། 38

བསོད་ནམས་སྟེ་ཡིས་པདྨ་ཅན། །པདྨའི་སྙིང་པོ་ཉི་འོད་མཚུངས་འདི།
ལེགས་བྱས་རྒྱ་ཆེའི་དྲི་བཟང་ཅན། །བདག་གི་བསྟན་པ་ལ་འོས་གྱུར། ། 39

གཟུགས་ནི་ཚུལ་ཁྲིམས་ཀྱིས་བརྒྱན་གྲགས་པ་གཙང་ཞིང་
ཟླ་བ་ལྟ་བུར་དཀར་བའི་རིགས།
སེམས་དབེན་པ་ནི་ཡོངས་སྨིན་ཤིན་ཏུ་དྲི་མེད་འཁོར་བའི་
གཡོན་ཕྱོགས་ཞི་གྱུར་པ།
འདི་དག་མཁས་པ་རྣམས་ཀྱི་བསོད་ནམས་ཆེར་དར་མཚན་
ཉིད་བལྟ་བར་བཟོད་པ་ཡིན།
ཤིན་ཏུ་སྣང་འོས་རིགས་དང་ཡིད་ནི་དྲི་མ་ཅན་ཡང་མི་རྣམས་
ལས་ངན་རྟགས། ། 40

ཞེས་པ་ཀུན་མཁྱེན་གྱིས་བཤད་པའི། །སྨད་བྱུང་ལས་སྨིན་གདམས་ངག་གིས།
དགེ་སློང་རྣམས་ནི་དགའ་བ་ཡིས། །རིག་ཅིང་ཡ་མཚན་གྲུས་པར་གྱུར། ། 41

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་པདྨ་ཅན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱད་ཅུ་ཙ་བདུན་པའོ། །

पौष्पिकः पुष्पसेनाख्यः पद्मकोऽप्यन्यजन्मनि ।
बभूव पुष्पनिचयैः पूरितार्थिजनः सदा ॥ ३७ ॥

प्रत्येकबुद्धं सोऽभ्यर्च्य भोगेनाच्छाद्य वाससा ।
कमलोत्पलकल्हारकुसुमैः समवाकिरत् ॥ ३८ ॥

तेन पुण्येन जातोऽयं पद्मगर्भनिभप्रभः ।
पद्मकः शासनार्हो मे सुकृतोदारसौरभः ॥ ३९ ॥

रूपं शीलविभूषणं शुचि यशश्चन्द्रावदातं कुलं
चेतः पक्वविवेकनिर्मलतरं संसारवामः शमः ।
एतत् पुण्यमहोदयस्य कृतिनां दृष्टिक्षमं लक्षणं
जातिर्निन्द्यतमा मनश्च मलिनं दुष्कर्मचिह्नं नृणाम् ॥ ४० ॥

इति सर्व्वज्ञकथितैः कर्म्मपाककथाद्भुतैः ।
बभूव हर्षसंस्पर्शी भिक्षूणां विस्मयोदयः ॥ ४१ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
पद्मकावदानं सप्ताशीतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བརྒྱད་པ།

ཤིན་ཏུ་དྲག་པོའི་འདུལ་བ་མཐོང་ནས་འཁྲུག་ཅིང་ཞི་བ་
ངེས་པར་བཟོད་མི་བྱེད།

སྒྱུར་བར་ཡིད་དགའ་ཁབ་དང་མཚུངས་མཐུག་ཏུ་སྡིག་
པར་བཟོད་པའི་ལས་དག་བྱེད།

བྱ་མིན་དག་ལ་འཇིགས་བདང་བློ་གྲོས་རབ་འཇུག་འཁོར་
བའི་གྲོགས་མོ་ལྡན་མེད་ཀྱི།

ཧྲི་ལམ་དག་དང་མཚུངས་པའི་རྣམ་འཕྲུལ་མཚན་ཉིད་འདི་
དག་ཐམས་ཅད་ངེས་པར་འཛིན།། 1

ས་བདག་གཟུགས་ཅན་སྙིང་པོ་ཡི། གྲོང་ཁྱེར་རྒྱལ་པོའི་ཁབ་ཏུ་སྔོན།
ནག་པ་ཞེས་པ་གླང་སྲེའི་བདག། གླང་ཆེན་ལྡན་གྱི་བུ་རུ་གྱུར།། 2

རྒྱལ་པོའི་འཁོར་པ་དང་མཚུངས་ཁྱིམ། ཡོ་བྱད་བཅས་པ་རབ་བཏང་ནས།
ཆགས་བྲལ་ལ་ནི་མངོན་ཕྱོགས་དེ། གཞོན་ནུ་ཉིད་ལ་རབ་བྱུང་བཟུང་། 3

དེ་ཡི་ཆུང་མ་གཟུགས་མཛེས་མ། འཁོར་བ་རྒྱས་པའི་ཁྱིམ་དུ་ནི།
བདག་པོའི་ལོངས་སྤྱོད་དང་བྲལ་བས། ཡུན་རིང་བསམས་པ་འཁྲུགས་པར་གྱུར།། 4

དེ་ནས་དུས་ཀྱིས་ཡོངས་འདྲིས་ལ། གུས་པས་མཐའ་ནི་རྒྱ་བྱེད་པ།
ནག་པ་གླང་ཆེན་ལྡན་གྱི་བུ། དེ་ནི་རང་གི་ཁྱིམ་དུ་སོང་།། 5

དེ་ནས་མངོན་དུ་འོངས་དེ་ལ། ཆུང་མ་མཛེའ་གཙུགས་ལྡན་མ་དེས།
རྗེས་སུ་འབྲངས་ནས་མཆོད་པ་ནི། སྔོན་དུ་འགྲོ་བས་མགྲོན་གཉེར་བྱས།། 6

अष्टाशीतितमः पल्लवः ।

हृष्ट्वा तीव्रतरं हरन्ति नियमं नैव क्षमन्ते शमं
कर्म्म क्षिप्रमनोरमं हिमसमं पर्य्यन्तदाहक्षमम् ।
एता बिभ्रति सर्व्वमेव विषमं स्वप्नोपमं विभ्रमं
त्यक्ता कार्य्यभियः प्रवर्त्तनधियः संसारसख्यः स्त्रियः ॥ १ ॥

बिम्बिसारस्य नृपतेः पुरे राजगृहे पुरा ।
चिचाख्यो हस्तिशय्यातिपुचोऽभूद् गजसैन्यपः ॥ २ ॥

स राजतुल्यं विभवं गृहञ्च सपरिच्छदम् ।
त्यक्ता युवैव प्रव्रज्यां वैराग्याभिमुखोऽग्रहीत् ॥ ३ ॥

पत्नी तस्य सुरूपाख्या प्रभूतविभवे गृहे ।
भर्त्तृसम्भोगरहिता चिरं चिन्तातुराभवत् ॥ ४ ॥

अथ कालेन पर्य्यन्तचारी परिचितादरात् ।
स चिचो हस्तिशय्यातिपुचः स्वपुरमाययौ ॥ ५ ॥

अभ्यागतस्य तस्याथ सानुगस्य निमन्त्रणम् ।
पूजापुरःसरं चक्रे पत्नी प्रणयशालिनी ॥ ६ ॥

ལམ་རིང་གིས་དུབ་བདེ་མེད་དེས། མགོན་ནས་དེ་ཡིས་རབ་བསམས་པ།
ཀྱེ་མ་འདི་ཡི་མཛེས་སྡུག་ནི། ཡང་ཆོ་ཉིད་ཀྱིས་ངེས་པར་བཟུང་། 7

ན་ཚོད་ལོངས་སྤྱོད་འོས་འདི་ལ། ཁྱིམ་གྱི་དཔལ་ནི་ཡོངས་བཏང་ནས།
རྣམ་པ་མ་དཔྱད་འདི་ཡིས་ནི། རྟུན་གྱིས་བདག་ཉིད་ཅི་ལ་གཟུང་།། 8

གང་ཞིག་ཕྱོགས་ལྷུང་བཅས་པ་ཡི། མིག་གིས་ཁྱིམ་ལ་ལྟ་བྱེད་པ།
དགའ་ཐུབ་ཅན་ནི་མཛའ་བའི་ལྷག། ད་དུང་ཞི་བ་མིན་པར་ངེས།། 9

ཡང་ན་དང་པོར་བརྟན་པ་ཉིད། ཡོངས་བརྟགས་བརྟན་པའི་རྒྱུ་མཚན་གྱིས།
འདི་ཡི་ཆགས་བྲལ་གཡོ་བའམ། བརྟན་པ་བདག་གིས་ཞིབ་པར་བྱ།། 10

ཁྱིམ་དུ་ལོངས་སྤྱོད་ཚོགས་ཀྱིས་ཆོམ། ཐམས་ཅད་ནགས་ཚལ་མངོན་པར་འདོད།
དབེན་པར་བདེ་བ་ཉམས་པའི་ཚེ། བདག་ཉིད་རྗེས་སུ་གཟུང་བ་བྱེད།། 11

ཅེས་པ་བསམས་དེ་དེ་ཡི་ནི། མདུན་དུ་ཟས་ཀྱི་གནས་སྐབས་སུ།
སྨྲ་དང་བཅས་པར་ཟངས་ཀྱིས་སྣོད། བ་གལ་རྩེ་ལས་རང་གིས་དོར།། 12

སྨྲ་དེས་ཀུན་དུ་སྨྲག་པ་བཞིན། སྐད་ཅིག་ཕྱོགས་སུ་རྣམ་པ་བལྟས།
འདི་ཅི་ཞེས་པ་ནག་པ་ནི། འཁྲུལ་པས་མངོན་ཕྱོགས་དེ་ལ་དྲིས།། 13

དེ་ནས་དར་བབ་བཞིན་འཛུམ་ལྡན། དེ་ཡིས་ཟངས་སྣོད་ཙུང་ཟད་ནི།
ལྷུང་བར་དེ་ལ་བཤད་བྱས་ནས། དགའ་བས་སླར་ཡང་རབ་བསམས་པ།། 14

साचिन्तयत् तमालोक्य दूराध्वश्रमनिःसुखम् ।
अहो बतास्य लावण्यं यौवनेनैव धार्य्यते ॥ ७ ॥

अस्मिन् वयसि भोगार्हे परित्यज्य गृहश्रियम् ।
मिथ्यैव किमनेनात्मा निर्विचारेण पीड़ितः ॥ ८ ॥

स्नेहशेषोऽस्य नाद्यापि जाने शान्त स्तपस्विनः ।
गेहं सपक्षपातेन चक्षुषा यन्निरीक्षते ॥ ९ ॥

अथवा धैर्य्यमेवादौ परीक्ष्य स्थैर्य्यकारणम् ।
अस्य जानामि वैराग्यं चलं विश्रान्तमेव वा ॥ १० ॥

गृहे भोगगणैस्तृप्तः सर्व्वः कानन मीहते ।
विजने तु सुखभ्रष्ट मात्मान मनुशोचति ॥ ११ ॥

इति सञ्चिन्त्य सा तस्य भोजनावसरे पुरः ।
स्वयं तत्याज हर्म्म्याग्रात् सशब्दं ताम्रभाजनम् ॥ १२ ॥

तेन शब्देन संत्रस्त इवालोक्य दिशः क्षणम् ।
किमेतदिति पप्रच्छ चिच स्तां संभ्रमोन्मुखः ॥ १३ ॥

ततः स्मितमुखी किञ्चित् पतितं ताम्रभाजनम् ।
प्रौढ़ा निवेद्य सा तस्मै हर्षात् पुनरचिन्तयत् ॥ १४ ॥

རི་ཞིག་རྣམ་འགྱུར་མེད་པ་ཡི། གནས་ལ་གནས་པ་འདི་དྲས་མ་ཐོབ།
འདི་ཡི་ཡིད་ནི་ཀློད་པ་དག། ཐེ་དགས་སྒྱུར་དུ་ཁགས་པར་འགྱུར།། 15

གང་ཞིག་སྟོད་ཀྱི་སྐྲ་ཙམ་གྱིས། ཀུན་དུ་སྐྲག་ཅིང་འཁྲུགས་གྱུར་པ།
རྣམ་དཔྱོད་བྲལ་བ་དེ་ལ་ནི། ཡུལ་གྱི་ཅི་དང་ཅི་མི་བྱེད།། 16

ངང་པ་ཐམས་ཅད་རྒྱ་འཛིན་དག་གི་སྐྲ་ཙམ་ལ།
སྐྲག་ཅིང་བརྟན་པ་ཉམས་པས་བཅིངས་ནས་འབྲོས་པར་བྱེད།
གང་ཞིག་སྤྲིན་ཚོགས་བཅིངས་པར་སྒྲོགས་ལ་གཡོ་མེད་པ།
པད་སྡུན་ངང་པའི་རྒྱལ་པོ་དེ་ནི་ཁ་ཅིག་ཡིན།། 17

ཞེས་པ་ཡིད་ཀྱིས་ངེས་བྱས་ནས། སྨིན་མའི་འཁྲི་ཤིང་རོལ་རྩེད་ཅན།
འཛུམ་པ་སྨྲ་བ་དེ་ཡིས་ནི། དེ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་དལ་གྱི་སྨྲས།། 18

བདག་ནི་རྣ་བཞིན་རབ་སྤྲངས་ནས། ཁྱོད་ནི་རིང་དུ་སོང་བའི་ཚེ།
བདག་གི་ཁྱིམ་ནི་རྒྱུན་མས་བཞིན། རྒྱུད་པས་ཟིལ་གྱིས་མནན་ལ་ལྡོས།། 19

རྩོམ་ཆེན་འཁོར་པ་འདི་ལ་ཡང་། ལོངས་སྤྱོད་དག་ནི་རབ་སྤྲངས་པ།
བདེ་མེད་བདག་ནི་གྲོགས་ཀྱིས་བཞིན། ཁྱོད་མཐོང་རེ་བ་ཉིད་ཀྱིས་བཟུང་།། 20

གང་ཡང་བརྗོད་པར་མི་འོས་པ། འདི་ནི་སྡུག་བསྔལ་དག་གིས་བརྗོད།
མི་སྨྲ་འདོད་ཀྱང་བརྗོད་པ་འདི། ལྟོ་ཡང་རབ་ཏུ་ངོ་ཚར་ཤེས།། 21

अयन्तावदसम्प्राप्तनिर्विकारपदस्थितिः ।
शिथिलं लीलयैवास्य तूर्णमाकृष्यते मनः ॥ १५ ॥

यः पाचशब्दमात्रेण संत्रासाकुलतां गतः ।
किं किं न क्रियते तस्य विषयैरविमर्षिणः ॥ १६ ॥

सर्व्वः प्रणश्यति पयोमुचशब्दमात्र-
संत्रासलुप्तधृतिबन्धन एव हंसः ।
ते सन्ति केऽपि कमलासनराजहंसा
ये पुष्कराभ्रगुरुगर्जितनिष्प्रकम्प्याः ॥ १७ ॥

इति निश्चित्य मनसा सा शनै र्मृदुवादिनी ।
तमुवाच समभ्येत्य भ्रूलतालास्यलीलया ॥ १८ ॥

भगवन् मां परित्यज्य त्वयि दूरतरं गते ।
सपत्नीभि रिवाक्रान्तं विपद्भिः पश्य मे गृहम् ॥ १९ ॥

अस्मिन्नपि महारम्भविभवे भोगवर्जिता ।
त्वद्दर्शनाशयैवाहं स्थिता सख्येव निःसुखा ॥ २० ॥

यद्यप्यनुचितं वक्तुं दुःखात्तदिद मुच्यते ।
वदन्ती मौनकामेयं जाने जिह्वापि लज्जते ॥ २१ ॥

ཁྲིམས་བདག་གིས་ནི་ཆུང་མ་ཡི། ཚུལ་ཁྲིམས་བསླད་མཐོང་དེ་ལ་ནི།
ཆགས་བྲལ་སྐྱེས་པ་མ་ཡིན་ནམ། གཞན་དུ་དུས་མིན་ཇི་ལྟར་འགྱུར།། 22

ཞེས་པ་གཞན་གྱི་ཡོན་ཏན་ནི། ཉམས་པ་བགྲང་བ་ལ་མཁས་པའི།
བཞིན་འཛུམ་སྐྱེ་བ་ཐམས་ཅད་ནི། ཕན་ཚུན་རྣམ་པར་ལྟ་ཞིང་སྨྲ།། 23

འབྲས་བས་གདུངས་པ་བདག་ལ་ནི། འཇིག་རྟེན་སེམས་སོས་ཞེས་པར་འཛིན།
དར་མ་ཉིན་མོངས་དག་ལ་ནི། མ་ཉམས་གཟུགས་དག་ཅི་ཞིག་བྱ།། 24

ཁྲིམས་དུ་གསོག་འཁོར་འདི་དག་ཀུང་། བདག་ལ་ཤིན་དུ་མ་བསམས་གྱུར།
བྱུད་མེད་བདག་པོ་མེད་རྣམས་ཀྱི། མ་དུན་དུ་ཁྱི་ཡང་རབ་དུ་དགོད།། 25

བདག་གི་ལྷག་མ་ཉིད་ཀྱིས་ནི། རབ་དུ་བསོས་པ་འབབས་ཕྲུག་འདི།
བཀའ་བསྐོས་ཁྲིམས་པས་བདག་གི་ནི། སྐྱ་ནས་འདྲེན་པར་འདོད་ལ་ལྟོས།། 26

ཞེས་པ་བརྗོད་ནས་བཟ་བྱས་དེ། བདག་པོ་འི་སེམས་ནི་རྣམ་འགྱུར་སྐད།
རང་གི་འབབས་ཀྱིས་ཟླ་གཞོན་པ། དེ་ཡིས་མདོན་སུམ་ཉིད་དུ་བསྟན།། 27

མ་ཉམས་གཟུགས་ཞེས་ཆགས་པ་དང་། བདེ་བ་མེད་ཅེས་འཁྲུགས་པ་དང་།
སྨད་པར་གྱུར་ཅེས་ཕྲག་དོག་དང་། འབབས་ཀིས་གཟིར་ཞེས་ཁྲོ་བ་ཡང་།། 28

ཐོབ་ནས་དེ་ལ་ལྟ་བྱེད་ཅིང་། བརྟུལ་ཞུགས་ཀྱིས་བསམས་བཏང་བ་དེ།
མཚུངས་པར་འཁོར་བའི་སྐྱོན་རྣམས་ནི། ཐམས་ཅད་དག་གི་དབང་དུ་འགྱུར།། 29

नूनं गृहाधिपतिना पत्न्याः शीलस्य विप्लवः ।
दृष्टोऽस्य जातं वैराग्यमकाले कथमन्यथा ॥ २२ ॥

इति स्थितमुखः सर्व्वः परस्परविलोकनैः ।
वदत्यन्यगुणग्लानिगणनानिपुणो जनः ॥ २३ ॥

वियोगतप्तां मां लोकः स्वस्थचित्तेति मन्यते ।
क्लेशेऽप्यक्लिष्टरूपाहं तारुण्यस्य करोमि किम् ॥ २४ ॥

गृहे परिजनश्चायं ममोच्छृङ्खलतां गतः ।
अस्वामिकानां नारीणामग्रे श्वापि प्रगल्भते ॥ २५ ॥

दासस्तु मयैवाय मुत्सृष्टेन विवर्ज्जितः ।
पश्चात्प्रदानकोपान्मे केशाकर्षेण मीढते ॥ २६ ॥

इत्युक्त्वा कृतसङ्केता तदा दासपराभवम् ।
भर्त्तुश्चित्तविकाराय सा प्रत्यक्षमदर्शयत् ॥ २७ ॥

स्पृहामक्लिष्टरूपेति वैक्लव्यं निःसुखेति च ।
ईर्ष्यां जातापवादेति क्रूरं दासाहितेत्यपि ॥ २८ ॥

स तां विलोकयन् प्राप्य संत्यक्तव्रतयन्त्रणः ।
तुल्यं संसारदोषाणां सर्व्वेषां वशमाययौ ॥ २९ ॥

ལྷུང་བཟེད་ཆོས་གོས་རབ་བདང་ཞིང་། འཇིགས་རུང་རལ་གྲི་ཕྱུང་ནས་ནི།
དགའ་མའི་གནོད་པ་ལ་ཁྲོས་པས། དེ་ཡིས་འབངས་ནི་གསོད་པར་ཞུགས།། 30
འབངས་ནི་གསོད་པའི་སྡིག་པ་ལས། ཆུང་མས་འབད་ནས་ཟློག་པ་དེས།
དགྲ་ལས་རྒྱལ་འདོད་ཁྲིམས་གྲིས་ནི། བདེ་བ་དམན་པ་སླར་ཡང་བསྟེན།། 31
དེ་ནི་ལོངས་སྤྱོད་ཡོངས་སུ་བཟུང་བས་བུད་མེད་ལོངས་སྤྱོད་
སྐལ་བཟང་ས་གཞིར་གྱུར།
རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་གནོད་པའི་གདམ་གྱི་རྒྱ་ལས་གཡོག་
འཁོར་རྣམས་ལ་ཁྲོ་བས་འཁྲུགས།
འདོད་པས་དུལ་བ་ཉམས་བྱེད་ཁྲོ་བས་སྐད་ཅིག་ཉིད་ཀྱིས་
བཟོད་པ་རླག་པ་བྱེད།
རྟེན་གྱི་བརྟུལ་ཞུགས་དག་གིས་གདུང་བའི་ཡིད་ཀྱིས་
ཆགས་བྲལ་ཉིད་ནི་འཐོབ་མ་ཡིན།། 32
དེ་ནས་རྒྱལ་པོས་གླང་ཆེན་གྱི། སྣ་ཆེན་གནས་ནི་སླར་ཡང་བྱིན།
འཁོར་བ་རྒྱ་ཆེན་ཐོབ་གྱུར་ནས། དེ་ནས་ལྷག་པར་རྒྱས་པར་གྱུར།། 33
སྐབས་དེར་གྲོང་ཁྱེར་ནང་དག་ལས། དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་བསོད་སྙོམས་
བསླངས།
བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་ནགས་ཚལ་ན། གནས་པ་དག་ལ་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ།། 34
ཆགས་བྲལ་བཞིན་གྱིས་དེ་ལ་ནི། ཕྱག་འཚལ་གླང་ཆེན་སྡུད་ཀྱི་བུ།
ནག་པ་དག་གི་བརྟུལ་ཞུགས་ནི། ངེས་པ་མེད་པ་རྣམ་པར་བཤད།། 35
དེ་ཉིས་བཅོམ་ལྡན་ཐམས་ཅད་མཁྱེན། འཛུམ་དང་ལྡན་པས་རབ་གསུངས་པ།
དེ་ཡི་དགེ་བ་མ་སྨིན་པས། བརྟུལ་ཞུགས་དག་ནི་གླང་བར་བྱས།། 36

पात्रचीवरमुत्सृज्य खड्गमाकृष्य भीषणम् ।
प्रियानिकारक्रौर्य्येण स दासं हन्तु मुद्ययौ ॥ ३० ॥

प्रणयाद्वारितः पत्न्या सद्यः स वधवैशसात् ।
लीनं पुनर्गृहसुखं भोजनेन जिगीषया ॥ ३१ ॥

सोऽभूद् भोगपरिग्रहेण ललनासम्भोगसौभाग्यभू-
र्नानाकारनिकारकारणकथान्तत्येषु कोपाकुलः ।
कामः कर्षति संयमं क्षपयति क्रोधः क्षणेन क्षमां
नो मिथ्याव्रतशोषितेन मनसा वैराग्यमासाद्यते ॥ ३२ ॥

अथ हस्तिमहामात्रपदं राज्ञार्पितं पुनः ।
आसाद्य विभवोदारः सोऽभूदभ्यधिकोद्भवः ॥ ३३ ॥

अत्रान्तरे पिण्डपातमादाय नगरान्तरात् ।
भगवन्तं वनासीनं जिनमभ्येत्य भिक्षवः ॥ ३४ ॥

विषण्णवदनास्तस्मै प्रणिपत्य न्यवेदयन् ।
चित्रस्य हस्तिशय्यातिपुत्रस्यानुचितं व्रतम् ॥ ३५ ॥

भगवानथ सर्व्वज्ञः सस्मित स्तानभाषत ।
अपक्वकुम्भखेनैव कृतस्तेन व्रतग्रहः ॥ ३६ ॥

གང་ཞིག་དབེན་པ་སྤྱིན་ཞིང་རྫོགས་པའི་བཏུག་པས་ཡིད་ཀྱི་འཁྲི་ཤིང་
བསྐམས་གྱུར་པ།
དེ་དག་ཕྱི་ནས་ཡུལ་གྱི་ཉམས་སོང་སྟོང་པ་བྲན་པའི་དབང་དུ་འགྱུར་མ་ཡིན།
གང་ཞིག་དོན་གྱིས་བཀག་ཅིང་ཁེངས་པས་ཚོད་ལ་རྒྱུན་དུ་གུས་པ་རབ་བདང་བ།
དེ་དག་འདོད་དང་ཞི་བའི་བར་མཚམས་དག་ལ་ཡིད་ནི་འཕྱང་མོ་ཡུག་པར་བྱེད།། 37

གང་གིས་གཡང་སར་ལྷུང་བའི་མཁས་པ་རྣམས་ཀྱང་དུལ་བ་དག
ནི་ཡོངས་གཏོང་ཞིང་།
ཆགས་པའི་དུག་རྒྱས་རྣལ་འབྱོར་ཅན་རྣམས་སོ་བཟད་སྨུག་ཅུམ་
ས་ལ་འཛུག་པར་བྱེད།
སྐྱེ་བར་བགོམས་པས་ཆགས་ཤིང་ཡུལ་གྱི་རིག་པ་མཆོག་ཏུ་མངོན་
པར་འདོད་གྱུར་པ།
རྣམ་འགྱུར་མདའ་ཡི་ཆར་དྲག་དཀྲིགས་མི་འདོད་པ་འདི་ནི་སུ་ལ་
བཟོད་པར་བྱེད།། 38

ཅེས་པ་བརྗོད་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས། རྒྱལ་བ་ནག་པའི་ཁྱིམ་བྲོན་ནས།
སྐུ་ཡི་འོད་ཀྱི་ཕྲེ་རོལ་གྱི། རབ་རིབ་རྣམ་པར་འཇོམས་ཤིང་སྣང་།། 39
རྫིས་སུ་བཟུང་བའི་སྣང་བ་ཡིས། དེ་ཡི་ཡིད་ནི་དྲི་མེད་མཛད།
ཕྱག་དང་བསྙེན་བཀུར་བྱས་པ་དེ། རང་ཉིད་ཀྱི་ནི་གནས་སུ་ཁྲིད།། 40
དེར་ནི་སྨྲར་ཡང་གུས་པ་ཡིས། ཟོལ་མེད་རབ་བྱུང་དེ་ཡིས་བསྙེན།
གུབ་སྐད་རྒྱལ་བས་དགག་པ་ཡི། དམ་པའི་ཆོས་ནི་རབ་བསྟན་མཛད།། 41
ཉོན་མོངས་ཐམས་ཅད་རབ་ཟད་པས། དེ་ནི་དགྲ་བཅོམ་གནས་ཐོབ་ཆེ།
དེ་ཡིས་སྔོན་བྱུང་དགེ་སློང་གིས། དྲིས་ནས་བཅོམ་ལྡན་གྱིས་གསུངས་པ།། 42

ये निष्पन्नविवेकपापकलनानिःश्रेषिताशालता-
स्ते नायान्ति पुनः पुराणविषयास्वादस्मृते र्वश्यताम् ।
ये त्वर्थप्रतिषिद्धगर्व्वशिथिलत्यक्तप्रसक्तादरा-
स्तेषामन्तरसीम्नि कामसमयो दोलायमानं मनः ॥ ३७ ॥

जन्माभ्यासनिषक्त एष विषयस्पर्शाभिलाषः परं
विद्वांसोऽपि परित्यजन्ति नियमं येनावटे पातिताः ।
रागोदग्रविषा विशन्ति विषमध्वान्तां भुवं भोगिनः
कामः कस्य करोति कीर्णविशिखासारे विकारे क्षमाम् ॥ ३८

इत्युक्त्वा भगवान् गत्वा चित्रस्य भवनं जिनः ।
देहप्रभाभि स्तिमिरं वाह्य मुन्मूलयन् पुरः ॥ ३९ ॥

अनुग्रहप्रकाशेन कृत्वास्य विमलं मनः ।
कृतप्रणामसत्कारं तं निनाय निजाश्रमम् ॥ ४० ॥

पुनस्तत्रास्य निर्व्याज-प्रव्रज्या-वर्जनाजुषः ।
जिनः प्रविदधे सिद्धो शुद्धसद्धर्म्मदेशनाम् ॥ ४१ ॥

स प्राप्तार्हत्पदे तस्मिन् सकलक्लेशसंक्षयात् ।
तत्पूर्व्ववृत्तं भगवान् पृष्टो भिक्षुभिरभ्यधात् ॥ ४२ ॥

སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་དེས། རང་སངས་རྒྱས་ནི་གསུས་པ་ཡིས།
དྲག་ཏུ་མཆོད་ཅིང་དེ་ཡིས་ནི། མཇུག་ཏུ་མཆོད་རྟེན་ཆེན་པོ་བསྐྲུནས།། 43

དེ་ཡི་བསོད་ནམས་སྨོན་ལམ་གྱིས། སྐལ་ལྡན་ནག་པ་འདི་ཡིས་ནི།
བདག་གི་བསྟན་ལ་རབ་བྱུང་དག། སླངས་ནས་དགྲ་བཅོམ་གནས་ལ་བརྟེན།། 44

འདི་ནི་སླར་ཡང་འདོད་པ་ལ། རབ་ཏུ་འཇུག་པའི་རྒྱུ་དག་ཉོན།
སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བ་དག་ལ་ཡང་། འདི་ནི་ཆུང་མས་རབ་ཏུ་བསླུས།། 45

བཱ་ར་ཎ་སི་དག་ཏུ་ནི། ས་ཡི་བདག་པོ་ཚངས་བྱིན་གྱི།
ཡོད་དན་ཡོངས་རྫོགས་མ་ཏུ་ན་འདོན། རཔལ་ལྡན་འཕྲོག་བྱེད་ཀྱིས་བྱིན་བྱུང་།། 46

དེ་ལ་རིག་དང་འདུལ་བ་དག། རྫོགས་པའི་བུ་གཉིས་བྱུང་གྱུར་ཏེ།
གཅིག་ནི་འཕྲོག་བྱེད་བུ་ཞེས་དང་། དེ་བཞིན་གཞན་པ་འཕྲོག་བྱེད་ཅེ།། 47

དེ་དག་ཆགས་བྲལ་དབེན་པ་ཐོབ། སྲིད་པའི་ལོངས་སྤྱོད་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས།
དཀའ་ཐུབ་ནགས་ཚལ་ལོངས་རྒྱུ་ཞིང་། མངོན་ཤེས་ལྔ་ནི་ཐོབ་པར་གྱུར།། 48

རྒྱལ་དང་སྐྱེ་བོས་མཆོད་བྱེད་ཅིང་། རབ་ཞི་བསྟུགས་པར་འོས་པ་ཡིས།
མཁའ་ལ་རྒྱུ་བ་དེ་དག་ནི། ཐུབ་པ་རྣམས་ཀྱི་འདང་མཆོད་བྱར་གྱུར།། 49

ནམ་ཞིག་ས་བདག་ཁང་པ་ན། འཕྲོག་བྱེད་ཅི་གནས་མི་བདག་ནི།
ཕྱོགས་ལས་རྒྱལ་བ་མངོན་ཕྱོགས་པས། བུ་མོ་མཛེས་ལྡན་ཞེས་ལ་སྤྲས།། 50

जन्मान्तरे पुरा तेन भक्त्या सतत मर्चितः ।
प्रत्येकबुद्ध श्चैत्यञ्च तस्यान्ते विहितं महत् ॥ ४३ ॥

तत्पुण्यप्रणिधानेन धन्योऽयं मम शासने ।
प्रव्रज्यां समुपादाय चिनोऽर्हत्पदमाश्रितः ॥ ४४ ॥

कारणं श्रूयतामस्य पुनः कामप्रवर्त्तने ।
एष प्रसारितः पत्न्या पूर्व्वस्मिन्नपि जन्मनि ॥ ४५ ॥

बभूव ब्रह्मदत्तस्य वाराणस्यां महीपतेः ।
परिपूर्णगुणः श्रीमान् हरिदत्तः पुरोहितः ॥ ४६ ॥

निष्पन्नविद्याविनयौ पुत्रौ तस्य बभूवतुः ।
हरिद्रायण इत्येक स्तथा हरिशिखोऽपरः ॥ ४७ ॥

तौ विवेकाप्तवैराग्यौ भवभोगपराङ्मुखौ ।
तपोवने परिव्रज्य पञ्चाभिज्ञत्व मापतुः ॥ ४८ ॥

तौ व्योमचारिणौ राज्ञा पूज्यमानौ जनेन च ।
प्रापतुः प्रशमश्लाघ्यौ मुनीनामपि मान्यताम् ॥ ४९ ॥

कदाचिन्नृपभवनं स्थिते हरिशिखे नृपः ।
कन्यां लावण्यवत्याख्यामूचे दिग्विजयोन्मुखः ॥ ५० ॥

མཉེས་གཤིན་ཁྱོད་ཀྱིས་གསུམ་པ་ནི། ཤིན་ཏུ་ཆེ་བས་ཐུབ་པ་དག།
མཆོད་བྱ་འདི་ལ་མཆོད་པ་བྱ། འདི་ནི་བདག་གིས་བཀུར་སྟི་འོས།། 51

ཞེས་པ་བུ་མོ་ལ་བསྟན་ནས། ས་ཡི་བདག་པོ་རབ་སོང་ཆེ།
རྒྱལ་པོའི་བུ་མོ་གསུམ་ལྡན་མས། ཐུབ་པ་རྟག་ཏུ་མཆོད་པར་གྱུར།། 52

གསེར་བཙད་འོད་ལྟར་ཡོངས་སུ་ཤེས་པའི་མཛེས་པ་ལུས་ལ་འཛིན་བྱེད་ཅིང་།
པདྨའི་སྤྱན་དང་ལྡན་པ་དེ་མཐོང་དེ་ནི་མངོན་པར་སྤྲོད་ལྡན་གྱུར།
སྐད་ཅིག་འཁོར་པས་ངེས་པར་མཛེས་པའི་ཡུལ་ལ་དམིགས་པའི་འདོད་པ་ཡིས།
འགྲོགས་པའི་ཞམས་པ་སྙིང་ལ་ཚ་བ་ཟུག་པ་ཅི་ཡང་བྱེད་པར་འགྱུར།། 53

སྐྱང་གཞོན་དག་གིས་བསྐྱོད་པའི་འཁྲི་ཤིང་བཞིན།
འདོད་པའི་རྣམ་འཕྲུལ་ཤུགས་འཕྲིན་ལུས་དག་ནི།
དུད་པས་དེ་ཡི་ལུས་ཀྱི་ཀུན་དགའ་དང་།
བཅས་པས་གྲོགས་མེད་ཐུབ་ལ་འཁྱུད་པ་བྱས།། 54

དེ་ཡི་ནུ་མ་གསར་པའི་རྩེར་ཆགས་ལུས་ཀྱི་ཚོན་གྱིས་ནི།
འདོད་པ་རྒྱལ་པོའི་བཀའ་ཡིག་རྒྱ་ལྡན་སྙིང་ལ་འཛིན་བྱེད་ཅིང་།
དེ་དུས་ཉིད་ན་གླི་ཕྲུར་དུ་ནི་དུལ་བའི་གདགས་ཐག་ཅན།
ཐུབ་པ་འདོད་པའི་རྩེ་དགའ་གསར་པ་དག་ལ་འགྲོར་པར་གྱུར། 55

ཁྲུ་མཆོག་གཉམས་ལས་འཁྲིག་པའི་བྲ་བ་ལ།
རབ་ཏུ་སྤྲོར་ཞིང་སྒྲིག་པས་བཟུང་བ་བཞིན།

वत्से त्वया मुनेरस्य गौरवेण गरीयसा ।
पूज्यस्य पूजनं कार्य्यं सत्कारार्हो ह्ययं मम ॥ ५१ ॥

सुतामिति समादिश्य प्रयाते पृथिवीपतौ ।
राजपुत्री सदैवाभूत् पूजाप्रणयिनी मुनेः ॥ ५२ ॥

हेमच्छेदच्छविपरिचितां कान्तिमङ्गे दधानं
तं पश्यन्ती कमलनयनं साभिलाषाभवत् सा ।
कामः कामं रुचिरविषयालम्बनः सङ्गमाशां
प्रत्यासत्त्या किमपि हृदये बद्धमूलां करोति ॥ ५३ ॥

सा निःश्वसन्ती स्मरसंभ्रमेण
बालानिलेनाकुलिता लतेव ।
अङ्गैरनङ्गस्य मुनेश्चकार
सानन्दमालिङ्गन मानताङ्गी ॥ ५४ ॥

नवकुचमुखलग्नेनाङ्गरागेण तस्या
हृदि मदनन्टपाज्ञालेख्यमुद्रां दधानः ।
मुनिरभवदकाण्डे संयमालानभङ्गा-
दभिमतनवलीलोच्छृङ्खल स्तत्क्षणेन ॥ ५५ ॥

दृषव्यपायान् मिथुनक्रियायां
समुद्यतः कर्कटदुर्ग्रहेण ।

རྒྱལ་པོ་སེང་གེའི་ཁྲིམ་དུ་ཉི་མཚུངས་ཏེ།
གདུང་སྨད་བུ་མོ་ལ་ནི་འགྲོ་འདོད་ཀྱང་།། 56

འཁྲུད་པའི་སྐྲུབ་བྱེད་དག་ལ་ལག་འགྲོ་མ་རྣམས་དག་ནི་སི་བཟད་པ།
ཡང་ཡང་རྒྱལ་སྐྱོངས་འཛིག་བྱེད་རང་བཞིན་ལུས་ངེས་པར་ཞུགས་པ་དག།
སྤུགས་ཀྱིས་ཞི་བ་མ་ཡིན་འོད་ཀྱི་རང་བཞིན་བསྟན་བཅོས་ནོར་བུས་མིན།
སྦྱོར་མིན་བསམ་གཏན་གྱིས་མིན་ཞི་བའི་ཁྲིད་པར་སྨན་གྱི་རོ་ཡིས་མིན།། 57

མཛའ་བའི་རང་བཞིན་ཀུན་པོ་འི་ལོངས་སྤྱོད་ཚུར།
རི་དགས་མིག་ཅན་གྱིས་འཐངས་ཏེ་ལྷུང་སྟེ།
དབེན་པ་མེད་ལས་སྐྱེས་པའི་ཡིད་སྨུབས་ཚོགས།
མཁས་རྣམས་ཀྱི་ཡབ་བརྟན་པ་མཐར་བྱེད་ཡིན།། 58

འགྲོགས་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས་སྙིང་ལ་ཆགས་དང་བཀླས་པའི་
གཞི་མ་མཚུ་ལ་འོ་དང་ནི།
བསམ་གཏན་དག་ལ་དམིགས་པའི་སྤྲུན་ལ་མཛའ་གཙུགས་
མཛོས་སྤུག་བདུང་བའི་དགའ་སྟོན་དང་།
ལྷུང་བཟེད་ཀྱིས་གཙང་ལག་པར་ཉུ་མ་བཟུང་སྟེ་སེ་དོག
མཚན་ལྡན་མཉེས་པ་ལས།
དུལ་མིན་བསྒྲུབ་པ་དག་གིས་དེ་ཡིས་བརྟུལ་ཞུགས་ཐམས
ཅད་གསར་པ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 59

ས་བདག་བུ་མོ་འི་ལག་པ་ཡིས། བྲ་བར་གཉིས་པ་དེ་ལ་ནི།
དགའ་སྟོན་གསུམ་འབར་འཕྲུལ་ཉིད་ལ། ཕྲག་དོག་ཅན་བཞིན་ཕྱིར་ཕྱོགས་འགྱུར།། 60

स राजसिंहस्य गृहेऽर्कतुल्य-
स्तापाथ कन्यागमनोत्सुकोऽभूत् ॥ ५६ ॥

न मन्त्रैरुत्सार्य्यं नच रुचिमयैः शास्त्रमणिभि-
र्न योगै र्न ध्यानै र्नच शमविशेषौषधिरसैः।
मुहुर्मूर्च्छामोहप्रणयमयमालिङ्गनविधौ
भुजङ्गीनां नूनं विषमविषमङ्गे निवसति ॥ ५७ ॥

निपातितः प्रीतिमये मृगाक्ष्या
स चौर्य्यसम्भोगरसे ममज्ज ।
मनीषिणा मप्यविवेकजन्मा
धैर्य्यान्तकृन्मन्मथसन्निपातः ॥ ५८ ॥

रागः सङ्गपराङ्मुखे हृदि जपाधारेऽधरे चुम्बनं
ध्यानालम्बिविलोचने प्रणयिनीलावण्यपानोत्सवः ।
पाणौ प्रायपविचिते कुचयुगं पुष्पायुधाराधने
तस्याः संयमदीक्षयैव नवतां सर्व्वं जगाम व्रतम् ॥ ५९ ॥

तस्याभूद् भूपतिसुता भुजपञ्जरवर्त्तिनी ।
दीप्ता सेर्ष्येव सहसा तपःसिद्धिपराङ्मुखी ॥ ६० ॥

དེ་ནི་ས་ཐུམ་ཆེ་བའི་ཚེ། ཕོ་བྲང་འཁོར་གྱི་སྐྱེ་བོ་ཡིས།
སྤྱོད་ཚུལ་ཞེས་ཀྱང་འཛིགས་གྱུར་ནས། སུས་ཀྱང་ཅི་ཡང་དེར་ན་སྨྲས།། 61

དེ་ནས་ས་བདག་ཡུན་རིང་ན། ཕྱིར་ལོག་རྒྱལ་བའི་དགའ་སྟོན་ཅན།
འཁོར་བ་སྨད་དུ་བྱུང་བའི་ཚོགས། རབ་ཏུ་ནང་བ་རྒྱས་པར་གྱུར།། 62

སྟོན་བྱུང་ཐུབ་པ་འཕྲོག་བྱེད་རྩེ། ས་བདག་གཏུས་ཤིང་དུལ་ལྡན་དེ།
རང་གི་ས་སྐྱོང་འོས་པའི། ལོངས་སྤྱོད་ཀུན་གྱིས་རབ་ཏུ་མཆོད།། 63

ཐུབ་པ་གསོལ་བའི་མདུན་དུ་ནི། ས་བདག་གསུམ་པས་འཁོད་པའི་ཚེ།
མཛེས་ལྡན་མ་ཡིས་སྔོན་དུ་ནི། རིམ་གྲོ་དག་ནི་ལེགས་པར་བྱས།། 64

དེ་ནས་གསེར་གྱི་ཆུ་སྣོད་ཀྱིས། ལག་གཉིས་བྲིམ་བ་དེ་ལ་ནི།
ཐུབ་པ་བརྟན་པ་བརྗོད་པ་ཡིས། ལག་བརྐྱངས་ཚུར་ཤོག་ཅེས་པ་སྨྲས།། 65

དེ་ཡི་འདོད་པའི་རྣམ་འགྱུར་དེ། མཁྲིང་ནས་མི་བདག་རབ་བྲིས་ཏེ།
སྡིག་པའི་ཕྱིར་བཅོས་སྦྱོར་བ་ལ། ཚད་པས་བཅད་པའི་བློ་གྲོས་བསྒྲུབས།། 66

དྲག་པོ་ཁྲིས་པ་ཕ་ཡི་བཞིན། མཁྲིང་ནས་མཛེས་ལྡན་མ་ཡིས་ཀྱང་།
ཐུབ་པའི་མགྲིན་པར་ཟམ་ཆགས་ཞེས། བརྗོད་ནས་དེ་ལ་ཆུ་དག་བྱིན།། 67

བུ་མེད་ཕུར་བུའི་བློ་གྲོས་ཅན། སྐབས་སུ་ཉེར་མཁོ་ངི་ཚིག་དག་ནི།
ཕྱིར་ལྡོག་སྒྲུ་མའི་རང་བཞིན་གྱིས། སྡིག་པའི་སྒྲིབ་བྱེད་རྣམ་པར་བཀྲ།། 68

न तं विज्ञाततत्त्वोऽपि भीत्यान्तःपुरिको जनः ।
महत्यविनये तस्मिन् कश्चिन्नोवाच किञ्चन ॥ ६१ ॥

चिरप्रत्यागतस्याथ भूपतेर्विजयोत्सवः ।
बभूवाद्भुतसम्भारप्रभूतविभवोद्भवः ॥ ६२ ॥

स पूर्वं भक्तिविनतः स्वयं हरिशिखं मुनिः ।
भूपतिं भूमिपालार्हैः सर्व्वभोगैरपूजयत् ॥ ६३ ॥

भुञ्जानस्य क्षितिपतौ प्रणयात् पुरतः स्थिते ।
मुने र्लावण्यवत्यग्रे परिचर्य्यापराभवत् ॥ ६४ ॥

ततस्तां हेमभृङ्गारव्यग्रपाणियुगां मुनिः ।
एह्येति विस्मृतधृतिः प्रसार्य्य भुज मब्रवीत् ॥ ६५ ॥

तस्य स्मरविकारं तं दृष्ट्वैव कुपितो नृपः ।
पापप्रतिक्रियायोगे विग्रहे विदधे मतिम् ॥ ६६ ॥

क्रूरकोपं पितुर्वक्त्रं दृष्ट्वा लावण्यवत्यपि ।
कण्ठलग्नं मुनेर्भक्ष्य मित्युक्त्वास्य ददौ पयः ॥ ६७ ॥

पापापह्नववैचित्र्यप्रत्युत्पन्नगिरः परम् ।
मायामये विनिमये बृहस्पतिधियः स्त्रियः ॥ ६८ ॥

བུ་མོ་ཡི་ནི་ཚིག་དེ་ཡིས། འཕྲུལ་ལ་ཉིད་དུ་མི་ཡི་བདག།
ཀ་ད་ཀ་ཡི་ཕྲེ་མ་ཡིས། ཆུ་ཡི་གནས་བཞིན་དང་བར་གྱུར།། 69

སྐབས་དེར་ཐུབ་པ་རྫུ་འཕྲུལ་བྲི། དེ་ཡིས་མཁའ་ལ་འགྲོ་ཉམས་པ།
སྦྲུན་ཟླ་ཐུ་བོ་ནགས་ན་གནས། ཀླ་ཡི་སྤྲུན་ལྡན་གྱིས་ཤེས་ནས།། 70

སྡུག་བསྔལ་རང་ཉིད་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། དེ་ནི་རང་གི་གནས་ཁྲིད་ནས།
སླར་ཡང་བསམ་གཏན་བཞི་བསྐྱངས་ཏེ། མངོན་ཤེས་ལྔ་དང་ལྡན་པར་གྱུར།། 71

ཐུབ་པ་ཆགས་པའི་ཆུ་གཏེར་དུ་ལྷུང་མི་བཟད་ཡུལ་གྱིས་ནི།
ཉོན་མོངས་འཁོར་ལོ་དག་ལས་ཕྱིར་ཕྱུང་རབ་མང་དཀའ་ཐུབ་ཀྱི།
གཟི་ཡི་འདོད་པ་དྲན་པའི་སྨིག་བཀུགས་ཤེས་ནས་ཁྲོ་བའི་ཚོགས།
བཏང་ནས་མི་བདག་བློ་ལྡན་དག་ཀྱང་རབ་ཏུ་དང་བར་གྱུར།། 72

དེ་ཡི་ཚེ་ན་ང་ཉིད་ནི། འཕྲོག་བྱེད་བུ་ཡི་མིང་ཅན་དེ།
ནག་པ་དག་ཀྱང་འཕྲོག་བྱེད་སྟེ། ཆུང་མ་རྒྱལ་པོའི་བུ་མོར་གྱུར།། 73

དེ་སྐད་དེར་ནི་མི་བདེན་མ་ཡིན་རབ་གྲགས་པའི།
རང་གི་གཏམ་འདི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་བཤད་གྱུར་ཏེ།
གང་གི་སྤྱོད་པ་མཐའ་དག་སྔོན་གྱི་རང་བཞིན་ལས།
དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་བློ་གྲོས་ཅི་ཡང་ཞུགས་མ་གྱུར།། 74

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ནག་པ་སྐྱོང་པོའི་སྟན་གྱི་རྟོགས་
པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བརྒྱད་པའོ།།

दुहितुर्वचसा तेन सहसैव प्रसन्नताम् ।
नृपः कतकचूर्णेन जलाशय इवाययौ ॥ ६९ ॥

अत्रान्तरे मुनेस्तस्य ज्येष्ठो भ्राता वनस्थितिः ।
विनष्टां दिव्यधीर्ज्ञात्वा लुप्तर्द्धिर्गगने गतिम् ॥ ७० ॥

दुःखितः स्वयमभ्येत्य तं नीत्वा निजमाश्रमम् ।
पश्चाभिज्ञं पुनश्चक्रे चतुर्ध्यानपरायणम् ॥ ७१ ॥

नरपतिरपि ज्ञात्वा रागोदधौ पतितं मुनिं
विषमविषयक्लेशावर्त्तात् पुनश्च विनिर्गतम् ।
बहुतरतपस्तेजोदग्धस्मरस्मृतिपातकं
रुषमुपचितां त्यक्त्वा धीमान् प्रसादमुपाययौ ॥ ७२ ॥

हरिद्रायनसंज्ञोऽसावहमेव तदाभवम् ।
चित्रो हरिशिखश्चाभूत् तत्पत्नी च नृपात्मजा ॥ ७३ ॥

अवितथां प्रथितां स्वकथामिमां
कथितवानिति तत्र तथागतः ।
प्रसभमेव भवाभिभवे मतिः
किमपि भिक्षुगणस्य यथाभवत् ॥ ७४ ॥

इति श्रीक्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
चित्रहस्तिशय्यातिपुत्रावदानमष्टाशीतितमः पल्लवः ॥

ལམ་འདྲེན་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་དགུ་པ།

འཛིགས་རུང་སྟུག་པོའི་རླུང་གིས་རབ་བསྐྱངས་རྦ་རླབས་ཉམ་སྤྲུལ་པས།
མ་ལུས་ཕྱོགས་ཀུན་ཡོངས་འགེངས་ནག་པོའི་སྤྲ་དང་རབ་ཏུ་ལྡན།
ཆུ་སྲིན་འབྱུང་གནས་བཀྲོག་དཀའ་རྒྱ་ཡི་རྣམ་འགྱུར་ཅན་དེ་ཡང་།
བདེ་གཤེགས་དྲན་པའི་མི་རྣམས་དག་ལ་མཐའ་རུ་གྱུར་པ་ཉིད།། 1

རྒྱལ་བ་འགྲོ་ཀུན་བདེ་ལེགས་ལ། རྟག་ཏུ་སྦྱོར་ཞིང་མཆོན་ཡོད་ཀྱི།
རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་གྱི་ཀུན་དགའ་ར། གཙུག་ལག་ཁང་ན་སྤྱོད་ཞུགས་ཆེ།། 2

ཡངས་པའི་གླིང་དུ་འགྲོ་བ་ལ། སྐྱོ་བ་ཡི་ནི་དུས་བྱས་པ།
རིན་ཅེན་དོན་གཉེར་ཚོང་པ་ཡི། དོན་མཐུན་ཆུ་གཏེར་ཆ་འགྲམ་ཕྱིན།། 3

དེ་ནས་གཟིངས་ལ་དོན་མཐུན་ནི། རབ་ཏུ་ཞོན་ཆེ་ལྡི་བའི་ཁར།
དཔྱད་ནས་བྱིང་དུ་དོགས་པ་ཡི། ཉ་བ་འཛིན་པས་དེ་ལ་སྨྲས།། 4

ཁྱེད་རྣམས་རབ་ཏུ་སྐྱིད་པ་ཡིས། བརྒྱད་མར་ཞེན་པ་འདི་ནི་ཅི།
ཆུ་གཏེར་རྦ་རླབས་རྩེ་མོ་འདི། ཁྲིམ་གྱི་ཁྲིམས་ནི་ཡོངས་མ་ཡིན།། 5

རི་ཞིག་ཁྱོད་ཀྱིས་གཟིངས་ལ་ནི། འཚམས་པའི་ཁར་དག་རབ་ཏུ་མཛོད།
རིན་ཅེན་ཕུང་པོ་སུ་མི་འདོད། འོན་ཀྱང་ཆུ་གཏེར་འཚོ་བ་མང་།། 6

ऊननवतितमः पल्लवः ।

उद्भूतभैरवघनानिलनिर्म्मितोर्म्मि-
संपूरिताखिलदिगन्तरघोरघोषः ।
दुर्वारवारिविहृति र्मकराकरोऽपि
सौम्यत्वमेति सुगतस्मरणेन पुंसाम् ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां स्वस्तये सर्व्वजगतां सततोद्यते ।
जिने जेतवनारामविहारनिरते पुरा ॥ २ ॥

विपुलद्वीपयात्राया मुत्साहेन कृतक्षणः ।
रत्नार्थी वणिजां सार्थस्तीरं प्राप महोदधेः ॥ ३ ॥

ततः प्रवहणारूढे सार्थे गुरुतरं भरम् ।
विचिन्त्य कर्णधारस्तानूचे मज्जनशङ्कितः ॥ ४ ॥

केयं युष्माकमौत्सुक्यादारोहणपरम्परा ।
तुङ्गतरङ्गसङ्गोऽयं न गृह्णाङ्गनमम्बुधिः ॥ ५ ॥

सद्यस्तावत् प्रवहणे भवद्भिः क्रियतां भरः ।
रत्नराशिर्न कस्येष्टः किन्त्वब्धिर्बहुविप्लवः ॥ ६ ॥

ཆུ་གཏེར་ན་ནི་གཞན་ན་བ་རླབས་རབ་འཁྲུག་དྲག་པོའི་ཆུ་སྲིན་ཚོགས་
དཀྲིགས་ཤུགས།

གཞན་ན་རང་གི་རི་བོ་བརྟན་པའི་རྫི་སོ་ཚོགས་ཀྱི་རྒྱུན་བཀག་འཕྲོར།

གཞན་ན་རླུང་ནི་མཐར་བྱེད་དག་གི་དབུགས་ལྟར་དྲག་པ་ལང་པས་
ཀུན་ཏུ་བསྐྱུན་ཅིང་འཁོར།

གཞན་ན་སྒྲོ་བུར་ཉམས་བྱེད་དུ་གདོང་སེ་ནི་རབ་བརྟན་མི་བྱེའི་
དཀྱིལ་འཁོར་གནས་པ་ཡོད།། 7

ཅེས་པ་ཟླ་བའི་འཛིན་པ་ཡིས། ཆུ་གཏེར་རང་བཞིན་བཤད་ཐོས་ནས།
འགའ་ཞིག་བབས་ནས་སོང་བར་གྱུར། བསམ་པ་ཆེ་བ་འགའ་ཞིག་འཁོད།། 8

དེ་ནས་རིན་ཆེན་གླིང་ཕྱིན་ནེ། དོན་མཐུན་དོན་གྲུབ་ཉིད་གྱུར་ཅིང་།
དཔལ་བྱུས་དཔལ་བྱུས་རྗེས་མཐུན་གྱི། གླིང་གི་རྗེས་སུ་ལོག་པའི་ཚེ།། 9

རི་བོ་མནད་ར་བསྐྱང་བཞིན། ནམ་མཁའ་ཀུན་དུ་གང་གྱུར་ཅིང་།
ཁ་གདངས་ཞུབ་ལྷུར་གྱུར་པ་ནི། ཚོང་པ་ཀུན་གྱི་མདུན་དུ་སོང་།། 10

རུས་སྦལ་ཉ་དང་ཆུ་སྲིན་བཅས། རྒྱ་མཚོའི་ཆུ་ནི་མ་ལུས་པ།
གཡང་སར་ལྷུང་བཞིན་དེ་ལ་ནི། སྔོན་ཕྱོགས་མགྱོགས་པར་སོང་གྱུར་ཅིང་།། 11

དེ་ནས་གཟིངས་ནི་མཐར་བྱེད་ཀྱི། ཁ་ཡི་ཕྲུག་དང་ཉེ་བའི་ཚེ།
ཚོང་པ་བསྐྱོད་པས་འཁྲུགས་རྣམས་ཀྱིས། ཟླ་བ་འཛིན་པ་དག་ལ་སྨྲས།། 12

སྔོན་མ་བྱུང་བ་བྱུང་གྱུར་པ། མད་བྱུང་འབྱུང་པོ་འདི་ནི་ཅི།
གང་གི་སྤྲི་བོར་ཆ་ཟེར་ཅན། ཟུང་ཞིག་ཤར་བ་ཟླ་བུར་མཐོང་།། 13

अन्यत्रोर्मिप्रबन्धः खरमकरकुलव्याकुलोऽन्यत्र वेगः
कीर्णोऽन्यत्रान्तराद्रिस्थिरशिखरघनोद्घातसम्पाकतोयः ।
अन्यत्रोद्यत्कृतान्तश्वसिततरमरुत्सन्निपातभ्रमोऽब्धे-
श्चण्डोऽन्यत्रास्त्यकाण्डक्षयनिविड़शिखामण्डलो बाड़वाग्निः ॥ ७ ॥

श्रुत्वेति कर्णधारेण कथितं रूपमम्बुधेः ।
अवरुह्य ययुः केचित् तस्थुः केचिन्महाशयाः ॥ ८ ॥

रत्नद्वीपमथासाद्य याते सार्थे कृतार्थताम् ।
अनुकूलानिले काले प्रत्यावृत्ते शनैः शनैः ॥ ९ ॥

ददृशुर्वणिजः सर्व्वे पुरः संपूरिताम्बरम् ।
विसारितास्यकुहरं मन्दराद्रिमिवोन्नतम् ॥ १० ॥

सकूर्मभीनमकरः सलीलः सकलोऽम्बुधिः ।
तस्यैवाभिमुखं वेगात् प्रस्थितः श्वभ्रपातवत् ॥ ११ ॥

कृतान्तवक्त्रकुहरासन्ने प्रवहणे ततः ।
पप्रच्छुर्वणिजः कर्णधारं विस्मयविह्वलाः ॥ १२ ॥

अभूतपूर्व्वं मुहूर्तं भूतं किमिदमद्भुतम् ।
उदितं मूर्ध्नि चण्डांशुयुगलं यत्र दृश्यते ॥ १३ ॥

འདི་ནི་མངོན་ཕྱོགས་ཆ་འདི་དག། ཅི་སྐད་ཡོངས་སུ་གྲུག་པར་བྱེད།
གང་གི་ཤུགས་ཀྱིས་གཟིངས་འདི་ནི། འདྲེན་པར་བྱེད་ཅིང་རྣམ་པར་གཡོ། ‖ 14

དེ་ལྟ་གློ་བུར་བརླགས་ཇོས་པའི། འཇིགས་པའི་རྣམ་འཕྲུལ་གྱིས་སྐྲག་པ།
ཚོང་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཐེ་ཚོམ་ངེས། རྣ་བ་འཛིན་པས་རབ་སྨྲས་པ ‖ 15

ཉ་མིད་མིད་པར་བྱེད་པའི་ཉ། སེམས་ཅན་འཇོམས་བྱེད་ཆེན་པོ་འདི།
རྒྱ་མཚོ་དག་ན་རྣམ་པར་གནས། འཁོར་བ་ན་ནི་ཀུན་སྤོངས་བཞིན ‖ 16

ཉི་མ་བཅུ་གཉིས་འཆར་རྩོམ་ཚེ། ཉི་མ་ཟུང་ནི་ཤར་བ་བཞིན།
དུས་མཐའ་འཇིགས་རུང་འདི་ཡི་ནི། མིག་ནི་ཟུང་དག་རབ་ཏུ་མཐོང ‖ 17

འདི་ཡི་ཁ་ཡི་གཡང་སའི་མཐར། སྲིན་དཀར་དག་གིས་ཡོངས་བསྐོར་བའི།
རི་རྗེ་ཆེན་པོའི་འཕྲེང་བ་བཞིན། སོ་ཡི་འཕྲེང་བ་རབ་ཏུ་མཆེན ‖ 18

འདི་ཡི་ཁ་རུ་ལྷུང་བ་ཡི། རྒྱུན་གྱིས་གཟིངས་ནི་དྲངས་པ་དག།
ཡུལ་ལ་མངོན་པར་ཕྱོགས་པ་ཡི། སེམས་བཞིན་གཟུང་བར་ནུས་མ་ཡིན ‖ 19

འཆི་བ་ལས་ཀྱིས་སྤྲུལ་གྱུར་པ། འདི་ལ་ཕྱིར་བཅོས་ཡོད་མ་ཡིན།
སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་དགེ་སྦྱོར་བའི། ལྷ་ནི་ཅུང་ཟད་དྲན་པར་མཛོད ‖ 20

ཅེས་པ་རྣ་བ་འཛིན་གྱིས་བརྗོད་པ། ཚོང་པའི་ཚོགས་ཀུན་གྱིས་ཐོས་ནས།
སངས་རྒྱས་སངས་རྒྱས་ཕྱག་འཚལ་ཞེས། ཚོ་ངའི་སྒྲ་དང་ལྡན་པས་སྨྲས ‖ 21

अस्याभिमुखमेतत् किं सलिलं परिसर्पति ।
क्षिप्यमाणं प्रवहणं यस्य वेगेन घूर्णते ॥ १४ ॥

इत्यकाण्डक्षयारम्भभयसम्भ्रमकातरैः ।
वणिग्भिः संशये पृष्टः कर्णधारः समभ्यधात् ॥ १५ ॥

तिमिङ्गिलगिलि मत्स्यः सत्त्वसंहारकृन्महान् ।
संमोह इव संसारे निवसत्येष सागरे ॥ १६ ॥

अस्य कल्पान्तघोरस्य नेत्रयुग्मं प्रदृश्यते ।
द्वादशार्कोदयारम्भे सूर्यद्वयमिवोदितम् ॥ १७ ॥

अस्यास्यश्वभ्रपर्यन्ते शुभ्राभ्रपरिवारिता ।
महाद्रिशृङ्गमालेव लक्ष्यते दशनावली ॥ १८ ॥

प्रवाहेण प्रवहणं कृष्टमस्यास्यपातिना ।
विषयाभिमुखं चित्तमिव धर्तुं न शक्यते ॥ १९ ॥

स्मर्य्यतां दैवतं किञ्चिज्जन्मान्तरशुभप्रदम् ।
प्रतिक्रियास्मिन्नास्त्येव निधने कर्म्मनिर्म्मिते ॥ २० ॥

इत्युक्तं कर्णधारेण श्रुत्वा सर्व्वे वणिङ्नराः ।
नमो बुद्धाय बुद्धायेत्यूचुः साक्रन्दनादिनः ॥ २१ ॥

འཇིགས་པས་གཟིར་བ་དེ་དག་སྐྲ། བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱི།
ཚལ་བཞུགས་འབྱུང་པོ་ལ་དགོས་པས། ལྷ་ཡི་ཟ་བ་དག་གིས་ཐོས།། 22

སྨུག་པ་ཞི་བྱེད་སངས་རྒྱས་ཀྱི། མཚན་ཐོས་ཉིད་ན་སེམས་ཅན་གྱི།
ཉིད་འཚོ་ཞི་སྐད་ཅ་ཟིད་ཁ། དལ་བུ་ཡིས་ནི་ཐུབ་པར་གྱུར།། 23

དམ་གྱིས་དེ་ནི་ཁ་བསྒྲིབས་ཚེ། མི་མཐུན་ཕྱོགས་འགྲོ་རྒྱུན་ཉམས་པས།
དུས་ཀྱི་ཁ་ལས་གྲོལ་བ་ཡི། གཟིངས་ནི་རང་གི་ངོས་སུ་ཕྱིན། 24

དེ་ནས་མི་བཟད་འཇིགས་ལས་ཐར། གྲགས་པའི་དཔལ་ལྡན་རིན་ཅན་གྱིས།
ཁྱིངས་ཞིང་དགེ་བ་ལྡན་པ་ཀུན། མཉན་ཡོད་དུ་ནི་རྣམ་པར་ཞུགས།། 25

གུས་ལྡན་དེ་དག་སོང་གྱུར་ནས། གདུང་བ་སྐྱོབ་པར་མཛད་པ་པོ།
རྒྱལ་བ་བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བྱེད་ཀྱི། ཚལ་ན་བཞུགས་ལ་ཕྱག་དག་འཚལ།། 26

དེ་དག་དེ་མཐོང་ཉིད་ན་ནི། འཁོར་བའི་འཆིང་བ་ཆད་གྱུར་ཅིང་།
འཕྲུལ་ལ་རབ་དུ་དང་བ་ཐོབ། རབ་ཏུ་བྱུང་ནས་དགྲ་བཅོམ་གྱུར།། 27

འདི་དག་སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བ་ལ། སྟོན་པ་འོད་སྲུངས་ཞེས་པ་ཡི།
བསྟན་ལ་ཞུགས་པར་གྱུར་ཏོ་ཞེས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རབ་ཏུ་གསུངས།། 28

རྒྱ་མཚོར་ཉ་མིད་མིད་པ་ཡང་། སེམས་ཅན་འཇོམས་ལས་ཆགས་བྲལ་དེ།
བཀྲེས་པའི་མེ་རྟོན་གྱིས་ཉེན་ཅིང་། སྐད་ཅིག་གིས་ནི་སྲོག་ཟད་ཐོབ།། 29

नादं तेषां भयार्त्तानां भगवान् भूतभावनः ।
दिव्यश्रोत्रेण शुश्राव जिनो जेतवने स्थितः ॥ २२ ॥

बुद्धाभिधानं श्रुत्वैव तमःप्रशमनं तिमिः ।
शनैर्निमीलयन् वक्त्रं सत्त्वोपप्लवशान्तये ॥ २३ ॥

संवृतास्ये शनैस्तस्मिन् प्रतिवेगौघविप्लवात् ।
कालवक्त्रात् प्रवहणं मुक्तं सतत माययौ ॥ २४ ॥

ततः कुशलिनः सर्व्वे तीर्णाः तीव्रतराद् भयात् ।
श्रावस्तीं रत्नसम्पूर्णां विविशु विश्रुतश्रियः ॥ २५ ॥

ते गत्वा भक्तिसंयुक्ता व्यसनत्राणकारिणम् ।
जिनं जेतवनासीनं भगवन्तं ववन्दिरे ॥ २६ ॥

ते तस्य दर्शनेनैव च्छिन्नसंसारबन्धनाः ।
सद्यः प्रसादमासाद्य प्रव्रज्यार्हत्त्वमाययुः ॥ २७ ॥

अभवन् काश्यपाख्यस्य शास्तुः शासनवर्त्तिनः ।
एते जन्मनि पूर्व्वस्मिन् प्रोवाच भगवानिति ॥ २८ ॥

तिमिङ्गिलगिलि स्त्वब्धौ विरतः सत्त्वसंहृतेः ।
प्राप क्षयेन तीक्ष्णाग्निक्षुत्क्षतः प्राणसंशयम् ॥ २९ ॥

ཁྲོ་དང་མི་བཟོད་ཡིད་འབྱུང་དང་། བཅས་པའི་ཀླུ་ནི་སྤོབས་ལྡན་གྱིས།
དེ་ཡི་རོ་ནི་མི་གཙང་བ། ཆུ་གཏེར་དག་གི་ངོགས་སུ་འཕངས། 30

དུས་ཀྱིས་རུས་པ་སྐམ་པོ་ཡི། རང་བཞིན་ལུས་དེ་རྣམ་བཀྲས་པ།
རི་བོ་བརྩེགས་པ་ཁ་བ་ཡི། ཕུང་པོས་བསྒྲིབས་པ་བཞིན་དུ་མཛེས། 31

དེ་ནས་མཚན་ཡོད་བྲམ་ཟེ་ནི། སུ་མན་དུ་ཡི་བུ་ཉིད་ཀྱང་།
མ་ལ་བཀྲིས་པའི་སྡུག་བསྔལ་ཚོར། མི་བཟད་མངལ་གནས་དེ་ཡིས་བྱས། 32

སྐྱེས་ཚེ་བཀྲིས་པ་བུད་མེད་ནི། བརྒྱ་ཡི་འོ་མས་ཚིམ་མ་གྱུར།
དལ་གྱིས་སྐྱེད་བསྐྱངས་ཚེ་ར་ནི། ཟས་ཚོགས་ཤིན་དུ་མང་བས་ཀྱང་། 33

མ་ཚིམ་མཆོག་དུ་ཡིད་འབྱུང་བ། དེ་ནི་དགེ་སློང་ཚོགས་སོང་ནས།
རབ་ཏུ་བྱུང་བ་ཉེ་བར་བླངས། བསོད་སྙོམས་དག་གིས་ཚིམ་མ་གྱུར། 34

དེ་ནས་ཆེར་བཀྲིས་གྲུགས་པ་དེ། དད་བས་མགྲོན་གཉེར་དགེ་འདུན་གྱི།
རྒྱ་ཆེ་མཆོད་སྟོན་དེ་དང་དེས། གང་དུ་ཡང་ནི་ཚིམ་མ་གྱུར། 35

སྐབས་དེར་ཁྱིམ་བདག་དཔལ་དང་ལྡན། སྦྱིན་པའི་བདུལ་ཞུགས་ཞེས་བརྗོད་པས།
དད་པ་ཡི་ནི་དགེ་སློང་རྣམས། མགྲོན་དུ་གཉེར་སྣང་ཉེ་བར་འོངས། 36

དགེ་འདུན་གཞན་དུ་གསོལ་བ་ལ། གཤེགས་ཚེ་མང་ཟ་དེ་ཉིད་ནི།
གཅིག་བུ་དེ་ཡིས་ཡང་དག་ཐོབ། དེ་ལ་ཟས་ནི་རབ་ཏུ་ཕུལ། 37

छिन्नं कलेवरं तस्य दुरामोदासहिष्णुभिः ।
सोद्वेगैर्वणिग्भिर्नागैः क्षिप्तं जलनिधेस्तटे ॥ ३० ॥

स शुष्कास्थिमयः कायः कालेन क्षालितोऽम्बुभिः ।
तुषारराशिसंच्छन्नः शैलकूट इवाबभौ ॥ ३१ ॥

श्रावस्त्यां ब्राह्मणस्याथ सुमतेः पुत्रतां गतः ।
मातुः स चक्रे गर्भस्थ स्तीव्रां क्षुद्दुःखवेदनाम् ॥ ३२ ॥

स जातः स्त्रीशतस्तन्यै स्तृप्तिं न क्षुधितो ययौ ।
स शनै र्वर्द्धमानश्च संभृतैर्भूरिभोजनैः ॥ ३३ ॥

अतृप्त्या परमुद्विग्नः स गत्वा भिक्षुसङ्गमम् ।
प्रव्रज्यां समुपादाय तृप्तिं न प्राप पिण्डकैः ॥ ३४ ॥

बहुभुग्विश्रुतः सोऽथ विपुलैः सङ्घभोजनैः ।
श्रद्धानिमन्त्रणै स्तैस्तै र्न क्वचित् तृप्तिमाययौ ॥ ३५ ॥

अत्रान्तरे गृहपतिः श्रीमान् दानव्रताभिधः ।
निमन्त्रणाय भिक्षूणां श्रद्धया समुपाययौ ॥ ३६ ॥

सङ्घे ऽन्यत्र गते भोक्तुं तमेव बहुभोजनम् ।
एकमेव स संप्राप्य भोज्यं तस्मै न्यवेदयत् ॥ ३७ ॥

སྐྱེས་བུ་རབ་ཏུ་མང་བའི་ཟས། སྣོད་གཅིག་གིས་ནི་དེ་ཟོས་ཚེ།
མཐའ་དག་དགེ་འདུན་མཆོད་སྟོན་ནི། ཁྱིམ་གྱི་བདག་པོས་དེ་ལ་བྱིན།། 38

ཡ་མཚན་བྱེད་པོ་དེ་ཡིས་ནི། གཟན་གྱི་ཕུང་པོ་ཟོས་པའི་ཚེ།
ཁྱིམ་གྱི་བདག་པོ་འཛིགས་པ་ཡི། འབྱུང་པོར་བརྟགས་དེ་ཡང་དག་བསམས།། 39

ཀྱེ་མ་རབ་གཉེན་ཆུང་ངུ་ཡི། ཟས་ཅན་འདི་ནི་བདག་གིས་ཐོབ།
གང་ཞིག་གཅིག་པུས་དགེ་འདུན་གྱི། མཆོད་སྟོན་དག་ནི་མ་ལུས་ཟོས།། 40

ཟླ་སྲིད་གཏོང་སྦྱིན་འདི་ཡིས་ནི། ཞར་ལ་བདག་ཀྱང་མ་ཟོས་པས།
དེ་སྲིད་འདི་ལ་ཡོན་བྱིན་ནས། བདག་ནི་མགྱོགས་པར་འགྲོ་བར་བྱ།། 41

ཞེས་བསམས་རྟོགས་དང་བཅས་པ་དེ། དེ་ལ་ཡོན་ནི་རབ་ཕུལ་ནས།
ཕྱི་ནས་འོང་བ་ལ་སྐྲག་པས། ཕྱིར་མིག་རྣམ་པར་བལྟ་ཞིང་སོང་།། 42

ཕྱིན་ནས་དེ་ཡི་སྤྱོད་ཚུལ་ཀུན། དེ་ཡིས་བཅོམ་ལྡན་ལ་བཤད་དེ།
འདི་ནི་གཏོང་སྦྱིན་སྦྱིན་པོ་འམ། ཅི་ཞེས་བདེ་གཤེགས་སྟོན་དུ་དྲིས།། 43

བཅོམ་ལྡན་གྱིས་ཀྱང་དེར་གསུངས་པ། གཏོང་སྦྱིན་འདི་མིན་སྦྱིན་པོ་མིན།
དགེ་སློང་ཆོས་སྲིད་ཅེས་བྱ་བ། འདི་ནི་དགྲ་བཅོམ་ཉིད་དུ་འགྱུར།། 44

དེ་ནས་སྟོན་པ་རང་ཉིད་ཀྱིས། ཆོས་སྲིད་མཁའ་ལ་ཁྲིད་ནས་ནི།
དེ་ལ་འཛིགས་སུ་རུང་བ་ཡི། རང་གི་ལུས་དག་རབ་ཏུ་བསྟན།། 45

तस्मिन् क्षणेन भुञ्जाने प्रभूतपुरुषाशनम् ।
ददौ गृहपतिस्तस्मै समस्तं सङ्घभोजनम् ॥ ३८ ॥

अन्धसां शकटे तेन भुक्ते विस्मयकारिणा ।
भीत्या गृहपति र्भूतशङ्कार्त्तः समचिन्तयत् ॥ ३९ ॥

अहो मयायं संप्राप्तः सुकुमारोऽल्पकाशनः ।
निःशेषं भुक्तमेकेन येन सङ्घस्य भोजनम् ॥ ४० ॥

प्रसङ्गेन न यक्षोऽयं यावन्मामपि खादति ।
दत्त्वास्मै दक्षिणां तावज्जवादपसराम्यहम् ॥ ४१ ॥

इति सञ्चिन्त्य साशङ्क स्तस्मै दत्त्वा स दक्षिणाम् ।
पश्चादागमनत्रासाद् ययौ विवलिताननः ॥ ४२ ॥

गत्वा भगवते सर्व्वं तद्वृत्तान्तं निवेद्य सः ।
कोऽसौ यक्षो नु रक्षो वेत्यपृच्छत् सुगतं पुरः ॥ ४३ ॥

भगवानपि तं प्राह नासौ यक्षो न राक्षसः ।
एष धर्म्मरुचिर्नाम भिक्षु रर्हत्त्व मेष्यति ॥ ४४ ॥

अथ धर्म्मरुचिं शास्ता स्वयं नीत्वा विहायसा ।
अदर्शयन्निजं तस्य विकरालं कलेवरम् ॥ ४५ ॥

འཁོར་བ་བཞིན་དུ་འཇིགས་རུང་བ། དེ་ཡི་མཐར་ནི་མཐོང་གྱུར་ནས།
ཆོས་སྲིད་སྐྱོ་ནས་རྒྱལ་བ་ལ། འདི་ཅི་ཞེས་པ་རབ་དུ་དྲིས།། 46

ཅུང་ཟད་འཇུམ་དཀར་བཞིན་རས་ཅན། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་དེར་གསུངས་པ།
འཇིགས་སུ་རུང་བའི་ལུས་འདི་ནི། བསྐམས་པས་ཤིང་རགས་པ་རུས་པའི་གཟེབ།།47

ཆོས་སྲིད་རབ་དུ་ཞི་བ་བསྟན། དངོས་པོ་ཡོངས་སུ་འཇོན་པ་མཐོང་།
རྒྱབ་ཀྱི་ཚིགས་རུས་ལྷུགས་སྒྲིགས་ཅན། རགས་པ་འདི་ནི་ཁྱོད་ཀྱིའོ།། 48

བདེ་གཤེགས་ཀྱིས་གསུངས་དེ་ཐོས་ནས། རང་གི་ལུས་ལ་རྟོགས་བྱེད་ཅིང་།
ཆོས་སྲིད་སྲིད་པ་འཁྲུལ་པ་ལ། མཆོག་ཏུ་སྐྱོ་བ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 49

དེ་ནས་པས་ཀྱི་མ་རྫོངས་པ་ཡིས། ལམ་ལ་རབ་དུ་འགྲོད་པའི་འགྲོན།
མི་རྣམས་སྐད་ཅིག་བརྟེན་པ་ཡི། ལུས་ལ་རང་གི་ཉིད་དུ་ཆགས།། 50

ལུས་ནི་རབ་ཉམས་སྲིན་བུའི་ཚོགས་ཀྱིས་ཁང་ནི་བུག་པར་བྱས་གྱུར་ཅིང་།
དབྱིབས་བྲལ་རུས་པའི་ཀ་བ་རབ་གསལ་མོ་ཡི་འཁྱིང་བ་འཇིགས་རུང་འདི།
འཇིག་པའི་རང་བཞིན་སྒྱུ་མ་ལ་ཆགས་མི་རྣམས་དག་གི་སྲིད་འཕེལ་ཞིང་།
ཆགས་བཅས་ཡུལ་གྱི་ཉམས་སྟོང་ས་གཞི་གཉེར་བ་དང་བཅས་དེ་དག་གོ།། 51

དེ་ལྟར་རང་གི་ལུས་མཐོང་བས། ཆགས་བྲལ་ཡང་དག་སྐྱེས་པ་དེ།
རྒྱལ་བས་བླངས་ནས་ནམ་མཁའ་ལ། སླར་ཡང་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་དུ་སོང་།། 52

तदपर्यन्तमालोक्य संसारमिव भीषणम् ।
किमेतदिति पप्रच्छ खेदाद्धर्मरुचिर्जिनम् ॥ ४६ ॥

तमवोचत् स सर्व्वज्ञः किञ्चित्स्मितसितानन्नः ।
अयं भयङ्करः कायः शुष्कः स्थूलास्थिपञ्जरः ॥ ४७ ॥

भज धर्म्मरुचे शान्तिं त्यज भावपरिग्रहम् ।
स्थवीयसी तवैवेयं पृष्ठस्थूणास्थिशृङ्खला ॥ ४८ ॥

श्रुत्वैतत् सुगतेनोक्तं कलयन् स्वकलेवरम् ।
भवभ्रमे धर्म्मरुचिः परं निर्व्वेदमाययौ ॥ ४९ ॥

सोऽचिन्तयदहो मोहमार्गे संसरतां नृणाम् ।
क्षणप्रतिश्रये काये पान्थानां निजवासना ॥ ५० ॥

विसंस्थास्थिस्थूणः प्रकटदशनश्रेणिविकटः
प्रणष्टः कायोऽयं कृमिकुलचितच्छिद्रनलकः ।
इमास्ताः सापायाः प्रलय —— मायाप्रणयिणां
नृणां रोहत्स्नेहाः सरसविषयास्वादनभुवः ॥ ५१ ॥

इति संजातवैराग्यं स्वकलेवरदर्शनात् ।
व्योम्ना जिन स्तमादाय ययौ जेतवनं पुनः ॥ ५२ ॥

དེར་ནི་དེ་ལ་བཅོམ་ལྡན་གྱི། བརྩེ་བས་བསྟན་མཛད་གང་གིས་ནི།
རྒྱུན་དང་ལྡན་གཅིག་ཕྱིར་མི་འོང་། རིམ་པས་དགྲ་བཅོམ་ཉིད་ཐོབ་གྱུར། ། 53

ཉོན་མོངས་ཀུན་ལས་རྣམ་གྲོལ་ངེས། དེ་བཞིན་གཤེགས་ལ་ཕྱག་འཚལ་ཏེ།
སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བའི་ཚོགས་དྲན་ནས། བཞིན་ནི་འཛུམ་པ་དང་བཅས་སོང་། ། 54

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་བཅོམ་ལྡན་འདས། ཀུན་མཁྱེན་དགྱེས་པས་དགེ་སློང་གི།
ཚོགས་དང་ཉེ་བར་འོངས་པ་ཡི། འཆིང་བ་བཅད་པ་དེ་ལ་གསུངས། ། 55

ཆོས་སྲིད་ཉོན་མོངས་ལམ་དག་ནི། ཡངས་པའི་དུས་ལ་ཡུན་རིང་གི།
ཤིན་ཏུ་ཆེས་ཀྱང་ཡུན་རིང་བ། ཡུན་རིང་ལས་ཀྱང་ཡུན་རིང་བར། ། 56

ཡུན་རིང་རྒྱུ་བས་བསགས་པ་ཡི། པ་རོལ་མེད་པའི་ཀུན་ཉོན་མོངས།
བར་མེད་དེ་ཡིས་ཆོས་སྲིད་ཁྲིད། མི་ངལ་ལམ་ཅི་ཙམ་ཞིག་སློས། ། 57

ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་དམ་པ་ཡི། མདུན་དུ་ཆོས་སྲིད་ལ་འདི་བྲིས།
སྔོན་སྐྱེ་དྲན་པ་སྨྲེར་བ་ཡི། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་དེས་གསོལ་པ། ། 58

བཅོམ་ལྡན་རེ་ཞིག་ཉོན་མོངས་ལམ། ཡངས་པའི་དུས་ལ་ཡུན་རིང་གི།
ཤིན་ཏུ་ཆེ་ཀྱང་ཡུན་རིང་བར། ཡུན་རིང་ལས་ཀྱང་ཡུན་རིང་བ། ། 59

རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་རབ་ལྡིའི་ཁྲར་བུ་མངལ་གྱི་མལ་སྟན་དྲི་མས་མཚན།
ལུས་ཀྱི་སྦུར་མའི་ཚོགས་ནི་ཤིན་ཏུ་ཡུན་རིང་བཟུང་ནས་ངལ་ཞིང་འཁྲུམ།

तच्चास्य चक्रे भगवान् दयया देशनां यया ।
स्रोतःसकृदनागामि स यदर्हत्त्वमाप्तवान् ॥ ५३ ॥

सर्व्वक्लेशविनिर्मुक्तः स प्रणम्य तथागतम् ।
प्राग्जन्मनिचयस्मृत्या प्रययौ सस्मिताननः ॥ ५४ ॥

ततः कदाचिदायातं तं भिक्षुगणसन्निधौ ।
जगाद भगवान् प्रीत्या सर्व्वज्ञ श्छिन्नबन्धनम् ॥ ५५ ॥

चिरस्य किं धर्म्मरुचे महता सुचिरेण च ।
क्लेशाध्वविपुले काले चिराच्चिरतरेण च ॥ ५६ ॥

वद धर्म्मरुचे कच्चिच्चिरसञ्चारसञ्चितैः ।
तैरपारपरिक्लेशै र्न श्रान्तोऽसि निरन्तरैः ॥ ५७ ॥

इति धर्म्मरुचिः पृष्टः सर्व्वज्ञेन सतां पुरः ।
प्राग्जन्मस्मृतिदातारं भगवन्त मभाषत ॥ ५८ ॥

चिरस्य तावद् भगवन् महता सुचिरेण च ।
क्लेशाध्वविपुले काले चिराच्चिरतरेण च ॥ ५९ ॥

नानाकारै र्गुरुतरभरै र्गर्भशय्यामलाक्तैः
भ्रान्तः श्रान्तश्चिरतरधृतैः कायकन्यासमूहैः ।

སྡུག་བསྔལ་ཅན་རྣམས་གདུང་ལ་སྙིང་རྗེའི་གཅིག་ཁྲིད་རབ་ཏུ་ཐོབ་གྱུར་ནས།
སྒྲིབ་པ་ཀུན་དང་བྲལ་བའི་ངལ་གསོས་འདི་ནི་ཀྱི་མ་བདག་གིས་ཐོབ། 60

དེ་ལྟར་དེར་ནི་ཆོས་སྨྲེད་དང་། རྒྱལ་བའི་གདམས་ཀྱི་མཇུག་ཏུ་ནི།
མཚར་ནས་ཚུལ་དེ་དགེ་སློང་གིས། དྲིས་ཤིང་དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས། 61

སྔོན་གྱི་བསྐལ་པར་གྲོང་ཁྱེར་ནི། དགེ་བ་ཅན་དུ་ས་ཡི་བདག།
དགེ་བ་ཞེས་ལ་བཅོམ་ལྡན་འདས། བདེ་གཤེགས་དགེ་མཛད་ཅེས་པ་བྱུང་། 62

དེ་ཡི་དུས་ན་ཁྱིམ་བདག་ནི། ཆོས་ཀྱི་ངང་ཚུལ་ཞེས་པ་བྱུང་།
རྒྱ་མཚོར་བགྲོད་པའི་རིན་ཅན་གྱིས། རྣམ་ཐོས་སྲས་དང་མཚུངས་པ་ཐོབ། 63

དེ་ནས་དུས་ཀྱིས་དེ་བཞིན་གཤེགས། གཟི་བརྗིད་དཔག་ཏུ་མེད་པ་དེ།
འགྲོ་བ་ཀུན་གྱི་དོན་མཛད་ནས། མྱང་འདས་དབྱིངས་སུ་ཞུགས་པ་ན། 64

དེ་དང་བྲལ་བའི་སེམས་གདུངས་པའི། ཁྱིམ་བདག་ཆོས་ཀྱི་ངང་ཚུལ་ནི།
གུས་པས་བཅོམ་ལྡན་འདས་དེ་ཡི། མཆོད་རྟེན་བྱེད་པ་ལ་བརྩོན་གྱུར། 65

བདག་ཉིད་ཆེན་པོ་དེ་ཡིས་ནི། ནོར་བུ་གསེར་ཚོགས་མཆོད་རྟེན་རྩོམ།
རྒྱལ་བའི་བསྟན་པ་ལ་སྡང་པའི། བྲམ་ཟེ་ཡིས་ནི་རྣམ་པར་བཀློག 66

བྲམ་ཟེ་ཆོས་ཀྱི་གེགས་རྣམས་ཀྱི། སྤྱོད་ཚུལ་དེ་ཡིས་རྒྱལ་ལ་བཤད།
དེ་ཡིས་བྱིན་པའི་དཔའ་བོ་ནི། འགོག་བྱེད་བཀློག་པར་བྱེད་པ་ཐོབ། 67

त्वां लब्ध्वाहं व्यसनकरुणाबान्धवं दुःखितानां
प्राप्तः सर्व्वावरणरहितां हन्त विश्रान्तिमेताम् ॥ ६० ॥

इति धर्म्मरुचे स्तत्र जिनस्य च कथान्तरे।
कौतुकाद् भिक्षुभिः पृष्ट स्तद्वृत्तं सुगतोऽभ्यधात् ॥ ६१ ॥

पूर्व्वस्मिन् भगवान् कल्पे क्षेमनाम्नि महीपतौ।
क्षेमङ्कराख्यः सुगतः क्षेमवत्या मभूत्पुरि ॥ ६२ ॥

तस्य काले गृहपति र्धर्म्मशीलाभिधोऽभवत्।
समुद्रयात्रासंरब्धरत्नै र्वैश्रवणोपमः ॥ ६३ ॥

कृत्वा सर्व्वं जगत्कार्य्यं तस्मिन्नथ तथागते।
निर्वाणधातुसंलीने कालेनामिततेजसि ॥ ६४ ॥

धर्म्मशीलो गृहपति स्तद्वियोगाग्नितापितः।
भक्त्या भगवत स्तस्य स्तूपं कर्त्तुं समुद्ययौ ॥ ६५ ॥

मणिकाञ्चनसम्भारस्तूपारम्भे महात्मनः।
जिनशासनविद्वेषाद्विप्रा स्तस्य न्यवारयन् ॥ ६६ ॥

विप्राणां धर्म्मविघ्नानां राज्ञो वृत्तं निवेद्य सः।
तद्दत्तं सुभटं प्राप्य प्रतिषेधकवारणम् ॥ ६७ ॥

ཤིང་གི་སྡོང་ཐུབ་ཙམ་བྱ་བ། རྒྱལ་པོ་འི་དཔའ་བོ་མཁས་པ་དེས།
བྲམ་ཟེ་རྣམས་ལ་རབ་བསྡིགས་ནས། ཆད་པས་སྐྲག་པས་ཕྱིར་ཕྱོགས་བྱས།། 68

དེ་ནས་གེགས་བྲལ་ཁྱིམ་བདག་གིས། གསེར་གྱི་མཆོད་རྟེན་ནོར་བུ་དང་།
མུ་ཏིག་དག་གིས་སྤྲས་པ་དག། སྨོན་ལམ་དག་ནི་རབ་བསྒྲུབས་པ།། 69

བདག་ནི་དགེ་བ་འདི་དག་གིས། སེམས་ཅན་ཡང་དག་གྲོལ་ལ་ཆགས།
བླ་མེད་ཡང་དག་རྫོགས་བྱང་ཆུབ། བདུད་རྩི་སྣན་པ་ཐོབ་གྱུར་ཅིག།། 70

དེ་བརྗོད་དེ་དག་ཐོས་གྱུར་ནས། སྡོང་ཐུབ་གསུམ་དང་བཅས་པས་བདག།
ཁྱོད་ཀྱི་ཉན་ཐོས་ཉིད་གྱུར་ཅིག། ཅེས་པ་སྨྲས་དེ་སྨོན་ལམ་བཏབ།། 71

ཆོས་ཀྱི་ངང་ཚུལ་ཡི་ཤེས་ཀྱི། སྟོན་ནི་ཐོབ་པས་དེ་ལ་སྨྲས།
སྡིག་པ་རབ་ཏུ་མང་བ་ཁྱོད། ཚོགས་ཆེན་དག་གིས་ཉན་ཐོས་གྱུར།། 72

བསྐལ་པ་མང་པོ་སོང་བའི་ཚེ། ཡངས་པའི་དུས་ལ་སྡིག་ཟད་ནས།
སངས་རྒྱས་མཚན་ནི་ཐོས་པ་ན། ཁྱོད་ཀྱིས་དགེ་བ་ཐོབ་པར་འགྱུར།། 73

ཁྱིམ་བདག་ཆོས་ཀྱི་ངང་ཚུལ་དེར། དེ་ཡི་ཚེ་ན་ང་ཉིད་གྱུར།
གང་ཞིག་སྡོང་ཐུབ་ཏུ་གྱུར་དེ། ཡུན་རིང་ལོན་ནས་ཆོས་སྤྱོད་འདི།། 74

གཉིས་པའི་བསྐལ་པར་གྲོང་ཁྱེར་ནི། མར་མེ་ཅན་དུ་ས་ཡི་བདག།
མར་མེ་ཞེས་ལ་བཅོམ་ལྡན་འདས། སྟོན་པ་མར་མེ་མཛད་ཅེས་གྱུར།། 75

नाम्ना सहस्रयोधीति स राजसुभटः कृती ।
निर्भर्त्स्य विदधे विप्रान् दण्डत्रासपराङ्मुखान् ॥ ६८ ॥

हेमस्तूपं गृहपति र्निचितं मणिमौक्तिकैः ।
वीतविघ्नं ततः कृत्वा प्रणिधानं समादधे ॥ ६९ ॥

सत्त्वसन्तारणासक्तां सुधासिक्तामनुत्तराम् ।
अनेन कुशलेनाहं सम्यक्सम्बोधि माप्नुयाम् ॥ ७० ॥

सहस्रयोधी तेनोक्त मेतदाकर्ण्य सादरः ।
श्रावकोऽहं तत्रैव स्या मित्यूचे प्रणिधानवान् ॥ ७१ ॥

धर्म्मशील स्त मवदत् स प्राप्य ज्ञानलोचनम् ।
प्रभूतपापः कृच्छ्रेण श्रावकस्त्वं भविष्यसि ॥ ७२ ॥

बहुवर्षे गते काले विशालकुशलक्षयात् ।
बुद्धाभिधानमाकर्ण्य कुशलं समवाप्स्यसि ॥ ७३ ॥

धर्म्मशीलो गृहपतिः सोऽहमेव तदाभवम् ।
सहस्रयोधी यश्चाभूत् सोऽयं धर्म्मरुचिश्चिरात् ॥ ७४ ॥

द्वितीयकल्पे भगवान् दीपाख्ये पृथिवीपतौ ।
दीपङ्कराभिधः शास्ता दीपवत्यामभूत् पुरि ॥ ७५ ॥

ནམ་ཞིག་དཀའ་ཐུབ་ནགས་དགྲོས་དེ། རང་གི་གྲོང་ཁྱེར་འཇུག་པའི་སྐད།
ས་བདག་དེ་ཡི་གུས་པ་ཡིས། ཕྱིན་ནས་རང་གིས་རབ་ཏུ་ཞུས།། 76

ཁྱི་བདག་གུས་པས་དེ་ལ་ནི། མཉེས་ག་ཞིན་རབ་ཏུ་དང་བ་ཡི།
བདེ་བར་གཤེགས་པས་ཁམས་བླངས་ཚེ། དགོད་པའི་ཚོགས་ནི་རབ་ཏུ་བཞམས།། 77

ཀ་ཤིའི་གྲོང་ཁྱེར་དག་ཏུ་ནི། ས་བདག་ནོར་ལྷའི་བུ་ཞེས་པའི།
གྲོགས་ལ་བཅོམ་ལྡན་སྟོན་ཤིག་ཅེས། རྒྱལ་པོ་དེ་ཡི་པོ་ཉ་སྤྲིངས།། 78

སྐབས་དེར་རྒྱལ་པོ་ནོར་ལྷའི་བུ། མཆོད་སྦྱིན་ལོ་ནི་བཅུ་གཉིས་པ།
ཚེ་ག་བཞིན་དུ་རྫོགས་པ་ན། ཡོན་ལྷ་དག་གིས་བདག་པ་བྱས།། 79

ས་བདག་དེ་ལ་ལྷས་སྨྲས་པ། ཁྱོད་ཅན་བྲམ་ཟེ་གཉིས་འོང་འགྱུར།
བློ་གྲོས་བཟང་དང་བློ་གྲོས་སོ། དེ་ལས་དང་པོ་ལ་སྦྱིན་འཚི།། 80

དེ་ནས་ཁ་དོག་མཐར་ཕྱིན་དེ། བླ་མའི་ཡོན་ནི་དོན་གཉེར་བའི།
བྲམ་ཟེ་དེ་དག་ས་བདག་གི། མཆོད་སྦྱིན་ཞིང་དུ་ཡང་དག་འོངས།། 81

ས་སྐྱོང་ནོར་ལྷའི་བུ་ཡིས་ཀྱང་། དེ་ཡི་མིང་ཐོས་གུས་པ་ཡིས།
བློ་གྲོས་བཟང་ལ་མཆོད་སྦྱིན་ནི། མཇུག་ཏུ་ཡོན་ལྷ་དགའ་བས་ཕུལ།། 82

ཁྲི་སྟན་རིན་ཆེན་བཞི་རང་བཞིན། གསེར་གྱི་དབྱིག་པ་རིལ་བ་དང་།
རིན་ཆེན་གསེར་གྱི་སྣོད་དང་ནི། གསེར་ནི་བརྒྱ་ཕྲག་ལྔ་དག་གོ།། 83

तपोवनरुचि र्भक्त्या कदाचित्तेन भूभुजा
जिनः पुरप्रवेशाय स गत्वा स्वय मर्थितः ॥ ७६ ॥

प्रणये नृपते स्तस्मिन् वात्सल्येन प्रसादिना ।
सुगतेनाभ्युपगते सम्भारः समवर्त्तत ॥ ७७ ॥

स राजा काशीनगरीं वासवाख्यस्य भूपतेः ।
सुहृदः प्राहिणोद्दूतं भगवान् दृश्यतामिति ॥ ७८ ॥

अथान्तरे वासवेन राज्ञा द्वादशवार्षिके ।
यज्ञे समाप्ते विधिवत् कल्पिताः पञ्चदक्षिणाः ॥ ७९ ॥

तं देवतावदद्द्रूपं विप्रौ त्वा मागमिष्यतः ।
सुमतिश्च मतिश्चेति दानार्हः प्रथम स्तयोः ॥ ८० ॥

अथाध्ययनपर्य्यन्ते गुरवे दक्षिणार्थिने ।
यज्ञक्षेत्रं क्षितिपते स्तौ समाजग्मतु र्द्विजौ ॥ ८१ ॥

वासवोऽपि महीपाल स्तन्नामश्रवणादरात् ।
ददौ हृष्टः सुमतये यज्ञान्ते पञ्चदक्षिणाः ॥ ८२ ॥

चतूरत्नमयीं शय्यां हैमौ दण्डकमण्डलू ।
सुवर्णरत्नपात्रीञ्च हिरण्यशतपञ्चकम् ॥ ८३ ॥

རང་གི་བུ་མོ་རྒྱན་གྱིས་བརྒྱན། མི་བདག་སྟེར་བར་བརྩོན་པ་ན།
བློ་གྲོས་བཟང་གི་ཚངས་སྤྱོད་ནི། བརྗོད་ཅིང་བུ་མོ་ཡོངས་མ་བླངས།། 84

མཛེས་མ་ཞེས་པ་བུ་མོ་དེ། གསེར་གྱི་འོད་ཅན་དེ་མཐོང་ནས།
མངོན་འདོད་ལྡན་པས་ངོ་ཚ་ནི། རབ་ཏུ་བཏང་ནས་ཞུ་བ་བྱས།། 85

དེ་ནས་དེ་ཡིས་ཕྱིར་བཟློག་ཚེ། བུ་མོ་ཚངས་སྤྱོད་ལྡན་མ་དེ།
ཆགས་བྲལ་གཉེན་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས་ཏེ། མར་མེ་ཅན་གྱི་གྲོང་ཁྱེར་སོང་།། 86

དེར་ནི་རྒྱན་གྱི་རིན་ཅེན་རྣམས། རིམ་པ་ཡིས་ནི་འཚོང་བྱེད་ཅིང་།
རིན་གྱིས་ཉོས་པའི་མེ་ཏོག་གིས། དེ་ཡིས་རྟག་ཏུ་ལྷ་མཆོད་བྱས།། 87

བློ་གྲོས་བཟང་གིས་ཡོན་ཐོབ་པ། བཞད་པ་བླ་མ་ལ་ཕུལ་ནས།
དེ་ཡི་ཚུང་མས་བསྔུན་པ་ཡི། གསེར་གྱི་ལྷག་མ་རང་གིས་བཟུང་།། 88

དེ་ཉིད་ཀྱི་ནི་མཚན་མོ་ལ། དེ་ཡི་རྨི་ལམ་བཅུ་མཐོང་སྟེ།
བདུད་རྩིའི་རྒྱ་མཚོ་འཐུང་བ་དང་། ནམ་མཁའ་ལ་ནི་འགྲོ་བ་དང་།། 89

ཉི་ཟླ་མཐོང་དང་རྒྱལ་པོ་དང་། ཐུབ་པའི་ཚོགས་དང་ཤིང་རྟ་དང་།
གླང་དཀར་དང་ངང་པ་དང་། དེ་བཞིན་སེང་གེའི་རི་ལ་འཛེག།། 90

དེ་ནས་དེ་ན་རབ་སད་དེ། ཐུབ་ཆེན་མངོན་ཤེས་ལྔ་ལྡན་པ།
ལོ་མ་གསོལ་བའི་ཚལ་དུ་ནི། རྨི་ལམ་འབྲས་བུ་ཉན་དུ་སོང་།། 91

अलङ्कृताञ्च स्वसुतां नृपे दातुं समुद्यते ।
सुमति र्नाग्रहीत् कन्यां ब्रह्मचर्य्य मुदाहरन् ॥ ८४ ॥

कन्यापि सुन्दरी नाम तं दृष्ट्वा कनकद्युतिम् ।
साभिलाषा समुत्सृज्य लज्जां चक्रे तदर्थनाम् ॥ ८५ ॥

प्रत्याख्याता तत स्तेन सा कन्या ब्रह्मचारिणा ।
वैराग्याद्बन्धुविमुखी ययौ दीपवतीं पुरीम् ॥ ८६ ॥

तत्रालङ्काररत्नानां कुर्व्वाणा विक्रयं शनैः ।
सा मूल्यक्रीतकुसुमैः सदा चक्रे सुरार्चनाम् ॥ ८७ ॥

सुमति र्गुरवे दत्त्वा दक्षिणार्थं समीहितम् ।
हिरण्यशेषं तत्पत्न्या निर्द्दिष्टं स्वय मग्रहीत् ॥ ८८ ॥

तस्यामेव विभावर्य्यां स्वप्नान् दश ददर्श सः ।
पानं सुधासमुद्रस्य गमनं गगनेन च ॥ ८९ ॥

चन्द्रार्कस्पर्शनं राज्ञां मुनीना मथ याजनम् ।
श्वेतेभ-हंस-सिंहाद्रिशिखरारोहणं तथा ॥ ९० ॥

सोऽथ प्रबुद्धः स्वप्नानां फलं श्रोतुं महामुनेः ।
जगाम पञ्चाभिज्ञस्य पर्व्वादस्य तपोवनम् ॥ ९१ ॥

དེ་ཡིས་དྲིས་ལ་དེས་སྨྲས་པ། ཁྱོད་ཀྱི་མི་ལམ་འབྲས་བུ་རྒྱས།
མར་མེ་ཅན་གྱི་གྲོང་གནས་པ། བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་ཉིད་ཀྱིས་མཁྱེན།། 92

དེ་ཐོས་མྱུར་བར་བློ་གྲོས་བཟང་། མི་ལམ་ལུང་བསྟན་འདོད་པ་ཡིས།
མཆེད་ནི་བློ་གྲོས་དང་འགྲོགས་དེ། གྲོང་ཁྱེར་མར་མེ་ཅན་དུ་སོང་།། 93

སྐབས་དེར་རྒྱལ་པོ་མར་མེ་ཡིས། བཅོམ་ལྡན་ནང་དུ་བྱོན་པ་ཡི།
དགའ་སྟོན་ཆེ་ལ་གྲོང་ཁྱེར་དེ། རིན་ཅན་དང་ནི་གོས་ཀྱིས་སྤྲས། 94

དེ་ཡི་མཆོད་པའི་མེ་ཏོག་ཚོགས། དེར་ནི་ས་བདག་གིས་བསྒྲུབས་ཚེ།
ཏྟོ་རྫོང་དྲག་གི་གནས་སུ་ནི། ངེས་པར་མེ་ཏོག་མཐོང་མ་གྱུར།། 95

དེ་ནས་བུ་མོ་མཛེས་མ་དེ། མེ་ཏོག་རྙེད་དཀའ་གྱུར་པའི་ཚེ།
མཆོད་པ་འཆད་པའི་སྡུག་བསྔལ་གྱིས། གཟིར་བ་འཕྲིང་བ་མཁན་ལ་ཞུས།།96

དེ་ནས་བློ་བཟང་བསོད་ནམས་མཐུས། འདམ་སྐྱེས་མེད་པའི་རྫིང་བུ་ནི།
འགའ་ཞིག་དུ་ཡང་དེ་དུས་ནས། པདྨ་དག་ནི་འཁྲུངས་པར་གྱུར།། 97

དེ་དག་རྒྱལ་པོའི་འཇིགས་པ་ཡིས། སྦས་ནས་སྲིད་པས་འཕྲིང་མཁན་གྱིས།
དེ་ལ་བྱིན་ཅིང་དེ་ཡིས་ཀྱང་། བུམ་ཆུའི་ནང་བཅུག་མགྱོགས་པར་སོང་།། 98

བློ་གྲོས་བཟང་པོ་རང་མཆོད་སླད། མེ་ཏོག་དོན་གཉེར་ཡོངས་འཁྱམས་པས།
པདྨ་རྒྱས་པའི་བཞིན་རས་ཅན། མཛེས་མ་དག་ནི་ལམ་དུ་མཐོང་།། 99

स तेन पृष्टः प्रोवाच त्वत्स्वप्नानां फलोदयम् ।
जिनो जानाति भगवान् दीपवत्यां पुरि स्थितः ॥ ९२ ॥

तच्छ्रुत्वा सुमति स्तूर्णं स्वप्नव्याकरणोत्सुकः ।
सहैव मतिना भ्राता ययौ दीपवतीं पुरीम् ॥ ९३ ॥

तस्मिन्नवसरे राज्ञा दीपेन विपुलोत्सवे ।
सा प्रवेशे भगवतः पुरी रत्नाम्बरै र्वृता ॥ ९४ ॥

यत्पूजापुष्पसम्भारे सम्भृते तत्र भूभुजा ।
क्रयविक्रयवीथीषु नैवादृश्यत पुष्पकम् ॥ ९५ ॥

ततः सा सुन्दरी कन्या पुष्पं दुर्लभतां गतम् ।
पूजाविच्छेददुःखार्त्ता मालाकार मवोचत ॥ ९६ ॥

ततः सुमतिपुण्यानां प्रभावादप्यपङ्कजे ।
ह्रदे बभूव कस्मिंश्चित् तत्कालकमलोद्भवः ॥ ९७ ॥

तानि राजभयात्तस्यै लुब्धः प्रच्छाद्य मालिकः ।
ददौ साप्यम्बुकुम्भान्त र्निक्षिप्य त्वरितं ययौ ॥ ९८ ॥

सुमति र्जिनपूजार्थी कुसुमार्थी परिभ्रमन् ।
तां फुल्लपद्मबहुलां ददर्श पथि सुन्दरीम् ॥ ९९ ॥

དེ་ནས་དེ་ཡི་བསོད་ནམས་མཐུས། སྟོག་དང་བཅས་པ་དག་གིས་བཞིན།
བྲུམ་པའི་ནང་ན་རབ་བསྒྲིབས་པའི། པདྨ་རྣམས་ཀྱིས་བཞིན་དག་བསྟན།། 100

མེ་ཏོག་དོན་དུ་གཉེར་བ་དེས། གསེར་གྱིས་དེ་ལ་བསྒྲངས་པ་ན།
སྲིད་ལྡན་མ་ཤིས་ཡོངས་ཤེས་ནས། འཛུམ་བཅས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།། 101

ཁྱོད་ཀྱིས་བདག་ནི་སྟོར་བཏང་ནས། ད་ལྟ་མེ་ཏོག་སློང་བར་བྱེད།
དམ་པ་ཚངས་སྤྱོད་བུ་མོ་ལ། ཐེབས་པར་སྨྲ་བའི་རིགས་མ་ཡིན།། 102

ཁྱོད་ལ་མེ་ཏོག་རབ་བྱིན་པས། སྐྱེ་བ་གཞན་དུ་ཆུང་མར་བདག།
གྱུར་ཅིག་ཅེས་པའི་སྨོན་ལམ་གྱིས། འདི་དག་སྔར་གྱི་གཞན་དུ་མིན།། 103

དེ་སྐད་གྱུར་ཅེས་དེ་བརྗོད་ཚེ། པདྨ་ལྔ་ནི་དེ་ལ་བྱིན།
རང་ཡང་མཆོད་ཕྱིར་དེ་ཡིས་ནི། པདྨ་གཉིས་དག་རབ་ཏུ་བཟུང་།། 104

དེ་ནས་ས་བདག་མར་མེ་དང་། ས་བདག་ནོར་ལྷའི་བུ་དག་ཀྱང་།
བཅོམ་ལྡན་ལེགས་པར་བྱོན་པ་ཅན། གུས་པས་མངོན་དུ་འོངས་པར་གྱུར།། 105

དེ་ནས་མར་མེས་དེ་ཡི་གདུགས། རིན་ཅེན་ཕྲུར་མས་མཚན་པ་བཟུང་།
ནོར་འཛིན་བདག་པོ་ནོར་ལྷའི་བུས། རླབ་ལྟར་དཀར་ཅ་ཡབ་པོ།། 106

ལྷ་དང་གྲུབ་པ་དྲང་སྲོང་དང་། དྲི་ཟ་མཆོད་དང་གྲོང་ཁྱེར་དུ།
རབ་ཏུ་བཞུགས་ཚེ་སེམས་ཅན་ཀུན། ཀུན་དུ་བདེ་བའི་དགའ་སྟོན་རྒྱས།། 107

पुण्यानुभावात्तस्यैव कुम्भाभ्यन्तरसंवृतैः ।
सजीवितैरिव मुखं दर्शितं कमलै स्ततः ॥ १०० ॥

अर्थ्यमाना हिरण्येन सा तेन कमलार्थिना ।
साभिलाषा परिज्ञाय सस्मिता त मभाषत ॥ १०१ ॥

त्यक्ताहं भवता पूर्व्वं कुसुमान्यद्य याचसे ।
कन्यासम्भाषणं साधो न युक्तं ब्रह्मचारिणः ॥ १०२ ॥

तव पुष्पप्रदानेन भार्य्या स्या मन्यजन्मसु ।
इत्येवं प्रणिधानेन ददाम्येतानि नान्यथा ॥ १०३ ॥

एवमस्त्विति तेनोक्ते पञ्च पर्व्वाणि सा ददौ ।
तस्मै स्वयञ्च पूजार्थे जग्राह कमलद्वयम् ॥ १०४ ॥

अथ दीपक्षितिपति र्वासवश्च महीपतिः ।
भगवन्तं समायान्तं भक्त्या प्रत्यभिजग्मतुः ॥ १०५ ॥

तस्य रत्नशलाकाङ्कं दीप्तं छत्र मथाग्रहीत् ।
चामरं चन्द्रधवलं वासवो वसुधाधिपः ॥ १०६ ॥

सुरसिद्धर्षिगन्धर्व्वैः पूज्यमानस्य सर्व्वतः ।
पुरप्रवेशे तस्यासीत् सर्व्वसत्त्वसुखोत्सवः ॥ १०७ ॥

སྐྱེ་བོའི་ཚོགས་ནི་སྡུག་པོ་ལ། རྒྱལ་བ་ལྟ་བར་འདོད་པ་ཡིས།
བློ་གྲོས་བཟང་གི་དེ་མཐུ་ལས། ཇི་ཞིག་ལྟར་ལྟས་ལམ་ཐོབ་གྱུར།། 108

སྟོན་པའི་ཞབས་ལ་པདྨ་དག། རབ་ཏུ་འཕངས་ནས་ཐལ་སྦྱར་ཏེ།
ཀུན་དགའ་ཅན་དེས་རལ་པའི་ཁུར། ས་ལ་བཀྲམ་ནས་དེར་ཕྱག་འཚལ།། 109

དེ་ཡི་མདུན་ན་ཨངས་པ་ཡི། ལེགས་བྱས་བཞིན་དུ་པདྨོ་རྣམས།
དེ་མདུན་ཞལ་གྱི་ཟླ་བའི་མཐར། མཆོད་པ་ཡང་དག་རྒྱུ་བ་ཐོབ།། 110

བཅོམ་ལྡན་མདུན་དུ་དད་པ་ཡི། མཛེས་མས་གུས་པས་རབ་གཏོར་བའི།
པདྨོ་རྒྱས་པ་ཟུང་དག་ནི། སྙན་གྱི་རྒྱན་ཉིད་དག་ཏུ་གྱུར།། 111

བློ་བཟང་རབ་ཏུ་བདུད་པ་ཡི། རལ་པའི་ཚོགས་ནི་བདེ་གཤེགས་ཀྱི།
ཞབས་ཀྱིས་མནན་པས་ལྷུང་གྱུར་ཅིང་། དེ་བཞིན་གཞན་ནི་རབ་ཏུ་འཕྲུངས།། 112

དེ་ནི་བྱ་བ་བྱས་གྱུར་ཅིང་། མཁའ་ལ་འགྲོ་བ་ཐོབ་པ་ནི།
འཇིག་རྟེན་ཐམས་ཅད་ཉན་པ་ལ། བཅོམ་ལྡན་རྒྱས་པས་བཀའ་སྩལ་བ།། 113

ཟླ་མེད་ཡང་དག་རྫོགས་པ་ཡི། བྱང་ཆུབ་ཐོབ་ནས་བློ་བཟང་འོད།
འཇིག་རྟེན་དུ་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས། ཤཱཀྱ་ཐུབ་ཅེས་བྱ་བར་འགྱུར།། 114

ཞེས་པ་རྒྱལ་བས་རབ་གསུངས་ཤིང་། མཁའ་ལ་མེ་ཏོག་ཆར་ལྷུང་ཆེ།
མཆོད་རྟེན་རབ་ཏུ་གནས་པའི་སྐད། བློན་པོ་ཀུན་གྱིས་རལ་པ་བླངས།། 115

निविड़े जनसंपाते जिनसन्दर्शनोत्सुकः ।
सुमति स्तत्प्रभावेण कथञ्चिन्मार्ग माप्तवान् ॥ १०८ ॥

क्षिप्त्वा शास्तु श्चरणयोः कमलानि कृताञ्जलिः ।
स तं ववन्दे सानन्दः क्षितौ कीर्णजटाभरः ॥ १०९ ॥

तस्य पद्मानि वैपुल्यं सुकृतानीव तत्क्षणात् ।
अवाप्य चक्रुश्चक्राभां सर्व्वां सञ्चारिणीं पुरः ॥ ११० ॥

सुन्दर्य्या सादरोत्सृष्टं भक्त्या भगवतोऽग्रतः ।
फुल्लारविन्दयुगलं ययौ कर्णावतंसताम् ॥ १११ ॥

जटाकटप्रः सुमतेः सुगतेन प्रणामिनः ।
व्यशीर्य्यत पदाक्रान्तः प्रादुरासीत्तथा परः ॥ ११२ ॥

लब्धाकाशगतौ तस्मिन् प्रयाते कृतकृत्यताम् ।
शृण्वतः सर्व्वलोकस्य बभाषे भगवान् जिनः ॥ ११३ ॥

सम्यक्सम्बोधि मासाद्य सुमते त्व मनुत्तराम् ।
लोके शाक्यमुनि र्नाम भविष्यसि तथागतः ॥ ११४ ॥

उदीरिते जिनेनेति पुष्पवर्षे दिवश्च्युते ।
जटां स्तूपप्रतिष्ठार्थे जगृहुः सर्व्वमन्त्रिणः ॥ ११५ ॥

ས་ལ་མཆེད་ཀྱི་རལ་པ་ནི། བཅོམ་ལྡན་ཞབས་ཀྱིས་མནན་མཐོང་ནས།
ཉན་པ་ཉིད་དུ་མངོན་ཁེངས་པས། བློ་གྲོས་ཁྲོ་བས་འཁྲུགས་པར་གྱུར།། 116

དེ་ཡི་རྣམ་འགྱུར་སྔོངས་པ་ལས། སྐྱེས་པ་བློ་གྲོས་བཟང་པོས་བཟློག།
དེ་ཉིད་དང་ནི་ལྷན་ཅིག་ཏུ། ཕྱོན་པའི་མདུན་དུ་རབ་བྱུང་ལྡངས།། 117

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་ལུས་ཀྱི་མཐར། བློ་གྲོས་བཟང་གིས་ལྷ་ཡི་གནས།
དགའ་ལྡན་ཞེས་པ་ཐོབ་གྱུར་ཏེ། བློ་གྲོས་དག་ནི་ཐུལ་བར་སོང་།། 118

ད་ལྟ་བློ་བཟང་དེ་ཉིད་ང་། བློ་གྲོས་བློ་གྲོས་རྣམ་བསྐྱེད་པས།
ཉམས་པར་གྱུར་པ་ཆོས་སྲིད་འདི། མཛེས་མ་དེ་ནི་གྲགས་འཛིན་མའོ།། 119

གསུམ་པའི་བསྐལ་པར་བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་འཁོར་བ་
འཇིག།
བླ་ན་མེད་པའི་ཡེ་ཤེས་གཏེར། འཛམ་བུའི་གླིང་དུ་སྟོན་བྱུང་གྱུར།། 120

དེ་ཡི་དུས་ན་འཕགས་རྒྱལ་དུ། ཚོང་པ་ཙནྡན་བྱིན་ཞེས་པ།
ནོར་ཆེན་ཏོ་ཚོང་དག་གིས་ནི། རབ་ཏུ་གྲགས་པ་བྱུང་བར་གྱུར།། 121

དེ་ཡི་ཆུང་མ་འདོད་པའི་སྟོབས། ཞེས་ལ་སྲུས་བྱེད་ལྟར་མཛེས་བུ།
ཛས་བྱིན་ཞེས་ནི་བུ་བ་དག ལུས་བཞིན་དུ་ནི་དགའ་བ་བྱུང་།། 122

ཁྱིམ་ལུགས་ཆུང་མ་ལ་བཀོད་ནས། ནོར་དོན་གཉེར་དེ་རྒྱ་མཚོར་སོང་།
ལན་ཚྭ་ཡིས་བཞིན་ནོར་ཅན་རྣམས། ནོར་དག་གིས་ནི་སྲིད་པ་འཕེལ།། 123

भगवच्चरणाक्रान्ता भ्रातु र्दृष्ट्वा जटाः क्षितौ ।
श्रोत्रियत्वाभिमानेन मतिः कोपाकुलोऽभवत् ॥ ११६ ॥

निवार्य्य सुमति स्तस्य विकारं मोहसम्भवम् ।
तेनैव सहितः शास्तुः प्रव्रज्या मग्रहीत् पुरः ॥ ११७ ॥

ततः कालेन सुमति र्देहान्ते तुषिताभिधम् ।
अवाप देवनिलयं मतिश्च नरकं ययौ ॥ ११८ ॥

सोऽहं सुमतिरेवाद्य मतिश्च मतिविप्लवात् ।
अयं धर्म्मरुचिः क्लिष्टः सुन्दरी सा यशोधरा ॥ ११९ ॥

तृतीये भगवान् कल्पे ककुच्छन्द स्तथागतः ।
अनुत्तरज्ञाननिधि र्जम्बुद्वीपे पुराभवत् ॥ १२० ॥

बभूव समये तस्मिन्नुज्जयिन्यां महाधनः ।
वणिक् चन्दनदत्ताख्यः प्रख्यातक्रयविक्रयः ॥ १२१ ॥

तस्य कामबलाख्यायां जायायां मदनद्युतिः ।
अश्वदत्ताभिधानोऽभूत् पुत्रः काम इव प्रियः ॥ १२२ ॥

धर्म्मार्थी स जगामाब्धिं पत्नीन्यस्तगृहस्थितिः ।
धनेन धनिनां तृष्णा लवणेनेव वर्द्धते ॥ १२३ ॥

དེ་ཡི་ཆུང་མ་ཁྲོ་མོང་ཆེ། ཡང་ཆོས་སྤྱོས་ཤིང་རྨོངས་པ་ཡིས།
ཁྲིམས་ཀྱི་བསམ་པ་ཡོངས་བཏང་ནས། འདོད་པའི་བསམ་གཏན་ལ་ཆགས་གྱུར། 124

དེ་ཡིས་ནོར་གྱི་ལས་ལ་ནི། གཞོན་ནུ་དུས་བྱིན་རྣམ་བཀོད་ནས།
ཐག་ཏུ་ཁང་བཟང་བ་གསར་ཏུ། གནས་དེ་རྒྱལ་པོ་འི་ལམ་ལ་བལྟས། 125

གཡོག་འཁོར་མང་པོ་འི་ཁྲིམས་ཏུ་ནི། རང་དབང་གནས་སྐབས་བྲལ་བ་དེས།
ཤུགས་རིངས་བྱུང་ནས་མ་མ་ནི། གཏན་མོ་དག་ལ་མངོན་ཕྱོགས་སྨྲས། 126

ཁྲིམས་ནི་འབྱོར་ཞིང་ལོངས་སྤྱོད་མང་། སྐྱེ་བོ་བཀའ་ལས་ཉན་པ་འདིར།
རང་དབང་སྤྱོད་པས་དམན་པ་ཡི། མ་མ་བདག་ལ་དགའ་བ་མེད། 127

སྐྱེས་པའི་ལོངས་སྤྱོད་མེད་པ་ན། བུད་མེད་དགའ་བ་བསྟེན་པ་ནི།
དབང་གིས་མ་ཡིན་བཀུར་སྟི་མིན། རྒྱན་གྱིས་མ་ཡིན་ཟས་ཀྱིས་མིན། 128

དེ་སྐད་ཁྲིམས་ནི་ཡོངས་བཏང་ནས། བདག་ནི་འདུན་པས་རྒྱ་ཞིང་འགྲོ།
གཞོན་སྐྱེས་བུ་ནི་འདི་ལ་ཡང་། བདག་ནི་ཆགས་པའི་དབང་མ་གྱུར། 129

རིགས་ཀྱི་འཇུག་ངོགས་ཀྱིས་བཅིངས་ཤིང་། གཉེན་གྱི་འཆིང་བས་བསྡམས་པ་དག།
བུད་མེད་དགའ་བའི་ངང་ཚུལ་ཅན། གཡོ་ལྡན་དག་གིས་བཟོད་མ་ཡིན། 130

ཞེས་སྨྲ་དེ་ལ་མ་མ་ནི། ཤིན་ཏུ་མཛའ་བས་འཁྲུགས་པས་སྨྲས།
མཆིས་ག་ཤིན་ཤིན་ཏུ་ཡངས་པའི་དཔལ། བཏང་ནས་འགྲོ་བ་རིགས་མ་ཡིན། 131

तत्पत्नी प्रोषिते पत्यौ यौवनोन्मादमोहिता ।
गृहचिन्ताः परित्यज्य कामध्यानपराभवत् ॥ १२४ ॥

कुमार मश्वदत्तं सा निधाय धनकर्म्मणि ।
सदा प्रासादशृङ्गस्था राजमार्गं व्यलोकयत् ॥ १२५ ॥

स्वैरावकाशरहिता बहुभृत्यजने गृहे ।
वृद्धधात्रीः समभ्येत्य दीर्घोच्छ्वासाज्जगाद सा ॥ १२६ ॥

विभवे बहुभोगेऽस्मिन्नाज्ञाधीनजने गृहे ।
स्वैरसञ्चारहीनाया मातः सत्यं न मे रतिः ॥ १२७॥

नाधिकारै र्न सत्कारै र्नालङ्कारै र्न भोजनैः ।
विना पुरुषसम्भोगं भजन्ते ललनाः सुखम् ॥ १२८ ॥

तस्माद् गृहं परित्यज्य गच्छामि स्वच्छन्दचारिणी ।
बाल्ये जातः सुतोऽप्येष न स्नेहायतनं मम ॥ १२९ ॥

कुलकूलदयाबद्धा बन्धुबन्धनयन्त्रणाम् ।
न सहन्ते तरङ्गिण्यो रतिशीलाहि योषितः ॥ १३० ॥

इति ब्रुवाणां तामूचे धात्री वात्सल्यविक्लवा ।
वत्से न गमनं युक्तं त्यक्त्वा सुविपुलां श्रियम् ॥ १३१ ॥

བྱ་བ་མང་པོས་ཁྱིམ་འདིར་ནི། སྨས་པས་སྤྱོད་པ་མི་སྨྲ་དེ།
གསང་བའི་སྤྱོད་པ་སྐད་ཅིག་གིས། རྒྱལ་པོ་ཡི་ནི་ལམ་དུ་རྒྱུ།། 132

ཡང་ཚོ་ཚ་བས་རབ་གདུངས་པ། ཁྱོད་ཀྱིས་སྤྱོད་པ་ཇི་ལྟར་བསྲུང་།
ཁྱིམ་གྱི་གཉེར་ཡང་ཁང་པ་ཡིས། རབ་སྲུངས་ཁྱོད་ཀྱིས་ཇི་ལྟར་འགྲོ།། 133

འདི་ནས་འདོད་པའི་དུག་འཐིབས་ཤིང་། འདི་ནས་སྐད་ཅིག་གསང་ལ་ལྟུང་།
གཉིས་ཀ་ཐེ་ཚོམ་འདི་ལ་ནི། ཁྱོད་ཀྱིས་ཅི་བྱ་ཡོངས་མི་ཤེས།། 134

གཡོ་ཞིང་དགེ་མཚན་ལྡན་པ་རྣམས། ཇི་སྲིད་གོས་ནི་མ་དོར་བར།
དེ་སྲིད་སློག་གི་ཐང་གིས་ཀྱང་། གཞན་གྱི་བུད་མེད་དོན་དུ་གཅེར།། 135

འོག་པག་གོས་ནས་དྲངས་པ་ན། མ་མ་མ་ཞེས་འདར་བྱེད་ཅིང་།
བདག་འགྲོ་ཐོངས་ཤིག་ཐོངས་ཤིག་ཅེས། སྨ་སྒྲོགས་དེ་ནི་སུ་ཞིག་འདོད།། 186

རྣམ་པ་ཀུན་དུ་ཤུ་བ་བྱས། སྐྱེ་བོས་གོས་མེད་མཐོང་ནས་ནི།
ལག་པའི་གཟེབ་ཀྱིས་བསྡམས་པ་ཡིས། ནི་ཅོ་ཚུལ་བཞིན་འཁྲིས་པར་བྱེད།། 137

སྨུན་པར་དགའ་བའི་ཆོས་ཀུན་དང་། སྐད་ཅིག་ཕྱིད་ནི་བདེ་བར་འགྲོགས།
ཕྱིན་ནས་སྣང་བ་རབ་སྤྱངས་པའི། འཇིག་རྟེན་ཕ་རོལ་དག་ཏུ་འགྲོགས།། 188

བཞིན་སྐྱོད་ངོ་ཚའི་སྡུག་བསྔལ་ཅན། འབྲས་མེད་ཉམས་ཤིང་དམན་པ་དེ།
ཚུལ་ཁྲིམས་རིན་ཅན་ལམ་ངན་དུ། སྟོར་བར་གྱུར་པ་འཚོལ་བ་བཞིན།། 139

बहुभृत्ये गृहे त्वस्मिन् गुप्तचर्य्या नियुज्यते ।
क्षणेन स्वैरचरितं राजमार्गेषु धावति ॥ १३२ ॥

कथं रक्षसि चारित्रं सन्तप्ता यौवनोष्मणा ।
कथं गृहनिधानञ्च पादेनोत्सार्य्य गच्छसि ॥ १३३ ॥

इतः कामविषावेशः श्वभ्रपातः क्षणादितः ।
अस्मिन्नुभयसन्देहे न जाने किं करिष्यसि ॥ १३४ ॥

तावत् प्राणपणेनापि चपलाः सकुतूहलाः ।
परस्त्रियं प्रार्थयन्ति न यावदस्य मुञ्चति ॥ १३५ ॥

न न नेति समुत्कम्पिरसनांशुककर्षणे ।
गच्छामि मुञ्च मुञ्चेति क्वणन्ती कस्य नेप्सिता ॥ १३६ ॥

दृष्ट्वा विवसनां हृतकर्त्तव्यः सर्व्वथा जनः ।
भुजपञ्जरनिर्मुक्तः शुकहत्या पलायते ॥ १३७ ॥

तिमिरे रतिचौरेण क्षणार्द्धसुखसङ्गमः ।
पुनः प्रविरतालोके परलोकसमागमः ॥ १३८ ॥

सा नष्टा निष्फलाकष्टा लज्जाकष्टादधोमुखी ।
कुमार्गे हारितं यान्ती शीलरत्नमिवेक्षते ॥ १३९ ॥

དྲི་མེད་ཚུལ་ཁྲིམས་ནོ་ཤལ་འདོད་པའི་ངལ་དུབ་ཀྱིས་ཆད་ཅིང་། །
སྨྲ་དོག་འབྲས་བུ་ས་གཞི་ཡོངས་སུ་ཁེངས་པར་བྱེད་པ་བཞིན། །
མི་དམན་ཆགས་བྲལ་དུ་བདགས་མཆི་མའི་ཐིགས་པ་རགས་པ་ཡིས། །
ཉེས་སྤྱོད་སྐད་པ་རབ་དུ་སྨྲོས་པ་དེ་ནི་ཙུ་བར་བྱེད། ། 140

བྱིས་པའི་འཛུམ་བུ་བསིལ་ཟེར་ཅན་ལྟར་མཛེས་པ་ལ་ཡང་རབ་
དུ་སེམས་དྲེད་ཅིང་། །
པདྨ་སྟན་ལྟར་ལུས་ནི་མཆོག་ཏུ་རྫུམ་ཞིང་འཁྲུལ་ལ་རབ་ཏུ་ཉམས་གྱུར་ཏེ། །
ཁྲིམ་གྱི་ནང་དུ་པན་ཚུན་གདམས་རྣམས་ཕྱིར་ནི་རང་གི་གདམས་དུ་ཐོས་གྱུར་པ། །
འཕྱོན་མ་རྣམས་ཀྱི་ཡིད་ནི་རྩ་ཡི་འདབ་མ་བསྐྱོད་པ་ལས་དོགས་པར་གྱུར། ། 141

གཟུགས་ཀྱི་དྲིགས་པས་གཞོན་ནུ་མས། ། ཁྲོ་ཡི་ཁྲིམ་ལས་ཕྱི་རོལ་འཐོན། །
ཡོངས་རྟོག་རྣམས་ཀྱི་བསོད་ནམས་ཀྱིས། ། གནས་ལ་ཡོངས་བརྟགས་ཕྱི་
ནས་རོར། ། 142

དེ་སྐད་ཁྲིམ་ན་གནས་པ་ཁྱོད། ། ཇི་ལྟར་སྐྱེས་བུ་དང་འགྲོགས་ཤིང་། །
འཇིག་རྟེན་དག་གིས་མི་ཤེས་པ། ། དེ་ལྟར་རིགས་པ་བདག་གིས་བརྗོད། ། 143

ཁྱོད་ཀྱི་གཞོན་ནུ་རྡས་བྱིན་འདི། ། ཚུང་ཟད་ཡང་ཚོ་དག་ལ་ཉེ། །
སྐྱེ་བོས་དོགས་པ་མིན་པའི་སྐད། ། མཆོག་ཏུ་བདེ་བ་ཡོངས་སྤྱོད་ཞེས། ། 144

རྣམ་པ་འདི་ལྟའི་བཞིན་བཟང་མ། ། མཛེས་སྡུག་ཅན་ནི་གལ་རྙེད། །
གལ་ཏེ་རི་ཞིག་རབ་བསྐྱབས་ན། ། འདི་ནི་གནོད་མེད་རྣམ་པ་མིན། ། 145

सा रोदिति प्रसृतदुश्चरितापवादा
स्थूलास्रविन्दुभि रमन्दविषादकन्दैः ।
कामश्रमत्रुटितनिर्म्मलशीलहार-
मुक्ताफलैरिव धरां परिपूरयन्ती ॥ १४० ॥

बालस्यापि तुषाररश्मिरुचिरं संचिन्तयन्त्याः स्मितं
ध्यायन्त्याः सहसा निमीलिततनोः पद्माननायाः परम् ।
गेहान्तः स्वकथां मिथः कथयता माकर्णयन्त्या बहिः
स्वैरिण्या स्तृणपल्लवेऽपि ललिते साशङ्कशङ्कं मनः ॥ १४१ ॥

रूपदर्पेण निर्यान्ति तरुण्यः पतिवेश्मनः ।
पश्चात् परीक्ष्य त्यज्यन्ते पुण्यस्थाने परीक्षकैः ॥ १४२ ॥

तस्माद् गृहस्थिताया स्ते यथा पुरुषसङ्गमः ।
लोके भवत्यविदित स्तथा युक्तिं वदाम्यहम् ॥ १४३ ॥

अश्वदत्तः कुमारोऽसौ किञ्चिदासन्नयौवनः ।
जनस्याशङ्कनीयत्वात् सुखभोग्यः परन्तव ॥ १४४ ॥

एवं विदग्धः सुमुखः कान्तिमान् प्राप्यते कुतः ।
निरपायः प्रकारोऽयं यदि तावत् प्रवर्त्तते ॥ १४५ ॥

ཞེས་པ་མ་མའི་ཚིག་ཐོས་ནས། དེ་ཡིས་ཀྱང་ནི་རིགས་པར་བསམས།
ཆགས་པ་དྲག་པོའི་རྣམ་པ་ཡིས། ལོང་བས་སྡིག་ལྟུང་མཐོང་མ་ཡིན།། 146

དེ་ནས་མ་མས་དལ་བུ་ཡིས། བུད་མེད་ལོངས་སྤྱོད་བདེ་བསྔགས་པ།
བསླུས་ཤིང་བསླུས་ནས་གཞོན་ནུའི་ཡིད། ཡུལ་ལ་མངོན་པར་ཕྱོགས་པར་བྱས།། 147

རྟག་ཏུ་འདོད་པ་རབ་སྨྲོས་ནས། དེ་ལ་དེ་ཡིས་རབ་སྨྲས་པ།
བུ་ཁྱོད་ལ་འོས་འགའ་ཞིག་ནི། བདག་པོ་ཡུལ་གཞན་སོང་བ་ཡོད།། 148

ཁང་སྟོང་སྒྲོན་མ་མེད་པར་ནི། མཚན་མོ་རི་སྨྲ་ལ་བརྟེན་ཏེ།
ཤིན་ཏུ་ངོ་མཚར་ལྡན་མ་དེ། ཁྱོད་དང་ཡང་དག་འགྲོགས་པར་འདོད།། 149

ཅེས་པ་དེ་ཡི་ཚིག་ཐོས་ནས། མངོན་པར་འདོད་ལྡན་ཚོང་པའི་བུས།
རྟག་ཏུ་སྦས་པའི་ཁྱིམ་དུ་ནི། མ་དང་དགའ་མགུར་འགྲོགས་པ་བསྟེན།། 150

རྟག་ཏུ་རབ་བསྒྲིབས་ཁྱིམ་དུ་ནི། དགའ་མགུར་སྤྱོད་པ་སྟེན་བྱེད་པ།
དེ་ལ་ཆགས་པའི་མི་དག་ནི། རབ་ཏུ་འཕེལ་ཞིང་ཞི་མ་གྱུར།། 151

དེ་ཡི་བསམས་པ་རྟག་ཏུ་ནི། རབ་ཏུ་བསྒྲིབས་པའི་སྡུག་བསྔལ་འདི།
མི་བཟོད་གཟུགས་ཀྱི་ལོངས་སྤྱོད་ལ། སྣང་བ་ཉིད་ནི་འཚོ་བ་ལོ།། 152

ཕན་ཚུན་བཞིན་གྱི་ཆུ་སྐྱེས་ལ། རྣམ་པར་ལྟ་བའི་རོ་བྲལ་བའི།
འོ་ཡི་དགའ་མགུར་སྤྱོད་པ་ལ། བདེ་བའི་དགའ་སྟོན་འགའ་ཡོད་མིན།། 153

इति धात्रीवचः श्रुत्वा सापि युक्त ममन्यत ।
तीव्ररागप्रकारान्धः पापपातं न पश्यति ॥ १४६ ॥

धात्री ततः कुमारस्य सम्भोगसुखवर्णनाम् ।
स्वैरं विधाय विदधे विषयाभिमुखं मनः ॥ १४७ ॥

त मवोचत साशङ्कं कृत्वा कामप्रतारणम् ।
अस्ति वत्स त्वदुचिता काचित् प्रोषितभर्तृका ॥ १४८ ॥

शून्ये वेश्मनि निर्दीपे रात्रौ मौनावलम्बिनी ।
लज्जावती सा सुतरां त्वया सङ्गम मिच्छति ॥ १४९ ॥

इति तस्या वचः श्रुत्वा साभिलाषो वणिक्सुतः ।
सदा गुप्तगृहे भेजे जनन्या रतिसङ्गमम् ॥ १५० ॥

सततं सेवमानायाः प्रच्छन्नभवने रतिम् ।
वर्द्धमानः परं तस्या रागाग्नि र्न शमं ययौ ॥ १५१ ॥

साचिन्तयदिमां नित्यं प्रच्छादनकदर्थनाम् ।
न सहे रूपभोगस्य प्रकाशः किल जीवितम् ॥ १५२ ॥

अन्योन्यवदनाम्भोजविलोकनरसं विना ।
न चुम्बने न सुरते कश्चिदस्ति सुखोत्सवः ॥ १५३ ॥

དེ་བསྒྲིབས་པ་ཡི་ཉིད་སོང་ནི། རབ་ཏུ་འབད་པས་བཅོམ་བྱས་ཏེ།
འཕྲལ་ལ་ལོངས་སྤྱོད་གཉེར་ཏུ་མ། གསལ་བར་བདག་གིས་བསྟན་པར་བྱ།། 154

ཞེས་པ་མཚན་པོ་རབ་འབམས་དེ། རབ་གསལ་ལུས་དེར་གོས་དག་ནི།
ལོངས་སྤྱ་ཛེ་བའི་རིག་བ་ཡི། ནང་པར་དེ་ལ་རབ་གསལ་གྱུར།། 155

དེ་ཡིས་རང་གིས་མ་སགྲོང་ནས། རྩ་བ་བཅད་པའི་ལྗོན་པ་བཞིན།
སྡིག་པའི་དུག་ནི་འཛིབས་པ་ཡི། རབང་དང་བྲལ་བར་བྱས་དེ་ལྷུང་།། 156

དེ་ཡིས་བསིལ་བའི་རྣམ་བྲན་དེ། དལ་གྱིས་འདུ་ཤེས་ཐོབ་པ་དེས།
གྱི་ཆེ་གཡང་སར་འཁྲིམ་པ་ལ། སྡུག་བསྔལ་གྱུར་བཞིན་སྨྲི་སྔགས་ཕྱུང་།། 157

དཔལ་བར་ལྡང་བའི་ཕོ་ཉ་མོ། འདོད་པས་སྨོངས་མ་དེ་ཡིས་ནི།
སྙིན་མའི་འཁྲི་ཤིང་གཟེངས་བསྐྱོད་ཅིང་། ལག་པས་ཡོངས་འཁྱུད་དེ་ལ་སྨྲས།། 158

ཁྱོད་ཀྱི་སྐུ་ངན་བཟོད་དཀའ་འདི། གནས་མིན་རྟེན་པ་དག་ལ་ཅི།
བུད་མེད་ཆོས་ཀྱིས་བསླམས་པ་རྣམས། མི་བདེན་ཁྱོད་ཀྱིས་མི་ཤེས་སམ།། 150

ཁྱོད་ཀྱི་སྡུག་བསྔལ་ལོངས་མ་སྐྱེད། སྲུ་ཡི་ཡང་ནི་ནོར་མ་ཐོགས།
ཕྲུན་མོངས་བདེ་བའི་ལོངས་སྤྱོད་འདེས། ཁྱོད་ལ་སྡིག་པའི་བག་ཆགས་ཅི།། 160

གསོ་ལྡན་བསླམས་པ་མེད་པ་ཡི། ཚ་སྐྱང་བྲད་མེད་ཕྲུན་མོང་ཉིད།
གང་ལ་ཕ་ཡིས་ཁྲུས་བྱས་ཏེ། བུ་ནི་ཁྲུས་བྱེད་མིན་ནམ་ཅི།། 161

तस्मात् प्रच्छादनायासं कुमारस्य प्रयत्नतः ।
भंक्त्वा प्रसभसंभोगे प्रदिशामि प्रगल्भताम् ॥ १५४ ॥

इति सञ्चिन्त्य सा रात्रौ प्रभाते व्यक्तविग्रहा ।
ययौ वस्त्रपरावृत्तियुक्त्या तस्य प्रकाशताम् ॥ १५५ ॥

स निजां जननीं दृष्ट्वा च्छिन्नमूल इव द्रुमः ।
पपात पातकविषावेशेन विवशीकृतः ॥ १५६ ॥

तया शीताम्बुना सिक्तः शनैः संज्ञा मवाप्य सः ।
विललाप पृथुश्वभ्रे विभ्रष्टइव दुःखितः ॥ १५७ ॥

त मुवाच परिष्वज्य भुजाभ्यां काममोहिता ।
भ्रूलतां सा समुन्नाम्य नरकापातदूतिकाम् ॥ १५८ ॥

मिथ्या किमय मस्थाने विषाद स्तव दुःसहः ।
किं न जानासि नारीणा मसत्यधर्म्मयन्त्रणाम् ॥ १५९ ॥

न त्वयोत्पादितं दुःखं हृतं वा कस्यचिद्धनम् ।
साधारसुखभोगेऽस्मिन् केयं ते पापवासना ॥ १६० ॥

सरित्साधारणा नार्य्य स्तरङ्गिण्यां निरर्गलम् ।
यस्यामेव पिता स्नाति तस्यां न स्नाति किं सुतः ॥ १६१ ॥

ལམ་གང་ནས་ནི་ཕ་སོང་བ། དེ་ཉིད་ནས་ནི་བུ་ཡང་འགྲོ།
བུད་མེད་བརྒྱ་ལམ་དག་དང་མཚུངས། ཐུན་མོང་པ་ཡིས་བགྲོད་བྱ་ཉིད།། 162

བུད་མེད་གཅིག་གིས་སྤྱད་བྱ་ཉིད། གཞན་དང་གཞན་གྱིས་འོས་མིན་པ།
འདི་ནི་འགའ་ཞིག་ཕྲག་དོག་དང་། ལྡན་པས་དམ་ཆོག་བྱས་པ་ཙམ།། 163

དམ་པའི་དོན་དུ་དགའ་མགུའི་སྐད། བགྲོད་པར་མི་བྱ་འགའ་ཡང་མེད།
པ་དང་བུ་ཡི་སྤྱོད་གཅིག་བཞིན། བུད་མེད་ཉེ་བར་ལོངས་སྤྱོད་བྱ།། 164

ཞེས་དེ་རི་ཡི་འབད་པ་ཡིས། ལོངས་སྤྱོད་ལ་དེ་མངོན་ཕྱོགས་བྱས།
འདོད་ཆགས་སླེས་པས་དྲག་པར་ཡང་། ཕྱོགས་བཞིན་དུ་ནི་མ་ཉིད་བསྟེན།། 165

དེ་ནས་དུས་ཀྱི་ཕ་དག་ནི། ཆུ་གཏེར་ཆེ་ལས་སྐྱར་འོངས་པ།
མ་ཡིས་བསྐུལ་བ་དེས་གསང་ནས། དུག་གིས་སྲོག་དང་བྲལ་བར་བྱས།། 166

དེ་ནས་ཆགས་པ་འཕེལ་བ་ཡི། མ་བསྟམས་བདེ་བ་འཚོལ་བ་དེས།
མཛའ་བས་ཡོངས་པའི་གཉེན་ཉུལ། མཛའ་བས་དཔལ་གྱིས་རབ་སྤྲས་པ།། 167

མ་བསྟམས་བདེ་བ་ཐོབ་པའི་སྐད། སྙིང་པོ་འི་ནོར་དག་བླངས་བྱས་ལ།
ཚོར་མ་ཕྱུངས་པའི་ཡུལ་གཞན་དུ། འུ་ཅག་རེ་ཞིག་འགྲོ་བར་བྱ།། 168

ཞེས་པ་དེ་ཚིག་ཡུན་རིང་གི། དུས་སུ་འདོད་པ་ཐོབ་གྱུར་ནས།
ནོར་གྱི་སྙིང་པོ་བླངས་བྱས་ཏེ། དེ་ནི་དེ་དང་འགྲོགས་ནས་སོང་།། 169

पथा येन पिता यात स्तेन पुत्रोऽपि गच्छति ।
सामान्यगमना एव वर्त्तनीसन्निभाः स्त्रियः ॥ १६२ ॥

एकभोग्यैव ललना न परस्पर मर्हति ।
ईर्षालुभिः कृतं कैश्चिदेतत् समयमाचकम् ॥ १६३ ॥

नैव काचिदगम्यास्ति रत्यर्थं परमार्थतः ।
एकपात्रोपभोग्या हि पितुः पुत्रस्य च स्त्रियः ॥ १६४ ॥

इति यत्नेन स तया सम्भोगाभिमुखः कृतः ।
स जातरागः सततं सिषेवे जननीं पशुः ॥ १६५ ॥

ततः कालेन पितरं प्रत्यायातं महोदधेः ।
स गूढ़े प्रेरितो मात्रा विषेण विदधे व्यसुम् ॥ १६६ ॥

ततः सा रागदग्धैव निरर्गलसुखैषिणी ।
स्वैरं कुमारं प्रणयादुवाच स्नेहमोहितम् ॥ १६७ ॥

सारद्रविणमादाय निर्यन्त्रणसुखाप्तये ।
एहि देशान्तरं तावद् गच्छावः कण्टकोज्झितम् ॥ १६८ ॥

इति तद्वचनं श्रुत्वा चिरकालसमोहितम् ।
सारद्रविण मादाय स ययौ सहित स्तया ॥ १६९ ॥

ཡུལ་གཞན་དག་ཏུ་གནས་བྱས་ཏེ། སྡིག་པས་རབ་བསྒྲིབས་དེ་དག་ནི།
ཆུང་མ་ཁྲོ་བོ་ཉིད་དུ་གྲགས། མཆོག་ཏུ་བདེ་བ་ཐོབ་པར་གྱུར། 170

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ཁྱིམ་དེར་ནི། རང་གི་ཡུལ་ཡང་མངོན་ཤེས་པས།
ཡོངས་འདྲིས་དགེ་སློང་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ། མཉེས་གཤེན་ལས་ནི་དེ་ལ་སྨྲས། 171

ཁྱོད་ཀྱི་མ་ནི་དགེ་བའམ་ཅི། སྐྱེ་བ་བཟང་ལས་ཡང་ཡང་དུ།
བསམ་པའི་དབང་དུ་གྱུར་པའི་སེམས། འགྲོད་གདུང་མེད་པར་གྱུར་དམ་ཅི། 172

ཞེས་པ་དགེ་སློང་ཚིག་ཐོས་ནས། རྗེ་བ་ཡིས་ནི་བསྟན་པ་བཞིན།
འདྲི་ཞེས་བདག་གིས་འཛིགས་པ་དེས། རིགས་པ་དེ་དེ་རབ་བསམས་པ། 173

གྲོས་བྱེད་འཛིགས་པས་འཁྲུངས་པ་དེས། མ་དང་ལྷན་ཅིག་བགྲོས་བྱས་ནས།
དགེ་སློང་དེ་ནི་མགྲོན་གཉེར་དེ། ས་བསྡམས་མཚོན་གྱིས་ཁྱིམ་དུ་བསད། 174

དགེ་སློང་དགྲ་བཅོམ་བསད་ལ་ཡང་། དེ་ཡི་བདག་ཀུང་འདར་མ་ཡིན།
གདུག་པ་པོ་རྣམས་ནི་སྡིག་པ་ཡིས། རྡོ་རྗེ་ལས་ལྷག་སྲ་བར་འགྱུར། 175

ངོས་མེད་གཡང་སར་ཆོས་ཀྱི་རི་རྩེ་ཡི། སྟེང་ནས་ཁ་ནི་ཐུར་ལྟས་ལྷུང་གྱུར་ཅིང་།
འཕྲུལ་མང་བྱ་སྐྱིབས་རྒྱ་ཡིས་བསྟན་པ་རྣམས། ངེས་པར་རྒྱུན་མ་དག་ཏུ་
ལྷུང་བར་འགྱུར། 176

བུ་དང་རོལ་བར་བྱེད་མོད་ཀྱང་། ཡོངས་སྤྱོད་དག་ལ་ཆགས་པ་དེས།
མཛེས་པ་ཞེས་བྱ་ཚོང་པའི་བུ། མཐོང་ནས་དེ་ལ་ཆགས་ལྡན་གྱུར། 177

देशान्तरे कृतपदौ परं प्रच्छन्नपातकौ ।
जायापतित्वं विख्याप्य तौ निर्वृति मवापतुः ॥ १७० ॥

ततः कदाचित्तद्गेहं स्वदेशप्रत्यभिज्ञया ।
भिक्षुः परिचितोऽभ्येत्य वात्सल्यात्तमभाषत ॥ १७१ ॥

कच्चित्ते कुशलं मातुः कच्चिज्जन्ममहीं मुहुः ।
त्यक्तां चिन्तयतश्चित्तं नायात्यनुशयव्यथाम् ॥ १७२ ॥

इति भिक्षो र्वचः श्रुत्वा शिलयेव स ताडितः ।
प्रत्यभिज्ञानचकित स्तां तां युक्ति मचिन्तयत् ॥ १७३ ॥

स मात्रा सह संमन्त्र्य मन्त्रभेदभयाकुलः ।
भिक्षुं निमन्त्र्य निर्यन्त्र स्तं शस्त्रेण गृहेऽवधीत् ॥ १७४ ॥

अर्हद्भिक्षुवधेऽप्यस्य नाकम्पत मनाङ्मनः ।
नृशंसाः पातकै र्यान्ति वज्रादपि कठोरताम् ॥ १७५ ॥

धर्म्माद्रिशृङ्गाग्रपरिच्युताना मधोमुखाना मतटावटेषु ।
वहुभ्रमश्वभ्रशताहतानां भवत्यलं पातपरम्परैव ॥ १७६ ॥

सुतेन रममाणापि सा सम्भोगपरायणा ।
सुन्दराख्यं वणिक्पुत्रं दृष्ट्वाभूत्तत्र सस्पृहा ॥ १७७ ॥

དགའ་མགུར་སྤྱོད་པ་ཡོངས་འདྲིས་གོམས་པས་ལོངས་སྤྱོད་དག་ནི་
མཆོག་ཏུ་འཕེལ།
ནོར་ནི་རབ་འཕེལ་དར་བས་ཆགས་པ་སྟུག་པོ་ཅི་ཡང་སྟེན་པར་བྱེད།
ལན་ཚྭའི་ཆུ་དག་འཕྱུངས་པས་ཤིན་ཏུ་མ་ཟད་སྲིག་པར་འགྱུར།
ཆུ་ནི་རྒྱ་ཆེ་མི་ལྷུམ་སྤུངས་པས་རྣ་གདོང་མེ་ནི་རབ་ཏུ་འབར།། 178

འདོད་ལྡན་གསར་པ་ཏི་དང་ནི། ཆགས་ལྡན་མ་དེ་གསང་འགྲོགས་པ།
ངས་བྱིན་གྱིས་མགོང་ཁྲིས་པ་ཡིས། རལ་གྲི་དག་གིས་མ་ཉིད་བསད།། 179

མཚམས་མེད་གསུམ་གྱི་སྡིག་ཁུར་གྱིས། དེ་ནི་ལྕི་བ་ཉིད་དུ་གྱུར།
སྐྱེ་བོ་ལྷ་ཡིས་བསྐུལ་རྣམས་ཀྱིས། མྱུར་དུ་གྲོང་ཁྱེར་དག་ལས་ཕྱུང་།། 180

འགྱོད་པ་དྲག་པོ་སྐྱེས་པ་དེ། སོང་ནས་དགེ་སློང་ཚོགས་མང་ལ།
སྡུག་བསྔལ་ལས་ནི་རབ་བྱུང་ཞུས། གང་ཆེ་སྡིག་ཅན་ལ་མ་བྱིན།། 181

དེ་ཚེ་དེ་ཡི་ཞེས་སྨྲང་གིས། དགེ་སློང་ཚོགས་ཉལ་མཚན་མོ་བསྲེགས།
དེ་ལ་བརྩེ་བས་བསྟན་པའི་བློ། དགེ་སློང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཆེ།། 182

གཅིག་གིས་དེ་ཚེ་བསླབ་པའི་གནས། སྤངས་པའི་རབ་ཏུ་བྱུང་བ་བྱིན།
རབ་ཏུ་འབད་ཅིང་ནན་ཏན་གྱིས། བསླབ་པའི་གནས་ནི་ཀུ་བྱེད་པ།། 183

དེ་ལ་དགེ་སློང་གིས་སྨྲས་ཁྲོད། བསླབ་གནས་འཛིན་པ་ཡོངས་མི་འོས།
སངས་རྒྱས་སངས་རྒྱས་ཕྱག་འཚལ་ལོ། ཞེས་པ་འདི་ཉིད་རྟག་ཏུ་བཟླས།། 184

इति परिचिते भोगाभ्यासैः स्मरः परिवर्द्धते
किमपि भजते लोभः प्रौढिं प्रवृद्धधनोदयैः ।
लवणसलिलापाने तृष्णा प्रयात्यतितीव्रतां
ज्वलति विपुलज्वालोऽगाधे जले वड़वानलः ॥ १७८ ॥

तां गूढसङ्गतां तेन रागिणा नवकामिना ।
दृष्ट्वाश्वदत्तः खड्गेन जघान जननीं क्रुधा ॥ १७९ ॥

आनन्तर्य्यैस्त्रिभिः पापभारैः स गुरुतां गतः ।
निष्काशितः पुरात्तूर्णं देवताप्रेरितै र्जनैः ॥ १८० ॥

स जातानुशय स्तीव्रं गत्वा भिक्षुगणान् बहून् ।
दुःखाद् ययाचे प्रव्रज्यां निवेद्य निजदुष्कृतम् ॥ १८१ ॥

तस्मै न कश्चित्प्रव्रज्यां पतिताय ददौ यदा ।
तदा ददाह स द्वेषात् सुप्तं भिक्षुगणं निशि ॥ १८२ ॥

एकस्तु बोधिसत्त्वांशो भिक्षु स्तस्य दयार्द्रधीः ।
तदा दिदेश प्रव्रज्यां शिक्षापदविवर्जिताम् ॥ १८३ ॥

शिक्षापदानि निर्बन्धाद् याचमानं प्रयत्नतः ।
भिक्षु स्तमूचे नार्होऽसि शिक्षापदपरिग्रहे ॥ १८४ ॥

རྒྱལ་བའི་མཚན་ནི་ཐོས་ཉིད་ཀྱིས། །དུས་ཀྱི་མཐར་ནི་འཁོར་གྲོལ་འགྱུར། །
དེ་ནས་དུས་བྱིན་ལུས་ཀྱི་མཐར། །འཇིགས་སུ་རུང་བའི་དམྱལ་བར་ཞུགས། ། 185

གང་མདུན་རབ་ཏུ་ཉམ་ང་བའི། །གླང་བ་འཇིགས་པའི་མི་ལྷར་པ། །
དེ་ཉིད་ཆོས་སྦྱིན་ཡུན་རིང་གི། །ཡུན་རིང་ལས་ཞེས་བདག་གིས་དྲིས། ། 186

ཞེས་པ་བརྗོད་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས། །དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམ་པར་བཞུགས། ། 187

ཐ་སྣབས་ལྷར་གསོ་མ་ཡི་སྣུང་འཚུབ་དག་ལ་རྟོགས་པ་མེད་པ་རབ་ཏུ་འཁྲུད། །
དར་བ་ཐོབ་ནས་པ་ནི་གཟི་བྱིན་གཏེར་དེ་སྣང་བ་མིན་པ་དག་ཏུ་གཀོད། །
དགྲ་བཅོམ་སེམས་ཅན་གནས་ནི་རབ་ཏུ་གསལ་བར་འགྱུར་པ་མ་ཟད་
རིམ་པས་བཅོམ། །
དུ་བ་ཤིར་དུ་དྲི་མ་ཅན་གྱིས་མཆོག་ཏུ་ཉེས་བྱས་ཅི་དང་ཅི་མ་བྱས། ། 188

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཆོས་སྦྱིན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་དགུ་པའོ། །

नमो बुद्धाय बुद्धायेत्येतदेव सदा वद ।
जिनाभिधानं श्रुत्वैव कल्पान्ते मुक्ति मेष्यसि ॥ १८५ ॥

अथाश्वदत्तो देहान्ते घोरं नरक माविशत् ।
यस्याग्रे प्रबलोत्तालः शीतलः प्रलयानलः ॥ १८६ ॥

सोऽयं धर्म्मरुचिः पृष्ट श्चिरस्येति चिरान् मया ।
अभिधायेति भगवान् विरराम तथागतः ॥ १८७ ॥

वाताली जननी तरङ्गतरला निःशङ्क मालिङ्गिता
प्राप्य प्रौढ़ि मदर्शनं स जनक स्तेजोनिधिः प्रापितः ।
अर्हत्सत्त्वपदप्रकाशविभव स्तीव्रक्रमेणाहतो
धूमेनातिमलीमसेन न परं किं किं कृतं दुष्कृतम् ॥ १८८ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
धर्म्मरुच्यवदानमेकोननवतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་དགུ་ཅུ་ཐམས་པ།

ཡིད་ནི་དགེ་བའི་སྒྲུབ་བྱེད་ཅན། སྨིན་པ་ཤིན་དུ་ཆུང་ངུ་ཡིས།
སྙིང་སྟོབས་ཅན་ལ་ཕུན་ཚོགས་ནི། བརྟག་པས་བགོས་པར་བྱ་མི་འགྱུར།། 1

བྲི་ཛིའི་ཡངས་པ་ཅན་དུ་སྦྱོར། སྤྲེའུའི་སྟོན་རྫིང་ཞེས་བྱ་བའི་འགྲམ།
ཁང་པ་བརྩེགས་པའི་ཁྱིམ་གནས་ན། བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་བཞུགས་པའི་ཚེ།། 2

ཡོན་ཏན་མཐའ་དག་ལྡན་པ་ལས། སྐྱེས་བུ་མཆོག་ཉིད་དུ་གྱུར་པ།
ཁྱིམ་བདག་དཔལ་གྱིས་བསྐོར་བ་ནི། ནོར་ཅན་ཞེས་པ་བྱུང་བར་གྱུར།། 3

དེ་ཡི་ཆུང་མ་ཆོས་ཀྱི་གྲོགས། ངང་ཚུལ་ཅན་ཞེས་བྱ་བར་གྱུར།
བུ་ནི་གདོང་པོད་ཅན་ཞེས་དང་། དེ་བཞིན་མནའ་མ་བདེན་ལྡན་མོའོ།། 4

ཡངས་པ་ཅན་པའི་བྲམ་ཟེ་རྣམས། འཚོགས་ནས་དེར་ནི་ངེས་པར་བྱས།
ཐམས་ཅད་བཚོགས་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས། མགྲོན་དུ་གཉེར་བྱ་གཞན་དུ་མིན།! 5

ནོར་གྱིས་རྒྱགས་པས་གཅིག་གིས་ནི། གལ་ཏེ་རྒྱལ་བ་མགྲོན་གཉེར་བྱེད།
གཞན་གྱིས་ཆོས་ཀྱི་བགེགས་བྱེད་པ། དེ་ནི་ཀུན་གྱིས་འབྱུང་བར་བྱ།། 6

དེ་དག་ངེས་པ་མ་ཤེས་ན། ནོར་ཅན་མཆོག་གི་ཕུན་ཚོགས་ལྡན།
བསོད་ནམས་ལྡན་པ་རང་ཉིད་ཀྱིས། སོང་ནས་རྒྱལ་བ་མགྲོན་གཉེར་བྱས།། 7

नवतितमः पल्लवः ।

मनःशुद्धिविधानेन दानेनातिलघीयसा ।
भवन्त्यलङ्घ्याः संकल्पैः सम्पदः सत्त्वशालिनाम् ॥ १ ॥

पुरा वृजिषु वैशाल्यां मर्कटाख्यह्रदान्तिके ।
कूटागारगुहावासे जिने भगवति स्थिते ॥ २ ॥

बभूव धनिको नाम श्रिया गृहपति र्वृतः ।
समग्रपुण्यसंयोगात् पुरुषोत्तमतां गतः ॥ ३ ॥

पत्नी धर्म्मसखी तस्य शीलवत्यभिधाभवत् ।
वदान्याख्यश्च तनयः स्नुषा सत्यवती तथा ॥ ४ ॥

संहताः समयं चक्रुः तत्र वैशालिका द्विजाः ।
निमन्त्रणीयो भगवान् सर्व्वैः संभूय नान्यथा ॥ ५ ॥

एकश्चेत् कुरुते वित्तमदाज्जिननिमन्त्रणम् ।
सर्व्वै र्निर्वासनीयोऽसौ परेषां धर्म्मविघ्नकृत् ॥ ६ ॥

तेषां समय मज्ञात्वा पुण्यवान् धनिकः स्वयम् ।
दिव्यसम्पच्युत स्वप्ने गत्वा जिननिमन्त्रणम् ॥ ७ ॥

བཅོམ་ལྡན་རང་ཉིད་དགེ་འདུན་དང་། ལྷན་ཅིག་ཁྱིམ་དུ་གཤེགས་པར་ནི།
ཞལ་གྱིས་བཞེས་ཆེ་གུས་ལྡན་དེ། དགའ་བས་རང་གི་ཁྱིམ་དུ་སོང་། 8

དེར་ནི་དེ་ཡིས་ལྷ་ལ་འོས། མཆོག་གི་འབྱོར་པའི་ཚོགས་རྣམས་ཀྱིས།
རིན་ཅེན་སྟན་དང་ཡོ་བྱད་དང་། ཟས་ཀྱི་ས་གཞི་བསྟར་བ་བྱས། 9

སྐབས་དེར་གཉིས་སྐྱེས་ཐམས་ཅད་ནི། འདུས་ནས་ཡོ་བྱད་ཚོགས་བསྒྲུབས་པས།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་དྲུང་སོང་ནས། གུས་པས་མགྲོན་དུ་གཉེར་བ་བྱས། 10

དེ་ནས་དེ་ལ་བཅོམ་ལྡན་འདས། རབ་དང་དྲི་མེད་བསམ་པས་གསུངས།
སྔོན་དུ་དགེ་འདུན་དང་བཅས་པ། ནོར་ཅན་གྱིས་ནི་མགྲོན་དུ་གཉེར། 11

དེ་དག་ཐོས་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས། མཆོད་པ་སྔོན་གྱི་ཉིན་པར་ལ།
རབ་དུ་དོག་ཅིང་དེ་དག་རྣམས། རང་གི་ཁྱིམ་དུ་སོང་བའི་ཚེ། 12

ནོར་ཅན་ཁང་པར་བཅོམ་ལྡན་འདས། དགེ་སློང་རྣམས་དང་བཅས་བྱོན་ནས།
ལྷ་ཡི་རྨད་བྱུང་ཕུན་སུམ་ཚོགས། མཆོད་སྟོན་རབ་དུ་བཞེས་པ་མཛད། 13

དེ་ཡི་རྒྱང་མས་ཉིན་གཞན་ཡང་། དེ་མཚུངས་ཡངས་པའི་དཔལ་གྱིས་ནི།
མཆོག་གི་ལོངས་སྤྱོད་ཚོགས་རྣམས་ཀྱིས། བཅོམ་ལྡན་འདས་ལ་མཆོད་པ་བྱས། 14

གསུམ་པའི་ཉིན་ལ་དེ་ཡི་བུས། བཞི་པར་མནའ་མས་རྒྱལ་བ་ནི།
ངོ་མཚར་འབྱོར་པའི་ལོངས་སྤྱོད་ཀྱི། ཉེར་སྤྱད་རྣམས་ཀྱི་མགྲོན་དུ་གཉེར། 15

स भक्तिमान् भगवता गृहाभिगमने स्वयम् ।
ससङ्घेनाभ्युपगते हृष्टः स्वभवनं ययौ ॥ ८ ॥

स तत्र दिव्यविभवः सम्भारैस्त्रिदिवोचितैः ।
रत्नासनोपकरणां सज्जां भोज्यभुवं व्यधात् ॥ ९ ॥

अत्रान्तरे द्विजाः सर्व्वे गत्वा भगवतोऽन्तिके ।
संभूय कृतसंभारा श्चक्रु र्भक्त्या निमन्त्रणम् ॥ १० ॥

तानुवाचाथ भगवान् प्रसादविशदाशयः ।
पूर्व्वमेव ससङ्घोऽहं धनिकेन निमन्त्रितः ॥ ११ ॥

एतदाकर्ण्य यातेषु तेषु स्वभवनं शनैः ।
परं प्रतीक्षमाणेषु दिनं भगवतोऽर्चने ॥ १२ ॥

धनिकस्य गृहं गत्वा भगवान् सह भिक्षुभिः ।
दिव्याद्भुतर्द्धिसंभारं चक्रे भोज्यप्रतिग्रहम् ॥ १३ ॥

अन्येद्युरपि तत्पत्नी तत्तुल्यं विपुलश्रिया ।
दिव्योपभोगसंभारै र्भगवन्त मपूजयत् ॥ १४ ॥

तत्पुत्रेण तृतीयेऽह्नि चतुर्थे स्नुषया जिनः ।
आश्चर्य्यविभवाभोगै रुपभोगै र्निमन्त्रितः ॥ १५ ॥

ཡངས་པ་ཅན་པའི་ཚོགས་རྣམས་ཀྱིས། སྟོན་པ་མཆོད་པའི་སྐབས་མ་ཐོབ།
ནོར་ཅན་ལ་ནི་རབ་ཁྲོས་ཏེ། གནས་ནས་དབྱུང་བའི་རྩོམ་པ་བྱས།། 16

དེ་ནས་བདེ་བར་གཤེགས་པའི་བཀས། གཉིས་སྐྱེས་དེ་དག་རྣམས་ལ་ནི།
བདག་གིས་མ་ཤེས་ཞེས་བརྗོད་ནས། ནོར་ཅན་གྱིས་ནི་དང་བར་བྱས།། 17

དེ་ནས་ནོར་ཅན་ཆུང་མར་བཅས། བུ་དང་བཅས་ཤིང་མནའ་མར་བཅས།
སྟོན་པས་ཆོས་ནི་བསྟན་པ་ཡིས། བདེན་པ་མཐོང་བ་ཐོབ་པར་གྱུར།། 18

དེ་དག་སྔོན་བྱུང་བསོད་ནམས་ནི། འབྱོར་པ་ཆེན་པོ་རྒྱ་ཆེ་བ།
དགེ་སློང་གིས་དྲིས་བཅོམ་ལྡན་འདས། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་དེར་གསུངས་པ།། 19

བ་ར་ཎ་སིར་སྔོན་བྱུང་བ། པདྨ་ཞེས་པ་འཕྲིང་རྒྱུད་མཁན།
སྨུ་གེས་ཉེན་པའི་དུས་སུ་ནི། མཆོག་ཏུ་དབུལ་བ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 20

ཆུང་མ་ཡལ་འདབ་ཅན་ཞེས་དང་། བུ་ནི་ཨུ་དྦ་ལ་ཞེས་པ་དང་།
མནའ་མ་པ་ཊ་ལ་ཞེས་པ། འདི་དག་དེ་ཡི་ཚོགས་པར་གྱུར།། 21

ནམ་ཞིག་དེ་དག་ཁྱིམ་དང་ཉེ། མི་རྟོག་དགའ་ཚལ་རབ་མཛེས་ཤིང་།
ཆིམ་པ་དག་ཏུ་ཉིན་མོའི་མཐར། རང་སངས་རྒྱས་ནི་བཞུགས་པར་གྱུར།། 22

དེ་དག་ཀུན་གྱི་མི་བདག་གི། གནས་སུ་གོས་གཉིས་རེ་མོས་ཀྱིས།
མི་རྟོག་ཕྱུལ་ནས་འོངས་པ་ཡིས། འོད་ཀྱི་རང་བཞིན་དེ་མཐོང་གྱུར།། 23

अलब्धपूजावसरः शास्तु वैंशालिको गणः ।
धनिकाय परं क्रुद्धा स्वकु र्निष्कासनोद्यमम् ॥ १६ ॥

शासनात् सुगतस्याथ धनिकेन द्विजातयः ।
न मया ज्ञात इत्युक्ता तेन सर्व्वे प्रसादिताः ॥ १७ ॥

सपत्नीकोऽथ धनिकः सपुत्रश्च स्नुषान्वितः ।
धर्म्मदेशनया शास्तुः सत्यदर्शन माप्तवान् ॥ १८ ॥

तत्पूर्व्वपुण्यवृत्तान्तं महाविभवविस्तरम् ।
भिक्षुभि र्भगवान् पृष्टः सर्व्वज्ञ स्तानवोचत ॥ १९ ॥

वाराणस्यामभूत् पूर्व्वं मालिकः कमलाभिधः ।
दुर्भिक्षक्षपिते काले परां दुर्गति माप्तिः ॥ २० ॥

पत्नी पल्लविका नाम पुत्रः कुवलयाभिधः ।
पाटलाख्या स्नुषा चेति बभूवु स्तस्य संमिता ॥ २१ ॥

कदाचित् कुसुमारामे दिनान्ते तद्गृहान्तिके ।
प्रत्येकबुद्धः सन्तोषकान्ते विश्रान्ति माप्तवान् ॥ २२ ॥

ते त्वेकवसनाः सर्व्वे पर्य्यायेण नृपालये ।
पुष्पाणि दत्वा संप्राप्ता ददृशु स्तं प्रभामयम् ॥ २३ ॥

གཟི་བརྗིད་གཏེར་དེ་མཐོང་གྱུར་ནས། སྤྲ་རྡོ་དེ་ལ་མཆོད་འདོད་པས།
ག་ཤོགས་པ་བཅད་པའི་བྱ་བཞིན་དུ། དེ་དག་ནོར་མེད་གདུང་བ་ཐོབ།། 24

བདག་ཅག་བཞི་ལ་བདོག་པ་ཀུན། གོས་ནི་གཅིག་ཉིད་ཁོ་ན་ཡོད།
མཆོད་འོས་འདི་ཡི་ལུས་ཀྱི་མཆོག། དེ་ཉིད་ཀྱིས་ནི་གཡོག་པར་བྱས།། 25

དེ་རིང་གཅེར་བུར་རྒྱལ་པོ་ཡི། འཁོར་དུ་མི་འགྲོ་ཅི་འབྱུང་འགྱུར།
ཞེས་པའི་དམ་ཚིག་དེ་དག་གིས། བྱས་ནས་གོས་ཀྱིས་དེ་ལ་མཆོད།། 26

དེ་ཡི་བསོད་ནམས་སྨོན་ལམ་གྱིས། འཕྲིང་རྒྱུད་མཁན་འདི་ནོར་ཅན་འདི།
ཆུང་མ་བུ་དང་མཉའ་མར་ལྡན། ལྷ་མཐུ་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པར་གྱུར།། 27

ཅེས་པ་ཚོགས་སྲུ་ཀུན་མཁྱེན་གྱིས། བཤད་པ་ཐོས་ནས་དགེ་སློང་རྣམས།
སེམས་ནི་དྲི་མེད་རྩ་བ་དག། སྨིན་པའི་འབྲས་བུའི་དཔལ་དུ་སེམས།། 28

དེ་ནས་བྲམ་ཟེ་དེ་དག་རྣམས། ཀུན་འཚོགས་གཙང་པའི་ཟས་དག་གིས།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་ཡང་དག་མཆོད། དགེ་བ་རབ་ཏུ་འབར་བར་གྱུར།། 29

དམན་བྱིན་རིན་ཅན་ནོར་ནི་རྩ་ཡི་རྩེ།
དད་པས་བྱིན་པའི་རྩ་ཡང་རིན་ཐང་མེད།
མཛེས་པ་དུ་མའི་ཉམས་སྐྱོང་ནོར་ཡིན་ཏེ།
དགེ་བར་བྱུང་བའི་རྒྱུ་ནི་སེམས་ཉིད་དོ།། 30

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་འཁྲི་ཤིང་ལས་ནོར་ཅན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དགུ་ཅུ་པའོ།།

तेजोनिधिं त मालोक्य प्रात स्तत्पूजनोत्सुकाः ।
निर्द्धना स्ते व्यथां प्रापु श्छिन्नपक्षाः खगा इव ॥ २४ ॥

चतुर्णां विद्यतेऽस्माक मेकं सर्व्वस्व मम्बरम् ।
आच्छादयाम स्तेनैव पूज्यस्यास्य वरं वपुः ॥ २५ ॥

नाद्य राजकुलं नग्ना गच्छामः किं भविष्यति ।
इति ते समयं कृत्वा वस्त्रेण त मपूजयन् ॥ २६ ॥

तत्पुण्यप्रणिधानेन धनिकोऽयं स मालिकः ।
जातो दिव्यप्रभावर्द्धिः पत्नीपुत्रस्नुषान्वितः ॥ २७ ॥

सर्व्वज्ञेनेति कथितं श्रुत्वा सपदि भिक्षवः ।
मेनिरे चित्तवैमल्यमूलां दानफलश्रियम् ॥ २८ ॥

तत स्ते ब्राह्मणाः सर्व्वे संभूय शुचिभोजनैः ।
भगवन्तं समभ्यर्च्य बभूवुः कुशलोज्ज्वलाः ॥ २९ ॥

हेलार्पितं रत्नवनं तृणाग्रम्
श्रद्धावितीर्णं तृणमप्यनर्घ्यम् ।
अनेकशोभानुभवं न वित्तम्
चित्तं निमित्तं शुभसम्भवानाम् ॥ ३० ॥

इतिक्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
धनिकावदानं नवतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་དགུ་ཅུ་རྩ་གཅིག་པ།

སྣང་བ་མེད་པའི་གནས་རྣམས་དག་ཏུ་སྒྲོན་མེ་བཞིན།
ལེགས་པར་བཤད་པ་བདེན་པའི་ལམ་ནི་གསལ་བར་བྱེད།
དེ་ཉིད་ཕྱིར་ནི་རྟགས་ཏུ་ཉེ་བར་མཁོ་བ་ལས།
བདག་ཉིད་ཆེ་རྣམས་དབེན་པ་སྤྱོད་ལ་ཡིད་དུ་འོང་།། 1

གང་ཚེ་གྲུད་ཀྱི་སྐྱེ་བའི་གནས། ཀུ་ཤའི་གྲོང་དུ་བཅོམ་ལྡན་འདས།
དགེ་བ་འཚོལ་བས་དགེ་སློང་ཚོགས། དགྲ་བཅོམ་གནས་ལ་བཀོད་གྱུར་པ།། 2

དེ་ཚེ་ཕན་ཚུན་སྨན་པར་ཆོས། སྨྲ་བྱེད་དགེ་སློང་རྣམས་དག་གིས།
ལེགས་བཤད་བདེ་བར་གཤེགས་པ་ནི། དགྱེས་པ་དང་ལྡན་རང་གིས་གསན།། 3

དེ་ཡི་ལེགས་བཤད་ལ་གཙགས་པ། དེ་མཐོང་དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་ནི།
དེ་ལ་གསོལ་པ་ཀུན་མཁྱེན་ཉིད། ངེད་ཀྱི་ཚིག་ལ་ཇི་ལྟར་དགྱེས།། 4

དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་དེ་བརྗོད་ཚེ། བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བས་བཀའ་སྩལ་པ།
བདག་ནི་སྐྱེ་བ་གཞན་དུ་ཡང་། ལེགས་བཤད་དག་ལ་མཆོག་ཏུ་དགའ།། 5

གྲོང་ཁྱེར་ཞི་ལྡན་དག་ཏུ་སྔོན། མི་བདག་ཤིབི་ཞེས་བྱ་བ།
འབྱུང་པོ་ཀུན་ལ་བརྩེ་བ་ཡི། ཡིད་འོང་གཉེན་དུ་གྱུར་པ་བྱུང་།། 6

एक नवतितमः पल्लवः ।

सुभाषितं सत्यपथप्रकाशनं
करोत्यनालोकपदे सुदीपवत् ।
सदोपकारादत एव वल्लभं
विवेकचर्य्यासु महात्मनामपि ॥ १ ॥

कुशिपुर्य्यां भगवता यदा मल्लजनास्पदे ।
अर्हत्पदं भिक्षुगणः प्रापितः कुशलैषिणा ॥ २ ॥

तदा कथयतां धर्म्मं भिक्षूणां मधुरं मिथः ।
स्वयं शुश्राव सुगतः प्रीतियुक्तः सुभाषितम् ॥ ३ ॥

सुभाषितव्यसनितां तां दृष्ट्वा तस्य भिक्षवः ।
त मूचु स्तव सर्व्वज्ञ कथ मस्मद्वचः प्रियम् ॥ ४ ॥

इत्युक्ते भिक्षुसङ्घेन भगवानभ्यधाज्जिनः ।
जन्मान्तरेष्वपि परं वल्लभं मे सुभाषितम् ॥ ५ ॥

शिववत्यां पुरा पुर्य्यां शिवि र्नाम नरेश्वरः ।
बभूव सर्व्वभूतानां दयादयितबान्धवः ॥ ६ ॥

དེ་ཡི་བསོད་ནམས་བཀར་གནས་པའི། མི་ཡི་མགྲོ་རིས་ཀུན་གང་བ།
མཐོང་ནས་དེ་ཡི་སྙིང་སྟོབས་ནི། རྟག་ཏུ་མཆོད་སྦྱིན་བརྒྱ་བ་འོངས༎ 7

དེ་ནི་རིན་ཆེན་ཁང་བཟང་སྟེར། འཇོམས་པའི་མི་བདག་ཙན་སོང་ནས།
འཇིགས་རུང་སྲིན་པོ་འི་གཟུགས་བསྒྱུར་ཏེ། དེ་ཡི་མདུན་དུ་མངོན་ཕྱོགས་སྨྲས༎ 8

འདུ་བྱེད་མི་རྟག་ཤིན་ཏུ་གཡོ་བའི་གློག་རབ་མཛེས་པ་དག་དང་མཚུངས།
རབ་ཏུ་སྐྱེས་ཤིང་སྐྱེས་ཤིང་འཇིག་པའི་ཡོངས་སུ་འགྱུར་བ་དག་ལ་ཆགས༎ 9

ཞེས་པའི་ལེགས་བཤད་ཕྱིར་བརྗོད་ནས། སྲིན་པོ་དེ་ནི་མི་སྨྲ་གྱུར།
ས་ཡི་བདག་པོས་ཐལ་སྦྱར་ནས། ཕྱག་འཚལ་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ༎ 10

དགེ་བ་ལེགས་པར་བཤད་པའི་ཕྱིར། ཡིད་བདེ་ལྷག་མ་གསུང་བར་མཛོད།
བྱང་ཆུབ་ཡན་ལག་གྱུར་སྐད་དེ། སློབ་མར་གྱུར་ནས་བདག་ཅག་ནོ༎ 11

དུལ་བས་དེ་སྨྲ་མི་བདག་ལ། སྲིན་པོ་ཡིས་ནི་རབ་སྨྲས་པ།
རྒྱལ་དབང་སློབ་མ་འབྲས་བུ་མེད། ཁྱོད་ཀྱིས་བདག་ལ་ཅི་ཞིག་བྱ༎ 12

སྐོམ་པས་བདག་ནི་ཡོངས་ཉེན་ཅིང་། བཀྲེས་པས་སྐུ་ནི་ཡོངས་སུ་ཉམས།
རྒྱལ་པོ་བདག་ནི་བླ་མ་ཡི། ཞེས་པ་འབའ་ཞིག་འདི་མི་འདོད༎ 13

བཀྲེས་སྐོམ་དག་གིས་གཟིར་གྱུར་པས། གང་ཞིག་ཅུང་ཟད་བདག་སྨྲ་འོ།
ལྷག་མ་བརྗོད་པར་ཡོངས་མི་ནུས། བདག་ལ་སྡུག་བསྔལ་མ་མཛད་ཅིག༎ 14

तत्पुण्यशासनासीनैः स्वर्गमापूरितं नरैः ।
दृष्ट्वा शतक्रतु र्ज्ञातुं सत्त्वं तस्य समाययौ ॥ ७ ॥

रत्नप्रासादशिखराक्रान्तं नृपति मेत्य सः ।
रक्षोरूपं विधायोग्रं तदग्राभिमुखोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥

अनित्याः संसारा स्तरलतरविद्युद्द्युतिनिभाः ।
समुत्पन्नोत्पन्नप्रलयपरिणामप्रणयिनः ॥ ९ ॥

सुभाषितार्द्धमित्युक्त्वा तुष्णीमासीत् स राक्षसः ।
तं प्रणम्य क्षितिपतिः कृताञ्जलिरभाषत ॥ १० ॥

साधो सुभाषितस्यार्द्धं शेषं शंस मनःसुखम् ।
वाणीं बोध्यङ्गभूतां ते शिष्यो भूत्वा शृणोम्यहम् ॥ ११ ॥

इति ब्रुवाणं विनयान्नृपं प्रोवाच राक्षसः ।
त्वया शिष्येण राजेन्द्र निष्फलेन करोमि किम् ॥ १२ ॥

पिपासापरिभूतोऽहं क्षामकुक्षि र्बुभुक्षया ।
नैतन्ममेप्सितं राजन् केवलं गुरुगौरवम् ॥ १३ ॥

क्षुत्तृष्णाव्याकुलतया यत्किञ्चित् प्रलपाम्यहम् ।
शेषं वक्तुं न शक्नोमि मा कृथा मे कदर्थनाम् ॥ १४ ॥

སྙན་པའི་གདངས་ལྡན་རོ་ནི་འོས་པ་ཅན།
ལེགས་པར་བཤད་པ་རབ་ཏུ་རྒྱས་གྱུར་པ།
ཆོས་ལ་བདེ་བ་སྟེར་བྱེད་འདི་དག་ནི།
ངེས་པར་བཀྲེས་དང་སྐོམ་པར་བྱེད་པ་མིན།། 15

ཐོས་དང་གླུ་དང་སྙན་དངགས་ངལ་བས་ཡོངས་འདྲི་དག་མཚན་སྒྲུབ་བྱེད་དང་།
ནོར་བུ་ཞེས་དང་འབྱུང་པོ་གདོན་ནད་དུག་དང་སྐྱོ་བ་ཞི་བྱེད་དང་།
ས་འཛིན་བསྐྱེན་དང་རྩ་གཉེར་སློལ་བར་བྱེད་དང་གསེར་འགྱུར་དག་དང་རྩིས།
འདི་དག་མ་ལུས་མཐར་ཐུག་འབྲས་བུ་མི་རྣམས་དག་གི་བཟའ་བ་ཡིན།། 16

འཕྲུལ་ལ་བཅད་པའི་ཤ་དད་ནི། ཁྲག་དག་བདག་ལ་ཚིམ་བྱེད་པ།
འཚོ་མེད་སྡོམ་པས་བཅིངས་གྱུར་པ། ཁྱོད་ལས་ཤིན་ཏུ་རྙེད་པར་དཀའ།། 17

ཁྱོད་དང་ཉེ་བར་བདག་ཅི་བྱེད། འགའ་ཞིག་ལ་ནི་སློང་དུ་འགྲོ།
ཟས་དང་གནས་ནི་མཚུངས་པ་ཡི། རྩེད་མོ་དང་ནི་གཏམ་དག་མཛེས།། 18

ཞེས་དེས་བརྗོད་ཚེ་མི་བདག་ནི། གུས་དང་བཅས་པས་དེ་ལ་སྨྲས།
རང་གི་ལུས་ནི་རབ་བཅད་པའི། ཁྲག་དང་ཤ་ནི་ཁྱོད་ལ་བྱིན།། 19

གྲུ་ཆེ་བློ་གྲོས་ལྡན་པ་ཁྱོད། རྟེན་ཅིང་འབྲེལ་འབྱུང་དང་པོ་འི་སྒོ།
ཁྱོད་ཀྱི་ལེགས་བཤད་མྱང་འདས་ཀྱི། གྲོང་ཁྱེར་གྱི་ནི་ལམ་གྱི་མཆོག།། 20

རྒྱལ་པོ་ཟླ་བས་འདི་བརྗོད་ཚེ། མཚན་མོ་རྒྱུ་བས་དེ་ལ་སྨྲས།
བློ་གྲོས་བཟང་པོ་མྱུར་དུ་ཉོན། དམ་བཅས་པ་དག་སྦྱིན་པར་མཛོད།། 21

माधुर्य्यधुर्य्याणि रसोचितानि
सम्भार्य्यमाणानि सुभाषितानि।
नैव क्षुधं न क्षपयन्ति तृष्णा
मेतानि तृप्तस्य सुखप्रदानि ॥ १५ ॥

श्रुतं गीतं काव्यं श्रमपरिचयः कौतुकविधिः
मणिज्ञानं भूतग्रहगदविषोन्मादशमनम् ।
नृणां भूभृत्सेवा जलधितरणं क्षेमकरणम्
तदेतत् पर्य्यन्ते गणित मखिलं भोजनफलम् ॥ १६ ॥

सद्यःक्षतस्य रुधिरं मांसञ्च मम तर्पणम् ।
अहिंसाबद्धनियमात् त्वत्त स्तदतिदुर्लभम् ॥ १७ ॥

गच्छामि याचितुं कञ्चित् त्वत्समीपे करोमि किम् ।
क्रीड़ाकथाश्च शोभन्ते तुल्याहारविहारयोः ॥ १८ ॥

इत्युक्त स्तेन नृपति स्त मभाषत सादरः ।
निजदेहसमुत्कृत्तं सास्रङ्मांसं ददामि ते ॥ १९ ॥

त्वं प्रतीत्यसमुत्पादपूर्व्वार्द्धं समुदाहर ।
निर्व्वाणनगरस्याग्र्यः पन्था तव सुभाषितम् ॥ २० ॥

इत्युक्ते राजचन्द्रेण त मुवाच क्षपाचरः ।
श्रूयतां सुमते तूर्णं दीयताञ्च प्रतिश्रुतम् ॥ २१ ॥

འདུ་བྱེད་སྣ་ཚོགས་ཤིན་ཏུ་གཡོ་བའི་གློག་རབ་མཛེས་པ་དག་དང་མཚུངས།
རབ་ཏུ་སྐྱེས་ཤིང་སྐྱེས་ཤི་འཇིག་པའི་ཡོངས་སུ་འགྱུར་བ་དག་ལ་ཆགས།
དེས་བསྐྱེད་འཁོར་ཞིང་ཡོངས་སུ་སྒྱུར་བས་སྲོག་ཆགས་དག་ནི་དབང་བྲལ་ཞིང་།
ངལ་དུབ་ལྡན་པ་རྣམས་ལ་ཉེར་ཞི་འགོག་པས་ངལ་སོ་སྟེར་བར་བྱེད།། 22

དེ་དག་ཐོས་ནས་སྐྱེ་བདག་ནི། དགའ་མགུ་སྨིག་དག་རབ་རྒྱས་པས།
རང་གི་ལུས་ནི་བཅད་པའི་ཤ། ཁྲག་དང་བཅས་པ་དེ་ལ་བྱིན།། 23

རང་ཤ་བཅད་ཅིང་བཅད་ཅིང་ནི། སྟེར་བར་བྱེད་པ་ས་བདག་གི།
སྙིང་སྟོབས་རྣམ་འགྱུར་མེད་པ་ཡིས། མཚན་མོ་རྒྱ་བ་ཡ་མཚན་གྱུར།། 24

དེ་ཡིས་ལུས་ནི་ཐམས་ཅད་ལས། ཤ་ཟ་དག་ལ་ཤ་བྱིན་ནས།
སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་སྒྲོལ་བ་ལ། སྨོན་ལམ་མི་ཡི་བདག་པོས་བྱས།། 25

དེ་ནས་དེ་ལ་གཙུགས་པ་ལས། འཇིར་འཇིག་སྲིན་པོ་འི་གཟུགས་ཀྱིས་སྨྲས།
ཁྱོད་ཀྱི་གནད་ནི་བཅད་པ་ལ། གདུང་བས་མི་དགའ་བསྐྱེད་དམ་ཅི།། 26

སྐབས་གསུམ་རྒྱལ་པོས་དྲིས་པ་ན། རྒྱལ་པོ་འི་རྒྱལ་པོས་དེར་སྨྲས་པ།
ལུས་ཀྱི་གཞན་ལ་ཕན་པ་དག། བྱས་ལ་བདག་ནི་མི་དགའ་མེད།། 27

གལ་ཏེ་གདུང་བ་དག་ལ་ངེདག། ཉམ་འགྱུར་མེད་ན་བདེན་པ་དེས།
བདག་གི་ལུས་འདི་སྔོན་གཟུགས་བཞིན། རྨ་མེད་བསོས་བ་ཉིད་གྱུར་ཅིག།། 28

अनित्याः संसारा स्तरलतरविद्युद्युतिनिभाः
समुत्पन्नोत्पन्नप्रलयपरिणामप्रणयिनः ।
तदुत्थे जन्तूनां भ्रमणपरिवर्त्तैः श्रमवतां
निरोधाद्विश्रान्तिं दिशति विवशाना मुपशमः ॥ २२ ॥

एतदाकर्ण्य नृपतिः प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ।
ददौ स्वदेह मुत्कृत्य तस्मै मांसं सशोणितम् ॥ २३ ॥

उत्कृत्योत्कृत्य ददतः स्वमांसानि महीपतेः ।
निर्विकारेण सत्त्वेन विस्मितोऽभून्निशाचरः ॥ २४ ॥

स दत्त्वा सर्व्वगात्रेभ्यः पिशितं पिशिताशिने ।
प्रणिधानं व्यधात् सर्व्वसत्त्वसन्तारणे नृपः ॥ २५ ॥

तत स्तं प्रणयादूचे रक्षोरूपः पुरन्दरः ।
अपि ते मर्म्मविच्छेदे विषादजननी व्यथा ॥ २६ ॥

पृष्ट स्त्रिदशराजेन राजराज स्त मब्रवीत् ।
न विषादोऽस्ति मे देहे परोपकरणीकृते ॥ २७ ॥

व्यथायां निर्विकारोऽहं यदि सत्येन तेन मे ।
निर्व्रणस्वस्थमेवास्तु पूर्व्वरूपमिदं वपुः ॥ २८ ॥

ཅེས་སླུས་ས་ཡི་བདག་པོ་ཡི། བདེན་པའི་ཚིག་ནི་བརྗོད་པ་ལས།
འཕྲུལ་ཉིད་ལུས་ནི་སྔོན་གྱི་གཟུགས། རྨ་དང་བྲལ་བ་ཉིད་དུ་གྱུར། ། 29
མཁའ་ལ་རྒྱུ་བས་མེ་ཏོག་ཆར། ཡངས་པས་དེ་ནི་གསོགས་བྱས་ཤིང་།
ལྷ་ཡི་དབང་པོས་སྦྱིན་པོའི་གཟུགས། ཡོངས་སུ་བཏང་ནས་རབ་ཏུ་བསྔགས། ། 30
བརྒྱ་བྱིན་སྙིང་སྟོབས་ལྡན་པ་ཡིས། མི་བདག་ལ་ནི་དང་བྱས་སོ།
དེ་ཡི་ལེགས་བཤད་བདུད་རྩི་ཡི། ཉམས་སྟོང་ས་ཡི་བདག་པོས་བསམས། ། 31
ང་ཉིད་སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བ་ལ། མི་དབང་ཤི་བི་རེར་གྱུར་ནས།
དེ་ལྟར་སྲོག་གི་གཏོང་གིས་བདག། ལེགས་བཤད་ལ་ནི་དགའ་བར་གྱུར། ། 32
རང་གི་སྐྱེ་བ་གཞན་གྱི་གཏམ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པ་དག།
ཐོས་ནས་ཡ་མཚན་ལྡན་པ་ཡི། དགེ་སློང་ཀུན་གྱིས་རབ་ཏུ་བསྔགས། ། 33
མཐོང་དང་མ་མཐོང་བདེ་ལ་ལམ་ནི་ལེགས་བཤད་ཀྱིས་
གསལ་སྟོན་མ་ལྟ་བུར་སྤྱོད།
ལེགས་བཤད་བདུད་རྩིའི་རོ་ནི་ཉམས་སྟོང་ལྡན་པས་
མཆོག་ཏུ་དགའ་བའི་ཆར་དག་འབེབས།
ལེགས་བཤད་དོན་གཉེར་ཡུལ་ལ་གཉེར་བ་ཀུན་མཁྱེན་
དག་ཀྱང་དོན་གཉེར་ཉིད་དུ་འགྱུར།
དེ་སྐད་དམ་པ་རྣམས་ལ་ལེགས་བཤད་དང་མཚུངས་
དགའ་བ་ཅི་ཡང་ཡོད་མ་ཡིན། ། 34

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་ཤི་བིའི་ལེགས་བཤད་ཀྱི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དགུ་ཅུ་རྩ་གཅིག་པའོ། །

इति ब्रुवाणस्य भुवः पत्युः सत्योपयाचनात् ।
सहसैव वपुः पूर्व्वरूपं निर्व्रणतां ययौ ॥ २९ ॥

तं पुष्पवर्षैर्विपुलैः श्लाघ्यमानं नभश्चरैः ।
रक्षोरूपं परित्यज्य प्रशशंस सुरेश्वरः ॥ ३० ॥

प्रसाद्य नृपतिं याते दृष्टसत्ये शतक्रतौ ।
अचिन्तयत् सुधास्वादं भूपति स्तत् सुभाषितम् ॥ ३१ ॥

शिवि र्नरेश्वरः सोऽह मभवं पूर्व्वजन्मनि ।
इति प्राणपणेनाभूद्दुर्लभं मे सुभाषितम् ॥ ३२ ॥

तथागतेन कथितां जन्मान्तरकथां निजाम् ।
आकर्ण्य भिक्षवः सर्व्वे प्रशशंसुः सविस्मयाः ॥ ३३ ॥

दृष्टादृष्टसुखे सुभाषितरुचि र्मार्गे प्रदीपायते ।
संवादेन सुभाषितामृतरसः प्रीतिं परां विन्दति ।
सर्व्वज्ञोऽपि सुभाषितार्थविषये यात्यर्थनीयोऽर्थितां
तस्मान्नास्ति सुभाषितेन सदृशं किञ्चित् सतां वल्लभम् ॥ ३४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
शिविसुभाषितावदान मेकनवतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་དགུ་ཅུ་ཙ་གཉིས་པའོ།

བླ་མ་རྣམས་ཀྱི་མདུན་དག་ཏུ་ཡང་ཤིན་ཏུ་བླ་མའི་གནས་སུ་ཆེ།
འབྱུང་པོ་རྣམས་ནི་འཇོན་བྱེད་མཐའ་དག་སོ་ཡི་སྙིང་པོ་རབ་ཏུ་བསྟུན།
ལུས་ནི་མཛའ་གཙུགས་བཞིན་དུ་གྲུས་བྱེད་སྐབས་གསུམ་ཆུ་བོ་གཙང་བའི་ལུས།
མ་དེ་ཉིད་ནི་དག་ཏུ་ཡཁས་པས་མཆོད་བྱ་ཡིན་གྱི་ནོར་འཛིན་མིན།། 1

མཉན་ཡོད་དག་གི་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ། དགའ་བར་རྒྱལ་བས་རྒྱ་ཆེའི་ཆོས།
རབ་ཏུ་བསྟན་ནས་མདོར་བསྡུས་པ། སླར་ཡང་དགེ་སློང་ཚོགས་ལ་གསུངས།། 2

པ་མ་མཆོག་ཏུ་ཚངས་པ་སྟེ། གསོ་བའི་བསོད་ནམས་དག་གི་གྲོགས།
གང་ཞིག་དེ་མཆོད་ཆོས་ལྡན་པའི། རིགས་དེ་བསྔགས་པར་འོས་པ་ཡིན།། 3

འཇིག་རྟེན་གསུམ་ན་བདེན་མཚུངས་དཀའ་ཐུབ་མེད།
འཆི་མེད་མཚུངས་པའི་ཆོས་ནི་གང་ནའང་མེད།
བླ་མ་ལྟི་བ་པ་ལས་གཞན་ཡོད་མིན།
ལྷ་ཡི་མཆོག་ནི་མ་ལས་གཞན་པ་མིན།། 4

གང་ཞིག་ལྷག་པར་གུས་པ་རབ་གྲུས་པས།
བླ་མའི་ཞལ་གྱི་པདྨ་ཟུང་མི་བསྟེན།
དེ་དག་མཆོག་ཏུ་ཆུར་སྐྱེད་འབབ་ཞིག་གིས།
འབྲུག་ངོགས་ཀུན་ཏུ་སོང་ཡང་འབྲས་བུ་མེད།། 5

द्विनवतितमः पल्लवः ।

गुरूणामप्यग्रे गुरुतरपदे सैव महती
सदा सद्भिः पूज्या त्रिदशतटिनीपावनतनुः ।
धरित्री भूतानां सकलरससारप्रसविनी
शरीरं पुष्णाति प्रणयमिव माता न वसुधा ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां विस्तरतरं धर्म्मं जेतवने जिनः ।
प्रतिपाद्य पुन र्भिक्षुसंघं संक्षिप्त मब्रवीत् ॥ २ ॥

पितरौ परमं ब्रह्म जङ्गमः पुण्यसङ्गमः ।
कुलानि तानि धन्यानि येषां धर्म्म स्तदर्चनम् ॥ ३ ॥

सत्योपमं नास्ति तप स्त्रिलोके
न चाप्यहिंसासदृशोऽस्ति धर्म्मः ।
गुरु र्गरीयान् न पितुः परोऽस्ति
मातुः परं दैवत मस्ति नान्यत् ॥ ४ ॥

सेवितं प्रसभभक्तिनिर्भरैः
पादपुष्करयुगं गुरो र्न यैः ।
ते परं जलरुचैव केवलं
सर्व्वतीर्थगमनेऽपि निष्फलाः ॥ ५ ॥

བདེ་བས་བསྐྱིན་བྱ་ཕྱི་རོལ་མི་ཕྱོགས་རྟག་ཏུ་བཟོད་པ་འཛིན།
དྲག་པོའི་བརྟུལ་ཞུགས་ལ་སོགས་ངེས་པས་གདུང་བ་སྤྱིར་མི་བྱེད།
གུས་པའི་རིམ་གྲོ་ཆུང་ངུ་ལ་ཡང་མི་ཆུང་འབྲས་བུ་སྤྱིར།
ཕ་དང་མ་དང་མཉམ་པའི་བླ་མ་གསུམ་པ་ཡོད་མ་ཡིན།། 6

ཞིགས་བྱས་དོན་སྟོན་བྱེད་པས་སློབ་དཔོན་རྟག་ཏུ་སུ་ཡིས་མངོན་པར་
དགའ་མི་བྱ།

སློག་རྣམས་སྐྱིད་བྱེད་བླ་མ་རྣམས་ཀྱི་བླ་མ་པ་ནི་ཛི་ལྟར་མཆོད་མི་བྱ།
དེ་བས་ཀྱང་ནི་མཆོག་ཏུ་སྐད་ཅིག་མངལ་གྱི་ཁྲར་བཟུང་མ་ཡི་ངལ་དུབ་ལ།
བྲུ་ཡོན་དག་པར་སྒྲུབ་བྱེད་བསོད་ནམས་ཚོགས་ནི་ཅི་ཡིས་དག་པ་ཐོབ་
པར་འགྱུར།། 7

དབེན་པ་མ་སྦྱིན་སྡིག་པའི་ཚོགས་ནི་ཡང་དག་ཐོབ་གྱུར་པ།
གང་གི་མ་ལ་སྨད་པའི་ཆ་ཡང་ངེས་པར་སྒྲུབ་བྱེད་པ།
སྡིག་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་དེ་ཡི་སྤྱི་བོར་རལ་པའི་ཚོགས་དག་ནི།
རབ་འབར་མེ་ཡི་དྲ་བའི་རྩེ་མོའི་ཚོགས་པ་དག་ཏུ་འགྱུར།། 8

སྐྱེ་བ་གཞན་དུ་མ་ལ་ནི། སྨོད་པར་བྱེད་པ་བདག་གིས་ཀྱང་།
སྡིག་དམོད་རང་བཞིན་མི་འདོད་པ། ཡོངས་སུ་རྫོགས་པའི་གདུང་བ་ཐོབ།། 9

བ་ར་ཆ་སི་དག་ཏུ་སྡོན། ཁྱིམ་བདག་མཛའ་བོ་ཞེས་པ་བྱུང་།
དེ་ཡི་ཆུང་མ་ནོར་འཛིན་མ། ཞེས་པ་ཤིན་ཏུ་ཡིད་འོང་གྱུར།། 10

सेव्यः सुखैरविमुखः सततं क्षमाभूः
तीव्रव्रतादिनियमै रवितीर्णशोषः ।
अल्पेऽप्यनल्पफलदः प्रणयोपचारे
मातुः पितुश्च न समोऽस्ति गुरुस्तृतीयः ॥ ६ ॥

आचार्य्यः सुकृतार्थदेशिकतया कै र्नाभिवन्द्यः सदा
प्राणानां जनकः कथं न जनकः पूज्यो गुरूणां गुरुः ।
तचापि क्षणगर्भधारणभरक्लेशस्य मातुः परं
केनानृण्यविधानपुण्यनिचयेनासाद्यते निर्वृतिः ॥ ७ ॥

मातु र्निकारकणमप्यविवेकपाक
सम्प्राप्तपातकुशलः किल यः करोति ।
तस्य ज्वलज्ज्वलनजालशिखाकलापः
पापव्रते भवति मूर्द्ध्नि जटाकटप्रः ॥ ८ ॥

विकारकारिणा मातु र्मयाप्यपरजन्मनि ।
पापशापमय स्तापः प्राप्तः पर्य्यायवैशसः ॥ ९ ॥

वाराणस्यां गृहपति र्मैत्रो नाम पुराभवत् ।
पत्नी वसुन्धरा नाम तस्याभूदतिवल्लभा ॥ १० ॥

དེ་ཡི་བུ་རྣམས་སྐྱེས་ཙམ་ན། ལྷ་པ་ཉིད་ནི་ཐོབ་པའི་ཚེ།
ན་ཚོད་མཐའ་རུ་ཕྱུ་དག་ནི། དཔལ་དང་ལྡན་པ་གཅིག་བཙས་ཀྱང་། ‖ 11

དེ་ཡང་འཆི་བས་འཇིགས་པ་ཡི། ཕ་ཡི་བུ་མོ་ཞེས་པར་ཏགས།
དེ་ཡི་མཛའ་པོ་འི་བུ་མོ་ཞེས། ཁྲིས་པ་དེ་ནི་གྲགས་པར་གྱུར། ‖ 12

དེ་ཡི་ཕ་ནི་རྒྱ་མཚོ་རུ། སོང་ཞིང་ཤི་བར་གྱུར་པའི་ཚེ།
བུ་གཅིག་པ་ཉིད་མ་ཡིས་ནི། གཉེར་དང་མཚུངས་པ་དག་ཏུ་བསྐྱངས། ‖ 13

རིགས་ཀྱི་རིམ་པས་འོངས་པ་ཡིས། གླིང་དུ་འགྲོ་བ་བཟློག་ནས་དེས།
དེ་ལ་མཆི་ཐབས་རང་ཡུལ་དུ། འོས་པས་ཚོང་དུ་འཚོང་པ་བསྟན། ‖ 14

དང་པོར་ཚོང་ལས་སྐྱེས་པ་ནི། ཀརྵ་པ་ཎ་བཞི་དག་དང་།
དེ་ནས་ཉི་མ་གཞན་ལ་ནི། དེ་ལས་གཉིས་འགྱུར་བཞི་འགྱུར་དང་། ‖ 15

དེ་ནས་བརྒྱད་འགྱུར་དག་ཀྱང་རྙེད། ཐམས་ཅད་དེ་ཡིས་མ་ལ་ཕུལ།
དེ་ནས་གླིང་བགྲོད་རིགས་ལ་ནི། འོས་པ་ཐོས་ནས་འདོད་ལྡན་གྱུར། ‖ 16

རྒྱ་མཚོར་འགྲོ་བ་རྩོམ་པ་ཡི། ཚོགས་ལ་ཆགས་ཤིང་གྲུས་ལྡན་དེ།
མ་ཡིས་བཟློག་པར་གྱུར་མོད་ཀྱང་། བཟློག་པ་ཉིད་དུ་ཁས་མ་བླངས། ‖ 17

དེ་ནས་མ་ནི་སྨྱུ་ངན་གྱིས། འཁྲུགས་ཤིང་རྐང་པ་ལ་འཇུལ་བས།
གདུག་པ་དེ་ཡི་དཔལ་བཞིན་དུ། རྐང་པས་རབ་ཏུ་སྤྲངས་ནས་སོང་། ‖ 18

जातमात्रेषु पुत्रेषु तस्याः प्राप्तेषु पञ्चताम् ।
पश्चिमे वयसि श्रीमानेकः सूनुरजायत ॥ ११ ॥

विपत्तिभीत्या तस्यापि कन्यानामाकरोत् पिता ।
मैत्रकन्यकनामासौ तेनाभूद्विश्रुतः शिशुः ॥ १२ ॥

समुद्रगमने तस्य जनके निधनं गते ।
एकपुत्रैव जननी निधितुल्यं ररक्ष तम् ॥ १३ ॥

कुलक्रमागतां तस्य द्वीपयात्रां निवार्य्य सा ।
आदिदेश स्वदेशार्हां स्वल्पविक्रयजीविकाम् ॥ १४ ॥

स पूर्व्वविक्रयोत्पन्नं कार्षापणचतुष्टयम् ।
ततो द्विगुण मन्यस्मिन् दिनेऽप्यथ चतुर्गुणम् ॥ १५ ॥

ततश्चाष्टगुणं लाभं सर्व्वं मात्रे न्यवेदयत् ।
कुलोचितां द्वीपयात्रां श्रुत्वाभूदथ सोत्सुकः ॥ १६ ॥

समुद्रगमनारम्भसम्भाररससादरः ।
स मात्रा वार्य्यमाणोऽपि नामन्यत निवर्त्तनम् ॥ १७ ॥

ततः स पादपतितां जननीं शोकविह्वलाम् ।
हतः श्रियमिवोत्सार्य्य चरणेन विनिर्ययौ ॥ १८ ॥

དང་པོར་ཁྲིམས་པ་འཁྲུལ་ཞིང་ཡི་གེ་ཕྱིད་བརྗོད་ཡིད་འོང་བདུད་རྩིའི་
ཆར་དག་འབེབས།

དེ་ནས་དཔལ་བའི་ཡིད་ལ་རེ་བའི་དགའ་སྟོན་རྒྱས་པ་བརྒྱ་ཡིས་དགའ་བ་འཛིན།
ཕྱི་ནས་མི་བཟད་ཡང་ཚོ་འི་ཚ་བ་དྲག་པོས་བཀླང་པ་དག་ཏུ་སླ་བྱེད་མཁས།
གསལ་བར་ནག་པོ་བརྩེགས་པ་ལྟར་རྦབ་ངར་པའི་བྲུ་ཡིས་སྡུག་
བསྡུལ་གདུང་བར་བྱེད།། 19

རིན་ཅེན་བསྒྲུབ་པར་འདོད་པ་དེ། མ་ཡི་སྒྲ་ངན་ཡངས་པར་བཞིན།
རྒྱ་མཚོའི་དྲུང་དུ་ཕྱིན་ནས་ནི། གཟིངས་ལ་རབ་ཏུ་ཞོན་དེ་སོང་།། 20

དེ་ནས་དེ་ཡི་གཟིངས་ཆེན་ནི། རབ་རྙོ་ཆུ་སྲིན་སིན་མོ་ཡིས།
སོག་ལེ་དྲག་པོས་དྲལ་བར་བྱས། འཇུག་ངོགས་དག་ཏུ་ཞིག་པར་གྱུར།། 21

གློ་གྲོས་རབ་འཕྱུར་དེ་ཡིས་ནི། མ་ཡི་བསམ་བཙོམ་ཁུར་ལྷི་བས།
གཟིངས་ནི་ཞིག་པར་གྱུར་བ་དེས། དམོད་པ་བཞིན་དུ་སྨོངས་པ་ཐོབ།། 22

དེ་ནས་ཤིང་གི་ཚལ་པ་ཐོབ། དལ་གྱིས་འདུ་ཤེས་ཐོབ་པ་དེས།
ཆུ་གཏེར་གྱི་ནི་ངོགས་ཕྱིན་ནས། ནགས་ཚལ་ཆེན་པོ་འི་ནང་དུ་ཞུགས།། 23

གཅིག་བུ་བརྟན་ཉམས་འགྲོ་བ་དེས། སྐྱེ་བོ་མེད་པར་ཡུན་རིང་ན།
གྲོང་ཁྱེར་རྩེ་དགའ་ཅན་ཞེས་པ། དགའ་བ་མཆོག་ནི་ཐོབ་པར་གྱུར།། 24

བཞིན་རས་ཟླ་ཟེར་ཚོགས་རྣམས་ཀྱིས། ཟླ་བའི་འོད་ནི་སྤྲོ་བྱེད་པ།
ལྷ་ཡི་བུ་མོ་བཞི་དག་གིས། གུས་བཅས་མགྲོན་ནི་བྱས་པ་དེ།། 25

पीयूषं स्खलिताक्षरैर्ललितालापैः शिशु र्वर्षति
प्रीतिं स्फीततरां मनोरथशतैर्दत्ते विनेय स्ततः ।
पश्चादुत्कटयौवनोष्मविकटाहङ्कारवादी पटुः
दुष्पुत्रः स्फुटकालकूटकटुकः कष्टां करोति व्यथाम् ॥ १९ ॥

विपुलं जननीशोकमिव प्राप्य स सागरम् ।
समारुह्य प्रवहणं ययौ रत्नार्जनोत्सुकः ॥ २० ॥

मकरस्फारनखरक्रूरक्रकचदारितम् ।
तत स्तस्य प्रवहणं कूले प्राज्य मभज्यत ॥ २१ ॥

तस्योत्सिक्तमते र्मातु राशाभङ्गगुरो र्भरात् ।
भग्ने प्रवहणे तस्मिन् मोहः शाप इवाभवत् ॥ २२ ॥

ततः फलहकावाप्त्या शनैः संज्ञा मवाप्य सः ।
तीर मासाद्य जलधे र्जगाहे गहनं महत् ॥ २३ ॥

एकाकी हारितधृतिः स व्रजन् विजने चिरात् ।
रम्यं रमणकं नाम नगरं दिव्य मासवान् ॥ २४ ॥

अप्सरोभि स्ततस्ताभि र्वदनेन्दुत्विषां चयैः ।
ज्योत्स्नापूरं सृजन्तीभिः कृतातिथ्यः स सादरम् ॥ २५ ॥

གསེར་གྱི་རྡིང་བུ་དག་གིས་འགྲམ། རིན་ཆེན་འཁྲི་ཤིང་དགའ་བའི་ཚལ།
ནོར་བུའི་ཁང་པ་ཁྲི་སྟན་ཅན། དེར་ནི་ལོངས་སྤྱོད་ལྡན་པར་གྱུར།། 26

རྒྱུད་པ་དག་ནི་བདེ་བའི་མཐའ། ཕུན་ཚོགས་ཉོན་མོངས་དག་ལ་མཛེས།
ལུས་ཅན་རྣམས་ལ་རེ་མོས་ཀྱིས། ངེས་པ་ཉིད་དུ་འཁོར་བ་ཡིན།། 27

དགའ་མགུར་སྤྱོད་པ་ལ་ཆགས་པའི། རི་དགས་མིག་ཅན་དེ་དག་རྣམས།
དེ་དང་རོལ་པས་ཡུན་རིང་དུ། སྐལ་བཟང་དོན་བྱས་ཉིད་དག་ཐོབ།། 28

ཁྱོད་ཀྱིས་གྲོང་ཁྱེར་ལྷ་ཡི་ལམ། བདག་ཉིད་ཀུན་གྱིས་སྤང་བྱ་ཞེས།
དེ་དག་གིས་བརྗོད་ཚོ་ན་རེ། ལྷག་པར་དེ་ནི་འགྲོ་འདོད་གྱུར།། 29

རང་དབང་མངོན་པར་མི་འདོད་ཅིང་། ངེས་པར་བསྐམས་པའི་སི་མཐུར་ཕྱོགས།
སྲོག་ཆགས་རྣམས་ནི་བཀག་པ་ལ། ཕལ་ཆེར་གུས་པ་ལྷག་པར་འཕེལ།། 30

དེ་ནས་དགེ་མཚན་གྱིས་དྲངས་ཏེ། ལྷོ་ཡི་ཕྱོགས་ཀྱི་ལམ་དེ་ནས།
སོང་བས་ཧྲག་དུ་སྤྲོས་ཞེས་པར། ལྷ་ཡི་གྲོང་ཁྱེར་གཞན་པ་ཐོབ།། 31

དེར་ནི་དེ་བཞིན་ལྷ་མོ་བརྒྱད། སྤྱད་བྱ་ཉིད་དུ་གྱུར་རྣམས་ཀྱིས།
དེ་ལ་རིམ་གྲོ་འི་བཀོད་པ་དག། དེ་ལས་ལྷག་པ་ཡུན་རིང་བྱས།། 32

དེ་དག་རྣམས་ཀྱིས་རིམ་པ་རེས། ལྷོ་ཡི་ལམ་ནི་བཀག་པ་ན།
དེ་ནི་དགེ་མཚན་ལས་སོང་བས། གྲོང་ཁྱེར་གསུམ་པ་དགའ་བྱེད་ཐོབ།། 33

हेमपुष्करिणीतीरे रम्ये रत्नलतावने ।
मणिमन्दिरशय्यासु तत्र सम्भोगवानभूत् ॥ २६ ॥

विपदः सुखपर्य्यन्ताः क्लेशप्राप्ताश्च सम्पदः ।
अवर्त्तिन्यो भवन्त्येव पर्य्यायेण शरीरिणाम् ॥ २७ ॥

रतिभोगप्रणयिना तास्तेन हरिणेक्षणाः ।
रममाणाश्चिरं प्रापुः सौभाग्यस्य कृतार्थताम् ॥ २८ ॥

नगरे दक्षिणः पन्था वर्ज्यः सर्व्वात्मना त्वया ।
इत्युक्त स्ताभिरधिकं सोऽप्यभूद् गमनोत्सुकः ॥ २९ ॥

कामं नियमवामस्य स्वाधीनानभिलाषिणः ।
प्रायेण बर्द्धते जन्तो र्निषेधेनाधिकादरः ॥ ३० ॥

ततः स कौतुकाकृष्ट स्तेन दक्षिणवर्त्मना ।
व्रजन् प्राप सदामत्तं नाम दिव्यं पुरं परम् ॥ ३१ ॥

अष्टावप्सरस स्तत्र तदङ्गोग्यत्व मागताः ।
तस्योपचाररचनां चिरं चक्रु स्ततोऽधिकाम् ॥ ३२ ॥

ताभिः क्रमेण तेनैव निषिद्धे दक्षिणेऽध्वनि ।
स कौतुकाद्गतः प्राप तृतीयं नन्दनं पुरम् ॥ ३३ ॥

དེར་ནི་རིམ་པ་དེ་ཉིད་ཀྱིས། རྩེ་དགས་རྣམ་པར་རོལ་དེ་ལ།
ལྷ་མོ་བཅུ་དྲུག་དགའ་མགུ་ཡིས། ཡོངས་སྤྱོད་སྤྱད་བྱ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 34

དེ་དག་གིས་ཀྱང་བཀག་པ་ཡི། ལྷ་ཡི་ལམ་ནས་སོང་གྱུར་པ།
གྲུས་བཅས་དེ་ཡིས་ཁང་བཟང་ནི། ཚངས་པའི་མཆོག་ཅེས་བྱ་བར་ཕྱིན།། 35

དེ་ནས་དེར་ཡང་ལྷ་མོ་གཞན། སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་ཡོངས་སྤྱོད་ཀྱིས།
སྐལ་བཟང་གིས་ནི་ཡང་དག་ཐོབ། དེ་བཞིན་ལྷོ་ཡི་ལམ་ནས་སོང་།། 36

དེ་ནི་སོང་པས་མི་བསྲུན་པའི། གྲོགས་བཞིན་ཉོན་མོངས་ཚོགས་ཀྱི་གནས།
ལུགས་ཀྱི་རང་བཞིན་རྩུབ་པོ་ཡིས། གྲོང་ཁྱེར་ངན་འགྲོ་མང་པོ་ཐོབ།། 37

དེར་དེ་ནང་དུ་ཞུགས་པ་ན། རིམ་པས་ས་ལ་སྨོ་རྣམས་ནི།
སྲུ་ཞིག་དག་གིས་བསྐྱབས་པ་བཞིན། མཚམས་མེད་བསྡམས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 38

དེ་ཡི་ནང་ན་སྐྱེས་བུ་ནི། ལུས་ཆེན་གནས་པ་དེ་ཡིས་མཐོང་།
མཐའ་དག་ཀུན་མོངས་སྐྱོན་རྣམས་ཀྱིས། སྡོད་ནི་ཤིན་དུ་ཆེ་བ་བཞིན།། 39

བཙིངས་ཤིང་རྒྱུན་དུ་ཁྲག་རྒྱུན་འབབ། དེ་ཡི་སྤྱི་བོར་འཁོར་ལོ་ནི།
རྣོན་པོ་འབར་བས་དཀྲིགས་པ་དག། ཡོངས་སུ་འཁོར་བ་མཐོང་བར་གྱུར།། 40

རང་གི་མགོ་ལས་ཟགས་པ་ཡི། རྣག་ཁྲག་གིས་ནི་ཟས་བསྒྲུབས་པ།
དེ་མཐོང་དྲག་པོའི་ཡིད་བྱུང་ནས། མཛའ་བོའི་བུ་མོས་རབ་སྨྲས་པ།། 41

षोड़शाप्सरस स्तस्य रतिभोगोपभोग्यताम् ।
तत्र क्रमेण तेनैव ययुर्लीला विलासिनः ॥ ३४ ॥

ताभि र्निषिद्धेन पुन र्दक्षिणेन पथा व्रजन् ।
ब्रह्मोत्तराख्यं प्रासाद माससाद स सादरः ॥ ३५ ॥

द्वात्रिंशदेव संप्राप्य तत्राप्यप्सरसः पराः ।
सम्भोगसुभग स्तद्वद्ययौ दक्षिणवर्त्मना ॥ ३६ ॥

स व्रजन् नगरं प्राप दुर्गप्राय मयोमयम् ।
परुषं खलसौहार्द मिवायासचयाश्रयम् ॥ ३७ ॥

तस्य तत्र प्रविष्टस्य क्रमाद्द्वाराणि भूमिषु ।
केनापि पिहितान्येव ययु र्निःसन्धिबन्धताम् ॥ ३८ ॥

तदन्तरे महाकायं सोऽपश्यत् पुरुषं स्थितम् ।
सकलक्लेशदोषाणां विस्तीर्णमिव भाजनम् ॥ ३९ ॥

ज्वालावलयितं चक्रं तस्य मूर्ध्नि परिभ्रमत् ।
तीक्ष्णं ददर्श चक्रस्य सक्तं रक्तप्रवाहिणः ॥ ४० ॥

स्वशिरःप्रसुतैः पूयशोणितै र्विहिताशनम् ।
तं दृष्ट्वा तीव्रनिर्वेदादवदन्मैषकन्यकः ॥ ४१ ॥

གདུང་བ་དྲག་པོས་ཉོར་ཁྲིད་སུ། འདི་ནི་ལས་དག་ཅི་ཡི་འབྲས།
ཞེས་དེས་སྙིང་རྗེས་དྲིས་པ་ན། སྐྱེས་བུས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།། 42

བདག་ནི་མ་ལ་གནོད་བྱེད་དོ། འདི་ནི་ལས་དེ་ཉིད་ཀྱི་འབྲས།
དེ་དག་ཐོས་ནས་དེ་ཡིས་ནི། སྡིག་པ་དྲན་ནས་དོགས་པར་གྱུར།། 43

དེ་ཡིས་བསམས་པ་བདག་ལ་ཡང་། མ་ལ་གནོད་བྱས་སྡིག་པ་ཡོད།
སྡིག་པ་རབ་ཏུ་བརྗོད་པའི་གྲོགས། དྲན་པར་བྱེད་འདི་བདག་གིས་མཐོང་།། 44

ཁྲི་ར་བ་ཡི་སྒྲ་སྒྲོན་གྱི། ནགས་ནས་རི་དགས་རྒྱུ་བ་བཞིན།
སྡིག་དེས་བདེ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་ནས། ང་ཉིད་དྲངས་པ་མ་ཡིན་ནམ།། 45

ཞེས་པའི་བསམ་པས་དེ་འཁྲུགས་ཤིང་། སྒོ་བསྡམས་སྡོད་ན་གནས་པའི་ཚེ།
སྙིང་ནི་ཀུན་དུ་འདར་བྱེད་པའི། སྐད་ནི་མཁའ་ལ་རབ་གྲགས་པ།། 46

ཡུན་རིང་བཅིངས་པ་ངེས་པར་གྲོལ། གསར་དུ་འོངས་པ་དམ་དུ་ཆིངས།
གསར་པ་ཆིངས་ལ་བཅིངས་པ་གྲོལ། འདི་ནི་མཚམས་ཀྱི་དུས་ལ་བབ།། 47

རེས་སྒྲ་མཁའ་ལས་གྲགས་པའི་ཚེ། སྐྱེས་བུ་དེ་གྲོལ་སྐད་ཅིག་ལས།
མཛེའ་བོ་འི་བུ་མོ་འི་མགོ་ལ་ནི། འཁོར་ལོ་རབ་དུ་འབར་བ་ལྷུང་།། 48

དེ་དུས་གནད་གཅོད་གདུང་བས་གཟིར། གསར་བཅིངས་མཛེའ་བོ་འི་བུ་མོ་དེས།
བཅིངས་པ་གྲོལ་བར་གྱུར་པ་ཡི། སྐྱེས་བུ་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།། 49

कस्त्वं क्रूरव्यथाक्रान्तः कस्येदं कर्म्मणः फलम् ।
पृष्ट स्तेनेति कारुण्यात् पुरुष स्त मभाषत ॥ ४२ ॥

मातुः कृतापकारोऽहं तस्येदं कर्म्मणः फलम् ।
एतदाकर्ण्य सोऽप्यासीत् पापसंवादशङ्कितः ॥ ४३ ॥

सोऽचिन्तयन्ममाप्यस्ति पापं मातुः कृतागसः ।
अयं पापसहाध्यायी दृष्टः स्मरणजन्मया ॥ ४४ ॥

नूनं तेनैव कृष्टोऽहं पापेन सुखमण्डलात् ।
शौनिकेन चरन् कामं मृगः शष्पवनादिव ॥ ४५ ॥

इति चिन्ताकुले तस्मिन् बद्धद्वारपुरस्थिते ।
उच्चाराम्बराद्वाणी हृदयाकम्पकारिणी ॥ ४६ ॥

चिरबद्धाः प्रमुच्यन्तां निबध्यन्तां नवागताः ।
बद्धमुक्तिनवाबन्धेष्वयं प्राप्तोऽवधिक्षणः ॥ ४७ ॥

इत्युदीर्णे दिवः शब्दे मुक्तः स पुरुषः क्षणात् ।
दीप्तं तच्चक्र मपतन्मैत्रकन्यस्य मस्तके ॥ ४८ ॥

नवबद्धः स तत्कालं मर्म्मोच्छेदव्यथातुरः ।
तं मुक्तबन्ध मवदत् पुरुषं मैत्रकन्यकः ॥ ४९ ॥

ལྷ་མོ་རྗེས་སུ་ཆགས་ལྡན་ལོངས་སྤྱོད་ཡིད་ནི་འཕྲོག་པ་ཅན།
གྲོང་ཁྱེར་ནོར་བུའི་ཁང་ཁྱིམ་མཛེས་པ་དེ་དག་ལོངས་བཏང་ནས།
སྡིག་པའི་ལས་ཀྱིས་ཐག་པ་བཞིན་དུ་རབ་ཏུ་གྱུར་པས་དྲངས།
དེ་ཡིས་བཀུག་ནས་ཀྱང་ནི་དབང་མེད་མི་རྣམས་འཇུག་པར་བྱེད།། 50

ཁྱི་རྣམས་ལ་བཞིན་ས་འདི་ཉིད་དུ་ཕྱུགས་དག་འོངས་པར་གྱུར།
གང་ན་འདི་ཡི་ལས་ཀྱི་འབྲི་ཤིང་ཆ་ཡིས་ལོངས་བསྒྲུབས་པ།
དུས་ཀྱིས་ལོངས་སྨིན་སྤྱད་བྱ་ཉིད་དུ་གྱུར་པ་མདུན་ན་གནས།
ངེས་པར་སྤྱད་བྱ་སྦྱོར་བས་ལྡན་འདི་ཡིས་མཆོག་དུ་འགུགས་པར་བྱེད།། 51

མ་ལ་གནོད་པ་བྱས་རྣམས་ཀྱིས། ཉོན་མོངས་སྤྱོད་མཚམས་ཇི་སྙེད་དུས།
སྐྱེ་བོ་ཁ་ཅིག་བདག་ལྟ་བུ། གསར་དུ་འོང་བ་འགྱུར་རམ་ཅི།། 52

ཞེས་པ་ལུས་ཅན་འཁོར་ལོ་ནི། རབ་དུ་འབར་བའི་རྩེས་བཅོམ་ཞིང་།
གཟིར་བ་དེ་ཡིས་ཚིག་ཐོས་ནས། སྐྱེས་བུས་དེ་ལ་རབ་སྨྲས་པ།། 53

ལོ་ནི་སྟོང་ཕྲག་དྲུག་ཅུ་དང་། ལོ་ནི་བརྒྱ་ཕྲག་དྲུག་ཅུ་དག།
ཉོན་མོངས་ཉེ་བར་ལོངས་སྤྱོད་འདི། སྡིག་པའི་ལས་ཅན་རྣམས་ལ་ངེས།། 54

མ་ལ་གནོད་པ་བྱས་པ་ཡི། སྡིག་ཅན་རྣམས་ལ་འདི་ན་གནས།
འཇིགས་སུ་རུང་བ་གཞན་དག་ཡོད། གཞན་ཡང་དེ་ལྟར་འོང་བར་འགྱུར།། 55

त्यक्त्वा पुराणि मणिमन्दिरसुन्दराणि
तान्यप्सरःसरसभोगमनोहराणि ।
दृष्टः प्रकृष्टतरपातकभोग्यकाले
कालेन कल्पितफला किल कर्म्मवल्ली ॥ ५० ॥

शूनामिव क्षिति मिमां पशुरागतोऽस्मि
कर्षत्यलं बलवती भवितव्यतैव ।
दृष्ट स्तयैव च विशत्यवशो मनुष्यः
यत्रास्य तिष्ठति पुरः परिपाकभोग्या ॥ ५१ ॥

क्लेशभोगावधौ कालः कियान् मातुः कृतागसाम् ।
अप्यागमिष्यति नवः कश्चिदस्मद्विधो जनः ॥ ५२ ॥

इति ज्वलितचक्राग्रदीर्य्यमाणस्य दाहिनः ।
तस्यार्त्तस्य वचः श्रुत्वा पुरुष स्त मभाषत ॥ ५३ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च ।
अस्य क्लेशोपभोग्यस्य नियतिः पापकर्म्मणाम् ॥ ५४ ॥

इहापराणि घोराणि सन्ति स्थानानि पापिनाम् ।
मातुः कृतागसामन्ये ये समेष्यन्ति तद्विधाः ॥ ५५ ॥

དེས་བརྗོད་ཤིན་དུ་བཟོད་དཀའ་དེ། མཛའ་བོ་འི་བུ་མོས་ཐོས་གྱུར་ནས།
རབ་གདུང་སྡུག་བསྔལ་སྤྱོང་བ་ལས། གཞན་དག་གཟིར་ལ་བརྩེ་བས་སྨྲས།། 56

ང་ནི་སྡིག་པ་བྱེད་པའི་མི། གང་ཞིག་རབ་ཏུ་འོང་འགྱུར་བ།
དེ་དག་དོན་དུ་འཁོར་ལོ་འདི། བདག་གི་མགོ་ལ་གནས་གྱུར་ཅིག། 57

འདི་ལྟའི་གདུང་བ་དྲག་ཅིང་རིང་། དེ་དག་རྣམས་ཀྱིས་ཇི་ལྟར་བཟོད།
བདག་ཉིད་གཅིག་པུ་གདུང་གྱུར་ལ། ཐམས་ཅད་གདུང་མེད་གནས་གྱུར་ཅིང་།། 58

འཁོར་ལོ་རང་གི་འབྲས་བཅད་ནས། གཞན་གྱི་དོན་དུ་བདག་གིས་བཟུང་།
སྐྱེ་བོ་རང་ཉིད་གདུང་མེད་པས། གཞན་གྱི་གདུང་བ་ཡོངས་མི་ཤེས།། 59

སེམས་ཅན་ཕན་ཚོལ་སྙིང་རྗེ་ཡིས། གཟིར་བ་དེ་ཡིས་འདི་བརྗོད་ཚེ།
དམ་པའི་ཀུན་རྟོག་མཐུ་ཡིས་ནི། དེ་ཡི་འཁོར་ལོ་མཁའ་ལ་སོང་།། 60

ཡལ་འདབ་དག་ནི་གདུང་བ་འཕྲོག་ཅིང་མི་རྟོག་གྲགས་སྙན་དཀར་པོ་རྒྱས་པར་བྱེད།
འཕྲལ་ལ་དྲི་བཟང་ལེགས་ལྡན་ཡོངས་སྤྱོད་སྐལ་བཟང་ལྡན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་སྨྲར་ཡང་འཛིན།
དམ་པའི་ཀུན་རྟོག་འཕྲི་ཤིང་སྙིང་རྗེའི་བརྒྱན་ལྡན་དམ་པ་རྣམས་ཀྱི་སྙིང་ལ་ནི།
གང་ཚེ་ཡང་དག་བདབ་པ་དེ་ཚོ་རོ་ལྡན་འབྲས་བུ་ཅི་དང་ཅི་མི་སྐྱེད།། 61

སྙིང་རྗེའི་བསོད་ནམས་བདག་ཉིད་ཀྱིས། སྐད་ཅིག་དེ་ལ་སྡིག་ཟད་དེ།
ལུས་ནི་ཡོངས་སུ་བཏང་ནས་དེ། ལྷ་ཡི་གནས་སུ་ལྷར་གྱུར་ཏོ།། 62

श्रुत्वेति दुःसहतरं तेनोक्तं मैत्रकन्यकः ।
स्वव्यथादुःखसंवादात् परार्त्तिंदययावदत् ॥ ५६ ॥

अधुना ये समेष्यन्ति नराः पातककारिणः ।
तेषामर्थे ममैवेदं चक्रं तिष्ठतु मस्तके ॥ ५७ ॥

कथं सहन्ते ते तीव्रां दीर्घा मेवंविधां व्यथाम् ।
एकस्यैव व्यथा मेऽस्तु सर्व्वे तिष्ठन्तु निर्व्यथाः ॥ ५८ ॥

परार्थे धारयिष्यामि चक्रं भुक्त्वा निजं फलम् ।
परव्यथां विजानाति न जनः स्वव्यथां विना ॥ ५९ ॥

इत्युक्ते करुणार्त्तेन तेन सत्त्वहितैषिणा ।
सत्संकल्पप्रभावेन तच्चक्र मगमन्नभः ॥ ६० ॥

तापं पल्लविता निहन्ति तनुते शुभ्रं यशः पुष्पिता
सद्यः सौरभभव्यभोगसुभगा लक्ष्मीं विधत्ते पुनः ।
कारुण्यार्द्रतया यदेव हृदये सद्भिः समारोपिता
सत्संकल्पलता सदैव सरसं किं किं न सूते फलम् ॥ ६१ ॥

कारुण्यात् पुण्यमाहात्म्यात् तत्क्षणात् क्षतकिल्बिषः ।
स बभूव परित्यज्य देहं देवः सुरालये ॥ ६२ ॥

ང་ཉིད་སྨོན་ཚེ་བྱམས་བདག་ཉིད། མཛའ་བོ་འི་བུ་མོ་ཉིད་གྱུར་ཏེ།
མ་ནི་རྐང་པས་རབ་འཕངས་པའི། སྡུག་བསྔལ་གནས་སྐབས་དེ་དག་ཐོབ།། 63

ཀར་ཤ་པ་རྣམས་མ་ལ་ནི། མཆོད་པས་ལྷ་མོ་འི་གནས་ཀྱང་ཐོབ།
དེ་སྐད་མ་ཡི་སྒྲིད་ཞུ་ནི། ཆོས་ཀྱི་མཆོག་ཏུ་བཅོམ་ལྡན་གསུངས།། 64

མ་ནི་བཀྲ་ཤིས་འཁྲིང་བ་ཡོན་དན་དང་ལྡན་པ་ནི་མཉེས་གཤིན་ཅོད་པན་དེ།
དེ་དག་དགྱེས་སྐྱད་གང་གི་སྤྱི་བོར་ཞབས་ཀྱི་པདྨ་རབ་ཏུ་འགོད་བྱེད་པ།
ཕྱོགས་ཀུན་ཡོངས་སུ་འགེངས་པར་བསྟོན་པའི་གྲགས་པ་ཕུན་ཚོགས་རབ་
ཏུ་གསལ་བ་རྒྱས།
རྟག་ཏུ་དགའ་སྟོན་བསོད་ནམས་རྒྱན་ལྡན་དེ་དག་འགྲོ་བའི་མཆོད་བྱ་ཉིད་དུ་གྱུར།།
65

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་ བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་མཛའ་བོ་འི་བུ་མོ་འི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དགུ་ཅུ་རྩ་གཉིས་པའོ།།

सोऽहमेवाभवं पूर्व्वं मैत्रात्मा मैत्रकन्यकः ।
पादेनोत्सारणान्मातुः प्राप्त स्तां दुःखवर्त्तिनीम् ॥ ६३ ॥

कार्षापणार्पणान्मातुः प्राप्त श्चाप्सरसां पदम् ।
इत्यूचे भगवान् मातुः शुश्रूषाधर्म्म मुत्तमम् ॥ ६४ ॥

माता मङ्गलमालिका गुणमयी वात्सल्यमौलिः पिता
तौ येषां शिरसि प्रियाय कुरुतः पादाम्बुजारोपणम् ।
सर्व्वाशापरिपूरणोद्यतयशःसम्पत्प्रकाशोदया-
स्ते पुण्याभरणाः प्रयान्ति जगतां नित्योत्सवाः पूज्यताम् ॥
६५ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
मैत्रकन्यकावदानं द्वानवतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདག་དགུ་ཅུ་རྩ་གསུམ་པ།

གང་གིས་མཆོད་འོས་མཆོད་པར་བསྒྲུབ་ལ་མེ་ཏོག་ལ་སོགས་དེ།
སེམས་མེད་རྣམས་ཀྱང་འོས་པའི་སེམས་དང་ལྡན་པ་ཉིད་དུ་འགྱུར།
རྒྱལ་ལ་གུས་པའི་ཁྱད་པར་བསྟེན་པ་རྣམས་ལ་བསྔགས་འོས་ཤིང་།
དད་པ་རབ་རྒྱས་བདུད་རྩིའི་རྒྱུན་ཐིགས་དེ་དག་རྒྱལ་གྱུར་ཅིག ॥ 1

མཉན་ཡོད་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་དུ་སྔོན། དབེན་པར་བཞུགས་པའི་བཅོམ་ལྡན་འདས།
རྒྱལ་བ་དེ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་དེ། མགོན་མེད་ཟས་སྦྱིན་གྱིས་གསོལ་པ॥ 2

བཅོམ་ལྡན་ཁྱོད་ཀྱི་གུས་པར་བཞིན། ཀུན་དུ་ཆེར་འོས་ཡོན་དན་གྲགས།
བདག་གི་བུ་མོ་མ་ག་དྷ། བཟང་མོ་དར་པ་བབ་པར་གྱུར॥ 3

གྲོང་ཁྱེར་སྦུ་རམ་ཤིང་འཕེལ་གྱི། དཔལ་ལྡན་དོན་མཐུན་མགོན་པོ་ཡི་བུ།
ཁྱུ་མཆོག་བྱིན་ཞེས་བྱ་བ་ནི། དེ་ཡི་ལག་པ་འཛིན་པར་འདོད॥ 4

བཅོམ་ལྡན་གལ་ཏེ་བཟོད་ན་བདག། བུ་མོ་དེ་ནི་དེ་ལ་སྦྱེར།
ཉེར་སློག་ཁྱོད་ཀྱི་དབང་གྱུར་བདག། ཁྱོད་ཀྱི་བཀའ་ཡི་རྗེས་སུ་འབྲང་॥ 5

དེ་འདི་གསོལ་ཚེ་བཅོམ་ལྡན་འདས། དྲི་མེད་མཉེས་གཞན་བསམ་ལྡན་པས།
ཅི་སྐྱོན་བུ་མོ་དེ་ལ་ནི། སྦྱིན་པར་མཛོད་ཅེས་བཀའ་སྩལ་བ॥ 6

त्रिनवतितमः पल्लवः ।

श्लाघ्या जयन्ति जिनभक्तिविशेषभाजां
श्रद्धासुधाप्रसरनिर्झरशीकरा स्ते ।
निश्चेतनोऽप्युचितचेतनतामिवैति
यः पूज्यपूजनविधौ कुसुमादिवर्गः ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां विजनासीनं जिनं जेतवने पुरा ।
अनाथपिण्डदोऽभ्येत्य भगवन्त मभाषत ॥ २ ॥

त्वद्भक्तिरिव सर्व्वत्र महार्हगुणविश्रुता ।
भगवन् प्रौढि मायाता कन्या मम सुमागधा ॥ ३ ॥

श्रीमतः सार्थनाथस्य नगरे पुण्ड्रवर्द्धने ।
सूनु र्वृषभदत्ताख्य स्तत्पाणिग्रह मिच्छते ॥ ४ ॥

कन्यां ददामि तां तस्मै भगवन् यदि मन्यसे ।
त्वदधीनधनप्राण स्त्वदाज्ञाशरणो ह्यहम् ॥ ५ ॥

इत्युक्ते तेन भगवान् वात्सल्यविमलाशयः ।
को दोष स्तनया तस्मै दीयता मित्यभाषत ॥ ६ ॥

སྟོན་པའི་བཀའ་ནི་རབ་བཟུང་ནས། དེ་ལ་གུས་པར་ཕྱག་འཚལ་ཏེ།
དཔལ་ལྡན་མགོན་མེད་ཟས་སྦྱིན་ནི། རང་གི་ཁང་པར་རབ་ཏུ་སོང་།། 7

དེ་ནས་འཁོར་བ་ཆེ་དང་བཅས། བུ་མོ་མ་ག་དྷ་བཟང་མོ།
རིན་ཆེན་གོས་མང་རབ་སྤྲེར་དེས། འོས་པ་དེ་ལ་རབ་ཏུ་བྱིན།། 8

དེ་ནས་བྱིན་པའི་མ་ག་དྷ། བཟང་མོ་ཐག་རིང་ཡུལ་བགྲོད་ཅིང་།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཞབས་དྲན་ནས། མིག་ནི་མཆི་མ་དང་བཅས་གྱུར།། 9

གྲོང་ཁྱེར་བུ་རམ་ཤིང་འཕེལ་དུ། ཡུན་རིང་ཞིག་ན་དེས་སླེབ་ནས།
རྟག་ཏུ་ཁྲོ་ཡི་ཁྲིམ་དུ་ནི། བདག་པོའི་བཀུར་སྟི་ལ་ཆགས་གྱུར།། 10

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་སྐྲུག་སོ་ནི། གྲངས་ལས་འདས་པ་འགོད་བརྩོན་ཞིང་།
ཟས་ཀྱི་ཚོགས་རྣམས་སྤྱིར་བྱེད་པ། ནོར་ཅན་ཞེས་པས་དེ་ལ་སྨྲས།། 11

མ་ག་དྷ་བཟང་མཆོད་པ་ཡིས། ཡོ་བྱད་ཐམས་ཅད་ཆས་དག་མཛད།
འགྲོ་བས་འཆོད་བྱ་ཡོན་ཏན་ཅན། སྐྱེ་བོ་ནང་པར་བདག་ཁྲིམ་འོང་།། 12

ཀླ་མ་སྐྱེ་བོ་ཐམས་ཅད་ཀྱིས། ཞི་བའི་གནས་སུ་མཆོད་བྱ་བ།
ཀུན་སྨོངས་ཟད་སྦྱོར་ཟད་བྱེད་པ། དེ་དག་རྣམས་ནི་འོང་པར་འགྱུར།། 13

ཞེས་དེས་བརྗོད་པ་དེར་ནི་དེས། དགེ་སློང་ཚོགས་ལ་མཆོད་པ་དེ།
ཡོངས་སུ་བརྟག་པར་ཤེས་གྱུར་ནས། རྩོམ་པ་དེ་ལ་ཆགས་པར་གྱུར།། 14

शास्तुः शासन मादाय सादरं प्रणिपत्य तम् ।
अनाथपिण्डदः श्रीमान् प्रययौ निजमन्दिरम् ॥ ७ ॥

ततः सुमागधां कन्यां विभवेन महीयसा ।
अहार्य्यं स ददौ तस्मै भूरिरत्नाम्बरप्रदः ॥ ८ ॥

दत्ता दूरतरं देश मथ यान्ती सुमागधा ।
भगवच्चरणस्मृत्या सवाष्पनयनाभवत् ॥ ९ ॥

चिरेण सा समासाद्य नगरं पुण्ड्रवर्द्धनम् ।
शुश्रूषाभिरता पत्युः सदा भर्त्तृगृहेऽवसत् ॥ १० ॥

कदाचिदथ तां श्वश्रूः भोज्यसम्भारकारिणी ।
उवाच धनवत्याख्या संख्यातीतव्ययोद्यता ॥ ११ ॥

पूज्योपकरणं सज्जं कुरु सर्व्वं सुमागधे ।
गृहान्नः प्रातरागन्ता जगत्पूज्यगुणो जिनः ॥ १२ ॥

गुरवो गौरवपदं पूज्याः सर्व्वजनस्य ते ।
समेष्यन्ति क्षपणकाः संमोहक्षपणोद्यताः ॥ १३ ॥

इत्युक्ता सा तया तत्र श्वश्रूवारम्भतत्परा ।
मत्वा भिक्षुगणायेव तां पूजां परिकल्पितताम् ॥ १४ ॥

དེ་ནས་ཉིན་གཞན་ཁྱིམ་དུ་ནི། ཟླ་དང་ཟླ་ར་རབ་འབལ་ཞིང་།
དཀའ་ཐུབ་དྲག་པོས་ཀུན་ཉོན་མོངས། གཅེར་བུ་ཟད་བྱེད་པ་རྣམས་ཞུགས།། 15

མ་ཏེ་སྲན་མ་རྩྭ་ཡི་ཟས། གོམས་པས་རགས་པར་གྱུར་པ་བཞིན།
གོས་མེད་ངོ་ཚ་མེད་དེ་དག། མ་ག་ཏྣ་བཟང་གྲིས་མཐོང་ནས།། 16

ཟླ་མའི་དྲུང་དུ་ངོ་ཚ་སྟེ། བཞིན་ནི་གོས་ཀྱིས་རབ་བསྒྲིབས་ནས།
སྒྲོ་དང་ཚགས་གྲལ་ཀྱིས་དུར་པས། སྒྲུག་མོ་འི་སྐྱེ་བོ་ལ་སྨྲས་པ།། 17

གང་འདིར་ཕྱོགས་གོས་རྣམས་ཀྱི་ཡང་། མདུན་དུ་བུད་མེད་སྐྱེ་བོ་འཁོད།
ཀྱེ་མ་ཀུན་དུ་སྤྱོད་པ་འདི། ཤིན་ཏུ་ཡུན་རིང་ལོན་ནས་མཐོང་།། 18

མི་མིན་རྭ་དང་གྲལ་གྱུར་པ། དུལ་བ་འདི་དག་ཁྱོད་ཀྱི་ནི།
ཁྲིམ་ན་གསོལ་བྱེད་འདི་དག་ལ། བུད་མེད་ངོ་ཚ་མེད་དམ་ཅི།། 19

གང་གིས་ཁ་ཟས་མ་བཏང་བ། དེ་ཡིས་གོས་ནི་ཇི་ལྟར་བཏོང་།
མ་བསླམས་རིམ་བ་འདི་ནི་ཅི། ཁྱོད་ནི་གནས་མིན་དག་ལ་གུས།། 20

ཟླ་ནི་རབ་དུ་འབལ་བའི་ལས་དག་ཉིད་ཀྱིས་བརྩེ་བ་མེད་པ་དྲག་པོ་བསྟན།
སྐྱེ་བོར་བཅས་ལ་འདོམས་དཀྲིས་གོས་དག་སྤངས་པས་ཚུལ་ཁྲིམས་
ཀྱིས་ནི་གདམས་ཉིད་ཅི།
ཚུལ་འཆོས་རྩོམ་པ་དང་ལྡན་འཇིགས་བྱེད་བཞིན་ལ་བྲི་བ་རང་ཉིད་
རྣམ་པར་བསྟེན།
དུལ་བ་དང་ལྡན་གཅེར་བུ་འདི་དག་ཤུགས་རྣམས་བཞིན་དུ་ཟས་
དག་འཚོལ་བར་བྱེད།། 21

अथापरेऽह्नि विविशु र्नग्नाः क्षपणका गृहम् ।
उल्लुञ्चितकचश्मश्रुसंक्लेशनिशितव्रताः ॥ १५ ॥

तानलज्जानवसनानवलोक्य सुमागधा ।
माषशष्याशनाभ्यासपीवरान् महिषानिव ॥ १६ ॥

लज्जिता वाससाच्छाद्य वदनं गुरुसन्निधौ ।
खेदनिर्व्वेदविनता श्वश्रूजन मभाषत ॥ १७ ॥

अहो वताय माचारः सुचिरादवलोकितः ।
दिगम्बराणामप्यग्रे यदिहास्ते वधूजनः ॥ १८ ॥

एते भवद्गृहेऽदान्ता भुञ्जन्ते शृङ्गवर्जिताः ।
अमानुषत्वान्नैतेषां लज्जन्ते नून मङ्गनाः ॥ १९ ॥

अस्थाने भवतां भक्तिः कोऽय मुच्छृङ्खलः क्रमः ।
न त्यक्त मशनं येन स कथं वस्त्र मुज्झति ॥ २० ॥

केशोन्मूलनकर्म्मणैव निशितं नैर्घृण्य मावेदितम्
कौपीनांशुकवर्जनेन सुजने शीलस्य वार्त्तैव का ।
दम्भारम्भभयङ्करे च वदने क्रोधः स्वयं लक्ष्यते
नग्नाना मशनैषिणां नियमिना मेषां पशूनामिव ॥ २१ ॥

གང་ན་སྤྲུགས་འདི་མཆོད་བྱེད་པ། དེ་ནས་སྤྲང་པར་བྱ་བ་སྟེ།
ཡང་ན་འདི་ནི་ཡུལ་གྱི་སྒྲོན། སོང་བའི་རྗེས་སུ་འགྲོ་བའི་ལུགས། ། 22

ཞེས་སྨྲ་ཆགས་བྲལ་དང་ལྡནས། དེ་ལ་སྐྲུག་མོས་ལན་སྨྲས་པ།
བཟང་མོ་ཁྱོད་ཀྱི་ཡབ་ཀྱི་ནི། ཁང་པར་ཅི་འདྲ་མཆོད་པ་བསྐྱོས། ། 23

དེས་སྨྲས་བདག་གི་པ་ཁྱིམ་དུ། སྙིང་རྗེས་འགྲོ་བ་ཐམས་ཅད་ནི།
ཁྱོད་འཕགས་དགེ་བ་ལ་སྦྱོར་བའི། བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་མཆོད་པར་བྱེད། ། 24

བསམ་གཏན་ལ་ཆགས་གཡོ་མེད་སྤྱན་ལྡན་མཛེས་སྡུག་རྫོགས་པའི་རྒྱ་མཚོ་སྟེ།
ཤངས་ཀྱི་རྒྱུད་ནི་ཡངས་ཤིང་དྲང་པོ་ཟས་སྦྱིགས་དག་དུ་བསྒྱུར་པ་ཡིན།
རབ་བརྒྱུད་མཛེས་ལྡན་རྒྱན་གྱིས་སྤྱོང་པའི་སྐན་གྱི་ཞགས་པ་མདོན་དཀར་སྟེ།
མཛེས་པ་ཉིད་ཀྱིས་མཁས་རྣམས་ནང་དུ་ཞི་བ་ཅི་ཡང་རྒྱས་པར་བྱེད། ། 25

གླུ་ཟེར་ལྟར་མཛེས་དེ་ནི་ལག་གཉིས་གླང་ཆེན་ལག་པའི་རྣམ་པ་དང་།
སྣང་བ་རབ་རྒྱས་དབུ་ལ་ལྷན་སྐྱེས་རབ་བཀྲུས་རང་བཞིན་ནོར་བུ་དང་།
ལག་མཐིལ་དུ་སོན་ནི་སོ་དུང་དང་རྒྱལ་མཚན་རྩ་སྐྱེས་འཁྱིལ་བ་དང་།
ཞི་བའི་རང་བཞིན་རྒྱལ་སྲིད་ཆེན་པོ་ལ་འོས་མཚན་ཉིད་རྣམ་པར་འཛིན། ། 26

ཐུབ་ཆེན་རྣམས་ཀྱིས་མངོན་པར་འདོད་པ་སྐྱེད་བྱེད་དེ་ཡི་ནི།
རང་བཞིན་མངོན་པར་འདོད་པའི་རྟག་པ་ཀུན་དང་བྲལ་བ་ཉིད།

यच्चैते पशवः पूज्या स्तचोत्सार्य्या भवन्ति के ।
अथवा देशदोषोऽयं गतानुगतिका स्थितिः ॥ २२ ॥

इति ब्रुवाणां तां श्वश्रू विषस्मा प्रत्यभाषत ।
पितु स्ते भवने भद्रे पूज्यते वद कीदृशः ॥ २३ ॥

सावदन्मत्पितु र्गेहे पूज्यते भगवान् जिनः ।
कारुण्यात् सर्व्वजगतां कुशलातिशयोद्यतः ॥ २४ ॥

ध्यानाधीनः स्तिमितनयनः पूर्णलावण्यसिन्धु
र्नासावंशं विपुलसरलं सेतुभूतं दधानः ।
भूषाशून्यप्रसृतरुचिमत्कर्णपाशाभिरामः
कान्त्यैवासौ किमपि विदुषां शान्ति मन्त स्तनोति ॥ २५ ॥

शिरसि सहजप्राज्यालोकप्रसेकमयं मणिं
करिपतिकराकारौ बाहू कवत्कनकद्युतिः ।
करतलगतां लेखां शङ्खध्वजाम्बुजमालिकां
शमयममहासाम्राज्यार्हं बिभर्त्ति स लक्षणम् ॥ २६ ॥

तस्याभिलाषजनकस्य महामुनीनां
सर्व्वाभिलाषकलनारहितः स्वभावः ।

དྲན་པའི་ས་གཞི་བག་མེད་གནས་ནི་ལྷག་མ་མེད་པར་བྱས།
ཆགས་པ་རབ་ཏུ་བཏང་བའི་མཚོ་ནི་ཤིན་ཏུ་དཔར་དང་བཅས།། 27

གྲོལ་བ་ལྷག་པར་འགྲོགས་པའི་མཛོད་གཙུགས་དང་ལྡན་བྱམས་
པ་དག་ནི་ཡིད་ལ་ཉམ།
བཟོད་པ་དེ་ཡི་རང་བཞིན་བྱེད་ཅིང་བརྩེ་བ་སྙིང་ལ་དམ་དུ་མཉམ་པར་སྦྱོར།
ཡིད་འོང་མང་པོ་ལ་ཆགས་ཀུན་གྱི་བསམ་པ་རྒྱས་བྱེད་སྟོན་མེད་ཐུབ་པ་ནི།
དེ་ཡི་ཞི་བ་སྟོན་མེད་བདག་ཉིད་ཆགས་བྲལ་སྙིང་པོ་ཅན་ནི་ལེགས་པར་མཛོད།། 28

ཚུལ་ཁྲིམས་དུ་ཀུ་ལ་དང་ལྡན། དམ་པ་རྣམས་ཡིད་སྒྲིབ་བྲལ་ཉིད།
གང་གི་རབ་ཏུ་བྱུང་བར་འཛིན། དེ་དག་བདག་ཅག་ཁྱིམ་དུ་མཆོད།། 29

ཐམས་ཅད་བསྲུངས་པའི་ནོར་བུ་གང་། དྲན་པ་ཡིས་ཀྱང་སྲིད་པའི་སྤྲུལ།
ཆགས་སྡང་དྲག་པོའི་མཆེ་ལྡན་པས། སྦྲར་ཡང་སྐྱེ་བོ་ལ་གནོད་མེད།། 30

ཅེས་པ་དེ་ཚིག་རྣ་བ་ཡི། བཙུད་ལེན་གྲོས་ནས་སྨྲུག་མོ་ནི།
འཕྲུལ་ལ་རབ་དང་དྲི་མ་མེད། དགའ་མགུ་ལྡན་པས་དེ་ལ་སྨྲས།། 31

དེ་ནི་བསླུ་བའི་ཐབས་འགའ་ཞིག། མཆོག་གི་བཞིན་ལྡན་ཡོད་དམ་ཅི།
ཁྱོད་ཀྱི་བསོད་ནམས་འབྲེལ་བ་ལས། ངེད་ཀྱང་བདུད་རྩིའི་གནས་ཐོབ་བས།། 32

ཞེས་པ་སྨྲུག་མོས་གུས་ལྡན་སྨྲ། ཚུལ་དང་མཐུན་པར་དེ་ལ་ཞུས།
བདག་གིས་ཁྱེད་ལ་དེ་བསྟན་ཞེས། གུས་དང་བཀུར་བ་ལྡན་མས་སྨྲས།། 33

निःशेषितस्मृतिभुवः प्रमदाश्रयस्य
रागोज्झितस्य सुतरा मधरः सरागः ॥ २७ ॥

मूर्त्तिं निर्भरसङ्गमप्रणयिनी मैत्री मनःशायिनी
क्षान्तिः स्तन्मयकारिणी हृदि दया गाढं समाश्लेषिणी ।
सर्व्वाशाभरणस्य भूरिदयितासक्तस्य संलक्ष्यते
तस्यापूर्व्वमयो रनन्यमहिमा वैराग्यगर्भः शमः ॥ २८ ॥

पूज्यः स भवनेऽस्माकं यस्य प्रव्रज्यया सताम् ।
धत्ते शीलदुकूलानां निरावरणतां मनः ॥ २९ ॥

विश्वरक्षामयो यस्य स्मृत्यापि भवभोगिना ।
रागद्वेषोग्रदंष्ट्रेण बाध्यते न पुनर्जनः ॥ ३० ॥

इति तस्या वचः श्वश्रूः श्रुत्वा श्रोत्ररसायनम् ।
सद्यः प्रसादविशदा तां जगाद प्रमोदिनी ॥ ३१ ॥

अपि तद्दर्शनोपायः कश्चिदस्ति वरानने ।
अपि त्वत्पुण्यसम्बन्धादयमप्यमृतास्पदम् ॥ ३२ ॥

इति सानुनयं श्वश्र्वा सा सादरधियार्थिता ।
तं वः सन्दर्शयामीति बभाषे भक्तिमानिनी ॥ ३३ ॥

དམ་བཅའ་ཆེན་པོའི་ཚོགས་ཀྱིས་ནི། ཁུར་དག་ཁྱེར་བ་འདོད་པ་སི།
སྤྱོད་ལ་མཡ་ལྷན་སྤྲང་ལ་འཛེགས། སྐད་ཅིག་བསམ་གཏན་བསྐྱངས་པར་གྱུར།། 34

དེ་ནས་ཁང་བཟང་ལ་འཛེགས་པ་དེ། བཅོམ་ལྡན་བསྟན་པའི་ཕྱོགས་སུ་ནི།
ཕྱག་འཚལ་མཆོད་བྱ་མཆོད་འོས་པའི། མེ་ཏོག་སྐྱིས་པ་རབ་ཏུ་གཏོར།། 35

དེ་ཡི་གནས་སུ་མངོན་ཕྱོགས་རེས། མེ་ཏོག་གདུག་པ་ཆུས་མཆོད་ནས།
ཡངས་པའི་མིག་ནི་ཀུན་དགའ་ཡི། མཆི་མས་འགགས་པས་རབ་སྐྲས་པ།། 36

བཅོམ་ལྡན་ཐུགས་རྗེ་འོས་པ་བདག། དགོན་ཅོག་བསྟུམ་པོ་རྣམ་སྤྲངས་དེ།
ཁྱོད་ཀྱི་གནས་ཀྱི་རི་དགས་བཞིན། ཤིན་ཏུ་ཐག་རིང་ཡུལ་འདིར་ཕྱིན།། 37

ཁྱོད་ཀྱི་ཞབས་ཀྱི་པདྨ་ཟུང་གི་སྐྱབས་ནི་ཐོབ་པ་བ་དག།
རིང་དུ་གནས་པར་གྱུར་ཀྱང་སྤྱན་གྱི་རིག་མཛོད་བརྩེ་བ་ཅན།
མཉེན་ག་ཤིན་མཉེན་པའི་བློ་ལྡན་ཆེན་པོ་རྣམས་ཀྱི་ཐུགས་རྗེ་ནི།
ཡུལ་གཞན་རིང་པོར་ཕྱིན་པ་རྣམས་ལ་ཆུང་བ་ཉིད་མི་འགྱུར།། 38

འབངས་ཀྱི་བུ་མོ་དག་གིས་དེང་། བཅོམ་ལྡན་ཁྱོད་ནི་མགྲོན་དུ་གཉེར།
ནང་པར་བྱོན་པས་བདག་ལ་ནི། ཁྱབ་བདག་ཞིངས་པ་གནང་བར་མཛོད།། 39

ཅེས་པ་བརྗོད་ནས་དེས་འཕངས་པ། རྣམ་པར་བཀྲ་བའི་མེ་ཏོག་འཕྲེང་།
གྲུས་པའི་པོ་ཉ་སྤྲོག་བཅས་བཞིན། ནམ་མཁའ་ལས་ནི་རབ་ཏུ་སོང་།། 40

महाप्रतिज्ञासंभारभरनिर्वहणैषिणी ।
सा संशयतुलारूढा क्षणं ध्यानपराभवत् ॥ ३४ ॥

ततः प्रासाद मारुह्य भगवत्सेवितां दिशम् ।
प्रणिपत्यासृजत् पूज्यपूजार्हकुसुमाञ्जलिम् ॥ ३५ ॥

पुष्पधूपोदकैरर्चां सा कृत्वा तत्पदोन्मुखी ।
आनन्दबाष्पसंरुद्धविस्तीर्णनयनावदत् ॥ ३६ ॥

अनुकम्प्यैव भगवन् रत्नत्रयविवर्जिता ।
तवाश्रममृगीवाहं दूरं देश मिमं गता ॥ ३७ ॥

त्वत्पादपद्मयुगलं शरणं प्रपन्नां
दूरस्थितामपि दृशा स्पृश मां दयालो ।
वात्सल्यपेशलधियां महतां प्रवास-
दूरीकृतेषु करुणा न तनुत्व मेति ॥ ३८ ॥

भगवन् दाससुतया त्वं मयाद्य निमन्त्रितः ।
प्रातरागमनेनैव मानं वितर मे विभो ॥ ३९ ॥

इत्युदीर्य तयोत्सृष्टा विचित्रकुसुमावली ।
सजीवितेव प्रययौ नभसा भक्तिदूतिका ॥ ४० ॥

དཀར་དང་དམར་དང་སེར་དང་སྔོན་པོ་དག་གི་མེ་ཏོག་འཕྲེང་།
གདུག་པའི་དུ་བས་བཀྲ་བ་དཔལ་གྱིས་མཁའ་ལ་འགྲོ་བ་དེ།
བདེ་སོགས་བདག་པོ་འི་གཞུ་ཡི་ཁྲི་ཤིང་ཡང་དག་རྒྱུ་བ་ནི།
ཆུ་འཛིན་གཞོན་ནུ་དག་ལ་རབ་ཏུ་ཆགས་ཤིང་ཡུན་རིང་མཛེས།། 41

དེ་ནས་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་སོང་ནས། སྐད་ཅིག་གིས་ནི་མེ་ཏོག་འཕྲེང་།
གུས་པ་དག་དང་ལྡན་པ་དེ། སྟོན་པའི་ཞབས་པད་དག་ལ་ལྷུང་།། 42

བཅོམ་ལྡན་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་ཀྱང་། མ་ག་དྷ་ནི་བཟང་མོ་ཡིས།
འདོད་པ་ཀུན་མཁྱེན་ཐུགས་རྗེ་ཡིས། ཀུན་དགའ་བོ་ལ་སྔོན་དུ་གསུངས།། 43

གྲོང་ཁྱེར་བྲུ་རམ་ཤིང་འཕེལ་དུ། ཉང་པར་བདག་ཅག་འགྲོ་བར་བྱ།
མ་ག་དྷ་བཟང་དགེ་འདུན་དང་། བཅས་པའི་བདག་མཆོད་དོན་དུ་གཉེར།། 44

འདི་ནས་གྲོང་དེ་དཔག་ཚད་ནི། དྲུག་ཅུ་ལྷག་པའི་བརྒྱ་ཕྲག་དེ།
ཉི་མ་གཅིག་གིས་འགྲོ་བར་བྱ། འདི་ལ་ཐོགས་འཁོར་རིགས་པ་མིན།། 45

གང་གང་རྫུ་འཕྲུལ་ཆེན་པོ་ཡིས། མཁའ་ལ་འགྲོ་ནུས་མཐུ་ལྡན་པ།
དེ་དང་དེ་ལ་ཁྱོད་ཀྱིས་ནི། མགྲོན་དུ་གཉེར་བའི་ཚུལ་ཤིང་བྱིན།། 46

ཞེས་པ་བདེ་གཤེགས་ཀྱི་བསྐུལ་དེ། ཉིན་གཅིག་བགྲོད་པས་ཕྱིན་པ་དང་།
ཚུལ་ཤིང་གིས་ནི་མགྲོན་གཉེར་བ། དགེ་སློང་རྣམས་ལ་རབ་ཏུ་བཤད།། 47

सा श्वेतरक्तहरितासितपुष्पपाली
खे धूपधूमशवला शनकैः प्रयान्ती ।
बालाम्बुदप्रणयिनी सुचिरं चकाशे
सञ्चारिचापलतिकेव शचीधवस्य ॥ ४१ ॥

अथ जेतवनं प्राप्य क्षणेन कुसुमावली ।
सा भक्तिशालिनी शास्तुः पपात चरणाब्जयोः ॥ ४२ ॥

भगवानपि सर्व्वज्ञः सर्व्वं ज्ञात्वा समीहितम् ।
सुमागधायाः कारुण्यादानन्द मवदत् पुरः ॥ ४३ ॥

प्रात र्गन्तव्य मस्माभि र्नगरं पुण्डवर्द्धनम् ।
सुमागधा प्रार्थयते ससङ्घस्य ममार्चनम् ॥ ४४ ॥

शतषष्ट्यधिकं तच्च योजनानामितः परम् ।
एकेनाह्ना च गन्तव्यं न विलम्बोऽत्र युज्यते ॥ ४५ ॥

व्योम्ना मदाज्ञां शक्नोति गन्तुं यो यः प्रभाववान् ।
निमन्त्रणशलाकां त्वं तस्मै तस्मै समर्पय ॥ ४६ ॥

प्रेरितः सुगतेनेति स भिक्षुभ्यो न्यवेदयत् ।
एकाह्नगमनप्राप्यं शलाकाभि र्निमन्त्रणम् ॥ ४७ ॥

རྫུ་འཕྲུལ་ཆེ་ལྡན་ཐམས་ཅད་ཀྱིས། དེར་ནི་ཚུལ་ཞིང་གླིངས་པའི་ཚེ།
གང་པོ་བྲུམ་པར་སྤྲུས་བྱས་པ། གནོད་པོ་ཡིས་ཀྱང་རིམ་པས་གླིངས། 48

མཐུ་ནི་ཐོབ་པ་མིན་པ་དེས། ཚུལ་ཞིང་དག་ལ་ལག་བརྐྱངས་ཚེ།
ཅུང་ཟད་འཛུམ་དཀར་བཞིན་རས་ཅན། ཀུན་དགའ་བོ་ཡིས་དེ་ལ་སྨྲས། 49

མགོན་མེད་ཟས་སྦྱིན་ཁྱིམ་དུ་ནི་ཁང་པ་གཉིས་ཀྱི་འགྲོ་བ་མིན།
དཔག་ཚད་དྲུག་ཅུ་དང་བཅས་བརྒྱ། ཉིན་ཕྱིད་ཀྱིས་ནི་འདའ་བར་བྱ། 50

ཞེས་པ་དེ་བརྗོད་གནོད་པོ་ནི། གླིངས་པས་བཞིན་རས་རྣམ་པར་དུད།
བསམས་དེ་རང་གི་སྒོ་མདུན་དུ། དམན་པའི་དངོས་པོ་བཟོད་པར་དཀའ། 51

ཐོག་མེད་དུས་སུ་བསགས་པ་ཡི། ཉོན་མོངས་སྐྱེས་དང་ན་བ་སོགས།
འབད་པ་ཅན་གྱི་གཉེན་ནུས་ན། རྫུ་འཕྲུལ་གནས་ནི་ཐོབ་ལ་ཅི། 52

ཆགས་བྲལ་དྲག་པོའི་བློ་གྲོས་ཀྱིས། དེ་ལྟར་སེམས་ཞིང་དག་པ་ཡིས།
སེམས་ལྡན་དེ་ལ་སྐད་ཅིག་གིས། རྫུ་འཕྲུལ་ཆེན་པོ་རབ་ཏུ་སྐྱེས། 53

དེ་ནས་མཚན་མོ་འདས་གྱུར་ཏེ། སྔ་དྲོ་དགེ་སློང་ཐམས་ཅད་ནི།
སྣ་ཚོགས་ལྷ་ཡི་ཆས་ལྡན་པའི། གཞལ་ཡས་ཁང་ནས་མཁའ་ལ་གཤེགས། 54

སྐབས་དེར་སྟོན་པ་ཆེན་པོ་ལ། ཚོགས་ཀྱིས་ཡོངས་སུ་གང་གྱུར་པ།
བདག་པོའི་ཁྱིམ་དུ་བཅོམ་ལྡན་འདས། ལྷ་འདོད་མ་ག་དྷ་བཟང་མོ། 55

शलाकासु गृहीतासु तत्र सर्व्वैर्महर्द्धिभिः ।
पूर्णः कुम्भोपधानो यः स्थविरोऽप्यग्रहीत् क्रमात् ॥ ४८ ॥

तेन प्राप्तप्रभावेन शलाकायां प्रसारिते ।
पाणौ प्राह त मानन्दः किञ्चित् स्मितसितानन: ॥ ४९ ॥

अनाथपिण्डदगृहं न गन्तव्यं पदद्वयम् ।
सषष्टियोजनशतं दिनार्द्धेनैव लङ्घ्यते ॥ ५० ॥

इत्युक्तः स्थविर स्तेन वैलक्ष्यविनताननः ।
अचिन्तयत् स्ववर्गाग्रे न्यूनभावो हि दुःसहः ॥ ५१ ॥

अनादिकालोपचिताः क्लेशजन्मजरादयः ।
हन्तुं सयत्नैः शक्यन्ते प्राप्तु मृद्धिपदं कियत् ॥ ५२ ॥

इति चिन्तयत स्तस्य तीव्रसंवेगया धिया ।
प्रादुरासीत् क्षणेनैव महर्द्धिः शुद्धचेतसः ॥ ५३ ॥

अथ रात्र्यां व्यतीतायां प्रभाते सर्व्वभिक्षवः ।
नानाचिह्नवेशेन विमानै र्नभसा ययुः ॥ ५४ ॥

अत्रान्तरे महारम्भसम्भारपरिपूरिते ।
सुमागधा भर्त्तृगृहे भगवद्दर्शनोत्सुका ॥ ५५ ॥

མེ་ཏོག་གདུག་པའི་མཆོད་པ་ཡི། བཀོད་པ་འཛིན་ལ་མངོན་ཕྱོགས་ཤིང་།
སྒྲུག་མོ་གྲོས་པོ་ཀྲི་རྣམས་དང་། ལྷན་ཅིག་ཁང་བཟང་ལ་འཛེག་འཁོད།། 56

དེ་ནས་ཧ་ཡི་ཤིང་རྟར་གནས། དགེ་སློང་ཀུན་ཤེས་ཀཽ་ཎྜི་ནྱ།
རྣམ་མང་ངོ་མཚར་རྫུ་འཕྲུལ་ནི། མཆོག་ལྡན་དང་པོ་རབ་ཏུ་མཐོང་།། 57

ཉི་མ་དང་མཚུངས་དེ་མཐོང་ནས། ཡ་མཚན་གྱུར་སོགས་དགའ་བ་ཡིས།
མ་ག་དྷ་བཟང་ལ་སྨྲས་པ། བཅོམ་ལྡན་ཞེས་པ་འདི་འམ་ཅི།། 58

དེས་སྨྲས་འདི་ནི་བཅོམ་ལྡན་མིན། དགེ་སློང་ཀུན་ཤེས་ཀཽན་ཎྜི་ནྱ།
འོད་ཟེར་དམན་པ་མིན་པ་འདི། ཉི་མ་དག་དང་མཚུངས་པར་མཐོང་།། 59

དེ་ནས་རིམ་གྱིས་ཤིང་རྟ་ཡིས། ཕྱིན་པའི་ཚེ་ན་གྲོས་སོགས་ཀྱིས།
བཟང་མ་བཅོམ་ལྡན་འདི་འམ་ཅི། འདི་འམ་ཅི་ཞེས་རབ་ཏུ་སྨྲས།། 60

དེས་སྨྲས་འདི་ནི་སྟོན་པ་མིན། འདི་དག་དེ་ཡི་བཀའ་ལ་ཉོས།
དགེ་སློང་རབ་ཞི་བསྟུགས་པར་ཉོས། དཀར་ཕྲུབ་རབ་འབར་འོད་ཟེར་ཅན།། 61

གསེར་ལྗོན་མཛེས་པས་དགའ་བ་རི་ཡི་ནི།
རྩེ་མ་ལ་ཉོན་སྤྲིན་ལ་བྱོན་པ་གང་།
ངོ་མཚར་བྱེད་པ་མཐུ་ནི་གཟུགས་ཅན་བཞིན།
དཔལ་ལྡན་དགེ་སློང་འདི་ནི་འོད་སྲུངས་ཆེ།། 62

सह प्रासाद मारुह्य श्वश्रूश्वशुरभर्त्तृभिः ।
तस्थौ कुसुमधूपार्घ्यरचनासंग्रहोन्मुखी ॥ ५६ ॥

भिक्षुराज्ञातकौण्डिन्य स्ततोऽम्बरथ मास्थितः ।
दिव्यर्द्धिविविधाश्चर्य्यैः प्रथमं प्रत्यदृश्यत ॥ ५७ ॥

तं दृष्ट्वा सूर्य्यसङ्काशं विस्मिताः श्वशुरादयः ।
ऊचुः सुमागधां प्रीत्या किमेष भगवानिति ॥ ५८ ॥

सावदद्भगवान्नायं दृश्यते तरणिप्रभः ।
अय माज्ञातकौण्डिन्यो भिक्षुरक्षुण्णदीधितिः ॥ ५९ ॥

आपतत्सु क्रमेणाथ रथेषु श्वशुरादयः ।
किमयं किमयं भद्रे भगवानिति तां जगुः ॥ ६० ॥

साब्रवीन्नैव शास्तायं मेते तच्छासनोचिताः ।
भिक्षवः प्रशमश्लाघ्या स्तपोदीप्ततरत्विषः ॥ ६१ ॥

यः कान्तहेमद्रुमरम्यशैल—
शृङ्गाधिरूढः परतोऽभ्युपैति ।
आश्चर्य्यसन्मूर्त्त इव प्रभावः
श्रीमान् महाकाश्यप एष भिक्षुः ॥ ६२ ॥

ཆུ་ལྡན་ཆར་སྤྲིན་ཟབ་མོའི་འབྲུག་སྒྲ་ལྡན།
གདོང་ལྔ་ཤིང་རྟ་དགག་ལ་གནས་པ་གང་།
མཁའ་ལ་སྔོན་ཏུ་བྱིན་པའི་དགེ་སློང་འདི།
ས་ལ་ཡོན་ཏན་གྱིས་བསྒྲགས་ཤཱ་རི་བ་བུ།། 63

གཉིས་འཐུང་སོ་བཞི་ཀི་ལ་ཤ་བཞིན་ཏུ།
རབ་དཀར་ལ་ཞོན་མཐའ་ཡས་མཛེས་པ་གང་།
བྱིན་པའི་དགེ་སློང་དེ་ནི་འགྲོ་རྣམས་ན།
བསོད་ནམས་ལྡན་མཆོག་མཽ་གལ་བུ་ཞེས་བྱ།། 64

གསེར་པད་ཟི་དྲུ་རུ་ཡི་ཡུ་བ་ཅན།
རིན་ཆེན་སྨུ་གུ་གི་སར་གྱིས་མཚན་ཞོན།
ཕྱོགས་ནི་དྲི་བཟང་གིས་འགེངས་བྱིན་པ་གང་།
དགེ་སློང་དེ་ཉིད་མ་འགགས་པ་ཞེས་གྲགས།། 65

གང་ཞིག་མཁའ་ལྡིང་ལ་ཞོན་གཡོག་ཀླུང་གིས།
ཆུ་འཛིན་རབ་ཏུ་གཏོར་བའི་འཆི་མེད་ལམ།
མགྱོགས་པ་རྒྱས་པ་རྣམ་པར་གཅོད་བྱེད་པ།
དགེ་སློང་འདི་སྤེ་བྱམས་མའི་བུ་གང་པོ།། 66

སྙིང་སྟོབས་ཆུ་གཏེར་ཆེ་གང་མཆོག་གི་ལམ།
ཤིན་ཏུ་ཞི་བ་མཐའ་མེད་དགག་ལ་གནས།

पञ्चाननस्यन्दन मास्थितो यः
सतोयजीमूतगभीरघोषम् ।
व्योम्ना समभ्येति गुणैः प्रगीतः
स एष भिक्षु र्भुवि शारिपुत्रः ॥ ६३ ॥

आरुह्य कैलास मिवातिशुभ्रं
द्विपं चतुर्दन्त मनन्तकान्तिः ।
आयाति यः पुण्यवतां जगत्सु
मौद्गल्यनामा च स एष भिक्षुः ॥ ६४ ॥

वैदूर्य्यनालं कनकारविन्द-
मारुह्य रत्नाङ्कुरकेशराढ्यम् ।
उपैति यः सौरभपूरिताशः
स एष भिक्षुः प्रथितोऽनिरुद्धः ॥ ६५ ॥

यश्चाम्बराग्रे गरुडाधिरूढः
पक्षानिलोत्सारितवारिवाहः ।
विगाहते स्फीतवमेन भिक्षु-
र्मैत्रायणीसूनुरयं सुपूर्णः ॥ ६६ ॥

अनन्त मास्थाय नितान्तशान्त-
मौर्म्यापथं सप्तमहोदधि यः ।

འོད་ཀྱི་བདུད་རྩིས་ཕྱོགས་ཆོམ་རབ་དུ་སྒྲོ།
མཐུ་ལྡན་དགེ་སློང་འདི་ཏ་ཐུལ་ལོ།། 67

གསེར་གྱི་དྲ་ལ་ཡངས་པའི་འཕྲི་ཤིང་ནི།
རྣམ་པར་གཡོ་བས་དཀྲིགས་པ་མངོན་དགའ་ཞོན།
བསོད་ནམས་གསལ་རྫོགས་མངོན་པར་འོངས་པ་གང་།
དགེ་སློང་འདི་ནི་བློ་ལྡན་ཉེ་བར་འཁོར།། 68

གསེར་དང་རིན་ཅེན་རབ་འབར་པ་དྲི་རིས།
ཐི་དྲུ་རུ་ཨི་གཞལ་ཡས་ཁང་རྩེར་ཞོན།
འོད་ཀྱི་ཐུགས་བཞིན་བྱོན་པ་གང་འདི་ནི།
དགེ་སློང་ཀུ་ཎྜ་ཨ་ན་ཞེས་པ་འོ།། 69

གང་ཞིག་གཟུགས་དང་ལྡན་པའི་ཆོས་ལ་བཞིན།
ཁྲུ་མཆོག་ལ་ཞོན་མཁའ་ལ་རྣམ་པར་ལྡིང་།
རབ་གནས་ཡོངས་སུ་གནས་པ་རྣམས་ཀྱི་མཆོག།
བློ་བརླིང་དགེ་སློང་འདི་ནི་གོ་ཀྵི་ལ། 70

ཡང་ཡང་དང་བ་གཞལ་ཡས་ཁང་འོད་ཀྱིས།
ཡུད་ཙམ་བར་སྣང་འཛུམ་རླབས་དགའ་ལྡན་པར།
བྲིད་ཅིང་དཀའ་ཐུབ་གཏེར་གང་བྱོན་འདི།
དགེ་སློང་པི་ལིན་ད་བཏ་སྭ་ཞེས་བརྗོད།། 71

प्रभान्वितैः सर्पति तर्पिताशः
प्रभाववानेष्यजिदेष भिक्षुः ॥ ६७ ॥

विलोलवल्लीवलयाभिरामं
विशाल मारुह्य सुवर्णतालम् ।
यः पुण्यपूर्णद्युति रभ्युपैति
स एष भिक्षु र्मतिमानुपाली ॥ ६८ ॥

आरुह्य वैदूर्य्यविमानशृङ्गं
सुवर्णरत्नोज्ज्वलपत्रलेखम् ।
लिम्पन्निवागच्छति यः प्रभाभिः
कात्यायनो नाम स एष भिक्षुः ॥ ६९ ॥

शरीरिणं धर्म्म मिवाधिरुह्य
विगाहते खं वृषवाहनो यः ।
प्रेष्ठः प्रतिष्ठापरिनिष्ठितानां
गरिष्ठधीः कौष्ठिल एष भिक्षुः ॥ ७० ॥

विमानहंसद्युति भिर्मुहूर्त्तं
सितोर्म्मिरम्यं मुहु रन्तरीक्षम् ।
कुर्व्वन् समभ्येति तपोनिधि र्यः
पिलन्दवत्साह्वय एष भिक्षुः ॥ ७१ ॥

མི་རྡོག་རབ་བྲུས་འཁྲི་ཤིང་བྲུས་པ་ཡིས།
གསེར་ཚལ་ནང་ན་ང་ཞུགས་ཤིང་བྲོན་པ་གང་།
མི་དམན་ཁྲིམས་གྱི་དཔལ་ལ་ལྟོས་མེད་པའི།
དགེ་སློང་འདི་ནི་རྣ་པ་བྲི་བར་གྲགས།། 72

གསེར་གྱི་འོད་ཀྱིས་ཕྱོགས་ཆ་རྣམ་པར་བརྒྱན།
ལྷུན་པོའི་གཟུགས་གཞན་བཞིན་དུ་ལེགས་པར་མཚོན།
འཁོར་ལོ་སྒྱུར་གང་མཁའ་ལ་མཛེས་པ་འདི།
སྟོན་པའི་སྲས་པོ་སྒྲ་གཅན་འཛིན་ཞེས་བརྗོད།། 73

དེ་ནས་རི་དང་ཕྱོགས་མཚམས་རྣམས་དང་ནི།
ས་ཡི་དཀྱིལ་འཁོར་མཁའ་ངོས་ཁོང་ལས་ཀྱང་།
རྣམ་བཀྲ་རིན་ཆེན་ཁྲི་དང་བཞོན་པར་གནས།
གྲངས་མེད་རྨད་བྱུང་དགེ་སློང་ཚོགས་འདི་བྱོན།། 74

དེ་ལྟར་དེ་ཡིས་རིམ་པས་བཤད་གྱུར་པའི།
དགེ་སློང་དགེ་འདུན་ཁྲིད་འཕགས་བཞིན་མཐོང་ནས།
གཞན་དག་མཚོན་མིན་དེ་དག་མཚུངས་པར་ནི།
དགའ་དང་རྨད་བྱུང་གུས་པའི་དབང་ཉིད་གྱུར།། 75

དེ་ནས་རང་འབར་གསེར་གྱི་ཕྱེ་མའི་གོས།
ཉི་བརྒྱ་གསལ་བ་འགྲོ་ལ་བྱུང་།

योऽयं समुत्फुल्ललतावितान-
वनान्तराले विहरन्नुपैति ।
स श्रोणकोटिः श्रुत एव भिक्षु-
रक्षुण्णलक्ष्मीर्गृहनिर्व्यपेक्षः ॥ ७२ ॥

य श्चक्रवर्त्ती दिवि भाति सोऽयं
शास्तुः सुतो राहुलकाभिधानः ।
हेमप्रभाभूषितदिग्विभागः
संलक्ष्यते मेरुरिवान्यरूपः ॥ ७३ ॥

एते गिरिभ्योऽथ दिगन्तरेभ्यः
क्ष्मामण्डलाद्व्योमतटान्तराच्च ।
आयान्त्यसंख्याकुतभिक्षुसङ्घा
विचित्ररत्नासनवाहनस्थाः ॥ ७४ ॥

तया क्रमेणेति निवेद्यमानं
ते भिक्षुसङ्घं विमुखं विलोक्य ।
ययुः प्रहर्षाकुलसम्भ्रमाणां
विधेयतां तुल्य मनन्यलक्ष्म्या ॥ ७५ ॥

अथ ज्वलत्काञ्चनचूर्णवर्णां
जगद्भुवार्कशतप्रकाशम् ।

གདུང་བའི་ཁྲུད་པར་མ་ལུས་ཞི་བྱེད་པས།
བསིལ་ཟེར་འཕྲོ་བ་བརྒྱ་ལྡར་བསིལ་བ་ཡང་ །། 76

དེ་ནས་ནོར་བདག་བརྒྱ་བྱིན་ཚངས་སོགས་ཀློད་པོ་རྣམས་ཀྱི་ནི།
རྒྱ་ཆེ་ནམ་མཁའ་བགྲོད་པ་བརྟེན་ཅིང་རྗེས་སུ་བགྲོད་པ་ཕྱུམ།
འཆི་མེད་གྲོང་གི་བུ་མོས་མེ་ཏོག་ཚོགས་ནི་གཏོར་བ་ལས།
རྒྱལ་བའི་ཀླུ་བ་བསོད་ནམས་ལྡན་པ་རྣམས་ཀྱིས་མིག་ལམ་བསྒྱུར །། 77

གྲོང་ཁྱེར་སྒོ་ལམ་བཅོ་བརྒྱད་ལྡན་པ་དེར།
མཚུངས་པའི་སྐུ་ནི་བཅོ་བརྒྱད་དང་བཅས་པས།
རབ་ཞུགས་མ་ག་དྷ་ནི་བཟང་མོའི་ཁྱིམ།
ཀླུ་ཤེལ་རིན་ཅན་རྡོ་ཡི་རང་བཞིན་བྱས།། 78

དེར་ནི་ཡོ་བྱད་རྫོགས་པ་རྣམ་མང་གིས།
མངོན་པར་མཆོད་ཅིང་ཀུན་གྱིས་ཕྱག་འཚལ་ཏེ།
གྲོང་པའི་སྐྱེ་བོ་དག་གིས་ཀུན་ནས་མཆོད།
ཏིག་པར་གཟུགས་བརྙན་སྣང་དེ་ཕྱི་ནས་ཀྱང་ །། 79

བཅོམ་ལྡན་བརྩེ་ལྡན་དགེ་འདུན་དང་བཅས་པས།
བརྩེ་བས་མཆོད་པ་བླངས་ནས་རྗེས་གཟུང་ནི།
གཟིགས་པའི་ཚ་ཡིས་མ་ག་དྷ་བཟང་མོ།
གཉེན་དང་བཅས་པ་རྣམས་ལ་བཀའ་དྲིན་བསྒྲུབས།། 80

अशेषसन्तापविशेषशान्त्या
शीतांशुमालाशतशीतलश्च ॥ ७६ ॥

अथ धनपतिशक्रब्रह्ममुख्यै रमर्त्त्यै-
र्विपुलगगनयाचादत्तसेवानुयाचः ।
अमरपुरपुरस्त्रीकीर्णपुष्पप्रभावा-
न्नयनपथ मयासीत् पुण्यभाजां जिनेन्द्रः ॥ ७७ ॥

अष्टादशद्वारपथा पुरं तत्
स तुल्य मष्टादशमूर्त्तिरेव ।
प्रविश्य चक्रे शशिकान्तरत्न-
शिखामयं वेश्म सुमागधायाः ॥ ७८ ॥

अभ्यर्चित स्तत्र बहुप्रकारैः
पूर्णोपचारैः प्रणिपत्य सर्व्वैः ।
अपूजयत् पौरजनः समन्तात्
बहिश्च भित्तिप्रतिविम्बितं तम् ॥ ७९ ॥

सुमागधाया दयया दयालुः
पूजां गृहीत्वा भगवान् ससङ्घः ।
अनुग्रहालोकनसंविभागैः
सर्व्वान्ववाया विदधे प्रसादम् ॥ ८० ॥

མ་ག་དྷ་བཟང་གྲོས་སོགས་སྐྱེ་དང་བཅས།
གྲོང་པའི་སྐྱེ་བོ་ཀུན་དང་བཅས་པ་ཡང་།
དེ་ཚེ་སྟོན་པའི་བསྟན་པ་དག་གིས་ནི།
དེ་དུས་བདེན་མཐོང་བསམ་པ་དག་པར་གྱུར།། 81

དགེ་བ་རྗེས་འབྲེལ་མ་ག་དྷ་བཟང་གི།
བསོད་ནམས་མཐུ་ནི་ཡངས་པ་མཐོང་གྱུར་ནས།
དགེ་སློང་དེ་དག་གིས་དེར་དགེ་མཚན་ལས།
དེ་ཡི་སྔོན་བྱུང་རྒྱལ་བ་དག་ལ་དྲིས།། 82

མ་ག་དྷ་བཟང་དགེ་བའི་རྒྱུ་དག་ནི།
ཚོགས་སུ་དེ་དག་གིས་དྲིས་བཅོམ་ལྡན་འདས།
ཀུན་གཟིགས་དེ་ཡི་ཚེམས་ཀྱི་འོད་རྣམས་ཀྱིས།
ཕྱོགས་སྐོར་སྣང་བ་བྱིན་ཅིང་རབ་གསུངས་པ།། 83

བ་ར་ཎ་སི་དག་ཏུ་སྔོན། ས་བདག་མཛེས་པ་ཀྲི་ཀི་ཡིས།
བུ་མོ་གསེར་འབྲིང་ཅན་ཞེས་པ། གསེར་འཕྲེང་སྣ་དང་ལྡན་པ་བྱུང་།། 84

སྟོན་པ་འོད་སྲུངས་ཞེས་པ་ལ། རྟག་ཏུ་གུས་དང་ལྡན་པ་དེས།
གྲོགས་མོ་བརྒྱ་ཕྲག་སྟེ་དང་ནི། ལྷན་ཅིག་དག་ཏུ་རིམ་གྲོ་བསྒྲུབས།། 85

सुमागधा सश्वशुरादिवर्गा
सहापरैः पौरजनैश्च सर्व्वाः ।
शास्तु स्तया देशनया बभूवुः
सुखाशया स्तत्क्षणदृष्टसत्याः ॥ ८१ ॥

सुमागधायाः कुशलानुबन्धं
पुण्यं प्रभावं विपुलं विलोक्य ।
ते भिक्षव स्तच कुतूहलेन
पप्रच्छु रम्यं जिन मादिवृत्तम् ॥ ८२ ॥

पृष्टः स तैः संसदि सर्व्वदर्शी
सुमागधायाः कुशलस्य हेतुम् ।
दन्तप्रभाभिः ककुभां मुखेषु
दिशन् प्रकाशं भगवान् बभाषे ॥ ८३ ॥

वाराणस्या मभूत् पूर्व्वं क्रकेः कान्तस्य भूपतेः ।
सुता काञ्चनमालाख्या कुचकाञ्चनमालिका ॥ ८४ ॥

काश्यपाख्यस्य शास्तुः सा सततं भक्तिशालिनी ।
परिचर्य्यां व्यधात् सार्द्धं सखीनां पञ्चभिः शतैः ॥ ८५ ॥

ནམ་ཞིག་ས་ཡི་བདག་པོ་དེས། རྣམ་འགྱུར་རྨི་ལམ་མཐོང་བ་ལས།
འཇིགས་པའི་ཐེ་ཚོམ་ཀུན་འཁྲུལ་བས། འབྲས་བུ་མཁས་པ་དག་ལ་དྲིས། ‖ 86

རྒྱལ་པོའི་བུ་མོ་ལ་སྡང་པས། མཚན་ཤེས་དེ་དག་གིས་དེར་སྨྲས།
ཤིན་ཏུ་མཛའ་བ་དག་གི་སྙིང་། མི་ལ་བསྲེགས་ན་ཞི་བ་ཐོབ། ‖ 87

ཅེས་པ་དེ་དག་རྣམས་ཀྱི་ཚིག། རབ་གདུག་མ་བཟུང་མི་བདག་ནི།
བུ་མོའི་ཚིག་གིས་བཅོམ་ལྡན་འདས། འོད་སྲུང་དག་ལ་བལྟ་རུ་སོང་། ‖ 88

དེ་ལ་ཕྱོགས་ཏེ་དེས་གསོལ་བ། རྨི་ལམ་མཆོག་ཏུ་རྣམ་འགྱུར་ཅན།
བདག་གིས་དེང་མཐོང་དེ་འབྲས་ཀུན། ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་གསུང་བར་འོས། ‖
89

གླང་ཆེན་རྒྱ་སྐར་ནས་འགྲོན་པ། ཛ་མ་དག་ལ་ཐོགས་པ་དང་།
དེ་བཞིན་སྙོམ་པའི་ཕྱིར་རྗེས་ནས། ཁྲོན་པ་རྒྱུག་བ་བདག་གིས་མཐོང་། ‖ 90

ཕྱེ་ནི་བྲེ་གང་དག་ལ་ཡང་། སྲུ་རིག་བྲེ་གང་འཚོང་བ་མཐོང་།
ངན་པའི་ཤིང་དང་ཙན་དན་ནི། མཉམ་པ་དག་ཏུ་བྱེད་པ་མཐོང་། ‖ 91

དེ་བཞིན་གཡུལ་དུ་གླང་ཕྲུག་གིས། གླང་པོ་ཆེན་པོ་ཡང་དག་འབོད།
མི་གཙང་བ་ཡིས་ལུས་བྱུགས་པའི། སྤྲེའུ་འཕར་ཞིང་གཞན་ལ་འབྲུག ‖ 92

སྤྲེའུ་ངན་པ་གསོ་བའི་གཏེར། རྒྱལ་སྲིད་རྒྱལ་ལ་མངོན་དབང་བསྐུར།
རས་ཡུག་སྐྱེས་བུ་བཅོ་བརྒྱད་ཀྱིས། དྲངས་ཀྱང་ཀུན་ཏུ་ཉམས་པ་མེད། ‖ 93

स कदाचिन्नरपति र्विकृतस्वप्नदर्शनात् ।
भयसंशयसंभ्रान्तः पप्रच्छ फलकोविदम् ॥ ८६ ॥

ते तं राजसुताद्वेषान्निमित्तज्ञा बभाषिरे ।
अतिप्रियस्य हृदयं हुत्वाग्नौ लभ्यते शिवम् ॥ ८७ ॥

इति तेषा मनादृत्य वचः क्रूरतरं नृपः ।
भगवन्तं ययौ द्रष्टुं काश्यपं दुहितु र्गिरा ॥ ८८ ॥

स त मेत्यावदत् स्वप्नः सविकारः परं मया ।
दृष्टोऽद्य सर्व्वं सर्व्वज्ञ तत्फलं वक्तुमर्हसि ॥ ८९ ॥

वातायनेन निर्गच्छन् लग्नपुच्छो मया गजः ।
तृषितस्य तथा पश्चात् कूपो धावन् विलोकितः ॥ ९० ॥

तृप्तश्च शक्तुप्रस्थेन मौक्तिकप्रस्थविक्रयः ।
समीकृतानि दृष्टानि कुदारूणि च चन्दनैः ॥ ९१ ॥

कलभेन महाहस्ती समाहूत स्तथाहवे ।
परानमुचिलिप्ताङ्गः प्रलिम्पन् विश्रुतः कपिः ॥ ९२ ॥

स्फीतराज्याभिषिक्तश्च कुचापलनिधिः कपिः ।
पटोऽष्टादशभिः क्लृष्टः पुरुषैरप्यसंक्षयः ॥ ९३ ॥

མི་རྡོག་འབྲས་བུའི་དགའ་ཚལ་ནི། དགའ་བ་ཆོམ་རྐུན་དག་གིས་དཀྲུགས།
ཞེ་སྡང་བཞད་གད་རྩོད་པ་ལ། སྐྱེ་བོ་མང་པོ་ཚོགས་པ་སྟེ།། 94

སྨད་བྱུང་རྨི་ལམ་འདི་དག་གིས། འབྲས་བུ་ཤིན་ཏུ་འཇིགས་རུང་སྣམ།
ཞེས་པ་ས་བདག་གིས་དྲིས་ལ། བཅོམ་ལྡན་འོད་སྲུངས་ཀྱིས་གསུངས་པ།། 95

སྐྱེ་བོའི་ཚེ་ལོ་བརྒྱ་བའི་ཚེ། སྟོན་པ་ཞི་བ་ཤཱ་ཀྱ་ཐུབ།
རྒྱལ་བ་བདུད་རྩིའི་ཆུ་གཏེར་འབྱུང་། དེ་ནི་ཁྱོད་ཀྱིས་སྣང་པོར་མཐོང་།། 96

དེ་ཡི་ཉན་ཐོས་ཐ་མ་ཡི། དུས་སུ་རྩོད་པ་ལ་བརྟེན་ནས།
ཚུལ་ཁྲིམས་ཡོན་ཏན་ཀུན་སྤྱོད་བཏང་། བསླད་པ་དང་བཅས་འབྱུང་བར་འགྱུར།། 97

དེ་དག་སློབས་ཀྱི་ཁྱིམ་ན་གནས། དབེན་པ་མ་སྨིན་ཚུང་རྣམས་ལ།
རང་གིས་བསྟེན་པ་ལ་བརྟེན་ཅིང་། བསྟན་པ་དག་ནི་བྱེད་པར་འགྱུར།། 98

གང་ཕྱིར་ཞུ་བ་ཞུ་བྱེད་ཀྱིས། དངོས་པོས་བསྟེན་པ་དག་ལ་རྒྱུག།
དེ་སྐད་སྨྲས་པའི་ཕྱི་ནས་ནི། ཁྲིན་པ་འགྲུས་པ་རྣམ་པར་མཐོང་།། 99

ཆགས་པས་ཡོང་ཞིང་ཀུན་སྨོངས་ཀྱིས། བཅོམ་པ་དེ་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི།
ཡན་ལག་སྨྲ་དིག་བྲི་གང་ནི། ཕྱི་བྲི་གང་ལ་འཚོང་པར་འགྱུར།། 100

སྨུ་སྟེགས་ཚིག་ནི་ཤིང་ངན་དང་། སངས་རྒྱས་ཀྱིས་གསུངས་ཙན་དན་དག།
སྨོངས་པ་ཁྱད་པར་མི་ཤེས་པ། དེ་དག་གིས་ནི་མཚུངས་བྱེད་འགྱུར།། 101

रम्यपुष्पफलाराम श्चौरैरपि विलुण्ठितः ।
द्वेषोपहासकलहासक्तश्च विपुलो जनः ॥ ९४ ॥

स्वप्नाद्भुताना मेतेषां मन्ये घोरतरं फलम् ।
इति पृष्टः क्षितिभुजा भगवान् काश्यपोऽब्रवीत् ॥ ९५ ॥

शतायुषि जने शास्ता शान्तः शाक्यमुनि र्जिनः ।
भविष्यत्यमृताम्भोधिः स दृष्टः कुञ्जर स्त्वया ॥ ९६ ॥

तस्यापि पश्चिमे काले श्रावकाः कलिसंश्रयात् ।
त्यक्तशीलगुणाचारा भविष्यन्ति सविप्लवाः ॥ ९७ ॥

अपकाल्पविवेकानां बलात्ते गृहवासिनाम् ।
स्वयं सेवां समालम्ब्य करिष्यन्त्येव देशनाम् ॥ ९८ ॥

प्रार्थनीयोऽर्थिभावेन यस्मात् सेवासु धावति ।
तृषितस्य व्रजन् पश्चात् कूप स्तस्माद्विलोकितः ॥ ९९ ॥

ते करिष्यन्ति लोभान्धाः संमोहोपहताः परम् ।
बोध्यङ्गमुक्ताप्रस्थस्य शक्तुप्रस्थेन विक्रयम् ॥ १०० ॥

तीर्थवाक्यकुदारूणि बुद्धभाषितचन्दनैः ।
साम्यमापादयिष्यन्ति ते मौग्ध्यादविशेषिणः ॥ १०१ ॥

དུལ་བའི་དགེ་སློང་གླང་པོ་ཆེ། བཟང་པོ་ཐོབ་ནས་འགའ་ཞིག་དུ།
དགེ་སློང་ཁྲིམས་འཆལ་གླང་ཕྲུག་གིས། འགྲན་ཞིང་སྨོད་པར་བྱེད་པར་འགྱུར།། 102

གསོ་བའི་མི་གཙང་གིས་བྲུགས་ལུས། དགེ་སློང་སྤྲེའུ་ཁྲིམས་བཟང་རྣམས།
རང་གི་སྐྱོན་གྱིས་སྨོ་བྱེད་ཅིང་། བདག་ཉིད་མཚུངས་པ་བྱེད་པར་འགྱུར།། 103

སྤྲེའུ་བཞིན་དུ་རིགས་འཁྱལ་བ། མངོན་པར་དབང་ནི་བསྒྱུར་བར་འགྱུར།
རྫོགས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་བསྟན་པ་ཡི། རས་ཕྱུག་བྲངས་པས་ཉམས་མི་འགྱུར།། 104

དགེ་འདུན་རྫས་དང་འབྲས་བུ་ཡི། དཀའ་ཚལ་དག་ཀྱང་ཀུ་བར་འགྱུར།
པན་ཚུན་སྐྱོན་ནས་རྫོད་བྱེད་ཅིང་། འཐབ་མོ་འི་ངང་རྩུལ་དག་དུ་འགྱུར།། 105

ཁྲོད་ཀྱི་རྨི་ལམ་རྣམ་སྨིན་མཐར། འབྲས་བུ་འདི་དག་ས་ལས་བྱུང་།
ཞེས་པ་སྨོན་པའི་ཚིག་ཐོས་ནས། ས་ཡི་བདག་པོ་ཡ་མཚན་གྱུར།། 106

དེ་ནས་སྟོན་རེས་མི་བདག་ནི། རྗེས་འབྲང་བཅས་ལ་ཆོས་བསྟན་པ།
མཛད་ནས་གསེར་འཕྲེང་ཅན་མ་ལ། དགེ་བ་འདིས་པ་ཉིད་དག་བསྟན།། 107

སྐྱེ་བ་གཞན་དུ་མཆོད་རྟེན་ལ། ནུ་རང་གཡི་འཕྲེང་བས་མཆོད།
ལེགས་བྱས་དེ་ཡིས་དེ་ཉིད་ནི། གསེར་འཕྲེང་དག་གིས་མཚན་པར་སྐྱེས།། 108

མ་ག་དྷ་ནི་བཟང་མོ་འདི། དེ་ཉིད་བསོད་ནམས་མཐུ་ཚན་གྱིས།
ཡང་དག་དགེ་བའི་ཟམ་ཕྲེགས་ཉིད། དེ་རིང་སྐྱེ་བོ་འི་ཚོགས་ཀྱིས་ཐོབ།། 109

क्वचिद् भद्रं समासाद्य विनीतं भिक्षुकुञ्जरम् ।
दुःशीलकलभो भिक्षुः स्पर्द्धया धिक्करिष्यति ॥ १०२ ॥

चापलाशुचिलिप्ताङ्गः सुशीलान् भिक्षुमर्कटः ।
अनुलिम्पन् स्वदोषेण करिष्यत्यात्मसन्निभान् ॥ १०३ ॥

षण्ढकस्याभिषेकश्च भविष्यति कपेरिव ।
संवृत्तशासनपटं क्षुप्यमाणं न नंक्ष्यति ॥ १०४ ॥

सङ्घद्रव्यफलारामेष्वपि यास्यन्ति चौरताम् ।
मिथः कलहशीलाश्च भविष्यन्त्यपवादिनः ॥ १०५ ॥

तव स्वप्नविपाकान्ते फलान्येतानि भूतले ।
इति शास्तु वचः श्रुत्वा विस्मितोऽभून्महीपतिः ॥ १०६ ॥

सानुगस्याथ नृपतेः स शास्ता धर्मदेशनाम् ।
कृत्वा काञ्चनमालाया दिदेश कुशलार्हताम् ॥ १०७ ॥

जन्मान्तरे चकारार्चां स्तूपे नारङ्गमालया ।
सा तेन सुकृतेनैव जाता हेमस्रजाङ्किता ॥ १०८ ॥

सेयं सुमागधा पुण्यप्रभावेण महीयसा ।
प्राप्ताद्य जनकायस्य सम्यक् कुशलसेतुताम् ॥ १०९ ॥

ཅེས་གསུངས་བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་ནི། དགེ་སློང་རྣམས་དང་བཅས་པ་དག །
མཛེས་པས་ཕྱོགས་རྣམས་ཡོངས་འགེངས་ཤིང་། མཁའ་ལས་རྒྱལ་བྱེད་
ཚལ་དུ་གཤེགས།། 110

སྐྱེས་བུ་རྣམས་ཀྱི་རིགས་མཆོག་འཕེལ་སླད་སྟོབས་ལྡན་བུ་
ལ་ཆགས་པས་བརྩོན་པ་ཉིད།
གལ་ཏེ་བུ་ལ་ཡོན་ཏན་མེད་ན་དེ་ཚེ་རིགས་ཀུན་ཉམས་པ་མིན་ནམ་ཅི།
གང་གི་བསོད་ནམས་མཐུ་ཡིས་འཁོར་བའི་ཆུ་ཀླུང་བདག་པོ་ཆེ་ལ་གྲུ་བཞིན་དུ།
རིགས་ཟུང་ཡང་དག་སྒྲོལ་བྱེད་ཡོན་ཏན་ལྡན་པའི་བུ་མོ་དེ་དག་ངེས་པར་འབྱུང་།།
111

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་མག་དྷ་བཟང་མོའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དགུ་བཅུ་རྩ་གསུམ་པའོ།།

अभिधायेति भगवान्नभसा भिक्षुभिः सह ।
रुचा संपूरयन्नाशां ययौ जेतवनं जिनः ॥ ११० ॥

पुंसां सत्कुलभूतये बलवती मिथ्यैव पुत्रस्पृहा
सूनुश्चेदगुणस्तदेव विकलं तत् किं न सर्व्वं कुलम् ।
सा कन्या किल जायते गुणवती पुण्यप्रभावाद् यया
संसारोरुसरित्पतौ कुलयुगं नावेव सन्तार्य्यते ॥ १११ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
सुमागधावदानं चिनवतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་དགུ་བཅུ་རྩ་བཞི་པ།

སྐལ་བ་ཉམས་པ་ཁ་ཅིག་རབ་གསོ་ཟ་སྨྲབས་སྲིད་པ་ཡི།
ཟབ་མོ་འི་ཆུ་ལྡན་འགྲོ་བ་དག་ཏུ་གཏུང་བ་ཉིད་འཛིན་ཅིང་།
བསོད་ནམས་རྒྱས་པ་ཁ་ཅིག་སྒྲ་ངན་བྲག་པོས་ཡོངས་གཏུངས།
ལྡན་སྐྱེས་ཆུ་ཡི་ཚོགས་ཀྱི་མི་བཟད་སྲིད་པ་གཏོང་བར་བྱེད།། 1

མཉན་ཡོད་དུ་ནི་ཁྱིམ་གྱི་བདག། བསོད་ནམས་བཞེས་གཉེར་དག་གི་བུ།
གྲགས་པའི་བཞེས་གཉེན་ཞེས་བྱ་བ། གྲགས་པ་ཅན་གྱི་ཚོད་གྱུར་བྱུང་།། 2

བདུད་རྩིའི་ཟེར་གྱི་འོད་ཟེར་ཅན། དེ་སྐྱེས་ཚེ་ན་བསོད་ནམས་ཀྱི།
ཆུ་ཡི་ཆར་མེད་ལས་སྐྱེས་པ། མི་བཟད་གདུང་པ་ཞི་བར་གྱུར།། 3

གཞོན་ནུ་ཉིད་ལ་དབང་གྱུར་ཅིང་། སྲིད་པའི་ཡོངས་སྤྱོད་ལས་ཕྱིར་ཕྱོགས།
དགེ་ལ་བརྩོན་པ་དེ་སོང་ནས། རྒྱལ་བ་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་བཞུགས་བསྙེན།། 4

སྟོན་པས་ཆོས་ནི་བསྟན་པ་ཡིས། རབ་བྱུང་དགྲ་བཅོམ་གནས་ལ་བརྟེན།
དེ་ནི་གསེར་དང་རྡོ་མཚུངས་ཞིང་། དགའ་དང་མི་དགའ་བཏང་བར་གྱུར།། 5

དེ་ཡི་མཆེ་བ་དག་ལས་ཆུ། རོ་ལྡན་དྲི་མེད་ཞིམ་གྱི་ན།
ཁུ་བ་ཟགས་པ་གང་ཞིག་གིས། དེ་ནི་རྟག་ཏུ་སྲིད་བྲལ་གྱུར།། 6

चतुर्नवतितमः पल्लवः ।

तरलतरतरङ्गोद्गारगम्भीरतोये
दधति जगति केचित् मग्नतां भग्नभाग्याः ।
खरमरुपरितापे केचिदुत्सन्नपुण्याः
सहजसलिलसारै स्तीव्रतृष्णां त्यजन्ति ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां पुण्यमित्रस्य सूनु र्गृहपतेरभूत् ।
यशोमित्र इति ख्यातः प्रतिमानं यशस्विनाम् ॥ २ ॥

तस्य जन्मक्षणे पुण्यैः पीयूषकिरणत्विषः ।
अदृष्टिप्रभवा वाग्भिः प्रशशाम विषमा विपत् ॥ ३ ॥

स युवैव वशी गत्वा भवभोगपराङ्मुखः ।
जिनं जेतवनासीनं सिषेवे कुशलोद्यतः ॥ ४ ॥

धर्म्मदेशनया शास्तुः प्रव्रज्यार्हत्पदं श्रितः ।
तुल्यकाञ्चनपाषाणः सोऽभून्मुक्तप्रियाप्रियः ॥ ५ ॥

दंष्ट्राभ्यां सरसं तस्य द्रुतस्फटिकनिर्म्मलम् ।
सुस्राव वारि येनासौ वीततृष्णः सदाभवत् ॥ ६ ॥

ནམ་ཞིག་དགེ་སློང་ཐམས་ཅད་ཀྱིས། དགེ་མཚན་ལས་ནི་བཅོམ་ལྡན་ལ།
དེ་ཡི་སྲིད་པ་བྲལ་བ་ཡི། བསོད་ནམས་རྒྱུ་ནི་རབ་དུ་དྲིས།། 7

དེས་གསུངས་ཀ་ཤིའི་གྲོང་དུ་སྔོན། མཛེས་པ་ཞེས་བྱ་ཚོང་དཔོན་བུ།
སྟོན་པ་འོད་སྲུངས་ཞེས་པ་ཡི། རབ་དུ་བྱུང་བ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 8

ནམ་ཞིག་སྐོམ་པས་གཟིར་གྱུར་ཅིང་། བདུང་བས་ཉེན་པས་ལུས་ཅན་དེས།
སོ་ཀའི་ཙྭ་ཏ་ཀ་བཞིན་དུ། འགར་ཡང་ཆུ་ནི་ཐོབ་མ་གྱུར།། 9

དེ་ཡི་བསོད་ནམས་ཟ་ཡིན་པས། ཆུ་སྣོད་སྟོང་པ་ཉིད་དང་ནི།
ཁྲོན་པ་ཡང་ནི་ཆུ་མེད་དང་། འཇུག་ངོགས་འཕྲལ་ལ་བསྐམས་པར་གྱུར།། 10

དེ་ནས་སྐོམ་པས་ཚེ་ང་སྐྲས། ལུས་ནི་གཏོང་བར་བརྩོན་དེ་ལ།
མཁན་པོས་ཆུ་ནི་བྱིན་པ་དག། མཐོང་བ་མིན་པ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 11

དེ་ནས་དེ་ཡིས་སྟོན་པ་ནི། འོད་སྲུངས་བཀའ་ཡིས་ཆུ་ཡི་སྣོད།
མི་ཟད་པ་ཉིད་བཞིན་གྱུར་པ། དགེ་འདུན་དག་ལ་ཕུལ་རིང་བྲིམས།། 12

དེ་ཡི་ཆུ་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས། འོད་སྲུངས་དགེ་ལེགས་དག་གི་གཏེར།
རབ་དུ་དང་བས་ཐུགས་རྗེ་ནས། ཕྱག་གི་པདྨོས་རབ་བཞེས་མཛད།། 13

དེར་ནི་སྐྱེ་བོའི་ཚོགས་འོངས་པས། ཆུ་ནི་ཟད་པ་མེད་གྱུར་པ།
མཐོང་ནས་ཨ་མཚར་དག་དང་བཅས། བདེན་པ་མཐོང་བ་ཐོབ་པར་གྱུར།། 14

कदाचिद् भिक्षवः सर्व्वे भगवन्तं कुतूहलात् ।
तृष्णाव्युपरमे तस्य पप्रच्छुः पुण्यकारणम् ॥ ७ ॥

सोऽब्रवीत् काश्यपाख्यस्य शास्तुः काशिपुरे पुरा ।
अभूत् प्रव्रजितः श्रेष्ठिसुतः सुन्दरकाभिधः ॥ ८ ॥

स कदाचित् तृषाक्रान्तः सन्तापक्रान्तविग्रहः ।
निदाघे चातक इव न क्वचिज्जल माप्तवान् ॥ ९ ॥

शून्यतां तोयपात्राणि कूपा निर्जलतामपि ।
स्रोतांसि सहसा शोषं तस्यापुण्यैः समाययुः ॥ १० ॥

देहत्यागोद्यतस्याथ तस्य तृष्णाप्रलापिनः ।
उपाध्यायेन सलिलं दत्तं प्रायादहश्यताम् ॥ ११ ॥

शासनात् काश्यपस्याथ स शास्तु र्जलभाजनम् ।
अक्षयत्व मिवायातं सङ्घे चिर मचारयत् ॥ १२ ॥

कारुण्यात् तस्य भगवान् काश्यपः श्रेयसां निधिः ।
प्रसन्नपाणिपद्मेन चक्रे वारिप्रतिग्रहम् ॥ १३ ॥

दृष्ट्वा सविस्मय स्तत्र जनसङ्घः समागतः ।
तोय मक्षयतां यातं सत्यदर्शन माप्तवान् ॥ १४ ॥

དེ་ཡི་བསོད་ནམས་སྨོན་ལམ་གྱིས། གྲགས་པའི་བཤེས་གཉེན་དགེ་ཚུལ་ལྡན།
ཞི་བ་བརྙེས་འདི་མཆི་བ་ལས། ཆུ་མི་ཚོགས་ནི་འབྱུངས་པར་གྱུར།། 15

དེ་ལྟར་གྲགས་པའི་བཤེས་གཉེན་གྱིས། སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་བྱིན་པ་ནི།
རྒྱལ་བས་གསུང་ཐོས་གྱུར་པ་ཡིས། དགེ་སློང་རྣམས་ནི་ཡ་མཚན་གྱུར།། 16

བདེ་བ་དྲི་མེད་ཆུ་གང་ཞི་བ་ནི།
ཁ་བའི་རླབས་ལྡན་རྒྱལ་བ་བསྙེན་པ་དག།
ཐོབ་ནས་འཁོར་བ་སྲུ་ངམ་ཐང་ལ་ནི།
ཡོངས་འཁྲུམ་སྲེད་པའི་གདུང་བ་གསོང་བར་བྱེད།། 17

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་གྲགས་པའི་བཤེས་གཉེན་གྱི་རྟོགས་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དགུ་བཅུ་རྩ་བཞི་པའོ།།

तत्पुण्यप्रणिधानेन सोऽयं कुशलमूलवान् ।
यशोमित्रः श्रितः शान्तिं दंष्ट्रोद्भूतपयोभरः ॥ १५ ॥

इति जन्मान्तरोदन्तं यशोमित्रस्य सादराः ।
जिनेन कथितं श्रुत्वा भिक्षवो विस्मयं ययुः ॥ १६ ॥

संसारमरुपरिभ्रम
तृष्णातापं त्यजति जिनसेवा ।
सुखविमलसलिलां
कलितांशमहिम कल्लोलिनीं प्राप्य ॥ १७ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
यशोमित्रावदानं चतुर्नवतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་དགུ་བཅུ་རྩ་ལྔ་པ།

རྒྱ་ཆེ་སྡིག་པའི་མུན་པར་འཛུག་པ་དག་ནི་རབ་སྤངས་ནས།
འཕྲུལ་ལ་སྙིང་རྗེའི་འོད་ཟེར་སྣང་བ་རབ་ཏུ་རྒྱས་པ་ཡིས།
སྤྲིན་སེལ་ཅི་ཡང་ཡོངས་སུ་གདུང་བ་དག་ཀྱང་འཕྲོག་བྱེད་པ།
སངས་རྒྱས་འོད་སྟོང་ལྡན་པས་དམ་པའི་ལམ་ནི་སྟོན་པར་བྱེད།། 1

གྲོང་ཁྱེར་རྒྱལ་པོའི་ཁབ་ན་སྔོན། ཀ་ལན་ད་ཀའི་གནས་ཞེས་པ།
འོད་མའི་ཚལ་ན་བཅོམ་ལྡན་འདས། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམ་པར་བཞུགས།། 2

གྲོང་དེར་དེད་དཔོན་དོན་བྱིན་གྱི། ཆུང་མ་རྟོན་མོ་ཞེས་པ་ལ།
བུ་གཉིས་དག་ནི་དུས་གཅིག་ཏུ། མཚེ་མ་ཉིད་དུ་བྱུང་བར་གྱུར།། 3

ཕ་ནི་ལྷ་པ་ཉིད་གྱུར་ཅིང་། ནོར་དང་འཁོར་ནི་ཟད་པའི་ཚེ།
ཤང་ཀུ་མཚམས་བྱིན་ཞེས་བྱ་བ། དེ་དག་མ་ཡི་ཚིགས་ཀྱིས་བསྐྱེད།། 4

མ་ཡི་ཚིག་གིས་ཆོམ་རྐུན་ལ། རབ་ཞུགས་བྱིས་པ་དེ་དག་གིས།
ཁྱིམ་ཟླ་དག་གི་ནོར་ཆུང་དང་། སྣོད་རྣམས་དཔལ་གྱིས་བརླབ་པར་བྱས།། 5

མ་དང་ཕ་ཡི་དུལ་བ་ཡི་ནི་ཉུང་བ་ཉིད་འགྱུར་ཞིང་།
དེ་ཡི་བདང་སྐོམས་ཉིད་ཀྱིས་འདུལ་བ་མིན་པའི་གཡང་ལ་ལྷུང་།
རང་གི་སྐྱེ་བ་སྔོན་བག་ཆགས་དག་དང་འབྲེལ་བ་ལས།
བྱིས་པ་རྣམས་ནི་རིལ་བཞིན་གཞན་གྱི་རང་བཞིན་སྟེན་པར་བྱེད།། 6

पञ्चनवतितमः पल्लवः ।

उत्सार्य्य पापविपुलं तिमिरावतारं
सद्यः प्रकीर्णकरुणाकिरणप्रकाशः ।
दोषापहस्य परितापहरस्य कोऽपि
सन्मार्ग मादिशति बुद्धसहस्ररश्मिः ॥ १ ॥

पुरा पुरे राजगृहे भगवान् वेणुकानने ।
कलन्दकनिवापाख्ये विजहार तथागतः ॥ २ ॥

तस्मिन् पुरे सार्थपते रथदत्तस्य दारकौ ।
अभूतां निश्चिताख्यायां जायायां युगपद्यथा ॥ ३ ॥

तौ सङ्कुसन्धिदत्ताख्यौ याते पितरि पञ्चताम् ।
क्षीणे धने परिजने मात्रा कष्ट्रेण वर्द्धितौ ॥ ४ ॥

तौ मातु र्वचसा बालौ शनकैः प्रतिवेशिनाम् ।
चौर्य्यप्रवृत्तौ स्वल्पार्थभाण्डानां चक्रतुः क्षयम् ॥ ५ ॥

मातुः पितुश्च नियमेन भवन्ति योग्याः
श्वभ्रे पतन्त्यविनये तदुपेक्षयैव ।
पूर्व्वोदितस्वजनवासनयैव विद्धा
बाला स्त्रिया इव परप्रकृतिं भजन्ते ॥ ६ ॥

རིམ་གྱིས་དེ་དག་ཆེར་སྐྱེས་ཏེ། ཆོས་ཀུན་དར་བབ་ཉིད་དུ་གྱུར།
འཇོག་དང་མཚམས་འབིགས་ལ་སོགས་ཀྱིས། གྲོང་ཁྱེར་པ་ཡི་ནོར་རྣམས་བླངས།། 7

དེ་དག་བུ་བ་ཉན་ཉ་ཡིས། ཤེས་ནས་རྒྱལ་པོ་མ་སྐྱེས་དགྲས།
དེ་དག་མ་དང་བཅས་པ་ནི། སྐད་ཅིག་ཉིད་ཀྱིས་གསོད་པར་སྤྲིངས།། 8

གཞན་གྱི་ནོར་གྱིས་གང་ཞིག་ཟ་བྱེད་གང་ཞིག་འཐུང་བར་བྱེད།
བདེ་བའི་བསམ་པས་ཡུལ་གྱི་ལམ་ནི་གང་ཞིག་ཉམས་མྱོང་བྱེད།
མ་དཔྱད་དགའ་བར་བྱེད་པའི་བདེ་ལ་གུས་པ་དེ་ཉིད་ནི།
སྨིན་པར་གྱུར་པ་སྡིག་ནི་ཉམས་བྱེད་མི་ཟད་ཟོང་དག་ཡིན།། 9

ཡུལ་གྱི་བདུད་བས་ཀྱུགས་ཤིང་འཁྲུགས་པ་རྣམས་ཀྱི་ཆགས་པ་གང་།
ཀུ་དང་སྡིག་དང་གསོད་པས་ཐོབ་པའི་ནོར་གྱིས་རབ་བསྐྱེད་པ།
དེ་ནི་ཡོངས་སྨིན་ཀྱང་ལག་བཅད་དང་གསལ་ཤིང་ལ་ཞོན་པས།
ཡོངས་ཟགས་ཁྲག་གི་རྒྱུན་གྱིས་ཕྱི་རོལ་དག་ཏུ་འབྱུང་བར་འགྱུར།། 10

དེ་ནས་གསོད་པའི་འཕྲེང་བས་མཚན། སྔོན་དམར་གོས་ཀྱིས་གཡོགས་དེ་དག།
ལྟ་རུ་འོངས་པའི་སྐྱེ་བོས་བསྐོར། གསོད་པའི་གནས་སུ་ཉེ་བར་སོང་།། 11

བརྩེ་ལྡན་ཀུན་མཁྱེན་གྱིས་མཁྱེན་ནས། རང་ཉིད་ས་དེར་མངོན་ཕྱོགས་ཏེ།
རྗེས་སུ་གཟུང་བའི་བཀའ་དྲིན་གྱིས། བཅིངས་པ་དག་དང་བྲལ་བར་མཛད།། 12

ཀུན་མཁྱེན་བཀའ་ཡིས་དེ་དག་ནི། རྒྱལ་པོས་བདང་ཞིང་སྡིག་པ་གྲོལ།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་བསྟན་པ་ལ། རབ་ཏུ་བྱུང་ནས་དགྲ་བཅོམ་ཐོབ།། 13

क्रमेण वर्द्धमानौ तौ प्रौढ़चौरत्व मागतौ ।
उत्सङ्गसन्धिच्छेदाद्यैः पौराणां जह्रतु र्धनम् ॥ ७ ॥

अजातशत्रुणा राज्ञा चारै र्विज्ञाय तत्क्रियाम् ।
विसृष्टौ वध्यवसुधां तौ माचा सहितौ क्षणात् ॥ ८ ॥

यद् भुज्यते परधनेन निपीयते यत्
सौख्याशया विषमवर्त्म विगाह्यते यत् ।
तस्याविचाररमणीयसुखोदरस्य
प्राणावसानपणदारुण एव पाकः ॥ ९ ॥

संजायते विषयपानमदाकुलानां
य श्चौर्य्यदारुवधलब्धधनेन रागः ।
निर्यात्यसौ परिणतः करपादपात-
शूलाधिरोहणपरिस्रुतरक्तपूरैः ॥ १० ॥

तत स्तौ वध्यमालाङ्कौ नीलरक्ताम्बरावृतौ ।
प्रेक्षागतजनाकीर्णां वध्यस्थान मुपागतौ ॥ ११ ॥

ज्ञात्वा दयावान् सर्व्वज्ञः स्वय मभ्येत्य तां भुवम् ।
प्रसादानुग्रहेणैव चक्रे विगतबन्धनौ ॥ १२ ॥

सर्व्वज्ञस्याज्ञया राज्ञा तौ त्यक्तौ मुक्तपातकौ ।
प्रव्रज्यया भगवतः शासनेऽर्हत्त्व मापतुः ॥ १३ ॥

ཡེ་ཤེས་འཁོར་འབར་དེ་དག་ནི། མ་དང་བཅས་པ་མཐོང་གྱུར་ནས།
དགེ་སློང་གིས་དྲིས་དགེ་མཚན་ལས། དེ་གནས་བདེ་བར་གཤེགས་པས་གསུངས།། 14

སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བ་དག་ལ་ཡང་། འདི་དག་བདག་གིས་རབ་ཏུ་བསྐྱངས།
དེ་ཚེ་འདི་དག་ཉིད་ཀྱི་མ། སྟག་མོ་འཇིགས་རུང་གཟུགས་ལྡན་གྱུར།། 15

དེ་དུས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ནི། བརྩེ་བས་ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་གཉེན།
སྙིང་རྗེའི་རྟུལ་ཞེས་བྱ་བ་ཡི། ས་སྐྱོང་བུར་ནི་ང་ཉིད་གྱུར།། 16

ནམ་ཞིག་བཀྲེས་པས་ཉེན་པ་ཡིས། ཕྲུག་གུ་འདི་དག་ཟ་རྩོམ་པའི།
སྟག་མོ་དེ་ནི་རང་གི་ལུས། བྱིན་ནས་བདག་གིས་རྣམ་པར་བཟློག།། 17

ལས་ཀྱི་ལྷག་མས་ད་ལྟ་ཡང་། འདི་དག་ཆོས་ཀུན་ཉིད་དུ་གྱུར།
སྟག་མོ་དེ་ནི་མ་འདི་སྟེ། འདི་དག་བདག་གིས་རང་དུ་བསྐྱངས།། 18

ཞེས་གསུངས་བཅོམ་ལྡན་ཐུགས་རྗེ་ཡི། རྒྱ་མཚོ་འབྱུང་པོ་ལ་དགོངས་པ།
དགེ་སློང་ཚོགས་དང་བཅས་པ་དག། རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་དུ་རབ་ཏུ་གཤེགས།། 19

བདུད་རྩི་རོ་ཡི་ཆར་བཞིན་མི་འདོད་སེལ།
འདོད་པ་དམ་པའི་གཟིགས་པ་གང་ལྡང་བས།
ལྡང་བ་རྣམས་ཀྱང་བསོད་ནམས་ཀྱིས་མཐོ་བའི།
བསྔགས་པར་འོས་པར་མཛད་པ་རྒྱལ་གྱུར་ཅིག།། 20

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་ བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་སྟག་མོ་འི་རྟོགས་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དགུ་བཅུ་ཙ་ལྔ་པའོ།།

जननीसहितौ दृष्ट्वा तौ ज्ञानविभवोज्ज्वलौ ।
तत्कथाकौतुकात् पृष्टो भिक्षुभिः सुगतोऽभ्यधात् ॥ १४ ॥

मयैव रक्षितावेतौ पूर्व्वस्मिन्नपि जन्मनि ।
एतयो र्जननी व्याघ्री घोररूपा तदाभवत् ॥ १५ ॥

तस्मिन् काले कृपाबन्धु र्बोधिसत्त्वः शरीरिणाम् ।
अहं करुणरेखाख्यः क्षितिपालसुतोऽभवम् ॥ १६ ॥

कदाचिदेतौ क्षुत्क्षामा पोतकौ भोक्तु मुद्यता ।
स्वशरीरं मया दत्त्वा व्याघ्री सा विनिवारिता ॥ १७ ॥

अद्य तावेव चौरत्वं कर्म्मशेषादुपागतौ ।
मया संरक्षितौ व्याघ्री माता सैवेय मेतयोः ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा करुणासिन्धु र्भगवान् भूतभावनः ।
भिक्षुसङ्घेन सहितः प्रययौ जेतकाननम् ॥ १९ ॥

अमृतरसदृष्टि रिष्टा दृष्टि
रनिष्टापहा सतां जयति ।
पतितेव पतित मपि या
कुरुते पुण्योन्नतिं श्लाघ्याम् ॥ २० ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
व्याघ्र्यवदानं पञ्चनवतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་དགུ་བཅུ་རྩ་དྲུག་པ།

ཟླ་བའི་ཀུན་དགའ་ཉི་མའི་རབ་གསལ་དང་།
མི་ཡི་ཚ་བ་རླུང་གི་མགྱོགས་པ་དང་།
སྙིང་རྗེ་ལ་དགའ་སྐྱེ་བོ་ཆེ་རྣམས་ཀྱིས།
གཞན་ལ་ཕན་པ་ལྷན་སྐྱེས་རང་བཞིན་ཡིན།། 1

འཕགས་རྒྱལ་སྐྱིད་མོས་ཚལ་དུ་སྔོན། རྒྱལ་པོ་དཔལ་ལྡན་འཆར་བྱེད་ནི།
རྩེ་དགའི་རོ་དང་ལྡན་པ་དག། བཙུན་མོར་བཅས་པ་རྣམ་པར་གནས།། 2

དེ་ཡི་མཛེས་མ་ཨུཏྤ་ལ་མིག། མི་དོག་འཕྲུ་ལ་ཆགས་པ་རྣམས།
ཐུབ་པ་བརྒྱ་ཕྲག་ལྔ་རྣམས་ནི། འདོད་དགར་ཞིང་བ་དག་གིས་མཐོང་།། 3

ཕྲག་དོག་ཁྲོ་བ་སྐྱོང་བ་དེས། དགའ་མར་མིག་བཀོད་དེ་དག་རྣམས།
ཀྲང་ལག་བཅད་པའི་ཁྲག་གིས་ནི། འདམ་ལ་ཉལ་བ་དག་ཏུ་བྱས།། 4

མི་བཟད་གནད་བཅད་ཚོ་ང་ཡིས། གཟིར་ཅིང་ཚོ་ང་ལྡན་དེ་དག།
སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་ཐུགས་རྗེ་ཡིས། སྨྲས་པའི་སྤྱན་གྱིས་རབ་ཏུ་གཟིགས།། 5

དེ་ཡི་གཟིགས་པ་བདུད་རྩི་ཡི། ཆར་ལྷུར་རེག་པས་དེ་དག་རྣམས།
སྡིག་བཟུང་ཀྲང་ལག་ལེགས་པར་འཕྲུར། གདུང་བ་དང་བྲལ་ཡང་དག་ལངས།། 6

षण्णवतितमः पल्लवः ।

ह्लादः शशाङ्कस्य रवेः प्रकाशः
तापः कृशानोः पवनस्य वेगः ।
परोपकारः करुणारतानां
महाजनानां सहजः स्वभावः ॥ १ ॥

उद्याने केलिरसिकः श्रीमानुदयनः पुरा ।
अवन्तिविषये राजा विजहार वधूसखः ॥ २ ॥

तस्य पुष्पोच्चयासक्ताः कान्ताः कुवलयेक्षणाः ।
यदृच्छयागतैं दृष्ट्वा मुनीनां पञ्चभिः शतैः ॥ ३ ॥

तान् प्रियान्यस्तनयनानीर्ष्यामन्युपरायणः ।
स चक्रे पाणिचरणच्छेदास्तृपङ्कशायिनः ॥ ४ ॥

तानार्त्तनादिन स्तीव्रमर्म्मच्छेदव्यथातुरान् ।
ददर्श भगवान् बुद्धः करुणास्निग्धलोचनः ॥ ५ ॥

तद्दृष्ट्यामृतदृष्ट्येव स्पृष्टा स्ते ध्रुतजीविताः ।
संश्लिष्टपाणिचरणाः समुत्तस्थु र्गतव्यथाः ॥ ६ ॥

དེ་ནས་རབ་རྫོགས་དེ་དག་ལ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཆོས་བསྟན་མཛད།
གང་གིས་མྱུར་དུ་དེ་དག་རྣམས། ཕྱིར་མི་འོང་འབྲས་དར་བ་ཐོབ།། 7

དེ་མཐོང་དགེ་སློང་མཚར་བཅས་པས། དྲིས་ཤིང་བཅོམ་ལྡན་རྒྱལ་བ་ཡིས།
གསུངས་པ་སྔོན་ཡང་འདི་དག་རྣམས། བདག་གིས་བརྩེ་བ་ཉིད་ཀྱིས་བཟུང་།། 8

ཝ་ར་ཎ་སི་དག་ཏུ་སྡོད། རྒྱལ་པོ་ཚངས་བྱིན་དག་གིས་ནི།
འབྱེད་བྱེད་སྡིག་པ་བྲུས་པ་ཡིས། བློན་པོ་ལྔ་བརྒྱ་ངེས་པར་བསྐྱད།། 9

རྒྱལ་པོའི་འཇིགས་པས་ཡང་དག་གདུང་། སྤ་ངམ་ལམ་དུ་འགྲོད་དེ་དག།
སོ་ཀ་གྲིབ་མ་ཆུ་མེད་པར། མི་བཟད་སྐོམ་པས་ལྷུང་བར་གྱུར།། 10

བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་གཉིས་འཕྲུང་ཚེ། བཟང་པོ་ཞེས་པས་དེ་དག་མཐོང་།
དེ་དག་ཚོ་ངའི་མདངས་ཕྲུག་ནས། སྙིང་རྗེས་གདུང་བ་དང་བཅས་གྱུར།། 11

ཆུ་དང་ཟ་བ་འབྲས་སྟེར་དེས། རིང་པོ་རིང་པོ་དག་ནས་ཆུ།
ལག་པ་ཤིན་ཏུ་ཆེ་བས་བླངས། དེ་དག་སྐོམ་པ་དང་བྲལ་བྱས།། 12

དེ་ཡིས་དགའ་བ་རྟག་ཏུ་ནི། སྲོག་གི་བྲུངས་དག་ངེས་པར་བསྟན།
རྒྱ་ཆེ་ངལ་བར་རབ་ཞི་བ། དེ་དག་དེར་ནི་ངལ་བསོས་ཐོབ།། 13

དེ་ནས་དུས་ཀྱིས་སོ་ལྡན་པ། ལུས་ནི་བཏང་བ་དེ་ཉིད་ཀྱིས།
ལུས་དག་སྤངས་ནས་དེ་དག་གིས། ལྷ་ལ་འོས་པའི་མཆོད་པ་བྱས།། 14

तत स्तेषां प्रपन्नानां भगवान् धर्म्मदेशनाम् ।
व्यधाद्ययाशु ते प्रापु रनागामिफलोदयम् ॥ ७ ॥

तद्दृष्ट्वा भिक्षुभिः पृष्टः साश्चर्य्यैं भगवान् जिनः ।
जगाद पूर्व्वं मप्येते दययैव मयोद्धृताः ॥ ८ ॥

वाराणस्यां पुरा राज्ञा ब्रह्मदत्तेन मन्त्रिणाम् ।
शतानि पञ्च भिन्नानां निरस्तानि कृतागसाम् ॥ ९ ॥

ते राजभीत्या सन्त्रस्ता मरुमार्गप्रवासिनः ।
ग्रीष्मे निरुदकच्छाये निपेतु स्तीव्रतृष्णया ॥ १० ॥

विलोक्य बोधिसत्त्व स्तान् भद्रो नाम महाद्विपः ।
तत्प्रलापेषु निर्भिन्नः कारुण्यात् सव्यथोऽभवत् ॥ ११ ॥

दूरात् सलिल मादाय स हस्तेन महीयसा ।
तान् वीततृष्णान् विदधे पयोमूलफलप्रदः ॥ १२ ॥

तेनैव सततं पृष्ठान्निर्दिष्टप्राणधारणाः ।
विश्रान्तिं तत्र ते प्रापुः प्रशान्तविपुलश्रमाः ॥ १३ ॥

कालेन त्यक्तदेहस्य तत स्ते तस्य दन्तिनः ।
कृत्वा शरीरसत्कारं पूजां चक्रुः सुरोचिताम् ॥ १४ ॥

དགོན་པར་བདག་ནི་གླང་པོ་ཡིས། །སྡུག་བསྔལ་དེ་ལས་གློན་པོ་ནི།
སྔོན་བསྐལ་དེ་དག་ད་ལྟ་ཡང་། །ཐུབ་པ་དེ་དག་སྐྱི་འདོད་ལས། ། 15

ཞེས་པ་གསུངས་ནས་བཅོམ་ལྡན་འདས།
སེམས་ཅན་ཀུན་སློབ་བཏུལ་ཞུགས་ཅན།
ཐུབ་པའི་ཚོགས་ཀྱིས་མཆོད་བྱེད་ཅིང་།
རང་གི་དགའ་ཐུབ་ནགས་སུ་གཤེགས། ། 16

སྟོན་པའི་ཐུགས་རྗེ་བདུད་རྩིའི་རྒྱུ་བོ་ནི།
མ་ལུས་བདེ་དང་དགེ་བའི་ཡོ་ཀ་སྟེ།
སྲིད་པའི་རྒྱ་ངས་གདུང་བསིལ་གྲིབ་མ་དང་།
མ་བཞིན་སྐྱོང་པར་བྱེད་པ་རྒྱལ་གྱུར་ཅིག ། 17

ཅེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་གླང་པོའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དགུ་བཅུ་རྩ་དྲུག་པའོ། །

कुञ्जरेण मयारण्ये तदेते मन्त्रिणः पुरा ।
तच्छ्रात् सन्तारिता स्तस्मान्मुनय श्चाद्य वैशसात् ॥ १५ ॥

इत्युक्त्वा भगवान्
सर्व्वसत्त्वसन्तारणव्रतः ।
पूज्यमानो मुनिगणै
र्जगाम स्वं तपोवनम् ॥ १६ ॥

अखिलसुखकुशलदूती
भवमरुसन्तापशीतलच्छाया ।
जयति जननीव जननी
करुणामृतवाहिनी शास्तुः ॥ १७ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
हस्त्यवदानं षण्णवतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་དགུ་བཅུ་རྩ་བདུན་པ།

རྣམ་སྣང་སྐྱོན་གྱི་དུག་གིས་ཡིད་ནི་སྨུན་ཕྱུང་གྱུར་རྣམས་ཀྱིས།
དམ་པ་དག་ལ་གནོད་པ་བསྐྱབ་ལ་འབད་པ་རབ་རྣོ་གང་།
དེ་ཉིད་གལ་ཏེ་དེ་ཡི་ཡོན་ཏན་རབ་འབར་རྗེས་བྱེད་པར།
གྱུར་ནས་སྲིད་འདིར་སྲུ་ཞིག་རྒྱ་ཆེར་གནོད་དང་ལྡན་པ་གྱུར༎ 1

རྒྱལ་བ་རྒྱལ་པོ་འི་ཁབ་དང་ནི། འོད་མའི་ཚལ་ན་རྒྱུ་བ་ན།
ལྷས་བྱིན་གྱིས་ནི་སྣང་བས་སྡོན། རབ་ཏུ་བསྐུལ་བའི་དཀའ་ཐུབ་པ༎ 2

དེ་ཡིས་བྱིན་པའི་མཚོན་ཆ་ཅན། སྨིན་འཁྲུག་འཇིགས་སུ་རུང་བ་བཞིན།
ཁྲོ་བས་དལ་བ་ཉམས་གྱུར་པའི། རྩོམ་པ་ཆེན་པོས་མངོན་པར་གཙེས༎ 3

བརྒྱ་ཕྲག་ལྷ་ཡི་དཀའ་ཐུབ་ཅན། དེ་དག་གིས་འཕངས་མཚོན་གྱི་ཆར།
བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་སྐུ་ལ་ནི། པདྨ་ཨུཏྤལ་ཚོགས་ཉིད་གྱུར༎ 4

དམ་པ་རྣམས་ལ་རྣོན་པོ་ཡི། མཚོན་ཡང་འཇམ་པ་སྟེན་བྱེད་དེ།
སྣང་བའི་དུག་གིས་བྱུགས་གྱུར་པ། སྡིག་པ་ཅན་གྱི་སེམས་ནི་མིན༎ 5

སྟོན་པའི་སྐུ་ནི་སྤྲིབ་བྱེད་པ། ནོར་བུའི་རང་བཞིན་ཁང་པ་བརྩིགས།
ནམ་མཁའི་འོད་ནི་རབ་འཕྲུངས་ཏེ། ལྷ་བ་དག་ནི་བཀློག་མ་གྱུར༎ 6

དེ་ནས་དཀའ་ཐུབ་ཅན་དེ་དག། ངལ་ཞིང་ངོ་ཚ་བཞིན་དུད་པས།
བཟོད་པའི་རྒྱ་མཚོ་རབ་དང་བས། སྟོན་པ་ཡི་ནི་ཞབས་ལ་བཏུགས༎ 7

सप्तनवतितमः पल्लवः ।

विद्वेषदोषविषदूषितमानसानां
यत् साधुबाधनविधौ निशितः प्रयत्नः ।
स्याच्चेत्तदुज्ज्वलगुणानुनतौ स एव
तत् को भवेत् पृथुपराभववान् भवेऽस्मिन् ॥ १ ॥

जिने राजगृहोपान्ते वेणुविजनचारिणि ।
विद्वेषा द्देवदत्तेन प्रेरिता स्तापसाः पुरा ॥ २ ॥

भ्रूभङ्गभीमवदना स्तद्दत्तविविधायुधाः
अभ्याद्रवन् सुसंरब्धाः क्रोधविध्वस्तसंयमाः ॥ ३ ॥

पञ्चभि स्तापसशतैः क्षिप्ता स्तेऽस्त्रप्रवृष्टयः ।
ययु र्भगवतः काये कमलोत्पलजालताम् ॥ ४ ॥

निशितान्यपि शस्त्राणि श्रयन्ते यत् सुमार्दवम् ।
विद्वेषविषदिग्धानि नतु चित्तानि पापिनाम् ॥ ५ ॥

प्रादुरासीन्मणिमयं कूटागारं नभःप्रभम् ।
शरीरच्छादनं शास्तु र्न तु दृष्टिनिवारणम् ॥ ६ ॥

ततस्ते तापसाः श्रान्ता लज्जावनमिताननाः ।
निपेतुः पादयोः शास्तुः क्षमासिन्धोः प्रसादिनः ॥ ७ ॥

བཅོམ་ལྡན་གྱིས་ཀྱང་བུ་ལ་བཞིན། རབ་དུ་དང་ལྡན་དེ་དག་ལ།
གཏོད་བྱེད་ལ་ཡང་ཁྲོ་མེད་པས། ཆོས་ནི་རབ་དུ་བསྟན་པ་མཛད། 8

ཆེན་པོ་འི་ནི་འབྲུགས་པའི་རྣམ་འཕྲུལ་མེད་པ་ཡིས།
བདེ་དང་ཞི་བ་ལ་བརྟེན་བསོད་ནམས་བཟོད་པ་དག་གི་རྒྱུ།
དྲི་མེད་བསིལ་བ་དག་དང་ལྡན་པ་ཕན་སེན་འཇུག་པ་མིན།
དེ་ཐོབ་ཁྲོ་བའི་རྡུལ་གྱིས་རྟོག་པ་དག་དུ་ཡོངས་མི་འགྱུར།། 9

སྔོན་པས་ཆོས་བསྟན་རབ་བྱུང་གིས། བསམ་པ་རབ་ཕྱིས་དེ་དག་གིས།
ཟག་པ་ཀུན་ལས་རྣམ་གྲོལ་བའི། དགྲ་བཅོམ་ཉིད་ནི་རབ་དུ་ཐོབ།། 10

སྐབས་དེར་འོངས་པའི་དགེ་སློང་ནི། གདམ་དེ་ཐོས་ཤིང་ངོ་མཚར་དང་།
བཅས་པས་འདི་ཅི་ཞེས་པ་དྲིས། རྒྱལ་བས་དེ་དག་ལ་གསུངས་པ།། 11

སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བ་དག་ལ་ཡང་། ཤིན་དུ་གནོད་བྱས་འདི་དག་ལ།
རྣམ་འགྱུར་མེད་པ་བདག་གིས་ནི། རབ་དུ་དང་བས་ངེས་པར་བཟུས།། 12

རྒྱ་མཚོ་དག་དུ་འགྲོ་བ་ལ། གཟིངས་ནི་ཆག་པར་གྱུར་ཚེ་སྔོན།
འདི་དག་ཀ་ཤིའི་ཡུལ་སྐྱེས་པའི། ཚོང་པས་སྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཐོབ།། 13

དེ་ལ་བདག་ནི་རུས་སྦལ་གྱིས། རྒྱབ་དུ་བཀོད་ནས་རབ་དུ་བསྒྲལ།
འཚོ་བ་ཐོབ་ཅིང་ཕ་རོལ་དུ། ཕྱིན་ནས་ངལ་གསོ་རྣམ་པར་བསྡེན།། 14

རབ་དུ་བསྒྲལ་བས་ཡོངས་ངལ་དེ། བདག་ནི་སྐད་ཅིག་གཉིད་ལོག་ཚེ།
བདག་ཤ་ཟ་འདོད་དེ་དག་རྣམས། ཐམས་ཅད་བདག་ནི་གསོད་པར་བརྩོན།། 15

भगवानपि पुत्राणामिव तेषां प्रसादिनाम् ।
निकारेणापि निर्मन्यु विदधे धर्म्मदेशनाम् ॥ ८ ॥

अक्षोभविभ्रमसुखं शम माश्रितानि
पुण्यक्षमासलिलनिर्म्मलशीतलानि ।
नो मानसानि महता महितप्रवृत्त-
दुर्वृत्तिमन्युरजसा कलुषीभवन्ति ॥ ९ ॥

धर्म्मदेशनया शास्तुः प्रव्रज्योन्मार्जिताशयाः ।
ते सर्व्वाश्रमनिर्म्मुक्ता महत्त्वं प्रतिपेदिरे ॥ १० ॥

अत्रान्तरे समायातै भिक्षुभिः श्रुततत्कथैः ।
किमेतदिति साश्चर्य्यैः पृष्ट स्तानवदज्जिनः ॥ ११ ॥

कृतापकाराः सुतरां पूर्व्वस्मिन्नपि जन्मनि ।
मयैते निर्व्विकारेण प्रसादादवलोकिताः ॥ १२ ॥

एते समुद्रयात्रायां वणिजः काशिदेशजाः ।
भग्ने प्रवहणे प्रापुः पुरा जीवितसंशयम् ॥ १३ ॥

कच्छपेन मया तत्र पृष्ठ मारोप्य तारिताः ।
पार मासाद्य विश्रान्तिं भेजिरे लब्धजीविताः ॥ १४ ॥

तत्तारणपरिश्रान्ते मयि निद्रावृते क्षणम् ।
मन्मांसाहारकामा स्ते सर्व्वे मां हन्तु मुद्ययुः ॥ १५ ॥

ཧྲོ་ཡི་ཚར་ཆེན་རབ་སྤྲོས་ཀྱང་། ཁྲོག་པ་རབ་ཏུ་བརྟན་ལྡན་ཞིང་།
གྲོང་ཁྱིའི་དབྱིབས་ཅན་བདག་གིས་ནི། ལུས་ནི་ནམ་ཡང་ཉམས་མ་གྱུར།། 16
དེ་ནས་བཀྲེས་པས་ཡོངས་ཉེན་དེ། མཐོང་ནས་སྙིང་རྗེས་བདག་འཁྲུགས་པས།
རང་གིས་དེ་དག་རྣམས་ལ་ལུས། བྱིན་ནས་བྱ་བ་བྱས་ཉིད་གྱུར།། 17
སྔོན་གྱི་ཚོང་པ་དེ་དག་དེང་། དཀའ་ཐུབ་ཅན་ནི་འདི་དག་གྱུར།
གནོད་པ་བྱས་ཀྱང་སྙིང་རྗེ་ཡིས། བདག་གིས་དགེ་བ་དག་ལ་བཀོད།། 18
དེ་དག་སྔོན་ཚེ་བདག་ཉིད་ཆེ། སྟོན་པ་འོད་སྲུངས་བསྟན་པ་ལ།
རབ་བྱུང་ཐོབ་ནས་དེ་ཡིས་འབྲས། ད་ལྟ་སྐལ་ལྡན་དག་ཏུ་སྐྱེས།། 19
དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པ་འདི། ཐོས་ནས་དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་ནི།
དེ་ཡི་བཟོད་པ་ས་གཞི་བཞིན། ཁྱར་དག་བཟོད་པ་རབ་ཏུ་བསྔགས།། 20

གང་ཞིག་ཚུལ་ཁྲིམས་དྲི་མེད་བསིལ་བའི་རྒྱ་ལྡན་སེམས་ཅན་བསམ་པ་དབྱུགས་འབྱིན་བྱེད།
ཁོན་གྱི་རྩུལ་ནི་རབ་ཏུ་དག་བྱེད་བཟོད་པའི་རྒྱ་བོ་སེམས་ལ་རྟག་གནས་པ།
དེ་དག་ཀློག་དཀའ་དགྲ་ཡི་གནོད་ལ་ཁྲོ་བའི་མེ་འབར་འབྲིང་བས་རྣམ་བསྐྱད་པས།
བསྐྲག་པར་རབ་བསྐྱེད་རྒྱ་ཆེར་གདུང་བས་ཡོངས་འདྲིས་རྣམ་འགྱུར་དག་ཏུ་འགྱུར་མ་ཡིན།། 21

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་རྩུས་སྤྲུལ་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་དགུ་བཅུ་རྩ་བདུན་པའོ།

मद्गुत्स्पृष्टाश्मदृष्स्यापि महत्या पिण्डिताकृतेः ।
काये दृढकपाटस्य न मे काचिदभूत् क्षतिः ॥ १६ ॥

तत स्तान् क्षुत्परिक्षामान् दृष्ट्वाहं करुणाकुलः ।
स्वयं तेभ्य स्तनुं दत्त्वा प्रयातः कृतकृत्यताम् ॥ १७ ॥

तएते वणिजः पूर्व्वं मम तापसतां गताः ।
कृतागसोऽपि कारुण्यात् प्रापिताः कुशलं मया ॥ १८ ॥

ते शास्तुः शासने पूर्व्वं काश्यपस्य महामुनेः ।
प्रव्रज्यां प्राप्य सञ्जाता स्तत्फलस्याद्य भागिनः ॥ १९ ॥

तथागतेन कथितं श्रुत्वैतद् भिक्षवः क्षमाः ।
प्रशशंसुः परन्तस्य क्षमामिव भरक्षमाम् ॥ २० ॥

येषां निर्म्मलशीलशीतलजला सत्त्वाशयाश्वासिनी
नित्यं वैररजःप्रमार्जननदी क्षान्तिः स्थिता चेतसि ।
दुर्वारारिनिकारकोपदहनज्वालावलीविप्लव-
क्षावीकृतपृथुव्यथापरिचितां मायान्ति ते विक्रियाम् ॥२१॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
कच्छपावदानं सप्तनवतितमः पल्लवः ॥ ० ॥

ཡལ་འདབ་དགུ་བཅུ་རྩ་བརྒྱད་པ།

རིགས་ཀྱི་རི་བོ་དག་གི་རྩེ་མོ་ཤིན་ཏུ་མཐོ་བ་དང་།
དམའ་ཞིང་མི་གཙང་ཚོགས་དང་ཕྱུག་དར་ཁྲོད་ཀྱིས་གང་བར་ཡང་།
ཉིན་མོ་འདྲེན་པའི་སྣང་བ་མཚུངས་པར་ཕན་བྱེད་བདག་ཉིད་ཅན།
འདི་ནི་བྱེ་བྲག་མེད་པར་འཇུག་པར་ངེས་པར་བབ་པ་ཉིད།། 1

གྲོང་ཁྱེར་རྒྱལ་པོའི་ཁབ་ཏུ་སྔོན། འོད་མའི་ཚལ་བཞུགས་རྒྱལ་བ་ལ།
སྤུ་གེའི་ཚོ་ན་བཀྲིས་པ་ཡིས། ཡོངས་ཉིན་གྲུང་རྣམས་སྐྱབས་སུ་སོང་།། 2

སྙིང་རྗེའི་དཔག་བསམ་ཀང་འཕྲུང་གིས། མངོན་པར་འདོད་པའི་ཟས་བྱིན་ནས།
གནས་སྐབས་ངན་པ་ཞི་བའི་སླད། དེ་དག་རྣམས་ལ་ཆོས་བསྟན་མཛད།། 3

བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་རྫས་བཟུང་གིས། དགེ་བ་རྒྱས་པ་ཐོབ་པ་རྣམས།
དགྲ་བཅོམ་གནས་ནི་ཐོབ་གྱུར་ནས། འགྲོ་བས་མཆོད་བྱ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 4

དམན་པ་ཤིན་ཏུ་མཐོ་གྱུར་པ། དེ་མཐོང་གྲོང་ཁྱེར་གནས་པ་རྣམས།
རྟག་ཏུ་དེ་དག་རིགས་ལ་ནི། སྨོད་ཅིང་ཕྲག་དོག་ལྡན་པར་གྱུར།། 5

ཀྱེ་མ་དག་པའི་བསྟན་པ་ལ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་བླ་གློའི་གྲུད།
འོས་མིན་རྣམས་ལ་དགྲ་བཅོམ་གནས། ངེས་པར་བསྟན་ཅེས་དེ་དག་སྨྲ།། 6

अष्टनवतितमः पल्लवः ।

अत्युन्नतेषु शिखरेषु कुलाचलानां
निम्नेषु चाशुचिचयावकरोत्करेषु ।
आलोक एष निपतत्यविशेषवृत्त्या
तुल्योपकारमहिमा दिननायकस्य ॥ १ ॥

जिनं वेणुवनासीनं पुरे राजगृहे पुरा ।
दुर्भिक्षे क्षुत्परिक्षामा मल्लाः शरण माययुः ॥ २ ॥

दत्त्वाभिमत माहारं करुणाकल्पपादपः ।
दुर्दशाशान्तये तेषां विदधे धर्मदेशनाम् ॥ ३ ॥

अनुग्रहाद् भगवतः संप्राप्तकुशलोदयाः ।
अर्हत्पदं समासाद्य ते जगत्पूज्यतां ययुः ॥ ४ ॥

नीचानभ्युन्नतिं यातान् दृष्ट्वा तान् पुरवासिनः ।
बभूवु र्मत्सरा स्तेषां नित्यमात्यपवादिनः ॥ ५ ॥

अहो भगवतां स्वेच्छमल्लानां मुखशासनम् ।
अर्हत्पद मनर्हाणां निर्दिष्ट मिति ते ऽवदन् ॥ ६ ॥

ཆུང་ངུ་འབྱོར་བ་མི་ཆུང་ལ། གསར་པའི་སྒྲོ་དགའ་མི་བཟོད་པའི།
སྐྱེ་བོ་ངོ་ཚ་སྐྱེད་བྱེད་པའི། སྐྱེ་བ་མཆོག་ཏུ་རབ་གསལ་བྱེད། ། 7

རྒྱལ་བའི་བཀའ་ཡིས་སྐྲ་མ་སྐྱན། གླིང་དུ་མཁའ་ལས་འགྲོ་འོང་བྱས།
མཐུ་ཡིས་གྲུད་ནི་དེ་དག་རྣམས། མི་བདག་སྐྱེ་བོར་བཅས་པས་མཆོད། ། 8

དེ་དག་གྲོང་པས་ཕྱུག་བྱས་དེ། རབ་དང་བཀུར་བྱས་དེ་དག་རྣམས།
རང་ཡོན་ཡོན་དན་མཆོད་འོས་པས། དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱི་མཆོག་ཉིད་གྱུར། ། 9

དེ་ནས་དེ་མཐུས་ཡ་མཚན་པའི། དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་བཅོམ་ལྡན་ལ།
དེ་ཡི་བསོད་ནམས་རྒྱ་མཚན་དྲིས། དེ་ལ་ཐམས་ཅད་མཁྱེན་པས་གསུངས། ། 10

སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བར་ཀྲྀ་ཀི་ཡི། ཡུལ་མཐའི་དཀའ་ཐུབ་ཚལ་དུ་བདག།
མངོན་ཤེས་ལྔ་ལྡན་དཀའ་ཐུབ་ཅན། དགེ་བའི་ངང་ཚུལ་ཞེས་པར་གྱུར། ། 11

དེར་ནི་རྫོང་གི་གྲུད་འདི་དག། སྔོན་ཚེ་ཐུབ་པ་བདག་ཏུ་གྱུར།
བདག་གིས་དགེ་བསྟན་དེ་དག་རྣམས། མངོན་ཤེས་ལྔ་པ་ཉིད་དུ་གྱུར། ། 12

སྐྱེ་བ་འདིར་ཡང་བསོད་ནམས་དེའི། བག་ཆགས་གོམས་པའི་དགའ་བ་ཡིས།
གྲུད་འདི་རྣམས་ནི་འཁོར་བ་ཡི། ཉོན་མོངས་དག་ལས་བདག་གིས་བསྒྲལ། ། 13

འདི་དག་རྣམས་སྔོན་སྔོན་པ་ནི། འོད་སྲུངས་དྲུང་དུ་རབ་བྱུང་སྟེ།
རྒྱལ་པོའི་གནས་སུ་གནས་པར་གྱུར། དེ་ཡི་ད་ལྟ་གྲུད་ཉིད་གྱུར། ། 14

अल्पस्यानल्पविभवं नवोत्साहासहः परम् ।
करोति लज्जाजननं जनो जन्मप्रकाशनम् ॥ ७ ॥

जिनाज्ञया कुरुद्वीपे व्योम्ना कृतगतागतान् ।
प्रभावान्नृपति र्मल्लान् सजन स्तानपूजयत् ॥ ८ ॥

ततः प्रसादिताः पौरै र्मानिताश्च प्रणम्य ते ।
सुगुणै र्गुणवत्पूज्यै र्भिक्षूणामग्र्यतां ययुः ॥ ९ ॥

भिक्षुभि स्तत्प्रभावेन विस्मितै र्भगवांस्ततः ।
तत्पुण्यकारणं पृष्टः सर्व्वज्ञ स्तानभाषत ॥ १० ॥

अभवं काशिदेशान्ते पञ्चाभिज्ञ स्तपोवने ।
अहं कुशलशीलाख्यः पूर्व्वजन्मनि तापसः ॥ ११ ॥

कोटमल्लाश्च तत्रैव बभूवु र्मुनयः पुरा ।
ते मया दिष्टकल्याणाः पञ्चाभिज्ञत्व मागताः ॥ १२ ॥

तत्पुण्यवासनाभ्यासप्रीत्यास्मिन्नपि जन्मनि ।
त एते संसृतिक्लेशान्मल्लाः सन्तारिता मया ॥ १३ ॥

एते प्रव्रजिताः शास्तुः काश्यपस्यान्तिके पुरा ।
बभूवुः कटुकालापा याता स्तेनाद्य मल्लकाः ॥ १४ ॥

ཅེས་པ་གྲོད་རྣམས་དག་གི་ནི། སྐྱེ་བ་སྟོར་བྱུང་བཅོམ་ལྡན་འདས།
ཐམས་ཅད་གཟིགས་པས་གསུངས་པ་དག། ཐོས་ནས་དགེ་སློང་ཡ་མཚན་གྱུར།། 15

གཟར་ཡི་བདག་པོས་སྐང་བས་རྗེས་བཟུང་བས།
སྨན་པའི་ཚོགས་ཀྱི་རྣམ་པར་ཟླུམ་གྱུར་པའི།
འདམ་སྐྱེས་ཚུ་དང་བཅས་པ་རྣམས་དག་ཀྱང་།
མཁས་པའི་ཅོད་པན་དུ་འོས་ཉིད་དུ་འགྱུར།། 16

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་འཁྲི་ཤིང་ལས་དཀའ་ཐུབ་པའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་
པའི་ཡལ་འདབ་དགུ་བཅུ་རྩ་བརྒྱད་པའོ། །

इति प्राग्जन्मवृत्तान्तं मल्लानां सर्व्वदर्शिणा ।
श्रुत्वोदितं भगवता भिक्षवो विस्मयं ययुः ॥ १५ ॥

तिमिरभरनिमीलितानां
सुजमानां विबुधशेखरार्हत्त्वम् ।
अपि भवति पङ्कजानां
आलोकानुग्रहाद् ग्रहाधिपतेः ॥ १६ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
तापसावदान मष्टानवतितमः पल्लवः ॥ ० ॥

ཡལ་འདབ་དགུ་བཅུ་རྩ་དགུ་པ།

ལུས་ཅན་ལུས་དང་དེ་བཞིན་ཡིད་ཀྱིས་ནི།
སྲིད་པའི་རང་བཞིན་ནད་ཆེན་འཁྲོག་བྱེད་པ།
འཇིག་རྟེན་ཀུན་གྱི་འཇིག་རྟེན་ཕ་རོལ་གཉེན།
སངས་རྒྱས་བཅོམ་ལྡན་བདུད་རྩིའི་གཏེར་ཉིད་དོ། 1

མཉན་ཡོད་དུ་སྔོན་བཅོམ་ལྡན་འདས། རྒྱལ་བའི་གཟིགས་པ་བདུད་རྩི་ཡིས།
སྐྱེ་བོ་ནད་ཀྱིས་གཟིར་རྣམས་དང་། དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱང་བསོས་པར་མཛད། 2

མཉེས་ག་ཤིན་གྱི་ནི་ཡ་མཚན་པའི། དགེ་སློང་ཚོགས་ལ་དེས་གསུངས་པ།
སྔོན་གྱི་སྐྱེ་བ་དག་ལ་ཡང་། བདག་གིས་ཁྱོད་རྣམས་བསོས་པར་བྱས། 3

བདག་སྔོན་བཱ་རཱ་ཎ་སིར་ནི། མི་བདག་པདྨ་ཅན་ཞེས་པ།
གཟིར་བ་ཐམས་ཅད་སེལ་ལ་ཆགས། སྐྱེ་རྒུའི་ཕ་དང་མཚུངས་པར་གྱུར། 4

ཉམ་ཞིག་གནམ་གྱི་སྐྱོན་གྱིས་ནི། ཡུལ་དང་དུས་ནི་མི་བཟད་ལས།
གྲོང་པ་རྣམས་ལ་བཟོད་དཀའ་ཡིས། ནད་ནི་རབ་དུ་རྒྱས་པར་གྱུར། 5

སྨན་པ་སྨན་གྱི་ཚོགས་དང་ནི། ཞི་དང་ཤེས་པའི་སྦྱོར་བ་ཡིས།
བདག་གིས་ཕུན་ཚོགས་བསྒྲུབས་བྱས་པ། དེ་དག་བསོས་པ་ཉིད་མ་གྱུར། 6

དེ་དག་ནད་ནི་ཟློག་པ་ལ། ཉ་ཆེན་རོ་ཧི་ཏ་ཞེས་པ།
མཚན་ཉིད་ཤེས་པའི་སྨན་པས་བསྟེན། ཉ་པས་འགའ་ཡང་ཐོབ་མ་གྱུར། 7

नवनवतितमः पल्लवः।

काायिकं हरति मानसं तथा
देहिनां भवमयं महाभयम्।
बुद्ध एव भगवान् सुधानिधिः
सर्व्वलोकपरलोकबान्धवः ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां भगवान् पूर्व्वं रोगाक्रान्तजनं जिनः।
विदधे भिक्षुसङ्घञ्च स्वस्थ मालोकनामृतैः ॥ २ ॥

वात्सल्यविस्मितं सोऽथ भिक्षुसङ्घ मभाषत।
मया यूयं कृताः स्वस्थाः पूर्व्वस्मिन्नपि जन्मनि ॥ ३ ॥

अभवं पद्मकाख्योऽहं वाराणस्यां नृपः पुरा।
सर्व्वार्त्तिहरणासक्तः प्रजानां जनकोपमः ॥ ४ ॥

कदाचिद्दैवदोषेण वैषम्याद्देशकालयोः।
दुःसहः सर्व्वपौराणा मभूद्व्याधिसमुद्भवः ॥ ५ ॥

भिषग्भैषज्यसंभारै र्मयाविहितसम्पदः।
शान्तिस्वस्तिकयोगैश्च न ते स्वास्थ्यं समाययुः ॥ ६ ॥

रोहिताख्यो महामत्स्य स्तेषां रोगनिवृत्तये।
लक्ष्मवैद्यै रादिष्टः कैश्चित् प्राप्तो न धीवरैः ॥ ७ ॥

ཉ་དེ་མེད་པས་སྐྱེ་བོ་རྣམས། སྲོག་ལ་ཐེ་ཚོམ་གྱུར་ཚེ་བདག།
དེ་དག་ཆོ་ངེ་མ་བཟོད་པས། ཕྱུག་བསྟུམ་གྱིས་གཉེར་སྙིང་རྗེ་ལས།། 8
ནད་པ་ཀུན་ལ་ཕན་འདོད་པ། རོ་ཧི་ཏ་ཡི་ཉར་ནི་བདག།
གྱུར་ཅེས་སྨོན་ལམ་བརྟུལ་ཞུགས་ཀྱིས། བ་གམ་ངོས་ནས་ལུས་དག་འཕངས།། 9
གཉེར་བའི་སྨོན་ལམ་དེ་ཡིས་ནི། ཆུ་བོ་བ་ར་དག་གི་ཆུར།
སྐད་ཅིག་གིས་བདག་རོ་ཧི་ཏའི། ཉ་ནི་ཤིན་དུ་ཆེན་པོར་གྱུར།། 10
དེ་ཡི་ཤ་ནི་ཉེར་སྤྱད་བས། གྲོང་ཁྱེར་ན་གནས་དེ་དག་ཀུན།
བདུད་རྩི་ཡིས་ནི་བཀང་བ་བཞིན། འཕྲལ་ལ་བསོས་པ་ཉིད་དུ་གྱུར།། 11
དེ་ཉིད་དགེ་སློང་ཁྱེད་རྣམས་ཏེ། དེ་རིང་བདག་གིས་ནད་ལས་བསྒྲལ།
སེམས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ནད་བསྐྱབས་པས། རྟག་ཏུ་བདག་ནི་ནད་དང་བྲལ།། 12
བདེ་གཤེགས་འཁོར་བའི་ནང་ཀྱིས་ནི། སྨན་པས་དེ་སྐད་གསུང་པ་དག།
དགེ་སློང་བསོས་པ་དེ་དག་གིས། ཐོས་ནས་དགའ་མགུ་རངས་པ་ཐོབ།། 18

ཤིན་དུ་ཆུང་བའི་རྩྭ་དང་མཚུངས་པ་ཡིས།
ལུས་དང་སྲིན་པ་གང་ལ་རྩེ་དགའ་ཅན།
གཞན་ཕན་ཡིད་དང་བྲལ་བ་མིན་རྣམས་ཀྱིས།
སྙིང་སྟོབས་བཅས་པ་ཅི་ཡང་རྣམ་པར་གསལ།། 14

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་པདྨ་ཅན་གྱི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་
ལམ་འདབ་སྟེ་དགུ་བཅུ་རྩ་དགུ་པའོ།

अभावे तस्य मत्स्यस्य जनानां प्राणसंशये ।
मया दुःखार्त्तकारुण्यात् तत्प्रलापासहिष्णुना ॥ ८ ॥

रोहितः स्यामहं मत्स्यः पथ्यार्हः सर्व्वरोगिणाम् ।
प्रणिधानबलेनेति क्षिप्तं हर्म्म्यात्तदा वपुः ॥ ९ ॥

तेनार्त्तिप्रणिधानेन वारायाः सरितोऽम्भसि ।
क्षणेनैवाह मभवं सुमहान् रोहित स्तिमिः ॥ १० ॥

तन्मांसेनोपयुक्तेन सर्व्वे ते पुरवासिनः ।
सहसैव ययुः स्वास्थ्य ममृतेनेव पूरिताः ॥ ११ ॥

त एव भिक्षवो यूय मद्य रोगान्मयोद्धृताः ।
रोगत्राणेन सत्त्वानां सदैवाहं निरामयः ॥ १२ ॥

संसारव्याधिवैद्येन सुगतेनेति भाषितम् ।
स्वस्था स्ते भिक्षवः श्रुत्वा हर्षोत्साहं प्रपेदिरे ॥ १३ ॥

अविरतपरहितमनसां कोऽपि स समत्वविकाशः ।
तनुरपि तनुतृणतुलया दत्तो यत्र— —विलासः ॥ १४ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
पद्मकावदानं नवनवतितमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱ་ཕྲམས་པ།

གང་གི་བསམ་པར་ཟླ་མེད་བྱང་ཆུབ་འདོད།
བདུད་རྩིའི་ཡོ་ཀ་དང་པོ་ཟླ་ཚོ་བཞིན།
བསོད་ནམས་ཀྱིས་ནི་གསར་དུ་འཇུག་བྱེད་པ།
སྙིང་སྟོབས་རྒྱ་མཚོ་སྲུ་ཞིག་དེར་ཕྱུག་འོས།། 1

རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་བཞུགས་རྒྱལ་བ་ལ། དཔལ་ལྡན་ཀོ་ས་ལ་ཡི་དབང་།
གསལ་རྒྱལ་དགེ་མཚན་ལ་ཆགས་ཤིང་། རབ་ཏུ་བཏུད་པས་སྟོན་ཞུས་པ།། 2

ཁྱོད་ཀྱི་ཡང་དག་རྫོགས་པ་ཡི། བྱང་ཆུབ་བག་ཆགས་དང་པོ་ནི།
སྟོན་གྱི་སྐྱེ་བ་གང་ལས་སྐྱེས། འོད་ཟེར་རྒྱ་ཆེ་བཅོམ་ལྡན་གསུངས།། 3

ས་བདག་གིས་འདི་དྲིས་དེ་ལ། ཆེམས་ཀྱི་འོད་ཟེར་ཡིད་ཀྱི་རྫིང་།
གཙང་མའི་ངང་པའི་འཕྲེང་སྟོན་ཅིང་། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སྨྲར་གསུངས་པ།། 4

གྲོང་ཁྱེར་འོད་ལྡན་དག་ཏུ་སྔོན། རབ་གསལ་ས་བདག་གདེར་དུ་ནི།
གང་ཚེ་བདག་གྱུར་དེ་ཚེ་བདག། རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་བློ་གྲོས་གྱུར།། 5

གླང་པོ་ཆགས་ལྡན་གླང་མོ་ལ། དགའ་བའི་ཞགས་པས་རབ་ཏུ་དྲངས།
ནགས་སུ་འཁྲམ་ནས་གང་གི་ཚེ། དེ་ཚེ་ཉེ་བར་འོངས་གྱུར་པ།། 6

शततमः पल्लवः ।

सत्वोदधिः कोऽपि स वन्दनीयः
करोति पुण्यै स्मृताग्रदूतौ ।
यस्याश्रयेऽनुत्तरबोधिवाञ्छा
शीतांशुलेखेव नवावतारम् ॥ १ ॥

जिनं जेतवनासीनं पप्रच्छ प्रणतः पुरा ।
कौतुकप्रणयी श्रीमान् कोशलेन्द्रः प्रसेनजित् ॥ २ ॥

भगवन् कथ्यतां कस्मिन् प्रथमं ते पृथुद्युतेः ।
पूर्व्वंजन्मनि संजाता सम्यक् संबोधिवासना ॥ ३ ॥

भगवानिति भूपेन पृष्ट स्तं प्रत्यभाषत ।
शुचिमानसहंसालीं दर्शयन् दशनद्युतिम् ॥ ४ ॥

पुर्य्यां पुरा प्रभावत्यां प्रभासो भूभुजां निधिः ।
यदाह मभवं सम्यक् बोधिधी र्मे तदाभवत् ॥ ५ ॥

करिणीप्रेमपाशेन समाकृष्टः स कुञ्जरः ।
यदा विगाह्य गहनं रागी पुनरुपागतः ॥ ६ ॥

དེ་ཚེ་གླང་ཆེན་སྣ་ཆེར་པོ། ཀུན་དུ་བགྲོད་ཀྱིས་དེ་ལ་སྨྲས།
ས་བདག་བདག་གི་བསླབ་པ་ཡིས། གླང་པོ་དག་ནི་རབ་ཏུ་འོངས།། 7

འདོད་ཆགས་ཀྱིས་ནི་ཡང་དག་བྲངས། དུལ་བ་བརྗེད་པའི་གླང་པོ་འདི།
ཡོན་དན་དཀྱིལ་འཁོར་ཡིད་བརྟན་པ། ངེས་པར་ཉམ་འགྱུར་དག་དུ་གྱུར།། 8

ལུས་འཛིན་འདོད་ཆགས་དྲན་པས་རབ་བསྐྱེད་དྲན་འཕྲོག་བརྟན་པ་འཛོམས་པ་ནི།
མི་དང་ཉི་མ་མིན་པས་གདུང་ཞིང་དམོད་པ་མིན་པས་དཔྱལ་བར་བྱེད།
ལོང་དང་མཚན་མོ་མིན་པའི་རབ་རིབ་ལག་འགྲོ་འི་ཇུས་མིན་མི་བཟད་དུག།
ཆང་མིན་རྨོས་བྱེད་དམའ་མིན་ལྷུང་བྱེད་འབྱུང་པོ་མིན་པའི་སྨྱོ་བྱེད་དོ།། 9

ཞེས་པ་ཀུན་བགྲོད་ཀྱིས་སྨྲས་ཚེ། དེ་ལ་མི་བདག་གིས་སྨྲས་པ།
ཆགས་བྲལ་ཡུལ་ལ་ཆགས་མེད་པ། འགའ་ཞིག་འཁོར་བ་ན་ཡོད་དམ།། 10

ཞེས་པ་ས་ཡི་བདག་པོས་དྲིས། ཀུན་དུ་བགྲོད་ཀྱིས་དེ་ལ་སྨྲས།
འགྲོ་བ་འདི་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས། འཁོར་བ་མེད་པ་འདོད་ཆགས་བྲལ།། 11

དམ་པའི་སྤྱོད་དང་ཡོན་དན་ཅན། སེམས་ཅན་ཀུན་ལ་ཕན་མཛད་པ།
རྒྱལ་པོ་སངས་རྒྱས་སྒྲོན་མ་ཡིས། འོད་ཀྱིས་ཐམས་ཅད་གསལ་བར་མཛད།། 12

དེ་དག་ཐོས་ནས་ས་ཡི་བདག། མཆོག་ཏུ་རབ་དང་སེམས་ལྡན་པའི།
སྙིང་ལ་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི། བག་ཆགས་འཕྲལ་ལ་རབ་ཏུ་འབྲུངས།། 13

तदा हस्तिमहामात्रः संयात स्त मभाषत ।
प्रत्यायातः क्षितिपते कुञ्जरः शिक्षया मम ॥ ७ ॥

एष रागसमाकृष्टः कायविस्मृतसंयमः ।
जगाम विक्रियां हस्ती विस्रम्भगुणमण्डलः ॥ ८ ॥

अहृर्य्याग्नि स्तापः क्षतघृति रशापश्च निरयः
तमश्चानुत्क्रान्त्यं विषमविष मद्रव्यभुजगम् ।
असह्यं क्लीवत्वं निपतन मनिम्नं तनुभृता-
मभूद्योन्मादः स स्मरजनितरागः स्मृतिहरः ॥ ९ ॥

संयातेनेति कथिते नृप स्तं प्रत्यभाषत ।
अप्यस्ति रागः संसारे कश्चिद्विषयनिस्पृहः ॥ १० ॥

इति पृष्टः क्षितीशेन संयात स्त मभाषत ।
निःसंसारा जगत्यस्मिन् वीतरागा स्तथागताः ॥ ११ ॥

सत्याचार्या गुणवतां सर्व्वसत्त्वोपकारिणाम् ।
राजन् बुद्धप्रदीपानां रुचा विश्वं प्रकाश्यते ॥ १२ ॥

एतदाकर्ण्य भूभर्त्तुः परं चित्तप्रसादिनः ।
प्रादुर्बभूव हृदये सद्यः संबोधिवासना ॥ १३ ॥

སྦྱིན་གྱི་བསོད་ནམས་མཐུ་ཡིས་ནི། དགེ་བ་རྒྱས་པ་ཡང་དག་ཐོབ།
དེ་ཡི་ཡང་དག་རྫོགས་པ་ཡི། བྱང་ཆུབ་ཐོབ་སླད་སྨོན་ལམ་བྱས།། 14

དེ་ནི་སྦྱིན་གྱི་སྐྱེ་བ་ལ། རྫ་མཁན་ཁྲིམ་བདག་ཅེས་པར་གྱུར།
དེ་ཡི་དབུལ་ཆོ་གུས་པ་ཡིས། བྱ་རམ་གཟན་གྱིས་རྒྱལ་བ་མཆོད།། 15

དེ་ཡི་བསོད་ནམས་སྨོན་ལམ་གྱིས། རབ་གསལ་ཉིད་ཐོབ་དེ་ཡི་ནི།
སེམས་ལ་བྱང་ཆུབ་སྨྱུ་གུ་བསྐྲུན། ད་ལྟ་བདག་ལ་འབྲས་འདི་གྱུར།། 16

དང་པོར་དག་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་བསྐྱེད་པ།
དེ་བཞིན་གཤེགས་པས་གསུངས་པ་དེ་ནི་དེར།
བདུད་རྩི་བཞིན་དུ་ཐོས་པའི་ཁྲོར་བ་ཡིས།
ཀོ་ས་ལ་དབང་དེས་འཕྲུངས་རྒྱལ་སར་སོང་།། 17

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་བསོད་ནམས་རབ་གསལ་གྱི་རྟོགས་
པ་བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱ་པའོ།།

पूर्व्वपुण्यप्रभावेण संप्राप्तकुशलोदयः ।
सम्यक्संबोधिलाभाय प्रणिधानं चकार सः ॥ १४ ॥

सोऽभूद्गृहपतिर्नाम कुलालः पूर्व्वजन्मनि ।
स्नेहे गुडोदनैस्तेन दीनेन पूजितोजिनः ॥ १५ ॥

तत्पुण्यप्रणिधानेन तस्यास्तस्य प्रभासताम् ।
बोधिरङ्कुरिता चित्ते फलितेयं ममाधुना ॥ १६ ॥

कथितमिति तथागतेन तच्च
प्रथमतरोदितशुद्धबोधिचित्तम् ।
अमृतमिव निपीय कोशलेन्द्रः
श्रुतिचुलुकैः स जगाम राजधानीम् ॥ १७ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
पुण्यप्रभासावदानं शततमः पल्लवः ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱ་རྩ་གཅིག་པ།

གང་ཞིག་སྐྱིད་བྱེད་ཚ་ཟེར་ལྡན་པ་རྒྱ་བའི་ཞབས་ནི་ཉི་བར་བསྟེན་པ་འདོན།
གང་གི་མ་ནི་གྲོ་རངས་སྣང་བ་མཆོད་འོས་དག་པར་རྒྱུན་དུ་རབ་གསལ་འཆར།
སྐྱེ་བོ་ཐམས་ཅད་དགའ་བའི་སྤྲ་སྣོ་དེ་ཉིད་ཉིར་སོ་དག་ལ་བསྔགས་པར་འོས།
དེ་ཡི་རྗེས་འབྲང་འཇིག་རྟེན་འདི་ལམ་གཞན་དུ་འགར་ཡང་སྲུན་པས་རེག་
མི་འགྱུར།།

ས་དབང་ཟས་གཙང་གྲགས་པ་ལྷག་མ་ཡི།
གནས་སྐབས་གྲུར་ཚེ་དེ་ཡི་ལུས་ལ་ནི།
དེ་བཞིན་གཤེགས་དག་མཆོག་ཏུ་གསལ་མཛད་པ།
གུས་པས་མཆོད་མཛད་མཆོད་རྟེན་དག་ཀྱང་མཛད།།

དབེན་པའི་སྤྱོད་ཚུལ་འཇིག་རྟེན་ཐུན་མོང་མིན།
ཇི་ལྟར་བཞེད་པར་འཇིག་རྟེན་ལམ་འཇུག་པ།
དེ་ལ་ཐེ་ཚོམ་ཡ་མཚན་གྱིས་གང་བའི།
དགེ་སློང་ཚོགས་ཀྱིས་མངོན་དུ་ཕྱོགས་དེ་དྲིས།།

མི་ཉམས་གླན་མེད་པའི་བྱང་ཆུབ་གནས།
ཆགས་པ་སྤངས་པས་འཇིག་རྟེན་སྤྱོད་བདང་བ།
འགྲོ་བའི་བླ་ཆེད་བླ་མ་ལ་གུས་པས།
ཐ་སྙད་སྤྱོད་ལ་འཇུག་པ་འདི་ནི་ཅི།།

एकाधिक शततमः पल्लवः ।

कल्यः सर्व्वजनप्रियः सततमासक्तप्रकाशोदयः
श्लाघ्यो वासर एष यस्य जननी पूज्या प्रभातद्युतिः ।
यस्याग्रे जनकस्य चण्डमहसः पादोपसेवाश्रुतिः
लोकेऽस्मिन्नपरच वा तदनुगः स्पृष्ट स्तमोभिः क्वचित् ॥ १ ॥

याते यशःशेषदशां क्षितीशे
शुद्धोदने शुद्धवरप्रकाशे ।
भक्त्या चकारास्य शरीरपूजां
तथागतः स्तूप मकारयच्च ॥ २ ॥

अलोकसामान्यविविक्तवृत्तं
यदृच्छयालोकपथप्रवृत्तम् ।
संपूरितः संशयविस्मयाभ्यां
पप्रच्छ तं भिक्षुगणः समेत्य ॥ ३ ॥

अनुत्तरानत्ययबोधिधाम्नः
स्पृहाप्रहाणोर्जितलोकवृत्तेः ।
जगद्गुरो स्ते गुरुगौरवेण
केयं प्रवृत्ता व्यवहारचर्य्या ॥ ४ ॥

བཅོམ་ལྡན་ཆོས་གཟིགས་དག་གིས་དེར་གསུངས་པ།
དག་པའི་གནས་སུ་གྱུར་པའི་ལུས་དག་གི།
རྒྱུར་གྱུར་ཕ་མ་དག་ནི་མཁས་རྣམས་ཀྱི།
བླ་མ་ཡིས་ཀྱང་མཆོད་འོས་ཞེ་སར་འོས། 5

དང་པོར་མཐའ་དག་བསོད་ནམས་ལ་འཇུག་པའི།
ཕ་མ་གང་གིས་རྟག་ཏུ་མི་མཆོད་པ།
དེ་དག་ཆོས་ཀྱང་ཆོས་མིན་ཉིད་འགྱུར་ཞིང་།
ཡེ་ཤེས་སྣང་བ་ནག་པོ་ཉིད་དུ་གྱུར། 6

སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་གུས་དང་ཞེ་ས་ཡིས།
དཀའ་ཐུབ་ལ་ཞུགས་ཕ་མ་ཡོང་བ་དག།
ཁྱིམ་ལ་ཆགས་བཏང་བདག་གིས་མཆོད་པ་ཡིས།
ལྷ་བཞིན་རྟག་པའི་ཉིད་དུ་མཉེས་པར་བྱས། 7

ཀ་ཤིའི་གྲོང་དུ་གཉིས་སྐྱེས་གཉེན་བཅས་ཀྱི།
ཆུང་མ་གོད་མི་ཀ་ཞེས་ལ་སྡོན།
རིགས་ནི་དག་ཅིང་གཙང་བར་བྱེད་པའི་བུ།
བློ་ལྡན་སྣ་བསངས་ཅན་ཞེས་བྱ་བ་བྱུང་། 8

ཁྲོ་ཤུག་དེ་དག་ཆུས་པས་ཡོང་བ་ཐོབ།
བུ་ལ་ཁྱིམ་བཀོད་ནགས་མཐའ་དག་ཏུ་སོང་།

तान् धर्म्मदर्शी भगवान् बभाषे
पूज्यौ गुरूणामपि गौरवार्हौ ।
कायस्य कल्याणनिकेतनस्य
निमित्तभूतौ पितरौ बुधानाम् ॥ ५ ॥

धर्म्मोऽप्यधर्म्मत्व मुपैति तेषां
ज्ञानद्युति र्व्योमलतां प्रयाति ।
समस्तपुण्यप्रथमावतारौ
न पूजितौ यैः पितरौ सदैव ॥ ६ ॥

जन्मान्तरेऽप्यादरगौरवेण
तपःप्रवृत्तौ पितरौ मयान्धौ ।
आराधितौ त्यक्तगृहस्पृहेण
सपर्य्यया दैवतवत् सदैव ॥ ७ ॥

द्विजन्मनः काशिपुरे सुबन्धोः
पत्न्यां पुरा गोमतिकाभिधायाम् ।
पुत्रः पवित्रीकृतशुद्धवंशः
श्यामाकनामा मतिमान् बभूव ॥ ८ ॥

तौ दम्पती वृद्धतयान्ध मात्तौ
यातौ सुतन्यस्तगृहौ वनान्तम् ।

མཁས་པ་རྣམས་ནི་ཁྲ་བས་འཇུག་པ་ན།
དབེན་པ་མཆོག་ཏུ་དར་བ་ཉིད་དུ་གྱུར། ‖ 9

དེ་དག་བུ་ནི་ཀུན་སྤྱོད་ཡོན་དན་གྱིས།
རྒྱལ་པོས་མདུན་ན་འདོན་དུ་རབ་ཞུས་ཀྱང་།
ཕ་མའི་མཆོད་པ་ལ་ཆགས་ལང་ཚོ་ཅན།
བསོད་ནམས་དཀའ་ཐུབ་ནགས་དེར་དེ་ཚེ་སོང་། ‖ 10

མཁས་པ་དེ་ཡིས་འབད་པས་རྩ་བ་དང་།
འབྲས་བུ་ཆུ་དང་བཅས་པ་ས་རིམ་གྲོ་ཕུས།
ཆོག་ཤེས་ཡིད་ནི་རབ་ཏུ་དང་བ་སྐྱེས།
དེ་ཡི་ཕ་མ་དག་གིས་རབ་དགའ་ཐོབ། ‖ 11

དེ་ནས་ནམ་ཞིག་ཇོན་ལ་རྩེ་བ་ཡི།
དེ་དག་བསྟི་གནས་དང་ཉེ་ཆུ་ཀླུང་འགྲམ།
མ་ཧེ་གཉིས་འཁྲུང་དབང་གིས་མི་དམན་པའི།
ས་དེར་མི་ཡི་བདག་པོ་ཚངས་བྱིན་འོངས། ‖ 12

སྐབས་དེར་དེར་ནི་རི་དྭགས་ཀླགས་པས་མཚན།
ཆུས་གང་བྱམ་པ་ཡིན་པའི་སྤྱི་བསངས་ཅན།
རི་དྭགས་དོན་གཉེར་རྒྱལ་པོས་རིང་པོ་ནས།
རྣ་བའི་བར་དུ་བྲངས་པའི་མདའ་ཡིས་བསྣུན། ‖ 18

मनीषिणामेव जरावतारे
परं विवेक स्तरुणत्व मेति ॥ ९ ॥

तत्सूनु राचारगुणेन राज्ञा
पुरोहितत्वं भृश मर्थितोऽपि ।
पित्रोः सपर्य्यारसिक स्तदेव
ययौ युवा पुण्यतपोवनं तत् ॥ १० ॥

तेन प्रयत्नात् परिचर्य्यमाणौ
मनीषिणा मूलफलैः सतोयैः ।
सन्तोषसञ्जातमनःप्रसादा
दवापतु स्तत्पितरौ प्रमोदम् ॥ ११ ॥

ततः कदाचिन्मृगयाविहारी
तदाश्रमोपान्तसरित्तटान्ते ।
महो महीनां महिषद्विपेन्द्रै-
स्तां ब्रह्मदत्तो नृपति र्जगाहे ॥ १२ ॥

अथान्तरे तत्र मृगाजिनाङ्क-
मम्भोभृतं कुम्भ मपाददानम् ।
श्यामाक माकर्ण्यस्ततेन राजा
जघान दूरादिषुणा मृगार्थी ॥ १३ ॥

མི་བསྲུན་ཚོག་གིས་བཞིན་དུ་མདའ་རྣོན་ནི།
བདེ་མེད་ལས་ཀྱིས་ཉེ་བར་གནས་པ་དེ།
གཉར་དུ་ཟུག་པས་རྟག་ཏུ་ཐུག་པ་དེས།
རྣམ་པར་གསོ་ཞིང་དལ་གྱིས་རབ་སྨྲས་པ།། 14

ཀྱི་མ་ཤིན་ཏུ་འཕགས་པ་མིན་པ་སྲུ།
སྙིང་རྗེའི་བསམ་པ་མེད་པས་གྱུ་མེད་དུ།
ཕྲིག་པ་མ་སྨྱུར་བྲ་མིན་ལ་ཆགས་ནས།
སྤྲོག་ནི་འཕྲོག་པར་བྱེད་པའི་མདའ་འདི་འཕངས།། 15

ནགས་ན་ཕ་མའི་ལུས་འཛིན་དུ་གནས་པ།
མིག་རབ་ཉམས་པའི་དབྱིག་པར་གྱུར་པ་བདག།
ཀྱི་ཧུད་བསད་ཚེ་རེ་མེད་དེ་དག་བསད།
གསུམ་གསོད་ནག་པོའི་བསད་འདི་སུ་ཞིག་གིས།། 16

ཞེས་པ་གདུང་བས་འཁྲུལ་སྨྲ་གྲམ་ཟེ་དེ།
སྨྲ་རའི་རི་མོ་གསར་ཆགས་མི་བདག་གིས།
བྱུང་བ་དང་བཅས་ཚུ་ཏུ་གསར་བ་དག།
ཤིང་མཁན་དག་གིས་བཅད་བཞིན་མདུན་དུ་མཐོང་།། 17

བླ་མའི་ཉོན་མོངས་ཁྲུད་པར་བསམས་པས་གདུང་།
འབར་བའི་མེ་ལྕེ་ལྟ་བུར་སྤྱོད་པའི་མདའ།

अशर्मकर्मोपनतेन तेन
शितेन विद्धः खलनर्मणेव ।
मर्मावसन्नेन शरेण तीव्रं
विघूर्णमानः स शनै र्जगाद ॥ १४ ॥

अहो बतानार्य्यतरेण केन
निष्कारणं निष्करुणाशयेन ।
अकार्य्यसङ्गादविचार्य्य पापं
प्राणापहारी प्रहितः शरोऽयम् ॥ १५ ॥

पित्रो र्वने देहभृतो र्निविष्टे
दृष्टिप्रलोभान्मयि यष्टिभूते ।
कष्टं हते तौ निहतौ निराशौ
कस्याय मुग्र स्त्रिवधे प्रयत्नः ॥ १६ ॥

इति व्यथाविस्खलितप्रलापं
विप्रं नवश्मश्रुनिलीनलेखम् ।
नृपः सभृङ्गं नवचूत मग्रतः
तं काष्ठिकच्छिन्न मिवालुलोक ॥ १७ ॥

शरं गुरुक्लेशविशेषचिन्ता-
सन्तापदीप्ताग्निशिखायमानम् ।

སྨྲོས་མཚན་སློག་གི་མི་མཐུན་ཕྱོགས་གྱུར་པས།
གསེར་གྱི་ལྡིང་ཅན་སྙིང་ལ་འཛིན་བྱེད་ཅིང་།། 18

ཀུ་སླུང་ངོགས་ན་འགྲོ་ཀློག་བྱེད་པ་དེ།
མཐོང་ནས་མི་དབང་བརྟན་པ་རབ་ཏུ་ཉམས།
གཟི་བྱིན་བྲལ་བ་རང་གི་མདའ་དེ་ཡིས།
བསྟུན་པ་བཞིན་དུ་རྒྱ་ཆེར་གཏུང་བར་གྱུར། 19

དེ་ལ་དེས་སྨྲས་ཐུབ་པ་རི་དགས་ཀྱི།
པགས་པས་ལུས་སྟོད་གཡོགས་པ་ཁྱོད་ནི་བདག།
རབ་ཏུ་སྔོངས་པས་བཅོམ་མོ་དམ་པ་ཀྱི།
བདག་ཉིད་དགོད་པའི་མི་ཡིས་གཞོམ་མི་ནུས།། 20

ཞེས་པ་རྒྱལ་པོ་གཟིར་བའི་ཚིག་ཐོས་ནས།
རལ་པའི་ཚོགས་འཁྲམ་གཞོན་ནུ་རང་བཞིན་གྱིས།
ཁྲོ་མེད་ཡིད་ལྡན་སྙིང་སྟོབས་གཏེར་གྱིས་ནི།
དྲག་པོར་གཏུང་བ་བཟོད་ཕུས་དེ་ལ་སྨྲས།། 21

རྒྱལ་པོ་དཀའ་ཐུབ་དགོད་པས་འཇིགས་དོན་མེད།
ཁྲོ་བྲལ་བདག་དང་བདག་གི་ཐ་མ་རག།
ལོང་བ་སློག་འཁྲིག་གནོད་པ་འདི་ལ་ཡང་།
ཁྱོད་ལ་དགོད་པ་དག་ནི་འདོར་མི་འགྱུར།། 22

पक्षाङ्कितं प्राणविपक्षभूतं
सुवर्णपुंखं हृदये वहन्तम् ॥ १८ ॥

विचेष्टमानं तटिनीतटान्ते
दृष्ट्वा स मातृष्टभृति नरेन्द्रः ।
हतः प्रतीपोपगतेन तेन
स्वशायकेनैव पृथुव्यथोऽभूत ॥ १९ ॥

तं बभाषे न मुने मया त्वं
मृगाजिनाच्छादितपूर्व्वकायः ।
प्रमोददोषाभिहतेन साधो
शापाग्निना नार्हसि मां निहन्तुम् ॥ २० ॥

श्रुत्वेति वाक्यं व्यथितस्य राज्ञः
तीव्रव्यथां सत्त्वनिधि र्नियम्य ।
स मब्रवीत् कीर्णजटाकलापः
स्वभावनिर्मन्युमनाः कुमारः ॥ २१ ॥

अलं तपःशापभयेन राजन्
अहं विमन्युः पितरौ ममान्धौ ।
अस्मिन्नपि प्राणहरापकारे
शापोपसर्गं न करिष्यत स्ते ॥ २२ ॥

སྲིད་པར་སྲོག་ཆགས་རང་གིས་བྱས་པའི་ལས།
འཁྲུལ་མེད་འབྲས་བུ་ཅན་རྣམས་དུས་སུ་ནི།
བདེ་དང་སྡུག་བསྔལ་ཡོན་ཏན་རྒྱས་པ་དང་།
སྐྱོན་དང་དམོད་པ་གསོད་པའི་སྐད་དུ་འགྱུར།། 23

གང་ཞིག་ལམ་ནས་དལ་གྱིས་འགྲོ་བ་ལྷུང་ཞིང་ལུས་ནི་རབ་དུ་ཉམས་པ་ཐོབ།
གང་ཞིག་ལམ་བྲལ་གཡང་སར་ཡོངས་སུ་འཁྲུམ་ཞིང་རྒྱུག་པ་ཉམས་པ་མེད་པར་འཇུག།
གང་ཞིག་ལན་གཅིག་མ་ཡིན་མཁས་པ་ཉམས་ཤིང་དཔལ་བསྟེན་ལེ་ལོ་ཅན།
ལས་ཀྱི་རི་མོ་ཟུག་པ་མེད་པར་བདག་ཉིད་ཀུན་གྱིས་བཀོད་དེ་རྣམ་པར་བཀྲ།། 24

བདག་གི་ཆུ་བུམ་ཕྱི་མ་མེད་པ་འདི།
ཕ་མ་སྐོམ་པས་གཟིར་ལ་འཚོ་བར་ནི།
གཞུང་བཟང་ལ་བརྟེན་བརྩེ་བས་བརླན་པའི་བློས།
སྐུར་བར་སོང་སྟེ་ཁྱོད་ཀྱིས་སྦྱིན་པར་བྱ།། 25

ཞེས་པ་མགྲིན་པའི་བར་དུ་སྲོག་རྒྱུ་ཞིང་།
དབུགས་བརྩེགས་ངལ་བས་སྐྲ་བསྐྲིགས་ཆུང་ངུར་བརྗོད།
བཞིན་ནི་ཕྱི་རོལ་ཕྱོགས་པའི་མདའ་དག་ལ།
ཐུབ་པ་དེས་ནི་སྐྱེངས་པ་སྟོན་བཞིན་མཛད།། 26

དེ་ནས་ས་དབང་མཆོག་དུ་རབ་གདུང་བས།
བུམ་པ་བླངས་ནས་དེ་དག་བསྟི་གནས་ཕྱིན།

सुखाय दुःखाय गुणोदयाय
दोषाय शापाय वधाय काले ।
कर्म्माण्यसम्भ्रान्तफलानि जन्तोः
स्वयं कृतान्येव भवे भवन्ति ॥ २३ ॥

सन्मार्गेण शनै र्व्रजन्निपतितः प्राप्नोऽतिभङ्गं तनोः
यः श्वभ्रेषु परिभ्रमोत्पथगते धावन् विशत्यक्षतः ।
यत् सीदत्यसकृत्प्रयत्नचतुरः श्रीसंश्रय स्वालसः
तद्दैचित्र्य मभित्तिचित्ररचनं सर्व्वात्मनां कर्म्मणाम् ॥ २४ ॥

अपश्चिम स्त्वेष ममाम्बुकुम्भ-
स्तृष्णार्त्तयो र्जीवित मेव पित्रोः ।
सौजन्य मालम्ब्य धिया दयार्द्रं
गत्वा त्वया तूर्णतरं प्रदेयः ॥ २५ ॥

उत्क्रान्ति कण्ठान्तरवर्त्तिजीवः
श्वासप्रयासस्थगितान्यवर्णः ।
मौनी स चक्रे विनताननस्य
वैलक्ष्यदीक्षामिव शायकस्य ॥ २६ ॥

कुम्भं समादाय ततः क्षितीशः
तदाश्रमं प्राप्य भृशं प्रतप्तः ।

གཉན་གྲོར་བྱ་གཅིག་ལྡན་པ་དེ་དག་མཐོང་།
དེ་དག་གམ་དུ་འགྲོ་བ་ཡོངས་མ་ནུས།། 27

རིང་ནས་རྟོག་སྒྲ་དག་ལ་རྣ་གཏོད་ཅིང་།
མཛའ་བས་རབ་ཏུ་འདོད་ལྡན་བྱ་ཞེས་པ།
སྨྲ་བ་དེ་དག་ལ་ནི་ཉེར་བཏུད་དེ།
དམོད་པས་ཉམས་པ་མི་འདོད་རྒྱལ་པོས་སྨྲས།། 28

སྐྱང་ཆེན་སྒྲོས་པའི་ཚུལ་གྱིས་ཨ་མྲའི་ཤིང་།
འཇོམས་བཞིན་གང་གིས་གཞོན་ནུ་རབ་བཅོམ་པ།
སྐྱེས་མཆོག་འཁྲི་ཤིང་དག་གི་ཕྱ་གྲི་རྩུབ།
སྡིག་པའི་སྐལ་ལྡན་བདག་ནི་ཁྲིད་སྨྲས་མིན།། 29

བདག་གི་མདའ་ཡིས་ལུས་བཅོམ་ཁྲོད་ཀྱི་སྲས།
དེ་ནི་སྡུག་བསྔལ་གྱུར་ནས་ཆུ་འགྲམ་ཉལ།
སྡིག་པའི་གདུང་བ་ཆེ་ལས་ཚ་གྲང་དང་།
བཅས་པའི་དམོད་དྲག་བདག་གི་ཕྱི་བོར་དོར།། 30

ནོར་འཛིན་བདག་པོས་དེ་སྐད་བརྗོད་ཙམ་ལ།
རྡོ་རྗེས་བཅོམ་བཞིན་བརྟན་པ་ཉམས་དེ་དག
ཤིན་ཏུ་བཟོད་དཀའི་མྱ་ངན་ལ་འཇིགས་བཞིན།
རབ་ཏུ་ཚ་བ་སྨོངས་པའི་ཕྲུག་ནང་ཞུགས།། 31

तावेकपुत्रौ स्थविरौ विलोक्य
तदन्तिकं नैव शशाक गन्तुम् ॥ २७ ॥

पुत्रेति दूरात् पदशब्ददत्त-
कण्ठौ समुत्कण्ठितमानसौ तौ ।
स्नेहाद्रुवाणावुपसृत्य राजा
जगाद शापात् क्षय मोहमानः ॥ २८ ॥

न पापभागी युवयोः सुतोऽहं
सौजन्यवल्लीकठिनः कुठारः ।
मातङ्गहत्याश्वतरं निपात्य
मत्तेन येनोन्मथितः कुमारः ॥ २९ ॥

मच्छायकस्यूततनुः स शेते
युष्मत्सुतः कच्छगत स्तटान्ते ।
निधीयतां मूर्ध्नि ममोग्रशापः
स शीतलोऽस्मात् पृथुपापतापात् ॥ ३० ॥

इत्युक्तमात्रे वसुधाधिपेन तौ
वज्राग्निदग्धाविव भग्नधैर्यौ ।
भीत्येव शोकस्य सुदुःसहस्य
महीयसीं मोहगुहां प्रविष्टौ ॥ ३१ ॥

དེ་ནས་རྒྱལ་པོས་ཚུ་གྲུང་གཏོར་དེ་དག།
ཇི་ཞིག་ལྷུར་སྤྱོས་འདུ་ཤེས་ཆ་ཤས་ཐོབ།
ས་བདག་ཁྱོད་ཀྱིས་བདག་ཅག་བུ་རྡུང་དུ།
ཁྲིད་ཅེས་སྙིང་རྗེ་རབ་སྨྲ་དེ་དག་སྨྲ།། 32

དེ་ནས་དེ་ཡིས་ཚུ་སྐྱུང་ཉེ་བར་ཁྲིད།
སྒྲིང་དང་སྒྲོན་མེ་ཉེ་བར་བྱིང་གྱུར་པ།
ལག་པས་མདའ་བསྣུན་བུ་ལ་རིག་བྱས་ནས།
དེ་ཡི་མདའ་ཡིས་ཕྲུག་བཞིན་དེ་དག་འགྲོལ།། 33

བྲུ་གཅིག་བླ་མ་དག་ལ་མཉེས་གཤེན་ཡང་།
ཕ་མ་རྒན་ཡོང་མགོན་མེད་བདང་ནས་ནི།
ཅི་སླད་གློ་བུར་མཐོ་རིས་ཁྱོད་འགྲོ་ཞེས།
དེ་དག་གིས་ནི་དེ་ལ་དམ་འཁྲུད་སྨྲས།། 34

བུ་ཁྱོད་མི་ཡི་སྦྱིན་སྡིག་ལ་དགའ་ཞིང་།
བླ་མའི་ལྷ་དང་ལྡན་པས་བདག་ཅག་ནི།
ཟློལ་མེད་གུས་པའི་མཆོད་པས་མཉེས་བྱས་པའི།
བདེན་པ་དེས་ཁྱོད་ཟུག་རྔུ་མེད་གྱུར་ཅིག།། 35

ཅེས་པ་བླ་མ་དག་གི་སྙིང་སྟོབས་རྫོགས།
སྙིང་རྗེས་གཟིར་བའི་བདེན་ཚིག་བརྗོད་ཙམ་ལ།

सिक्तौ ततः शीतजलेन राज्ञा
तौ लब्धसंज्ञावयवौ कथञ्चित् ।
पुत्रान्तिकं भूप नय त्वमावा
मित्यूचतु स्तौ करुणप्रलापौ ॥ ३२ ॥

नीतौ तत स्तेन सरित्समीप
महीपदीपे व्यसने निमग्नौ ।
हस्तेन संस्पृश्य सुतं शरार्त्तं
तद्बाणविद्धाविव पेततु स्तौ ॥ ३३ ॥

कस्मादकस्माद् गुरुवत्सलोऽपि
वृद्धावनाथौ पितरौ त्व मन्धौ ।
त्यक्त्वा दिवं गच्छसि पुत्रकेति
गाढं परिष्वज्य त मूचतु स्तौ ॥ ३४ ॥

आराधितौ भक्तिसपर्य्ययैव
निर्व्याज मावां गुरुदैवतेन ।
त्वयाग्निहोत्राभिरतेन पुत्र
सत्येन तेनास्तु भवान् विशल्यः ॥ ३५ ॥

इत्युक्तमात्रे करुणार्त्तिसत्य-
सत्त्वोपपन्ने वचने गुरुभ्याम् ।

བརྒྱ་བྱིན་མངོན་ཕྱོགས་བདུད་རྩིས་བྲན་པ་ཡིས།
གཞོན་ནུ་མ་དང་བྲལ་ཞིང་བསོས་པར་བྱས།། 36

བདག་ནི་དེ་ཚེ་དེར་གུས་བརྟུལ་ཞུགས་ཅན།
ཐུབ་པའི་གཞོན་ནུ་སྤོ་བསངས་ཅན་དེར་གྱུར།
ཤཱ་ཀྱའི་རིགས་འཁྲུངས་མཆོད་བྱ་བདག་གིས་ཀྱང་།
འབད་ནས་མཆོད་བྱ་ཕ་མ་དེ་དག་གོ །། 37

དེ་ལྟར་རྣམ་མང་ཆོས་ཀྱི་རྩ་བ་ནི།
བདེ་བར་གཤེགས་ཀྱིས་གསུངས་དགེ་སློང་གིས་ཐོས་ནས།
བླ་མ་བསྙེན་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་དང་མཚུངས་པ།
དམ་པའི་སྤྱོད་པ་གཞན་དག་མེད་པར་སེམས།། 38

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་སྤོ་བསངས་ཅན་གྱི་རྟོགས་པ་
བརྗོད་པའི་ཡལ་འདབ་སྟེ་བརྒྱ་རྩ་གཅིག་པའོ །།

शक्रः समभ्येत्य सुधाप्रसेकै-
रजीवयन्निर्विवरं कुमारम् ॥ ३६ ॥

श्यामाकनामा स मुनेः कुमारः
तदाभवं तद्विनयव्रतोऽहम् ।
तावेव मे शाक्यकुलोद्भवेऽपि
पूज्यस्य पूज्यौ पितरौ प्रयत्नात् ॥ ३७ ॥

इति विविधधर्ममूलं
गदितं सुगतेन भिक्षवः श्रुत्वा ।
गुरुसेवाव्रतसदृशं
नान्यं समन्यन्त सद्वृत्तम् ॥ ३८ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
श्यामाकावदानमेकाधिकशततमः पल्लवः ॥ ० ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱ་རྩ་གཉིས་པ།

དམན་པའི་སྦྱིན་པས་སྐྱེ་བོ་དམན་པ་རྣམས་ཀྱི་གདུང་བ་སེལ།
ཚུལ་ཁྲིམས་ཀྱིས་ནི་སྐྱེ་བོ་དམ་པའི་ཡིད་དག་ཚིམ་པར་བྱེད།
ཤེས་རབ་སྟོབས་ཀྱིས་ཀྱང་ནི་དབེན་པ་དང་བྲལ་གདི་སྨུག་འཕྲོག།
བརྩོན་འགྲུས་ཀྱིས་ནི་འཇིགས་སུ་རུང་བའི་འཇིགས་པ་ཟློག་པར་བྱེད། 1

ཆོས་ཀྱི་བཀའ་ཡིས་མཚན་ཡོད་ན། དགེ་བ་སེམས་ཅན་ལ་སྟོན་ཅིང་།
རྒྱལ་བ་རྒྱལ་བྱེད་ཚལ་བཞུགས་ལ། དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་སྟོན་དྲིས་པ།། 2

བཅོམ་ལྡན་ཁྲོད་ཀྱིས་བརྒྱ་བྱིན་དང་། ས་བདག་གཟུགས་ཅན་སྙིང་པོ་དང་།
དགེ་སློང་ཀུན་ཤེས་ཀོ་ཎྜི་ནྱ། བདེན་པ་མཐོང་བ་དག་ལ་བཀོད།། 3

དེ་ཡི་ཞར་ལ་ལྷ་རྣམས་ནི། འབུམ་ཕྲག་གཉིས་དང་དེ་བཞིན་དུ།
ཁྲི་ཕྲག་བཞི་ཡིས་བདེན་པ་ནི། མཐོང་བའི་སྣོད་ཉིད་རབ་ཏུ་ཐོབ།། 4

ཀུན་ལ་ཕན་མཛད་ཁྲོད་ཀྱི་འདི། ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་རང་བཞིན་ནམ།
ཡོན་དན་བསོད་ནམས་རྗེས་འགྲོ་འམ། སྐྱེ་བར་གོམས་པའི་རབ་དང་ཡིན།། 5

དགེ་སློང་རྣམས་ཀྱིས་འདི་བརྗོད་གསལ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སླར་
གསུངས་པ།
བདག་གི་བློ་གྲོས་གཞན་ཕན་ལ། གོམས་པས་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་ཉིད།། 6

द्व्यधिकशततमः पल्लवः ।

दानेन दीनजनताव्यसनानि हन्ति
शीलेन तोषयति सज्जनमानसानि ।
प्रज्ञाबलेन च हरत्यविवेकमोहम्
वीर्य्येण वारयति भीरुभयानि धीरः ॥ १ ॥

श्रावस्त्यां सत्त्वकुशलं दिशन्तं धर्म्मशासनैः ।
जिनं जेतवनासीनं पप्रच्छुर्भिक्षवः पुरा ॥ २ ॥

भगवन् भवता शक्रो बिम्बिसारश्च भूपतिः ।
भिक्षुश्चाज्ञातकौण्डिन्यः प्रापिताः सत्यदर्शनम् ॥ ३ ॥

लक्षद्वयं देवतानां तथायुतचतुष्टयम् ।
तत्प्रसङ्गेन संप्राप्तं सत्यदर्शनपात्रताम् ॥ ४ ॥

स्वभावः सहजो वायं गुणः पुण्यान्वयोऽपि वा ।
जन्माभ्यस्तप्रसादो वा तव विश्वोपकारिणः ॥ ५ ॥

इत्युक्तं भिक्षुभिः श्रुत्वा भगवान् प्रत्यभाषत ।
सहजैव ममाभ्यासात् परोपकृतये मतिः ॥ ६ ॥

སྐྱེ་བ་འདིར་བདག་སེམས་ཅན་ལ། ཕན་པར་དགའ་བ་ཅི་ཞིག་མཚར།
རྟག་ཏུ་གོམས་པས་སེང་གེ་དང་། གླང་སོགས་སྐྱེ་བ་འདི་ལ་གྱུར།། 7

སྔོན་ཚེ་དེར་དཔོན་སློ་ཕྱོགས་པ། ཐྲག་པོར་འབྲངས་པའི་དུད་མེད་དང་།
དོན་མཐུན་འབུམ་སྲག་གཉིས་རྗེས་འབྲང་། ཆུ་གཏེར་དག་གི་ངོགས་སུ་ཕྱིན།། 8

དེ་དུས་དུས་ནི་གཞན་པ་བཞིན། འགྲོ་བ་ཟ་བ་ལ་ཆགས་པ།
འཇིགས་རུང་ལུས་རྒྱས་སྦྲུལ་ཆེན་ནི། ཐམ་པ་ཞེས་པ་བྱུང་བར་གྱུར།། 9

སྐྱེ་བོ་ཀུན་གྱི་ཉེན་སོངས་ཀྱི། སྐྲག་པ་བཞིན་དུ་བཟོད་དཀའ་དེ།
མཐོང་ནས་བདུན་པ་རྣམ་པར་ཉམས། དེ་དག་དཀྲུགས་པ་བཞིན་དུ་གྱུར།། 10

གདེངས་ཅན་དེ་ཡི་ལུས་ཀྱིས་ནི། ལམ་དག་ཀུན་ནས་བསྐོར་བའི་ཚེ།
བསམ་བྲལ་དུས་ཀྱི་ཁ་སྐོར་གནས། དེ་དག་རྣམས་ཀྱི་ཚེ་ངེ་བདོན།། 11

མ་ལུས་ལྷ་རྣམས་བསྟོད་པ་ཡིས། སྐྱབས་པའི་སྒྲ་ལྡན་དེ་དག་གིས།
ཚེ་ངེ་ཕྱོགས་ཀུན་ཁྱབ་བྱེད་པ། སྙིང་རྗེའི་སྒྲ་ནི་རྒྱས་པར་གྱུར།། 12

དེ་དུས་སེང་གེ་རི་ཕུག་གནས། གྲགས་པའི་རལ་ཅན་ཞེས་པ་དང་།
དེ་ཡི་གྲོགས་པོ་གླང་པོ་ཆེ། མན་དྷ་ར་ཡིས་སྒྲ་དེ་ཐོས།། 13

རྒྱུད་པ་སྨིན་པ་ལ་ཆས་ཤིང་། ཡིད་ནི་སྙིང་རྗེས་དྲངས་གྱུར་པ།
དོན་མཐུན་སྨིན་ལ་གཟུགས་བྱས་པའི། བདུན་པ་དེ་དག་འོངས་པར་གྱུར།། 14

अस्मिन् जन्मनि किं चित्रं मम सत्त्वहिते रतिः ।
अप्यभूत् सततभ्यासात् सिंहहस्त्यादिजन्मसु ॥ ७ ॥

दाक्षिणात्याः पुरा सार्थवाहा गाढाग्रहाः त्रयः ।
जग्मु र्जलनिधे स्तीरं सार्द्धलक्षद्वयानुगाः ॥ ८ ॥

तस्मिन् काले जगद्ग्रासव्यग्रः काल इवापरः ।
अभूदजगरो घोरः कङ्काख्यः स्फारविग्रहः ॥ ९ ॥

ते तं सर्व्वजनायासं संत्रासमिव दुःसहम् ।
विनष्टधैर्य्या दृष्ट्वैव बभूवु र्घट्टिता इव ॥ १० ॥

भोगेन भोगिनानेन समन्ताद्वेष्टिते पथि ।
निश्चेष्टाः कालवक्त्राग्रवर्त्तिन स्ते प्रचुक्रुशुः ॥ ११ ॥

तेषा मशेषचिद्भ्रस्तवैः शरणराविणाम् ।
आक्रन्दः सर्व्वदिग्व्यापी प्रोद्ययौ करुणस्वनः ॥ १२ ॥

यशःकेशरसंघोऽथ सिंहः शैलगुहाशयः ।
तं शब्दं मन्दरः श्रुत्वा तद्वयस्यश्च कुञ्जरः ॥ १३ ॥

आपन्नत्राणसन्नद्धौ करुणाकृष्टमानसौ ।
धीरावाजग्मतुः सार्थसंरक्षणकृतक्षणौ ॥ १४ ॥

དེ་ནས་གླང་ཆེན་རི་བོ་ཡི། །ལུས་ཅན་དག་ལ་སེང་གེ་ཞོན། །
ཤུགས་ཀྱིས་བསྣུར་ནས་སྤྲུལ་ཆེན་ནི། །སྒྲོག་དང་བྲལ་བ་དག་ཏུ་བྱས།། 15

དེ་ཡི་སྒྲོག་ནི་འགྲོ་དུས་སུ། །དབུགས་ཀྱི་རླུང་ནི་སྒྲིག་བྱེད་དག །
རབ་ཏུ་འབར་བས་སེང་གེ་དང་། །གླང་པོ་དག་ནི་ཐལ་བར་བྱས།། 16

དེ་ནས་དེད་དཔོན་དེ་རྣམས་ཀྱིས། །དེ་དག་ལུས་ལ་མཆོད་པའི་སྐད། །
མཆོད་རྗེན་བྱས་ནས་དེ་དག་གིས། །གྲགས་པ་དང་འགྲོགས་ཕྱོགས་སུ་སོང་།།17

ང་ཉིད་དེ་ཚེ་དོན་མཐུན་ལ། །སྒྲོག་སྟེར་སེང་གེ་དག་ཏུ་གྱུར། །
ལྷས་བྱིན་དག་ནི་སྤྲུལ་ཆེན་དེ། །ཤཱ་རིའི་བུ་ནི་གླང་པོ་ཆེ།། 18

སློང་སྤྱོབས་ལྷ་བ་དེ་ཡི་སྤྱོད་པ་ལེགས་བྱས་རབ་ཏུ་གསལ། །
ཀུན་ལ་ཕན་པར་བྱེད་མཁས་གྲགས་ཞིང་ཆེན་པོ་དག་ཏུ་འོས། །
རྒྱལ་བས་གསུངས་པ་དེ་དག་ཐོས་ནས་དགའ་བ་ཐོབ་གྱུར་པའི། །
དགེ་སློང་དེ་དག་རྣམས་ཀྱིས་ཚིག་གིས་སོ་སོར་རབ་ཏུ་བསྔགས།། 19

ཞེས་པ་དགེ་བའི་དབང་པོས་བྱས་པའི་བྱང་ཆུབ་སེམས་པའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པ་
དཔག་བསམ་གྱི་འཁྲི་ཤིང་ལས་སེང་གེའི་རྟོགས་པ་བརྗོད་པའི་
ཡལ་འདབ་བརྒྱ་རྩ་གཉིས་པའོ། །

ततः सिंहः समारुह्य गजेन्द्रं गिरिविग्रहम् ।
वेगान्निपत्याजगरं चकार गतजीवितम् ॥ १५ ॥

प्राणप्रवाससमये तस्य निश्वासमारुतः ।
चकार दहनोद्गारौ भस्मसात् सिंहकुञ्जरौ ॥ १६ ॥

तयोः शरीरपूजार्थं ततस्ते सार्थनायकाः ।
स्तूपं विधाय प्रययु र्दिशः स्तद्यशसा सह ॥ १७ ॥

अहमेव तदा सिंहः सार्थत्राणप्रदोऽभवम् ।
महाहि र्देवदत्तोऽसौ शारिपुत्रश्च कुञ्जरः ॥ १८ ॥

तत्तस्य सत्त्वशशिनः सुकृतप्रकाशम्
विश्वोपकारचतुरं चरितं महार्हम् ।
श्रुत्वा जिनेन कथितं प्रथमं सहर्षा-
स्ते भिक्षवः प्रतिपदं प्रशशंसुरेव ॥ १९ ॥

इति क्षेमेन्द्रविरचितायां बोधिसत्त्वावदानकल्पलतायां
सिंहावदानं द्व्यधिकशततमः पल्लवः ॥ ० ॥

ཡལ་འདབ་བརྒྱ་རྩ་གསུམ་པ།

ཧོ་ ཞལ་རབ་གསལ་གོས་མཆོག་ཅོད་པན་དང་།
གདུགས་དང་རྔ་ཡབ་དཀར་པོས་འཛུམ་པའི་དཔལ།
མཆོག་གི་ལོངས་སྤྱོད་སྐལ་བཟང་དགའ་སྟོན་གྱིས།
བདག་ཉིད་ཆེན་པོ་ འི་ལེགས་བྱས་གསལ་བར་བྱེད།།

ཆོས་ཀྱི་འཁོར་པ་རབ་རྒྱས་པའི། མཐུ་ནི་རྒྱས་པ་མཐོང་བ་ལས།
ཡ་མཚན་དགེ་སློང་ཚོགས་ལ་ནི། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སྟོན་གསུངས་པ།། 2

སྐྱེ་བ་གཞན་ལ་བླ་མེད་ཀྱི། ཡི་ཤེས་གཟི་བྱིན་མ་ཐོབ་ཀྱང་།
བདག་ལ་ངོ་མཚར་བཅས་པའི་དཔལ། ལེགས་བྱས་གསལ་བར་བྱེད་པ་བྱུང་།། 3

བྱང་གི་ཕྱོགས་ཀྱི་གྲོང་ཁྱེར་དག། རྡོ་རྗེ་ཅན་ཞེས་བྱ་བར་ནི།
རྒྱལ་པོ་ཕྱུག་ན་རྡོ་རྗེ་བཞིན། རྡོ་རྗེ་གསུམ་པོ་ཞེས་པར་བྱུང་།། 4

གྲོང་ཁྱེར་གང་གཱའི་བདག་པོ་ནི། ས་བདག་ལྷུན་པོ་བདུལ་ནས་དེའི།
བུ་མོ་སྐར་མ་ཞེས་བྱ་བ། རིམ་ཐོབ་བདུད་རྩིའི་ཟེར་གྱིས་བཞིན།། 5

དེ་ཡིས་དེ་ལ་བུ་དག་ནི། ཉི་མའི་འོད་དང་མཚུངས་པ་བསྐྱེད།
གང་ལ་ནོར་བུའི་གདུགས་དག་ནི། བཀྲ་བ་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པས་མཛེས།། 6